# भगवती-जोड़

श्रीमज्जयाचार्य

जय वाङ्मय : ग्रन्थ १४

# भगवती-जोड़

## खण्ड २

प्रवाचक

**आचार्य तुलसी**

प्रधान सम्पादक

**युवाचार्य महाप्रज्ञ**

प्रकाशक

**जैन विश्व भारती**

लाडनूं (राजस्थान)

सम्पादन

साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभा

प्रबन्ध-सम्पादक :
**श्रीचन्द रामपुरिया**
निदेशक
आगम और साहित्य प्रकाशन
(जैन विश्व भारती)

आर्थिक सौजन्य :
*समाज भूषण भगवत प्रसाद*
*रणछोड़दास चेरिटेबल ट्रस्ट,*
*अहमदाबाद*

प्रथम संस्करण :
१९८६

मूल्य : ~~[illegible]~~
५००/=

मुद्रक :
मित्र परिषद् कलकत्ता के आर्थिक सौजन्य से स्थापित
जैन विश्व भारती प्रेस, लाडनूं (राजस्थान)

# प्रकाशकीय

'भगवती-जोड' का प्रथम खड जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के अवसर पर 'जय वाड्मय' के चतुर्दश ग्रन्थ के रूप मे सन् १६८१ मे प्रकाशित हुआ था। अब उसी ग्रन्थ का द्वितीय खड पाठको के हाथो मे सौपते हुए अति हर्ष का अनुभव हो रहा है।

प्रथम खण्ड मे उक्त ग्रंथ के चार शतक समाहित थे। प्रस्तुत खण्ड मे पाचवें से लेकर आठवें शतक की सामग्री समाहित है।

साहित्य की बहुविध दिशाओ मे आगम ग्रंथो पर श्रीमज्जयाचार्य ने जो कार्य किया है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्राकृत आगमो को राजस्थानी जनता के लिए सुबोध करने की दृष्टि से उन्होने उनका राजस्थानी पद्यानुवाद किया जो सुमधुर रागिनियो मे ग्रथित है।

प्रथम आचाराग की जोड, उत्तराध्ययन की जोड, अनुयोगद्वार की जोड, पन्नवणा की जोड़, सजया की जोड, नियठा की जोड—ये कृतिया उक्त दिशा मे जयाचार्य के विस्तृत कार्य की परिचायक हैं।

"भगवई" अग ग्रंथो मे सबसे विशाल है। विषयो की दृष्टि से यह एक महान् उदधि है। जयाचार्य ने इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आगम-ग्रंथ का भी राजस्थानी भाषा मे गीतिकाबद्ध पद्यानुवाद किया। यह राजस्थानी भाषा का सबसे वडा ग्रथ माना गया है। इसमे मूल के साथ टीका ग्रंथो का भी अनुवाद है और वार्तिक के रूप में अपने मतव्यो को वडी स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है। इसमे विभिन्न लय ग्रथित ५०१ ढाले तथा कुछ अन्तर ढालें है। ४१ ढालें केवल दोहो मे हैं। ग्रन्थ मे ३६२ रागिनिया प्रयुक्त है।

इसमें ४६६३ दोहे, २२२५४ गाथाए, ६५५२ सोरठे, ४३१ विभिन्न छद, १८८४ प्राकृत, सस्कृत पद्य तथा ७४४६ पद्य-परिमाण ११६० गीतिकाए, ६३२६ पद्य-परिमाण ४०४ यत्रचित्र आदि हैं। इसका अनुष्टुप् पद्य-परिमाण ग्रथाग्र ६०६०६ है।

प्रस्तुत खंड मे मूल राजस्थानी कृति के साथ सम्बन्धित आगम पाठ और टीका की व्याख्या गाथाओ के समकक्ष मे दे दी गई हैं। इससे पाठको को समझने की सहूलियत के साथ-साथ मूल कृति के विशेष मतव्य की जानकारी भी हो सकेगी।

इस ग्रथ का कार्य युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी के तत्त्वावधान मे हुआ है और साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी ने उनका पूरा-पूरा हाथ बटाया है। उनका श्रम पग-पग पर अनुभूत होता-सा दृग्गोचर होता है।

तेरापथ संघ के युगप्रधान आचार्य तुलसी के अमृत महोत्सव के सातवें चरण के अवसर पर ऐसे ग्रथ-रत्न के द्वितीय खड का पाठको के हाथो मे प्रदान करते हुए जैन विश्व भारती अपने आपको अत्यन्त गौरवान्वित अनुभव करती है।

इस अवसर पर हम श्री भगवत प्रसाद रणछोडदास परिवार को हार्दिक धन्यवाद देते है जिन्होने जैन विश्व भारती मे साहित्य प्रकाशन स्थायी कोष के निर्माण हेतु स्वर्गीय समाजभूषण सेठ भगवतप्रसाद रणछोडदास (१६२१-१६८०) की पुण्य स्मृति मे पचास हजार रुपये की राशि भगवतप्रसाद रणछोडदास चेरिटेबल ट्रस्ट, १४ पटेल सोसाइटी, शाहीबाग, अहमदाबाद, ६४, से प्रदान किया। उक्त ट्रस्ट को हम इस उदार अनुदान हेतु अनेक धन्यवाद ज्ञापन करते है।

इस ग्रथ का मुद्रण कार्य जैन विश्व भारती के निजी मुद्रणालय मे सपन्न हुआ है, जिसकी स्थापना जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष मे मित्र परिषद् कलकत्ता के आर्थिक सौजन्य से हुई थी।

२-१२-८६
सुजानगढ

**श्रीचन्द रामपुरिया**
कुलपति
जैन विश्व भारती

# सम्पादकीय

तेरापंथ धर्मसघ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य विलक्षण पुरुप थे। उन्होने अपनी प्रज्ञा के द्वार खोले और ऊर्जा का भरपूर उपयोग किया। एक ओर सघ के अन्तरग व्यवस्था पक्ष मे क्रान्तिकारी परिवर्तन, दूसरी ओर साहित्य के आकाश मे उन्मुक्त विहार। एक ओर प्रशासन, दूसरी ओर साहित्य सृजन। उनके व्यक्तित्व मे कुछ ऐसे तत्त्व थे कि एक साथ कई मार्गों की यात्रा करने पर भी वे श्रान्त नही हुए। साहित्यिक यात्रा मे तो उन्हे अपरिमित तोष मिलता था। इसलिए छोटे-बडे, दार्शनिक-व्यावहारिक, सैद्धान्तिक-सघीय किसी भी प्रसग पर उनकी लेखनी बराबर चलती रहती थी। किशोर वय मे उन्होने लिखना शुरू किया। यौवन की दहलीज पर पाव रखने से पहले ही उनके लेखन मे निखार आ गया। परिपक्वता बढती गई और वे अपने युग मे असाधारण शब्द-शिल्पियो की श्रेणी मे आ गए।

जयाचार्य की प्रत्येक रचना महत्त्वपूर्ण है। पर 'भगवती की जोड' अद्भुत है। इसे गभीरता से पढा जाए तो पाठक आत्म-विभोर हो जाता है। आचार्यश्री तुलसी के मन मे तो इसका स्थान बहुत ही ऊचा है। आपने समय-समय पर इसके सम्बन्ध मे जो भावना व्यक्त की, उसका साराश इस प्रकार है—मैं जब-जब 'भगवती की जोड' को देखता हू, मेरा मन आह्लाद से भर उठता है। इसके अध्ययन, मनन और समीक्षण काल मे कालबोध समाप्त हो जाता है। इसकी विशद व्याख्याए और गहरी समीक्षाए मन को पूरी तरह से बाध लेती हैं। ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रथ को बार-बार प्रणाम करने की इच्छा होती है। इसके रचनाकार की अनूठी इच्छाशक्ति और दृढ सकल्पशक्ति का चित्र तो इसके बृहत्तम आकार को देखते ही उभर आता है। कैसी थी उस महान् शब्द-शिल्पी की धृति, बुद्धि और वैचारिक स्थिरता। रचनाधर्मिता के प्रति संपूर्ण समर्पण बिना ऐसी कृतियो के सृजन की सभावना भी नही की जा सकती।"

## इतिहास का सृजन

ससार मे तीन प्रकार के व्यक्ति होते है—उत्तम, मध्यम और अधम। कुछ लोग काम की दुरूहता की कल्पना मात्र से आहत हो जाते है। वे किसी बडे या महत्त्वपूर्ण काम का प्रारभ भी नही कर सकते। ऐसे व्यक्ति तीसरी श्रेणी मे आते है। कुछ व्यक्ति इतने उत्साही होते हैं कि कोई भी नई योजना सामने आते ही उसकी क्रियान्विति मे जुट जाते हैं। किन्तु विघ्न, बाधाओ की बौछार से वे विचलित हो जाते है और शुरू किए हुए काम को बीच मे ही छोड देते हैं। ऐसे व्यक्ति मध्यम श्रेणी मे आते है। उत्तम कोटि के व्यक्ति वे होते हैं, जो कठिन से कठिन काम को भी पूरे मन से सम्पादित करते है। प्रतिकूलताओ और बाधाओ से प्रताडित होकर भी जो अकम्प भाव से चलते रहते हैं, काम को पूरा करके ही विराम लेते है।

जयाचार्य इस उत्तम श्रेणी के व्यक्ति थे। 'क्रियासिद्धि सत्वे भवति महता नोपकरणे'—इस उक्ति के अनुसार वे न्यूनतम साधन सामग्री से भी इतना काम कर गए कि इतिहास पुरुप बन गए। भगवती सूत्र का राजस्थानी भाषा मे पद्यात्मक भाष्य करके उन्होने एक ऐसे इतिहास का सृजन किया है, जिसे दोहराना मुश्किल है। उनकी यह कृति साहित्य के क्षेत्र मे कीर्तिमान ही नही है, एक ऐसी आलोक रश्मि है, जो सस्कृत और प्राकृत भाषा नही जानने वाले लाखो-लाखो लोगो का मार्ग प्रशस्त कर रही है।

'भगवती की जोड' का प्रथम खण्ड सम्पादित होकर मुद्रित हो चुका है। उसमे प्रथम चार शतक की जोड है। प्रस्तुत ग्रथ उस शृखला मे दूसरा खण्ड है। इसमे भी चार शतक—पाचवें से लेकर आठवें तक, समाविष्ट हैं। प्रथम खण्ड की भाति इस खण्ड मे भी जोड के सामने 'भगवती' के मूल पाठ और वृत्ति को उद्धृत किया गया है। कुछ स्थलो पर पादटिप्पण भी दिए गए है। यत्र-तत्र प्राप्त अन्य ग्रन्थो की सूचना के अनुसार उनके प्रमाण देने का प्रयत्न भी किया गया है।

भगवती की सम्पूर्ण जोड को एक ही शृखला मे अनेक खण्डो मे सम्पादित करके जनता तक पहुंचाने की योजना है। दूसरे खण्ड की पृष्ठ सख्या प्रथम खण्ड से कुछ अधिक है। एक ही सीरीज के सब खण्ड आकार-प्रकार मे भी एकरूप होते तो इनका सौन्दर्य बढता। किन्तु सौन्दर्य के लिए सत्य को विखण्डित करना भी उचित प्रतीत नही होता। मूल आगम मे शतक छोटे-बडे हैं। पृष्ठ सख्या मे बाधकर उन्हे पूरी-अधूरी प्रस्तुति देने से रचनाकार और पाठक दोनो के साथ ही न्याय नही होता। इस दृष्टि से प्रत्येक खण्ड की पृष्ठ सख्या समान नही रह सकेगी।

प्रस्तुत खण्ड के सभी शतक दस-दस उद्देशक वाले हैं। प्रत्येक शतक के प्रारभ मे सग्रहणी गाथा के आधार पर उसके प्रतिपाद्य

का संकेत दे दिया गया है। संग्रहणी गाथा की जोड भी कितनी मूलस्पर्शी है—

चम्पा रवी उदस्थ, पवन जाल ग्रथिक वलि।
शब्द विषय छद्मस्थ, आयू पुद्गल कंपवो ॥
निर्ग्रंथ पुत्र अनगार, किणनैं कहियै राजगृह[१]।
चंपा चद्र विचार, दस उदेश पंचम शते ॥

चंप-रवि अनिल गठिय, सद्दे छउमाउ एयण नियठे।
रायगिहं चपा-चदिमा य, दस पंचमम्मि सए ॥

XXX————————————XXX

पुगद्ल नु पहलु कह्यु, आशीविष नो जाण।
वृक्ष तणो तीजो अख्यो, चउथो क्रिया वखाण ॥
आजीवका नो पांचमो, छट्ठो प्रासुक दान।
अदत्त विचारण सप्तमो, प्रत्यनीक पहचान ॥
नवमो बंध तणो कह्यो, आराधना नो अर्थ।
उद्देशक दस आखिया, अष्टम शते तदर्थ[२] ॥

पोग्गल आसीविस रुक्ख किरिय, आजीव फासुक मदत्ते।
पडिणीय बंध आराहणा य, दस अट्ठमम्मि सते ॥

## गुजराती का प्रभाव

जयाचार्य की भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है। जयाचार्य न तो गुजरातीभाषी थे और न ही कभी गुजरात उनका विहार क्षेत्र रहा। फिर भी उनकी रचनाओ पर गुजराती का प्रभाव सहेतुक है। आचार्य भिक्षु ने आगमो का अध्ययन टबो के आधार पर किया था। जयाचार्य के अध्ययन का क्रम भी यही था। आगमो के टबो की भाषा गुजराती है। आचार्य भिक्षु ने उस भाषा को नही पकड़ा। फलत: उनका साहित्य शुद्ध मारवाडी बोली मे है। जयाचार्य अपनी ग्रहणशीलता को यहां भी छोड़ नही सके। इस कारण उनकी भाषा गुजराती मिश्रित हो गई।

भगवती की जोड मे किसी भी ढाल की रचना पर गुजराती का प्रभाव ज्ञात किया जा सकता है, पर वहा प्रवाह मे बहुत साफ-साफ परिलक्षित नही होता। जोड के मध्य जहा-जहा वार्तिकाए लिखी हुई हैं, उन्हे पढ़ने से प्रतीत होता है कि जयाचार्य की रचनाओ मे अनायास ही गुजराती भाषा के प्रयोगो की बहुलता है।

## बहुश्रुतता के साक्ष्य

जयाचार्य बहुश्रुत आचार्य थे। उन्होने शास्त्रो का गभीर अध्ययन किया। विदेशी संस्कृति मे उस व्यक्ति को विशिष्ट माना जाता है, जो अपना जीवन यायावरी मे नियोजित कर देता है। भारतीय संस्कृति मे 'वेल ट्रेवेल्ड' के स्थान पर 'वेल लर्नेड' व्यक्ति को महत्त्वपूर्ण माना गया है। 'वेल लर्नेड' का ही अर्थ है बहुश्रुत। बहुश्रुत शब्द का एक अर्थ यह भी हो सकता है—जिसने बहुत सुना है, वह बहुश्रुत। व्युत्पत्ति की दृष्टि से यह अर्थ असगत नही है, किन्तु 'बहुश्रुत' शब्द की प्रवृत्ति उक्त अर्थ का बोध नही देती है। इसलिए इसका प्रचलित अर्थ ही मान्य होना चाहिए। उसके अनुसार बहुश्रुत वह होता है जो अपने और दूसरे सम्प्रदायो के शास्त्रो का पारगामी विद्वान् होता है।

जयाचार्य की बहुश्रुतता का साक्ष्य उनकी अपनी रचनाए हैं। जहा कही किसी बात को प्रमाणित करने के लिए उन्हें साक्षी रूप मे आगम पाठ उद्धृत करने की अपेक्षा हुई, एक ही प्रसंग मे दसो आगमो को प्रस्तुत कर दिया। कही-कही तो ऐसा प्रतीत होता है मानों सब आगम उनकी आखो के सामने अंकित थे।

पांचवे शतक मे अतिमुक्तक मुनि की दीक्षा का प्रसंग है। वहा वृत्तिकार ने छह वर्ष की अवस्था मे उनकी दीक्षा का उल्लेख किया है। यह तथ्य आगम सम्मत नही है। आगमो मे यत्र-तत्र सातिरेक आठ वर्ष की अवस्था को दीक्षा के लिए उचित ठहराया गया है। इस सन्दर्भ मे जयाचार्य ने व्यवहार[३], भगवती[४], उत्तराध्ययन[५] और औपपातिक[६] सूत्रो के प्रमाण देकर वृत्तिकार के मत का निरसन किया है—

---

१. पृ० १, ढा० ७४।२,३।
२. पृ० ३०२, ढा० १३०।४-६।
३-६ पृ० २८, ढा० ८१, गा० ४-७।

आठ वर्ष ऊणा भणी, दीक्षा कल्पै नाहि।
आठ वर्ष जाभे चरण, ववहार दसमा माहि ॥

असोच्चा केवली तणो, आयू जघन्य कहेस।
आठ वर्ष जाभो भगवती, नवम इकतीसमुद्देश ॥

शुक्ल लेश उत्कृष्ट स्थिति, ऊणी नव वर्षेण।
पूर्व कोड उत्तरज्भयण, चोतीसम अज्भेण ॥

आऊ आठ वरस अधिक, शिवपद पामै ताम।
सूत्र उववाई मे कह्यो, इत्यादिक वहु ठाम ॥

वृत्तिकार के अभिमत से अपनी असहमति प्रकट करते हुए उन्होने स्पष्ट शब्दो मे लिख दिया—

तिण कारण टीका मझे, अइमुत्त ना पद् वास।
आख्या तेह विरुद्ध छै, समय वचन थी तास ॥

इस गाथा से आगे की आठ गाथाओ मे उक्त तथ्य की समीक्षा करते हुए जयाचार्य ने निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि यदि छह वर्ष मे दीक्षा हो सकती तो इसी अवस्था मे केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्ति की मभावना को भी नकारा नही जा सकता। शास्त्रो मे ऐसा कोई उल्लेख मिलता नही है। इसलिए दीक्षा का कल्प आठ वर्ष से कुछ अधिक होने पर ही मान्य किया गया है।

जयाचार्य को जहा कही वृत्तिकार का अभिमत ठीक नही लगा, उन्होने विस्तार के साथ उसकी समीक्षा कर दी। समीक्षा के लिए उन्होने दो प्रकार की शैली काम मे ली—१ पद्यात्मक और गद्यात्मक। पद्य शैली मे की गई समीक्षा की भाति वार्तिका नाम से गद्यशैली की कई समीक्षाए काफी विस्तृत और गभीर हैं।

आठवें शतक मे ज्ञान और अज्ञान के प्रसग मे अज्ञान के तीन प्रकारो का उल्लेख हुआ है—मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभग-ज्ञान। विभगज्ञान का अर्थ करते हुए वृत्तिकार ने लिखा—'विरुद्धा भगा—वस्तुविकल्पा यस्मिस्तद्विभङ्ग''''अथवा विरूपो भग—अवधिभेदो विभङ्ग[1]''''।' जयाचार्य ने विभगज्ञान का अर्थ विरुद्ध विकल्पो वाला ज्ञान स्वीकृत नही किया। अपने अभिमत को विस्तार से प्रस्तुति देने के लिए उन्होने एक बहुत बडी वार्तिका[2] लिखी है। उसका निष्कर्ष यह है कि अवधिज्ञान और विभगज्ञान मे वस्तुवोध की दृष्टि से अन्तर नही है। इनमे अन्तर है पात्रता का। सम्यक् दृष्टि का जो अतीन्द्रिय ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है, वही मिथ्यात्व के योग से विभगज्ञान हो जाता है।

इसी प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ के पृ० ३१६ पर गद्यात्मक वार्तिका मे वृत्तिकार के अभिमत की विस्तृत समीक्षा की गई है। उसे पढने से ऐसा लगता है कि जयाचार्य एक तटस्थ और निर्भीक समीक्षक थे। उनकी सभी समीक्षाए ज्ञान चेतना के आवृत द्वारो को खोलने वाली हैं।

इसी क्रम मे शतक ८, ढाल १५२ मे परीषह-वर्णन का प्रसग लिया जा सकता है। उक्त ढाल की गाथा ७३ से ८८ तक जयाचार्य ने वृत्तिकार का मत उद्धृत किया है उसके वाद उन्होने उक्त मन्तव्य की यथार्थता को स्वीकारने या नकारने का दायित्व पाठको को देते हुए लिख दिया—

ए सगलो विस्तार, टीका माहे आखियो।
बुद्धिवत न्याय विचार, मिलतो हुवै ते मानियै[3] ॥

इस पद्य के वाद एक लम्वी वार्तिका लिखकर आपने पाठको को चिन्तन करने का पर्याप्त अवकाश दे दिया। ऐसे अनेक स्थल हैं, जो जयाचार्य की बहुश्रुतता और अनाग्रही वृत्ति के उदाहरण वन सकते हैं।

भगवती की जोड का सृजन करते समय जयाचार्य को मूल ग्रथ से सम्वन्धित जितनी सामग्री मिली, उसका उन्होने मुक्त मन

---

१. वृ० प० ३४४।
२. पृ० ३३८-३४०, ढा० १३४।
३ पृ० ४६४, ढा० १५२, गा० ८६।

से उपयोग किया है। उस सामग्री मे मूल सूत्र की वृत्ति तो है ही, उसके साथ मुनि धर्मसी के यन्त्र या टवो और वृहत् टवे का भी स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है—

> कह्यो धर्मसी ताहि, भवनपति विगलिंदिया।
> तिरि पंचेन्द्री मांहि, मनुष्य व्यतर ज्योतिपि[1] ॥
>
> पूर्व भवे अवन्ध, वन्धै छै गुण ग्यारमे।
> वन्धस्यैं त्रिहुं गुण सध, पंचम भंगे धर्मसी[2] ॥
>
> वृहत् टवे इम वाय, शंका त्रस उत्पत्ति तणी।
> वृत्ति पिण भाजी नाय, जिन भाखै तेहीज सत्य[3] ॥

धर्मसी का यत्र, टवा और वृहत् टवा आदि अभी तक उपलब्ध नही हो सके हैं। जयाचार्य को ये ग्रंथ कहां से मिले और उनके द्वारा काम मे लिए जाने के बाद वे अप्राप्त कैसे हो गए ? इस सम्बन्ध में अन्वेषण की अपेक्षा है।

## मननीय स्थल : समीक्षाएं

"भगवती की जोड" भगवती सूत्र का पद्यात्मक अनुवाद मात्र नही है। इसकी रचना शैली के आधार पर इसे "भगवती" का भाष्य कहा जा सकता है। जयाचार्य ने सूत्रकार, वृत्तिकार तथा सम्बन्धित प्रसगो पर अन्य आचार्यों के अभिमत का अनुवाद तो पूरी दक्षता के साथ किया ही है, उसके साथ प्रत्येक विवादास्पद विषय पर अपनी ओर से स्वतत्र समीक्षाएं लिखी हैं। समीक्षाए पद्य और गद्य दोनो शैलियो मे लिखी गई हैं। प्रत्येक समीक्षा मनन पूर्वक पठनीय है। उनके सम्बन्ध मे कुछ सूचनाए—

"श्रावक की आत्मा सामायिक मे भी अधिकरण है" आचार्य भिक्षु द्वारा मान्य इस सिद्धान्त की पुष्टि मे १११ वी ढाल मे लम्बी समीक्षा है।[4]

मिथ्यात्वी मोक्ष का देश आराधक है। उसकी करणी भी निरवद्य हो सकती है। मिथ्यात्वी के प्रत्याख्यान को दुष्प्रत्याख्यान माना गया है, यह सवर धर्म की अपेक्षा से है, निर्जरा धर्म की अपेक्षा से नही। इस सम्बन्ध मे ११५ वी ढाल मे बहुत अच्छी समीक्षा है[5]।

प्राण, भूत, जीव और सत्व को दु ख न देने से साता वेदनीय कर्म का वन्ध होता है, यह कथन आगमानुमोदित है। इसके विपरीत कुछ लोग सुख देने से साता वेदनीय कर्म का वन्ध मानते हैं। इस सन्दर्भ मे ११८ वी ढाल मे समीक्षा लिखी गई है।[6]

## न्याय का मिलान

भगवती सूत्र मे कुछ स्थल ऐसे हैं, जहा तथ्यो का सकेत मात्र है अथवा सक्षेप मे वर्णन किया गया है। वहा पाठक के सामने कठिनाई उपस्थित हो सकती है। पर जयाचार्य ने अनेक स्थानो पर यौक्तिक ढग से उन तथ्यो को विश्लेपित कर दिया है। पाचवें शतक की ९७ वी ढाल की कुछ गाथाओ से यह बात स्पष्ट हो जाती है—

मूल पाठ के आधार पर वहा जोड की एक गाथा है—

> सेलेसी मुनि मोटका, चउदसमे गुणठाणे।
> अल्पवेदनावत ते, महानिर्जरा माणे ॥

इस गाथा मे अस्पष्ट तथ्य को स्पष्ट करते हुए जयाचार्य ने लिखा है—

> चउदशमे गुणठाण, अल्पवेदना तसु कही।
> बहुलपणं करि जाण, एहवू न्याय जणाय छै ॥

---

१. पृ० १७२, ढा० १०५, गा० ४५।
२. पृ० ४४७, ढा० १५०, गा० १०१।
३. पृ० १६२, ढा० १०३, गा० ७८।
४ पृ० २०८, ढा० १११, गा० ३९-६८।
५. पृ० २२८, ढा० ११५, गा० १९-२९।
६. पृ० २५३, ढा० ११८, गा० ७४-८२।

मुनि गजसुकुमालादि, दीसै तसु बहुवेदना ।
ते कारण ए साधि, भजना इहा जणाय छै ।।

अथवा दूजो न्याय, कर्मनिर्जरा अति घणी ।
ते देखंता ताय, अल्पवेदना सभवै[1] ।।

इसी प्रकार छठे शतक मे भी शालि, व्रीही आदि धान्यों की योनि-विध्वस का सूत्रानुसारी काल निर्धारण करके चार सोरठो मे उसका न्याय मिलाया गया है[2] ।

बडा टबा मे वाय, सजीवपणु टली करी ।
अजीवपणु थाय, मिलतो अर्थ अछ तिको ।।

सूको धान अजीव, केइक करै परूपणा ।
पिण इहा आख्यो जीव, अर्थ अनूपम देखलो ।।

दशवैकालिक देख, द्वितीय उद्देश पंचमभ्रयण ।
बावीसमी उवेख, गाथा मे इहविध कह्यु ।।

चावल नो पहिछाण, आटो मिश्र उदक बली ।
शस्त्र अपरिणत जाण, ते काचा लेणां नही ।।

इसी प्रकार अनेक स्थलो मे भ्रांति उत्पन्न करने वाले प्रसगो मे जयाचार्य ने अपनी सूक्ष्मग्राही मेधा का उपयोग कर पाठको का मार्ग प्रशस्त किया है ।

## अनुवाद शैली

जयाचार्य ने भगवती मूल पाठ और उसकी वृत्ति का अनुवाद इतनी सहजता और सरलता से किया है कि संस्कृत और प्राकृत को नही समझने वाला पाठक भी अनुवाद के आधार पर मूलस्पर्शी अर्थबोध कर सकता है । कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं—

| | |
|---|---|
| हे भगवान ! श्रावक तिको, पहिलाईज पिछाण ।<br>त्रस वधवो पचख्यो तिणे, पृथ्वी ना पचखाण ।। | समणोवासगस्स णं भते ! पुव्वामेव तसपाणसमारभे<br>पच्चक्खाए भवइ, पुढवी समारंभे अपच्चक्खाए भवइ । |
| ते पृथ्वी खणते थके, कोइक त्रस हणाय[3] ।<br>तो प्रभु श्रावक व्रत तणो, अतिचार रूप भग थाय ।। | से य पुढविं खणमाणे अण्णयर तस पाणं विहिंसेज्जा,<br>से ण भते त वय अतिचरति ? |
| XXX——————————XXX | |
| नमस्कार थावो माहरो, भगवत श्री महावीर ।<br>धर्म नी आदिकरण धुरा, शासणनाथ सधीर ।। | नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स । |
| यावत मुक्ति जावा तणा, वाछक तसु अभिलाख ।<br>धर्म आचारज माहरा, धर्मोपदेशक साख[4] ।। | जाव सिद्धिगतिनामधेयं ठाणं सपाविउकामस्स मम<br>धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स, |

जयाचार्य ने मूल सूत्र का अनुवाद किया हो या भाष्य, उसे पढने से मूल ग्रन्थ को पढने की इच्छा जागृत होती है । प्राकृत, सस्कृत आदि इस युग मे अप्रचलित या कम प्रचलित भाषाओ को राजस्थानी मे इस प्रकार रूपान्तरित कर देना अपनी मातृभाषा के प्रति उनके गहरे अनुराग, अनुभवो की प्रौढता तथा सतत क्रियाशीलता का प्रतीक है ।

## सम्पादन यात्रा के सहयात्री

"भगवती की जोड" का सपादन श्रमसाध्य कार्य है । यह उन सबका अनुभव है, जो इस काम के साथ जुडे हुए हैं । जोड़ के

---

१. पृ० ११७, ढा० ६७, गा० ३२-३४ ।
२. पृ० १७४, ढा० १०६, गा० १३-१६ ।
३. पृ० २०९, ढा० १११, गा० ६९,७० ।
४. पृ० २८८, ढा० १२६, गा० ७१,७२ ।

मूलपाठ को शुद्ध करना, भगवती सूत्र के पाठ और उसकी वृत्ति के साथ उसे तुलनात्मक प्रस्तुति देना, जोड मे प्रयुक्त अन्य आगमो तथा ग्रन्थो के प्रमाण खोजना आदि अनेक पडावो को पार करने के बाद ही इस यात्रा को विराम मिलता है।

प्रस्तुत खण्ड का सम्पादन इसके प्रथम खण्ड की भांति श्रद्धास्पद आचार्यवर की अमृतमयी सन्निधि मे बैठकर किया गया है। आपकी प्रत्यक्ष उपस्थिति के बिना इसका सम्पादन कठिन ही नही, असंभव था। यात्रा, जनसम्पर्क आदि व्यस्तताओ के बावजूद आपने इस काम के लिए अपने अमूल्य समय दिया। इसी से इस ग्रन्थ की गरिमा बहुगुणित हो जाती है। सम्पादन कार्य मे साध्वी जिनप्रभाजी और कल्पलताजी का योग बराबर मिलता रहा। मुनि हीरालालजी का सहयोग तो अविस्मरणीय है। जहा कही आगम ग्रन्थो के प्रमाण खोजने होते मुनिश्री बहुत कम समय मे पूरे मनोयोग से हमारा काम सरल बना देते।

"भगवती की जोड" की हस्तलिखित प्रतियां हमारे धर्मसघ के भण्डार मे है। उसे धारण करने का काम "जैन विश्व भारती" द्वारा कराया जा चुका है। सम्पादन के इस क्रम में "जोड़" के समानान्तर मूलपाठ और वृत्ति को धारने का काम मुमुक्षु बहिनो ने किया। प्रूफ निरीक्षण मे अधिक समय और श्रम साध्वी जिनप्रभाजी का लगा। उनके साथ अन्य कई साध्वियो ने निष्ठा से काम किया। जैन विश्व भारती के मुद्रण विभाग ने भी इस दुरूह काम को पूरा करने मे ईमानदारी पूर्वक श्रम किया। मेटर कम्पोज हो जाने के बाद पाण्डुलिपि मे किए गए परिवर्तन का सशोधन काफी श्रमसाध्य होता है। पर प्रेस की ओर से कभी यह शिकायत ही नही आई कि पाण्डुलिपि मे परिवर्तन क्यो किया जाता है।

"भगवती की जोड" के सम्पादन मे मेरा नाम जोड़ा गया, यह मेरा सौभाग्य है। वास्तविकता यह है कि कोई भी अकेला व्यक्ति इस गुरुतर कार्य को संपादित नही कर सकता। श्रद्धास्पद आचार्यप्रवर का मगल आशीर्वाद, सफल मार्गदर्शन और सतत सान्निध्य, युवाचार्य श्री का दिशा-निर्देश तथा सहकर्मी साधु-साध्वियो की निष्ठा और श्रमशीलता—इन सबके समुचित योग से यह काम हो पाया है। अभी तक दो ही खण्डो का काम हुआ है। जितना काम हुआ है, करणीय उससे बहुत अधिक है। शेष कार्य को पूर्णता तक पहुचाने के लिए हमे अपनी गति को तीव्रता देनी होगी। श्रद्धास्पद गुरुदेव की अमृतमयी सन्निधि "भगवती की जोड" से जुड़े हुए प्रत्येक व्यक्ति मे नई ऊर्जा का सप्रेषण करे और हम सब मिलकर इस काम को आगे बढाए, यह अपेक्षा है। सम्पूर्ण "भगवती जोड" को एक ही शैली मे सम्पादित करने का गुरुदेव का जो सपना है, उसे आकार देने मे हम किंचित् भी निमित्त बन सकें तो हमारे जन्म की सार्थकता होगी।

१५ अगस्त, १९८६
लाडनू

**साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा**

ढाल ७४

## सोरठा

१. चतुर्थ शतके अंत, कह्यो लेस अधिकार ए।
प्राये लेस्यावत, तास निरूपण पचमे ॥

१. चतुर्थशतान्ते लेश्या उक्ता पञ्चमशते तु प्रायो लेश्यावन्तो निरूप्यन्ते।
(वृ० प० २०६)

२ चपा रवी उदस्थ, पवन जाल ग्रन्थिक बलि।
शब्द विषय छदमस्थ, आयू पुद्गल कपवो ॥

३. निर्ग्रंथ-पुत्र अणगार, किणन कहियै राजगृह।
चपा-चन्द्र विचार, दस उदेश पंचम शते ॥

२, ३. चपरविअनिलगठिय, सद्दे छउमाउ एयण नियठे।
रायगिह चपा-चदिमा य दस पचमम्मि सए ॥
(श० ५।सगहणी-गाहा)
'गठिय' त्ति जालग्रन्थिकाज्ञातज्ञापनीयार्थ-निर्णयपर.··· 'एयण' त्ति पुद्गलानामे-जनाद्यर्थप्रतिपादक ······ 'नियठे' त्ति निर्ग्रन्थी-पुत्राभिधानानगारविहितवस्तुविचारसार।
(वृ० प० २०६)

## दूहा

४ तिण काले नै तिण समय, नगरी चम्पा नाम।
पूर्णभद्र सुचैत्य वर, विहु वर्णक अभिराम ॥

४. तेण कालेण तेण समएण चपा नाम नगरी होत्था—वण्णओ। (श० ५।१)
तीसे ण चपाए नगरीए पुण्णभद्दे नाम—चेइए होत्था—वण्णओ।

५. स्वामी तिहा समवसर्या, जाव परषदा आय।
वाण सुणी श्री वीर नी, आई जिण दिशि जाय ॥

५. सामी समोसढे जाव परिसा पडिगया।
(श० ५।२)

६ तिण काले नै तिण समय, महावीर नो जान।
अतेवासी जेष्ठवर, इद्रभूर्ति अभिधान ॥

६. तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अन्तेवासी इदभूई नाम अणगारे।

७. गोत करि गोतम कह्यु, जाव वदै इम वाय।
नमस्कार वदन करी, पूछै प्रश्न सुहाय ॥
*गोयम प्रभुजी सू वीनवै ॥
वीर थकी धर कोड, पूछै बे कर जोड़।
विनय करी मान मोड, मेटी अविनय खोड ॥ (ध्रुपदं)

७. गोयमे गोत्तेणं जाव एवं वयासी—

८. सूर्य बे जम्बूदीप मे, तसु पूछा हे भदन्त!
ऊगै कूण ईशाण मे, अग्नि-कूण आथमत?

८. जबुद्दीवे ण भते! दीवे सूरिया उदीण-पाईण-मुग्गच्छ पाईण- दाहिणमागच्छति।

९. अग्नि कूण ऊगी करी, नैऋत कूण आथमत।
नैऋत कूण ऊगी करी, वायव्य अस्तज हुत ॥
(स्वाम सुणो मोरी वीनती)

९. पाईण-दाहिणमुग्गच्छ दाहिण-पडीणमागच्छति, दाहिणपडीणमुग्गच्छ पडीण-उदीणमागच्छति।

१०. वायव्य कूण ऊगी करी, आथमियै ईशाण?
जिन कहै हता गोयमा! पूछ्यो तिम जिन वाण ॥[१]

१०. पडीण-उदीणमुग्गच्छ उदीचि-पाईणमागच्छति? हता गोयमा! जबुद्दीवे ण दीवे सूरिया उदीण-पाईणमुग्गच्छ जाव उदीचि-पाईणमागच्छति।
(श० ५।३)

*लय : लछमण राम सू वीनवै·········
१. देखें प० स० १।

११ रवि ऊगै वलि आथमै, देखणहारा लोग।
तेहनी जे वाछा[1] करी, ते वच कहियै प्रयोग ॥
१२ जे मनुष्य नै अदृश्य थको, दीसै सूर्य जिवार।
ते सूर्य ऊगो कहै, जग माहे तिणवार ॥
१३ जे नर दृश्य थको रवि, अदृश्य होवे तिवार।
सूर्य आथमियो कहै, एम कह्यु वृत्तिकार ॥
१४ पिण रवि उदय अस्तपणो, अनियत तास विचार।
सचरतो रवि रहै सदा, गमन सर्व दिशि धार ॥
१५ तो पिण तेहना प्रकाश नो, प्रतिनियत थी ताय।
रात्रि दिवस नो विभाग ते, खेत्र भेद हिव कहाय ॥
१६ हे भदत ! जिण काल मे, जवूद्वीप रै माय।
मेरू नामा पर्वत थकी, दक्षिणार्द्धे दिन थाय ॥
१७. तिण काले उत्तरार्द्धे में, दिवस हुवै जगनाथ !
उत्तरार्द्धे जद दिवस ह्वै, पूरव पश्चिम रात ?

१८ जिन कहै हता गोयमा ! वृत्ति माहि इम माग।
दक्षिणार्द्ध उत्तरार्द्ध ते, दक्षिण उत्तर भाग ॥

१९. दक्षिणार्द्ध उत्तरार्द्ध ते, जो सपूर्ण अर्द्ध होय।
अर्द्ध विहु ग्रहिवै करी, सर्व खेत्र ग्रह्यु सोय ॥
२० दक्षिणार्द्ध उत्तरार्द्ध ए, सर्व विपे दिन थाय।
तो पूर्व पश्चिम विषे, रात्रि केम ह्वै ताय ?
२१. तिण कारण अर्द्ध शब्द नो, भाग अर्थ अवलोय।
आदि भाग मात्र दक्षिण नों, पिण पूर्ण अर्द्ध न कोय ॥

२२. हे भदत ! जिण काल मे, जवूद्वीप रै माय।
मेरू थी पूर्व दिन हुवै, पश्चिम पिण दिन थाय ॥

२३. पश्चिम विदेह मे दिन हुवै, जद मेरू थी ताय।
दक्षिण उत्तर निशि हुवै ? जिन कहै हता थाय ॥

२४ हे भदंत ! जिण काल मे, जंबूद्वीप मझार।
दक्षिणार्द्धे उत्कृष्ट थी, दिन ह्वै मुहूर्त्त अठार ॥
२५. उत्तरार्द्धे पिण तिण समै, उत्कृष्टो अवधार।
अष्टादश मुहूर्त्त तणो, दिवस हुवै तिणवार ॥

१. विवक्षा।

११ इह चोद्गमनमस्तमय च द्रष्टृ लोकविवक्षयाऽवसेय।
(वृ० प० २०७)

१२,१३ येपामदृश्यौ सन्तौ दृश्यौ तौ स्याताते तयोरुद्गमन व्यवहरन्ति येपा तु दृश्यौ सन्ताववदृश्यौ स्तस्ते तयोरस्तमय व्यवहरन्ति।
(वृ० प० २०७)

१४,१५. अनियतावुदयास्तमयौ, इह च सूर्यस्य सर्वतो गमनेऽपि प्रतिनियतत्वात्तत्प्रकाशस्य रात्रिदिवसविभागोऽस्तीति त क्षेत्रभेदेन दर्शयन्नाह —
(वृ० प० २०७)

१६ जया ण भते ! जबुद्दीवे द्दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे दिवसे भवइ,

१७. तया ण उत्तरड्ढेवि दिवसे भवइ जया ण उत्तरड्ढे दिवसे भवइ, तया ण जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे ण राई भवइ ?

१८ हता गोयमा ! जया ण जबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे जाव पुरत्थिम-पच्चत्थिमे ण राई भवई।
(श० ५।४)

इह च यद्यपि दक्षिणार्द्धे तथोत्तरार्द्धे इत्युक्त तथाऽपि दक्षिणभागे उत्तरभागे चेति वोद्धव्य, अर्द्धशब्दस्य भागमात्रार्थत्वात्। (वृ० प० २०८)

२०,२१ यतो यदि दक्षिणार्द्धे उत्तरार्द्धे च समग्र एव दिवस स्यात्तदा कथ पूर्वेणापरेण च रात्रि स्यादिति वक्तु युज्येत। इतश्च दक्षिणार्द्धादिशब्दैः दक्षिणादिदिग्भागमात्रमेवावसेय न त्वर्द्ध।
(वृ० प० २०८)

२२ जया णं भते ! जबूदीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण दिवसे भवइ, तया ण पच्चत्थिमे ण वि दिवसे भवइ,

२३ जया ण पच्चत्थिमे ण दिवसे भवइ, तया ण जबूदीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे ण राई भवइ ? हंता गोयमा ! जया ण जबूदीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण दिवसे जाव उत्तर दाहिणे ण राई भवइ। (श० ५।५)

२४ जया ण भते ! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ

२५ तया ण उत्तरड्ढे वि उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ ;

२६. उत्तरार्द्धे उत्कृष्ट थी, दिन हुवै मुहूर्त्त अठार।
जद मेरू थी पूर्व पश्चिम, रात्री मुहूर्त्त बार ?

२६. जया ण उत्तरड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया ण जवुद्दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे ण जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ?

२७ "जिन कहै हता गोयमा! तेहनु छै इम न्याय।
सर्वाभ्यतर मडले, उत्कृष्ट दिन कहिवाय॥
२८ दिवस अठारै मुहूर्त्त नु, दक्षिणार्द्धे कहिवाय।
उत्तरार्द्धे पिण एतलु, वे सूरज इण न्याय॥
२९. निशि बारै मुहूरत तणी, पूर्व महाविदेह माय।
पश्चिम विदेह पिण एतली, वे चदा इण न्याय॥" (ज० स०)

२७. हता गोयमा! जया ण जवुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे जाव दुवालस-मुहुत्ता राई भवइ।

(श० ५।६)

३०. दक्षिणार्द्ध उत्तरार्द्ध मे, उत्कृष्ट दिन जद होय।
तिण काले जवूद्वीप ना, भाग कीजै दस जोय॥
३१. ते दस भागा माहिला, तीन भाग इज जाण।
ताप-खेत्र इक रवि तणो, पडित लीजो पिछाण॥

३०,३१. यदाऽपि दक्षिणोत्तरयोः सर्वोत्कृष्टो दिवसो भवति तदाऽपि जम्बूद्वीपस्य दशभागत्रयप्रमाणमेव तापक्षेत्र तयो. प्रत्येक स्यात्।

(वृ० प० २०८)

३२. इम वीजा सूरज तणो, जवूद्वीप ना तेथ।
दस भाग कीजै त्या माहिला, तीन भाग ताप-खेत॥
३३ बारै-बारै-मुहूरत तणी, निशि पूरव पश्चिमेत।
ते दस भागा माहिला, बे-बे भाग निशि खेत॥

३२,३३ दशभागद्वयमान च पूर्वपश्चिमयो. प्रत्येक रात्रि-क्षेत्र स्यात्।

(वृ० प० २०८)

३४. दोय दिवस अरु रात्रि ना, साठ मुहूर्त्त इम हुत।
ते साठ मुहूर्त्ते रवि, मडल प्रति पूरत॥

३४. षष्ट्या मुहूर्त्तै किल सूर्यो मण्डल पूरयति।

(वृ० प० २०८)

३५. दस भाग कीजै साठ मुहूर्त्त ना, तीन भागरूप माग।
ए उत्कृष्टा दिवस ना, षट् मुहूर्त्त इक भाग॥
३६. रात्रि बारै मुहूर्त्त नी तदा, दोय भाग रूप देख।
दस भाग कीजै साठ मुहूर्त्त ना, ते माहिला सुविशेख॥

३५,३६. उत्कृष्टदिन चाष्टादशभिर्मुहूर्त्तैरुक्त, अष्टादश च षष्टेर्दशभागत्रितयरूपा भवन्ति, तथा यदाऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा रात्रिर्द्वादशमुहूर्त्ता भवति, द्वादश च षष्टेर्दशभागद्वयरूपा भवन्तीति। (वृ० प० २०८)

३७ तथा लघु दिन नै विषे, दोय भाग ताप खेत।
तीन भाग रात्रि-खेत्र छै, इक रवि आश्री एथ॥

३७ सर्वलघौ च दिवसे तापक्षेत्रमनन्तरोक्तरात्रिक्षेत्र-तुल्य रात्रिक्षेत्र त्वनन्तरोक्ततापक्षेत्रतुल्यमिति।

(वृ० प० २०९)

३८ एहनो बहु विस्तार छै, जवूद्वीपपन्नती माय।
पिण प्रस्ताव थकी इहा, सक्षेपे कह्यु ताय[1]॥

३८ (जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्खार ७ सम्पूर्ण)

३९. हे भदत! जिण काल मे, जवूद्वीप मझार।
मेरू थी पूर्व पश्चिमे, दिन हुवै मुहूर्त्त अठार॥

३९. जया ण भते! जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया ण पच्चत्थिमे वि उक्कोसेण अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ।

४० तिण काले जवूद्वीप मे, उत्तर दक्षिण माय।
जघन्य निशा बारै मुहूर्त्त नी ? जिन कहै हता थाय॥
४१ मास आषाढ ह्वै भरत मे, महाविदेह पिण तेह।
मास आषाढ सुजाणवू, कह्यु धर्मसी एह॥

४०. जया ण पच्चत्थिमे ण उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया ण जवुद्दीवे दीवे उत्तरदाहिणे ण जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ? हता गोयमा! जाव भवइ। (श० ५।७)

१ देखें प० स० २

४२ कर्क सक्रांति प्रथम दिने, सर्वाभ्यितर भाण।
'युग मे कोइक'[1] आसाढ नी, पूनम तेह पिछाण॥

४३ हे भदत ! जिण काल मे, जबूद्वीप मझार।
मेरु थी दक्षिण दिन हुवै, ऊणो मुहूर्त्त अठार॥

४४ उत्तर दिशि पिण एतलु होवै दिवस तिवार।
पूरव पश्चिम निशि हुवै, जाझी मुहूर्त्त वार?

४३ जया ण भते ! जबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे अट्ठारस-मुहुत्ताणतरे दिवसे भवइ।

४४ तया ण उत्तरड्ढे वि अट्ठारसमुहुत्ताणतरे दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणतरे दिवसे भवइ, तया ण जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे ण साइरेगा दुवालसमुहुत्ता राई भवइ?

४५ जिन कहै हता गोयमा ! एहनु न्याय पिछाण।
सर्वाभ्यन्तर मडल थकी, दूजे मडल भाण॥

४६ कर्क सक्राति दूजे दिने, दूजे मडल भाण।
युग मे कोइक श्रावण तणी, विद एकम ए जाण॥

४७. भाग इकसठ एक मुहूर्त्त ना, दिवस घटै वे-वे भाग।
वे-वे भाग वधै निशा, इक-इक मडल माग॥

४५. हता गोयमा ! जया ण जबुद्दीवे जाव राई भवइ।
(श० ५।८)

४७ यदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलानन्तरे मण्डले वर्तते सूर्य-स्तदा मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयहीनाष्टादश मुहूर्त्तो दिवसो भवति . . राइ त्ति द्वाभ्या मुहूर्त्तैकषष्टि-भागाभ्यामधिका द्वादशमुहूर्त्ता राई भवइ।
(वृ० प० २०९)

४८. हे भदंत ! जिण काल में, मेरू थी पूरव मांय।
अठार मुहूर्त्त ऊणो दिन हुवै, इतलो पश्चिम थाय॥

४८ जया ण भते ! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण अट्ठारसमुहुत्ताणतरे दिवसे भवइ, तया ण पच्चत्थिमे वि अट्ठारसमुहुत्ताणतरे दिवसे भवइ,

४९ अठार मुहूर्त्त ऊणो पश्चिमे, दक्षिण उत्तर ताम।
वार मुहूर्त्त जाझी निशा ? जिन कहै हता आम॥

४९. जया ण पच्चत्थिमे अट्ठारसमुहुत्ताणतरे दिवसे भवइ, तदा ण जबूदीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे ण साइरेगा दुवालसमुहुत्ता राई भवइ? हता गोयमा ! जाव भवइ। (श० ५।९)

५० इम अनुक्रम करि आखवू, सतरै मुहूर्त्त दिन्न।
तेरै मुहूर्त्त रात्रि छै, इकतीसम मडल जन्न॥

५१. वीजा मडल थी जदा, इकतीसम अर्द्धेह।
सतरै मुहूर्त्त दिन ह्वै तदा, तेर मुहूर्त्त निशि जेह॥

५० एव एएण कमेण ओसारेयव्व—सत्तरसमुहुत्ते दिवसे तेरसमुहुत्ता राई,

५१ तत्र सर्वाभ्यन्तरमण्डलानन्तरमण्डलादारभ्यैकत्रिंश-त्तममण्डलार्द्धे यदा सूर्यस्तदा सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, पूर्वोक्तहानिक्रमेण त्रयोदशमुहूर्त्ता च रात्रि-रिति। (वृ० प० २०९)

५२. "सर्वाभ्यंतर मंडले, दिन ह्वै मुहूर्त्त अठार।
द्वादश मुहूर्त्त ह्वै निशा, हिव आगल सुविचार॥

५३. भाग इकसठ इक मुहूर्त्त ना, वीजै मडलै जाण।
दिन अष्टादश मुहूर्त्त मे, दोय भाग दिन हाण॥

५४. इकतीसम मडलार्द्ध मे, सतरै मुहूर्त्त दिन जाण।
तेर मुहूर्त्त निशा ह्वै तदा, वे-वे भाग नी हाण॥

---

१. किमी युग मे।

५५. वीजा मंडल नै विषे, दोय भाग [दिन] हाण।
च्यार भाग तीजे मडले, इम प्रति मडल जाण॥" (ज० स०)

५६. सतरै मुहूर्त्त थी अनतरे, दिवस हुवै छै जेह।
तेर मुहूर्त्त जाझी निशा, वतीसमे अद्धेह॥

५७ सोल मुहूर्त्त दिन ह्वै जदा, चवद मुहूर्त्त निशि होय।
इकसठमा मडल विषे, वीजा मडल थी जोय॥

५८ वे भाग ऊणो सोल मुहूर्त्त नो, दिवस हुवै छै जेह।
चौदह मुहूर्त्त जाझी निशा, वासठमे मडलेह॥

५९ पनर मुहूर्त्त दिन हुवै जदा, पनर मुहूर्त्त तव रात।
वाणूमा मडलार्द्ध मे, दूजा मडल थी थात॥

६० ऊणो पनर मुहूर्त्त दिन हुवै, पनर मुहूर्त्त जाझी तेह।
रात्रि हुवै तिण अवसरे, साढा वाणूमे मडलेह॥

६१. चवद मुहूर्त्त दिन हुवै जदा, सोल मुहूर्त्त निशि न्हाल।
इक सो वावीस मडले, वीजा मडल थी भाल॥

६२ चवदै मुहूर्त्त ऊणो दिन हुवै, सोलै मुहूर्त्त जाझी रात।
इक सौ तेवीसमे मडले, दूजा मडल थी ख्यात॥

६३ तेर मुहूर्त्त नो दिन जदा, सतरै मुहूर्त्त निशि मान।
इक सौ साढा वावन मे, दूजा मडल थी जान॥

६४ तेरै मुहूर्त्त ऊणो दिन जदा, सतरै मुहूर्त्त जाझी रात।
इकसौ साढातेपनमे मडले, दूजा मडल थी थात॥

६५ वारै मुहूर्त्त नो दिन जदा, निशि हुवै मुहूर्त्त अठार।
इकसौ तयासीमे मडले, वीजा मडल थी धार॥

६६. दूजा मडल थी सहु, कहिवु एह विचार।
सख्या ए मडल तणी, वृत्ति तणै अनुसार॥

६७ जवू दक्षिणार्द्ध विषे जदा, जघन्य वारै मुहूर्त्त दिन्न।
तिण काले उत्तरार्द्ध मे, वार मुहूर्त्त रवि जन्न॥

६८ उत्तरार्द्ध दिन वारै मुहूर्त्त ह्वै, मेरू थकी तिवार।
पूर्व पश्चिम उत्कृष्ट थी, निशि ह्वै मुहूर्त्त अठार?

६९. जिन कहै हता गोयमा! निश्चै करिनै एह।
उच्चारवू छै जाव ही, निशि उत्कृष्ट ह्वै तेह॥

७०. हे भदत! जिण काल मे, जवू पूरव माय।
जघन्य दिवस वारै मुहूर्त्त ह्वै, तव पश्चिम जघन्य थाय॥

५६. सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगा तेरसमुहुत्ता राई।
अय च द्वितीयादारभ्य द्वात्रिंशत्तममण्डलार्द्धे भवति। (वृ० प० २०९)

५७. सोलसमुहुत्ते दिवसे चोद्दसमुहुत्ता राई।
द्वितीयादारभ्यैकषष्टितममण्डले। (वृ० प० २०९)

५८. सोलसमुहुत्ताणतरे दिवसे, साइरेगा चउद्दसमुहुत्ता राई।

५९. पण्णरसमुहुत्ते दिवसे पण्णरसमुहुत्ता राई।
द्विनवतितम-मण्डलार्द्धे वर्त्तमाने सूर्ये। (वृ० प० २०९)

६० पण्णरसमुहुत्ताणतरे दिवमे, साइरेगा पण्णरस-मुहुत्ता राई।

६१. चोद्दसमुहुत्ते दिवसे, सोलसमुहुत्ता राई।
द्वाविंशत्युत्तरशततमे मण्डले। (वृ० प० २०९)

६२. चोद्दसमुहुत्ताणतरे दिवसे, साइरेगा सोलसमुहुत्ता राई।

६३ तेरसमुहुत्ते दिवसे, सत्तरसमुहुत्ता राई।
सार्द्धद्विपञ्चाशदुत्तरशततमे मण्डले। (वृ० प० २०९)

६४. तेरसमुहुत्ताणतरे दिवसे, साइरेगा सत्तरसमुहुत्ता राई। (श० ५।१०)

६५ 'वारसमुहुत्ते दिवसे' त्ति त्र्यशीत्यधिकशततमे मण्डले सर्ववाह्य इत्यर्थः। (वृ० प० २०९)

६७ जया ण जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया ण उत्त-रड्ढे वि,

६८ जया ण उत्तरड्ढे, तया ण जवुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे ण उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ?

६९ हता गोयमा! एव चेव उच्चारेयव्व जाव राई भवइ। (श० ५।११)

७०. जया ण भते! जंबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया ण पच्चत्थिमे ण वि;

७१. जद पश्चिम जघन्य दिवस हुवै, दक्षिण उत्तर देख।
निशि उत्कृष्ट अठार नी? जिन कहै हंता पेख।।

७१. जया ण पच्चत्थिमे, तया ण जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे· णं उक्कोसिया अट्ठारस-मुहुत्ता राई भवइ? हता गोयमा! जाव राई भवइ। (श० ५।१२)

७२ हे भदत! जिण काल मे, जबूद्वीप रै माय।
दक्षिणार्द्धे चउमास नु, प्रथम समय पडिवज्जाय।।
७३. उत्तरार्द्धे वर्षा काल नु, प्रथम समय पडिवज्जत।
प्रथम समय वर्षा काल नु, उत्तरार्द्धे जद हुत।।
७४. तव जबू मदर थकी, पूरव पश्चिम माय।
प्रथम समय वर्षा काल नु, समय आगमिय थाय?

७२ जया ण भते! जबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वासाण पढमे समए पडिवज्जइ,

७३,७४. तया ण उत्तरड्ढे वि वासाण पढमे समए पडि-वज्जइ, जया ण उत्तरड्ढे वासाण पढमे समए पडि-वज्जइ, तया ण जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे ण अणतरपुरक्खडे समयसि वासाण पढमे समए पडिवज्जइ?

७५. जिन कहै हता गोयमा! धुर समय वर्षा नु ताय।
दक्षिण उत्तर थी पछै, पडिवज्जै विदेह माय।।

७५. हता गोयमा! जया ण जबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वासाण पढमे समए पडिवज्जइ, तह चेव जाव पडिवज्जइ; (श० ५।१३)

७६. हे भदत! जिण काल मे, जबूद्वीप रै मांय।
मेरू थी पूरव दिशे, धुर समय वर्षा नु थाय।।
७७. पश्चिम तव वर्षा काल नु, प्रथम समय पडिवज्जत।
वर्षात नु धुर समय जे, पश्चिम दिशि जद हुत।।
७८. तव जबू मदर थकी, उत्तर दक्षिण माय।
प्रथम समय वर्षा काल नु, समय अतीत कहाय?

७६. जया ण भंते! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण वासाण पढमे समए पडिवज्जइ,

७७,७८. तया ण पच्चत्थिमे ण वि वासाण पढमे समए पडिवज्जइ, जया ण पच्चत्थिमे ण वासाण पढमे समए पडिवज्जइ, तया ण जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे ण अणतरपच्छाकडसमयमि वासाण पढमे समए पडिवन्ने भवइ?

७९. जिन कहे हता गोयमा! धुर समय वर्षा नु थाय।
विदेह थकी पहिला पडिवज्जै, दक्षिण उत्तर माय।।

७९ हता गोयमा! जया ण जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण एव चेव उच्चारेयव्व जाव पडिवन्ने भवइ। (श० ५।१४)

८०. प्रथम समय वर्षा काल नु, जिम भाख्यो छै तेम।
भणिवू आवलिका भणी, सास उस्सास पिण एम।।
८१. सात उस्सास नि.स्वास नु, थोव एक इम पेख।
सप्त थोवे इक लव कह्यु, सितंतर लव मुहूर्त्त एक।।

८०. एव जहा समएण अभिलावो भणिओ वासाण तहा आवलियाएवि भाणियव्वो। आणापाणूणवि,

८१ थोवेणवि, लवेणवि, मुहुत्तेणवि,
स्तोक.,सप्तप्राणप्रमाण लवस्तु—सप्तस्तोकरूपः मुहूर्त्तः पुनर्लवसप्तसप्ततिप्रमाणः। (वृ० प० २११)

८२. मुहूर्त्त तीस तणु कह्यु, अहोरात्रि इक मान।
पनरे दिवस रात्रि तणु, पक्ष एक इम जान।।
८३ इमज वे पक्षे मास छै, वे मासे ऋतु एम।
ए सहु नो कहिवू सही, समय आलावो जेम।।

८२ अहोरत्तेणवि,पक्खेणवि,

८३. मासेणवि, उऊणवि। एएसिं सव्वेसिं जहा समयस्स अभिलावो तहा भाणियव्वो। (श० ५।१५)
ऋतुस्तु मासद्वयमानः। (वृ० प० २११)

८४. हे भदंत! जिण काल मे, जबू दक्षिण माय।
हेमत ते सीयाला तणु, प्रथम समय पडिवज्जाय।।
८५. जिम कह्यु चउमासा तणु, सीयाला नु तेम।
ग्रीष्म ना ए पिण दसू, भणिवा समया जेम।।

८४. जया ण भते! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे हेमताण पढमे समए पडिवज्जइ,

८५. जहेव वासाणं अभिलावो तहेव हेमताण वि, गिम्हाण वि भाणियव्वो।

८६. जाव ऋतु लग जाणवा, तीनू काल ना एह।
भणवा तीस आलावगा, इक इक ना दस जेह ॥
८७ दक्षिण नै उत्तर विषे, दिन हुवै मुहूर्त्त अठार।
तीन मुहूर्त्त दिन पाछिलै, विदेह प्रकाश तिवार ॥
८८. ते वेला थी विदेह मे, कहियै दिवस जिवार।
मुहूर्त्त तीन पछै इहा, कहियै रात्रि तिवार ॥
८९ ते रात्रि बारै मुहूर्त्त नो, पछला मुहूर्त्त तीन।
एव पनरै मुहूर्त्त थया, महाविदेह मे लीन ॥
९० शेष तीन मुहूर्त्त जोइये, तेहनो निसुणो न्याय।
तीन मुहूर्त्त पछै दक्षिण उत्तरे, दिन ऊगै छै ताय ॥
९१ धुरला तीन मुहूर्त्त लगै, महाविदेह रै माय।
दिवस प्रकाश रहै अछै, विमल विचारो न्याय ॥
९२ पनरै नै त्रिण मुहूर्त्त नो, अष्टादश इम लीह।
उत्कृष्टो दिन विदेह मे, एम कह्यु धर्मसीह ॥
९३. महाविदेह खेत्र थकी, भरत एरवत माय।
पनरै मुहूर्त्त पहिला तदा, वर्ष लागतो जणाय ॥
९४ समय नाम इहा आखियो, तेहनो छै इम न्याय।
कितलाइक मुहूर्त्त पहर नै, समय कहीजै ताय ॥
९५. इम दक्षिण उत्तर विषे, पूरव पश्चिम तास।
घट वृद्धि दिन निशि मुहूर्त्त नी, जथाजोग सहु मास ॥
९६. सर्वाभ्यतर मडल थकी, बाह्य मडल रवि जाय।
दिन घटतो जावै तदा, रात्रि वृद्धि ह्वै ताय ॥
९७. बाहिरला मडल थकी, रवि अभ्यतर आय।
मडल मडल दिन वृद्धि, रात्रि घटती जाय ॥
९८ सर्वाभ्यतर मडले, पूनम आसाढो पेख।
सर्व बाह्य पोसी पूनमे, नय ववहारे देख ॥
९९ पच वर्ष ना युग मध्ये, पोस आषाढ को एक।
तेहनी पूनम रै दिनै, जघन्य उत्कृष्ट दिन देख ॥
१००. कर्क सक्राति प्रथम दिने, सर्वाभ्यतर भाण।
अष्टादश मुहूर्त्त तणो, दिवस तदा पहिछाण ॥
१०१. मकर सक्राति प्रथम दिने, सर्व बाह्य मडल भाण।
द्वादश मुहूर्त्त तणो हुवै, दिवस तदा पहिछाण ॥
१०२. देश अक एकावन तणु, च्यार सितरमी ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' मगलमाल ॥

८६ जाव उऊए। एवं तिण्णि वि। एएसिं तीसं आलावगा भाणियव्वा'। (श० ५।१६)

## ढाल : ७५

### दूहा

१. हे भदत ! जिण काल में, जंबूद्वीप रै माय ।
मेरू थी दक्षिण दिशे, प्रथम अयन पडिवज्जाय ।।

१. जया ण भते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे पढमे अयणे पडिवज्जइ ।

२. प्रथम विभागज अयन नो, सवत श्रावण आदि ।
ए श्रावण युग नो कोइक, दक्षिणायन कर्कादि ।।

२. दक्षिणायनं श्रावणादित्वात्सवत्सरस्य । (वृ० प० २११)

३. मकरादि उत्तरायण, तेह तणी पेक्षाय ।
पहिला दक्षिण अयन छै, धुर विभाग तसु ताय ।।

४. दक्षिण दिशि दक्षिणायन ह्वै, तव उत्तरार्द्धे ताम ।
प्रथम अयन ते पडिवज्जे, ए पूछा अभिराम ।।

४. तया ण उत्तरड्ढे वि पढमे अयणे पडिवज्जइ,

५. जेम समय तिम अयन पिण, जाव दक्षिण उत्तरेह ।
दक्षिणायन पहिला हुवै, विदेहखेत्र थी लेह ।।

५. जहा समएण अभिलावो तहेव अयणेण वि भाणियव्वो जाव अणतरपच्छाकडसमयंसि पढमे अयणे पडिवन्ने भवइ । (श० ५।१७)

६. जेम अयन तिम वरप पिण, पंच वर्ष युग एक ।
दक्षिण उत्तर साथ ह्वै, प्रथम विदेह थी पेख ।।

६ जहा अयणेण अभिलावो तहा सवच्छरेण वि भाणियव्वो । जुएण वि,
युगं पंचसवत्सरमान (वृ० प० २११)

७. इम सौ वर्ष सघात पिण, सहस्र वर्ष पिण एम ।
लाख वर्ष कहिवू इमज, पूर्वे भाख्यू तेम ।।

७. वाससएण वि, वाससहस्सेण वि, वाससयसहस्सेण वि,

*वीर कहै सुण गोयमा (ध्रुपदं)

८. चउरासी लाख वर्ष वलि, ए पूरव नो अगो रे ।
तेहनै चउरासी लाख गुणा कियां, पूरव एक सुचगो रे ।।

८. पुव्वगेण वि, पुव्वेण वि,
पूर्वाङ्गं चतुरशीतिर्वर्षलक्षाणां पूर्वं पूर्वाङ्गमेव चतुरशीतिवर्षलक्षेण गुणितं । (वृ० प० २११)

९. वर्ष सित्तर लक्ष कोड छै, ऊपर छपन सहस्र कोड़ो ।
पूरव एक कह्यो तसु, चिहु अक विंदु दस जोड़ो ।।

१०. पूर्वे पूर्व कह्यो तसुं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणीजै ।
एक तुटित नों अग ए, पट अक पनरै विंदु लीजै ।।

१०. तुडियगेण वि,

११. एह तुटित ना अग नै, वर्ष चोरासी लक्ष गुणीजै ।
तुटित कहीजै तेहनैं, अक आठ विंदु वीस लीजै ।

११. तुडिएण वि—

१२. पूर्वे तुटित कह्यो तसु, वर्ष चोरासी लक्ष गुणीजै ।
एक अडड नों अग ते, अंक दस विंदु पणवीस लीजै ।।

१२. अडडगे,

१३. एक अडड ना अग नै, वर्ष चोरासी लक्ष गुणीजै ।
अडड कहीजै तेहनै, अंक वारै विंदु तीस लीजै ।।

१३. अडडे,

१४. पूर्वे अडड कह्यो तसु, वर्ष चोरासी लक्ष गुणीजै ।
एक अवव नों अंग छै, अंक चवदै विंदु पैंती लीजै ।।

१४. अववगे,

*लयः सल कोइ मत राखज्यो ·····

१५. एह अवव ना अंग नैं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणीजै ।
एक अवव कहियै तसु, अंक सौलै विंदु चाली लीजै ॥

१५. अववे,

१६. पूर्वे अवव कह्यो तसुं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक हूहूक नों अग छै, अक अठारै पैताली विंदु ॥

१६. हूहूयगे,

१७. एह हूहूक ना अग नै, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक हूहूक कहियै तसु, अक वीस पचास है विंदु ॥

१७ हूहूए,

१८. पूर्वे हूहूक कह्यो तसु, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक उत्पल नों अग छै, अक बावीस पचपन विंदु ॥

१८. उप्पलगे,

१९. एह उत्पल ना अग नै, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक उत्पल कहियै तसु, अक चोवीस साठ है विंदु ॥

१९. उप्पले,

२०. पूर्वे उत्पल कह्यो तसु, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक पद्म नो अग छै, अक छवीस पैसठ विंदु ॥

२०. पउमगे,

२१. एह पद्म ना अग नै, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक पद्म कहियै तसु, अक सतावीस सित्तर विंदु ॥

२१. पउमे,

२२. पूर्वे पद्म कह्यो तसु, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक नलिन नों अग छै, अक गुणतीस पचतर विंदु ॥

२२ नलिणगे,

२३. एह नलिन ना अग नै, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक नलिन कहियै तसु, अक इकतीस अस्सी विंदु ॥

२३. नलिणे,

२४. पूर्वे नलिन कह्यो तसु, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
इक अर्थ निपुर नो अग छै, अक तेतीस पच्यासी विंदु ॥

२४. अत्थणिउरगे,

२५. ए अर्थ निपुर ना अग नै, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
इक अर्थ निपुर कहियै तसु अक पैंतीस नेउ विंदु ॥

२५. अत्थणिउरे,

२६. अर्थ निपुर कह्यो तसु, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक अयुत नो अग छै, अक सैंतीस पचाणू विंदु ॥

२६. अउयगे,

२७. एह अयुत ना अग नै, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक अयुत कहियै तसु, अक गुणचालीस सौ विंदु ॥

२७. अउए,

२८. पूर्वे अयुत कह्यो तसु, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक नयुत नों अग छै, अक इकताली इकसौ पंच विंदु ॥

२८. णउयगे,

२९. एह नयुत ना अग नै, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक नयुत कहियै तसु, अक तयाली इकसौ दस विंदु ॥

२९. णउए,

३०. पूर्वे नयुत कह्यो तसु, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक प्रयुत नों अग छै, अक पैंताली इकसौ पनर विंदु ॥

३०. पउयगे,

३१. एह प्रयुत ना अग नै, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक प्रयुत कहियै तसु, अक सैंताली इकसौ वीस विंदु ॥

३१. पउए,

३२. पूर्वे प्रयुत कह्यो तसु, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक चूलिका नो अग छै, अक गणपचा सवासौ विंदु ॥

३२ चूलियगे,

३३. एह चूलिका ना अग नै, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
एक चूलिका कहियै तसु, अक एकावन इकसौ तीस विंदु ॥

३३ चूलिया,

३४. एह चूलिका तेहनें, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
सीसपहेलिका नु अंग छै, अक बावन इकसौ पेंती विंदु ॥
३५. ए सीसपहेलिका ना अंग नें, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
सीसपहेलिका कहियै तसु, अंक चोपन इकसौ चाली विंदू ॥
३६. अक बीच बिंदु जेह छै, ते तो अका माहै गुणिया ।
विंदु सर्व अक ऊपरै, छेहडे विंदु मे थुणिया ॥
३७. इमज पल्योपम पिण हुवै, सागरोपम पिण एमो ।
दस कोडाकोड जे पल्य तणु, सागर कहियै तेमो ॥
३८. हे भदत ! जिण काल मे, जवू दक्षिण दिशि माह्यो ।
पहिला अवसर्पिणी पडिवज्जे, उत्तर पिण जद थायो ॥

३९. सर्व भाव घटता जाय तेहनें, अवसर्पिणी कहिवायो ।
तेहनोज पहिलो विभाग छै, ते प्रथमा अवसर्पिणी तायो ॥
४०. उत्तर दिशि माहे जदा, प्रथमा अवसर्पिणी थायो ।
पूर्व पश्चिम मे तदा, अवसर्प उत्सर्पिणी नायो ॥

४१. अवस्थित ते सदा सारिखो, काल तिहा कहिवायो ।
हे आउखावत! श्रमण! प्रभु! इम पूछ्ये कहै जिन वायो ॥
४२. जिन कहै हता गोयमा ! तिमहिज पाठ उचरिवू ।
जाव श्रमण आयुष्मन् लगै, कहिवू शक न धरिवू ॥
४३. जिह विध एह कह्यो अछै, अवसर्पिणी नो आलावो ।
तिमहिज उत्सर्पिणी तणो, तिण मे वधता जावै भावो ॥
४४. हे प्रभु ! लवण समुद्र मे, ऊगै रवि ईशाणो ।
अग्निकूण में आथमै, पूरववत् पहिछाणो ॥
४५. कही जवू नी वक्तव्यता जिका, तिका लवणसमुद्र नी भणवी ।
णवरं एणे आलावे करी, सर्व आलावे थुणवी ॥

४६. हे प्रभू ! लवणसमुद्र मे, जद दक्षिण दिशि दिन होयो ।
तिम जाव तदा लवणोदधि, निशि पूर्व पश्चिम जोयो ॥

४७. इम एणे आलावे करी, सर्व आलावा कहिवा ।
अवसर्पिणी उत्सर्पिणी, छेहलू तसु इम लहिवा ॥
४८. प्रभु! लवणसमुद्र विपे जदा, अवसर्पिणी नु प्रथम विभागो ।
दक्षिण भाग विपे हुवै, तदा उत्तर भागे पिण लागो ॥

४९. उत्तर भाग विपे जदा अवसर्पिणी नु प्रथम विभागो ।
पूर्व पश्चिम लवण तदा नही, अव-उत्सर्पिणी मागो ॥

३४. सीसपहेलियगे,

३५ सीसपहेलिया—

३७ पलिओवमेण, सागरोवमेण वि भाणियव्वो ।
(श० ५।१८)

३८ जया ण भते ! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ, तया ण उत्तरड्ढे वि पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ,

३९ अवसर्प्पयति भावानित्येवशीला अवसर्प्पिणी तस्याः प्रथमो विभाग प्रथमावसर्प्पिणी । (वृ० प० २११)

४० जया ण उत्तरड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ तया णं जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे ण नेवत्थि ओसप्पिणी, नेवत्थि उस्सप्पिणी,

४१. अवट्ठिए ण तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो ?

४२ हंता गोयमा ! त चेव उच्चारेयव्व जाव समणाउसो । (श० ५।१९)

४३ जहा ओसप्पिणीए आलावओ भणिओ एव उस्सप्पिणीए वि भाणियव्वो । (श० ५।२०)

४४. लवणे ण भते ! समुद्दे सूरिया उदीण-पाईणमुग्गच्छ पाईण-दाहिणमागच्छंति ।

४५ जच्चेव जबुद्दीवस्स वत्तव्वया भणिया सच्चेव सव्वा अपरिसेसिया लवणसमुद्दस्स वि भाणियव्वा, नवर—अभिलावो इमो जाणियव्वो । (श० ५।२१)

४६ जया ण भते ! लवणसमुद्दे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ, त चेव जाव तदा ण लवणसमुद्दे पुरत्थिम-पच्चत्थिमे ण राई भवति । (श० ५।२२)

४७. एएण अभिलावेण नेयव्व जाव

४८ जया ण भते ! लवणसमुद्दे दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ, तया ण उत्तरड्ढे वि पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ,

४९. जया ण उत्तरड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जिइ, तया ण लवणसमुद्दे पुरत्थिम-पच्चत्थिमे ण नेवत्थि ओसप्पिणी, नेवत्थि उस्सप्पिणी अवट्ठिए ण तत्थ काले पण्णत्ते

५०. श्रमण ! आयुष्मन् ! हे प्रभु ! इम पूछै चित शंतो ।
जिन कहै हता गोयमा ! जाव श्रमण ! आउष्मतो ।

५१. धातकीखड द्वीपे प्रभु ! ऊगै रवि ईशाणो ।
अग्निकूण मे आथमै, पूरववत् पहिछाणो ॥

५२. कही जबू नी वारता, तिका धातकीखड नी भणवी ।
णवर एणे आलावे करी, सर्व आलावे थुणवी ॥

५३. प्रभु ! धातकीखड द्वीपे जदा, दक्षिणार्द्धे दिन होयो ।
तब उत्तर भाग विषे तदा, दिवस हुवै छै सोयो ॥

५४. उत्तरार्द्धे दिन हुवै तदा, बे मेरू थी धातकीखडे ।
पूर्व पश्चिम निशि हुवै ? हंता जिन वच मडे ॥

५५. धातकीखड द्वीपे प्रभु ! बेहु मेरू थी पहिछाणी ।
पूर्व दिशि दिन हुवै जदा, तब पश्चिम पिण दिन जाणी ॥

५६. पश्चिम दिवस हुवै जदा, बे मेरू थी धातकीखडे ।
उत्तर दक्षिण निशि हुवै ? हता जिन वच मडे ॥

५७. इम एणे आलावे करी, सर्व आलावा कहिवा ।
अवसर्पिणी उत्सर्पिणी, छेहलू तसु इम लहिवा ॥

५८. जाव जदा प्रभु ! धातकी, तेहने दक्षिण भागे ।
हुवै प्रथम भाग अवसर्पिणी, तब उत्तर भागे पिण लागे ॥

५९. उत्तर भाग विषे जदा अवसर्पिणी नु प्रथम विभागो ।
पूर्व पश्चिम धातकी नही, अव-उत्सर्पिणी नु मागो ॥

६०. जाव श्रमण ! आउखावत ! ए, इम पूछै चित शतो ।
जिन कहै हता गोयमा ! जाव श्रमण ! आउखावतो !

६१. जिम लवणसमुद्र नी वार्त्ता, तिम कालोदधि पिण भणवी ।
णवर कालोदधि नाम ले, विध सर्व आलावे थुणवी ॥

६२. अभ्यतर पुक्खरार्द्ध विषे, प्रभु ! ऊगै रवि ईशाणो ।
जिम धातकीखड नी वारता, तिम अभ्यतर पुस्कराद्ध नी जाणो ॥

६३. णवर एतो विशेष छै, अभ्यतर पुक्खरार्द्ध नु ताह्यो ।
नाम लेइ भणवु अछै, एह आलावे माह्यो ॥

६४. जाव तदा अभ्यंतरे, पुस्करार्द्ध विषे कहाई ।
मेरू थी पूर्व पश्चिमे, अव-उत्सर्पिणी नाही ॥

६५. सदा काल एक सारिखो, हे श्रमण ! आउखावतो !
गोतम स्वाम तदा कहै, सेव भते ! सेव भतो !

६६. पचम शतक उदेश पहिलो कह्यो, पीचतरमी ढालो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' हरष विशालो ॥

**पंचमशते प्रथमोद्देशकार्थः ॥५/१॥**

५०. समणाउस्सो ? हता गोयमा ! जाव समणाउसो ॥ (श० ५।२३)

५१. धायइसडे ण भते ! दीवे सूरिया उदीण-पाईणमुग्गच्छ पाईण-दाहिणमागच्छति,

५२. जहेव जबुद्दीवस्स वत्तव्वया भणिया सच्चेव धायइसडस्स वि भाणियव्वा नवर—इमेण अभिलावेण सव्वे आलावगा भाणियव्वा । (श० ५/२४)

५३ जया ण भते ! धायइसडे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ तदा ण उत्तरड्ढे वि,

५४ जया ण उत्तरड्ढे, तया ण धायइसडे दीवे मदराण पव्वयाण पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं राई भवइ ? हंता गोयमा ! एवं चेव जाव राई भवइ । (श० ५/२५)

५५. जया ण भते ! धायइसडे दीवे मदराणं पव्वयाण पुरत्थिमे ण दिवसे भवइ, तया ण पच्चत्थिमे ण वि;

५६ जया ण पच्चत्थिमे ण दिवसे भवइ, तया ण धायइसडे दीवे मदराण पव्वयाण उत्तर-दाहिणे ण राई भवइ ? हता गोयमा ! जाव भवइ । (श० ५/२६)

५७ एव एएण अभिलावेण नेयव्व जाव

५८ जया ण भते ! दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी तया ण उत्तरड्ढे वि,

५९ जया ण उत्तरड्ढे, तया ण धायइसडे दीवे मदराण पव्वयाण पुरत्थिम-पच्चत्थिमे ण नत्थि ओसप्पिणी

६० जाव समणाउसो ?
हता गोयमा ! जाव समणाउसो । (श० ५/२७)

६१ जहा लवणसमुद्दस्स वत्तव्वया तहा कालोदस्स वि भाणियव्वा, नवर—कालोदस्स नाम भाणियव्व । (श० ५/२८)

६२ अब्भितरपुक्खरद्धे ण भते ! सूरिया उदीण-पाईण-मुग्गच्छ पाईण-दाहिणमागच्छति, जहेव धायइसडस्स वत्तव्वया तहेव अब्भितरपुक्खरद्धस्स वि भाणियव्वा,

६३ नवर—अभिलावो जाणियव्वो

६४ जाव तया ण अब्भितरपुक्खरद्धे मदराण पुरत्थिम-पच्चत्थिमे ण नेवत्थि ओसप्पिणी, नेवत्थि उस्सप्पिणी,

६५ अवट्ठिए ण तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो ।
सेवं भते ! सेव भते ! त्ति । (श० ५/२९,३०)

## ढाल : ७६

### दूहा

१. प्रथम उदेशे दिशि विषे, दिनादि विभाग ताय।
ते दिशि विषेज वायु छै, ते वायु भेद कहिवाय॥

१ प्रथम उद्देशके दिक्षु दिवसादिविभाग उक्तः, द्वितीये तु तास्वेव वात प्रतिपिपादयिपुर्वातभेदांस्तावदभिधातुमाह— (वृ० प० २११)

२. नगर राजगृह नैं विषे, जावत् गोतम स्वाम।
विनय करी प्रभु वीर नैं, इम बोल्या गुण धाम॥

२. रायगिहे नगरे जाव एव वयासी—

* प्रभुजी ! धिन धिन आपरो ज्ञान॥ (ध्रुपदं)

३. हे भगवंत ! छै वायरो जी, थोडा सा तेह सहीत।
ईसिं पुरेवाया पाठ नो जी, अर्थ कियो इह रीत॥

३ अत्थि ण भते ! ईसिं पुरेवाया
मनाक् सत्रेहवाता· (वृ० प० २१२)

४. हितकारी वनस्पति भणी, ते पथ्य-वाय वाजंत।
मंद-वाय महा-वाय छै ? हता जिन वच तंत॥

४ पत्था वाया मदा वाया महावाया वायंति ?
हता अत्थि। (श० ५/३१)
पथ्या वनस्पत्यादिहिता वायव (वृ० प० २१२)

५. मेरु थी पूर्व दिशि विषे प्रभु ! थोडा सा तेह सहीत।
वाजै पथ्य मद महावाय छै ? जिन वच हंता प्रतीत॥

५ अत्थि ण भते ! पुरत्थिमे ण ईसिं पुरेवाया पत्था वाया मदा वाया महावाया वायति ?
हता अत्थि। (श० ५/३२)

६. इमहिज पश्चिम नैं विषे, दक्षिण उत्तर एम।
ईशाण अग्नि नैऋत विषे, वायवकूणे तेम॥

६ एव पच्चत्थिमे ण, दाहिणे ण, उत्तरेण उत्तर-पुरत्थिमे ण, दाहिण-पच्चत्थिमे ण, दाहिणपुरत्थिमे ण, उत्तर-पच्चत्थिमे ण। (श० ५/३३)

७. पूरवदिशि विषे जदा प्रभु ! अल्प स्नेह सहीत वाय।
वाजै पथ्य मद महावायरो, तव पश्चिम पिण चिउं थाय॥

७ जया ण भते ! पुरत्थिमे ण ईसिं पुरेवाया पत्था वाया मदा वाया महावाया वायति, तया ण पच्चत्थिमे ण वि ईसिं पुरेवाया पत्था वाया मदा वाया महावाया वायति।

८. पश्चिम दिशि विषे जदा, वाजै थोडा तेह सहित वाय।
तव पूरव पिण चिउ हुवै ? जिन कहै हता थाय॥

८ जया ण पच्चत्थिमे ण ईसिं पुरेवाया पत्थावाया मदा वाया महावाया वायति, तया ण पुरत्थिमे ण वि ?
हता गोयमा ! (श० ५/३४)

९. एवं दिशा विदिशा विषे, दिशि ना वे सूत्र कहाय।
दोय सूत्र छै विदिशि ना, हिव प्रकारंतरे वाय॥

९ एव दिसासु विदिसासु (श० ५/३५)
इह च द्वे दिक्सूत्रे द्वे विदिक्सूत्रे इति (वृ० प० २१२)

१०. छै प्रभु ! द्वीप संबंधिया, वाजै थोडा तेह सहित वाय।
पथ्य मंद महा अर्थ मे ? जिन कहै हता थाय॥

१० अत्थि ण भते ! दीविच्चया ईसिं पुरेवाया ?
हता अत्थि। (श० ५/३६)

११. छै प्रभु ! समुद्र संबंधिया, वाजै अल्प तेह सहित वाय।
पथ्य मद महा अर्थ में ? जिन कहै हता थाय॥

११ अत्थि ण भते ! सामुद्दया ईसिं पुरेवाया ?
हता अत्थि। (श० ५/३७)

१२. चिउ वायु द्वीप संबंधिया प्रभु ! जिण काले वाजत।
तिण काले उदधि संबंधिया पिण, च्यारूइ वायरा हुंत॥

१२ जया ण भते ! दीविच्चया ईसिं पुरेवाया, तया ण सामुद्दया वि ईसिं पुरेवाया,

* लय : इण साधां रा भेष में ·····

१३. चिउं वायु समुद्र सबंधिया, जिण काले वाजंत ।
द्वीप सबधिया वायरा पिण, तिण काले चिउ हुंत ?
१४. जिन कहै अर्थ समर्थ नही, प्रभु! किण अर्थे इम वाय ?
द्वीप समुद्र ना वायरा, समकाले नहिं थाय ।।

१५. जिन कहै ते वायरा तणै, विपरीतपणों माहोमांहि ।
तिण सू लवणसमुद्र नी वेल नै, अतिक्रमै नहि ताहि ।।
१६. तथाविध वाय द्रव्य ना, समर्थपणा थी कहाय ।
वेल ना तथाविध स्वभाव थी, तथा लोक ना स्वभाव थी ताय ।।
१७. तिण अर्थे द्वीप उदधि ना, वायु समकाले नहि होय ।
अक्षरार्थ ए आखियो, तथा वृत्ति टवा थी जोय ।।

१८. धर्मसीह कह्यो द्वीप नै विषे, वायु जे वाजतो होय ।
ते समुद्र विषे आवै नही, तसु परमारथ जोय ।।
१९. द्वीप नो वायु समुद्र नी, वेल अतिक्रमै नाहि ।
धर्मसीह कृत ते यत्र छै, एह अर्थ तिण माहि ।।
२०. हिवै वायु नो वाजवो, तेहना छै तीन प्रकार ।
त्रिण सूत्र त्रिण भेदे करी, कहियै ते अधिकार ।।
२१. हे भगवत ! वायू अछै, थोडा सा तेह सहीत ।
वाजै पथ्य मद महा वायरो ? जिन कहै हता प्रतीत ।।
२२. ए चिहु वायु वाजे कदा प्रभु ! जिन कहै वाऊकाय ।
स्वभाव गति करि चालता, वाजै च्यारूं वाय ।।

२३. हे भगवंत ! वायू अछै, थोडा सा तेह सहीत ।
वाजै पथ्य मद महा वायरो? जिन कहै हता प्रतीत ।।
२४. ए चिहुं वायु वाजे कदा प्रभु ! जिन कहै वाऊकाय ।
उत्तर-क्रिया गति चालता, वाजे च्यारूं वाय ।।

२५. ऊदारीक तसु मूलगो, वैक्रिय उत्तरकाय ।
ते आश्रय क्रिया गति चालवू, ते उत्तर-क्रिया कहाय ।।

२६. हे भगवत ! वायू अछै थोडा सा तेह सहीत ।
वाजे पथ्य मद महा वायरो ? जिन कहै हता प्रतीत ।।
२७. ए चिहु वायु वाजै कदा ? जिन कहै वाउकुमार ।
अथवा वाउकुमार नी, वहु देवी तिण वार ।।
२८. आपण पर बेहुं तणै, प्रयोजने कहिवाय ।
करै ऊदीरणा वाउकाय नी, वाजै तव चिउ वाय ।।

१३. जया ण सामुद्दया ईसिं पुरेवाया, तया ण दीविच्चया वि ईसिं पुरेवाया ?
१४ णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ५/३८)
से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—जया ण दीविच्चया ईसिं पुरेवाया, णो ण तया सामुद्दया ईसिं पुरेवाया, जया ण सामुद्दया ईसिं पुरेवाया, णो ण तया दीविच्चया ईसिं पुरेवाया ?
१५ गोयमा ! तेसिं ण वायाण अण्णमण्णविवच्चासेणं लवणसमुद्दे वेल नाइक्कमइ ।
१६ तथाविधवातद्रव्यसामर्थ्याद्वेलायास्तथास्वभावत्वाच्चेति । (वृ० प० २१२)
१७ से तेणट्ठेण जाव णो ण तया दीविच्चया ईसिं पुरेवाया पत्था वाया मदा वाया महावाया वायति । (श० ५/३९)

२१ अत्थि ण भते ! ईसिं पुरेवाया पत्था वाया मदा वाया महावाया वायति ? हता अत्थि । (श० ५/४०)
२२ कया ण भते ! ईसिं पुरेवाया जाव वायति ? गोयमा ! जया ण वाउयाए अहारियं रियति, तया ण ईसिं पुरेवाया जाव वायति । (श० ५/४१)
२३ अत्थि ण भते ! ईसिं पुरेवाया ?
हता अत्थि । (श० ५/४२)
२४ कया ण भते ! ईसिं पुरेवाया ?
गोयमा ! जया ण वाउयाए उत्तरकिरियं रियइ, तया ण ईसिं पुरेवाया जाव वायति । (श० ५/४३)
२५ वायुकायस्य हि मूलशरीरमौदारिकमुत्तर तु वैक्रियमत उत्तर—उत्तरशरीराश्रया क्रिया गतिलक्षणा यत्र गमने तदुत्तरक्रियं । (वृ० प० २१२)
२६ अत्थि ण भते ! ईसिं पुरेवाया ?
हता अत्थि । (श० ५/४४)
२७ कया ण भंते ! ईसिं पुरेवाया पत्था वाया ?
गोयमा ! जया ण वाउकुमारा, वाउकुमारीओ वा
२८ अप्पणो परस्स वा तदुभयस्स वा अट्ठाए वाउकाय उदीरेंति तया ण ईसिं पुरेवाया जाव वायति । (श० ५/४५)

२६. वाऊ तणा अधिकार थी, जलि कहियै छै तास ।
प्रभु ! वाउकाय वायु प्रतै, ग्रहै छै सास उसास ॥

२६. वायुकायाधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० २१२)
वाउयाए णं भंते ! वाउयाय चेव आणमति वा ? पाणमति वा ? ऊससति वा ? नीससति वा ?

३०. जेम खंधक आलावो कह्यो, तिमज आलावा च्यार[1] ।
प्रथम तो सासउस्सास ले, वायरा नों ईज तिवार ॥

३०. जहा खदए तथा चत्तारि आलावगा नेयव्वा अणेगसय-सहस्स पुट्ठे उद्दाइ समरीरी निक्खमइ । (स० पा०) (श० ५/४६)

३१. वाऊकाय वाउकाय में, मरी-मरी उपजंत ।
अनेक लाखां भव इम करै, ए दूजो आलावो कहंत ॥

३१ वाउयाए ण भंते ! वाउयाए ण वाउयाए चेव अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो भुज्जो पच्चायाति ?
हंता गोयमा ! वाउयाएण वाउयाए चेव अणेगसय-सहस्सखुत्तो उद्दाइता उद्दाइता तत्थेव भुज्जो भुज्जो पच्चायाति । (श० ५/४७)

३२. शस्त्र थकी फर्श्यां मरै, फर्श्यां विना न मरेह ।
ए तीजो आलावो जाणवो, चउथो शरीर नुं एह ॥

३२. से भंते ! किं पुट्ठे उद्दाति ? अपुट्ठे उद्दाति ?
गोयमा ! पुट्ठे उद्दाति, नो अपुट्ठे उद्दाति । (श० ५/४८)

३३. ओदारिकादि रहित नीकले, तेजस कार्मण सोय ।
ए बेहु शरीर सहित नीकले, ए चोथो आलावो जोय[2]॥

३३ से भंते ! किं ससरीरी निक्खमइ ? ...
ओरालिय-वेउव्वियाइं विप्पजहाय तेययकम्मएहिं निक्खमइ । (श० ५/४६,५०)

३४. देश बावनमां अक नो, छिहतरमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषरायथी, 'जय-जश' मंगलमाल ॥

## ढाल : ७७

### दूहा

१. पूर्वे वायू चिंतव्यु, वनस्पत्यादि शरीर ।
तास प्रश्न पूछै हिवै, इंद्रभूति वडवीर ॥

१ वायुकायश्चिन्तितः, अथ वनस्पतिकायादीन् शरीरतश्चिन्तयन्नाह— (वृ० प० २१२)

---

१. भगवई श० २/८-१२

२ इस ढाल की तीसवी गाथा मे 'जेम खदक आलावो' कहकर संक्षिप्त पाठ के आधार पर जोड की गई है। उसके सामने पाद टिप्पण का सक्षिप्त पाठ उद्धृत किया गया है। स्कन्दक-आलापको की भुलावण देने के बावजूद आगे ३१-३३ मे उन्ही आलापको को आशिक रूप मे स्पष्ट किया गया है। इसलिए तीसवी गाथा के सामने सक्षिप्त पाठ उद्धृत करने पर भी अगली गाथाओ के सामने कुछ पाठ अगसुत्ताणि भाग २ श० ५/४६-५० का लिखा गया है। क्योकि जोड़ के साथ तुलना करने की दृष्टि से यह आवश्यक समझा गया।

२. *अथ हिव प्रभुजी! हो, चोखा ओदन कहाय, कुलमाषा कुलथ थाय ।
सुरा ते मदिरा जाणियै ए ।।

३. पृथ्वी प्रमुख हो, आखी छै छ काय, केहना शरीर कहाय?
ए गोयम प्रश्न पिछाणियै ।।

४. श्री जिन भाखै हो, चोखा कुलथ ए ताय, पूर्व भाव पेक्षाय ।
वनसपति जीव तनु अछै ।।

५. ऊखल मूसल हो, यत्र शस्त्र थी ताय, अतिक्रमी पूर्व पर्याय ।
ते शस्त्र-अतीत थया पछै ।।

६. शस्त्रे करिनै हो, परिणमाया छै ताय, कीधा नव पर्याय ।
तेह शस्त्रपरिणामिया ।।

७. अग्नि करिनै हो, तेह धम्या छै अथाग, निज वर्ण नु परित्याग ।
तास कह्या अगणिझामिया ।।

८. वलि अग्नि करि हो, पूर्व स्वभाव पिछाण, तेह खपाव्या जाण ।
अगणिभूसिया ते कह्यु ।।

९. अग्नि कर सेव्या, हो, अग्निसेविया ताम, अग्नि परिणामिया आम ।
उष्ण परिणामपणु लह्यु ।।

१०. अथवा आख्या हो, सत्थातीया आदि, शस्त्र अग्नि तेहिज साधि ।
शस्त्र अनेरो गिण्यू नही ।।

११. ओदन कुलमाषा हो, ए बेहुं ही सोय, अग्नि परिणम्या जोय ।
अग्नि जीव तनु तसुं कही ।।

१२. सुरा द्रव्य ना हो, भेद कह्या छै दोय, घन द्रव्य, कठण सुजोय ।
गुल धातकी पुष्पादिक तणो ।।

१३. दूजो द्रव द्रव्य हो, पतली मदिरा एह, भेद सुरा ना ए बेह ।
हिव लेखो शरीर तणो सुणो ।।

१४. सुरा द्रव्य नो हो, घन द्रव्य प्रथम कहिवाय, पूर्व भाव पेक्षाय ।
वनसपति नो शरीर छै ।।

१५. सत्थातीया हो, प्रमुख पाठ छै ताय, अग्नि शस्त्र परिणमाय ।
अग्नि जीव तनु ते पछै ।।

१६. पतली मदिरा हो, द्रव द्रव्य दूजो ताय, ते पूर्व पर्याय ।
आऊ जीव नो शरीर छै ।।

१७. सत्थातीया हो, प्रमुख पाठ कहिवाय, अग्नि शस्त्र परिणमाय ।
अग्नि जीव तनु ते पछै ।।

* लय : हिव राणी नै हो समभावै.........

२,३ अह ण भंते ! ओदणे, कुम्मासे, सुरा—एए ण किंसरीरा ति वत्तव्व सिया ?

४ गोयमा ! ओदणे कुम्मासे सुराए य जे घणे दव्वे—एए ण पुव्वभावपण्णवण पडुच्च वणस्सइजीव-सरीरा ।

५ तओ पच्छा सत्थातीया,
शस्त्रेण— उदूखलमुशलयत्रकादिनाकरणभूतेमातीतानि—अतिक्रान्तानि पूर्वपर्यायमिति शस्त्रातीतानि । (वृ० प० २१३)

६ सत्थपरिणामिया,
शस्त्रेण परिणामितानि—कृतानि नवपर्यायाणि शस्त्रपरिणामितानि । (वृ० प० २१३)

७ अगणिज्झामिया,
वह्निना ध्यामितानि—श्यामीकृतानि स्वकीयवर्णत्याजनात् । (वृ० प० २१३)

८ अगणिझूसिया,
अग्निना शोषितानि पूर्वस्वभावक्षपणात् । (वृ० प० २११)

९ अग्निना सेवितानि वा
अगणिपरिणामिया
सजाताग्निपरिणामानि उष्णयोगादिति । (वृ० प० २१३)

१० अथवा 'सत्थातीता' इत्यादौ शस्त्रमग्निरेव (वृ० प० ९१३)

११ अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्व सिया ।

१२,१३ सुराया द्वे द्रव्ये स्याता—घनद्रव्य द्रवद्रव्य च । (वृ प० २१३)

१४ अतीतपर्यायप्ररूपणामङ्गीकृत्य वनस्पतिशरीराणि, पूर्वं हि ओदनादयो वनस्पतय. । (वृ० प० २१३)

१६ सुराए य जे दवे दव्वे—एए ण पुव्वभावपण्णवण पडुच्च आउजीवसरीरा ।

१७ तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्व सिया । (श ५/५१)

१८. कह्यु धर्मसी हो, मदिरा प्रथम उपन्न, वनस्पति नुं तन्न ।
रस थयां अप नो शरीर छै ॥

१९. अग्नि चढाव्यो हो, अग्नि शरीर पिछाण, यंत्र धर्मसी नुं जाण ।
तिण मे ए अर्थ कियो अछै ॥

२०. अथ प्रभु! लोहडो हो, तांबो तरुवो जान, सीसो दग्ध पाषान ।
कसवटी कट्ट धातु कही ॥

२०. अह ण भते ! अये, तवे, तउए, सीसए, उवले, कसट्टिया—
उवलेत्ति इह दग्धपाषाण. कसट्टिय त्ति कट्ट.
(वृ० प० २१३)

२१. किसी काय ना हो, एह शरीर कहाय ? जिन कहै ए सहु ताय ।
पूर्व भाव पृथ्वी ना सही ॥

२१. एए णं किंसरीरा ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा! अये, तवे, तउए, सीसए, उवले कसट्टिया—एए ण पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च पुढवीसरीरा ।

२२. सत्थातीता हो, प्रमुख पाठ कहिवाय, अग्नि शस्त्र परिणमाय ।
अग्नि जीव तनु ते पछै ॥

२२ तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्व सिया । (श० ५।५२)

२३. अथ प्रभु! अस्थि हो, वल्यो हाड वलि तेह, चरम वल्यो-चरम जेह ।
रोम नै रोम-दहीजिया ॥

२३ अह ण भते ! अट्ठी, अट्ठिज्झामे, चम्मे, चम्मज्झामे, रोमे, रोमज्झामे,

२४. सीग दग्ध-सीग हो, खुर नैं वलि खुर-झाम, नख दग्ध-नख ताम ।
केहना शरीर कहीजिया ?

२४ सिंगे, सिंगज्झामे, खुरे, खुरज्झामे, नखे, नखज्झामे एए ण किंसरीरा ति वत्तव्व सिया ?

२५. श्री जिन भाखै हो, हाड चरम रोम जाण, नख खुर सीग[1] पिछाण ।
त्रस प्राण जीव ना शरीर छै ॥

२५ गोयमा ! अट्ठी, चम्मे, रोमे, सिंगे, खुरे, नखे एए ण तसपाणजीवसरीरा ।

२६. ए छहुं वाल्या हो, त्रस तनु पूर्व पर्याय, अग्नि शस्त्रे परिणमाय ।
अग्नि शरीर कह्या पछै ॥

२६ अट्ठिज्झामे, चम्मज्झामे, रोमज्झामे, सिंगज्झामे, खुरज्झामे नखज्झामे—एए ण पुव्वभावपण्णवण पडुच्च तसपाणजीवसरीरा । तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्व सिया । (श० ५।५३)

२७. प्रभु ! अंगारा हो, एह कोयला कहाय, छार भस्म कहिवाय ।
भुस ते जव गोहूं ना चोथो छगण ही ॥

२७ अह ण भते ! इगाले छारिए भुसे गोमए—

२८. इहा भुस गोवर हो, गया काल नी पर्याय, ते आश्री कह्या ताय ।
पिण दग्ध अवस्था विहू कही ॥

२८ इह च बुसगोमयौ भूतपर्यायानुवृत्त्या दग्धावस्थौ ग्राह्यौ । (वृ० प० २१३)

२९. ए च्यारूइ हो, केहना शरीर कहिवाय ? हिव भाखै जिनराय ।
पूर्व भाव कहाविया ॥

२९ एए ण किंसरीरा ति वत्तव्व सिया ?
गोयमा ! इगाले, छारिए, भुसे गोमए—एए ण पुव्वभावपण्णवण पडुच्च

३०. जीव एकेंद्री हो, जाव पंचेंद्री विचार, तास शरीर व्यापार ।
तेणे करीनै परिणामिया ॥

३०. एगिंदियजीवसरीरप्पयोगपरिणामिया वि जाव पंचिंदियजीवसरीरप्पयोगपरिणामिया वि ।

३१. आख्यो वृत्ति मे हो, वेंद्रि आदि प्रयोग, यथासभव कहिवू योग ।
पिण सर्व ही पद नैं विषे नही ॥

३१ द्वीन्द्रियादिजीवशरीरपरिणतत्व च यथासभवमेव न तु सर्वपदेष्विति । (वृ० प २१३)

३२. पूर्व अगारा हो, भस्म एकेंद्रियादि जाण, तास शरीर पिछाण ।
ईंधण एकेंद्रियादि तनु सही ॥

३२ तत्र पुर्वमङ्गारो भस्म चैकेन्द्रियादिशरीररूप भवति, एकेन्द्रियादिशरीराणामिन्धनत्वात् । (वृ० प० २१३)

---

१ अग सुत्ताणि भाग २ मे नख के स्थान पर सीग और सीग के स्थान पर नख पाठ है । सम्भव है जयाचार्य को उपलब्ध प्रति मे वैसा पाठ रहा हो । अगसुत्ताणि मे पाठान्तर का कोई उल्लेख नही है ।

३३. भुस जव गोहू ना हो, हरित अवस्था जोय, एकेंद्री तनु होय ।
तिण सू एकेंद्री तणु शरीर छै ॥

३४. छाण तृणादि हो, अवस्था विषे जोय, एकेंद्री तनु होय ।
तेहथी प्रयोग परिणाम छै ॥

३५. वलि गायादिक हो, वेद्री प्रमुख भखत, तेहनु पिण तनु हुत ।
तिण सू वेद्री प्रमुख त्रस पाठ ही ॥

३६. वलि ते च्यारू हो, सत्थातीया थाय, जाव अग्नि परिणमाय ।
अग्नि शरीर कह्यु सही ॥

३७. ए तो आख्यो हो, पृथ्वी प्रमुख विचार, हिव अपकाय प्रकार ।
लवणसमुद्र तणो कहै ॥

३८. प्रभु! लवणोदधि हो, छै कितलो चक्रवाल, विखभ पिहुलपणै न्हाल?
जीवाभिगम नै विषे लहै ॥

३९. जाव लोक-स्थिति हो, त्या लग कहिवू तास, वारू अर्थ विमास ।
सक्षेप मात्र कहीजियै ॥

४०. जल नी सख्या हो, ऊची सोलै हजार, सहस्र योजन ऊडो सार ।
सतरै हजार लहीजियै ॥

४१. जे उदके करि हो, जबूद्वीप नै ताय, जलमय करतो नाय ।
हे प्रभु ! ए किण कारणै ?

४२. श्री जिन भाखै हो, तीर्थंकर जिन देव, चक्री वल वासुदेव ।
जंघाचारण विद्याचारणै ॥

४३. बलि विद्याधर हो, तीर्थ च्यार प्रभाव, भद्रक मनुष्य स्वभाव ।
स्वभावे क्रोधादि पातला ॥

४४. बलि स्वभावे हो, मनुष्य विनीत कहाय, अविनय अवगुण नाय ।
प्रतिपक्ष वचने कह्या भला ॥

४५. वलि जुगलिया हो, देव देवी बहु देख, तास प्रभावे पेख ।
जलमय जबू करै नही ॥

४६. लोक स्थिति हो, लोक तणो अनुभाव, एह अनादि कहाव ।
ए जीवाभिगम थी कह्यु सही ॥

४७. जिन प्रतिमा नै हो, प्रभावे कह्यु नाय, देखो दिल रै माय ।
ज्ञान नेत्रे करि देखियै ॥

४८. सेवं भंते ! हो, सेव भते ! ताम, इम कहि गोतम स्वाम ।
यावत् विचरै विसेखियै ॥

४९. बावन अके हो, ढाल सिततरमी ताय, भिक्षु भारीमल ऋषराय ।
'जय-जश' हरष वधावणा ॥

५०. सम्यक् ज्ञानी हो, तेहनी कही सत्य वाय, मिथ्यादृष्टि नी ताय ।
हिव तसु असत्य परूपणा ॥

**पंचमशते द्वितीयोद्देशकार्थः ॥ ५।२ ॥**

३३ बुस तु यवगोधूमहरितावस्थायामेकेन्द्रियशरीरम्, (वृ० प० २१३,२१४)

३४ गोमयस्तु तृणाद्यवस्थायामेकेन्द्रियशरीरम्, (वृ० प० २१४)

३५ द्वीन्द्रियादीना तु गवादिभिर्भक्षणे द्वीन्द्रियादिशरीरमिति । (वृ० प० २१४)

३६ तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्व सिया । (श० ५।५४)

३७ पृथिव्यादिकायाधिकारादप्कायरूपस्य लवणोदधे स्वरूपमाह— (वृ० प० २१४)

३८ लवणे ण भते ! समुद्दे केवइय चक्कवालविक्खभेण पण्णत्ते ?
उक्ताभिलापानुगुणतया नेतव्य जीवाभिगमोक्तं लवणसमुद्रसूत्रम् । (जी० सू० ७०६) (वृ० प० २१४)

३९ एव नेयव्व जाव लोगट्ठिई,

४६. लोगाणुभावे । (श० ५।५५)

४८ सेवं भते ! सेव भते ! त्ति भगवं गोयमे जाव विहरइ । (श० ५।५६)

## ढाल : ७८

### दूहा

१. द्वितीय उदेशक अंत में, सत्य परूपण ख्यात ।
तृतीय आदि अन्ययुथिक नी, असत्य परूपण आथ ।।

१ अनन्तरोक्त लवणसमुद्रादिक सत्यं सम्यग्ज्ञानिप्रतिपादितत्वात्, मिथ्याज्ञानिप्रतिपादित त्वसत्यमपि स्यादिति दर्शयस्तृतीयोद्देशकस्यादिसूत्रमिदमाह—
(वृ० प० २१४)

२. अन्यतीर्थी प्रभु ! इह विधे सामान्ये आखत ।
भाखै तेह विशेष थी, हेतु करि पन्नवत ।।

२ अण्णउत्थिया ण भते ! एवमाइक्खति भासति पण्णवेंति ।

३. परूपणा कहै भेद करि, यथानाम दृष्टत ।
जालगठिया जे हुइ, निसुणो तेह उदत ।।

३ परूवेंति—से जहानामए जालगठिया सिया ···

*हो प्रभुजी ! देव जिनेन्द्र दाखीजै ।
भिन्न भिन्न भेद भाखीजै, हो जिनजी ! कृपा अनुग्रह कीजै (ध्रुपद)

४. मच्छ नु बधन जाल तेहनी परि, गठि अछै जिह माही ।
केहवै स्वरूपे जाल हुवै जे, आगल ते कहिवाई ।।

४ जालं—मत्स्यबन्धन तस्येव ग्रन्थयो यस्या सा जालग्रन्थिका—जालिका, किंस्वरूपा सा ?
(वृ० प०२१४)

५. आणुपुव्विगढिया ते अनुक्रम—परिपाटिये गूथी जेह ।
पहिला देवा योग्य गाठ पहिला दीधी, छेहडे देवा योग्य दीधी छेह ।।

५ आणुपुव्विगढिया
आनुपूर्व्या—परिपाट्या ग्रथिता—गुम्फिता आद्युचितग्रन्थीनामादौ विधानाद् अन्तोचिताना क्रमेणान्त एव करणात्,

६. एहिज कहै छै विस्तार करीनै, अनतरगढिया त्याही ।
पहिली गाठ नै अन्तर रहित गाठ दीधी छै ज्याही ।।

६. अणतरगढिया (वृ० प० २१४)
एतदेव प्रपञ्चयन्नाह—'अनतरगढिय' त्ति प्रथमग्रन्थीनामनन्तर व्यवस्थापितैर्ग्रन्थिभि सह ग्रथिता अनन्तरग्रथिता, (वृ० प० २१४,२१५)

७. परंपरगढिया ते परंपराए, अनतर गांठ थी ताह्यो ।
गाठ अनेरी दीधी छै वलि, एतलै स्यू कहिवायो ।।

७. परपरगढिया
परम्परं — व्यवहितैः सह ग्रथिता परम्परग्रथिता,
(वृ० प० २१५)

८. अण्णमण्णगढिया एक गाठ सू, गाठ अनेरी दीधी ।
तेह गाठ सू वलि अन्य दीधी, गूथी अन्योऽन्य सीधी ।।

८. अण्णमण्णगढिया,
अन्योऽन्य—परस्परेण एकेन ग्रन्थिना सहान्यो ग्रथितरन्येन च सहान्य इत्येव ग्रथिता अन्योऽन्यग्रथिता,
(वृ० प० २१५

९. अण्णमण्णगरुयत्ताए कहिता, गूथवा थी माहोमाय ।
विस्तीर्ण भाव कीधा तेहनैं, अण्णमण्ण गुरुपणो थाय ।।

९ अण्णमण्णगरुयत्ताए
अन्योऽन्येन ग्रन्थनाद् गुरुकता—विस्तीर्णता ...न्यगुरुकता , (वृ० प० २१

१०. अण्णमण्णभारियत्ताए कहिता, कीधा भारपणै माहोमाय ।
गुरुभार ए जुदा कह्या छै, हिवै इक पद त्रिहु कहिवाय ।।

१०. अण्णमण्णभारियत्ताए
अन्योऽन्यस्य यो भार स विद्यते यत्र तदन्यभारिक तद्भावस्तत्ता, (वृ० प० २

*लय : आधाकर्मो थानक मे साधु ···

११. अण्णमण्णगरुयसंभारियत्ताए, माहोमाहे प्रसीधा ।
विस्तीर्णपणै कीधा छै जे, बले भारीपणै पिण कीधा ।।

१२. अण्णमण्णघडत्ताए माहोमाहे समुदाय रचना जे माय ।
तेहपणै रहे छै ए दृष्टत, दार्ष्टातिक हिव कहिवाय ।।

१३. इण न्याय करी घणा जीव सवधी, बहु देवादि जन्म रै माय ।
वहु आयु सहस्र ते आउखा ना स्वामी, वलि जन्म स्वामी ते कहाय ।।

१४. अनुक्रम वहु आयु वाध्या थका ईज, जाव रहै बहु जतु ।
भारपणो कर्म पुद्गल अपेक्षा, हिवै किम आयु वेदतु ।।

१५. इक पिण जीव समय इक माहे, आउखा भोगवै दोय ।
इह भव नो जे आउखो भोगवै, वलि पर भव नो सोय ।।

१६. जे समय इह भव नु आउखो भोगवै, ते समय पर भव नु वेदंत ।
प्रथम-शतक[1] मे विस्तार कह्यो छै, जावत् किम भयवत ।।

१७. श्री जिन भाखै जे अन्यतीर्थी, बात कही ते मिच्छा ।
हू पिण एम कहू छू गोयम ! साभलजै धर इच्छा ।
(रे गोयम ! साभल्जै चित ल्याय) ।।

१८. वृत्तिकार कह्यु अन्यतीर्थी नु, मिथ्यापणु ए कहियै ।
घणा जीवा ना बहु आयु विपे जे, जालग्रन्थिका ज्यू रहियै ।।
(रे भवियण ! साभलजो चित ल्याय) ।।

१९. घणां जीवा रा आउखा छै ते, माहोमा वध्या कहै अनाणी ।
जालग्रन्थिका ज्यू परस्परे ते, आयु वध्या कहै जाणी ।।

२०. इक नों आयु वीजा ना आयु साथे, वीजा नु आयु तीजा सघात ।
इम वहु जीवा ना आयु माहोमा, वध्या कहै ते मिथ्यात ।।

२१. इम जालग्रन्थिका ज्यू आयु हुवै तो, सर्व जीवा नै जाणी ।
सर्व आउ वेदवै करि सहु भव, उत्पत्ति प्रसग पिछाणी ।।

२२. सहु जीवायु माहोमा सवध हुवै तो, तिण लेखे भूठ एकत ।
असवध हुवै तो इक भव माहे, इक समय वे आयु न वेदंत ।।

११ अण्णमण्णगरुयसभारियत्ताए
अन्योऽन्येन गुरुक यत्सम्भारिकं च तत्तथा तद् भावस्तत्ता, (वृ० प० २१५)

१२ अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठइ;
अन्योऽन्य घटा—समुदायरचना यत्र तदन्योऽन्यघट तद्भावस्तत्ता इति दृष्टान्तोऽथ दार्ष्टान्तिक उच्यते— (वृ० प० २१५)

१३ एवामेव वहूणं जीवाण बहूसु आजातिसहस्सेसु वहूइ आउयसहस्साइ
अनेनैव न्यायेन बहूना जीवाना सम्बन्धीनि 'वहूसु आजाइसहस्सेसु' त्ति अनेकेषु देवादिजन्मसु प्रतिजीव क्रमप्रवृत्तेष्वधिकरणभूतेषु वहून्यायुष्कसहस्राणि तत्स्वामिजीवानामाजातीना च वहुशतसहस्र-सख्यत्वात्, (वृ० प० २१५)

१४ आणुपुव्विगढियाइ जाव चिट्ठति ।
आनुपूर्वीग्रथितानीत्यादि पूर्ववद्व्याख्येय नवरमिह भारिकत्व कर्मपुद्गलापेक्षया वाच्यम् ।
(वृ० प० २१५)

१५ एगे वि य ण जीवे एगेण समएण दो आउयाइ पडि-सवेदेइ, त जहा—इहभवियाउय च, परभवियाउय च ।

१६ ज समय इहभवियाउय पडिसवेदेइ, त समय परभ-वियाउय पडिसवेदेइ । (श० ५/५७)
से कहमेय भते ! एव ?

१७ गोयमा ! जण्ण त अण्णउत्थिया त चेव जाव पर-भवियाउय च । जे ते एवमाहसु त मिच्छा, अह पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि, भासामि पण्णवेमि परू-वेमि—

१८ मिथ्यात्व चैपामेवम्—यानि हि बहूना जीवाना वहून्यायूषि जालग्रन्थिकावत्तिष्ठन्ति ।
(वृ० प० २१५)

२१ तथाऽपि तत्कल्पने जीवानामपि जालग्रंथिकाकल्पत्व स्यात्तत्सवद्धत्वात्, तथा च सर्वजीवाना सर्वायु-सवेदनेन सर्वभवभवनप्रसङ्ग इति (वृ० प० २१५)

१. भगवई १।४२०

२३. इक जीव समय इक वे आयु वेदै, ते मिथ्या इण न्यायो ।
इक समय वे आउ वेदवै युगपत, वे भव ना प्रसंग थी ताह्यो ॥

२३ यच्चोक्तमेको जीव एकेन समयेन द्वे आयुषी वेदयति तदपि मिथ्या, आयुर्द्वयसवेदने युगपद्भवद्वयप्रसङ्गादिति । (वृ० प० २१५)

२४. जिन कहै हू वलि एम कहूं छू, जालग्रन्थिका दृष्टत ।
सकलिका मात्र छै इण पक्षे, जाव समुदाय रचना रहत ॥

२४ मे जहानामए जालगंठिया सिया जाव अण्णमण्णघटत्ताए चिट्ठति । इह पक्षे जालग्रन्थिका—सङ्कलिकामात्रम् (वृ० प० २१५)

२५. इण दृष्टाते इक-इक जीव नै, पिण बहु जीवा रै नहि माहोमाहि ।
बहु जन्म सहस्र विषे घणा आउखा ना, सहस्र गमे थया ताहि ॥

२६. काल अतीत विषे अनुक्रमै, बहु आयु सहस्र थया ताह्यो ।
वर्तमान भव ताई कहियै, निगुणो तेहनु न्यायो ॥

२५, २६ एवामेव एगमेगस्स जीवस्स बहूहिं आजातिसहस्सेहिं बहूइ आउयसहस्साइ आणुपुव्विगटियाइ जाव चिट्ठति
एकैकस्य जीवस्य न तु बहूनां बहुधा आजातिसहस्रेषु क्रमवृत्तिष्वतीतकालिकेषु तत्कालापेक्षया सत्सु बहून्यायु.सहस्राण्यतीतानि वर्तमानभवान्तानि । (वृ० प० २१५)

२७. अन्य भव अन्य भवे करि आयु-प्रतिवद्ध वध कहायो ।
सर्व परस्पर इम आयु-वंध ह्वै, पिण इक भव बहु न बधायो ॥

२७. अन्यभविकमन्यभविकेन प्रतिवद्धमित्येव सर्वाणि परस्पर प्रतिवद्धानि भवन्ति न पुनरेकभव एव बहूनि । (वृ० प० २१५)

२८. अनुक्रमै जाव एम रहै छै, इक जीव समय इक माह्यो ।
इक आयु वेदै ते इह भव नं, तथा परभव नु वेदायो ॥

२८. एगे वि य ण जीवे एगेणं समएण एग आउय पडिसवेदेइ, त जहा—इहभवियाउय वा, परभवियाउय वा ।

२९. जे समय इह भव ते, वर्तमान भव नों आउखो वेदै जेह ।
ते समय विषे परभव नु आउखो निश्चय नही वेदेह ॥

३०. जे समय विषे परभव नु आउखो वेदै छै जीव ।
ते समय विषे इह भव नु आउखो, वेदै नही अतीव ।

३१. इह भव नों आउखो वेदवै करि, परभव नु आयु न वेदत ।
पर भव नो आउखो वेदवै करि, इह भव नो नही भोगवत ॥

२९. ज समय इहभवियाउयं पडिसवेदेइ, नो तं समय परभवियाउय पडिसवेदेइ ।

३०. ज समय परभवियाउय पडिसवेदेइ, नो त समय इहभवियाउयं पडिसवेदेइ ।

३१. इहभवियाउयस्स पडिसवेदणाए, नो परभवियाउय पडिसवेदेइ । परभवियाउयस्स पडिसवेदणाए, नो इहभवियाउय पडिसवेदेइ ।

३२. इम निश्चय इक जीव एक समय करि, आउखो एक वेदत ।
इह भव नु अथवा परभव नु, वलि आयु अधिकार कहत ॥

३२. एव खलु एगे जीवे एगेण समएण एग आउय पडिसवेदेइ, त जहा—इहभवियाउय वा, परभवियाउयं वा । (श० ५/५८)

३३. जीव प्रभु ! जावा जोग्य नरक मे, स्यू आयु सहित जावत ।
कै आउखा रहित जावै छै ? हिव भाखै भगवंत ॥

३३ जीवे ण भते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए, से ण भते ! किं साउए सकमइ ? निराउए सकमइ ?

३४. आउखा सहित जावै छै नरके, आउखा रहित न जाय ।
एम सुणी नें गोतम स्वामी, प्रश्न करै वलि ताय ॥

३४ गोयमा ! साउए सकमइ, नो निराउए सकमइ । (श० ५/५९)

३५. ते प्रभु ! आयु किहा कियो बांध्यो, वलि ते किहा समाचरित्तं ?
ए आयु ना कारण अगीकरण थी, हिवै जिन उत्तर कहित्त ॥

३५ से ण भते ! आउए कहिं कडे ? कहिं समाइण्णे ?

३६. पूर्व भवे कियो बाध्यो आउखो, पाछल भव समाचरित्तं ।
आउ ना कारण अंगीकरण थी, इम जाव वैमानिक कहित्त ॥

३६ गोयमा ! पुरिमे भवे कडे, पुरिमे भवे समाइण्णे । एव जाव वेमाणियाणं दडओ । (श० ५/६०, ६१)

३७. जे योनि उपजवा योग्य प्रतै प्रभु ! ते आयु प्रतै पकरत ?
नरक तिर्यंच नर सुर आयु प्रति ? जिन कहै हंता तत ॥

३७ से तूण भते ! जे ज भविए जोणि उववज्जित्तए, से तमाउय पकरेइ, त जहा— नेरइयाउय वा ? तिरिक्खजोणियाउय वा ? मणुस्साउय वा ? देवाउय वा ? हता गोयमा !

३८. नरक नो आउखो करते छते जे, बाधै सात प्रकारे ।
रत्नप्रभा जाव अहेसप्तमी, ए नरक आयु प्रति धारे ॥

३८ नेरइयाउय पकरेमाणे सत्तविह पकरेइ, त जहा—रयणप्पभापुढविनेरइयाउय वा जाव अहेसत्तमा- (स० पा०) पुढविनेरइयाउय वा ।

३९. तिर्यंच आयु करते छते जे उपार्ज्यो पच प्रकारे ।
एकेंद्री आयु भेद सहु भणवा, पचेंद्री ताइ विचारे ॥

३९ तिरिक्खजोणियाउय पकरेमाणे पचविह पकरेइ, त जहा—एगिदियतिरिक्खजोणियाउय वा भेदो सव्वो भाणियव्वो । (स० पा०)

४०. मनुष्य आउखो दोय प्रकारे, गर्भेज समुच्छिम जत ।
च्यार प्रकारे सुरायु बाधै, सेव भते ! सेव भत ॥

४० मणुस्साउय दुविह पकरेइ, त जहा—सम्मुच्छिममणुस्साउय वा, गब्भवक्कतियमणुस्साउय वा । देवाउय चउव्विह पकरेइ
सेव भते ! सेव भते ! त्ति । (श० ५/६२,६३)

४१. पचम शतके तीजो उदेशो, अठतरमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' मगलमाल ॥

**पंचमशते तृतीयोद्देशकार्थः ॥५।३॥**

## ढाल : ७९

### दूहा

१. अन्यतीर्थी छद्मस्थ नी, वक्तव्यता कही एह ।
हिव छद्मस्थ मनुष्य वलि, केवलि तणी कहेह ॥

१ अनन्तरोद्देशकेऽन्ययूथिकछद्मस्थमनुष्यवक्तव्यतोक्ता, चतुर्थे तु मनुष्याणा छद्मस्थाना केवलिना च प्रायः सोच्यते इत्येवसबन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्—
(वृ० प० २१६)

*जिन वाण सुधारस जानी, आतो हलुकर्मी चित आनी (ध्रुपद)

२. प्रभु ! मन छद्मस्थ पिछानी, मुख-कर-दडादि करि जानी ।
संख पटह झालर आदि आनी, एह संबध थी सुणै सद्दानी ॥

२ छउमत्थे ण भते ! मणुस्से आउडिज्जमाणाइ सद्दाइ सुणेइ,
मुखहस्तदण्डादिना सह शखपटहझल्लर्यादिभ्यो वाद्यविशेषेभ्य आकुट्यमानेभ्यो वा एभ्य एव ये जाता शब्दास्ते (वृ० प० २१६)

३. संख सीग शब्द सुविधानी, सखिय लघु-सख सुन्हानी ।
काहलि[1] खरमुही कहानी, मोटी काहलि पोया मानी ॥

३ त जहा—सखसद्दाणि वा, सिंगसद्दाणि वा, सखियसद्दाणि वा, खरमुहीसद्दाणि वा, पोयासद्दाणि वा, 'सखिय' त्ति शखिका, ह्रस्व शङ्ख, 'खरमुहि' त्ति काहला, 'पोया' महती काहला । (वृ० प० २१६)

---

*लय · चिन्तातुर सुन्दर चाली

१. शिवजी का वाद्ययत्र

४. पिरिपिरिय नुं अर्थ पिछानी, कोलिक ते शूकर-चर्म जानी ।
तेणे मंढ्यो वाजंत्र वखानी, साभल तसु शब्द रसानी ।।

५. लघु पडहो ते पणव लहानी, पडह अर्थ ढोल विशेषानी ।
भंभा ढक्का दमामा जानी, होरभा[1] रुढिगम्या कहानी ।।

६. भेरि नु अर्थ ढक्का महानी, झालर वलयाकार प्रसिद्धानी ।
दुदुभि देव-वाजित्र वानी, उक्तानुक्त हिवै सग्रहानी ।।

७. वीणादिक ना शब्द ततानी, वितत पडह प्रमुख जे सद्दानी ।
घन ते कस्य ताल घनानी, वसादिक ना शब्द झूसरानी ।।

८. जिन भाखै हंता जानी, सुणै छद्मस्थ सर्व सद्दानी ।
प्रभु ! सुणै स्यू श्रोत्र फर्श्यानी, कै अणफर्शी सुणै वानी ?

९. जिन कहै सुणै श्रोत्र फर्श्यानी, अणफर्शी सुणैं नही वानी ।
जाव नियमा छ दिशि संभलानी, प्रथम शतके[2] आहार जिम जानी ।।

१०. प्रभु ! छद्मस्थ मनुष्य पिछानी, शब्द साभलै आरगतानी ?
श्रोत्र इन्द्रिय विषे आगतानि, ते आरगत शब्द कहानि ।।

११. कै शब्द साभलै पारगतानि ? श्रोत्र इद्रिय विषय न आनी ।
कह्या शब्द पारगत तानी, हिव उत्तर दै जिन ज्ञानी ।।

१२. शब्द साभलै आरगत आनी, इन्द्रिय गोचर आव्या सुणानी ।
नही साभलै पारगतानि, श्रोत्र विपय न आव्या तानि ।।

---

१ ढोल का एक प्रकार

२ भगवई १।३२

आहारोवि जहा पण्णवणाए (प० २८।१) पढमे आहारुद्देसए तहा भाणियव्वो ।

४. पिरिपिरियासद्दाणि वा,
'परिपिरिय' त्ति कोलिकपुटकावनद्धमुखो वाद्य-विशेप. (वृ० प० २१६)

५ पणवसद्दाणि वा, पडहसद्दाणि वा, भभासद्दाणि वा, होरभसद्दाणि वा,
'पणव' त्ति भाण्डपटहो लघुपटहो वा तदन्यस्तु पटह इति 'भभ' त्ति ढक्का 'होरभ' त्ति रूढिगम्या । (वृ० प० २१७)

६ भेरिसद्दाणि वा, झल्लरीसद्दाणि वा, दुदुभिसद्दाणि वा,
'भेरि' त्ति महाढक्का 'झल्लरि' त्ति वलयाकारो वाद्यविशेप 'दुदुहि' त्ति देववाद्यविशेपः, अथोक्तानुक्तसग्रहद्वारेणाह— (वृ० प० २१७)

७ तताणि वा, विततानि वा, घणाणि वा, झुसिराणि वा ?
तत वीणादिक ज्ञेय, वितत पटहादिक ।
घन तु कास्यतालादि, वशादि शुपिर मतम् ।। (वृ० प० २१७)

८ हंता गोयमा ! छउमत्थे ण मणुस्से आउडिज्जमाणाइ सद्दाइ सुणेइ, त जहा—सखसद्दाणि वा जाव झुसिराणि वा । ताइ भते ! किं पुट्ठाइ सुणेइ ? अपुट्ठाइ सुणेइ ?

९ गोयमा ! पुट्ठाइ सुणेइ, नो अपुट्ठाइं सुणेइ जाव नियमा (स० पा०) छद्दिसि सुणेइ । (श० ५/६४)
'पुट्ठाइ सुणेइ' इत्यादि तु प्रथमशते आहाराधिकारवदवसेयमिति । (वृ० प० २१७)

१० छउमत्थे ण भते ! मणूसे किं आरगयाइ सद्दाइ सुणेइ ?
'आरगयाइ' त्ति आराद्भागस्थितानिन्द्रियगोचरमागतानित्यर्थः (वृ० प० २१७)

११ पारगयाइं सद्दाइ सुणेइ ?
'पारगयाइ' त्ति इन्द्रियविषयात्परतोऽवस्थितानिति (वृ० प० २१७)

१२ गोयमा ! आरगयाइ सद्दाइ सुणेइ, नो पारगयाइं सद्दाइ सुणेइ । (श० ५/६५)

१३. प्रभु! जिम छद्मस्थ नरानि, शब्द साभलै आरगतानि।
नही साभलै पारगतानि, तिम केवलो स्यू ते सुणानि?

१३ जहा णं भते! छउमत्थे मणूसे-आरगयाइ सद्दाइं सुणेइ, नो पारगयाइ सद्दाइ सुणेइ, तहा ण केवली किं आरगयाइं सद्दाइ सुणेइ? पारगयाइ सद्दाइ सुणेइ?

१४. जिन भाखै केवलज्ञानी, आरगत तथा पारगतानी।
इन्द्रिय गोचर आव्या तानि, तथा नाया इद्रिये गोचरानि॥

१४ गोयमा! केवली ण आरगय वा, पारगय वा

१५ सव्वदूर पाठ पहिछानी, तस अर्थ अतिहि दूर जानी।
मूल कहिता अतिही निकटानि, तिहा रह्या शब्द अनेकानि॥
१६. अतिहि दूरवर्त्ति आख्यानि, वले कह्या अत्यन्त निकटानि।
हिवै मध्य वीच रह्या यानी, तेहनु आगल पाठ कहानी॥
१७. अणतिय पाठ पिछानी, मध्य वीच रह्या जे शब्दानी।
आदि अत मध्य त्रिहु आनी, योग थी इहा शब्द पिछानी॥

१५-१७ सव्वदूर-मूलमणतिय सद्द
सर्वथा दूर—विप्रकृष्ट मूल च—निकट सर्वदूरमूल तद्योगाच्छब्दोऽपि सर्वदूरमूलोऽतस्तम् अत्यर्थं दूरवर्तिनमत्यन्तासन्न चेत्यर्थ अन्तिक—आसन्न तन्निषेधादनन्तिक तद्योगाच्छब्दोऽप्यनन्तिकोऽनस्तम्। (वृ० प० २१७)

१८. ते शब्द नैं केवलज्ञानी, जाणै देखै महिमानी।
प्रभु! किण अर्थ ए कहानि? वतका केवली नी वखानि॥

१८ जाणइ पासइ। (श० ५/६६)
से केणट्ठेण भते! एव वुच्चई—केवली ण आरगय वा, पारगय वा सव्वदूरमूलमणतिय सद्द जाणइ-पासइ?

१९. जिन भाखै केवलज्ञानी, पूर्व दिशि मे पहिछानी।
मिय—प्रमाण सहित द्रव्यानि, जाणै गर्भज मनुष्य जीवानि॥

१९ गोयमा! केवली ण पुरत्थिमे ण मिय पि जाणइ, 'मिय पि' त्ति परिमाणवद् गर्भजमनुष्यजीवद्रव्यादि, (वृ० प० २१७)

२०. अमिय नो अर्थ अनतानि, वनस्पति तणा जीव जानि।
तथा असखेज्ज कहिवानी, पृथ्वी प्रमुख जीव पहिछानी॥

२० अमिय पि जाणइ।
'अमियपि' त्ति अनन्तमसख्येय वा वनस्पतिपृथिवीजीवद्रव्यादि। (वृ० प० २१७)

२१. इम दक्षिण, पश्चिम, उत्तरानि, ऊची, नीची दिशि विषे जानि।
जाणै प्रमाण सहित द्रव्यानि, असख अनत द्रव्य पिण जानि॥

२१ एव दाहिणे ण, पच्चत्थिमे ण, उत्तरे ण, उड्ढ, अहे मिय पि जाणइ, अमिय पि जाणइ।

२२. सर्व जाणै केवलज्ञानी, सर्व देखे केवली ध्यानी।
जाणै देखे सर्व थी ज्ञानी, केवली थी वात नहिं छानी॥

२२ सव्व जाणइ केवली, सव्व पासइ केवली।
सव्वओ जाणइ केवली, सव्वओ पासइ केवली।

२३. सर्व थी सर्व काल पिछानी, सर्व भाव केवली जानी।
वलि सर्व भाव पर्यवानी, देखे छै केवलज्ञानी॥

२३ सव्वकाल जाणइ केवली, सव्व काल पासइ केवली।
सव्वभावे जाणइ केवली, सव्वभावे पासइ केवली।

२४. केवलज्ञानी तणै सुविधानि, वारू ज्ञान अनत वखानि।
वलि केवली रै सुप्रधानी, ओ तो अनत दर्शन जानी॥

२४ अणते नाणे केवलिस्स, अणते दसणे केवलिस्स।

२५. वलि केवली रै छै निधानि, निरावरण ज्ञान गुणखानि।
वलि केवली र अधिकानि, निरावरण दर्शन गुणखानि॥

२५ निव्वुडे नाणे केवलिस्स, निव्वुडे दसणे केवलिस्स।

२६. वाचनातर वृत्ति वखानि, निव्वुडे वितिमिरे यानि।
विसुद्धे त्रिहु पद विशेषानि, ज्ञान दर्शण तणा कहानि॥

२६ वाचनान्तरे तु 'निव्वुडे वितिमिरे विसुद्धे' त्ति विशेषणत्रय ज्ञानदर्शनयोरभिधीयते। (वृ० प० २१७)

२७. निवृत्त ते निष्ठागत ज्ञानी, क्षीण आवरण वितिमिर जानि।
वारू एहिज विशुद्ध वखानी, विशेपण ज्ञान दर्शन आनी॥

२७ तत्र च 'निर्वृत' निष्ठागत 'वितिमिर' क्षीणावरणमत एव विशुद्धमिति। (वृ०प० २१७)

२८. तिण अर्थ करी महिमानि, केवलि जाव सर्वविदानि।
पंचम शतक तणो पहिछानो, देश चोथा उदेशा नो जानी॥

२८ से तेणट्ठेण गोयमा! एव वुच्चइ—केवली ण आरगय वा, पारगय वा सव्वदूर-मूलमणतिय सद्द जाणइ-पासइ। (श० ५/६७)

२९. गुण्यासीमी ढाल कहानी, भिक्षु भारीमाल बहु ध्यानी ।
ऋषराय प्रसाद निधानि, सुख 'जय-जश' हरप किल्यानि ।।

## ढाल : ८०

### दूहा

१. छद्मस्थ केवली नी कही, वक्तव्यता अधिकार ।
वलि तेहनीज कहै अछै, निसुणो तेह विचार ।।

१ अथ पुनरपि छद्मस्थमनुष्यमेवाश्रित्याह—
(वृ० प० २१७)

* देव जिनेन्द्रना वच विमल निमल निकलक रे ।। (ध्रुपद)

२. हे प्रभु ! छद्मस्थ मनुष्य ते, ओतो हसै हासो करै ताम रे ।
तथा उत्सुकपणो आणै वलि ? तव जिन कहै हता आम रे ।।
तव जिन कहै हता आम कै ··

२ छउमत्थे ण भते ! मणुस्से हसेज्ज वा ? उस्सुयाएज्ज वा ? हता हसेज्ज वा उस्सुयाएज्ज वा ।
(श० ५/६८)

३. जिम प्रभु ! छद्मस्थ मनुष्य ते, हसै उत्सुकपणो आणै अथाय ।
तिम केवली हासो उत्सुकपणो करै? अर्थ समर्थ नही, जिन वाय ।।

३. जहा ण भते ! छउमत्थे मणुस्से हसेज्ज वा, उस्सुयाएज्ज वा, तहा ण केवली वि हसेज्ज वा ? उस्सुयाएज्ज वा ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ५/६९)

४. किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यु, जिन भाखै जीव हसेह ।
वलि उत्सुकपणो करै तिको, चारित मोहकर्म उदयेह ।।

४ से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—जहा ण छउमत्थे मणुस्से हसेज्ज वा उस्सुयाएज्ज वा, नो ण तहा केवली हसेज्ज वा ? उस्सुयाएज्ज वा ?
गोयमा ! ज ण जीवा चरित्तमोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएण हसति वा, उस्सुयायति वा ।

५. चारित मोहनीय कर्म ते, केवली रै नही कोय ।
तिण अर्थे जाव छद्मस्थ ज्यू, केवली रै हासादि न होय ।।

५. से ण केवलिस्स नत्थि । से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—जहा ण छउमत्थे मणुस्से हसेज्ज वा, उस्सुयाएज्ज वा, नो ण तहा केवली हसेज्ज वा, उस्सुयाएज्ज वा । (श० ५/७०)

६. प्रभु ! एक जीव हसतो छतो, उत्सुकपणो करतो पहिछाण ।
कर्म प्रकृति वाधै केवली ? जिन भाखै सप्त अठ जाण ।।

६ जीवे ण भते ! हसमाणे वा, उस्सुयमाणे वा कइ कम्मपगडीओ वधइ ?
गोयमा ! सत्तविहवंधए वा, अट्ठविहवंधए वा ।

७. एव जाव वैमानीक नै, एक वचन सहु कहिवाय ।
एकेद्री नै पूर्व भव परिणाम थी, पूर्वे हस्या तेहनी अपेक्षाय ।।

७ एवं जाव वेमाणिए ।
एवमिति जीवाभिलापवन्नारकादिर्दण्डको वाच्यो यावद्वैमानिक इति, ...इह च पृथिव्यादीना हास: प्राग्भविकतत्परिणामादवसेय इति ।
(वृ० प० २१७,२१८)

### सोरठा

८. पूर्व भय रै माय, वद्धायु अभिमख वलि ।
तेह तणी अपेक्षाय, एकेद्री मे सभवै ।।

---

* लय · पुत्र वसुदेव नो गजसुकुमाल···· ।

९. *प्रभु[1] वहु नेरइया हसता छता, किती कर्म-प्रकृति बधकार।
जिन कहै सहु सप्त वधगा, आउबध विरह तिणवार॥
१०. अथवा सप्त वंधगा घणा, अष्टविध वंधगो एक।
अथवा सप्त वधगा घणा, अष्टविध वधगा बहु पेख॥

११. जीव एकेंद्री वरजी करी, उगणीस दडक भग त्रिण पेख।
जीव एकेंद्री बहु सप्त बधगा, अष्ट वधगा बहु भग एक॥
१२. नेरइयाण हसमाणे कति कम्मपगडीओ इत्यादि।
एहवो किणहिक पुस्तक नैं विषे, दीसै छै विशेष सुसाधि॥
१३. हे प्रभु ! छद्मस्थ मनुष्य ते, निद्रा—सुखे जागै ते लेवत।
प्रचला—ऊभो रह्यो जे नीद ले ? हता जिन उत्तर तत॥

१४. जेम कह्यु हसवा विषे, तिम निद्रा विषे कहिवाय।
णवर दर्शणावरणी कर्म नै उदै करि निद्रा प्रचलाय॥
१५. दर्शणावरणी कर्म क्षय गयो, तिण सू केवली रै नहि कोय।
अन्य पाठ कहिवो सहु, हसवा नी परे अवलोय॥
१६. इक वच जीव तिको प्रभु ! निद्रा प्रचला करतो ते माय।
कर्म प्रकृति बांधै केतली ? सप्त अष्ट वध जिन वाय॥

१७. एवं जाव वैमानिक लगै, एक वच सर्व पाठ सुचीन।
बहु वचने कहियै हिवै, उगणीस दडके भागा तीन॥
१८. जीव अनै एकेंद्री विषे, एक भागो कहिवाय।
सप्त कर्म वंधगा घणा, अष्ट वध बहु थाय॥
१९. निद्रा दर्शणावरणी उदय थी, तेहथी पाप कर्म न वधाय।
पाप वंधै मोह उदय थी, तो सप्त अष्ट वधै किण न्याय॥
२०. मोहकर्म नै उदय करी, अशुभ स्वप्न आवै निद्रा माय।
पाप कर्म वधै तेहथी, सप्त अष्ट वधै इण न्याय॥

### सोरठा

२१. "खधक' नै अधिकार, गुरु-लघु कह्यो जीव नै।
ते शरीर आश्री धार, पिण चेतन गुरुलघु नही॥
२२. तिम इहा जाणो न्याय, अशुभ स्वप्न मोह कर्म थी।
तेहथी पाप वधाय, पिण निद्रा सू नहि कर्म वध॥
२३. मोह उदय थी जाण, विगड्यो जीव कहीजियै।
तिण कारण पहिछाण, तेहथी पाप वधै अछै॥

*लय : पुत्र वसुदेव नो गजसुकुमाल

१. देखें भगवती जोड, ढाल ३४ गाथा ३० का टिप्पण, पृ० २१४, २१५।

९. नारकादिपु तु त्रय, तथाहि—सर्वे एव सप्तविध-बन्धकाः स्युरित्येकः। (वृ० प० २१८)

१०. अथवा सप्तविधबन्धकाश्चाष्टविधबन्धकश्चेत्येव द्वितीय, अथवा सप्तविधबन्धकाश्चाष्टविधबन्धकाश्चेत्येव तृतीय. इति। (वृ० प० २१८)

११ पोहत्तएहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभगो। (श० ५/७१)

१३ छउमत्थे ण भते ! मणुस्से निद्दाएज्ज वा ? पयलाएज्ज वा ? हता निद्दाएज्ज वा, पयलाएज्ज वा। (श० ५/७२)

निद्रा—सुखप्रतिवोधलक्षणा कुर्यात् निद्रायेत, प्रचलाम्—ऊर्ध्वस्थितनिद्राकरणलक्षणा कुर्यात् प्रचलायेत्। (वृ० प० २१८)

१४,१५ जहा हसेज्ज वा तहा नवर दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएण निद्दायति वा पयलायति वा, से णं केवलिस्स नत्थि अण्ण त चेव (स० पा०) (श० ५/७३, ७४)

१६ जीवे ण भते ! निद्दायमाणे वा, पयलायमाणे वा कइ कम्मपगडीओ बधइ ?
गोयमा ! सत्तविहबधए वा, अट्ठविहबधए वा।

१७. एव जाव वेमाणिए। पोहत्तिएसु जीवेगिंदियवज्जो तियभगो। (श० ५/७५)

२४. दर्शणावरणी देख, तास उदय जंतु दवै ।
तिण कारण सपेख, तेहथी कर्म वधै नही ॥
२५. एकेंद्रियादि पेख, निद्रा विषेज मोह नैं ।
उदय कषाय विशेख, वलि अविरत थी असुभ वंध" ॥
(ज०स०)

दूहा

२६. कही वात छद्मस्थ नी, छद्मस्थ गर्भ साहरत ।
ते अधिकार कहै हिवै, वृत्तौ वीर उदंत ॥
२७. तथा केवली अधिकार थी, केवली श्री महावीर ।
तसु घटनाक्रम आश्रयी, कहियै वात गभीर ॥
२८. यद्यपि वीर विधान इह, ए पद नहि देखाय ।
तथापि हरिणेगमेषी इण वचन थकीज जणाय ॥

२९. हरिणेगमेषी वीर नैं, गर्भ विषे आणेह ।
हरिणेगमेषी हे प्रभु ! इह विध प्रश्न करेह ॥
३०. गर्भ हरण सामान्य थी, तास विविक्षा होय ।
तो देवे ण भते ! इसो प्रश्न करत अवलोय ॥
३१. हरि इंद्र है तेहना सबध थी कहिवाय ।
हरिणेगमेषी नाम ए सर्व वृत्ति रै माय ॥
३२. *हरिणेगमेषी सुर प्रभु ! शक्र आदेशकारो कहाय ।
पदाती अनीक नु अधिपति, शक्र दूत कह्यो इण न्याय ॥

२७ केवल्यधिकारात्केवलिनो महावीरस्य सविधानक-
माश्रित्येदमाह— (वृ० प० २१८)

२८ इह च यद्यपि महावीरसविधानाभिधायक पद न
दृश्यते तथाऽपि हरिनैगमेषीति वचनात्तदेवानुमीयते ।
(वृ० प० २१८)

२९ हरिनैगमेषिणा भगवतो गर्भान्तरे नयनात् ।
(वृ० प० २१८)

३० यदि पुन सामान्यतो गर्भहरणविवक्षाऽभविष्यत्तदा
'देवे ण भते !' इत्यवक्ष्यदिति । (वृ० प० २१८)

३१ तत्र हरि —इन्द्रस्तत्सम्वन्धित्वात् हरिनैगमेषीति
नाम । (वृ० प० २१८)

३२. 'से नूण भते ! हरि-नेगमेसी' सक्कदूए
शक्रदूत —शक्रादेशकारी पदात्यनीकाधिपति ।
(वृ० प० २१८)

दूहा

३३. येन[1] शक्र आदेश थी, महावीर भगवान ।
देवानदा गर्भ थी, तिसला गर्भे आन ॥
३४. *स्त्री गर्भ सहरतो थको, ले जातो थको वोजे स्थान ।
जीव सहित पुद्गल-पिंड गर्भ नैं, सहरण चोभगो जान ॥

३५. गर्भ थकी गर्भ सहरै, गर्भ थी ते उदर थी हुंत ।
जीव सहित पुद्गल-पिंड गर्भ नैं, संहरति —प्रवेश करंत ॥

३६. तथा गर्भ थकी योनि सहरै, गर्भ थी ते उदर थी जाण ।
योनि तणो प्रवेश करै अछै, योनि उदर करी घालै जाण ॥

३३. येन शक्रादेशाद् भगवान् महावीरो देवानन्दागर्भाद्
त्रिशलागर्भे सहृत इति । (वृ० प० २१८)

३४ इत्थीगब्भ सहरमाणे
स्त्रिया सम्बन्धी गर्भ —सजीवपुद्गलपिण्डक
स्त्रीगर्भस्त (वृ० प० २१८)

३५ कि गब्भाओ गब्भ साहरइ ?
तत्र 'गर्भाद्' गर्भाशयादवधे 'गर्भं' गर्भाशयान्तर
'सहरति' प्रवेशयति 'गर्भं' सजीवपुद्गलपिण्डलक्षण-
मिति ।

३६ गब्भाओ जोणि साहरइ ?
तथा गर्भादवधे 'योनिं' गर्भनिर्गमद्वार ,संहरति
योन्योदरान्तर प्रवेशयतीत्यर्थ. । (वृ० प० २१८)

---

१ हरिणेगमेषिणा

* लय : पुत्र वसुदेव नो गजसुकुमाल······

३७. योनि थकी गर्भ साहरै, योनि गर्भ-निर्गम द्वार ।
जीव सहित पुदगल-पिंड ते, गर्भ तणु प्रवेश विचार ॥

३७. जोणीओ गब्भं साहरई ?
योनिद्वारेण गर्भं सहरति गर्भाशय प्रवेशयतीत्यर्थ ।
(वृ० प० २१८)

३८. योनि थकी योनि सहरै, योनि उदर थकी काढी वार ।
योनि द्वारे करी तेहनो, प्रवेश करै तिणवार ॥

३८ जोणीओ जोणि साहरइ ?
योनेः सकाशाद्योनि सहरति नयति योन्योदरान्नि-ष्काश्य योनिद्वारेणैवोदरान्तर प्रवेशयतीत्यर्थ ।
(वृ० प० २१८)

३९. वीर कहै सुण गोयमा ! पहिलो भांगो दूजो चोथो भंग ।
ए त्रिहु भगे न सहरै, तीजा भागा नो इहा प्रसग ॥
४०. तथा विध व्यापार करण करी, सुर कला गर्भ फर्सी विशेप ।
सुखे सुखे योनि द्वारे करी, गर्भाशय जीव तणु प्रवेश ॥

३९,४० गोयमा ! नो गब्भाओ गब्भ साहरइ, नो गब्भाओ जोणि साहरइ, नो जोणीओ जोणि साहरइ, परामुसिय परामुसिय अव्वावाहेण अव्वावाह जोणीओ गब्भ साहरइ । (श० ५।७६)
तथाविधकरणव्यापारेण सस्पृश्य सस्पृश्य स्त्रीगर्भम् अव्याबाधमव्याबाधेन सुखसुखेनेत्यर्थ ।
(वृ० प० २१८)

## दूहा

४१. हरिणेगमेषी नु कह्यु, गर्भ-सहरण विचार ।
हिव तेहनु सामर्थपणु, देखाडै इहवार ॥

४१ अथ च तस्य गर्भसहरणे आचार उक्त, अथ तत्सामर्थ्यं दर्शयन्नाह— (वृ० प० २१८)

४२. *हरिणगमेपी सुर प्रभु ! शक्रदूत स्त्री-गर्भ ते जीव ।
नखाग्र रोमकूपे करी, समर्थ घालण काढण अतीव ॥

४२ पभू ण भते ! हरि-नेगमेसी सक्कदूए इत्थीगब्भ नहसिरसि वा, रोमकूवसि वा, साहरित्तए वा ? नीहरित्तए वा ?

४३. जिन कहै हा समर्थ अछै, निश्चै करी गर्भ रै ताय ।
थोडी घणी पीडा उपावै नही, चामडी नु छेद वलि थाय ॥
४४. छवि नु छेद थया विना, नख अग्र प्रमुख न प्रवेश ।
सूक्ष्मपणे प्रवेश नीहरण करै, एहवी सुर लाधी लब्धि विशेष ।
४५. देश आख्यु चोपनमा अक नु, आखी ढाल असीमी उदार ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, सुखसपति 'जय-जश' सार ॥

४३ हता पभू, नो चेव ण तस्स गब्भस्स किंचि आबाह वा विबाह वा उप्पाएज्जा, छविच्छेद पुण करेज्जा ।
४४. ए सुहुम च ण साहरेज्ज वा, नीहरेज्ज वा ।
(श० ५।७७)
गर्भस्य हि छविच्छेदमकृत्वा नखाग्रादौ प्रवेशयितुम-शक्यत्वात् । (वृ० प० २१८,२१९)

## ढाल : ८१

## दूहा

१. गर्भ-हरण महावीर नु, थयु अछेरो जेह ।
तसु शिष्य अइमुत्ता तणु, हिव अधिकार कहेह ॥

१ अनन्तर महावीरस्य सम्बन्धि गर्भान्तरसङ्क्रमण-लक्षणमाश्चर्यमुक्तम्, अथ तच्छिष्यसम्बन्धि तदेव दर्शयितुमाह— (वृ० प० २१९)

---

* लय : पुत्र वसुदेव नो गजसुकुमाल……

२. तिण काले नै तिण समय, वीर तणो शिष्य सार ।
अइमुत्तो नामे कुमार-श्रमण महासुखकार ॥

२. तेण कालेणं तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अइमुत्ते नाम कुमार-समणे ।

३. "वृत्तिकार पट वर्ष में, प्रव्रज्या कहि तास ।
ठाम ठाम सूत्र चरण, कह्य अधिक अठ वास ॥

३. षड्वर्षजातस्य तस्य प्रव्रजितत्वात् (वृ० प० २१६)

४. आठ वर्ष उणा भणी, दीक्षा कल्पै नाहि ।
आठ वर्ष जाझे चरण, ववहार दसमा माहि ॥

४. नो कप्पइ निग्गथाण वा ·· साइरेगट्ठवासजाय उवट्ठावेत्तए वा सभुजित्तए वा ।
(व्यवहार १०।२१,२२)

५. असोच्चा केवली तणो, आयू जघन्य कहेस ।
आठ वर्ष जाझो भगवती, नवम इकतीसमुद्देश ॥

५. से ण भते ! कयरम्मि आउए होज्जा ?
गोयमा ! जहण्णेण सातिरेगट्ठवासाउए, उक्कोसेण पुव्वकोडिआउए होज्जा (भ० श० ६।४१)

६. शुक्ल लेश उत्कृष्ट स्थिति, ऊणी नव वर्षेण ।
पूर्व कोड उत्तरज्झयण, चोतीसम अज्झेण ॥

६ मुहुत्तद्ध तु जहन्ना, उक्कोसा होइ पुव्वकोडी उ ।
नवहि वरिसेहि ऊणा, नायव्वा सुक्कलेसाए ॥
(उत्तरा० ३४।४६)

७. आऊ आठ वरस अधिक, शिव पद पामै ताम ।
सूत्र उववाई मे कह्यो, इत्यादिक वहु ठाम ॥

७ जीवा ण भते ! सिज्झमाणा कयरम्मि आउए सिज्झति ? गोयमा ! जहण्णेण साइरेगट्ठवासाउए, उक्कोसेण पुव्वकोडीयाउए सिज्झति ।
(ओवाइय सू० १८८)

८. तिण कारण टीका मझे, अइमुत्त ना पट् वास ।
आख्या तेह विरुद्ध छै, समय वचन थी तास ॥
९. शुक्ललेश-स्थिति भव-स्थिति, अठ वर्ष ऊणी नाहि ।
तीन काल नी वात ए, दाखी सूतर माहि ॥
१०. तिण कारण त्रिहु काल ना जिन नी पिण ए रीत ।
आठ वर्ष ऊणा भणी, न दियै चरण वदीत ॥
११. आठ वर्ष जाझा भणी, चारित्र केवल सिद्धि ।
आख्या छै सूत्रा मझे, पावै ए त्रिहु ऋद्धि ॥
१२. जिन पट वर्ष दियै दीक्षा, तो केवल शिव पिण थाय ।
चरण कहै तो केवली अरु शिव नहि किण न्याय ?
१३. पट् वर्षे ए त्रिहु हुवै, तो शुक्ल-लेश स्थिति ताय ।
पट् वर्ष ऊणो तसु, पूर्व कोड कहिवाय ॥
१४. चरम-शरीरी आयु पिण, कहिवू जघन्य छ वास ।
आठ वर्ष जाझो कह्यु, सूत्र उववाई तास ॥
१५. शुक्ल लेश-स्थिति वर्ष नव, ऊणी पूरव कोड ।
नवमा नु ए देश है, तिण सू नव वर्ष जोड ॥
१६. इत्यादिक वहु न्याय करि, चरण केवल शिव रीत ।
आठ वर्ष जाझे हुवै, काल त्रिहु सुवदीत ॥" (ज० स०)

*श्रमण अइमुत्तो रे, चरण-रयण चित चगे ।
प्रकृति-भद्रीक विनीत प्रवर, जिन-आणा-रति-रस रगे ॥ (ध्रुपदं)

पगइभद्दए

१७. प्रकृति स्वभावे उपशमवंतो, पतली च्यार कषाया ।
कोमल निरहकार गुणे करि, शोभत ते मुनिराया ॥

१७ पगइउवसते पगइपयणुकोहमाणमायालोभे मिउमद्दवसपन्ने ।

* लय : कुन्थु जिनवर रे ·······

१८. लीन नही ससार विषे मुनि, इद्रिय वस हद कीनी ।
भद्रिक भाव विनय गुण करिनै, आतम अतिही भीनी ॥

१८. अल्लीणे विणीए । (श० ५/७८)

१६. तिण अवसर ते कुमर अइमुत्तो, श्रमण तपस्वी तीखो ।
एक दिवस महा वृष्टि थया पछै, च्यार तीर्थ जश टीको ॥

१६ तए ण से अइमुत्ते कुमार-समणे अण्णया कयाइ महावुट्ठिकायसि निवयमाणसि ।

२०. पडघो—पात्र रजोहरण—ओघो, काख विषे जे लेई ।
वहिर्भूमिका अर्थे मुनिवर, चाल्यो बाहिर तेही ॥

२०. कक्खपडिग्गह-रयहरणमायाए वहिया संपट्ठिए विहाराए । (श० ५।७६)

२१. तिण अवसर ते कुमर अइमुत्तो, श्रमण घणु सुखदाई ।
बाहलो जल नों वहितो देखी, बाल-लीला मन आई ॥
[श्रमण अइमुत्तो रे, वाल लीला चित लागै ।
चरम शरीरी उत्तम प्राणी, पिण हिवडा जल रागै ॥] (ध्रुपद)

२१ तए णं से अइमुत्ते कुमार-समणे वाहय वहमाण पासइ,

२२. पाल माटी नी बाधी नै मुनि, पात्रो मेली बेवै ।
ए मुझ नावा ए मुझ नावा, नावडिया जिम खेवै ॥

२३. उदक विषे पडघा प्रति करिनै, वाहतो थको मुनि खेलै ।
रमण क्रिया करतो इम रमतो, रामत रस रग रेलै ॥

२२,२३. पासित्ता मट्टियाए पालिं वधइ, वधित्ता 'णाविया मे, णाविया मे' नाविओ विव णावमय पडिग्गहग उदगसि पव्वाहमाणे-पव्वाहमाणे अभिरमइ ।

२४. अइमुत्ता प्रति रमतो देखी, स्थविर मुनि गुणगेह ।
तेहनी अत्यत अनुचित चेष्टा, निरखी निज नयणेह ॥

२५. अइमुत्ता मुनिवर नों तेहवै, ते उपहास्य करता ।
श्रमण प्रभू महावीर समीपे, आवी एम वदता ॥

२४,२५ त च थेरा अद्दक्खु । जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता एव वदासी—
'अद्राक्षु.' दृष्टवन्त, ते च तदीयामत्यन्तानुचिता चेष्टा दृष्ट्वा तमुपहसन्त इव भगवन्त पप्रच्छु, (वृ० प० २१६)

२६. इम निश्चै देवानुप्रिया नों, अतेवासी सीस ।
कुमर अइमुत्तो श्रमण किते भव सीझस्यै अत करीस ?

२६ एव खलु देवाणुप्पियाण अतेवासी अइमुत्ते नाम कुमार-समणे, से ण भते ! अइमुत्ते कुमारसमणे कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाहिति सव्वदुक्खाण अत करेहिति ? (श० ५।८०)

२७. हे आर्यो ! इम दे आमत्रण, भगवत श्री महावीरं ।
ते स्थविरा प्रति इहविध भाखै, मेरु तणी पर धीर ॥

२७. अज्जोति ! समणे भगव महावीरे ते थेरे एवं वयासी—

२८. इम निश्चै करिनै हे आर्यो ! माहरो अ तेवासी ।
नाम अइमुत्तो कुमार-श्रमण ए, ऋषि रूडो गुणरासी ॥

२८ एव खलु अज्जो ! मम अतेवासी अइमुत्ते नाम कुमार-समणे ।

२६. प्रकृति स्वभावे भद्रिक यावत्, विनयवत विश्वासी ।
ते अइमुत्तो कुमार-श्रमण मुनि, इण भव मुक्ति सिधासी ॥

२६ पगइभद्दए जाव विणीए, से ण अइमुत्ते कुमार-समणे इमेण चेव भवग्गहणेण सिज्झिहिति ।

३०. यावत् सकल कर्म दुख नो मुनि, इणहिज भव क्षय करसी ।
ते माटै एहनै मति हेलो, अविचल वधु ए वरसी ॥

३० जाव अत करेहिति । त मा ण अज्जो ! तुब्भे अइमुत्त कुमार-समण हीलेह ।

३१. हे आर्यो ! अइमुत्ता मुनि नै, मने करि मति निदो ।
लोक सुणता पिण मति खिसो, ए महामुनि गुणवृदो ॥

३१ निंदह खिसह
'निंदह' त्ति मनसा 'खिसह' त्ति जनसमक्ष (वृ० प० २१६)

३२. तेहनी साख करि मति गरहो, नवि कीजै अपमान ।
योग्य भक्ति अणकरिवै करिनै, ए अपमान नु स्थान ॥

३२ गरहह अवमण्णह ।
'गरहह' त्ति तत्समक्षम् 'अवमण्णह' त्ति तदुचितप्रतिपत्त्यकरणेन (वृ० प० २१६)

३३. क्वचित् पाठ 'परिभवह' करो मति सर्व पूर्व कह्या जेह ।
वलि प्रभु वीर कहै स्थविरा नें, साभलजो हिव तेह ॥
३४. तुम्हे अहो देवानुप्रियाओ !, ए अइमुत्तो कुमार ।
तेह प्रतै अगिलाणपणे ग्रहो, खेद रहित अंगीकार ॥

३३ 'परिभवह' त्ति क्वचितपाठस्तत्र परिभव.—समस्त-पूर्वोक्तपदाकरणेन (वृ० प० २१६)

३४. तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! अइमुत्त कुमार-समण अगिलाए सगिण्हह,
'अगिलाए' त्ति अग्लान्या अखेदेन (वृ० प० २१६)

३५. अखेदपणे उपष्टभ द्यो एहनें, उवगिण्हह तणु अर्थ एह ।
अखेदपणे भात उदक विनय करि, व्यावच तुम्है करेह ॥

३५ अगिलाए उवगिण्हह, अगिलाए भत्तेण पाणेण विणएण वेयावडिय करेह ।
'उवगिण्हह' त्ति उपगृह्लीत उपष्टम्भ कुरुत ।
(वृ० प० २१६)

३६. कुमर अइमुत्तो श्रमण अतकर, भव नु छेदणहार ।
अतिम-शरीर ते चर्म शरीरी, निश्चेइ जाणो सार ॥

३६ अइमुत्ते ण कुमार-समणे अतकरे चेव, अ तिमसरीरिए चेव । (श० ५।८१)
'अतकरे चेव' त्ति भवच्छेदकर , स च दूरतरभवेऽपि स्यादत आह—'अतिमसरीरिए चेव' त्ति चरमशरीर इत्यर्थ । (वृ० प० २१६)

३७. स्थविर तदा प्रभु वचन सुणी नें, जिन वदी करी नमस्कार ।
कुमर अइमुत्ता श्रमण प्रतै करै खेद रहित अंगीकार ॥

३७ तए ण ते थेरा भगवतो समणेण भगवया महावीरेण एव वुत्ता समाणा समण भगव महावीर, वदति नमसति, अइमुत्त कुमार-समण अगिलाए सगिण्हति,

३८. यावत् विविध वैयावच करता, अग्लान पणे तिणवार ।
वीर वचन थी चित स्थिर कीधो, स्थविर वडा गुणधार ॥

३८. अगिलाए उवगिण्हति, अगिलाए भत्तेण पाणेण विणएण वेयावडिय करेंति । (श० ५।८२)

## सोरठा

३९. "अइमुत्ता नें जोय, प्रायश्चित इहा चाल्यो नही ।
पिण कारज अवलाय, दड आवै जेहवो अछै ॥
४०. वच रहनेमि विरुद्ध, सीहो रोयो मोह वस ।
कारज एह अशुद्ध, तसु दड पिण चाल्यो नही ॥
४१. सेलक पासत्थ थाय, वीर लब्धि फोडी वलि ।
पथ तीन चिहु माय, नागश्री हेली मुनि ॥
४२. इत्यादिक वहु जाण, दड नहि चाल्यो सूत्र में ।
पिण कारज विण-आण, तेहनों दड लीधो हुसै ॥
४३. नशीत मे अवलोय, कार्य ना प्रायश्चित कह्या ।
ते कार्य करै कोय, प्रायश्चित तेहनो अछै" ॥ (ज० स०)

४४. *अंक चोपन नु देश कह्यु ए, इक्यासीमी ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' मंगलमाल ॥

*लय : कुन्यु जिनवर रे······

## ढाल : ८२

### दूहा

१. चरमशरीरी वीर-शिष्य, अइमुत्तो सुविमास ।
अन्य मुनि कितला केवली, हिव तसु प्रश्न प्रकाश ॥

*जगनाथ दयाल कृपाल प्रभु पूरण संपदा ।
जिनेन्द्र मोरा त्रिभुवन-तिलक महावीर हो ॥ (ध्रुपदं)

२. तिण काले नै तिण समै, जिनेन्द्र मोरा, सप्तम कल्प शोभाय हो ।
महाशुक्र नाम मनोहरू, जिनेन्द्र मोरा, पुन्यवत प्राणी पाय हो ॥

३. महासामान्य नामे भलो, प्रवर विमान थी पेख ।
महाऋद्धिवंत वे देवता, जाव महानुभाव देख ॥

४. श्रमण भगवत महावीर पै, प्रगट थया तिणवार ।
वीर प्रतै वदै मन करी, मने करी नमस्कार ॥

५ प्रश्न इसू पूछै मन करी, देवानुप्रिया ना तेह ।
सीस किता सय सीझसै, यावत् अत करेह ?

६. सुर विहु मन थी पूछ्ये छते, भगवत श्री महावीर ।
मने करीनै उत्तर दिये, तारक भवदधि तीर ॥

७. इम निश्चै हे देवानुप्रिया ! प्रभु भाखै मुझ शिष्य महागुणवत ।
प्रवर सप्त सया भल सीझसै, प्रभु भाखै जाव करसी दुख अत ॥

८. मन थी इम प्रभु वागर्या छता, सुर विहु सुण हरषाय ।
यावत् हरष ना वस थकी, अधिक हृदय विकसाय ॥

९. श्रमण भगवत महावीर नै, वंदै करै नमस्कार ।
मन थी सुश्रूषा करता छता, प्रणमन करता उदार ॥

१०. सन्मुख प्रभु नै रह्या थका, जाव करै पर्युपास ।
स्वाम तणी सेवा तणो, मन मे अधिक हुलास ॥

११. तिण कालै नै तिण समय, वीर तणो सुविचार ।
जेष्ठ अतेवासी भलो, इन्द्रभूती अणगार ॥

१२. जाव अतिही दूरो नही, नही अति प्रभु नै नजीक ।
ऊर्द्ध जानु जाव विचरता, धरता ध्यान सधीक ॥

*लय. सींहल नृप कहै चंद नै……

---

१ यथाऽयमतिमुक्तको भगवच्छिष्योऽन्तिमशरीरोऽभवत् एवमन्येऽपि यावन्तस्तच्छिष्या अन्तिमशरीराः सद्वृत्तास्तावतो दर्शयितु प्रस्तावनामाह—
(वृ० प० २१६)

२ तेण कालेण तेण समएण महासुक्काओ कप्पाओ,

३ महासामाणाओ विमाणाओ दो देवा महिड्ढिया जाव महाणुभागा

४ समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय पाउब्भूया । तए ण ते देवा समण भगव महावीर वदति नमसति,

५ मणसा चेव इम एयारूव वागरण पुच्छति—
(श० ५/८३)
कति ण भते ! देवाणुप्पियाण अतेवासीसयाइ सिज्झिहिति जाव अन्त करेहिति ?

६ तए ण समणे भगव महावीरे तेहिं देवेहिं मणसा पुट्ठे तेसिं देवाण मणसा चेव इम एयारूव वागरण वागरेइ—

७ एव खलु देवाणुप्पिया ! मम सत्त अतेवासीसयाइ सिज्झिहिति जाव अत करेहिति ।

८ तए ण ते देवा समणेण भगवया महावीरेण मणसा पुट्ठेण मणसा चेव इम एयारूव वागरण वागरिया समाणा हट्ठतुट्ठचित्तमाणदिया णदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया

९ समण भगव महावीर वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता मणसा चेव सुस्सूसमाणा नमसमाणा

१० अभिमुहा विणएण पजलियडा पज्जुवासति ।
(श० ५/८४)

११ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अतेवासी इदभूई नाम अणगारे

१२. जाव अदूरसामते उड्ढजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ ।

१३. भगवंत गोतम नों जदा, ध्यानांतर वर्तमान ।
प्रारंभ्यो ध्यान पूरो थयो, नवो न आरम्भ्यो ध्यान ।।

१३ तए णं तस्स भगवओ गोयमस्स झाणतरियाए वट्ट-
माणस्स
ध्यानान्तरिका — आरब्धध्यानस्य समाप्तिरपूर्वस्याना-
रम्भणमित्यर्थ॰ (वृ० प० २२१)

१४. इम ध्यानातर वर्तमान नैं, एहवा मन अध्यवसाय ।
जाव गोतम नैं ऊपना, सांभलजो चित ल्याय ।।

१४ इमेयारूवे अज्झत्थिए चितिए पत्थिए मणोगए
सकप्पे समुप्पज्जित्था—

१५. इम निश्चै विहु देवता, महाऋद्धिवान विमास ।
जाव महाभाग्य तणा धणी, प्रगट थया प्रभु पास ।।

१५. एव खलु दो देवा महिड्ढिया जाव महाणुभागा
समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय पाउब्भूया,

१६. ते भणी हू निश्चै करी, विहुं सुर जाणु नाय ।
किसा कल्प—देवलोक थी, आव्या छै इहा चलाय ।।

१६ त नो खलु अह ते देवे जाणामि कयराओ कप्पाओ
वा
कप्पाओ त्ति देवलोकात् (वृ० प० २२१)

१७. अथवा आया किण स्वर्ग थी, स्वर्ग ते प्रतर वास ।
कल्प तणा जे देश नैं, स्वर्ग कह्यो इहा तास ।।

१७ सग्गाओ वा
सग्गाओ त्ति स्वर्गाद्, देवलोकदेशात्प्रस्तटादित्यर्थ.
(वृ० प० २२१)

१८. अथवा आया किण विमाण थी, देश प्रतर नु ताय ।
किण कार्य अर्थ प्रयोजने ? तिण अर्थे शीघ्र आय ।।

१८. विमाणाओ वा कस्स वा अत्थस्स अट्ठाए इह हव्व-
मागया ?
विमाणाओ त्ति प्रस्तटैकदेशादिति । (वृ० प० २२१)

१९. ते भणी वीर पासै जइ, करू वदणा नमस्कार ।
जाव सेव कर प्रभ भणी, पूछू ए प्रश्न उदार ।।

१९. त गच्छामि ण समण भगवं महावी॰ वदामि न॰
सामि जाव पज्जुवासामि, इमाइ च ण ॰॰ रूवा॰
वागरणाइं पुच्छिस्सामि

२०. इम मन माहे चितवी, ऊठै ऊठी नैं तास ।
वीर प्रभ पै आयनैं जाव करै पर्युपास ।।

२० त्ति कट्टु एव सपेहेइ, सपेहेत्ता उट्ठाए ॰॰॰
उट्ठेत्ता जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव ॰
गच्छइ जाव पज्जुवासइ । (श० ५

२१. हे गोतम ! इम नाम ले, वीर गोयम नै कहंत ।
ध्यान पूर्ण थये गोयमा ! तू मन इम चितवंत ।।

२१ गोयमादि ! समणे भगवं महावीरे भगवं
एव वयासी—से नूण तव गोयमा ! ॰॰॰
वट्टमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए

२२. यावत् माहरू समीप छै, तिहां उतावलो आय ।
हे गोतम ! अर्थ समर्थ ए ? हां स्वामी ! सत्य वाय ।।

२२ जाव जेणेव मम अतिए तेणेव हव्वमागए, से
गोयमा ! अट्ठे समट्ठे ?
हता अत्थि ।

२३. ते भणी तू जा गोयमा ! निश्चै करि ए देव ।
उत्तर एहवा प्रश्न नो, वागरस्यै स्वयमेव ।।

२३ त गच्छाहि ण गोयमा ! एए चेव देवा ॰॰
रूवाइ वागरणाइ वागरेहिंति । (श०

२४. इम जिन आज्ञा दीधे छते, वीर वंदी नमस्कार ।
गमन करै सुरवर कन्है, कार्य अन्य निवार ।।

२४. तए ण भगव गोयमे समणेणं भगवया
अब्भणुण्णाए समाणे समण भगव
वदइ नमसइ, जेणेव ते देवा तेणेव ॰॰॰
णाए ।

२५. तिण अवसर ते देवता, गोतम आवता देख ।
हरप सतोप पाम्या घणा, यावत् विकस्या विशेख ।।

२५. तए ण ते देवा भगव गोयम ॰॰॰
पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणदिया ण॰॰
परमसोमणस्सिया ॰ ॰॰॰॰॰॰॰ ।

२६. शीघ्र ऊठीज सन्मुख जई, आया गोतम पाय ।
जावत नमण करी तदा, बोलै एहवी वाय ।

२७. इम निश्चै भगवत अम्है महाशुक्र महासामान ।
तेहथी बे देव महिड्ढिया, जाव प्रगट थया जान ।।

२८. तिण अवसर म्है वीर नै, करि वदना नमस्कार ।
मने करीनैं एहवो, प्रश्न पूछ्यो सुखकार ।।

२९. केतला हे प्रभु ! आपरै, अतेवासी सय जेह ।
केवल पामी सीझस्यै, यावत् अत करेह ।।

३०. इम मन करि पूछ्ये छते, मन थी उत्तर जिन देह ।
सात सौ मुझ शिष्य सीझस्यै, यावत् अत करेह ।।

३१. इम मन सू पूछा तणो, मन सू उत्तर महावीर ।
दीधे छते म्है प्रभु प्रतै, वदा नमण करा धीर ।।

३२. जाव करा पर्युपासना, एम कही सुर ताय ।
गोतम नै वंदी नमी, आया जिण दिशि जाय ।।

**सोरठा**

३३. "इहां पाठ रै मांय, कह्या सप्त सय केवली ।
तेहिज छै सत्य वाय, अधिका केम कहिजियै ?

३४. पनरै सय नैं तीन, तापस नै गोयम गणी ।
प्रतिबोध्या कहै चीन, सर्व थया ते केवली ।।

३५. किहाइक टीकाकार, एहवो अर्थ कियो अछै ।
ते अणमिलतो धार, एह वचन अवलोकता ।।

३६. सहस्र चोरासी साध, वीस सहस्र केवलधरा ।
ऋषभ तणे मुनि लाध, वलि सख्या अजितादि नै ।।

३७. तिम ए चउद हजार, ते माहे केवलधरा ।
सप्त सया सुखकार, पिण अधिका नहि केवली ।।

३८. चउद सहस्र रै माहि, वीर मुनी सहु आविया ।
तिमज सातसौ ताहि, चउद सहस्र मे एतला" ।। (ज. स.)

३९. *अक चोपन नो देश ए, ढाल बयासीमी धार ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' सपति सार ।।

---

२६ खिप्पामेव अब्भुट्ठेंति, अब्भुट्ठेत्ता खिप्पामेव अब्भु-वगच्छति जेणेव भगव गोयमे तेणेव उवागच्छति जाव नमसित्ता एव वयासी—

२७ एव खलु भते ! अम्हे महासुक्काओ कप्पाओ महा-सामाणाओ विमाणाओ दो देवा महिड्ढिया जाव महाणुभागा समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय पाउब्भूया ।

२८ तए ण अम्हे समण भगवं महावीर वदामो नमसामो, वदित्ता नमसित्ता मणसा चेव इमाइ एयारूवाइ वाग-रणाइ पुच्छामो—

२९ कइ ण भते ! देवाणुप्पियाण अतेवासीसयाइ सिज्झिहिंति जाव अत करेहिंति ?

३० तए ण समणे भगव महावीरे अम्हेहिं मणसा पुट्ठे अम्ह मणसा चेव इम एयारूव वागरण वागरेइ — एव खलु देवाणुप्पिया ! मम सत्त अतेवासीसयाइ जाव अत करेहिंति ।

३१ तए ण अम्हे समणेण भगवया महावीरेण मणसा चेव पुट्ठेण मणसा चेव इम एयारूव वागरण वागरिया समाणा समण भगव महावीर वदामो नमसामो

३२. जाव पज्जुवासामो त्ति कट्टु भगव गोयम वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता जामेव दिस पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया । (श० ५/८८)

---

* लय : सींहल नृप कहै चंद नै ......

## दूहा

१. सुर प्रस्ताव थकी हिवै, सुर नै सन्मुख जाण।
किण रीते बोलावियै, प्रश्नोत्तर पहिछाण॥

१. देवप्रस्तावादिदमाह— (वृ० प० २२१)

२. हे भदंत ! इह विध कही, भगवंत गोतम जान।
श्रमण प्रभु महावीर नै, जाव वदै इम वान॥

२ भंतेति ! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति जाव एवं वयासी—

*स्वाम वयण सुखकारी

स्वाम वयण सुखकारी, प्रभू थी प्रीत गोयम रै अतिभारी।
विविध प्रकार प्रश्न वर पूछ्या, स्वाम वयण सुखकारी॥ (ध्रुपद)

३. हे प्रभु ! देव संजती एहवो, वयण तास कहिवू होई ?
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नाही, अभ्याख्यानज ए जोई॥

३ देवा णं भंते ! संजया ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे। अब्भक्खाणमेयं देवाणं। (श० ५/८९)

४. हे प्रभु ! देव असंजती एहवो, वयण तास कहिवु होई ?
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नाही, निष्ठुर कठिन वचन जोई॥

४. देवा णं भंते ! असंजता ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे। निट्ठुरवयणमेयं देवाणं। (श० ५/९०)

५. हे प्रभु ! देव संजतासंजती, एहवु तसु कहिवु होई।
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नाही, असद्भूत ए वच जोई॥

५. देवा णं भंते ! संजयासंजया ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे। असब्भूयमेयं देवाणं। (श० ५/९१)

## सोरठा

६. असद्भूत ए जोय, अछतो वच ए छै सही।
तिण कारण अवलोय, संजतासंजती सुर नही॥

७. *से किं खाइ अथ प्रश्ने पुन, सुर नैं किम कहिवू होई ?
नही संजती सुर इम कहिवू, वचन कठिन नहि ए कोई॥

७. से किं खाइ णं भंते ! देवा ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा ! देवा णं नोसंजया ति वत्तव्वं सिया। (श० ५/९२)
से इति अथार्थे किमिति प्रश्नार्थः (वृ० प० २२१)

८. अर्थ असंजत तणोज आव्यो, ए पर्याय नाम आख्यू।
मूआ भणी परलोक गयो कहै, तेहनी परि ए पिण भाख्यू॥

८ असंयतशब्दपर्यायत्वेऽपि नोसंयतशब्दस्यानिष्ठुरवचनत्वान्मृतशब्दापेक्षया परलोकीभूतशब्दवदिति। (वृ० प०. २२१)

९. देव तणा अधिकार थकी वलि, सुर नी वात कहै सारी।
हे प्रभु ! भाषा किसी वदै सुर, किसी बोलता तसु प्यारी ?

९. देवाधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० २२१)
देवा णं भंते ! कयराए भासाए भासंति ? कयरा व भासा भासिज्जमाणी विसिस्सति ?

## सोरठा

१०. भाषा षट्विध होय, प्राकृत नै संस्कृत पुनः।
मागध पिशाची जोय, सूरसेनी वलि पंचमी॥

१०,११ भाषा किल षड्विधा भवति, यदाह—
प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषा च शौरसेनी च।
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो, देशविशेषादपभ्रंश॥ (वृ० प० २२१)

* लय : नाहरगढ ले चालो वनांजी

११. छट्ठी इहा कहीज, सूरसेनी नों भेद ए।
देश विशेष थकीज, अपभ्रंसी कहियै तसु॥
१२. किंचित् मागध जाण, किंचित् प्राकृत लक्षणे।
जेह विषे पहिछाण, अर्द्धमागधी ते कही॥

१२ तत्र मागधभाषालक्षणं किञ्चित्किञ्चिच्च प्राकृत-भाषालक्षणं यस्यामस्ति सार्द्धं मागध्या इति व्युत्पत्त्याऽर्द्धमागधीति। (वृ० प० २२१)

१३. *जिन कहै अर्द्धमागधी भाषा, वदै देवता जशधारी।
अर्द्धमागधी सुलभ वोलता, सुणता समझ लगै प्यारी॥

१३ गोयमा! देवा णं अद्धमागहाए भासाए भासंति। सा वि य णं अद्धमागहा भासा भासिज्जमाणी विसिस्सति। (श० ५/९३)

१४. कह्या सात सय केवलज्ञानी, वलि छद्मस्थ देव आख्यु।
हिव छद्मस्थ केवली ना प्रस्ताव थकी आगल दाख्यु॥
१५. अंतकर—भव-छेद करै प्रभु! अथवा चरम-तनु त्यानै।
केवलज्ञानी जाणै देखै? जिन भाखै हंता जानै॥

१४ केवलिछद्मस्थस्यवक्तव्यताप्रस्ताव एवेदमाह—
(वृ० प० २२१)
१५ केवली णं भंते! अंतकरं वा, अंतिमसरीरियं वा जाणइ-पासइ?
हंता जाणइ-पासइ। (श० ५/९४)

१६. अंतकरं वा चरमशरीरक, जाणै देखै जिन ज्याही।
तिम ही छद्मस्थ जाणै देखै? जिन कहै अर्थ समर्थ नाही॥

१६ जहा णं भंते! केवली अंतकरं वा, अंतिमसरीरियं वा जाणइ-पासइ, तहा णं छउमत्थे वि अंतकरं वा, अंतिमसरीरियं वा जाणइ-पासइ? गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

१७. किणहि प्रकार थकी वलि जाणै, ए अधिकार हिवै आणै।
साभल नै जाणै ए विहु प्रति, तथा प्रमाण थकी जाणै॥
१८. से किं तं सोच्चा अथ स्यू ते, ए विहु जाणै साभल नै?
जिन कहै केवली कन्है सुणी नै, जाणै अंतकरादिक नैं॥
१९. केवली ना श्रावक नै पासै, केवलि नी श्राविका पासै।
केवली तणा उपासक पासै, वलि तसु उपासिका आसै॥

१७ सोच्चा जाणइ-पासइ, पमाणतो वा। (श० ५/९५)

१८ से किं तं सोच्चा?
सोच्चा णं केवलिस्स वा,
१९ केवलिसावगस्स वा, केवलिसावियाए वा, केवलि-उवासगस्स वा, केवलिउवासियाए वा,

**सोरठा**

२०. केवली पास सुणत, श्रावक अर्थी सुणवा तणो।
ए करसी भव-अंत, इत्यादिक सुण जाणियै॥

२०. 'केवलिसावगस्स व' त्ति जिनस्य समीपे यः श्रवणार्थी सन् शृणोति तद्वाक्यान्यसौ केवलिश्रावकः तस्य वचनं श्रुत्वा जानाति, स हि किल जिनस्य समीपे वाक्यान्तराणि शृण्वन् अयमन्तकरो भविष्यतीत्यादि-कमपि वाक्यं शृणुयात् ततश्च तद्वचनश्रवणाज्जानातीति। (वृ० प० २२२)

२१. उपासक सेव करेह, सुणवा नी वांछा नथी।
सेवा तत्पर एह, जाणै तसु पासै सुणी॥

२१ केवलिनमुपास्ते यः श्रवणानाकांक्षी तदुपासनमात्रपरः सन्नसौ केवल्युपासकः तस्य वचः श्रुत्वा जानाति।
(वृ० प० २२२)

२२. *केवलीपाक्षिक स्वयंबुद्ध पै, वलि तसु श्रावक पै माणै।
तेहनी वलि श्राविका पासै, सांभल नै ते वलि जाणै॥

२२ 'तप्पक्खियस्स' वा, तप्पक्खियसावगस्स वा, तप्पक्खियसावियाए वा,
तप्पक्खियस्स त्ति केवलिपाक्षिकस्य स्वयबुद्धस्येत्यर्थः।
(वृ० प० २२२)

* लय : नाहरगढ ले चालो

२३. स्वयंबुद्ध तणा उपासक पासै, स्वयबुद्ध उपासिका पाह्यो ।
करसी भव नु अत इत्यादिक, वचन सुणी जाणै ताह्यो ।।

२३. तप्पक्खियउवासगस्स वा, तप्पक्खियउवासियाए वा

२४. या दस पै निसुणी नै जाणै, ए भव-अत करणवालो ।
अथवा चरमशरीरी ए छै, से त सोच्चा नीहालो ।।

२४. से त सोच्चा । (श० ५/६६)

२५. अथ स्यू ते प्रमाण हिवै ? जिन भाखै चउविव त्याही ।
प्रत्यक्ष अनुमान ओपम आगम, जिम अनुयोगद्वार माही ।।

२५. से किं त पमाणे ?
पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा— पच्चक्खे अणुमाणे ओवम्मे आगमे, जहा अणुओगदारे तहा नेयव्व

२६. प्रमाण यावत् जंवू उपरत, आत्मागम कहियै नाही ।
अनतरागम पिण नहि कहियै, परपरागम छै ज्याही ।।

२६ पमाण जाव तेण पर मुत्तस्स वि अत्थस्स वि नो अत्तागमे, नो अणतरागमे, परपरागमे ।
(श० ५/६७)

**सोरठा**

२७. जाणै जिण करि ताय, प्रमाण कहियै तेहनै ।
तेह चतुर्विध पाय, प्रत्यक्षादिक जाणवा ।।

२७ प्रमीयते येनार्थस्तत्प्रमाणं प्रमिति र्वा प्रमाण
(वृ० प० २२२)

२८. अक्ष जीव कहिवाय, अथवा अक्षज इंद्रिय ।
प्रति गत प्राप्तज थाय, प्रत्यक्ष कहियै तेहनै ।।

२८. अक्ष—जीव अक्षाणि वेन्द्रियाणि प्रति गत प्रत्यक्ष ।
(वृ० प० २२२)

२९. लिंगग्रहण धूमादि-सवधस्मरणादि अनु —
पछै ज्ञान अविवादि, एणे करि अनुमान ते[1] ।।

२९ अनु – लिंगग्रहणसम्बन्धस्मरणादे पश्चान्मीयतेऽनेनेत्यनुमानम् (वृ० प० २२२)

३०. सदृशपणा करेह, ग्रहै वस्तु जेण करी ।
उपमा कहियै तेह, तृतीय प्रमाणज नाम ए ।।

३०. उपमीयते—सदृशतया गृह्यते वस्त्वनयेत्युपमा सैव औपम्यम् (वृ० प० २२२)

३१. गुरु-पारम्पर्येण, आवै ते आगम कह्यु ।
ए चिहु प्रमाण वैण, हिव तसु भेद जुआ जुआ ।।

३१ आगच्छति गुरुपारम्पर्येणेत्यागम एषां स्वरूप शास्त्रलाघवार्थमतिदेशत आह—

३२. प्रत्यक्ष दोय प्रकार, इंद्रिय नै नोइंद्रिय ।
इंद्रिय पंच प्रकार, श्रोत्रेंद्रियादिक पच ही ।।

३२. पच्चक्खे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—इंदियपच्चक्खे नोइंदियपच्चक्खे य ।
से किं तं इंदियपच्चक्खे ? इंदियपच्चक्खे पचविहे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदियपच्चक्खे .. ।
(अणुओग० ५१६,५१७)

३३. नोइंद्रिय प्रत्यक्ष, त्रिविध जिनेश्वर आखियो ।
अवधिज्ञान वर दक्ष, मनपज्जव केवल प्रत्यक्ष ।।

३३ से किं त नोइंदियपच्चक्खे ?
नोइंदियपच्चक्खे तिविहे पण्णत्ते, त जहा—ओहिनाणपच्चक्खे मणपज्जवनाणपच्चक्खे केवलनाणपच्चक्खे ।
(अणु० ५१८)

३४. त्रिविध कह्यो अनुमान, पूर्ववत पहिलु कह्यु ।
शेषवत पहिछान, तृतीय दृष्टसाधर्म्यवत ।।

३४ से किं त अणुमाणे ?
अणुमाणे तिविहे पण्णत्ते, त जहा—पुव्वव सेसव दिट्ठसाहम्मव । (अणु०/५१९)

३५. पूर्ववत धुर भेद, माता अपणा पुत्र जे ।
वाल अवस्था वेद, देशांतरे गयो हुतो ।।

३६. काल केतलै तेह, तरुण होय आयो फिरी ।
कोइक चिह्न करेह, पूर्व दृष्ट क्षतादि जे ।।

३५,३६ से किं त पुव्वव ? पुव्वव—
गाहा—माता पुत्त जहा नट्ठ जुवाण पुणरागत ।
काई पच्चभिजाणेज्जा पुव्वलिंगेण केणई ।।
त जहा—खतेण वा ।

---

1. यहा धूआ है, इस लिंग—हेतु का ग्रहण, फिर धूम और अग्नि के नित्य सम्बन्ध (व्याप्ति) का स्मरण, इसके अनु—पश्चात् होने वाला मान—ज्ञान अनुमान कहलाता है ।

३७. श्वान हिडकियो आदि, खाधा करिवूं दाह नू ।
तेह वर्ण संवादि, मस लछन तिलकादि जे ॥
३८. तिण करि जाणैं जेह, माहरूं ए अंगज अछै ।
ते अनुमान करेह, निर्णय करियै तेहनु ॥
३९. शेषवत पंच भेदि, कार्य करि कारण करि ।
गुण करिनै संवेदि, अवयव करि आश्रय करि ॥

४०. कार्य करिनै जाण, जाणैं शखज शब्द करि ।
भेरी ताडवै माण, धडूकवै करि वृषभ नै ॥

४१. मोर केकारव साज, हय हीसारव शब्द करि ।
गुलगुलाट गजराज, घणघणाट करि रथ प्रतै ॥
४२. कारण करिके सोय, पट नो कारण तातूवा ।
पिण तांतव नो जोय, कारण पट—वस्तर नथी ॥
४३. इमहिज चटाई नाम, कट नो कारण वीरणा ।
पिण वीरण नों ताम, कारण नहि छै तेह कट ॥
४४. घट नो कारण देख, माटी नो जे पिड छै ।
मृत्-पिंड नों जे पेख, कारण नहि छै ते घडो ॥
४५. तोजो गुण करि जाण, सुवर्ण रेखज कसवटी ।
दश वानी नू मान, ए पंचवानी नू सुवन्न ॥
४६. पुष्प गंध करि जान, शतपत्रादिक पुष्प ए ।
लवण रसे करि मान, विविध भेद जे लवण ना ॥
४७. आस्वादे करि सोय, ए मदिरा छै अमकडो ।
स्पर्श करी अवलोय, एह फलाणो वस्त्र छै ॥
४८. अवयव करि जाणेह, सीग देखवै महिष प्रति ।
शिखा देखवै लेह, कुर्कट प्रति जाणे वलि ॥
४९. दाते करि गज भूर, सूयर दाढाइ करी ।
पाखे करी मयूर, खुर देख्या थी अश्व प्रति ॥
५०. नख करि वाघ विचार, वालाग्र धड[1] करि चमरि प्रति ।
पूछ देखवै धार, वंदर[2] छै इम जाणियै ॥

३७ वणेण वा लछणेण वा मसेण वा तिलएण वा ।
(अणु० ५२०)

३९ से कि त सेसव ?
सेसव पंचविहं पण्णत्त, त जहा—कज्जेण कारणेण गुणेण अवयवेण आसएण । (अणु० ५२१)

४० से कि त कज्जेण ?
कज्जेण—सख सद्देण, भेरिं तालिएण, वसभ ढिकिएण ।

४१ मोर केकाइएण, हय हेसिएण, हत्थि गुलगुलाइएण, रह घणघणाइएण । से त कज्जेण (अणु० ५२२)

४२ से कि त कारणेण ?
कारणेणं—ततवो पडस्स कारण न पडो ततुकारण,

४३ वीरणा कडस्स कारण न कडो वीरणकारण,

४४ मप्पिडो घडस्स कारण न घडो मप्पिडकारण ।
से त कारणेण । (अणु० ५२३)

४५ से कि त गुणेण ?
गुणेण—सुवण्ण निकसेण,

४६ पुप्फ गधेण, लवण रसेण,

४७ मइर आसाएण, वत्थ फासेण ।
से त गुणेण । (अणु० ५२४)

४८ से कि त अवयवेण ?
अवयवेण—महिस सिगेण, कुक्कुड सिहाए,

४९ हत्थि विसाणेण, वराह दाढाए, मोर पिछेण, आस खुरेण,

५०,५१. वग्घ नहेण, चमरिं वालगुछेण, दुपय मणुस्सयादि, चउप्पय गवमादि, बहुपय गोम्हियादि, 'वानरं नगुलेण',

---

१ यहा अणुओगद्दाराइ मे 'वालगुछेण' पाठ है । वालग्गेण पाठ पाठान्तर मे लिया है ।

२ मूलसूत्र मे 'चमरिं वालगुछेण' के बाद 'दुपय मणुस्सयादि' पाठ है । पाठान्तर मे इसके स्थान पर 'वानर नगलेण' पाठ है । जयाचार्य ने जोड मे इसी क्रम को स्वीकार किया है । उन्हे उपलब्ध आदर्श मे यही पाठ रहा होगा । इस जोड के सामने जो पाठ उद्धृत किया गया है वह वर्तमान मे सम्पादित 'अणुओगद्दाराइ' का पाठ है, इसलिए उसमे क्रम का व्यत्यय है ।

५१. बे पग देख्या वादि, मनुष्य आदि इम जाणियै ।
चउ पद करि गो आदि, कान्हसलो वहु पद करी ॥
५२. केसर करि के सोह, स्थूभ स्कध देखी करी ।
जाणं वृषभ अबीह, वलय-वाह करि स्त्री प्रतै ॥
५३. बखतर आदि बवेण, देखी जाणै सुभट प्रति ।
फुन पहिर्या वेसेण, जाणै ते महिला प्रतै ॥
५४. सोझी जे इक सीत[1], जाणै अन्न हाडी तणु ।
गाथा एक पुनीत, सुण जाणं ए कवि अछै ॥
५५. अथ आश्रय करि जाण, धूमे करिनै अग्नि प्रति ।
बुगला करि सर माण, अभ्र विकारे वृष्टि प्रति ॥

५६. शील समाचरणेह, जाणे वलि कुलपुत्र प्रति ।
शेषवत कह्यु एह द्वितीय भेद अनुमान नु ॥
५७. पूर्वे जाण्यो जेह, जे साथै छे तुल्यपणु ।
दृष्टसाधर्म्य कहेह, तेहना दोय प्रकार छे ॥

५८. सामान्यदृष्ट थकीज, दीठो ते सामान्यदृष्ट ।
विशेप दृष्टे लीज, दीठो तेह विशेषदृष्ट ॥

५९. धुर सामान्यज दृष्ट, जिम एक पुरुप तिम वहु पुरुप ।
जिम वहु पुरुपा इष्ट, तिम जाणै इक पुरुप प्रति ॥
६०. एक पुरुप नै देख, जाणै वहुला पुरुष नै ।
घणा पुरुप नै पेख, जाण लियै इक पुरुप प्रति ॥
६१. जिम इक सुवर्ण ज्ञान, तिम वहु सोनइया प्रति ।
जिम वहु सुवर्ण जाण, तिम इक सोनइया प्रति ॥

६२. वलि देख्यूज विशेख, विशेप-दृष्टज दूसरो ।
घणा पुरुप मे रेख, एक पुरुप नै ओलखै ॥
६३. पूर्वे इक नर दृष्ट, घणा पुरुष माहै तिको ।
देख्या जाणै इष्ट, पूर्व देख्यो तेह ए ॥
६४. पूर्वे सोनइयो देख, घणा सोनइया मे तिको ।
देखी जाणै पेख, पूर्वे देख्यो तेह ए ॥

६५. तेहना तीन प्रकार, कहियै एह सक्षेप थो ।
अतीत-ग्रहण विचार, वर्तमान आगामिक ॥

५२. सीहं केसरेण, वसह ककुहेण, महिल वलयवाहाए ।

५३. परियरवधेण भड, जाणेज्जा महिलिय निवसणेण ।

५४ सित्थेण दोणपाग कविं च एगाए गाहाए ।
(अणु० ५२५)

५५ से किं त आसएण ?
आसएण—अग्गि धूमेण, सलिलं वलागाहिं, वुट्ठि अब्भविकारेण,

५६. कुलपुत्त सीलसमायारेणं ।
से त आसएण । से त सेसव । (अणु०/५२६)

५७. से किं त दिट्ठसाहम्मव ?
दिट्ठसाहम्मव दुविह पण्णत्त, त जहा—
दृष्टेन पूर्वोपलब्धेनार्थेन सह साधर्म्यं दृष्टसाधर्म्यम् ।
(अनु० वृ० प० १६६)

५८ सामन्नदिट्ठ च विसेसदिट्ठं च । (अणु० ५२७)
सामान्यतो दृष्टार्थयोगात्सामान्यदृष्ट, विशेपतो दृष्टार्थयोगाद्विशेपदृष्टम् । (अनु० वृ० प० १६६)

५९. से किं त सामन्नदिट्ठ ?
सामन्नदिट्ठ—जहा एगो पुरिसो तहा वहवे पुरिसा, जहा वहवे पुरिसा तहा एगो पुरिसो ।

६१. जहा एगो करिसावणो तहा वहवे करिसावणा, जहा वहवे करिसावणा तहा एगो करिसावणो ।
(अणु० ५२८)

६२ से किं त विसेसदिट्ठ ?
विसेसदिट्ठ—से जहानामए केइ पुरिसे वहूणं पुरिसाण मज्झे पुव्वदिट्ठ पुरिस पच्चभिजाणेज्जा—अय से पुरिसे,

६४ 'वहूण वा करिसावणाण मज्झे पुव्वदिट्ठ करिसावण पच्चभिजाणेज्जा—अयं से करिसावणे ।'
(अणु० ५२९)

६५. तस्स समासओ तिविह गहण भवइ, तं जहा—तीयकालगहण पडुप्पण्णकालगहण अणागयकालगहण । (अणु० ५३०)

---

[1] अनाज का एक कण

६६. अतीत-ग्रहण सुजन्न, ऊगा तृण वन नै विषे ।
सर्व धान्य निष्पन्न, तिण करि शोभै मेदनी ।।

६६ से किं त तीयकालगहण ?
तीयकालगहण—उत्तिणाणि वणाणि निप्फण्णसस्स वा मेइणिं,

६७. द्रह सर कुंड तलाव, पूर्ण भरिया पेख नै ।
थइ सुवृष्टिज भाव, जाणै अतीत-ग्रहण ए ।।

६७ पुण्णाणि य कुंड-सर-नदि-दह-तलागाणि पासित्ता तेण साहिज्जइ, जहा—सुवुट्ठी आसी । से त तीय-कालगहण । (अणु० ५३१)

६८. गयो गोचरी सत, मिलै प्रचुरज अन्न जल ।
हिवडा सुभिक्ष हुत, ए वर्त्तमान अद्धा-ग्रहण ।।

६८ से किं त पडुप्पण्णकालगहण ?
पडुप्पण्णकालगहण—साहुं गोयरग्गगयं विच्छड्डिय पउरभत्तपाणं पासित्ता तेण साहिज्जइ, जहा—सुभिक्खे वट्टइ । से त पडुप्पण्णकालगहण । (अणु० ५३२)

६९. काल अनागत-ग्रहण, अभ्र गगन निर्मलपणु ।
गिरि वर कृष्णज वर्ण, विद्युत सहितज मेघ फुन ।।
७०. वलि घन गर्जत ताय, वृष्टि योग्य प्रदक्षिण दिशि ।
भ्रमत प्रशस्तज वाय, सध्या रक्तज चीगटी ।।

६९,७० से किं त अणागयकालगहण ?
अणागयकालगहण—गाहा—
अब्भस्स निम्मलत्तं कसिणा य गिरी सविज्जुया मेहा ।
थणियं-वाउब्भामो सझा निद्धा य रत्ता य ।।
स्तनित—मेघगर्जित, 'वाउब्भामो त्ति तथाविधो वृष्ट्यव्यभिचारी प्रदक्षिण दिक्षु भ्रमन् प्रशस्तो वातः । (अनु० वृ० प० १९९)

७१. वारुण मंडल जाण, तथा माहेद्रज मडलो ।
ग्रन्थातरे पिछाण, लक्षण तेहनू इम कह्यु ।।
७२. पूर्वाषाढा पेख, वलि उत्तराभाद्रज कह्यो ।
अश्लेषा सुविशेख, आर्द्रा मूलज रेवती ।।
७३. वलि शतभिषा कहाय, एहिज नक्षत्रे करी ।
वारुण मंडल थाय, अथ माहेद्रज मडलो ।।
७४. अनुराधा अवलोय, जेष्ठा उत्तराषाढ फुन ।
श्रवण घनेष्ठा जोय, रोहिणि माहिद्र मडलो ।।

७१ वारुणं वा माहिंदं वा

७५. अन्य कोइक उतपात, दिग्-दाहादिक प्रशस्तहि ।
वृष्टी कर्त्ता ख्यात, देखी नै इम जाणियै ।।
७६. यथा सुवृष्टि सुहाय, हुसैज इह अन्य क्षेत्र मे ।
काल अनागत पाय, ग्रहण करै अनुमान करि ।।

७५,७६ अण्णयरं वा पसत्थं उप्पायं पासित्ता तेण साहिज्जइ, जहा—सुवुट्ठी भविस्सइ । से त अणागयकाल-गहण । (अणु० ५३३)
उत्पातम्—उल्कापातदिग्दाहादिकम्
(अनु० वृ० प० २००)

७७. विण तृण वन वलि धान अनिष्पन्न शुष्क सर प्रमुख ।
थई कुवृष्टी जान, काल अतीतज-ग्रहण ए ।।

७७ तीयकालगहणं नित्तिणाइं वणाइं अनिप्फण्णसस्सं वा मेइणिं, सुक्काणि य कुंड-सर-नदि-दह-तलागाइं पासित्ता तेण साहिज्जइ, जहा कुवुट्ठी आसी ।
(अणु० ५३५)

७८. मुनी गोचरी मांहि, भिक्षा नै अणपामवै ।
दुर्भिक्ष वर्त्ते ताहि, वर्तमान जाणै अद्धा ।।

७८ पडुप्पण्णकालगहणं—साहुं गोयरग्गगयं भिक्खं अलभमाणं पासित्ता तेण साहिज्जइ, जहा—दुब्भिक्खे वट्टइ । (अणु० ५३६)

७९. आग्नेय मंडल जाण, अथवा वायव्य मंडलो।
ग्रन्थातरे पिछाण, दाख्यो ते कहियै अछै॥

७९. अणागयकालगहण—अग्गेय वा वायव्व वा।

८०. भरणी अनैं विशाख, पूर्वा फाल्गुनी और पुष।
पूर्वाभाद्र विशाख, मघा सप्त आग्नेय ह्वै॥

८१. चित्रा हस्त मभार, मृगशिर स्वातिज अश्विनी।
पुनर्वसू वलि धार, उत्तराभद्र वायव्य मंडल॥

८२. ए वे मडल ख्यात, वृष्टि तणा घातक अछै।
वली अन्य उत्पात, देखी नैं जाणै इसो॥

८३. हुस्यै कुवृष्टि अनिष्ट, अद्धा अनागत-ग्रहण ए।
ए विशेष थी दृष्ट, एह दृष्टसाधर्म्यवत॥

८२,८३. अण्णयर वा अप्पसत्थ उप्पाय पासित्ता तेण साहिज्जइ, जहा—कुवुट्ठी भविस्सइ। से त अणागय-कालगहण।

८४. आख्यो ए अनुमान, चिउ प्रमाण में दूसरो।
हिव कहियै उपमान, भेदज तृतीय प्रमाण नो॥

८४ से त अणुमाणे। (अणु० ५३७)

८५. उपमा दोय प्रकार, साधर्म करि उपनीत ज्या।
विषम धर्म करि धार, वैधर्म्यज-उपनय जिहा॥

८५ से कि त ओवम्मे ?
ओवम्मे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—साहम्मोवणीए य वेहम्मोवणीए य। (अणु० ५३८)

८६. सदृश धर्मपणेण, उपनय तेहनु मेलवू।
प्रथम साधर्म नामेण, साधर्म्यज-उपनीत ते॥

८६. साधर्म्येणोपनीतम्—उपनयो यत्र तत्साधर्म्योपनीतम्। (अनु० वृ० प० २०१)

८७. विषम धर्म भावेण, उपनय तेहनु मेलवूं।
द्वितीय वैधर्म नामेण, वैधर्मज-उपनीत ते॥

८७ वैधर्म्येणोपनीतम्—उपनयो यत्र तद्वैधर्म्योपनीतम्। (अनु० वृ० प० २०१)

८८. साधर्म्य त्रिविधज तास, धुर किंचित्साधर्म्य हि।
वहुलसाधर्म्य विमास, तृतीय सर्वसाधर्म्य फुन॥

८८. से कि त साहम्मोवणीए ?
साहम्मोवणीए तिविहे पण्णत्ते, त जहा—किंचि-साहम्मे, पायसाहम्मे, सव्वसाहम्मे। (अणु० ५३९)

### गीतक-छंद

८९. किंचित् साधर्म्यओपम इम जिम, मेरु तिम सरिसव अणु।
वलि जेम सरिसव तेम मेरू, मूर्त्तता सदृशपणु॥

८९ से कि त किंचिसाहम्मे ?
किंचिसाहम्मे—जहा मदरो तहा सरिसवो, जहा सरिसवो तहा मदरो।

९०. जिम समुद्र तिम गोपद वलि, जिम गोपदो तिम उदधि ही।
उदक सहितपणाज मात्र हि, तसु सरिखु किंचित् लही॥

९०. जहा समुद्दो तहा गोप्पय, जहा गोप्पय तहा समुद्दो॥

९१. जिम तरणि तिम खद्योत फुन, जिम आगियो तिम रवि भणु।
ए उभय नु गगने गमन, उद्योत किंचित् सदृशपणु॥

९१ जहा आइच्चो तहा खज्जोतो, जहा खज्जोतो तहा आइच्चो।

९२. जिम चद्र तिमहिज कुमुद कमलज, जिम कुमुद तिम शशि भणु।
चद कुमुद विहु नु शुक्ल भावज, किंचित ए सदृशपणु॥

९२ जहा चदो तहा कुदो, जहा कुदो तहा चदो॥
से त किंचिसाहम्मे। (अणु० ५४०)

### दूहा

९३. ए किंचितसाधर्म्य करि, वर धुर भेद कहेह।
प्राय वहुलसाधर्म्य करि, उपनय मेलवियेह॥

### गीतक-छंद

९४. जिमहीज गो तिम गवय फुन, जिम गवय तिम गो जाणियै ।
इह खुर ककुद शृंग पूछ प्रमुखज, सदृश बिहु नो माणियै ।।

### सोरठा

९५. णवर इतो विशेख, गो नु कवल प्रगट ही ।
कठ वाटलु देख, गवय—रोझ नु जाणियै ।।
९६. वहुलपणु ते पाय, सदृशपणु कह्यु तसु ।
तृतीय भेद हिव आय, सर्वसाधर्म्य तणू कहु ।।
९७. सर्व भिन्न छै सोय, क्षेत्र काल प्रमुख करी ।
एक सरीख न होय, तिण सु सर्वसाधर्म्य नहि ।।
९८. तृतीय भेद किम ख्यात, तथापि तसु वछा तणु ।
अरह प्रमुख विख्यात, तिण करि ओपम कहीजियै ।।

### गीतक-छंद

९९. अरिहत जे अरिहत सादृश, करत कारज जेहवू ।
चिउ तीर्थ वर धुर स्थापवै, जन अन्य नहि को एहवू ।।

१००. वलि चक्रवर्ती चक्रि सदृश, कार्य कर्त्ता जाणियै ।
षट् खड साधन प्रमुख जे जन, अन्य को नहि ठाणियै ।।
१०१. फुन अर्द्धचक्री करत कारज, अर्द्धचक्री सारिखो ।
युद्ध सूर नै प्रतिमल्ल हता, अन्य को नहि पारिखो ।।
१०२. वलदेव ते वलदेव सादृश, कृत्य कृत पद अमर ही ।
सुर सहस्राधिष्ठित हलादिक युद्ध अन्य ए सम को नही ।।
१०३. मुनि करै कारज मुनी सरिखू, अन्य को न करै इसु ।
सम्यक्त्व चारित्र विन क्रिया कृत, तेह पिण नहि मुनि जिसु ।।

### सोरठा

१०४. साधर्म्य-उपनय ख्यात, वैधर्म्य-उपनय त्रिविध ।
किंचित्वैधर्म्य जात, प्राय-सर्व-वैवर्म्य फुन ।।

१०५. सवली-कावरी गाय, जन्म्यो जेहवो वाछरो ।
तेहवो वाछर नाय, वहुली-काली गा जण्यो ।।
१०६. वहुली-काली जात, जेहवो छै जे वाछरो ।
तेहवो वच्छ न थात, गाय कावरी नो जण्यो ।।

---

९४ से किं त पायसाहम्मे ?
पायसाहम्मे—'जहा गो तहा गवओ, जहा गवओ तहा गो ।' से त पायसाहम्मे । (अणु० ५४०)
खरककुदविपाणलाङ्गूलादेर्द्वयोरपि समानत्वात्
(अनु० वृ० प० २०१)

९५ नवर सकम्वलो गौर्वृत्तकण्ठस्तु गवय इति प्राय-साधर्म्यता । (अनु० वृ० प० २०१)

९७,९८ से किं त सव्वसाहम्मे ?
सव्वसाहम्मे ओवम्म नत्थि तहावि तस्स तेणेव ओवम्म कीरइ ।

९९ जहा अरिहतेहि अरहतसरिस कय ।
तत्किमपि सर्वोत्तम तीर्थप्रवर्तनादिकार्यमर्हता कृत यदर्हन्नेव करोति नापर कश्चिदिति भाव ।
(अनु० वृ० प० २०१)

१०० चक्कवट्टिणा चक्कवट्टिसरिस कय,

१०१ वासुदेवेण वासुदेवसरिस कय,

१०२ वलदेवेन वलदेवसरिस कय,

१०३ साहुणा साहुसरिस कय ।
से त सव्वसाहम्मे । से त साहम्मोवणोए ।
(अणु० ५४२)

१०४. से किं त वेहम्मोवणीए ?
वेहम्मोवणीए तिविहे पण्णत्ते—किंचिवेहम्मे, पाय-वेहम्मे, सव्ववेहम्मे । (अणु० ५४३)

१०५ से किं त किंचिवेहम्मे ?
किंचिवेहम्मे—जहा सामलेरो न तहा वाहुलेरो,

१०६ जहा वाहुलेरो न तहा सामलेरो । से त किंचिवे-हम्मे । (अणु० ५४४)

१०७. शेष धर्म तुल्य हेर, ते माता ना भेद ]थी ।
ईपत् वच्छ में फेर, तिण सू किंचित् वैधर्म्य ॥
१०८. जेहवी पायस—क्षीर, तेहवू वायस—काग नहि ।
जेहवू वायस भोर, तेहवो पायस—क्षीर नहि ॥
१०९. धर्म सचेतन आदि, नहि छै वहु सदृशपणु ।
प्राय वहुल सवादि, कहिये वहुवैधर्म्य ए ॥
११०. पायस वायस नाम, विहु ना वे वे वर्ण तुल्य ।
निज निज सत्व सुपाम, इत्यादिक सदृशपणु ॥
१११. तिण सू ए आख्यात, प्राय—वहुल वैधर्म्यवत ।
तृतीय भेद हिव आत, सर्व थकी जे वैधर्म्य ॥
११२. सर्व-वैधर्म्य नाहि, अछै जाणवा जोग्य सहु ।
छतापणु सहु माहि, एह सरिखू ते भणी ॥
११३. तो तृतीय भेद आख्यात, तेहनु ह्वै निरर्थकपणु ।
ते माटै अवदात, सर्ववैधर्म्य उपम हिव ॥
११४. तेहनै तेहिज साथ, कीजै छे उपमा जिका ।
नीच कर्‌यु गुरु घात, अकृत नीच करै जिसु ॥
११५. दासे दास सरीस, कीधू छै कारज जिको ।
काग कृत्यज ईष, काग करै छै जेहवू ॥
११६. श्वाने श्वान सरीस, कारज कीधू छै तिणे ।
पाण चडालज ईप, जे चडाल सरीख कृत[1] ॥
११७. शिष कहै स्वामीनाथ ! नीचे नीच सरीख कृत ।
इत्यादिक अवदात, सावर्म्य पिण वैधर्म्य किम ?
११८. गुरु कहै ए सत्य वात, किंतु प्राये नीच पिण ।
न करै ए महाघात, स्यू कहिवुज अनीच नु ॥
११९. सर्व लोक विपरीत, प्रवर्त्या नी वछना ।
इहा वैधर्म्य प्रतीत, इम दासादिक पिण सहु ॥
१२०. सर्व वैधर्म्य ख्यात, वैधर्म्य उपनय ए कह्यु ।
ए उपमा अवदात, तृतीय प्रमाण कह्यु प्रवर ॥
१२१. आगम तुर्य प्रमाण, दोय प्रकारज दाखियो ।
लौकिक प्रथम पिछाण, लोकोत्तर दूजो वलि ॥

१०८. से किं त पायवेहम्मे ?
पायवेहम्मे—जहा वायसो न तहा पायसो, जहा पायसो न तहा वायसो । (अणु० ५४५)

११२ से किं तं सव्ववेहम्मे ?
सव्ववेहम्मे ओवम्म नत्थि,

११४ तहा वि तस्स तेणेव ओवम्म कीरइ, जहा—नीचेण नीचसरिस कय ।

११५ काकेण कागसरिस कय,

११६ साणेण साणसरिस कय ।

११७ आह—नीचेन नीचसदृश कृतमित्यादि ब्रुवता साधर्म्यमेवोक्तं स्यान्न वैधर्म्यम्,
(अनु० वृ० प० २०१)

११८ सत्य, किन्तु नीचोऽपि प्रायो नैवंविध महापापमाचरति किं पुनरनीच ?

११९ एव दासाद्युदाहरणेष्वपि वाच्यम् ।
(अनु० वृ० प० २०१)
तत सकलजगद्विलक्षणप्रवृत्तत्वविवक्षया वैधर्म्यमिह भावनीयम् । (अनु० वृ० प० २०१)

१२० से त सव्ववेहम्मे । से त वेहम्मोवणीए । से त ओवम्मे । (अणु० ५४६)

१२१ से किं त आगमे ?
आगमे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—लोइए लोगुत्तरिए य । (अणु० ५४७)

१. गाथा ११५ और ११६ मे दास और पाण शब्द हैं, वे अनुयोगद्वार के इस आदर्श के पाठान्तर मे हैं ।

१२२. लौकिक जेह कथित, अज्ञानी मिथ्यातीइ ।
स्वछदबुद्धि रचित, भारत जावत वेद चिहु ।।[1]

१२२. से किं त लोइए आगमे ?
लोइए आगमे—जण्ण इम अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठीहिं सच्छदबुद्धि-मइ-विगप्पिय, त जहा—भारह जाव चत्तारि वेया सगोवगा । से त लोइए आगमे ।
(अणु० ५४८)

१२३. द्वितीय लोकोत्तर जन्न, जे अरिहत भगवत जी ।
उत्पन्न ज्ञान दर्शन्न, तास धरणहारे प्रभु ।।

१२३ से किं त लोगुत्तरिए आगमे ?
लोगुत्तरिए आगमे—जण्ण इम अरहतेहिं, भगवतेहिं उप्पण्णनाणदसणधरेहिं

१२४. तीन काल ना जाण, आसू-वहितै अमर नर ।
निरख्या जिन गुण-खाण, महिय तास गुणग्राम करि ।।
१२५. पूजित भाव करेह, सर्व वस्तु ना जाण प्रभु ।
सर्व वस्तु देखेह, तिणे परूप्या बार अग ।।

१२४,१२५ *तीयपडुप्पण्णमणागयजाणएहिं* सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं तेलोक्कवहिय-महिय-पूइएहिं पणीय दुवालसग गणिपिडग,

१२६. प्रथम अंग आचार, यावत् दृष्टीवाद[2] फुन ।
अथवा आगम सार, तीन प्रकार परूपिया ।।

१२६ आयारो जाव दिट्ठिवाओ । (अणु० ५४९)

१२७. गणधर कृत वर सुत्त, अर्थागम अरिहत कृत ।
उभयागम बिहुं उक्त, अथवा आगम त्रिविध फुन ।।

१२७ अहवा आगमे तिविहे पण्णत्ते त जहा—सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे । (अणु० ५५०)
अहवा आगमे तिविहे पण्णत्ते,

१२८. आत्मागम धुर आण, अनतरागम द्वितीय फुन ।
परपरागम माण, हिव निर्णय एहनों कहुं ।।

१२८ अत्तागमे अणतरागमे परपरागमे ।

१२९. तीर्थंकर नै जाण, अर्थागम आत्मा थकी ।
विण उपदेश पिछाण, तिण सु आत्मागम थया ।।

१२९ तित्थगराण अत्थस्स अत्तागमे ।

१३०. गणधर नै पहिछाण, सूत्रागम छै आत्म थी ।
तेहनों गूथ्यो जाण, आत्मागम ते सूत्र नो ।।

१३० गणहराण सुत्तस्स अत्तागमे,

१३१. अर्थ तणो अवलोय, आगम जाणपणो प्रवर ।
अणतरागम जोय, गणधर तणै कहीजियै ।।

१३१ अत्थस्स अणतरागमे ।

१३२ गणधर नां शिष्य सार, जबू नै जे सूत्र नो ।
अणंतरागम धार, परंपरागम अर्थ नो ।।

१३२ गणहरसीसाण सुत्तस्स अणतरागमे, अत्थस्स परपरागमे ।

१३३. तिण उपरत विचार, प्रभवादिक नै सूत्र नु ।
अर्थ तणु पिण धार, जाणपणो छै ज्ञान ते ।।
१३४. आत्मागम न कहाय, अणतरागम पिण नही ।
परपरागम थाय, हिव ए कहू जुओ-जुओ ।।

१३३,१३४ तेण पर सुत्तस्स वि अत्थस्स वि नो अत्तागमे, नो अणंतरागमे, परंपरागमे ।

१३५. अर्थ तणो पहिछाण, आत्मागम तीर्थंकरे ।
गणधर तणैज जाण, अणतरागम अर्थ नों ।।
१३६. गणधर ना जे शीस, अथवा प्रशिष्य तेहना ।
अनुक्रम शीस जगीस, परपरागम अर्थ नों ।।

---

१, २ यह जोड सक्षिप्त पाठ के आधार पर की गई है । अनुयोगद्वार के इस आदर्श मे पाठ पूरा है । सक्षिप्त पाठ की सूचना पाद-टिप्पण मे दी गई है ।

१३७. सूत्र थकी कहिवाय, आत्मागम गणधर तणें ।
तेहना शिष्य नें ताय, अणतरागम सूत्र नों ।।
१३८. जबू ना जे शीस, प्रभव तथा तसु प्रशिष्य नें ।
चरम लगै सुजगीस, परपरागम सूत्र नों ।।
१३९. ए सगलो विस्तार, अनुयोगद्वार थकी अख्यू ।
जाव शब्द में सार, कह्यु भगवती नें विषै ।।

## दूहा

१४०. केवली नें छद्मस्थ ना, प्रस्ताव थी सुविचार ।
केवली नें छद्मस्थ नों, हिव कहियै विस्तार ।।

१४१. *हे प्रभु ! चरिम तिके छेहला कर्म, चरिम निर्जरा वलि जाणी ।
तेह केवली जाणै देखै ? हता जिन वच गुणखाणी ।।

१४१. केवली ण भते ! चरिमकम्म वा, चरिमणिज्जर वा जाणइ-पासइ ?
हता जाणइ-पासइ । (श० ५/९८)

१४२. चरिम कर्म ते शैलेसी जे, चरम समय वेदै जेही ।
तेहिज निर्जर्या समय अनतर, चरम निर्जरा छै तेही ।।

१४२. चरमकर्म यच्छैलेशीचरमसमयेऽनुभूयते चरमनिर्जरा तु यत्ततोऽनन्तरसमये जीवप्रदेशेभ्य परिशटतीति । (वृ० प० २२३)

१४३. जेम केवली ए विहु जाणै, तिम छद्मस्थ जाणै वेही ।
अतकर ना दोय आलावा, आख्या तिम कहिवा एही ।।

१४३. जहा ण भते ! केवली चरिमकम्म वा, चरिमणिज्जर वा जाणइ-पासइ, तहा ण छउमत्थे वि चरिमकम्म वा, चरिमणिज्जर वा जाणइ-पासइ ? गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे । सोच्चा जाणइ-पासइ, पमाणतो वा । जहा ण अतकरेणं आलावगो तहा चरिमकम्मेण वि अपरिसेसिओ नेयव्वो ।
(श० ५/९९)

१४४. हे प्रभु ! केवलि अतिहि शुभ मन, अतिहि शुभ वच व्यापारै ?
श्री जिनवर भाखै छै हता, अतिहि शुभ मन वच धारै ।।

१४४ केवली ण भते ! पणीय मण वा, वइ वा धारेज्जा ? हता धारेज्जा । (श० ५/१००)
'पणीय' त्ति प्रणीत शुभतया प्रकृष्ट 'धारेज्ज' त्ति धारयेद् व्यापारयेदित्यर्थ । (वृ० प० २२३)

१४५. केवली ना अति शुभ मन वच प्रभु ! वैमानिक जाणै देखै ?
जिन कहै कोइक जाणै देखै, को नवि जाणै नवि पेखै ।।

१४५ जण्ण भते ! केवली पणीय मण वा, वइ वा धारेज्जा, तण्ण वेमाणिया देवा जाणति-पासति ?
गोयमा ! अत्येगतिया जाणति-पासति, अत्येगतिया ण जाणति, ण पासति । (श० ५/१०१)

१४६. ते किण अर्थे ? तव जिन भाखै, वैमानिक विहु विध थाई ।
माई मिथ्यादृष्टि ऊपनों, वलि समदृष्टि अमाई ।।

१४६. से केणट्ठे ण भते ! एव वुच्चइ—अत्येगतिया जाणति-पासति, अत्येगतिया ण जाणति, ण पासति ? गोयमा ! वेमाणिया देवा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—माइमिच्छादिट्ठीउववण्णगा य, अमाइ-सम्मदिट्ठीउववण्णगा य ।

१४७. त्या जे माई मिथ्यादृष्टि, ते नवि जाणै नवि देखै ।
हिवै अमाई समदृष्टी नु, सूत्रे सक्षेपे लेखै ।।

१४७. तत्थ ण जे ते माइमिच्छादिट्ठीउववण्णगा ते ण जाणति ण पासति । तत्थ ण जे ते अमाइसम्मदिट्ठी-उववण्णगा ते ण जाणति-पासति ।

*लय : नाहरगढ़ ले चालो

१४८. अनंतर प्रथम समय ना ऊपना, ते जाणै देखै नाही ।
परपर घणा समय ना ऊपना, दोय भेद तेहना थाई ।।

१४८,१४९ अमाइसम्मदिट्ठी दुविहा पण्णत्ता, त जहा—अणतरोववण्णगा य, परपरोववण्णगा य। तत्थ ण जे ते अणतरोववण्णगा ते ण जाणति, ण पासति। तत्थ ण जे ते परपरोववण्णगा ते ण जाणति-पासति ।

१४९. पर्याप्त नै अपर्याप्त जे, अपर्याप्त ते नवि जाणै ।
पर्याप्त ना दोय भेद, उपयोग सहित रहित ठाणै ।।

परपरोववण्णगा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—अपज्जत्तगा य, पज्जत्तगा य । तत्थ ण जे ते अपज्जत्तगा ते ण जाणति, ण पासति । तत्थ ण जे ते पज्जत्तगा ते ण जाणति-पासति । पज्जत्तगा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—अणुवउत्ता य उवउत्ता य ।

१५०. तिहा उपयोग-रहित अछै जे, नवि जाणै नै नवि देखै ।
उपयोग-सहित ते जाणै देखै, तिण अर्थे भाख्यू लेखै ।।

१५० तत्थ ण जे ते अणुवउत्ता ते ण जाणति, ण पासति । तत्थ ण जे ते उवउत्ता ते ण जाणति-पासति । से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—अत्थेगतिया जाणति-पासति, अत्थेगतिया ण जाणति, ण पासति । (श० ५/१०२)

१५१. वृत्तिकार कह्यो वाचनातरे ए साख्यातपणै जाणी ।
सूत्र सर्व आख्यो छै किहाइक, किहाइक छै सक्षेपाणी ।।

१५१. वाचनान्तरे त्विद सूत्र साक्षादेवोपलभ्यते । (वृ० प० २२३)

१५२. अर्थ अक ए देश चोपन नु, ढाल तयासीमी साची ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' सुख सपति जाची ।।

## ढाल : ८४

### दूहा

१. वैमानिक जिन वारता, आखी इहा उदार ।
वलि विशेष तेहिज तणु, कहियै छै अधिकार ।।

*स्वामी ! हूं तो अरज करूं जोडी हाथ ।
स्वामी ! थे तो मया करो जगनाथ ।। (ध्रुपद)

२. अनुत्तर विमान ना देव तिहा रह्या,
जगत-प्रभु ! इहा रह्या केवली साथ ।
एक वार वार-वार बोलायवा,
स्वामी ! ए तो समर्थ करवा बात ?

२ पभू ण भते ! अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा इहगएण केवलिणा सद्धि आलाव वा, संलाव वा करेत्तए ?
'आलाव व' त्ति सकृज्जल्प 'सलाव व' त्ति मुहुर्मुहुर्जल्प । (वृ० प० २२३)

* लय : कोइ कहै छानै कोई कहै छ्पकै ...

३. श्री जिन भाखै हता समर्थ, स्वामी ! आतो,
किण अर्थे कही वात ?
जिन कहै अनुत्तर विमान तणा सुर, अहो शिष्य !
तिहा रह्याज साख्यात ।
(गोयम ! तू तो साभलजै अवदात,
गोयम ! आ तो आश्चर्यकारी वात ॥)

३. हता पभू । (श० ५/१०३)
से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—पभू ण अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा इहगएण केवलिणा सद्धि आलाव वा, सलाव वा करेत्तए ? गोयमा ! जण्ण अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा ।

४. अर्थ तथा हेतु अथवा प्रश्न प्रति,
गोयम ! आ तो कारण प्रति कहिवाय ।
पूछा नो उत्तर ते व्याकरण प्रति,
अहो शिष्य ! सुरवर पूछै ताय ॥
(गोयम ! तू तो साभलजे चित ल्याय,
गोयम ! त्यारो अवधि-ज्ञान अधिकाय ॥)

४ अट्ठं वा हेउ वा पसिण वा कारण वा वागरण वा पुच्छति,

५. ते इहा रह्या थकाज केवली, अहो शिष्य ! एहिज वागरै वाय ।
तिण अर्थे तिहा रह्या थका सुर, अहो शिष्य! केवली सू बतलाय ॥

५. तण्ण इहगए केवली अट्ठं वा हेउं वा पसिण वा कारण वा वागरण वा वागरेइ । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एव वुच्चइ—पभू ण अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा इहगएण केवलिणा सद्धि आलाव वा सलाव वा करेत्तए (श० ५/१०४)

६. हे प्रभु ! जे इहा रह्या केवली, अहो प्रभु ! अर्थ जाव वागरंत ।
अनुत्तर विमान ना देव तिहा रह्या, अहो प्रभु ! जाणे अनें देखत ?
(स्वामी ! हू तो अरज करू धर खत,
जगत-प्रभु ! उत्तर दो भगवत)

६. जण्णं भते ! इहगए केवली अट्ठ वा हेउ वा पसिण वा कारण वा वागरण वा वागरेइ, तण्ण अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा जाणति-पासति ?

७. जिन कहै हता, प्रभु ! किण अर्थे ?
अहो शिष्य ! तव भाखै भगवत ।
ते सुर नै अनती मनो-द्रव्य-वर्गणा,
अहो शिष्य ! लाधी अवधि विषय हुंत ॥
(गोयम ! तू तो साभलजै धर खत, अनुत्तर देव तणो विरतत)

७ हता जाणति-पासति । (श० ५/१०५)
से केणट्ठेण जाव पासति ?
गोयमा! तेसि ण देवाण अणताओ मणोदव्ववग्गणाओ लद्धाओ ।
'लद्धाओ' त्ति तदवधेर्विषयभाव गता. ।
(वृ० प० २२३)

८. ते अवधि करी नै सामान्य थी पामी,
अहो शिष्य ! अभिसमण्णागया मत ।
तेहनु ए अर्थ विशेष थी पामी,
अहो शिष्य ! तिण अर्थे देखत ॥

८ पत्ताओ अभिसमण्णागयाओ भवंति । से तेणट्ठेण जण्ण इहगए केवली जाव पासति (स० पा०)
(श० ५/१०६)
'पत्ताओ' त्ति तदवधिना सामान्यत प्राप्ता. परिच्छिन्ना इत्यर्थ 'अभिसमन्नागयाओ' त्ति विशेषत परिच्छिन्नाः । (वृ० प० २२३)

९. वृत्ति विषेज संभिन्न-लोकनाडी
अहो प्राणी ! विषय ग्राहक अवधि हुंत ।
ते माटै मनोद्रव्य-वर्गणा,
अहो प्राणी ! ग्राहक अवधि कहंत ॥

९ यतस्तेपामवधिज्ञान सभिन्नलोकनाडी विषय, यच्च लोकनाडीग्राहक तन्मनोवर्गणाग्राहक भवत्येव ।
(वृ० प० २२३)

### सोरठा

१०. लोक विषय सख्यात-विषयक अवधि जे हुवै ।
ते पिण जाणै ख्यात, मनोद्रव्य निज शक्ति स्यू ।।

१० यतो योऽपि लोकसख्येयभागविषयोऽवधि. सोऽपि मनोद्रव्यग्राही । (वृ० प० २२३)

११. तो किंचित् ऊणो ताहि, लोकनाडि नो विषय जसु ।
ते किम जाणै नाहि, मनोद्रव्य सामान्य थी ?

११ य पुन सभिन्नलोकनाडीविषयोऽसौ कथ मनोद्रव्यग्राही न भविष्यति ? (वृ० प० २२३)

१२. सख्यातमै जे भाग, लोक तणों नै पल्य तणों ।
अवधिवत नो भाग, मनोद्रव्य पिण जाणोइ[1] ।।

१२ इष्यते च लोकसख्येयभागावधेर्मनोद्रव्यग्राहित्व, यदाह—"सखेज्ज मणोदव्वे भागो लोगपलियस्स बोद्धव्वो ।" (वृ० प० २२३)

१३. *हे प्रभु ! देव अनुत्तरवासी, अहो प्रभु ! स्यू मोह उदय कहत ?
उपशांतमोहा नै क्षीणमोहा छै? अहो प्रभु ! हिव जिन उत्तर दित ।।

१३ अणुत्तरोववाइया ण भते ! देवा किं उदिण्णमोहा ? उवसतमोहा ? खीणमोहा ?

१४. उत्कट जे वेद-मोह अपेक्षा, अहो शिष्य ! उदय-मोहा नहिं हुत ।
अनुत्कट वेद-मोह ते माटै, अहो शिष्य ! उपशात-मोह कहत ।

१४ गोयमा ! नो उदिण्णमोहा, उवसतमोहा, 'उदिन्नमोह' त्ति उत्कटवेदमोहनीया 'उवसतमोह' त्ति अनुत्कटवेदमोहनीया । (वृ० प० २२३)

१५. काय फर्श रूप शब्द अनै मन,
अहो शिष्य ! नहिं परिचारणा मत ।
पिण सर्वथा मोह उपशात नही छै,
अहो शिष्य ! वलि क्षीण-मोहा न हुत ।।

१५ नो खीणमोहा । (श० ५।१०७)
परिचारणाया कथञ्चिदप्यभावात्, न तु सर्वथोपशान्तमोहा । (वृ० प० २२३)

### सोरठा

१६. पूर्व सूत्र पिछाण, आख्यू छै छद्मस्थ नु ।
तेह थकी अन्य जाण, केवलि नु अधिकार हिव ।।

१६ पूर्वतन सूत्रे केवल्यधिकारादिदमाह— (वृ० प० २२३)

१७. *केवली इन्द्रिय करि जाणै देखै ?
अहो शिष्य ! समर्थ नही ए वात ।
किण अर्थे केवली इन्द्रिये करि,
अहो शिष्य ! नहि जाणै न देखात ?

१७ केवली ण भते ! आयाणेहिं जाणइ-पासइ ? गोयमा ! नो तिणट्ठे समट्ठे । (श० ५।१०८)
से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—केवली ण आयाणेहिं ण जाणइ, ण पासइ ?
'आयाणेहिं' ति आदीयते—गृह्यतेऽर्थ एभिरित्यादानानि—इन्द्रियाणि । (वृ० प० २२४)

१८. जिन कहै केवली पूर्व दिशि में,
अहो शिष्य ! जाणै मित परिमाणवत ।
गर्भेज मनुष्य जीव इत्यादिक,
अहो वलि, अमित असख अनन्त ।।

१८ गोयमा ! केवली ण पुरत्थिमे ण मिय पि जाणइ अमिय पि जाणइ ।

१९. जावत् निवृत्त दर्शण जिन नै, अहो शिष्य ! तिण अर्थे ए हुत ।
केवली इन्द्रिय करि नवि जाणै, अहो शिष्य ! इन्द्रिय करि न देखत ।।

१९ जाव निव्वुडे दसणे केवलिस्स । से तेणट्ठेण (स० पा०)
गोयमा ! एव वुच्चइ—केवली ण आयाणेहिं ण जाणइ, ण पासइ । (श० ५।१०९)

---

१ लोक के संख्यातवे भाग को जानने वाला अवधिज्ञानी भी अपने अवधिज्ञान से मनोद्रव्य को जान लेता है ।

*लय : कोई कहै छानै कोई कहै छूपकै ··

२०. केवली ए वर्तमान समय विषे, अहो प्रभु ! जेह आकाश प्रदेश ।
हस्त पाव वाहू नै साथल, अहो प्रभु ! अवगाही नै रहेस ॥
(स्वामी ! हूं तो अरज करू छू,
जिनेश ! सानुग्रह उत्तर दो सुविशेष)

२० केवली णं भंते ! अस्सिं समयंसि जेसु आगासपदेसेसु हत्थं वा पायं वा बाहं वा ऊरुं वा ओगाहित्ता णं चिट्ठति,
'अस्सिं समयंसि' त्ति अस्मिन् वर्त्तमाने समये
(वृ० प० २२४)

२१. समर्थ केवली काल आगमिये, अहो प्रभु ! जेह आकाश प्रदेश ।
हस्त तथा यावत् कह्या पूर्वे, अहो प्रभु ! अवगाही नै रहेस ?

२१. पभू णं केवली सेयकालंसि वि तेसु चेव आगासपदेसेसु हत्थं वा, पायं वा, बाहं वा, ऊरुं वा ओगाहित्ताणं चिट्ठित्तए ?

२२. जिन कहै अर्थ समर्थ ए नाही, अहो प्रभु ! किण अर्थे ए वात ?
हस्तादि मेली वलि ते प्रदेशे, अहो प्रभु ! केवली सू न रहात ॥

२२. गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे (श० ५।११०)
केणट्ठेणं भंते ! जाव केवली (सं० पा०) णं अस्सिं समयंसि जेसु आगासपदेसेसु हत्थं वा जाव (सं० पा०) चिट्ठित्तए ?

२३. जिन कहै वीर्य-अतराय ना क्षय थी,
अहो शिष्य ! केवली नै आख्यान ।
ऊपनी शक्ति तेहिज प्रधान छै,
अहो शिष्य ! जोग व्यापार विख्यात ॥

२३ गोयमा ! केवलिस्स णं वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए ।
वीर्यं—वीर्यान्तरायक्षयप्रभवा शक्तिः तत्प्रधानं सयोग - मानसादिव्यापारयुक्त । (वृ० प० २२४)

२४. मन प्रमुख वर्गणा युक्त जे,
अहो शिष्य ! जीव द्रव्य नै कहात ।
चलित—अथिर उपकरण—अग हुवै,
अहो शिष्य ! तिण सू सागी प्रदेश न आत ॥

२४ मन प्रभृतिवर्गणायुक्तो वीर्यसयोगसद्द्रव्यस्तस्य भावस्तत्ता तया हेतुभूतया । (वृ० प० २२४)
चलाइं उवकरणाइं भवंति चलोवकरणट्ठयाए य णं केवली अस्सिं समयंसि जेसु आगासपदेसेसु हत्थं वा जाव चिट्ठति णो णं पभू केवली सेयकालंसि वि तेसु चेव जाव चिट्ठित्तए ।
'चलाइं' ति अस्थिराणि 'उवकरणाइं' ति अङ्गानि ।
(वृ० प० २२४)

**सोरठा**

२५. तिण अर्थे कर तेह, यावत् कहियै केवली ।
वर्त्तमान समयेह, यावत् अवगाही रहै ॥

२५ से तेणट्ठेणं जाव वुच्चइ—केवली णं अस्सिं समयंसि जाव चिट्ठित्तए । (श० ५।१११)

२६. केवली नी कही वात, श्रुतकेवली नु हिवै ।
कहियै छै अवदात, ते चउदै पूरवधरा ॥

२६ केवल्यधिकारात् श्रुतकेवलिनमधिकृत्याह—
(वृ० प० २२४)

२७. *हे प्रभु ! चउद पूर्वधर साधु,
अहो प्रभु ! घट नी निश्राये विख्यात ।
सहस्र घडा प्रति निपजावी नै,
अहो प्रभु ! देखावा समर्थ थात ?

२७ पभू णं भंते ! चोद्दसपुव्वी घडाओ घडसहस्सं,
घटादवधेर्घटं निश्रां कृत्वा (वृ० प० २२४)

२८. एक घडा ना सहस्र घट करि सकै,
अहो प्रभु ! पट थी सहस्र पट थात ।
कट ते चटाई थी सहस्र चटाई,
अहो प्रभु ! रथ थी सहस्र रथ आत ॥

२८ पडाओ पडसहस्सं, कडाओ कडसहस्सं, रहाओ रहसहस्सं

*लय : कोई कहै छानै कोई कहै छुपकै……

२९. छत्र थकी सहस्र छत्र प्रतै वलि, अहो प्रभु ! इक दंड थकी विख्यात ।
सहस्र जे दड प्रतै निपजावी, अहो प्रभु ! देखावा समर्थ ख्यात ?

३०. श्री जिन भाखै हता गोयम ! अहो शिष्य ! श्रुत करि लब्धि पावत ।
तेण करी निपजावी देखाडिवा, अहो शिष्य ! समर्थ छै ते सत ॥

३१. किण अर्थे ? तव श्री जिन भाखै, अहो शिष्य ! चवद पूर्वधर सत ।
तेहनैं अनत द्रव्य उत्कारिका ना, अहो शिष्य ! भेदे करीनैं भेदत ॥

३२. एरड बीज तणी पर छिटकी,
अहो शिष्य ! अलगु थायवू हुंत ।
तिम छिटकी-छिटकी नै सहस्र घट,
अहो शिष्य ! जुआ-जुआ थावत ॥

३३. लद्धाइ कहिता लब्धि विशेष थी, अहो शिष्य ! ग्रहणविषयपणु हु त ।
पत्ताइ तेहिज लब्धि विशेष थी, अहो शिष्य ! ग्रहण किया ते सत ॥

३४. अभिसमण्णागया रूप घटादि, अहो शिष्य ! परिणामवा आरभत ।
तथा पछै घटादिक निपजावी, अहो शिष्य ! वहु जन नै देखाडत ॥

२९ छत्ताओ छत्तसहस्स, दडाओ दडसहस्स अभिनिव्वट्टेत्ता उवदसेत्तए ?

३० हता पभू । (श० ५।११२)
श्रुतसमुत्थलब्धिविशेषेणोपदर्शयितु प्रभु । (वृ० प० २२४)

३१ से केणट्ठेण पभू चोद्दसपुव्वी जाव उवदसेत्तए ? गोयमा ! चोद्दसपुव्विस्स ण अणताइ दव्वाइ उक्कारियाभेएण भिज्जमाणाइ

३३ लद्धाइ पत्ताइ
'लद्धाइ' ति लब्धिविशेषाद् ग्रहणविषयता गतानि 'पत्ताइ' ति तत एव गृहीतानि । (वृ० प० २२४)

३४ अभिसमण्णागयाइ भवति ।
'अभिसमन्नागयाइ' ति घटादिरूपेण परिणमयितुमारब्धानि ततस्तैर्घटसहस्रादि निर्वर्तयति । (वृ० प० २२४)

## सोरठा

३५. तिण अर्थे आख्यात, समर्थ चउदश पूर्वधर ।
पूर्व उक्त अवदात, यावत् उवदसेत्तए ॥

३६. इहां पुद्गल नों भेद, पच प्रकारे ते हुवै ।
खड भेद धुर वेद, खड हुवै पाषाणवत् ॥

३७. प्रतर भेद पहिछाण, अभ्र-पटल जिम ते हुवै ।
भेद चूर्णिका जाण, तिलादिक ना चूर्णवत् ॥

३८. अनुतटिका जे भेद, कूआ तलाव ना भेदवत् ।
उत्कारिका सवेद, एरड बीज तणी परै ॥

३९. तिहा उत्कारिका भेदेन, भिद्यमान पुद्गल तिकै ।
वर लब्धि विशेषेन, पूर्वधर घट सहस्र कृत ॥

४०. आहारक शरीरवत् ताय, रूप वणावी नै तदा ।
पूर्वधर मुनिराय, देखाडै लोकां भणी ॥

४१. इहा उत्कारिका भेद, भिन्नईज जे द्रव्य ना ।
वछित घटादि वेद, निपजावा समर्थ अछै ॥

३५. से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—पभू ण चोद्दसपुव्वी उवदसेत्तए । (श० ५।११३)

३६ इह पुद्गलाना भेद पञ्चधा भवति, खण्डादिभेदात्, तत्र खण्डभेद खण्डशो यो भवति लोष्टादेरिव । (वृ० प० २२४)

३७. प्रतरभेदोऽभ्रपटलानामिव चूर्णिकाभेदस्तिलादिचूर्णवत् (वृ० प० २२४)

३८ अनुतटिकाभेदोऽवटनटभेदवत् उत्कारिकाभेदएरण्डबीजानामिवेति । (वृ० प० २२४)

३९ तत्रोत्कारिकाभेदेन भिद्यमानानि (वृ० प० २२४)

४० आहारकशरीरवत्, निर्वर्त्य च दर्शयति जनाना (वृ० प० २२४)

४१ इह चोत्कारिकाभेदग्रहण तद्भिन्नानामेव द्रव्याणा विवक्षितघटादिनिष्पादनसामर्थ्यमस्ति । (वृ० प० २२४)

*लय : कोई कहै छानै कोई कहै छूपकै···

४२. पुद्गल चिहु विध जेह, अन्य कह्या छै तेहना ।
ग्रहण करै नहिं तेह, उत्कारिका प्रतेज ग्रहै ॥

४२. नान्येषामितिकृत्वेति । (वृ० प० २२४)

४३. *सेव भंते अक चोपनमों ए,
अहो भवि ! च्यार असीमी ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसादे,
अहो भवि ! 'जय-जश' हरष विशाल ॥
(परम पूज स्वाम भिक्षु गुणमाल,
भारीमाल रायऋषी मुरसाल ।)

४३. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ५।११४)

॥ पंचमशते चतुर्थोद्देशकार्थः ॥५।४॥

ढाल : ८५

## दूहा

१. तुर्य उदेशे चतुर्दश, पूरवधर नो तंत ।
महानुभावपणो प्रवर, देखाड्यो अत्यंत ॥
२. महानुभावपणां थकी, चउद पूर्वधर संत ।
सीझै ते छद्मस्थ पिण, ए शंका उपजंत ॥
३. ते शंका टालण भणी, पंचमुदेशक आद ।
कहूं वात छद्मस्थ नी, सुणजो धर अहलाद ॥

१. अनन्तरोद्देशके चतुर्दशपूर्वविदो महानुभावतोक्ता, (वृ० प० २२४)
२,३. न च महानुभावत्वादेव छद्मस्थोऽपि सेत्स्यतीति कस्याप्याशङ्का स्यादतस्तदपनोदाय पञ्चमोद्देशकस्येदमादिसूत्रम्— (वृ० प० २२४)

†प्रभु नैं वदै हो गोयम गुणनिलो । (ध्रुपद)

४. हे प्रभु ! छद्मस्थ मनुष्य ते, गया अनंत काल मांय, सुजानां रे ।
सास्वता समय विषे तिको, केवल संजम सूं शिव पाय ?सुजानां रे ॥
५. जिम प्रथम शतक नैं विषे कह्या, चउथे उदेशे आलाव ।
तेहनी परि इहां जाणवो, जाव अलमस्तु केवली भाव ॥

४. छउमत्थे णं भंते ! मणूसे तीयमणंतं सासयं समयं केवलेणं संजमेणं सव्वदुक्खाणं अंतं करिंसु ?
५. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । जहा पढमसए चउत्थुद्देसे (२०१-२०६)आलावगा तहा नेयव्वा जाव अलमत्थु त्ति वत्तव्वं सिया । (श० ५/११५)

## सोरठा

६. आधोवधिक पिछाण, वलि परमाधोवधिक है ।
ते नहिं सीझै जाण, केवल संजम आदि कर ॥
७. यावत् उत्पन्न ज्ञान-दर्शण-धर जे केवली ।
अलमस्तु पहिछाण, कहिवुं त्यां लग ए सहु ॥

६,७. आधोऽवधिकः परमाधोऽवधिश्च केवलेन संयमादिना न सिद्ध्यतीत्याद्यर्थपरं तावन्नेयं यावदुत्पन्नज्ञानादिधरः केवली अलमस्त्विति वक्तव्यं स्यादिति, (वृ० प० २२५)

---

*लय : कोई कहै छानै कोई कहै छपके·········
†लय : पूज नैं नमो हो शोभो गुण······

८. पूर्वे एह कहीज, वलि इहां आख्यो प्रश्न जे।
सवध विशेष थकीज, करण उदेशक तिण अर्थ ॥

९. *कही स्वतीर्थी नी वारता, हिवै अन्यतीर्थी नी कहाय।
अन्यतीर्थी प्रभु! इम कहै, जाव परूपै ताय ॥

१०. सर्व प्राण सर्व भूत ते, सर्व जीव सर्व सत्व जतु।
जेहवू वाध्यू तेहवू अवश्य भोगवै, एवभूत वेदना वेदंतु ॥

११. ते किम ए प्रभु! वेदवू? तव भाखै जिनराय।
अन्यतीर्थी जे इम कहै, ते मिथ्या कहिवाय ॥

१२. हू पिण गोयम! इम कहू, यावत् इम परूपंत।
केइ प्राण भूत जीव सत्व ते, एवभूत वेदना वेदत ॥

१३. जीव कर्म जेहवा वाध्या अछै, तेहवा ईज कर्म भोगवत।
बधी दीर्घ स्थिति ह्रस्व करै नही, तीव्र रस ते न मद करत ॥

१४. केइ प्राण भूत जीव सत्व ते, एवभूत वेदन न वेदत।
वाधी दीर्घ स्थिति सात कर्म नी, थोडा काल नी स्थिति करत ॥

१५. तीव्र रस वध्या पिण मद रस करै, ते एवभूत वेदन वेदै नांय।
किण अर्थे प्रभु! ए विहु? हिवै वीर वतावै न्याय ॥

१६. प्राण भूत जीव सत्व जे, जिम कीधा कर्म तिम वेदत।
ते वेदै एवभूत वेदना, स्थिति रस नो घात न करत ॥

१७. प्राण भूत जीव सत्व जे, कर्म कीधा तिम नहिं वेदत।
ते एवभूत वेदन वेदै नही, स्थिति नै रस घात करत ॥

१८. तिण अर्थे करि इम कह्यु, वलि गोयम पूछत।
प्रभु! नरक एवभूत वेदना, कै अनेवभूत वेदंत?

१९. श्री जिन भाखै नेरइया, वेदन एवभूत पिण वेदत।
अनेवभूत वेदै वलि, किण अर्थे? भगवत!

८. यच्चेद पूर्वाधीतमपीहाधीत तत्सम्बन्धविशेषात्, स पुनरुद्देशकपातनायामुक्त एवेति। (वृ० प० २२५)

९. स्वयूथिकवक्तव्यताऽनन्तरमन्ययूथिकवक्तव्यतासूत्रम्, (वृ० प० २२५)
अण्णउत्थिया ण भते! एवमाइक्खति जाव परूवेंति—

१० सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता एव-भूय वेदण वेदेंति। (श० ५/११६)

११ से कहमेय भते! एव?
गोयमा! जण्ण ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खति जाव सव्वे सत्ता एवभूय वेदण वेदेंति। जे ते एवमाहसु, मिच्छ ते एवमाहसु।

१२ अह पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एवभूय वेदण वेदेंति।

१४,१५ अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता अणेवभूय वेदण वेदेंति। (श० ५।११७)
से केणट्ठेण भते! एव वुच्चइ—अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एवभूय वेदण वेदेंति, अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता अणेवभूय वेदण वेदेंति?

१६. गोयमा! जे ण पाणा भूया जीवा सत्ता जहा कडा कम्मा तहा वेदण वेदेंति, ते ण पाणा भूया जीवा सत्ता एवभूय वेदण वेदेंति।

१७ जे ण पाणा भूया जीवा सत्ता जहा कडा कम्मा नो तहा वेदण वेदेति, ते ण पाणा भूया जीवा सत्ता अणे-वभूय वेदण वेदेति।

१८ से तेणट्ठेण गोयमा! एव वुच्चइ—अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एवभूय वेदण वेदेति, अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता अणेवभूय वेदण वेदेति। (श० ५/११८)
नेरइया ण भते! किं एवभूय वेदण वेदेंति? अणेव-भूय वेदण वेदेंति?

१९ गोयमा! नेरइया ण एवभूय पि वेदण वेदेति, अणेव-भूय पि वेदण वेदेति। (श० ५/११९)
से केणट्ठेण भते!…

*लय . पूज नै नमैं हो शोभो गुण……

२०. श्री जिन भाखै नेरइया, जिम कर्म किया तिम वेदंत ।
ते वेदै एवंभूत वेदना, न्याय पूर्ववत् तत ॥

२० गोयमा ! जे ण नेरइया जहा कडा कम्मा तहा वेदण वेदेंति, ते ण नेरइया एवभूय वेदण वेदेंति ।

२१. जे नेरइया जेम कर्म किया, तिण विध नहिं भोगवत ।
ते वेदै अनेवभूत ने, तिण अर्थे विहु हुत ॥

२१ जे ण नेरइया जहा कडा कम्मा नो तहा वेदण वेदेंति, ते ण नेरइया अणेवभूय वेदण वेदेंति । से तेणट्ठेणं । (श० ५/१२०)

२२. इम जाव वैमानिक लगै, ससार-मडल जाण ।
संसारी जीव चक्रवाल नें, कहिवो सर्व पिछाण ॥

२२ एव जाव वेमाणिया । (श० ५/१२१)
ससारमडल नेयव्व । (श० ५/१२२)

२३. वृत्तिकार कह्यो अथवा इहां वाचनातरे हुंत ।
कुलगर तीर्थकरादि नी, वक्तव्यता दीसत ॥

२३ अथ चेह स्थाने वाचनान्तरे कुलकरतीर्थकरादिवक्तव्यता दृश्यते, (वृ० प० २२५)

२४. जिनागम में प्रसिद्ध एहवा, ससार-मडल शब्देन ।
सूचित करी इहां सभवे, ते आगल कहिये एन ॥

२४ ततश्च ससारमण्डलशब्देन पारिभाषिकसञ्ज्ञया सेह सूचितेति सभाव्यत इति । (वृ० प० २२५)

२५. हे प्रभु ! जंबूद्वीप मे, भरत क्षेत्र रैं माहि ।
इण अवसर्प्पिणी काल में, किता कुलगर हुवा ताहि ?

२५ जबूद्दीवे ण भते ! इह भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए समाए कइ कुलगरा होत्था ?

२६. जिन कहै सात कुलकर थया तीर्थंकर चउवीस ।
मात पिता चउवीस ना, प्रथम शिष्यणी सुजगीस ॥

२६ गोयमा ! सत्त । एव तित्थयरमायरो, पियरो, पढमा सिस्सिणीओ ।

२७. बारै चक्रवर्त्ति नें माता पिता, द्वादश स्त्री रत्न ताम ।
नाम वलि नव वलदेव ना, नव वासुदेव नां नाम ॥

२७ चक्कवट्टिमायरो, इत्थिरयण, वलदेवा, वासुदेवा ।

२८. वल-वासुदेव ना माता पिता, नव प्रतिवासुदेव ।
जिम समवायाग नें विषे, नाम परिपाटी तेम कहेव[1] ॥

२८ वासुदेवमायरो, पियरो, एएसिं पडिसत्तू जहा समवाए (पइण्णगसमवाओ २१८-२४६) नामपरिवाडीए तहा नेयव्वा ।

२९. सेवं भंते ! सेव भंते ! कही, जाव विचरै गोतम स्वाम ।
अर्थ पंचमा शतक नो, पचम उदेशा नों पाम ॥

२९. सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति जाव विहरइ । (श० ५/१२३)

३० ढाल पिच्यासीमी कही, भिक्खु भारीमाल ऋषराय ।
'जय-जश' संपति साहिबी, गण-वृद्धि हरप सवाय ॥

**पंचमशते पंचमोद्देशकार्थः ॥५।५॥**

## ढाल : ८६

### दूहा

१. पंचमुदेशे जीव नु, कह्यु कर्म वेदन्न ।
छट्ठे कर्म तणूज हिव, वध निवधन जन्न ॥

१ अनन्तरोद्देशके जीवाना कर्मवेदनोक्ता, षष्ठे तु कर्मण एव बन्धनिबन्धनविशेषमाह— (वृ० प० २२५)

---

१. २५ से २८ तक चार गाथाओ की जोड जिस पाठ के आधार पर की गई है, वह पाठ अगसुत्ताणि भाग २ मे नहीं है । उस पाठ को वहा पाठान्तर के रूप मे पादटिप्पण मे उद्धृत किया है । जोड के सामने वही पाठ लिया गया है ।

२ *हे प्रभु ! किम जीवा तणै, अल्प आउखो कर्म बधाय ?
जिन कहै तीन ठाणै करी, तिके साभलजे चित ल्याय जी।
ओ तो जीव हणै षट काय जी, वले बोलै मूसावाय जी।
तथारूप श्रमण सुखदाय जी, दूजो नाम माहण मुनिराय जी।
त्यानै सचित असूझता ताय जी, असणादिक चिउ अधिकाय जी।
प्रतिलाभै ते वहिराय जी, इम निश्चै करि कहिवाय जी।
ज्यारै अल्प आउखो बधाय जी, श्री वीर कहै सुण गोयमा ! ॥

२. कहण्ण भते ! जीवा अप्पाउयत्ताए कम्म पकरेंति ? गोयमा ! पाणे अइवाएत्ता, मुस वइत्ता, तहारूव समण वा माहण वा अफासुएण अणेसणिज्जेण असण-पाण-खाइम-साइमेण पडिलाभेत्ता—एव खलु जीवा अप्पाउयत्ताए कम्म पकरेति। (श० ५।१२४)

३. हे प्रभु ! किम जीवा तणै जी, दीर्घ आउखो बधाय ?
जिन कहै तीन ठाणै करी, नहि जीव हणै षटकाय जी।
वलि बोलै नहि मूसावाय जी, तथारूप श्रमण सुखदाय जी।
दूजो नाम माहण मुनिराय जी, असणादिक चिउ अधिकाय जी।
प्रतिलाभै ते वहिराय जी, इम निश्चै करी कहिवाय जी।
ज्यारै दीर्घ आउखो बधाय जी, श्री वीर कहै सुण गोयमा ! ॥

३ कहण्ण भते ! जीवा दीहाउयत्ताए कम्म पकरेति ? गोयमा ! नो पाणे अइवाएत्ता, नो मुस वइत्ता, तहारूव समण वा माहण वा फासुएण एसणिज्जेण असण-पाण-खाइम-साइमेण पडिलाभेत्ता—एव खलु जीवा दीहाउयत्ताए कम्म पकरेति (श० ५/१२५)

४. हे प्रभु ! किम बहु जीवडा, अशुभ दीर्घायु कर्म बाधत ?
जिन कहै जीव हिसा करी, वलि मृषावाद वदत जी।
तथारूप श्रमण तपवत जी, दूजो नाम माहण दयावत जी।
त्या नै जात्यादि करिनै हीलत जी, वले मने करी तास निंदत जी।
जन साख करीनै खिसत जी, तेहनी साख करी गरहत जी।
अपमानी ऊभो न थावत जी, अनेरा अणगमता अत्यत जी।
एहवा आहार च्यारू असोभत जी, ते पिण अप्रीति भाव तिहा हुत जी।
प्रतिलाभै ते देवत जी, त्यारै अशुभ दीर्घायु बधत जी।
श्री वीर कहै सुण गोयमा ! ॥

४ कहण्ण भते ! जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्म पकरेति ? गोयमा ! पाणे अइवाएत्ता, मुस वइत्ता, तहारूव समण वा माहण वा हीलित्ता निंदित्ता खिसित्ता गरहित्ता, अवमणित्ता 'अण्णयरेण अमणुण्णेण अपीतिकारएण असण-पाण-खाइम-साइमेण पडिलाभेत्ता—एव खलु जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्म पकरेति। (श० ५।१२६)
तत्र हीलन—जात्याद्युद्घट्टनत कुत्सा, निन्दन—मनसा, खिसन—जनसमक्ष, गर्हण—तत्समक्ष, अपमानन—अनभ्युत्थानादिकरणम्। (वृ० प० २२७)

५. हे प्रभु ! किम बहु जीवडा, शुभ दीर्घायु कर्म बाधत।
जिन कहै जीव हणै नही, वलि मृषावाद न वदत जी।
तथारूप श्रमण तपवत जी, दूजो नाम माहण दयावत जी।
त्यानै वादै ते स्तुति करत जी, नमस्कार ते सिर नामत जी।
वलि सत्कारी सनमानत जी, कल्लाण मगल देवयत जी।
चित्त प्रसन्नकारी जाणी तत जी, पर्युपासना सेव सोभत जी।
अनेरा मनगमता अत्यत जी, एहवा आहार च्यारूइ शोभत जी।
ते पिण प्रीति भाव तिहा हुंत जी, प्रतिलाभै ते देवत जी।
त्यारै शुभ दीर्घायु बधत जी, श्री वीर कहै सुण गोयमा ! ॥

५ कहण्ण भते ! जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्म पकरेंति ? गोयमा ! नो पाणे अइवाएत्ता, नो मुस वइत्ता, तहारूव समण वा माहण वा वदित्ता नमसित्ता जाव पज्जुवासित्ता 'अण्णयरेण मणुण्णेण पीतिकारएण असण-पाण-खाइम-साइमेण पडिलाभेत्ता—एव खलु जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्म पकरेति।
(श० ५/१२७)

**सोरठा**

६. "अल्पायु पढमेह, द्वितीय प्रश्न दीर्घ आउखो।
अशुभ दीर्घायू जेह, शुभ दीर्घायु चतुर्थ॥

*लय : तीन बोलां करी जीव

७. अल्प आउखो एह, कहियै तेहिज क्षुल्लक भव।
अशुभ कहीजै तेह, अपेक्षाय नहिं अल्प शुभ ॥
८. जीव हणै षट काय, वदै झूठ वलि जाणनें।
सचित्त असूझतो ताय, वहिरावै मुनिवर भणी ॥
९. ए त्रिहु वोलज नीच, तेहथी शुभ अल्प आयु किम।
'नडिया मिथ्या मीच'[1], कहै एहथी अल्प शुभ ॥
१०. दूजा दडक माहि, ते समचै दीर्घ आयू कह्यो।
पिण शुभ आश्री ताहि, तास भेद वे आगलै ॥
११. तोजा दडक माहि, अशुभ दीर्घ आयू कह्यु।
चोथे दडक ताहि, आख्यो शुभ दीर्घ आउखो ॥
१२. दीर्घ आयु पुन्य पाप, तिण सु वे भेदे करी।
श्री जिन कीधी थाप, करणी फल चिहु जूजुआ ॥
१३. अल्प आउ वे भेद, शुभ अल्पायू अशुभ फुन।
इम नहि कह्या सवेद, तिण सु ए अल्प अशुभ छै" ॥ (ज०स०)
१४. इहा पाछै पहिछान, कर्मवध क्रिया कही।
अन्य क्रिया हिव जान, कहियै छै तेहनी विपय ॥
१५. *हे प्रभु! गृहस्थ गाथापती जी, भड क्रियाणो वेचत।
इतरै कोइ भड चोर लै, प्रभु! भड नें तेह जोवत जी।
तेहनें आरभिया क्रिया हुंत जी, तथा परिग्रहिया लागंत जी ?
मायावत्तिया कषायमत जी, अपचखाण अव्रत कहत जी ?
मिथ्यादर्शन तणी होवत जी ? जिन कहै धुर च्यार थावत जी।
मिथ्यादर्शण भजना भवत जी, गृहस्थ मिथ्यादृष्टि ह्वै तो हुंत जी।
समदृष्टि रै नाहि कहत जी, जोवता भंड तेह लाधत जी।
जव पतली च्यारू उपजत जी, जोवता वहु उद्यम करत जी।
लाधा पछै अल्प उद्यमवत जी, श्री वीर कहै सुण गोयमा ! ॥

१४. अनन्तर कर्मबन्धक्रियोक्ता, अथ क्रियान्तराणा विपय-निरूपणायाह-- (वृ० प० २२८)

१५ गाहावइस्स ण भंते ! भंड विक्किणमाणस्स केइ भंड अवहरेज्जा, तस्स ण भंते ! 'भंड अणुगवेसमाणस्स' किं आरंभिया किरिया कज्जइ ? पारिग्गहिया किरिया कज्जइ ? मायावत्तियाकिरिया कज्जइ ? अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ ? मिच्छादसणवत्तिया-किरिया कज्जइ ?
गोयमा ! आरंभियाकिरिया कज्जइ, पारिग्गहिया-किरिया कज्जइ, मायावत्तियाकिरिया कज्जइ, अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ, मिच्छादसणकिरिया सिय कज्जइ, सिय नो कज्जइ।
अह से भंडे अभिसमण्णागए भवइ, तओ से पच्छा सव्वाओ ताओ पयणुईभवति। (श० ५/१२८)

## सोरठा

१६. हिव अलावा च्यार, धुर वे भड वस्तू तणा।
तीजो चोथो धार, धन आश्री आख्या अछै ॥
१७. *गाथापति नें हे प्रभु ! क्रियाणो वेचता नें ताय।
गाहक भड प्रतै लियै, सचकार ते साई देवाय जी।
भड वस्तु पोता री ठहराय जी, पिण भड हजी ग्रह्यो नाय जी।
वस्तु वेचणहार रै पाय जी, प्रभु गाथापति नें कहाय जी।
भड थी कितली क्रिया थाय जी, तथा ग्राहक नें पिण ताय जी।

१७ गाहावइस्स ण भंते ! भंड विक्किणमाणस्स कइए भंड साइज्जेज्जा, भंडे य से अणुवणीए सिया।
गाहावइस्स ण भंते ! ताओ भंडाओ किं आरंभिया-किरिया कज्जइ ? जाव मिच्छादसणकिरिया कज्जइ ? कइयस्स वा ताओ भंडाओ किं आरंभिया-किरिया कज्जइ ? जाव मिच्छादसणकिरिया कज्जइ ?

---

१ मिथ्यात्व रूपी मित्र के साथ बंधे हुए।
*लयः तीन बोला करी जीव

पाचां माहिली किती कहिवाय जी ? जिन भाखै गोयम सुण वाय जी ।
गाथापति जे वस्तु वेचाय जी, तिण रै भड थी चिहु अधिकाय जी ।
भजना मिथ्यादर्शन माय जी, गाहक नै सहु पतली थाय जी ।
अजे वस्तु न लीधी ए न्याय जी, ए प्रथम आलावो कहाय जी ।।
श्री वीर कहै सुण गोयमा ।।

गोयमा ! गाहावइस्स ताओ भडाओ आरभियाः किरिया कज्जइ जाव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ। मिच्छादसणकिरिया सिय कज्जइ, सिय नो कज्जइ। कइयस्स ण ताओ सव्वाओ पयणुईभवति ।

(श० ५/१२९)

क्रयिको—ग्राहको भाण्डं 'स्वादयेत्' सत्यङ्कारदानत. स्वीकुर्यात् । (वृ० प० २२९)

१८. तया गाथापति नैं हे प्रभु ! क्रियाणो वेचता नैं ताय ।
गाहक भड प्रतै लियै, सचकार ते साई देवाय जी ।
भड वस्तु पोता री ठहराय जी, भड वस्तु ल्यायो घर माय जी ।
वेचणहार पासै रही नाय जी, प्रभु ! गाहक कइया[1] नैं कहाय जी ।
तसु भड थी के क्रिया थाय जी, तथा गाथापति नैं ताय जी ।
भड थी पाचा में किती पाय जी ? जिन भाखै गोयम! सुण वाय जी ।
गाहक–कइयो जे वस्तु लिवाय जी, तिण रै भड थी चिहु अधिकाय जी ।
भजना मिथ्यादर्शन मांय जी, गाथापति नै सहु पतली पाय जी ।
वस्तु सूपे दीधी ए न्याय जी, ए द्वितीय आलावो कहाय जी ।
श्री वीर कहै सुण गोयमा ।।

१८ गाहावइस्स ण भते ! भड विक्किणमाणस्स कइए भड साइज्जेज्जा, भडे से उवणीए सिया ।
कइयस्स ण भते ! ताओ भडाओ कि आरभियाकिरिया कज्जइ ? जाव मिच्छादसणकिरिया कज्जइ ? गाहावइस्स वा ताओ भडाओ कि आरभियाकिरिया कज्जइ जाव मिच्छादसणकिरिया कज्जइ ? गोयमा ! कइयस्स ताओ भडाओ हेट्ठिल्लाओ चत्तारि किरियाओ कज्जति । मिच्छादसणकिरिया भयणाए ।
गाहावइस्स ण ताओ सव्वाओ पयणुईभवति ।

(श० ५/१३०)

## सोरठा

१९. भड आश्री बे आलाव, पहिलै भड सूप्यो नथी ।
द्वितीय आलावे भाव, भड सूप्यो गाहक भणी ।।

१९. इद भाण्डस्यानुपनीतोपनीतभेदात्सूत्रद्वयमुक्तम् ।

(वृ० प० २२९)

२० *गाथापति नैं हे प्रभु ! क्रियाणो वेचता नैं ताय ।
गाहक भड प्रतै लियै, सचकार ते साई देवाय जी ।
भड वस्तु पोता री ठहराय जी, पिण धन हजो सूप्यो नाय जी ।
धन छै गाहक—कइया पाय जी, प्रभु ! गाहक कइया नै कहाय जी ।
धन थी कितली क्रिया थाय जी, तथा गाथापति नै ताय जी ।
धन थी पाचा मे किती पाय जी ? तव भाखै श्री जिनराय जी ।
गाहक कइया तणे कहिवाय जी, धन थी धुर चिहु अधिकाय जी ।
भजना मिथ्यादर्शन माय जी, गाथापति नै पतली थाय जी ।
हजी न लियो धन ए न्याय जी, ए तृतीय आलावो कहाय जी ।।
श्री वीर कहै सुण गोयमा ।।

२० गाहावइस्स ण भते ! भड विक्किणमाणस्स कइए भड साइज्जेज्जा, धणे य से अणुवणीए सिया ? कइयस्स ण भते ! ताओ धणाओ कि आरभियाकिरिया कज्जइ ? जाव मिच्छादसणकिरिया कज्जइ ? गाहावइस्स वा ताओ धणाओ कि आरभियाकिरिया कज्जइ ? जाव मिच्छादसणकिरिया कज्जइ ? गोयमा ! कइयस्स ताओ धणाओ हेट्ठिल्लाओ चत्तारि किरियाओ कज्जंति । मिच्छादसणकिरिया भयणाए ।
गाहावइस्स ण ताओ सव्वाओ पयणुईभवति ।

(श० ५/१३१)

२१. गाथापति नै हे प्रभु ! क्रियाणो वचता नै ताय ।
गाहक भड प्रतै लियै, सचकार ते साई देवाय जी ।
भड—वस्तु ल्यायो घर माय जी, धन सूप दियो तसु ताय जी ।
गाहक-- कइया पासै रह्यो नाय जी, प्रभु! गाथापति नै कहिवाय जी ।

२१ गाहावइस्स ण भते ! भड विक्किणमाणस्स कइए भडं साइज्जेज्जा, धणे से उवणीए सिया । गाहावइस्स णं भते ! ताओ धणाओ कि आरभियाकिरिया कज्जइ ? जाव मिच्छादसणकिरिया कज्जइ ? कइयस्स वा ताओ धणाओ कि आरभियाकिरिया कज्जइ ? जाव मिच्छादसणकिरिया कज्जइ ?

*लय : तीन बोलां करी जीव

[1]. खरीदने वाला

धन थी पाचा में किती पाय जी ? तव भाखै श्री जिनराय जी ।
गाथापति तणै कहिवाय जी, धन थी धुर चिहु अधिकाय जी ।
भजना मिथ्यादर्शन माय जी, गाहक—कइया नै पतली थाय जी ।
धन सूंप दियो इण न्याय जी, ए चोथो आलावो पाय जी ।
श्री वीर कहै सुण गोयमा ।।

## सोरठा

२२. धन आश्री वे आलाव, तीजे धन सूप्यो नथी ।
चोथे आलावे भाव, धन सूप्यो गाथापति भणी ।।

२३. एवं च्यार आलाव, सूत्रे वे विस्तारिया ।
वे सक्षेपे भाव, इहा विस्तार टीका[1] थकी ।।

२४ "तृतीय आलावे धन्न, गाथापति नें सूप्यो नथी ।
जिम भड सूप्यो जन्न, इम कहिवु सूत्रे कह्यु ।।

२५. भड सूप्यो द्वितीय आलाव, ए वीजो तास भलावियो ।
तेहनो छै इम न्याव, वीजो तीजो इक गमो ।।

२६. बीजे आलावे जाण, भंड सूप्यो ग्राहक भणी ।
जवर क्रिया पहिछाण, भंड थी गाहक नै कही ।।

२७. तृतीय आलावे पेख, गाहक धन सूप्यो नथी ।
तिण कारण सुविशेख, जवर क्रिया ग्राहक भणी ।।

२८. जवरी किरिया जाण, गाहक नै तिण कारणै ।
द्वितीय तृतीय पहिछाण, एक गमो इम आखियो ।।

२९. चोथो आलावो एम, धन तेहनै सूप्यो हुइ ।
प्रथम आलावो जेम, भड नहि सूप्यो तेम ए ।।

३०. भड नहि सूप्यो प्रथम आलाव, ए पहिलो तास भलावियो ।
तेहनो छै इम न्याव, पहिलो चोथो इक गमो ।।

३१. भड थी जवरी थाय, गाथापति नै चिहु क्रिया ।
तिण भड सूप्यो नाय, प्रथम आलावै मे कह्यो ।।

३२. भड थी जवरी मड, ग्राहक नें इण विध हुवै ।
गाहावइ सूप्यो भड, दूजा आलावा मे कह्यु ।।

३३. धन थी जवरी जास, गाहक नै इण कारणै ।
धन ही सूप्यो तास, तृतीय आलावै मे कह्यु ।।

३४. धन थी जवर उपन्न, गाथापति नै इह विधे ।
गाहक सूप्यो धन्न, चोथै आलावा मे कह्यु ।।

गोयमा ! गाहावइस्स ताओ धणाओ आरंभिया-किरिया कज्जइ जाव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ । मिच्छादसणकिरिया सिय कज्जइ, सिय नो कज्जइ । कइयस्स ण ताओ सव्वाओ पयणईभवति ।
(श० ५/१३२)

---

१ जयाचार्य ने इस गीत की २० वी और २१ वी गाथा की रचना टीका के आधार पर की है, यह तथ्य इन गाथा मे स्पष्ट हो रहा है । अगसुत्ताणि भाग २ मे यह पाठ मूल मे है । सभव है जयाचार्य को उपलब्ध आदर्श मे पाठ पूरा नही था, इसीलिए उन्हें शेष दो विकल्पो की रचना टीका के आधार पर करनी पडी ।

३५. तिण कारण इम ख्यात, प्रथम चउथ नो इक गमो ।
एक गमो अवदात, वीजा तीजा नो कह्यु ॥
३६. प्रथम आलाव सुजन्न, भड छै गाथापति कनै ।
चउथ गमा मे धन्न, गाथापति नै सूपियो ॥
३७. तिण सू जवरी जोय, भड थकी अरु धन थकी ।
गाथापति नैं होय, प्रथम चउथ इम इक गमो ॥
३८. द्वितीय आलावे सोय, गाहक नैं भड सूपियो ।
तृतीय आलावे जोय, गाहक धन सूप्यो नथी ॥
३९. तिण सू जवरी जाण, भड थकी अरु धन थकी ।
गाहक नै पहिछाण, वितिय तृतिय इम इक गमो ॥" (ज० स०)

४०. *अक छप्पन नों देश ए, कहो छयासीमो ढाल ।
श्री भिक्षु भारीमाल जी, ऋषिराय गणिद दयाल जी ।
तसु शुभ दृष्टी थी न्हाल जी, वर 'जय-जश' सपति माल जी ।
गण ऋद्धि वृद्धि सुविशाल जी, मेटण मिथ्यात जवाल' जी ।
श्री वीर कहै सुण गोयमा ॥

## ढाल : ८७

### दूहा

१. क्रिया तणा अधिकार थी, वलि क्रियाज विचार ।
पूछै गोयम गणहरू, अति हित प्रश्न उदार ॥

†मोरा प्रभुजी हो, गोयम जिनजी नै वीनवै ॥ (ध्रुपद)

२. प्रभुजी हो, अग्निकाय तत्काल नी, दीप्ये थके अधिकाय ।
प्रभुजी हो, अति महाकर्म बंधै जेहनै, दाहरूप क्रिया महा थाय ॥

३. कारण जे महा कर्म नों, अति महा आश्रव तास ।
वलि अति महा तसु वेदना, कर्म थी उपनी जास ॥
४. समै समै अगनी हिवै, अपकर्ष—हीणी थाय ।
बूझ्ये चरम काल समय में, अगारा—खीरा कहाय ॥
५. मुर्म्मुरभूत आसर थयो, छारभूत थया पछै जोय ।
अल्प कर्म क्रिया आश्रव वेदना ? जिन कहै हता होय ॥

१ क्रियाऽधिकारादिदमाह— (वृ० प० २२९)

२ अगणिकाए ण भते ! अहुणोज्जलिए समाणे महाकम्मतराए चेव, महाकिरियातराए चेव,
'अधुनोज्ज्वलित' सद्यःप्रदीप्त. ... दाहरूपा ।
(वृ० प० २२९)

३ महासवतराए चेव, महावेदणतराए चेव भवइ ।

४ अहे ण समए-समए वोक्कसिज्जमाणे-वोक्कसिज्जमाणे चरिमकालसमयसि इगालब्भूए

५. मुम्मुरब्भूए छारियब्भूए तओ पच्छा अप्पकम्मतराए चेव, अप्पकिरियतराए चेव, अप्पासवतराए चेव, अप्पवेयणतराए चेव भवइ ? हता गोयमा ! अगणिकाए ण अहुणोज्जलिए समाणे त चेव ।
(श० ५/१३३)

*लय : तीन वोलां करी जीव
†लय : भाभीजी हो डूगरिया हरिया
१ कर्दम

६. अगारादिक आश्रयी, अल्प स्तोक अथह ।
छार आश्रयी नै इहा, अल्प अभाव गिणेह ॥

७. पुरुष धनुष प्रतै कर ग्रही, बाण प्रतै ग्रही ताय ।
धनुष बाण जोडै तदा, बैठो गोडा नमाय ॥

८. बाण न्हाखण रै कारणै, कान लगै शर आण ।
ऊंचो आकाश विषे तदा, तीर चलायो ताण ॥

९. तीर आकाश जातो तदा, प्राण भूत सत्व जीव ।
साहमा आवंता थका, शर हणै अधिक अतीव ॥

१० तन सकोच न पामवै, वत्तेइ वाटलाकार ।
लेस्सेइ आतम नै विषे, श्लेष करै तिण वार ॥

११. संघाएइ भेला करै, संघट्टेइ संघट्टंत ।
परितापेइ परितापना, सर्व थकी पीडंत ॥

१२. किलामेइ मारणांतिकी, समुद्घात पहुचाडंत ।
स्व स्थान थी अन्य स्थानके, पहुचाडै सरजंत ॥

१३. प्राण छोडावै सर्वथा, तिण अवसर भगवान ।
तेह पुरुष नैं केतली, क्रिया लागै आण?

१४. गोयमजी हो, श्री जिन भाखै तिण समै, पुरुष धनुष ग्रहि हाथ ।
गोयमजी हो, जाव आकाश विषै तदा, मूकै बाण विख्यात ॥

(गोयमजी हो, वीर प्रभू इम वागरै)

१५. तेह पुरुष नैं कायिकी, जावत् प्राणातिपात ।
फरसै पंच क्रिया करी, तेह थी कर्म बंध थात ॥

१६. जे पिण जीव ना तनु करी, धनुष निपायो नाम ।
ते पिण फर्सै जीवडा, पंच क्रिया करि आम ॥

१७. धनुष-पृष्ठ जे जीव ना, शरीर थकी निष्पन्न ।
ते जीव पंच क्रिया करी, फर्सै कर्म उत्पन्न ॥

१८. जीवा ते पुणछ ना जीवडा, फर्सै किरिया पंच ।
धनुष नी पुणछ नु बाधणु, ते न्हारू नै पंच विरंच ॥

१९. शर पत्र फलादि समुदाय नै, कहियै उसु बाण ।
तेहना जीवा नै हुइ, पंच क्रिया पहिछाण ।

२०. साठी शरीडुं एकलुं, ते शर नै पिण पंच ।
पत्र ते जीव नां पीछडा, तेहनै पंच सुसंच ॥

६ अङ्गाराद्यवस्थामाश्रित्य, अल्पशब्दः स्तोकार्थे, (क्षारावस्थायां त्वभावार्थे) । (वृ० प० २२९)

७. पुरिसे णं भंते ! धणुं परामुसइ, परामुसित्ता उसुं परामुसइ, परामुसित्ता ठाणं ठाइ,

८ ठिच्चा आयतकण्णाययं उसुं करेति, उड्ढं वेहासं उसुं उव्विहइ ।

९ तए णं से उसू उड्ढं वेहासं उव्विहिए समाणे जाइं तत्थ पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणइ ।

१० वत्तेति लेसेति
'वत्तेइ' त्ति वर्त्तुलीकरोति शरीरसङ्कोचापादनात् 'लेसेइ' त्ति 'श्लेषयति' आत्मनि श्लिष्टान् करोति । (वृ० प० २३०)

११ संघाएइ संघट्टेति परितावेइ
'संघाएइ' त्ति अन्योन्य गात्रैः संहतान् करोति 'संघट्टेइ' त्ति मनाक् स्पृशति 'परितावेइ' त्ति समन्ततः पीडयति । (वृ० प० २३०)

१२ किलामेइ ठाणाओ ठाणं संकामेइ,
'किलामेइ' त्ति मारणान्तिकादिसमुद्घातं नयति (वृ० प० २३०)

१३ जीवियाओ ववरोवेइ । तए णं भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए ?

१४ गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे धणुं परामुसइ उसुं परामुसइ, ठाणं ठाइ, आयतकण्णाययं उसुं करेति, उड्ढं वेहासं उसुं उव्विहइ,

१५ तावं च णं से पुरिसे काइयाए, अहिगरणियाए, पाओसियाए, पारियावणियाए, पाणाइवायकिरियाए—पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे ।

१६ जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिं धणू निव्वत्तिए ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा ।

१७ एवं धणुपट्ठे पंचहिं किरियाहिं,

१८ जीवा पंचहिं, ण्हारू पंचहिं,

१९ उसू पंचहिं
इषुरिति शरपत्रफलादिसमुदायः । (वृ० प० २३०)

२०,२१ सरे, पत्तणे, फले, ण्हारू पंचहिं । (श० ५/१३४)

२१. फल ते भालोडो लोहडु, पच क्रिया फर्संत ।
न्हारू पाख नु वाधणु, पच क्रिया तसु हुत ॥

## सोरठा

२२. इहा कह्यु वृत्ति मझार, पच क्रिया हुवै पुरुष नै ।
काइयादिक व्यापार, प्रत्यक्ष दीसै छै तसु ॥

२२ ननु पुरुषस्य पञ्च क्रिया भवन्तु, कायादिव्यापाराणा तस्य दृश्यमानत्वात् । (वृ० प० २३०)

२३. धनुष आदि दे जाण, जीवा तणा शरीर नों ।
नीपजियो पहिछाण, पच क्रिया किम तेहनें ?

२३ धनुरादिनिर्वर्त्तकशरीराणा तु जीवाना कथ पञ्च क्रिया ? (वृ० प० २३०)

२४. काय अचेतन तास, ते काय मात्र थी वध ह्वै ।
तो सिद्धा नै सुविमास, तसु तन पिण वध-हेतु है ॥

२४ कायमात्रस्यापि तदीयस्य तदानीमचेतनत्वात्, अचेतनकायमात्रादपि बन्धाभ्युपगमे सिद्धानामपि तत्प्रसङ्ग, तदीयशरीराणामपि प्राणातिपातहेतुत्वेन लोके विपरिवर्त्तमानत्वात् । (वृ० प० २३०)

२५. क्रिया हेतु कर्मबध, धनुप आदि नै जे हुव ।
तो पात्र दडके सध, जतु-रक्षा हेतु पुन्य ?

२५ किञ्च—यथा धनुरादीनि कायिक्यादिक्रियाहेतुत्वेन पापकर्मबन्धकारणानि भवन्ति, तज्जीवानामेव पात्र-दण्डकादीनि जीवरक्षाहेतुत्वेन पुण्यकर्मनिबन्धनानि स्यु । (वृ० प० २३०)

२६ तसु उत्तर इम देह, अव्रत सेती कर्म बध ।
सिद्धा में नहि तेह, एम कह्यो टीका मझे ॥

२६ अत्रोच्यते, अविरतिपरिणामाद् बन्ध, अविरति-परिणामश्च यथा पुरुषस्यास्ति एव धनुरादिनिर्वर्त्तक-शरीरजीवानामपीति, सिद्धाना तु नास्त्यासाविति न बन्ध, (वृ० प० २३०)

२७ पात्र रजोहरण ताहि, मुनी भोगवै तेहनी ।
तसु अनुमोदन नाहि, तिण सू पुन्य तेहनु नही ॥

२७ पात्रादिजीवाना तु न पुण्यबन्धहेतुत्व तद्धेतोर्विवेका-देस्तेष्वभावादिति । (वृ० प० २३०)

२८. वलि जिन वचन प्रमाण, जेम कह्यो तिम सरधवू ।
सिर धारेवी आण, विषम दृष्टि निवारियै ॥

२८ किञ्च—सर्वज्ञवचनप्रामाण्याद्यथोक्त तत्तथा श्रद्धेय-मेवेति । (वृ० प० २३०)

२९. *हिवै ते वाण पोता तणै, गुरुपणा करि जेह ।
वलै पोता नैं भारीपणै, गुरुसभारिपणै तेह ॥

२९ अहे ण से उसू अप्पणो गुरुयत्ताए, भारियत्ताए, गुरु-सभारियत्ताए ।

३०. निज स्वभाव हेठो पडै, पडता ते प्राण हणाय ।
जावत् ते जीवितव्य थकी, रहित करै छै ताय ॥

३० अहे वीसमाए पच्चोवयमाणे जाइ तत्थ पाणाइ जाव जीवियाओ ववरोवेइ ।

३१. निश्चै कर तिण अवसरे, तेतले काले जेह ।
किती क्रियावंत पुरुष ते ? हिव जिन उत्तर देह ॥

३१ तावं च ण से पुरिसे कतिकिरिए ?

३२. वाण पोता नै गुरुपणे, जावत जीव हणाय ।
च्यार क्रिया ते पुरुप नै, पाणाइवाय न थाय ॥

३२ गोयमा ! जावं च ण से उसू अप्पणो गुरुयत्ताए जाव जीवियाओ ववरोवेइ, ताव च ण से पुरिसे काइयाए जाव चउहिं किरियाहिं पुट्ठे ।

३३. जे पिण जीव ना तनु करी, धनुष निपायो ताम ।
ते पिण फर्सै जीवडा, च्यार क्रिया करि आम ॥

३३. जेसि पि य ण जीवाण सरीरेहिं धणू निव्वत्तिए ते वि जीवा चउहिं किरियाहिं,

३४ धनुषपृष्ठ जे जीव ना, शरीर थकी निप्पन्न ।
ते जीव च्यार क्रिया करी, फर्सै कर्म उप्पन्न ॥

३४ धणुपट्ठे चउहिं,

---

* लय : भाभीजी हो डूगरिया हरिया

३५. जीवा पुणछ नां जीवडा, फर्स क्रिया च्यार ।
धनुप नी पुणछ नु वाधणु, ते न्हारू नें पिण चिउ धार ॥
३६ शर पत्र फलादि समुदाय नें, कहियै उसु वाण ।
तेहना जीवा नै हुंइ, पच क्रिया पहिछाण ॥
३७ साठी शरीरु एकलुं, ते शर नें पिण पच ।
पत्र ते जीव ना पीछडा, तेहनें पच सुसच ॥
३८. फल ते भालोडी लोहडु, पच क्रिया फर्सत ।
न्हारू पाख नु वाधणु, पच क्रिया तसु हुत ॥
३९. जे वाण नीचे पथ जावता, वीच अवग्रह माय ।
जीव ना पखोवादिक तणु, सान्निध्य स्हाज जो थाय ॥
४०. ते जीव नै पिण हुवै, क्रिया पच कहिवाय ।
काइया प्रथम क्रिया कही, जाव पाणाइवाय ॥

३५ जीवा चउहिं, ण्हारू चउहिं,

३६. उसू पंचहिं—
इपुरिति शरपत्रफलादिसमुदाय । (वृ० प० २३०)

३७,३८. सरे, पत्तणे, फले, ण्हारू पंचहिं ।

३९ जे वि य से जीवा अहे पच्चोवयमाणस्स उवग्गहे वट्टंति,

४०. ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा । (श० ५/१३४)

### सोरठा

४१. कह्यु वृत्ति रै माय, जदपि सर्व क्रिया विषे ।
किण हि प्रकारे थाय, निमित्त भाव नर धनुप नें ॥
४२. तो पिण वांछित वध, अमुख्य प्रवृत्ति तिणे करी ।
वाछित वध क्रिया सध, कर्तापणे वाछी नही ॥
४३ शेप क्रिया नें जाण, निमित्तभावमात्रेण पिण ।
कर्तापणे पिछाण, वाछी तिण स्यू चिहु क्रिया ॥
४४. वाणादिक ना जीव, तसु शरीर साख्यात वध ।
क्रिया प्रवृत अतीव, तिण सू पच क्रिया कही ॥
४५. *अक छपन नु देश ए, सात असीमी ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋपराय थी, 'जय-जश' मगल माल ॥

४१. इह धनुष्मदादीना यद्यपि सर्वक्रियासु कथञ्चिन्निमित्तभावोऽस्ति । (वृ० प० २३०)

४२ तथाऽपि विवक्षितबन्ध प्रत्यमुख्यप्रवृत्तिकतया विवक्षितवधक्रियायास्तै. कृतत्वेनाविवक्षणात् । (वृ० प० २३०)

४३. शेपक्रियाणा च निमित्तभावमात्रेणापि तत्कृतत्वेन विवक्षणाच्चतस्रस्ता उक्ता' । (वृ० प० २३०)

४४ वाणादिजीवशरीराणा तु साक्षाद् वधक्रियाया प्रवृत्तत्वात्पञ्चेति । (वृ० प० २३०)

## ढाल : ८८

### दूहा

१. आखी सम्यक् परूपणा, हिव मिथ्या पूर्व निरास ।
सम्यक् परूपणा प्रतै, देखाडै छै तास ॥

२. अन्यतीर्थी प्रभु ! इम कहै, यथानाम दृष्टंत ।
युवती प्रतै युवान नर, कर करि हस्त ग्रहत ॥

१. अथ सम्यक्प्ररूपणाधिकारान्मिथ्याप्ररूपणानिरासपूर्वक सम्यक्प्ररूपणामेव दर्शयन्नाह— (वृ० प० २३०)

२ अण्णउत्थिया ण भते ! एवमातिक्खति जाव परूवेंति—से जहानामए जुवति जुवाणे हत्थेण हत्थे गेण्हेज्जा,

---

*लय : भाभीजी हो डूगरिया हरिया

३. चक्र नाभि नै जिम अरा, तिम यावत् चउ पच।
सय जोजन नर लोक ए, भर्‌यो मनुष्य करि सच॥

३ चक्कस्स वा नाभी अरगाउत्ता सिया, एवामेव जाव चत्तारि पच जोयणसयाइं बहुसमाइण्णे मणुयलोए मणुस्सेहिं। (श० ५/१३६)

४. ते किम हे भगवत! ए? तव भाखै जिनराय।
अन्यतीर्थी जे इम कहै, ते मिथ्या कहिवाय॥

४ से कहमेय भते! एव?
गोयमा! जण्ण ते अण्णउत्थिया एवमातिक्खति जाव बहुसमाइण्णे मणुयलोए मणुस्सेहिं। जे ते एवमाहसु 'मिच्छ ते एवमाहसु'।

५. हू पिण गोयम! इम कहू, यावत् इमहिज साध।
जाव च्यार सय पाच सय, जोजन क्याइक लाध॥

५ अह पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि— से जहानामए जुवर्ति जुवाणे हत्थेण हत्थे गेण्हेज्जा, चक्कस्स वा नाभी अरगाउत्ता सिया एवामेव जाव चत्तारि पचजोयणसयाइ

६. नरकलोक नरके करी, भर्‌यू अछै बहु ताय।
नरक तणा अधिकार थी, नरक सूत्र हिव आय॥

६ बहुसमाइण्णे निरयलोए नेरइएहिं। (श० ५/१३७)
'नेरइएहिं' इत्युक्तमतो नारकवक्तव्यतासूत्रम्— (वृ० प० २३१)

७. नेरइया प्रभु! शस्त्र इक, विकुर्वण समर्थवत।
शस्त्र बहु विकुर्ववा समर्थ? जिन कहै हत॥

७ नेरइया ण भते! किं एगत्त पभू विउव्वित्तए? पुहत्त पभू विउव्वित्तए?
गोयमा! एगत्त पि पहू विउव्वित्तए, पुहत्तपि पहू विउव्वित्तए।
'एगत्त' ति एकत्व प्रहरणाना 'पुहुत्त' ति पृथक्त्वं बहुत्व प्रहरणानामेव। (वृ० प० २३१)

८ जिम जीवाभिगमे कह्यु, आलाव गोतम! जाण।
जावत् खमता दोहिली, वेदन लग पहिछाण॥

८ जहा जीवाभिगमे (सू० ११०,१११) आलावगो तहा नेयव्वो जाव विउव्वित्ता अण्णमण्णस्स काय अभिहण-माणा-अभिहणमाणा वेयण उदीरेति—उज्जल विउल पगाढ कक्कस कडुय फरुस निट्ठुर चंडं तिव्वं दुक्ख दुग्ग दुरहियास। (श० ५/१३८)

९. एह वेदना तो हुवै, आराधन विन जेह।
आराधना ना भाव हिव, देखाडै छै तेह॥
*प्रभु पूरणनाणी, गोयमजी पूछै प्रश्न पिछाणी॥ (ध्रुपद)

९ इय च वेदना ज्ञानाद्याराधनाविरहेण भवतीत्या-राधनाऽभाव दर्शयितुमाह— (वृ० प० २३१)

१०. आधाकर्मी ए निरवद्य होय, एहवो मन मे धारै कोय।
११. स्थानक ते आलोया विना सोय, वलि पडिकमिया विना जोय।
१२ काल करै तो आराधन नाहि, तिण रै सल रह्यो मन माहि।
१३. स्थानक ते आलोयो जाणी, वलि पडिकमियो गुणखाणी।
१४. इण विध काल करै तो ताय, तिण रै आराधना तसु थाय।

१० आहाकम्म 'अणवज्जे' त्ति मण पहारेत्ता भवति,
११ से ण तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडिक्कते
१२ काल करेइ—नत्थि तस्स आराहणा।
१३ से ण तस्स ठाणस्स आलोइय-पडिक्कते
१४ काल करेइ—अत्थि तस्स आराहणा। (श० ५/१३९)

१५. ए धुर बोल कह्यो तिम कहीजै, सक्षेपे नव बोल सुणीजै।
१६ कीयगड मोल लियो तिणवारी, साधु अर्थ थाप्यो निश्चो धारी।
१७. मोदक नो चूर्ण ते मुनि काज, वलि मोदक रचियो समाज।

१५ एएण गमेण नेयव्व—
१६ कीयगड ठविय,
१७,१८ रइय,
'रइयग' ति मोदकचूर्णादि पुनर्मोदकादितया रचित-मौद्देशिकभेदरूप। (वृ० प० २३१)

*लय : पुनवंतो जीव पाछिल भव

१८. तेह रचित[1] है उद्देशिक भेद, एहवो वृत्ति मे अर्थ संवेद।
१६. कतार-भक्त ते अटवी माहि, भिखारिया काजै कीधो ताहि।

२०. दुर्भिक्ष-भक्त दुकाल मे जेह, भिक्षु अर्थे कीधो भक्त तेह।
२१. वद्दलिया-भक्त ते मेह-झड मांय, भिक्षु अर्थे भात निपजाय।
२२. गिलाण-भक्त ते रोगी नै अर्थे कीधो भात विशेप तदर्थे।

२३. सेज्यातर-पिड सूवै जिण स्थान, तेहना घर नों आहार ए जान।
२४. राय पिड ते राजा-अभिपेक कीधे छते जे आहार विशेष।
२५. तथा पिड माहै राज समान, मस प्रमुख अकल्पतो जान।
२६ ए दस दोप कह्या जिनराय, निर्दोप जाणै मन माय।

२७. विना आलोया आराधना नही छै, आलोया आराधना कही छै।
२८. ए दस दोप निरवद्य कहीनं, घणा लोका माहै भाखी नै।
२६. स्वयमेव भोगवी नै न आलोय, तिण नै आराधना नहि होय।
३०. आलोया पडकमिया ते स्थान, तिण रै आराधना पहिछान।

१६ कन्तारभत्त,
कान्तारम्—अरण्य तत्र भिक्षुकाणा निर्वाहार्थं यद्-विहित भक्त तत्कान्तारभक्तम्। (वृ० प० २३१)

२० 'दुब्भिक्खभत्त',

२१ वद्दलियाभत्त,

२२ गिलाणभत्त,
ग्लानस्य नीरोगतार्थं भिक्षुकदानाय यत्कृत भक्त तद् ग्लानभक्तम्,। (वृ० प० २३१)

२३ सेज्जायरपिंड,

२४ रायपिंड। (श० ५/१४०)

२६ आधाकर्मादीना सदोषत्वेनागमेऽभिहिताना निर्दोषता-कल्पनम्। (वृ० प० २३१)

२८-३० आहाकम्म 'अणवज्जे' त्ति मयमेव परिभुजित्ता भवति, से ण तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडिक्कते काल करेइ—नत्थि तस्सआराहणा। से ण तस्स ठाणस्स आलोइय-पडिक्कते काल करेइ—अत्थि तस्स आराहणा। (श० ५/१४१)

---

१ साधु के भोजन सम्बन्धी दोपो मे एक दोप है—रचित दोप। भगवती की वृत्ति (वृ० प० २३१) मे इसे औद्देशिक का एक भेद वताया गया है, पर उसका कोई कारण नही वताया गया। प्रश्न व्याकरण सूत्र की वृत्ति मे जो अर्थ किया है, उससे रचित दोप की औद्देशिकता घटित हो सकती है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए आचार्य श्री तुलसी ने पाच सोरठे लिखे हैं, वे इस प्रकार हैं—

**सोरठा**

प्रश्नव्याकरण उदार, दशम अध्ययन नी वृत्ति मे।
दोष-विवरण मझार, रचित दोप नो अर्थ ए॥
मोदक चूर्ण विचार, साध्वादिक नै अर्थ वलि।
अग्नि आदि थी धार, तपावि मोदक साधियो॥
साध्वादिक नै अर्थ, अग्नि आरभ थयो इहा।
उद्देशिक भेद तदर्थ, एम करीनै सभवै॥
भगवति-वृत्ति सुजाण, तपाविवा नो अर्थ नहि।
तेहथी अर्थ प्रमाण, प्रश्नव्याकरण वृत्ति नो॥
ओदन दधी मिलाण, करवादिक करवो तिको।
पर्यवजात पिछाण, दोप रचित, आगल कह्यो॥

३१. ए दस दोष निरवद्य कही नै, ओ तो माहोमाहि देई नै।
३२. ए पिण विराधक विना आलोय, आलोया आराधक होय।

३१,३२ आहाकम्म 'अणवज्जे' त्ति अण्णमण्णस्स अणुप्पदावइत्ता भवइ, से णं तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडिक्कते काल करेइ—नत्थि तस्स आराहणा। से णं तस्स ठाणस्स आलोइय-पडिक्कते काल करेइ—अत्थि तस्स आराहणा। (श० ५/१४३)

३३. ए दस दोष नै सभा मझार, ओ तो निरवद्य परूपै धार।
३४. ते पिण विना आलोया विराधक, आलोया हुवै आराधक।

३३,३४ आहाकम्म णं 'अणवज्जे' त्ति बहुजणमज्झे पण्णवइत्ता भवति, से णं तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडिक्कते काल करेइ—नत्थि तस्स आराहणा। से णं तस्स ठाणस्स आलोइय-पडिक्कते काल करेइ—अत्थि तस्स आराहणा। (श० ५/१४५)

## सोरठा

३५. आधाकर्मी आद, पूर्वे आख्या ते प्रतै।
आचार्यादिक साध, कहै विशेषे परषदि॥
३६. ते माटै तहतीक, आचार्य उवज्झाय प्रति।
सुध फल थकी सधीक, कहियै ते देखाडतो॥

३५,३६ आधाकर्मादीश्च पदार्थानाचार्यादय सभायां प्राय प्रज्ञापयन्तीत्याचार्यादीन् फलतो दर्शयन्नाह— (वृ० प० २३१)

३७. *आचार्य उवज्झाया भगवान, स्व विषय अर्थ सूत्र दान।

३७ आयरिय-उवज्झाए णं भंते! सविसयंसि 'स्वविषये' अर्थदानसूत्रदानलक्षणे (वृ० प० २३२)

३८ गण निज शिष्य वर्ग प्रति सार, खेद रहित करतो अगीकार।

३८ गणं अगिलाए संगिण्हमाणे, 'गण' ति शिष्य वर्गं 'अगिलाए' त्ति अखेदेन सगृह्णन् (वृ० प० २३२)

३९. अखेदपणै देतो आधार, रागद्वेष रहित तिण वार।

३९ अगिलाए उवगिण्हमाणे 'उपगृह्णन्' उपष्टम्भयन्। (वृ० प० २३२)

४०. एहवा आचार्य कति भवे सीझै, जाव सर्व दुख अंत करीजै?

४० कइहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंत करेति?

४१. जिन कहै केइ तिणहिज भव सीझै, ए तो चरम-शरीरी कहीजै।
४२. केइ बीजो नर भव करि सीझै, तिण नै एकाऽवतारी कहीजै।
४३. तीजो नर नो भव न उलघावै, तिके पंच भवे शिव पावै।

४१ गोयमा! अत्थेगतिए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति,
४२ अत्थेगतिए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति,
४३ तच्चं पुण भवग्गहणं नाइक्कमति। (श० ५/१४७)

## सोरठा

४४. द्वितीय तृतीय भव देख, नर भव तणी अपेक्षया।
बिच सुर भव सुविशेख, ते इहां लेखविया नहीं॥
४५. चारित्रवंत सुसंत, सिध-गति कै सुर-पद लहै।
तिण कारण ए हुंत, द्वितीय तृतीय भव मनु वृत्तौ॥
४६. पूर्वे भाख्यो एह, पर-अनुग्रह करिवै सुफल।
हिव पर-उपघातेह, विरुओ फल कहियै तसु॥

४४ द्वितीय तृतीयश्च भवो मनुष्यभवो देवभवान्तरितो दृश्य। (वृ० प० २३२)
४५ चारित्रवतोऽनन्तरो देवभव एव भवति, न च तत्र सिद्धिरस्तीति। (वृ० प० २३२)
४६. परानुग्रहस्यानन्तरफलमुक्तं, अथ परोपघातस्य तदाह— (वृ० प० २३२)

* लय : पुनवंतो जीव पाछिल भव माहि

४७. *अन्य प्रति प्रभु ! अलीक जे आखै, मुनि नैं कुसीलियो भाखै।

४७ जे ण भंते ! पर अलिएण
अलीकेन भूतनिह्नवरूपेण पालितब्रह्मचर्यसाधु-विषयेऽपि नानेन ब्रह्मचर्यमनुपालितमित्यादिरूपेण, । (वृ० प० २३२)

४८. असब्भूएण अछता अवगुण आखै, जिम अचोर नें चोर दाखै।

४८. असब्भूएण अब्भक्खाणेण अब्भक्खाति,
अभूतोद्भावनरूपेण अचोरेऽपि चौरोऽयमित्यादिना, (वृ० प० २३२)

४९. किसा प्रकार ना कर्म तसु होय ? हिवै जिन उत्तर दे सोय।

५०. जे पर प्रति अलीक नै अछतो सधै, तथाप्रकार कर्म तसु बंधै।

४९ तस्स ण कहप्पगारा कम्मा कज्जंति ?

५० गोयमा ! जे ण पर अलिएण, असतएण अब्भक्खाणेण अब्भक्खाति, तस्स ण तहप्पगारा चेव कम्मा कज्जति ।

५१. जे मनुष्य आदि गतिमे उपजतो, तिहा आल ना फलभोगवंतो।

५२. पछै कर्म नै निर्जरै ताय, कोइ करै जिसा फल पाय।

५१, जत्थेव ण अभिसमागच्छति तत्थेव ण पडिसवेदेति

५२ तओ से पच्छा वेदेति । (श० ५/१४८)
तत पश्चाद् वेदयति—निर्जरयतीत्यर्थ (वृ० प० २३२)

५३. सेव भंते ! सेव भंते ! विशेष, पंचम शतक नों छठो उद्देश।

५४. आठ असीमी ए ढाल उदार, तिण मे वारता विविध प्रकार।

५५. भिक्षु भारीमाल ऋषिराय पसाय, काइ 'जय-जश' हरष सवाय।

५३ सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति । (श० ५/१४९)

**पंचमशते षष्ठोद्देकार्थः ॥५।६॥**

## ढाल : ८९

### दूहा

१. छठा उदेशा अंत मे, पुद्‍गलकर्म पिछाण।
तास निर्जरा नै कही, चलणरूप ते जाण॥

२. ते माटै हिव सातमैं, पुद्‍गल चलण विचार।
वीर प्रतै पूछे सुविधि, श्री गोयम सुखकार॥

१,२ षष्ठोद्देशकान्त्यसूत्रे कर्मपुद्‍गलनिर्जरोक्ता, निर्जरा च चलनमिति सप्तमे पुद्‍गलचलनमधिकृत्येदमाह— (वृ० प० २३२)

*जय-जय ज्ञान जिनेन्द्र नो,
जयवन्तो जी श्री जिन-शासन जाण, जयवंता जी गोतम गुण खान।
जय-जय ज्ञान जिनेन्द्र नो ॥ (ध्रुपद)

३. परमाणु-पुदगल हे प्रभु ! ओ तो कंपै हो, वलि विशेष कपाय।
यावत् ते ते भाव नै परिणमै छै हो, भाखो जी जिनराय !

३ परमाणुपोग्गले ण भंते ! एयति वेयति जाव (स० पा०) त त भाव परिणमति ?

---

*लय : पुनवंतो जीव पाछिल भव

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

४. वीर कहै सुण गोयमा ! कदाचित कंपै हो वलि विशेष कपाय ।
यावत ते ते भाव नै, परिणमै छे हो सुण गोतम ! वाय ।।
५. कदाचित परमाणुओ, नहि कंपै हो ए स्थिर कहिवाय ।
यावत ते ते भाव नै, नहि परिणमै हो स्थिर नी अपेक्षाय ।।
६. खध प्रभु ! दुप्रदेशियो, ए तो कपै हो यावत् परिणमत ?
जिन कहै कपै कदाचित, जाव परिणमै हो धुर भग ए हु त ।।

७. कदाचित् ते कपै नही, जाव न परिणमै हो ए दूजो भंग ।
कदा देश इक कंपतो, देश न कपै हो तीजो भागो ए चग ।।
८. खध प्रभु ! तीन प्रदेशियो, एतो कपै हो यावत् परिणमत ?
जिन कहै कपै कदा त्रिहु, जाव परिणमै हो पहिलो भंगो ए हुत ।।
९. कदा त्रिहु कपै नही, जाव न परिणमै हो ए दूजो भग ।
कदा देश इक कपतो, देश न कपै हो तीजो भागो ए चग ।।

४. गोयमा ! सिय एयति वेयति जाव त त भाव परिणमति,

५. सिय नो एयति जाव नो त त भाव परिणमति । (श० ५/१५०)

६. दुप्पएसिए ण भते ! खधे एयति जाव त त भाव परिणमति ?
गोयमा ! सिय एयति जाव त त भाव परिणमति ।

७ सिय नो एयति जाव नो त त भाव परिणमति । सिय देसे एयति, देसे नो एयति । (श० ५/१५१)

८,९ तिप्पएसिए ण भते ! खधे एयति ?
गोयमा ! सिय एयति, सिय नो एयति । सिय देसे एयति, नो देसे एयति ।

### सोरठा

१०. एक देश कपंत, एक देश कपै नही ।
तथाविध परिणमत, न्याय तृतीय भंगा तणों ।।
११. एक आकाश प्रदेश, बे प्रदेश तेह में रह्या ।
ते विहु नै सुविशेष, एक देश वच्छ्यो इहा ।।

१२. *कदा देश इक कपतो, नहि कंपै हो वहुदेशा गम्म ।
कदा देश वहु कपता, नहि कपै हो इक देश पचम्म ।।
१३. खध प्रभु ! च्यार प्रदेशियो, एतो कपै हो यावत् परिणमत ?
जिन कहै कपै कदा चिहु, जाव परिणमै हो पहिलो भागो ए हुत ।।
१४. कदा चिहु कपै नही, जाव न परिणमै हो ए दूजो भंग ।
कदा देश इक कपतो, देश न कपै हो तीजो भागो ए चग ।।

१२ सिय देसे एयति, नो देसा एयति । सिय देसा एयति, नो देसे एयति । (श० ५/१५२)

१३. चउप्पएसिए ण भते ! खधे एयति ?
गोयमा ! सिय एयति,

१४ सिय नो एयति । सिय देसे एयति, नो देसे एयति ।

### सोरठा

१५. दोय आकाश प्रदेश, तेह विषे बे-बे रह्या ।
ते माटै सुविशेप, एक वचन विहु देश ए ।।
१६. *कदा देश इक कपतो, नहि कपै हो वहुदेशा गम्म ।
कदा देश वहु कपता, नहि कपै हो इक देश पंचम्म ।।
१७. कदा देश वहु कपता, नहिं कंपै हो बहुदेशा षष्टम्म ।
इमहिज पच प्रदेशियो, यावत् कहिवो हो अनतप्रदेशिक गम्म ।।

१६ सिय देसे एयति, नो देसा एयति । सिय देसा एयति, नो देसे एयति ।

१७ सिय देसा एयति, नो देसा एयति । जहा चउप्पएसिओ तहा पचपएसिओ, तहा जाव अणतपएसिओ । (श० ५/१५३)

### सोरठा

१८ पुद्गल नो अधिकार, पूर्वे जे आख्यो अछै ।
तेहनु ईज विचार, कहियै छै हिव आगलै ।।

१८ पुद्गलाधिकारादेवेद सूत्रवृन्दम्— (वृ० प० २३३)

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

१९. *परमाणु-पुद्गल हे प्रभु ! खड्ग-धारा हो पाछणा नी धार ।
ते प्रति अवगाहै तिको ? जिन भाखै हो हंता सुविचार ॥

१९. परमाणुपोग्गले णं भंते ! असिधारं वा खुरधारं वा ओगाहेज्जा ?
हंता ओगाहेज्जा ।

२०. ते परमाणु प्रभु ! तिहां, छेदीजै हो दोय भाग ह्वै जाय ।
भेद पामै—विदराइयै ? जिन भाखै हो अर्थ समर्थ नाय ॥

२० से णं भंते ! तत्थ छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा ?
गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे,
'छिद्येत' द्विधाभावं यायात्, 'भिद्येत' विदारणभावमात्रं यायात् । (वृ० प० २३३)

२१. शस्त्र तिहां आक्रमै नहीं, परमाणु हो तेहनु जे भाव ।
तेहथी अन्यथापणो हुवै नहीं, इम यावत् हो असंखप्रदेशी कहाव ॥

२१ नो खलु तत्थ सत्थं कमइ । (श० ५।१५४)
एवं जाव असंखेज्जपएसिओ (श० ५।१५५)
परमाणुत्वादन्यथा परमाणुत्वमेव न स्यादिति (वृ० प० २३३)

२२. खंध प्रभु ! अनंतप्रदेशियो, असि-धारा हो खुर-धारा में आय ।
खड्ग पाछणा नी धार ए ? जिन भाखै हो हंता अवगाय ॥

२२ अणंतपएसिए णं भंते ! खंधे असिधारं वा खुरधारं वा ओगाहेज्जा ?
हंता ओगाहेज्जा ।

२३. ते तिहां छेद बे भाग ह्वै, भेदीजै हो विदारण भाव पाय ।
छेद भेद कोइक लहै, कोइ न पामै हो ए छै जिन-वाय ॥

२३ से णं भंते ! तत्थ छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा ?
गोयमा ! अत्थेगइए छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा, अत्थेगइए नो छिज्जेज्ज वा नो भिज्जेज्ज वा । (श० ५।१५६)

**सोरठा**

२४. छेद भेद जे थाय, तथाविध बादर-परिणाम थी ।
छेद भेद नवि पाय, सूक्ष्म परिणामपणा थकी ॥
२५. छेद भेद शस्त्रेह, एवं अग्निकाय मध्य ।
सूत्रे संक्षेपेह, ते विस्तारी नै कहूं ॥

२४ 'अत्थेगइए छिज्जेज्ज' त्ति तथाविधबादरपरिणामत्वात् 'अत्थेगइए नो छिज्जेज्ज' त्ति सूक्ष्मपरिणामत्वात् । (वृ० प० २३३)

२६. 'परमाणु-पुद्गल हे प्रभु ! अग्निकाय में हो आवै ? जिन कहै आय ।
परमाणु तेह बलै तिहां ? जिन भाखै हो अर्थ समर्थ नाय ॥

२६ परमाणुपोग्गले णं भंते ! अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा ?
हंता वीइवएज्जा । से णं भंते ! तत्थ झियाएज्जा ?
गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

२७. शस्त्र तिहां आक्रमै नहीं, इम यावत् हो असंखप्रदेशियो ताय ।
अनंतप्रदेशियो खंध प्रभु ! अग्निकाय में हो आवै अवगाय ?
२८. जिन कहै हंता आवियै, दग्ध ह्वै त्यां हो ? जिन कहै कोइ बलंत ।
कोइ इक दग्ध हुवै नहीं, बादर सूक्ष्म हो परिणाम थी हुंत ॥

२७,२८ नो खलु तत्थ सत्थं कमइ (स० पा०)
एवं जाव असंखेज्जपएसिओ । (श० ५।१५७,१५८)
अणंतपएसिए णं भंते ! खंधे अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा ?
हंता वीइवएज्जा । से णं भंते ! तत्थ झियाएज्जा ?
गोयमा ! अत्थेगइए झियाएज्जा, अत्थेगइए नो झियाएज्जा ।

२९. इहविध पुक्खलसंवर्त्तक महामेघ में हो मध्योमध्य आवंत ।
पिण तिहां भीजै—आलो हुवै? एहवूं कह्यूं हो पूरववत् विरतंत ॥

२९ से णं भंते ! पुक्खलसंवट्टगस्स महामेहस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा ?
हंता वीइवएज्जा ।
से णं भंते ! तत्थ उल्ले सिया ?
गोयमा ! अत्थेगइए उल्ले सिया, अत्थेगइए नो उल्ले सिया ।

---

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

३०. इम गगा महानदी तणै, प्रवाह मांहै हो उतावलो आय।
पिण तिहा स्खलना पामियै, एहवू कह्यू हो पूर्वली परै ताय॥

३० से णं भते ! गगाए महानईए पडिसोय हव्वमागच्छेज्जा ?
हता हव्वमागच्छेज्जा।
से ण भते ! तत्थ विणिहायमावज्जेज्जा ?
गोयमा ! अत्थेगइए विणिहायमावज्जेज्जा, अत्थेगइए नो विणिहायमावज्जेज्जा।

३१. पाणी तणै आवर्त्त मे, वलि उदग ना हो विंदुआ मे आय।
ते विणसै—विनाश पामै तिहा, इम कहिवू हो पूर्वली परै ताय॥

३१ से ण भते ! उदगावत्त वा उदगबिंदु वा ओगाहेज्जा ?
हता ओगाहेज्जा। से ण भते ! तत्थ परियावज्जेज्जा ?
गोयमा ! अत्थेगइए परियावज्जेज्जा, अत्थेगइए नो परियावज्जेज्जा। (श० ५।१५९)

३२. स्यू परमाणु अर्द्ध सहित प्रभु ! मध्य सहित छै हो कै प्रदेश सहीत।
अथवा ते अर्द्ध रहीत छै, मध्य रहित छै हो कै प्रदेश रहीत ?
३३. जिन कहै अर्द्ध रहीत छै, मध्य रहित छै हो वलि प्रदेश रहीत।
पिण ते अर्द्ध सहित नही, मध्य सहित नहि हो नही प्रदेश सहीत॥

३२ परमाणुपोग्गले ण भते ! किं सअड्ढे समज्झे सपएसे ? उदाहु अणड्ढे अमज्झे अपएसे ?
३३ गोयमा ! अणड्ढे अमज्झे अपएसे, नो सअड्ढे नो समज्झे नो सपएसे। (श० ५।१६०)

३४. †ए अर्द्ध रहित परमाणुओ, छेद्यो न जावै ते भणी।
एकला माटै अप्रदेशिक, खध ते अलगो गिणी॥

३५. *दुप्रदेशियो खध प्रभु ! अर्द्ध सहित छै हो मध्य सहित सप्रदेश।
अथवा अर्द्ध रहित छै, मध्य रहित छै हो अप्रदेशी कहेश ?
३६. जिन कहै अर्द्ध सहित छै, मध्य रहित छै हो सप्रदेशी ताहि।
पिण ते अर्द्ध रहित नही, मध्य सहित नही हो अप्रदेशी नाहि॥

३५ दुप्पएसिए ण भते ! खधे कि सअड्ढे समज्झे सपएसे ?
उदाहु अणड्ढे अमज्झे अपएसे ?
३६ गोयमा ! सअड्ढे अमज्झे सपएसे, नो अणड्ढे नो समज्झे नो अपएसे। (श० ५।१६१)

३७ †अर्द्ध सहित बे प्रदेश माटै, मध्य रहित विच को नही।
दुप्रदेशिया खध माटै, सप्रदेश कहियै सही॥
३८. नहिं अर्द्ध रहित अर्थात् इतलै, अर्द्ध सहित विशेष है।
नहि मध्य सहित अमध्य छै, अप्रदेश नहिं सप्रदेश है॥

३९ *पूछा तीन प्रदेशिया खध नी,
जिन कहै अर्द्ध न हो मध्य सहित सप्रदेश।
पिण ते अर्द्ध सहित नही,
मध्य रहित नहि हो नहिं वलि अप्रदेश॥

३९ तिप्पएसिए ण भते ! खधे पुच्छा।
गोयमा ! अणड्ढे समज्झे सपएसे, नो सअड्ढे नो अमज्झे नो अपएसे। (श० ५।१६२)

४०. †त्रिप्रदेश माटै अर्द्ध नाही, दोढ दोढ हुवै नही।
मध्य सहित प्रदेश विच इक, सप्रदेश खध ए सही॥
४१. अर्द्ध सहित नहि बीचलो प्रदेश छेदीजै नही।
नहि अमध्य अर्थात् समध्य, अप्रदेश नहि सप्रदेश ही॥
४२. जिम कह्यो दुप्रदेशियो खध, सम प्रदेश तिम जाणवा।
विषम ते त्रिप्रदेशिया जिम, न्याय हिवड़े आणवा॥

४२ जहा दुप्पएसिओ तहा जे समा ते भाणियव्वा, जे विसमा ते जहा तिप्पएसिओ तहा भाणियव्वा। (श० ५/१६३)

† लय : पूज मोटा भाजे
*लय वीर सुणो मोरी वीनती

४३. बे च्यार षट अठ प्रमुख बेकी, सम कहीजै जेहनै ।
तीन पंच सत प्रमुख एकी, विषम कहीजै तेहनै ।।

४४. *सखेज-प्रदेशियो खंध प्रभु! अर्द्ध सहित छै हो पूछा हिव जिन वाय ।
कदाचित् अर्द्ध सहित छै, मध्य रहित छै हो सप्रदेशी ताय ।।

४४ संखेज्जपएसिए ण भते ! खंधे कि सअड्ढे ? पुच्छा । गोयमा ! सिअ सअड्ढे अमज्झे सपएसे ।

४५. कदाचित् संख-प्रदेशियो, अर्द्ध रहित छै हो मध्य सहित कहिवाय ।
सप्रदेश कहियै तसु, आगल निसुणो हो ए विहु नो न्याय ।।

४५ सिय अणड्ढे समज्झे सपएसे ।

४६. †बे भेद संख-प्रदेशिया ना, सम-प्रदेशिक एक है ।
दूसरो जे भेद ते, विषम-प्रदेश विशेख है ।।

४७. जे अर्द्ध सहित मध्य रहित छै, सप्रदेश ते सम खंध ही ।
जे अर्द्ध रहित मध्य सहित छै, सप्रदेश तेह विषम वही ।।

४७. य समप्रदेशिक स सार्द्धोऽमध्यः इतरस्तु विपरीत इति । (वृ० प० २३३)

४८ *जिम संख-प्रदेशियो खंध कह्यो, असंखप्रदेशी हो तिमहिज कहिवाय ।
तिमहिज अनंतप्रदेशियो, विमल विचारो हो सम विषम नो न्याय ।।

४८ जहा संखेज्जपएसिओ तहा असंखेज्जपएसिओ वि अणंतपएसिओ वि । (श० ५/१६४)

४९. प्रभु ! परमाणु अन्य परमाणु नै, देसेण हो देस फुसइ तेह ।
स्यू पोता नै एक देशे करी, वीजा नो हो इक देश फर्सेह ।।

४९ परमाणुपोग्गले ण भंते ! परमाणुपोग्गल फुसमाणे कि देसेण देसं फुसइ ।

५०. देसेण देसे फुसइ, पोता नै हो इक देशे करि ताय ।
वीजा ना वहु देशा प्रतै, फर्सै छै हो वीजे भंग ए वाय ।।

५० देसेण देसे फुसइ ।

५१. कै देसेणं सव्व फुसइ, ते पोता नै हो एक देशे करि जाण ।
वीजा परमाणु सर्व नै, फर्सै छै हो तीजै भंग पिछाण ।।

५१ देसेण सव्व फुसइ ।

५२. देसेहि देस फुसइ, ते पोता नै हो वहु देशे करि जोय ।
वीजा ना इक देश नै, फर्सै छै हो भंग चउथो होय ।।

५२ देसेहि देस फुसइ ।

५३ देसेहिं देसे फुसइ, ते पोता नै हो वहु देशे करि देख ।
वीजा ना वहु देश नै, फर्सै छै हो भंग पंचम पेख ।।

५३ देसेहिं देसे फुसइ ।

५४. देसेहिं सव्व फुसइ, ते पोता नैं हो वहु देशे करि ताय ।
वीजा परमाणु सर्व नैं, फर्सै छै हो भंग छट्ठो कहाय ।।

५४ देसेहिं सव्व फुसइ ।

५५. सव्वेण देस फुसइ, ते पोता नैं हो सर्व करिनै तिवार ।
वीजा ना एक देश नै फर्सै छै हो भंग सप्तम सार ।।

५५ सव्वेण देस फुसइ ।

५६ सव्वेण देसे फुसइ, ते पोता नै हो सर्व करिनै ताम ।
वीजा ना वहु देश नै फर्सै छै हो भंग आठमों आम ।।

५६ सव्वेण देसे फुसइ ।

५७. सव्वेण सव्व फुसइ, ते पोता नै हो सर्व करिनै भाल ।
वीजा परमाणु सर्व नै फर्सै छै हो भंग नवमो न्हाल ।।

५७ सव्वेण सव्व फुसइ ?

**परमाणु-पुद्गल स्पर्शना सम्बन्धी यंत्र :—**

| | |
|---|---|
| १—१ | १ |
| २—१ | २ |
| ३—१ | ३ |
| ४—२ | १ |
| ५—२ | २ |
| ६—२ | ३ |
| ७—३ | १ |
| ८—३ | २ |
| ९—३ | ३ |

* लय : वीर सुणो मोरी वीनती
† लय : पूज मोटा भांजे

५८. जिन कहै जे परमाणुओ, परमाणु नै हो अठ भग फर्से नाय ।
सव्वेण सव्व फुसइ, ते सर्वे करि हो सर्व प्रति फर्साय ।।

५९. इम परमाणु छै तिको, दुप्रदेशी हो खध प्रति फर्साय ।
सातमे नवमे भगे करि, शेष भगे हो नहि फर्सै ताय ।।

६०. दोय आकाश प्रदेश मे, द्विप्रदेशिक हो रह्यो ह्वै जद ताय ।
सव्वेण देस फुसइ, सर्व परमाणु हो देश प्रतै फर्साय ।।

६१. एक आकाश-प्रदेश मे, द्विप्रदेशिक हो रह्यो ह्वै जद ताय ।
सव्वेण सव्व फुसइ, सर्व परमाणु हो सर्व प्रतै फर्साय ।।

६२. परमाणु-पुद्गल छै तिको, त्रिप्रदेशिक हो खध प्रतै फर्सेह ।
छेहले त्रिण भागे करी, धुर पट् भगे हो नहि फर्से जेह ।।

६३. त्रिण आकाश प्रदेश मे, त्रिप्रदेशिक हो रह्यो ह्वै जद ताय ।
सव्वेण देस फुसइ, सर्व परमाणु हो देश प्रतै फर्साय ।।

६४. दोय आकाश प्रदेश मे, त्रिप्रदेशिक हो रह्यो सुविशेष ।
बे देश छै एक प्रदेश मे, एक प्रदेशे हो रह्यो छै इक देश ।।

६५. एक प्रदेशे बे देश छै, त्यानै फर्सै हो परमाणुओ- तास ।
सव्वेण देसे फुसइ, सर्व परमाणु हो बहु देश नु फास ।।

६६. एक आकाश प्रदेश मे, त्रिप्रदेशिक हो रह्यो हुवै जद तेथ ।
सव्वेण सव्व फुसइ, सर्व परमाणु हो सर्व प्रतै फर्सेत ।।

६७. जिण रीते परमाणुओ, फर्साव्यो हो त्रिप्रदेशी सघात ।
एव इम फर्साविये, यावत् कहियै हो अनतप्रदेशिक साथ ।।

६८. हे प्रभु ! खध द्विप्रदेशियो, परमाणु नै हो फर्सतो किम होय ।
तोजे नवमे भागे फर्सणा, शेष भागे हो फर्सै नहि कोय ।।

६९. दोय आकाश-प्रदेश मे, द्विप्रदेशिक हो रह्यो ह्वै जद तास ।
देसेण सव्व फुसइ, द्विप्रदेशी हो देश करी सर्व फास ।।

७०. एक आकाश प्रदेश ना, द्विप्रदेशिक हो रह्यो ह्वै जद तास ।
सव्वेण सव्व फुसइ, द्विप्रदेशिक हो सर्व करी सर्व फास ।।

७१. पुद्गल जे दुप्रदेशियो, वलि अनेरू हो द्विप्रदेशिक नै जाण ।
पहिले तीजे सातमे, वलि नवमे हो भग करि फर्साण ।।

७२. दोनू खध दुप्रदेशिया, रह्या छै हो बे-बे गगन प्रदेश ।
देसेण देसे फुसइ, निज देशे करि हो अन्य देश फर्सेस ।।

७३. दोय आकाश प्रदेश मे, रह्यो छै हो द्विप्रदेशिक एक ।
इक गगन-प्रदेशे बीजो रह्यो, देसेण हो सव्व फुसइ देख ।।

७४. एक आकाश-प्रदश मे, रह्यो छै हो दुप्रदेशियो एक ।
बे गगन-प्रदेशे बीजो रह्यो, सव्वेण हो देस फुसइ देख ।।

५८ गोयमा ! नो देसेण देस फुसइ, नो देसेण देसे फुसइ, नो देसेण सव्व फुसइ, सव्वेण सव्व फुसइ ।
(श० ५/१६५)

५९ परमाणुपोग्गले दुप्पएसिय फुसमाणे सत्तम-णवमेहिं फुसइ ।

६० यदा द्विप्रदेशिक प्रदेशद्वयावस्थितो भवति तदा तस्य परमाणुः सर्वेण देश स्पृशति, परमाणोस्तद्देशस्यैव विषयत्वात् ।

६१ यदा तु द्विप्रदेशिक परिणामसौक्ष्म्यादेकप्रदेशस्थो भवति तदा त परमाणु सर्वेण सर्वं स्पृशतीत्युच्यते ।

६२ परमाणुपोग्गले तिप्पएसिय फुसमाणे तिपच्छिमएहिं तिहिं फुसइ ।

६३. यदा त्रिप्रदेशिक प्रदेशत्रयस्थितो भवति तदा तस्य परमाणु सर्वेण देश स्पृशति परमाणोस्तद्देशस्यैव विषयत्वात् ।
(वृ० प० २३४)

६४,६५ यदा तु तस्यैकत्र प्रदेशे द्वौ प्रदेशौ अन्यत्रैकोऽवस्थित स्यात्तदा एकप्रदेशस्थितपरमाणुद्वयस्य पर माणो स्पर्शविषयत्वेन सर्वेण देशौ स्पृशतीत्युच्यते ।

६६ यदा त्वेकप्रदेशावगाढोऽसौ तदा सर्वेण सर्वं स्पृशतीति ।
(वृ० प० २३४)

६७ जहा परमाणुपोग्गले तिप्पएसिय फुसाविओ एव फुसावेयव्वो जाव अणतपएसिओ । (श० ५/१६६)

६८ दुप्पएसिए ण भते ! खधे परमाणुपोग्गल फुसमाणे किं देसेण देस फुसइ ? पुच्छा । ततिय-नवमेहिं फुसइ ।

६९ यदा द्विप्रदेशिक द्विप्रदेशस्यस्तदा परमाणु देशेन सर्वं स्पृशतीति ।
(वृ० प० २३४)

७० यदात्वेकप्रदेशावगाढोऽसौ तदा सर्वेण सर्वमिति ।
(वृ० प० २३४)

७१ दुप्पएसिओ दुप्पएसिय फुसमाणे पढम-तंतिय सत्तम-नवमेहिं फुसइ ।

७२ यदा द्विप्रदेशिकौ प्रत्येक द्विप्रदेशावगाढौ तदा देशेन देशमिति ।
(वृ० प० २३४)

७३ यदा त्वेक एकत्रान्यस्तु द्वयोस्तदा देशेन सर्वमिति ।
(वृ० प० २३४)

७४ तथा सर्वेण देशमिति सप्तम. । (वृ० प० २३४)

७५. इक-इक आकाश-प्रदेश मे, द्विप्रदेशिक हो रह्या छै विहु तास ।
सव्वेण सव्व फुसइ, निज सर्वे करि हो अन्य सर्व ही फास ।।
७६. द्विप्रदेशिक खंध तिको, त्रिप्रदेशिक हो फर्सतो चीन ।
प्रथम चरण त्रिण-त्रिण भगा फर्से छे हो न फर्से मध्य तीन ।।

७७. वे प्रदेशे रह्यो दुप्रदेशियो, तीन प्रदेशे हो त्रिप्रदेशी रहत ।
देसेणं देस फुसइ, निज देशे करि हो अन्य देश फर्संत ।।
७८. वे प्रदेशे रह्यो दुप्रदेशियो, वे प्रदेशे हो त्रिप्रदेशी रहेस ।
एक प्रदेशे वे प्रदेश छै, एक प्रदेश हो रह्यो छै इक देश ।।
७९ एक प्रदेशे वे प्रदेश छै, त्यानै फर्से हो द्विप्रदेशी नों देश ।
देसेण देसे फुसइ, इक देशे करि हो वहु देश फर्सेस ।।
८०. वे प्रदेशे रह्यो दुप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो त्रिप्रदेशी रहत ।
देसेण सव्व फुसइ, निज देशे करि हो सर्व प्रतै फर्संत ।।
८१. एक प्रदेशे रह्यो दुप्रदेशियो, तीन प्रदेशे हो त्रिप्रदेशी रहत ।
सव्वेण देस फुसइ, निज सर्वे करि हो अन्य देश फर्संत ।।
८२ इक प्रदेशे रह्यो दुप्रदेशियो, वे प्रदेशे हो त्रिप्रदेशी रहेस ।
एक प्रदेशे वे देश छै, एक प्रदेशे हो रह्यो छै इक देश ।।
८३. एक प्रदेशे वे प्रदेश छै, त्यानै फर्से हो द्विप्रदेशी विशेष ।
सव्वेण देसे फुसइ, निज सर्वे करि हो फर्सै वहु देश ।।
८४. इक प्रदेशे रह्यो दुप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो त्रिप्रदेशी रहंत ।
सव्वेण सव्व फुसइ, निज सर्वे करि हो अन्य सर्व फर्संत ।।
८५. पहिलो दूजो नै तीसरो, सप्तम अष्टम हो नवमों पहिछाण ।
फर्से षट भगे करी, मध्य त्रिण भगे हो नहिं फर्से जाण ।।
८६. जिम द्विप्रदेशिक खंध ते, फर्साव्यो हो त्रिप्रदेशी नै ताम ।
एव इम फर्सायवो, यावत् कहिवो हो अनतप्रदेशी नै आम ।।
८७. खंध प्रभु ! त्रिप्रदेशियो, परमाणु नै हो किते भंग फर्संत ।
जिन कहै तीन भगे करो, तीजे छट्ठे हो नवमे करि हुत ।।
८८. तीन आकाश प्रदेश में, रह्यो छते हो त्रिप्रदेशिक जेह ।
देसेण सव्व फुसइ, निज देशे करि हो सर्व प्रतै फर्सेह ।।
८९. दोय आकाश प्रदेश मे, त्रिप्रदेशिक हो रह्यो हुवै सुविशेष ।
एक प्रदेशे वे प्रदेश छै, एक प्रदेशे हो रह्यो छै इक देश ।।
९०. एक प्रदेशे वे देश छै, तिको फर्से हो परमाणु प्रति तास ।
देसेहिं सव्व फुसइ, वहु देशे करि हो सर्व परमाणु फास ।।
९१. एक आकाश प्रदेश मे, त्रिप्रदेशिक हो रह्यो हुवै जद तेथ ।
सव्वेणं सव्व फुसइ, निज सर्वे करि हो सर्व परमाणु फर्संत ।।
९२. त्रिप्रदेशिक खंध तिको, फर्सतो हो द्विप्रदेशी नै जोय ।
पहिले तीजे चौथे वलि छट्ठे, सप्तम नवमे हो भगे करि होय ।।
९३ त्रिण प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, वे प्रदेशे हो द्विप्रदेशी रहत ।
देसेण देस फुसइ, निज देशे करि हो अन्य देश फर्संत ।।

७५ नवमस्तु प्रतीत एवेति । (वृ० प० २३४)

७६. दुप्पएसिओ तिप्पएसिय फुसमाणे आदिल्लएहि य, पच्छिल्लएहि य तिहि फुसइ, मज्झिमएहि तिहि विपडिसेहेयव्व ।

८६ दुप्पएसिओ जहा तिप्पएसिय फुसाविओ एव फुसावेयव्वो जाव अणतपएसिय । (श० ५/१६७)

८७ तिप्पएसिए ण भते ! खंधे परमाणुपोग्गल फुसमाणे पुच्छा । ततिय-छट्ठ-नवमेहि फुसइ ।

९२. तिपएसिओ दुपएसिय फुसमाणे पढमएण, ततिएण, चउत्थ-छट्ठ-सत्तम-नवमेहि फुसइ ।

९४. त्रिण प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो द्विप्रदेशी रहंत ।
देसेण सव्व फुसइ, निज देशे करि हो सर्व प्रतै फर्सत ।।

९५. बे प्रदेशे त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो रह्या छै दोय देश ।
इक प्रदेशे इक देश छै, दोय प्रदेशे हो द्विप्रदेशिक रहेस ।।

९६. एक प्रदेशे बे देश छै, तिकै फर्सै हो द्विप्रदेशी नु देश ।
देसेहि देस फुसइ, वहु देशे करि हो अन्य इक देश फर्सेस ।।

९७. बे प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो रह्या छै दोय देश ।
इक प्रदेशे एक देश छै, द्विप्रदेशिक हो एक प्रदेश रहेस ।।

९८. एक प्रदेशे बे देश छै, तिकै फर्सै हो द्विप्रदेशिक खध ।
देसेहिं सव्व फुसइ, बहु देशे करि हो सर्व प्रतै फर्सद ।।

९९. इक प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, दोय प्रदेशे हो द्विप्रदेशियो जाण ।
सव्वेण देस फुसइ, निज सर्वे करि हो एक देश फर्साण ।।

१००. एक प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो द्विप्रदेशी रहत ।
सव्वेण सव्व फुसइ, निज सर्वे करि हो सर्व प्रतै फर्सत ।।

१०१. तीन प्रदेशियो खध तिको, वलि अनेरो हो त्रिप्रदेशिक खध ।
तेह प्रतै फर्सतो छतो, सर्व स्थानके हो नव भगे फर्सद ।।

१०१ तिपएसिओ तिपएसिय फुसमाणे सव्वेसु वि ठाणेसु फुसइ ।

१०२. त्रिण प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, तीन प्रदेशे हो वलि दूजो पिण रहत ।
देसेण देस फुसइ, निज देशे करि हो अन्य देश फर्सत ।।

१०३. त्रिण प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, दोय प्रदेशे हो दूजो खध त्रिप्रदेश ।
एक प्रदेशे बे देश छै, एक प्रदेशे हो इक देश है शेष ।।

१०४. एक प्रदेशे बे देश छै, तिण नै फर्सै हो त्रिप्रदेशी नो देश ।
देसेण देसे फुसइ, इक देशे करि हो वहु देश फर्सेस ।।

१०५. त्रिण प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो अन्य खध त्रिप्रदेशि ।
देसेण सव्व फुसइ, इक देशे करि हो सर्व प्रतै फर्सेसि ।।

१०६ बे प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो दोय देश रहेसि ।
इक प्रदेश इक देश छै, तीन प्रदेशे हो अन्य खध त्रिप्रदेशि ।।

१०७. एक प्रदेशे वे देश है, तिको फर्सै हो त्रिप्रदेशी नो देश ।
देसेहि देस फुसइ, वहु देशे करि हो इक देश फर्सेस ।।

१०८. बे-बे प्रदेश विषे रह्या, त्रिप्रदेशी हो दोय खध विशेष ।
इक-इक प्रदेशे बे देश छै, इक-इक प्रदेशे हो देश छै एक एक ।।

१०९. एक प्रदेशे बे देश छ, तिके फर्सै हो अन्य ना बहु देश ।
देसेहिं देसे फुसइ, बहु देशे करि हो बहु देश फर्सेस ।।

११०. बे प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो रह्या छै दोय देश ।
इक प्रदेशे इक देश छै, एक प्रदेशे हो अन्य खध त्रिप्रदेश ।।

१११. इक प्रदेशे बे देश छै, तिके फर्सै हो त्रिप्रदेशी खध ।
देसेहिं सव्व फुसइ, वहु देशे करि हो सर्व प्रतै फर्सद ।।

११२. इक प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, तीन प्रदेशे हो अन्य खध त्रिप्रदेशि ।
सव्वेण देस फुसइ, निज सर्वे करि हो अन्य देश फर्शेसि ।।

११३. इक प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, दोय प्रदेशे हो अन्य खंध त्रिप्रदेशि ।
एक प्रदेशे बे देश छै, एक प्रदेशे हो इक देश रहेसि ।।
११४. एक प्रदेशे बे देश छै, तिण नें फर्से हो त्रिप्रदेशी खंध ।
सव्वेण देसे फुसइ, निज सर्व करि हो बहु देश फर्संद ।।
११५. इक प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो अन्य खंध त्रिप्रदेशि ।
सव्वेण सव्वं फुसइ, खंध सर्वे करि हो सर्व प्रते फर्सेसि ।।
११६. जिम त्रिप्रदेशी खंध ते, फर्साव्यो हो त्रिप्रदेशी संघात ।
इमहिज ते त्रिप्रदेशियो, जाव जोडवो हो अनंतप्रदेशी साथ ।।
११७. जेम कह्यु तीन प्रदेशियो, ओ तो फर्से हो परमाणु प्रति जेह ।
वलि फर्से द्विप्रदेशिक प्रतै, जाव फर्से हो अनंतप्रदेशी प्रतेह ।।
११८. तिम च्यार प्रदेशिक आदि दे, अनंतप्रदेशिक हो खंध तेह विख्यात ।
फर्से परमाणुआ प्रते, जावत् फर्से हो अनंतप्रदेशिक जात ।।
११९. देश अंक सत्तावन तणो,
आ तो आखी हो नव्यासीमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी,
'जय-जश' संपति हो सुख हरष विशाल ।।

११६. जहा तिपएसिओ तिपएसियं फुसाविओ एवं तिप्पएसिओ जाव अणंतपएसिएणं संजोएयव्वो ।
११७,११८ जहा तिपएसिओ एवं जाव अणंतपएसिओ भाणियव्वो । (श० ५/१६८)

## ढाल : ९०

### दूहा

१. पुद्गल ना अधिकार थी, ते पुद्गल ना ताय ।
द्रव्य क्षेत्र वलि भाव प्रति, काल थकी कहिवाय ।।
२. प्रभु ! परमाणू काल थी, कितो काल रहै ताय ?
इह विध द्रव्य प्रति काल थी, प्रश्न कियो सुखदाय ।।

*श्री जिन वागरै, अमृत-वाण उदारो रे,
गोयम पूछता, सरस प्रश्न सुखकारो रे । (ध्रुपद)

३. श्री जिन भाखै जघन्य था रे, एक समय सुविशेषि ।
उत्कष्ट काल असंख ही रे, इम जाव अनन्तप्रदेशि रे ।।
४. वृत्तिकार इम आखियो, असंख काल उपरंत ।
एकरूप पुद्गल तणो, रहिवू स्थिति न हुंत ।।
[जिन गुणसागरू, वयण सुधा सुवदीतो रे,
अधिक ओजागरू, गोयम प्रश्न पुनीतो रे ।]
५. प्रभु ! एक प्रदेश विषे रह्यो, पुद्गल जे कंपमान ।
ते स्थान तथा अन्य स्थानके, कितो काल रहै जान ?

१. पुद्गलाधिकारादेव पुद्गलानां द्रव्यक्षेत्रभावान् कालतश्चिन्तयति । (वृ० प० २३४)
२. परमाणुपोग्गले णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?
३. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं । एवं जाव अणंतपएसिओ । (श० ५।१६९)
४. असंख्येयकालात्परं पुद्गलानामेकरूपेण स्थित्यभावात् । (वृ० प० २३५)
५. एगपएसोगाढे णं भंते ! पोग्गले सेए तम्मि वा ठाणे वा, अण्णम्मि वा ठाणे कालओ केवच्चिरं होइ ?

*लय : श्रेणिक घर आया पछै रे काय ।

६. श्री जिन भाखै जघन्य थी, समय एक चल माग ।
उत्कृष्ट आवलिका तणै, असख्यातमै भाग ।।
७ इम यावत् आकाश नो, असखेज्ज प्रदेश ।
अवगाह्यो पुद्गल तिको, सकप इतो रहेस ।।
८. प्रभु ! इक आकाश-प्रदेश मे, पुद्गल कप रहीत ।
अचलपणैं रहै काल थी, कितो काल सगीत ?
९. जिन कहै समय इक जघन्य थी, उत्कृष्ट काल असखेज ।
इम जाव असख-प्रदेश नै, अवगाह्योज निरेज[1] ।।

१०. इक गुण कालो वण्णओ, पुद्गल हे भगवान ?
कितो काल रहे काल थी ? हिव उत्तर जिन वान ।।
११. जघन्य थकी इक समय छै, उत्कृष्टो इम न्हाल ।
काल असख्यातो कह्यो, इम जाव अनतगुण काल ।।
१२ इम वर्ण गध रस फर्श छै, जाव अनतगुण लुक्ष ।
सूक्ष्म वादर परिणतो, पुद्गल इमज प्रत्यक्ष ।।

१३ शब्द-परिणत पुद्गल प्रभु ! काल थकी पहिछाण ।
शब्दपणै जे वर्त्ततो, कितो काल रहै जान ?
१४ जिन कहै समय इक जघन्य थो, हिवै उत्कृष्ट सुमाग ।
आवलिका छै तेहनों, असख्यातमै भाग ।।
१५ शब्दपणै नहि परिणम्या, अशब्द-परिणत जेह ।
जिम इक गुण कालो कह्यो, तिमहिज कहिवू एह ।।

१६. प्रभु ! परमाणु-पुद्गल तणो, कितो अतरो जोय ?
खध माहै ते रहि करी, वलि परमाणू होय ।।
१७ जिन कहै समय इक जघन्य थी, हिवै उत्कृष्टो जोय ।
काल असख्यातो कह्यो, पछै परमाणू होय ।।
१८. प्रभु ! दुप्रदेशियो खध तणो, कितो अतरो न्हाल ?
जिन कहै समय इक जघन्य थी, उत्कृष्ट अनतो काल ।।
१९. दुप्रदेशिया खध तिको, अन्य खध मे मिल सोय ।
तथा परमाणुपणै थइ, द्विप्रदेशिक वलि होय ।।
२० इम अनत काल नो आतरो, दुप्रदेशिक नो प्रवध ।
एव जावत् आखियो, अनत-प्रदेशिक खध ।।
२१. इम त्रिप्रदेशिक खध वली, अनतप्रदेशो पर्यंत ।।
स्थिति उत्कृष्ट काल असख नी, अतर-काल अनत ।।
२२. प्रभु ! इक प्रदेश अवगाहियो, सकप पुद्गल सोय ।
काल थकी तसु आतरो, किता काल नो होय ?

६. गोयमा ! जहण्णेण एग समय उक्कोसेणं आवलियाए असखेज्जइभाग ।
७ एव जाव असखेज्जपएसोगाढे । (श० ५।१७०)
८ एगपएसोगाढे ण भते ! पोग्गले निरेए कालओ केवच्चिर होइ ?
९ गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण असखेज्ज काल । एव जाव असखेज्जपएसोगाढे ।
(श० ५।१७१)
१० एगगुणकालए ण भते ! पोग्गले कालओ केवच्चिरं होइ ?
११ गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण असखेज्ज काल । एव जाव अणतगुणकालए ।
१२ एव वण्ण-गध-रस-फास जाव अणतगुणलुक्खे । एव सुहुमपरिणए पोग्गले, एव बादरपरिणए पोग्गले ।
(श० ५।१७२)
१३ सद्दपरिणए ण भते ! पोग्गले कालओ केवच्चिर होइ ?
१४ गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण आवलियाए असखेज्जइभाग । (श० ५।१७३)
१५ असद्दपरिणए ण भते ! पोग्गले कालओ केवच्चिर होइ ? गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण असखेज्ज काल । (श० ५।१७४)
१६ परमाणुपोग्गलस्स ण भते ! अतर कालओ केवच्चिर होइ ?
१७ गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण असखेज्जं काल । (श० ५।१७५)
१८ दुप्पएसियस्स ण भते ! खधस्स अतरं कालओ केवच्चिर होइ ? गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण अणत काल ।

२० एव जाव अणतपएसिओ । (श० ५।१७६)

२२ एगपएसोगाढस्स णं भते ! पोग्गलस्स सेयस्स अतर कालओ केवच्चिर होइ ?

[1] निष्कम्प ।

### सोरठा

२३. सकंप पुद्गल ताय, ते फीटो[1] निष्कप ह्वै ।
वलि सकपज थाय, इक प्रदेश अवगाढ जे ।।

२४. *जिन कहै समय इक जघन्य थी, उत्कृष्ट काल असखेज ।
इम जाव असख प्रदेश नै, अवगाह्योज सएज[2] ।।

२५. प्रभु ! एक प्रदेश अवगाहियो, अकप पुद्गल मोय ।
काल थकी तसु आतरो, किता काल नो होय ?

### सोरठा

२६. अकप पुद्गल ताय, ते फीटी सकप थई ।
वलि अकपज थाय, इक प्रदेश अवगाढ जे ।।

२७. *जिन कहै समय इक जघन्य थी, उत्कृष्टो इम माग ।
कहियै आवलिका तणै, असख्यातमै भाग ।।

२८ इम जाव असख-प्रदेश नै, अवगाह्योज निरेज ।
तसु जघन्योत्कृष्ट अतरो, पूरववत् कहेज ।।

२९ काल अकप तणो जितो, अकप अतर तेह ।
काल अकप तणो जितो, सकप अतर जेह ।।

३०. इक गुण काला प्रमुख जे, वर्ण गध रस फास ।
सूक्ष्म परिणत पोग्गला, बादर परिणत तास ।।

३१. तसु सचिट्ठणकाल ते, जितो पूर्व कह्यो न्हाल ।
अतर पिण तसु तेतलो, अतर स्थिति तुल्य काल ।।

३२. "जिम इक गुण कालो आदि दे, कितो काल रहै न्हाल ?
एक समय छै जघन्य थी, उत्कृष्ट असख काल ।।

३३. तिम इक गुण कालो आदि दे, तसु अतर पिण न्हाल ।
एक समय छै जघन्य थी, उत्कृष्ट असख काल ।।

३४. इम वर्ण गध रस फर्श जे, सूक्ष्म बादर परिणत ।
काल रहे छै जेतलु, तितरो अतर लहत ।।

### सोरठा

३५. इक गुण कालत्व आदि, तेहना अंतर नै विषे ।
द्विगुण काल प्रमुखादि, जाव अनतगुण प्रति लहै ।।

३६. इक इक गुण रै माहि, असख-असख अद्धा रह्या ।
अनतपणा थी ताहि, अतरकाल अनत ह्वै ।।

२४ गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण असखेज्ज काल । एव जाव असखेज्जपएसोगाढे ।
(श० ५।१७७)

२५ एगपएसोगाढस्स ण भते ! पोग्गलस्स निरेयस्स अतर कालओ केवच्चिर होइ ?

२७ गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण आवलियाए असखेज्जइभाग ।

२८ एव जाव असखेज्जपएसोगाढे ।

३० वण्ण-गध-रस-फास-सुहुमपरिणय-बायरपरिणयाण ।

३१ एतेसि ज चेव सचिट्ठणा त चेव अतर पि भाणियव्व ।
(श० ५/१७८)

---

१ परिवर्तित होकर—सकम्पता छोडकर

*लय : श्रेणिक घर आया पछै रे

२ सकम्प

३७. इम काल अनतो सोय, अतर तेहनो ह्वै नहीं ।
असख काल इज होय, श्री जिनवचन प्रमाण थी" ॥
(ज० स०)

३८. 'प्रभु! शब्द-परिणत पुद्गल तणो, अतर कितलु कहेज ?
जिन कहै समय इक जघन्य थी, उत्कृष्ट काल असखेज ॥

३८ सद्दपरिणयस्स ण भते ! पोग्गलस्स अतर कालओ केवच्चिर होइ ? गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण असखेज्ज काल । (श० ५/१७९)

३९. अशब्द-परिणत जे प्रभु ! पुद्गल नों पहिछाण ।
काल थकी अतर कितु ? हिव भाखै जगभाण ॥

३९ असद्दपरिणयस्स ण भते ! पोग्गलस्स अतर कालओ केवच्चिर होइ ?

४०. जघन्य थकी इक समय नों, हिवै उत्कृष्ट सुमाग ।
कहियै आवलिका तणो असख्यातमों भाग ॥

४० गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण आवलियाए असखेज्जइभाग । (श० ५/१८०)

४१. हे प्रभु ! पुद्गल द्रव्य नो, स्थान-भेद ते विचित्त ।
परमाणु द्विप्रदेशादिदे, तेहनी स्थिति लहित्त ॥

४१ एयस्स ण भते ! दव्वट्ठाणाउयस्स,
द्रव्य—पुद्गलद्रव्यं तस्य स्थान—भेद परमाणु द्विप्रदेशिकादि तस्यायु —स्थिति । (वृ० प० २३६)

वा०—पुद्गल द्रव्य नो जे स्थान ते भेद, एतलै परमाणु, द्विप्रदेशिक त्रिप्रदेशिक जाव अनतप्रदेशिक खध ए पुद्गल द्रव्य ना अनता भेद छै। तेहनै पुद्गल द्रव्य ना स्थान कहीजै । तेह स्थान नो आयु ते स्थिति कहियै । एतलै पुद्गल द्रव्य ना स्थानक ना आयु नै द्रव्यस्थानायु कहियै ।

४२. क्षेत्र आकाश तणा जिकै, स्थान भेद वहु ताय ।
पुद्गल क्षेत्र अवगाहिया, तेहनी स्थिती कहाय ॥

४२ खेत्तट्ठाणाउयस्स,
क्षेत्रस्य—आकाशस्य स्थान—भेद. पुद्गलावगाहकृतस्तस्यायु —स्थिति. । (वृ० प० २३६)

४३. अवगाहन पुद्गल तणी, तास स्थान वहु जाण ।
विविध प्रकारे ते अछै, तेहनी स्थिती पिछाण ॥

४३. ओगाहणट्ठाणाउयस्स,

४४. भाव कृष्ण वर्णादि जे, स्थान भेद वहु जोय ।
अनेक प्रकार करी अछै, तास स्थिती अवलोय ॥

४४. भावट्ठाणाउयस्स
भावस्तु कालत्वादि । (वृ० प० २३६)

## सोरठा

४५. क्षेत्र-स्थान-स्थिति माय, वलि अवगाहन-स्थान मे ।
कवण फेर कहिवाय ? कहू वृत्ति अवलोक नै ॥

४५ ननु क्षेत्रस्यावगाहनायाश्च को भेद ? (वृ० प० २३६)

४६. जिता आकाश-प्रदेश, पुद्गल द्रव्य अवगाहिया ।
तेहिज प्रमाण कहेस, क्षेत्र आकाश प्रदेश नै ॥
४७. वांछित क्षेत्र थी जोय, अन्य ठिकाणै पिण हुवै ।
अवगाहन अवलोय, पुद्गल द्रव्य तणी अछै ॥

४६,४७ क्षेत्रमवगाढमेव, अवगाहना तु विवक्षितक्षेत्रादन्यत्रापि पुद्गलानां तत्परिमाणावगाहित्वमिति । (वृ० प० २३६)

४८. क्षेत्र आकाश प्रदेश, अवगाहन पुद्गल तणो ।
तिण कारण सुविशेष, जुदा क्षेत्र अवगाहना ॥
४९. द्रव्य क्षेत्र अरु काल, वलि भाव ए चिहु तणा ।
स्थान तणी स्थिति न्हाल, अल्पवहुत्व तेहनी हिवै ॥

४९ कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? वहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

५०. *जिन कहै थोडा सर्व थी, क्षेत्र स्थान स्थिति जोय ।
क्षेत्र अरूपिपणै करी, पुद्गल रूपी होय ॥

५०,५१ गोयमा ! सव्वत्थोवे खेत्तट्ठाणाउए, क्षेत्रस्यामूर्त्तत्वेन क्षेत्रेण सह पुद्गलाना विशिष्टवन्धप्रत्ययस्य स्नेहादेरभावान्नैकत्र ते चिर तिष्ठन्ति । (वृ० प० २३६)

*लय : श्रेणिक घर आयां पछै रे

५१. क्षेत्र साथ पुद्गल तणो, प्रत्यय बंध विशिष्ट।
स्नेहादिक ना अभाव तै, एकत्र चिर नहि तिष्ठ ॥
५२. पुद्गल इक क्षेत्रज विषे, घणा काल रहै नाय।
तिण कारण थोडी कही, क्षेत्र-स्थान-स्थिति ताय ॥
५३. अवगाहन-स्थान-स्थिति तेहथी, असंखगुणा कहिवाय।
द्रव्य-स्थान-स्थिति तेहथी, असखगुणा अधिकाय ॥
५४. भाव-स्थान-स्थिति तेहथी, असखगुणा अवलोय।
हिव वृत्ति थी वारता, न्याय कहू ते जोय ॥

५३ ओगाहणट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे, दव्वट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे।
५४ भावट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे। (श० ५/१८१)

**सोरठा**

५५. पुद्गल क्षेत्र सघात, विशिष्ट बंध प्रत्यय नही।
चिर इक खित्त न रहात, क्षेत्र रह्य इम अल्प अद्धा ॥
५६. अवगाहन अधिकाय, अन्य क्षेत्र पिण ते रह्य।
चिर काले रहिवाय, पुद्गल नी अवगाहना ॥
५७. तिण कारण इम ताय, क्षेत्र विषे रह्या काल थी।
अवगाहन अधिकाय, अन्य क्षेत्रे पिण ते रहै ॥
५८. अवगाहन नो नाश, तो क्षेत्र-स्थिति पिण प्रगट नहि।
अवगाहन-स्थिति थी तास, इम क्षेत्र-स्थिति अधिक नहि ॥
५९. खेत्र काल जे न्हाल, अगमन अवगाहन सबद्ध।
पिण अवगाहन काल, खेत्र अद्धा सबद्ध नहि ॥
६०. अवगाहन नी न्हाल, अगमन क्रिया नै विषे।
नियत क्षेत्र जे काल, वाछित अवगाहन छते ॥
६१. अवगाहना निहाल, अक्षेत्र मात्र अछै तिका।
नियत क्षेत्र नु काल, तास अभावे पिण हुवै ॥
६२. गमन क्रिया मे जाण, अवगाहन तिहा पिण अछै।
तिण सू अधिक पिछाण, क्षेत्र काल थी असखगुण ॥

५५ खेत्तामुत्तत्ताओ तेण समं बंधपच्चयाभावा।
तो पोग्गलाण थोवो खेत्तावट्ठाणकालो उ ॥
(वृ० प० २३६)

६० अवगाहनायामगमनक्रियाया च नियता क्षेत्राद्धा—विवक्षितावगाहनासद्भावे। (वृ० प० २३६)
६१ अवगाहनाद्धा तु न क्षेत्रमात्रे नियता, क्षेत्राद्धाया अभावेऽपि तस्या भावादिति। (वृ० प० २३६)
६२ जम्हा तत्थऽण्णत्थ य सच्चिय ओगाहणा भवे खेत्ते।
तम्हा खेत्तद्धाओऽवगाहणद्धा असखगुणा ॥
(वृ० प० २३६)

६३. सकोचन करि जेह, अथवा विकोचन करी।
अवगाहन निवृत्तेह, तो पिण द्रव्य न निवर्त्ते ॥
६४. पूर्व रह्यो द्रव्य जन्न, ते तो चिर काले रहै।
पिण पूर्व अवगाहन्न, निवृत्ति—नाश थयो तसु ॥

६३,६४ संकोचेन विकोचेन चोपरतायामप्यवगाहनाया यावन्ति द्रव्याणि पूर्वमासंस्तावतामेव चिरमपि तेषामवस्थान सभवति, अनेनावगाहनानिवृत्तावपि द्रव्य न निवर्त्तत इत्युक्तम्।
(वृ० प० २३६)

६५. पुद्गल ना सघात, तिण करि अथवा भेद करि।
द्रव्य निवर्त्यै थात, अवगाहन नी पिण निवृत्ति ॥
६६. पुद्गल सक्षिप्त थाय, तदा स्तोक अवगाहना।
पिण पूर्वली ताय, नहि छै ते अवगाहना ॥
६७. तिहा जे द्रव्य नु नाश, द्रव्य अन्यथा ह्वै छते।
पूर्व द्रव्य विणास, नाश पूर्व अवगाहन नु ॥

६५ अथ द्रव्यनिवृत्तिविशेषेऽवगाहना निवर्त्तत एवेत्युच्यते—सघातेन पुद्गलाना भेदेन वा।
(वृ० प० २३६)
६६ तेषामेव य सङ्क्षिप्त—स्तोकावगाहन स्कन्धो न तु प्राक्तनावगाहन। (वृ० प० २३६)
६७. तत्र यो द्रव्योपरमो द्रव्यान्यथात्व तत्र सति।
(वृ० प० २३६)

६८. अवगाहन नु काल, द्रव्य विषे सवद्ध अछै ।
ते द्रव्य किसो निहाल ? चित्त लगाई साभलो ।।

६९. सकोचन विकोच, विहु रहित जे द्रव्य छते ।
अवगाहना अमोच, नियतपणे करि तसु सवद्ध ।।

७०. द्रव्य नी जे अवगाहन्न, सकोच विकोच द्रव्य नु ।
तो द्रव्य नाश म जन्न, पुव्व अवगाहन नाश ह्वै ।।

७१. द्रव्य सकोच लहेज, तथा विकोचन ह्वै छते ।
अवगाहना विपेज, नियतपणे करि सवद्ध नही ।।

७२. सकोच विकोच जाण, तिण करि अवगाहन तदा ।
निवृत्त थये पिछाण, द्रव्य तणी निवृति नथी ।।

७३. इम अवगाहन माय, नियतपणु करि द्रव्य नु ।
असवद्ध कहिवाय, कुशाग्रबुद्धि करि देखिये ।।

७४. तिह कारण कहिवाय, अवगाहन रा काल थी ।
असखगुणा अधिकाय, द्रव्य स्थान स्थिति नै कह्यु ।।

७५. भग-द्रव्य नो थाय, पिण तेहना वर्णादिके ।
छै ते गुण पर्याय, घणा काल लग जे रहै ।।

७६. सघातन नै भेद, तिण करि द्रव्य मिट्यो तिको ।
छै पजवा अविछेद, जिम घृष्टपटे शुक्लादि गुण ।।

७७. सहु गुण मिटचे ज जान, नहि द्रव्य नहि अवगाहना ।
इम पजवा चिर स्थान, द्रव्य नै अचिर कह्यु अछै ।।

७८. सघातन अरु भेद, ए बेहु करि जे वध-सवध जे ।
तदनुवर्त्तिनी वेद, नित्यईज छै द्रव्य अद्धा ।।

७९. पिण नहि गुण नो काल, सघात भेद अद्धा सवद्ध ।
सघातादी न्हाल, तो पिण गुण केडै रहै ।।

८०. खेत्र अनै अवगाण, द्रव्य अनै वलि भाव ना ।
स्थानक नी स्थिति जाण, अल्प वहुत्व इम तेह तणी ।।

८१ सर्व थकी अल्प खेत, शेष असखगुणा कह्या ।।
पूर्वे आखी एथ, तसु सग्रह कर ए कह्यु ।

८२. तिण कारण कहिवाय, द्रव्य तणा जे काल थी ।
असखगुणो अधिकाय, भाव स्थान स्थिति नो कह्यो ।।

८३. *देश अक सतावन तणो, ए नेऊमी ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' मगलमाल ।।

*लय : श्रेणिक घर आयां पछै रे

६८ अवगाहनाद्धा द्रव्येऽववद्धा—नियतत्वेन सम्वद्धा, कथम् ? (वृ० प० २३७)

६९. सङ्कोचाद्विकोचाच्च सङ्कोचविकोचादि परिहृत्येत्यर्थः, अवगाहना हि द्रव्ये सङ्कोचविकोचयोरभावे सति भवति तत्सद्भावे च न भवतीत्येव द्रव्येऽवगाहनाऽनियतत्वेन सवद्धेत्युच्यते । (वृ० प० २३७)

७१ न पुनर्द्रव्य सङ्कोचविकोचमात्रे सत्यप्यवगाहनाया नियतत्वेन सवद्ध । (वृ० प० २३७)

७२ सङ्कोचविकोचाभ्यामवगाहनानिवृत्तावपि द्रव्य न निवर्त्तते । (वृ० प० २३७)

७३ इत्यवगाहनाया तन्नियतत्वेनासवद्धमित्युच्यते । (वृ० प० २३७)

७६. सघातादिना द्रव्योपरमेऽपि पर्यवा सन्ति, यथा घृष्टपटे शुक्लादिगुणा । (वृ० प० २३७)

७७ सकलगुणोपरमे तु न तद्द्रव्य न चावगाहनाऽनुवर्त्तते, अनेन पर्यवाणा चिर स्थान द्रव्यस्य त्वचिरमित्युक्तम्, (वृ० प० २३७)

७८ सङ्घातभेदलक्षणाभ्या धर्माभ्या 'यो बन्ध.—सम्वन्धस्तदनुवर्त्तिनी—तदनुसारिणी । (वृ० प० २३७)

७९ न पुनर्गुणकाल सघातभेदमात्रकालसवद्ध , सङ्घातादिभावेऽपि गुणानामनुवर्त्तनादिति । (वृ० प० २३७)

८०,८१ खेत्तोगाहणदव्वे, भावट्ठाणाउय च अप्प-बहुं ।
खेत्ते सव्वत्थोवे, सेसा ठाणा असखेज्जगुणा ।।१।।
(श० ५/१८१ सगहणी-गाहा)

## ढाल ९१

### दूहा

१. पूर्वे आऊखो कह्य, आयुवत छै जेह ।
आरभादि-सहीत छै, डडक चउवीसेह ।।
२. हे भदत ! भव-अत ! प्रभु ! भयात ! हे भगवान !
आरभ-सहित स्यू नारकी, परिग्रह-सहित पिछाण ?
३. अथवा आरभ-रहित छै, परिग्रह-रहित जगीस ?
इम गोयम पूछे छते, जिन भाखै सुण शीस !

*जय जयकारी वाण जिनेद्र नी, दीपक देव दिनदो रे ।
शीतल चद सरीखा स्वाम जी, जय जश करण जिनदो रे ।।
(ध्रुपद)

४. नेरइया आरभ-परिग्रह-सहित छै, आरभ-रहित न थायो रे ।
परिग्रह-रहित नही छै नारकी, प्रभु ! किण अर्थे ए वायो रे ?

५. जिन कहै नारकी पृथ्वीकाय नै, आरभ—पीड पमायो ।
यावत् पीड करै तसकाय नै, हिव निसुणो तसु न्यायो ।।

### सोरठा

६. अव्रत आश्री एह, अथवा मन कर नै हणै ।
किणहिक काय नैं तेह, पीड पमावै वलि हणै ।।

७. *शरीर परिग्रहवत छै नारकी, तन नी मूर्छा तासो ।
कर्म परिग्रहवत छै नेरइया, ग्रहण करी कर्म रासो ।।
८. सचित्त अचित्त वलि मिश्र द्रव्ये करी, परिग्रह-सहित पिछाणो ।
तिण अर्थे करि आरभ-सहित छै, परिग्रह-सहित सुजाणो ।।

९. प्रभु ! असुरकुमार आरभ-सहित छै ? पूछा एह वदीतो ।
जिन कहै आरभ-परिग्रह-सहित छै, नहिं आरभ-परिग्रह-रहीतो ।।

१०. किण अर्थे ? तव जिन कहै असुर ते, पृथ्वी पीड उपावै ।
यावत् त्रस नो पिण आरभ करै, शरीर परिग्रह थावै ।।

११. कर्म परिग्रहवत ग्रहण किया, भवन परिग्रहवतो ।
देव देवी मनुष्य नैं मनुष्यणी, त्या सू ममत्व करतो ।।

१. अनन्तरमायुरुक्तम्, अथायुष्मत आरम्भादिना चतुर्विशतिदण्डकेन प्ररूपयन्नाह— (वृ० प० २३७)
२. नेरइया ण भते ! किं सारभा सपरिग्गहा ?

३. उदाहु अणारभा अपरिग्गहा ?

४ गोयमा ! नेरइया सारभा सपरिग्गहा, णो अणारभा अपरिग्गहा । (श० ५/१८२)
से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चई—नेरइया सारभा सपरिग्गहा, नो अणारभा अपरिग्गहा ?
५ गोयमा ! नेरइया ण पुढविकायं समारभति, जाव (स० पा०) तसकाय समारभति ।

७ सरीरा परिग्गहिया भवति, कम्मा परिग्गहिया भवति ।
८ सचित्ताचित्त-मीसयाइ दव्वाइ परिग्गहियाइ भवंति ।
से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—नेरइया सारंभा सपरिग्गहा, नो अणारंभा अपरिग्गहा । (श० ५/१८३)
९ असुरकुमारा ण भते ! किं सारभा ? पुच्छा ।
गोयमा ! असुरकुमारा सारभा सपरिग्गहा, नो अणारभा अपरिग्गहा । (श० ५/१८४)
१०. से केणट्ठेण ? गोयमा ! असुरकुमारा ण पुढविकाय समारभति जाव तसकाय समारभति, सरीरा परिग्गहिया भवति ।
११. कम्मा परिग्गहिया भवति, भवणा परिग्गहिया भवति, देवा देवीओ मणुस्सा मणुस्सीओ

*लय : आरंभ करतो जीव सकै नहीं ।

१२. तिर्यचयोनिया वलि तिर्यचणी, ए पिण परिग्रह मांह्यो ।
आसण ते तो छै वेसण तणो, सेज्या शयन कहायो ॥

१२ तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणिणीओ परिग्गहिया भवति, आसण-सयण-

१३. भड माटी ना भाजन नै कह्या, कासी-भाजन मत्तो ।
उपकरण कुडछा कडाहा लोह ना, वृत्तिकार इम कहतो ॥

१३ भड-मत्तोवगरणा परिग्गहिया भवति ।
इह भाण्डानि—मृन्मयभाजनानि, मात्राणि—कास्यभाजनानि, उपकरणानि—लोहीकडुच्छुकादीनि,
(वृ० प० २३८)

१४. सचित्त-अचित्त नै मिश्र द्रव्ये करी, परिग्रहवत विचारो ।
तिण अर्थे आरभ-सहित असुर कह्या, इम यावत् थणियकुमारो ॥

१४ सचित्ताचित्त-मीसयाइ दव्वाइ परिग्गहियाइ भवति। से तेणट्ठेण गोयमा! एव वुच्चइ—असुरकुमारा सारभा सपरिग्गहा, नो अणारभा अपरिग्गहा ।
(श० ५/१८५)
एव जाव थणियकुमारा ।

१५. एकेद्री जिम नरक तणी परै, अव्रत आश्री कहीजे ।
वेइद्री प्रभु! आरभ-सहित छै, परिग्रह-सहित वदीज ?

१५ एगिदिया जहा नेरइया । (श० ५/१८६)
एकेन्द्रियाणा परिग्रहोऽप्रत्याख्यानादवसेय ।
(वृ० प० २३८)
बेइदिया ण भते ! किं सारभा सपरिग्गहा ?

१६. तिणहिज रीते पाठ भणीजिये, नारक जेम कहावै ।
जाव शरीर परिग्रहवत छै, तन नी मूर्छा भावै ॥

१६ त चेव बेइदिया ण पुढविकाय समारभति जाव तसकाय समारभति, सरीरा परिग्गहिया भवति ।

१७. बाहिर भड मत्त उपकरण ते, उपकरण सरीखा कहायो ।
तनु रक्षा अर्थे बेद्री करै घर ते परिग्रह माह्यो[1] ॥

१७ बाहिरा भड-मत्तोवगरणा परिग्गहिया भवति ।
(श० ५/१८७)
उपकारसाधर्म्याद्द्वीन्द्रियाणा शरीररक्षार्थं तत्कृतगृहकादीन्यवसेयानि । (वृ० प० २३८)

१८. जिणविध बेइद्री नै आखियो, इम जाव चउरिद्री उदतो ।
तिर्यच पचेद्री नी पूछा किया, जाव कर्म परिग्रहवतो ॥

१८ एव जाव चउरिदिया । (श० ५/१८८)
पचिदियतिरिक्खजोणिया ण भते! किं सारभा सपरिग्गहा ? उदाहु अणारभा अपरिग्गहा ?
त चेव जाव कम्मा परिग्गहिया भवति,

१९. टक कहीजै छेद्या गिरि भणी, कूट शिखर कहिवायो ।
शेल कहीजे मुड पर्वत भणी, ए पिण परिग्रह माह्यो ॥

१९ टका कूडा सेला
'टक' त्ति छिन्नटङ्का, 'कुड' त्ति कूटानि शिखराणि 'सेल' त्ति मुण्डपर्वत ।
(वृ० प० २३८)

२०. शिखरवत गिरि नै शिखरी कह्यो, कायक नम्या गिरि देशो ।
पाठ पभारा तणो ए अर्थ छै, परिग्रह माहि कहेसो ॥

२० सिहरी पब्भारा परिग्गहिया भवति,
'सिहर' त्ति शिखरिण—शिखरवन्तो गिरयः, 'पब्भार' त्ति ईषदवनता गिरिदेशा ।
(वृ० प० २३८)

२१. जल थल बिल नै गुफा कही वलि, गिर कोर्‍या घर लेणा ।
पर्वत-शिखर थकी पाणी भरै, तेहनै उज्भर केणा ॥

२१ जल-थल-विल-गुह-लेणा परिग्गहिया भवति।
'लेण' त्ति उत्कीर्णपर्वतगृहा, 'उज्भर' त्ति अवभर—पर्वततटादुदकस्याध पतन ।
(वृ० प० २३८)

---

[1] यह जोड जिस पाठ के आधार पर है उसके आगे अगसुत्ताणि भाग २ मे पाठ का कुछ अश और है—'सचित्ताचित्तमीसयाइ दव्वाइ परिग्गहियाइ भवति' । जयाचार्य को उपलब्ध आदर्श मे यह पाठ नही था । अगसुत्ताणि के पाठान्तर मे भी यह सूचना दी गई है कि एक अन्य आदर्श मे यह पाठ नही मिलता है ।

२२. णिज्झर नीज्झरणो ते जल श्रवै, चिल्लल चिक्खल समीलो।
मिश्रोदक स्थान आख्यो वृत्ति मे, पल्लल प्रह्लादनशीलो॥

२२. निज्झर-चिल्लल-पल्लल-
'निज्झर' त्ति निर्झर—उदकस्य श्रवणं, 'चिल्लल' त्ति चिक्खलमिश्रोदको जलस्थानविशेष 'पल्लल' त्ति प्रह्लादनशील। (वृ० प० २३८)

२३. केदारवान आकार क्यार्‍या तणै, तटवान वा देशो।
अन्य आचार्य क्यार्‍या इज कहै, ए वप्पिणा अर्थ विशेषो॥

२३ वप्पिणा परिग्गहिया भवति,
'वप्पिण' त्ति केदारवान् तटवान् वा देश केदार एवेत्यन्ये। (वृ० प० २३८)

२४. अगड पाठ नो अर्थ कूओ कह्यू, वलि तलाव द्रह जाणी।
नदी अनै चउखूणी वावडी, ए उदक सहित पिछाणी॥

२४ अगड-तडाग-दह-नईओ वावी-
'अगड' त्ति कूप 'वावि' त्ति वापी चतुरस्रो जलाशयविशेष। (वृ० प० २३८)

२५. वृत्त वाटली पुष्करणी कही, अथवा कमल सहीतो।
दीहिया पाठ नो अर्थ खडोखलो[1], परिग्रहवत प्रतीतो॥

२५ पुक्खरिणी-दीहिया
'पुक्खरिणि' त्ति पुष्करिणी वृत्त. स एव पुष्करवान् वा, 'दीहिय' त्ति सारिण्य। (वृ० प० २३८)

२६. वक्र नालि नी वावी गुजालिका, जल वक्र नालि निसरंतो।
अणखणियो सर आश्रय जल तणु, वलि ते सर नी पतो॥

२६ गुजालिया सरा सरपतियाओ,
'गुजालिय' त्ति वक्रसारिण्य, 'सर' त्ति सरासि—स्वयसभूतजलाशयविशेषाः। (वृ० प० २३८)

२७. इक सर सेती अन्य सर दूसरो, तेहथी अन्य सर तीजो।
माहोमाहि पाणी आवतो, ए सर-सर-पक्ति कहीजो॥

२७. सरसरपतियाओ
यासु सर.पक्तिपु एकस्मात्सरसोऽन्यस्मिन्नन्यस्मादन्यत्र एव सचारकपाटकेनोदक सचरति ता. सर सर पक्तय.। (वृ० प० २३८)

२८. बिल नी पक्ति श्रेण तेणे करी, सर्व प्रकारे सोयो।
तिर्यंच पचेन्द्री तेहनें ग्रह्या, ते परिग्रह में होयो॥

२८ बिलपतियाओ परिग्गहियाओ भवति।

२९. द्राखादिक ना मडप नैं विषे, स्त्री नर रमत आरामो।
पुष्पादि तरु सहित उद्यान ते, परिग्रहवत तमामो॥

२९ आरामुज्जाण-
आरमन्ति येपु माधवीलतादिपु दम्पत्यादीनि ते आरामा., 'उद्यानानि' पुष्पादिमद्वृक्षसकुलानि उत्सवादौ बहुजनभोग्यानि। (वृ० प० २३८)

३०. कानन तरु-सामान्य सहीत ते, नगर नजीक आख्यातो।
वन ते नगर थकी अलगो कह्यो, वन-खड तरु इक जातो॥

३० काणणा वणा वणसंडा
काननानि सामान्यवृक्षसयुक्तानि नगरासन्नानि, वनानि नगरविप्रकृष्टानि, वनषण्डा.—एकजातीयवृक्षसमूहात्मकाः। (वृ० प० २३८)

३१. तरु नी पंक्ति वनराई कही, देवल सभा पो थूभो।
ऊपर चोडी हेठे साकडी, खाई परिग्रह लूभो॥

३१ वणराईओ परिग्गहियाओ भवति, देवउल-सभ-पव-थूभ-खाइय
'वनराजयो'—वृक्षपक्तय 'खातिका' उपरिविस्तीर्णाध सङ्कटखातरूपा, (वृ० प० २३८)

३२. हेठे ऊपर सम परिखा कही, ते पिण परिग्रहवतो।
वलि प्रागार कह्यो छै गढ भणी, बुरज अटालग हुतो॥

३२ परिखाओ परिग्गहियाओ भवति, पागार-अट्टालग
परिखाः अध. उपरि च समखातरूपा, 'अट्टालग' त्ति प्राकारोपर्याश्रयविशेषा., (वृ० प० २३८)

३३. गढ घर विच जे गजादि गमन नों, मारग चरिय कहतो।
दार कहीजै जे खिडकी भणी, गोपुर दरवज्जा हुतो॥

३३ चरिय-दार-गोपुरा परिग्गहिया भवति,
'चरिका' गृहप्राकारान्तरो हस्त्यादिप्रचारमार्ग, द्वार खडक्किका, 'गोपुर' नगरप्रतोली, (वृ० प० २३८)

---

१. बावडी विशेष।

३४. रायभवन प्रासाद कहीजियै, वलि अति उच्च प्रासादो ।
घर जे कहियै गृह सामान्य ए, तथा जन सामान्य नो लाधो ।

३४ पासाद-घर-
प्रासादा देवाना राज्ञा च भवनानि, अथवा उत्सेध-बहुला —प्रासादा, 'घर' त्ति गृहाणि सामान्यजनाना सामान्यानि वा । (वृ० प० २३८)

३५. सरण कहीजै तृणमय घर तसु, लेण उपाश्रय जोयो ।
आपण नाम जे हाट तणो अछै, ए परिग्रहवतज होयो ।।

३५ सरण-लेण-आवणा परिग्गहिया भवति,
'शरणानि' तृणमयावसरिकादीनि 'आपणा' हट्टा, (वृ० प० २३८)

३६. सिंघोडा नै आकारे स्थान ते, त्रिक त्रिण पथ मिलतो ।
चउक्क कहीजै पथ मिले चिहुं, चच्चर मिलै वहु पथो ।।

३६ सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-

३७ चउमुह देवकुलादि चतुर्मुख, राजमार्ग महापथो ।
वलि सामान्य मार्ग नै पथ कह्यु, तिण करि परिग्रहवतो ।।

३७. चउम्मुह-महापह-पहा परिग्गहिया भवति, ।
चतुर्मुख—चतुर्मुखदेवकुलकादि 'महापह' त्ति राज-मार्ग, (वृ० श० २३८)

३८. सकट गाडला रथ वलि जाण ते, जुग गोल देश में प्रसीधो ।
अवावाडी तेह गिल्ले कही, थिलिल पलाणज मीधो ।।

३८ सगड-रह-जाण-जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-

३९. कूट आकारे आच्छादित हुवै, शिविका कहियै तासो ।
वलि सदमाणी कही छै पालखी, ते परिग्रहवत विमासो ।।

३९. सीय-सदमाणियाओ परिग्गहियाओ भवति,

४०. लोही फलका पचावण नो तवो, लोहकडाहा जोयो ।
कुडछी भोजन परूसण नी कही, ते परिग्रहवत होयो ।।

४०. लोही-लोहकडाह-कडुच्छया परिग्गहिया भवति,
'लौहि' मण्डकादिपचनिका, 'लोहकडाहि' त्ति कवेल्ली, 'कडुच्छुय' त्ति परिवेपणाद्यर्थो भाजन-विशेष । (वृ० प० २३८)

४१. भवनपती नां भवन परिग्रह, वले देव नै देवी ।
मनुष्य मनुष्यणी तिर्यच तिर्यंचणी, आसन शयन सुवेवी ।।

४१. भवणा परिग्गहिया भवति, देवा देवीओ मणुस्सा । मणुस्सीओ तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणिणीओ परिग्गहिया भवति, आसण-सयण-
'भवण' त्ति भवनपतिनिवास. । (वृ० प० २३८)

४२. थभ भड वलि सचित्त अचित्त कह्या, मिश्र द्रव्य करि जेहो ।
परिग्रहवत हुवै तिरि पचेद्री, तिण अर्थे कह्यू एहो ।।

४२ खभ-भड-सचित्ताचित्त-मीसयाइं दव्वाइ परिग्गहि-याइ भवति । से तेणट्ठेण । (श० ५/१८९)

४३. जिम तिर्यच कह्या छै तिण विधे, भणवा मनुष्य पिछाणो ।
व्यतर जोतिपि वैमानिक वलि, भवनपती तिम जाणो ।।

४३ जहा तिरिक्खजोणिया तहा मणुस्सा वि भाणियव्वा । वाणमतर-जोइस-वेमाणिया जहा भवणवासी तहा नेयव्वा । (श० ५/१९०)

## सोरठा

४४. कह्या नरकादि सघीक, ते छद्मस्थपणे करी ।
हेतू व्यवहारीक, ते माटै हेतू हिवै ।।

४४ एते च नारकादयश्छद्मस्थत्वेन हेतुव्यवहारकत्वा-द्धेतव उच्यन्ते इति तद्भेदान्निरूपयन्नाह—
(वृ० प० २३८)

४५. *हेतू पच जिनेश्वर आखिया, इहा वर्त्तै हेतू मांह्यो ।
पुरुष तिको पिण हेतू ईज छै, अन्य उपयोग न ताह्यो ।।

४५. पच हेऊ पण्णत्ता,
इह हेतुपु वर्तमान पुरुषो हेतुरेव तदुपयोगानन्यत्वात्, (वृ० प० २३९)

४६. क्रिया भेद थी वलि हेतू तणां, आख्या पच प्रकारो ।
जाणण देखण प्रमुख क्रिया कही, ए भेद क्रिया ना विचारो ।।

४६ पञ्चविधत्व चास्य क्रियाभेदादित्यत आह—

*लय : आरंभ करतो जीव संकै नहीं

४७. हेतू प्रति जाणै तसु न्याय ए, साध्यज अविनाभूतो ।
ते साध्यज निश्चय अर्थ हेतू प्रतै, जाणै ए धुर सूतो ।।

४७ हेउ जाणइ,
'हेउ जाणइ' त्ति हेतु साध्याविनाभूत साध्यनिश्चयार्थं जानाति— (वृ० प० २३६)

## सोरठा

४८. एह विशेष थकीज, जाणै ज्ञान विशेष है ।
सम्यक्पणे लहीज, सम्यक्दृष्टिपणा थकी ।।

४८ विशेषत: सम्यगवगच्छति सम्यग्दृष्टित्वाद्, (वृ० प० २३६)

४९. एह पचविध पेख, सम्यगदृष्टी जाणवा ।
ते माटै सुविशेख, पाचू विध सम्यक्पणै ।।

४९ अय पञ्चविधोऽपि सम्यग्दृष्टिर्मन्तव्य: (वृ० प० २३६)

५०. मिथ्यादृष्टी तास, धुर बे सूत्र कह्या पछी ।
आगल कहिस्यै जास, एक भेद ए आखियो ।।

५० मिथ्यादृष्टेः सूत्रद्वयात्परतो वक्ष्यमाणत्वादित्येक, (वृ० प० २३६)

५१. *इमज हेतू प्रति देखै वलि, सामान्य थी कहिवायो ।
दर्शन नों उपयोग सामान्य छै, ए दूजो भेद बतायो ।

५१ हेउ पासइ,
एव हेतु पश्यति सामान्यत एवाववोधादिति द्वितीय, (वृ० प० २३६)

५२. इमहिज हेतू प्रति जे बुज्झती, सम्यक् शुद्ध श्रद्धतो ।
बोध शब्द शुद्ध श्रद्धा तणो, पर्यायपणा थी हुतो ।।

५२ हेउ बुज्झइ,
एव 'बुध्यते' सम्यक् श्रद्धत्त इति बोधे सम्यक्श्रद्धानपर्यायत्वादिति । (वृ० प० २३६)

५३. तूर्यं भेद इम हेतू प्रति लहै, साध्य सिद्ध सुविचारो ।
विहुं व्यापरण थकी सम्यक्पणै, पामै अर्थ उदारो ।।

५३ हेउ अभिसमागच्छइ,
तया हेतु 'अभिसमागच्छति' साध्यसिद्धौ व्यापारणत. सम्यक् प्राप्नोतीति चतुर्थ. । (वृ० प० २३६)

५४. हेतू अध्यवसानादिक अछै, ते कारण कहिवायो ।
तेहनां योग्य थकी मरण नै, हेतू कहियै ताह्यो ।।

५४ हेउ छउमत्थमरण मरइ । (श० ५/१६१)
हेतु.—अध्यवसानादिर्मरणकारण तद्योगान्मरणमपि हेतु, (वृ० प० २३६)

५५. इण कारण थी हेतुमान ते, छद्मस्थ-मरण मरंतो ।
इहां मरण केवली अनाणी नो नहीं, ए समदृष्टि मरण मरतो ।।

५५ अतस्त हेतुमदित्यर्थ. छदमस्थमरण, न केवलिमरण, (वृ० प० २३६)

## सोरठा

५६. छद्मस्थ हेतू युक्त, पुरुष जेह प्रवर्त्ततो ।
छद्मस्थ मरै इत्युक्त, पिण नहि छै ए केवली ।।

५७. हेतू मे वर्त्तमान, केवलज्ञानी नहि मरै ।
तिण कारण पहिछान, छद्मस्थ मरण कह्यो इहां ।।

५८. अहेतु केवलज्ञान, ते माटै जे केवली ।
अहेतुक पहिछान, तिण सू हेतू ते नही ।।

५८ तस्याहेतुकत्वाद्, (वृ० प० २३६)

५९. नहि ए मरण अज्ञान, ए समदृष्टिपणां थको ।
मरण अज्ञान पिछाण, कहिस्यै आगल तेहनै ।।

५९. नाप्यज्ञानमरणमेतस्य सम्यग्ज्ञानित्वात् अज्ञानमरणस्य च वक्ष्यमाणत्वात् (वृ० प० २३६)

६०. तिणसू मरणज एह, केवलज्ञानी नों नही ।
अनाण पिण न कहेह, ए पंचम हेतू कह्यो ।।

*लय : आरंभ करतो जीव संकै नहीं

६१. प्रथम आलावे एह, हेतू पुरुष भणी कह्या ।
आगल चिह्न कहेह, ते पिण ए समदृष्टि ना ॥

६२. *हेतू कारण पच परूपिया, हेतू चिह्न करि जाणै ।
घूम्र चिह्न करि जाणै अग्नि नै, जिम ए तत्व पिछाणै ॥

६३. हेतू कारण करि देखै वलि, हेतू करि सरधायो ।
हेतू चिह्न करीनै ते वलि, भव-निस्तरण सुपायो ॥

६४. अध्यवसानादि प्रमुख हेतू करी, छद्मस्थ-मरण मरतो ।
ए समदृष्टि हेतू न्याय थो, जाणै देखै सरधतो ॥

६२-६४ पच हेऊ पण्णत्ता, त जहा—हेउणा जाणइ जाव हेउणा छउमत्थमरण मरइ । (श० ५/१६२)

## सोरठा

६५. समदृष्टी ना एह, बे आलावा आखिया ।
मिथ्यादृष्टी जेह, बे आलावा तास हिव ॥

६६. *हेतू पंच जिनेश्वर भाखिया, हेतू चिह्न न जानैं ।
समदृष्टी जाणै हेतू चिह्न नै, तेहवा ए न पिछानैं ॥

६७. हेतू चिह्न प्रति देखै नही, इमहिज नहिं सरधायो ।
भव-निस्तरण कारण पामै नही, समदृष्टी जिम ताह्यो ॥

६८. अध्यवसानादि हेतू युक्त ते, अज्ञान-मरण मरतो ।
ए मिथ्याती शुद्ध श्रद्धा तणा, चिह्न प्रतै न जानतो ॥

६९. हेतू कारण पच परूपिया, अनुमानादिक जोयो ।
तिण करि भाव यथातथ छै तिकै, ए जाणै नहि कोयो ॥

७०. अनुमानादिक जे हेतू करी, यथातत्थ नहि देखै ।
इम हेतू करि भाव यथातत्थ, श्रद्धै नही विशेखै ॥

७१. इम अनुमानादिक हेतू करि, भव-निस्तरण न पामै ।
अध्यवसानादि जे हेतू करि मरै मरण अज्ञान अकामै ॥

७२. विपरीत जाणै विपरीत देखतो, विपरीत श्रद्धै पामै ।
विहु आलावे करीनै छै इहा, मरै मरण अज्ञान अकामै ॥

६६-६८ पच हेऊ पण्णत्ता, त जहा—हेउ ण जाणइ जाव हेउ अण्णाणमरण मरइ । (श० ५/१६३)
तत्र 'हेतु' लिङ्ग न जानाति, नञ. कुत्सार्थत्वाद-सम्यगवैति मिथ्यादृष्टित्वात्, एव न पश्यति, एव न बुध्यते, एव नाभिसमागच्छति तथा 'हेतुम्' अध्यवसानादिहेतुयुक्तमज्ञानमरण म्रियते ।
(वृ० प० २३९)

६९-७१. पच हेऊ पण्णत्ता, त जहा—हेउणा ण जाणइ जाव हेउणा अण्णाणमरण मरइ । (श० ५/१६४)

## सोरठा

७३. पूर्वे बे आलाव, आख्या मिथ्याती तणा ।
हिवै केवली भाव, बे आलावा तेहनां ॥

७४. हेतू विपक्षभूत, अहेतू ते केवली ।
प्रत्यक्षज्ञानी सूत, कह्या अहेतू ते भणी ॥

७५. *पच अहेतू प्रभु परूपिया, अहेतू प्रति जानंतो ।
धूम्रादिक ए हेतू माहरै, इहविध नहि मानतो ॥

७६. अहेतूभूत ते प्रति जाणतो, अहेतूज कहीजै ।
इमहिज देखै श्रद्धै पामियै, केवली-मरण लहीजै ॥

७५,७६ पच अहेऊ पण्णत्ता, त जहा—अहेउं जाणइ जाव अहेउ केवलिमरण मरइ । (श० ५/१६५)

*लय : आरंभ करतो जीव सकै नहीं

७७. पंच अहेतू प्रभु परूपिया, अहेतू करि जाणै।
जाव अहेतू करिनें केवली-मरण चरम गुणठाणै।।
७८. पचम 'ठाणा' वृत्ति थकी इहा, अर्थ दोय आलावा नो आख्यो।
हिवै भगवती वृत्ति टवै कह्यु, आगल ते अभिलाख्यो।।
७९. प्रथम आलावा नो अर्थ कियो इसो, अहेतुभाव करि जाणै।
अनुमान विना धूम्रादिक जाणता, तिण सू नेह अहेतु प्रमाणै।।

## दूहा

८०. सर्व वस्तु हेतू विना, जाणै केवलनाण।
तिण सू सगली वस्तु ते, तास अहेतू जाण।।

८१. *इमहिज अहेतु प्रति देखै सही, जाव अहेतू तेहो।
केवलीमरण मरै हेतू विना, नोपक्रमी गुणगेहो।।

८२. पच अहेतू प्रभू परूपिया, तिणहिज विध मुनिशेखै।
णवर जाणै अहेतू करी, अहेतू करि देखै।।

८३. श्रद्धै पामै अहेतू करी, केवली-मरण मरंतो।
उपक्रम रहितपणे ते केवली-मरण मरै गुणवतो।।
८४. "बिहुं आलावा रो अर्थ टीका मझे, कीधो छै इण रीतो।
वडा टवा में अर्थ कियो इसो, ते सांभलज्यो धर प्रीतो।।
८५. प्रथम आलावा नो अर्थ कियो इसो, अहेतुभाव करि जाणै।
सर्वज्ञ भाव करि जाणै तिके, पिण अनुमानै नहि माणै।।
८६. प्रत्यक्ष ज्ञानपणा थी केवली, अहेतू पाठ नो ताह्यो।
कारण अर्थ इहा करिवू नही, अहेतू केवली कहायो।।
८७. ते केवलज्ञानी अहेतू थका, केवलज्ञान करि जोयो।
तेह विशेष करी जाणै अछै, ज्ञान विशेषज होयो।।
८८. ते केवलज्ञानी अहेतू थका, केवल दर्शण करि जोयो।
तेह सामान्य करि देखे अछै, दर्शण सामान्य होयो।।
८९. ते केवलज्ञानी अहेतू थका, क्षायक-सम्यक्त्व शुद्धो।
तिण करि श्रद्धै सगला भाव नें, मोह रहित अविरुद्धो।।
९०. हेतू जे अनुमानादिक तणी, वांछा रहित विचारो।
केवलज्ञानी क्रिया आदरै, ए चोथो अहेतू सारो।
९१. वलि हेतू नी वांछा रहित ते, केवली मरण मरता।
प्रथम आलावा नों वडा टवा मझे, इह विध अर्थ करंता।।
९२. द्वितीय आलावा नों अर्थ हिवै कहू, अहेतू केवली अतीवो।
हेतू रहितपणे सुविशेष थी, ते जाणै जीव अजीवो।।

---

७७ पच अहेऊ पण्णत्ता, त जहा—अहेउणा जाणइ जाव अहेउणा केवलिमरण मरइ। (ठा० ५/१९६)

७८ (ठाण वृ० प० २९५)

७९ अहेतुं—न हेतुभावेन सर्वज्ञत्वेनानुमानानपेक्षत्वाद्धूमादिक जानाति स्वस्याननुमानोत्यापकतयेत्यर्थ.। (वृ० प० २३९)

८१ एव पश्यतीत्यादि, तथा 'अहेतु केवलिमरण मरइ' त्ति 'अहेतु' निर्हेतुक अनुपक्रमत्वात् केवलिमरण म्रियते। (वृ० प० २३९)

८२ पचेत्यादि नर्थव नवरम् 'अहेतुना' हेत्वभावेन केवलित्वाज्जानाति योऽसावहेतुरेव, एव पश्यतीत्यादयोऽपि। (वृ० प० २३९)

८३ 'अहेतुना' उपक्रमाभावेन केवलिमरण म्रियते। (वृ० प० २३९)

---

*लय : आरंभ करतो जीव संकै नहीं

९३. वलि हेतू रहितपणै ते केवली, सामान्यपणै करि देखै ।
हेतू रहितपणै ते केवली, प्रमाण करि सुविशेखै ।।

९४. हेतू रहितपणै क्रिया करै, जिन हेतू रहित मरता ।
द्वितीय आलावा नों वडा टवा मझे, इहविध अर्थ करता'' ।।
[ज० स०]

## दूहा

९५. केवली अहेतू कह्या, वले अहेतू सार ।
अतिसयज्ञानी अवधिधर, ते आश्री अधिकार ।।

९६. *पंच अहेतू प्रभू परूपिया, अहेतु प्रति नहिं जाणै ।
धूम्रादिक छै जे हेतु प्रतै, अहेतुभाव करि न माणै ।।

९७. न जाणै आख्यू ते सर्व प्रकार थी, पिण देश थकी जाणतो ।
अनुमान विना पिण जाणै देश थी, ए अतिशयज्ञानी अत्यतो ।।

९८ इमहिज धूम्रादिक हेतु प्रति, अहेतुभाव करि ज्याही ।
सर्व प्रकारे ते देखै नही, इमहिज श्रद्धै नाही ।।

९९. इमहिज सर्व प्रकार पामै नही, अहेतू करि ताह्यो ।
निरुपक्रम छद्मस्थ-मरण मरै, ए पचम हेतु कहायो ।।

१००. पच अहेतू प्रभू परूपिया, अहेतू करि एहो ।
सर्व प्रकारै ते जाणै नही, जाणै अधूरू तेहो ।।

१०१. इमज अहेतू करिनै सर्वथा, देखै श्रद्धै नांह्यो ।
सर्व प्रकारै पिण पामै नही, छद्मस्थ-मरण कहायो ।।

१०२. एह अकेवली ते भणी इम कह्यु, छद्मस्थ-मरण मरतो ।
मरण अज्ञान मरै इम नहि कह्यो, अवधि ज्ञानादिकवतो ।।

१०३. ए अठ सूत्र कह्या सक्षेप थी, वलि जाणै बहुश्रुत न्यायो ।
भावार्थ तसु भेद अछै घणा, तिण सू खाच न करणी कायो ।।

१०४. सेव भते ! सत्तावन अक ए, एकाणूमी ढालो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसाद थी, 'जय-जश' मगलमालो ।।

९६-९९ पच अहेऊ पण्णत्ता, त जहा—अहेउं न जाणइ जाव अहेउ छउमत्थमरण मरइ । (श० ५/१९७)

१००,१०१ पच अहेऊ पण्णत्ता, त जहा—अहेउणा न जाणइ जाव अहेउणा छउमत्थमरण मरइ । (श० ५/१९८)

१०२ छद्मस्थमरणमकेवलित्वात् न त्वज्ञानमरणमवध्यादिज्ञानवत्त्वेन ज्ञानित्वात्तस्येति । (वृ० प० २३९)

१०३. गमनिकामात्रमेवेदमष्टानामप्येषा सूत्राणा, भावार्थं तु बहुश्रुता विदन्तीति । (वृ० प० २३९)

१०४ सेव भते ! सेव भते ! त्ति । (श० ५/१९९)

**पंचमशते सप्तमोद्देशकार्थः ।।५।७।।**

*लय : आरभ करतो जीव सकै नहीं

## ढाल : ६२

### दूहा

१. पुद्गल स्थिति थकी कह्या, सप्तम प्रवर उद्देश ।
अष्टम वलि तेहीज छै, प्रदेश थी सुविशेष ।।
२. तिण काले नें तिण समय, यावत परषद जेह ।
वीर तणी वाणी सुणी, गई आपणै गेह ।।
३. तिण काले नें तिण समय, तपसी श्रमण जगीस ।
भगवंत श्री महावीर नो, अतेवासी शीस ।।
४. नारद-पुत्र नामै मुनि, प्रकृति भद्र पुनीत ।
यावत आतम भावता, विचरै ध्यान सहीत ।।
५. तिण काले नें तिण समय, श्रमण तपी जगदीश ।
भगवत श्री महावीर नो, अतेवासी शीस ।।
६. निर्ग्रंथी-सुत नाम तसु, भद्र स्वभावे भाल ।
यावत विचरै चरण तप, महामुनी गुणमाल ।।

७. *हिवै तिण अवसर ते, निर्ग्रंथी-पुत्र नाम ।
जिहां नारद-पुत्र मुनि, तिहा आया छै ताम ।।
८. हिवै नारद-पुत्र मुनि, तेह प्रते तिणवार ।
इह विध कर कहितो, पूछै प्रश्न प्रकार ।।
९. सहु पुद्गल तुझ मते, हे आर्य ! अर्द्ध-सहीत ।
कै मध्य-सहित छै, प्रदेश-सहित कथीत ।।
१०. तथा अर्द्ध-सहित छै, मध्य-रहित कहिवाय ।
प्रदेश-रहित छै ? ए पट प्रश्न पूछाय ।।
११. अहो आर्य ! इम कही, नारद-पुत्र मुनिराय ।
निर्ग्रंथी-पुत्र प्रतै, बोलै एहवी वाय ।।
१२. सहु पुद्गल मुझ मते, हे आर्य ! अर्द्ध सहीत ।
मध्य-सहित छै, प्रदेश-सहित वदीत ।।
१३. पिण अर्द्ध-रहित नही, मध्य-रहित पिण नाय ।
प्रदेश-रहित नही, उत्तर इम देवाय ।।
१४. तव निर्ग्रंथी-पुत्र मुनि, नारद-पुत्र प्रतै वाय ।
इह विध वलि कहितो, साभल तू मुनिराय !
१५. सहु पुद्गल तुझ मते, हे आर्य ! अर्द्ध-सहीत ।
वलि मध्य-सहित छै, प्रदेश-सहित वदीत ।।
१६. पिण अर्द्ध-रहित नही, मध्य-रहित पिण नाहि ।
प्रदेश-रहित नही, इम तू कहै छै ताहि ।।

१. सप्तमे उद्देशके पुद्गला. स्थितितो निरूपिता., अष्टमे तु त एव प्रदेशतो निरूप्यन्ते, (वृ० प० २४०)
२. तेण कालेण तेण समएण जाव परिसा पडिगया । (श० ५।२००)
३ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स अतेवासी
४. नारयपुत्ते नाम अणगारे पगइभद्दए जाव विहरति ।
५ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स अतेवासी
६. नियंठिपुत्ते नाम अणगारे पगइभद्दए जाव विहरति ।
७. तए ण से नियठिपुत्ते अणगारे जेणामेव नारयपुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ,
८. उवागच्छित्ता नारयपुत्त अणगार एवं वयासी—
९. सव्वपोग्गला ते अज्जो ! किं सअड्ढा समज्झा सपएसा ?
१० उदाहु अणड्ढा अमज्झा अपएसा ?
११ अज्जो ! त्ति नारयपुत्ते अणगारे नियठिपुत्त अणगारं एव वयासी—
१२. सव्वपोग्गला मे अज्जो ! सअड्ढा समज्झा सपएसा,
१३ नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा । (श० ५।२०१)
१४. तए ण से नियठिपुत्ते अणगारे नारयपुत्तं अणगार एवं वयासी—
१५ जइ ण ते अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा, समज्झा सपएसा,
१६ नो अणड्ढा, अमज्झा अपएसा,

*लय : नमू अनंत चोवीसी

१७. तो परमाणु प्रमुख, द्रव्य आश्री अवलोय ।
स्यू सगला पुद्गल, अर्द्ध-सहित ए होय ?

१८. वलि सगला पुद्गल, मध्य-सहित स्यू थाय ?
प्रदेश-सहित छै, पुद्गल द्रव्य थी ताय ॥

१९. कै अर्द्ध-रहित नही, मध्य-रहित पिण नाहि ।
प्रदेश-रहित नही, पुद्गल द्रव्य थी ताहि ?

२०. इक प्रदेश प्रमुख, अवगाही रह्या जेह ।
ए खेत्र आश्रयी, पुद्गल सगला तेह ॥

२१. स्यू अर्द्ध-सहित छै, मध्य-सहित छै सोइ ।
प्रदेश-सहित छै, तिमहिज रहित तीनोइ ?

२२. एकादि समय स्थिति, काल आश्री अवलोय ।
सगलाई पुद्गल, अर्द्ध-सहित स्यू होय ?

२३. कै मध्य-सहित छै, कै प्रदेश-सहीत ।
कै अर्द्ध-रहित नहिं, नहिं मध्य-प्रदेश-रहीत ?

२४. इक गुण कालादिक, भाव आश्री अवलोय ।
सगलाई पुद्गल, अर्द्ध-सहित स्यू होय ॥

२५. कै मध्य-सहित छै, कै प्रदेश-सहीत ।
कै अर्द्ध-रहित नहिं, नहिं मध्य-प्रदेश-रहीत ?

२६. तव नारद-पुत्र मुनि, निर्ग्रंथी-पुत्र सार ।
ते प्रति इम बोल्यो, सांभल आर्य ! उदार ॥

२७. द्रव्य थी पिण मुझ मते, सहु पुद्गल ए रीत ।
काइ अर्द्ध-सहित छै, मध्य-प्रदेश-सहीत ॥

२८. पिण अर्द्ध-रहित नही, मध्य-रहित नही तेम ।
प्रदेश-रहित नही, खेत्र थकी पिण एम ॥

२९. इमहिज काल थी, भाव थकी पिण तेम ।
तव निर्ग्रंथी-सुत, कहै नारद-पुत्र नें एम ॥

३०. जो आर्य ! द्रव्य थी, पुद्गल सर्व वदीत ।
काइ अर्द्ध-सहित छै, मध्य-प्रदेश-सहीत ॥

३१. पिण अर्द्ध-रहित नहिं, मध्य-रहित नहिं कोय ।
प्रदेश-रहित नहिं, तो तुझ मते इम होय ॥

३२. परमाणु-पुद्गल, ते पिण अर्द्ध-सहीत ।
वलि मध्य-सहित ते, प्रदेश-सहित कथीत ॥

१७. नि—दव्वादेसेण अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा
'दव्वादेसेण' त्ति ···· ···परमाणुत्वाद्याश्रित्येति ।
(वृ० प० २४१)

१८. समज्झा सपएसा,

१९ नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा ?

२० खेत्तादेसेण अज्जो ! सव्वपोग्गला
'खेत्तादेसेण' त्ति एकप्रदेशावगाढत्वादिनेत्यर्थः.
(वृ० प० २४१)

२१ सअड्ढा समज्झा सपएसा, नो अणड्ढा अमज्झा
अपएसा ?

२२ कालादेसेण अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा,
'कालादेसेण' ति एकादिसमयस्थितिकत्वेन
(वृ० प० २४१)

२३ समज्झा सपएसा, नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा ?

२४ भावादेसेण अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा
'भावादेसेण' ति एकगुणकालकत्वादिना
(वृ० प० २४१)

२५ समज्झा सपएसा, नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा ?

२६ तए ण से नारयपुत्ते अणगारे नियंठिपुत्त अणगारं एवं
वयासी—

२७ दव्वादेसेण वि मे अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा
समज्झा सपएसा,

२८. नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा,
खेत्तादेसेण वि,

२९ कालादेसेण वि, भावादेसेण वि । (भ० ५।२०२)
तए ण से नियंठिपुत्ते अणगारे नारयपुत्त अणगारं एवं
वयासी—

३० जइ ण अज्जो ! दव्वादेसेणं सव्वपोग्गला सअड्ढा
समज्झा सपएसा,

३१ नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा,

३२. एवं ते परमाणुपोग्गले वि सअड्ढे समज्झे सपएसे,

३३. पिण अर्द्ध-रहित नहिं, मध्य-रहित नहिं कोय ।
प्रदेश-रहित नहीं, तुझ मते इम होय ।।

३४. जो आर्य ! खेत्र थी, पुद्गल सर्व वदीत ।
काइ अर्द्ध-सहित छै, मध्य-प्रदेश-सहीत ।।

३५. पिण अर्द्ध-रहित नहिं, मध्य-रहित नहिं कोय ।
प्रदेश-रहित नहिं, तो तुझ मते इम होय ।।

३६. इक प्रदेश ओगाह्या, ते पिण अर्द्ध-सहीत ।
वलि मध्य-सहित ते, प्रदेश-सहित कथीत ।।

३७. पिण अर्द्ध-रहित नहिं, मध्य-रहित नहिं कोय ।
प्रदेश-रहित नही, तुझ मते इम होय ।।

३८. जो आर्य ! काल थी, पुद्गल सर्व वदीत ।
काइ अर्द्ध-सहित छै, मध्य-प्रदेश-सहीत ।।

३९. पिण-अर्द्ध-रहित नहिं, मध्य-रहित नहिं कोय ।
प्रदेश-रहित नहिं, तो तुझ मते इम होय ।।

४०. इक समय स्थिति द्रव्य, ते पिण अर्द्ध-सहीत ।
वलि मध्य-सहित ते, प्रदेश-सहित कथीत ।।

४१. पिण अर्द्ध-रहित नहिं, मध्य-रहित नहि कोय ।
प्रदेश-रहित नही, तुझ मते इम होय ।।

४२. जो आर्य ! भाव थी, पुद्गल सर्व वदीत ।
काइ अर्द्ध-सहित छै, मध्य-प्रदेश-सहीत ।।

४३. पिण अर्द्ध रहित नहिं, मध्य-रहित नहिं कोय ।
प्रदेश-रहित नहिं, तो तुझ मते इम होय ।।

४४. इक गुण कालो पिण, ते पिण अर्द्ध-सहीत ।
वलि मध्य-सहित ते, प्रदेश-सहीत कथीत ।।

४५. पिण अर्द्धरहित नहिं, मध्य-रहित नहि कोय ।
प्रदेश-रहित नही, तुझ मते इम होय ।।

४६. अथ ते इम न हुवै, जो तू कहिसी इण रीत ।
द्रव्य थी सहु पुद्गल छै अर्द्धादि-सहीत ।।

४७. इम खेत्र थकी पिण, काल थकी पिण एम ।
इम भाव थकी पिण, ते मिथ्या वच तेम ।।

४८. तव नारद-पुत्र मुनि, निर्ग्रंथी-सुत सार ।
ते प्रति इम बोल्यो, सरलपणे सुखकार ।।

४९. हे देवानुप्रिया ! इम निश्चे करिनै ताहि ।
ए अर्थ न जाणू, अम्हे देखू पिण नाहि ।।

५०. अहो देवानुप्रिया ! जो तुझ कहिता सोय ।
तनु-खेद न होवै तो वांछू इम जोय ।।

५१. देवानुप्रिया पे, पूर्वे आख्या भावो ।
सुणी हृदय विषे ते, जाणवा समर्थ थावो ।।

३३. नो अणड्ढे अमज्झे अपएसे ।

३४ जइ णं अज्जो ! खेत्तादेसेण वि सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा,

३६ एवं ते एगपएसोगाढे वि पोग्गले सअड्ढे समज्झे सपएसे ।

३८. जइ णं अज्जो ! कालादेसेण सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा,

४०. एवं ते एगसमयट्ठितीए वि पोग्गले सअड्ढे समज्झे सपएसे ।

४२. जइ णं अज्जो ! भावादेसेण सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा,

४४ एवं ते एगगुणकालए वि पोग्गले सअड्ढे समज्झे सपएसे ।

४६ अह ते एवं न भवति तो जं वयसि 'दव्वादेसेण वि सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा, नो अणड्ढा, अमज्झा अपएसा,

४७ एवं खेत्तादेसेण वि, कालादेसेण वि, भावादेसेण वि' तं णं मिच्छा । (श० ५।२०३)

४८ तए णं से नारयपुत्ते अणगारे नियंठिपुत्तं अणगारं एवं वयासी—

४९ नो खलु एयं देवाणुप्पिया ! एयमट्ठं जाणामो-पासामो ।

५० जइ णं देवाणुप्पिया नो गिलायंति परिकहित्तए, तं इच्छामि णं

५१. देवाणुप्पियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जाणित्तए । (श० ५।२०४)

५२. तव निर्ग्रंथी-सुत, नारद-पुत्र अणगार ।
ते प्रति इम बोल्यो, वारू वचन विचार ।।
५३. अहो आर्य ! साभल, द्रव्य थकी पहिछाण ।
सगलाई पुद्गल, म्हारे मते इम जाण ।।
५४. प्रदेश-सहित पिण, वलि प्रदेश-रहीत ।
विहुं कह्या अनता, पुद्गल द्रव्य वदीत ।।
५५. इम खेत्र थकी पिण, काल थकी सुवदीत ।
इम भाव थकी पिण, प्रदेश सहित रहीत ।।

५२ तए ण से नियठिपुत्ते अणगारे नारयपुत्तं अणगार एव वयासी—

५३ दव्वादेसेण वि मे अज्जो ! सव्वे पोग्गला

५४ सपएसा वि, अप्पएसा वि—अणता ।

५५ खेत्तादेसेण वि एव चेव कालादेसेण वि भावादेसेण वि एव चेव । (स० पा०)

५६. *जे द्विप्रदेशिक खध प्रमुख, प्रदेश-सहीत पिछाणियै ।
प्रदेश-रहित परमाणु ते पिण, द्रव्य अनता जाणियै ।।
५७. आकाश ना ते बे प्रदेशज, प्रमुख ऊपर जे रह्या ।
प्रदेश-सहितज खेत्र थी ए, अनता पुद्गल कह्या ।।
५८. आकाश नो परदेश जे इक, तेह अवगाही रह्या ।
प्रदेश-रहित ए खेत्र थी, अनता पुद्गल कह्या ।।
५९. बे समय प्रमुखज स्थिति ना जे, सप्रदेशी जाणियै ।
इक समय स्थिति ना अप्रदेशी, काल थी पहिछाणियै ।।
६०. गुण दोय आदि कृष्णादि कहिये, सप्रदेशी न्याव थी ।
जे एक गुण कालादि वर्णे, अप्रदेशी भाव थी ।।
६१. हिवै द्रव्य जे अप्रदेशिक, खेत्र काल रु भाव थी ।
अप्रदेशादिकपणा प्रति, निरूपण ओछाव थी ।।

६२. †जे द्रव्य थकी छै, अप्रदेशी सुविशेषि ।
ते खेत्र थकी पिण, निश्चेई अप्रदेशि ।।
६३. ते काल थकी पिण, हुवै कदा सप्रदेशि ।
वलि हुवै किंवारै, अप्रदेशि सुविशेषि ।।
६४. ते भाव थकी पिण, हुवै कदा सप्रदेशि ।
वलि हुवै किवारे, अप्रदेशि सुविशेषि ।।

६२ जे दव्वओ अपएसे से खेत्तओ नियमा अपएसे,

६३ कालओ सिय सपएसे सिय अपएसे,

६४ भावओ सिय सपएसे सिय अपएसे ।

६५. *जे द्रव्य थी अप्रदेशि ए, परमाणु-पुद्गल नें कह्यु ।
ते खेत्र थी अप्रदेशि निश्चै, एक परदेशे रह्यु ।।
६६. जे द्रव्य थी अप्रदेशि ए, परमाणु-पुद्गल नें कह्यु ।
ते काल थी सप्रदेशि, बे समयादि स्थितिकपणु लह्यु ।।
६७. जे द्रव्य थी अप्रदेशि ए, परमाणु-पुद्गल नें कह्यु ।
ते काल थी अप्रदेशि इम, इक समय स्थितिकपणु लह्यु ।।
६८. जे द्रव्य थी अप्रदेशि ए, परमाणु-पुद्गल प्रति लहै ।
ते भाव थी सप्रदेशि इम, बे आदि गुण कृष्णादि है ।।

---

*लय : पूज मोटा भाजै टोटा
†लय : नमू अनन्त चोवीसी

६९. जे द्रव्य थी अप्रदेशि ए, परमाणु-पुद्गल प्रति लहै।
ते भाव थी अप्रदेशि इम गुण, एक कृष्णादिक रहै।।

७०. *जे खेत्र थकी छै, अप्रदेशि सुविशेषि।
ते द्रव्य थकी सिय, सप्रदेशि अप्रदेशि।।

७१. भजनाज काल थी, भाव थी भजना होय।
जिम खेत्र थकी तिम, काल भाव थी जोय।।

७२. †जे खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु।
ते द्रव्य थी सिय सप्रदेशी, खध द्रव्य भणी कह्यु।।

७३. जे खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्युं।
ते द्रव्य थी सिय अप्रदेशी, एह परमाणू कह्युं।।

७४. जे खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु।
ते काल थी सप्रदेशि वे समयादि स्थितिकपणु लह्यु।।

७५. जे खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु।
ते काल थी अप्रदेशि छै, इक समय स्थितिकपणुं लह्यु।।

७६. जे क्षेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु।
ते भाव थी सप्रदेशि वे गुण आदि कृष्णादिक लह्युं।।

७७. जे क्षेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु।
ते भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादिक लह्यु।।

७८. *जिम खेत्र थकी जे, आख्यो छै विरतत।
इम काल थकी छै, भाव थकी पिण हुत।।

७९. †जे काल थी अप्रदेशि छै, इक समय स्थितिकपणे रह्यु।
ते द्रव्य थी सिय सप्रदेशि, द्रव्य खध भणी कह्यु।।

८०. जे काल थी अप्रदेशि छै, इक समय स्थितिकपणे रह्युं।
ते द्रव्य थी अप्रदेशि छै, परमाणु-पुद्गल नें कह्यु।।

८१. जे काल थी अप्रदेशि छै, इक समय स्थितिकपणे रह्यु।
ते खेत्र थी सप्रदेशि इम, वे आदि परदेशे कह्यु।।

८२. जे काल थी अप्रदेशि छै, इक समय स्थितिकपणे कह्यु।
ते खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु।।

८३. जे काल थी अप्रदेशि छै, इक समय स्थितिकपणे रह्यु।
ते भाव थी सप्रदेशि वे गुण कृष्ण नीलादिक कह्यु।।

८४. जे काल थी अप्रदेशि छै, इक समय स्थितिकपणें रह्यु।
ते भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादी कह्यु।।

८५. जे भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादी रह्यु।
ते द्रव्य थी सप्रदेशि छे इम, खध द्रव्य भणी कह्यु।।

७०. जे खेत्तओ अपएसे से दव्वओ सिय सपएसे सिय अपएसे,

७१. कालओ भयणाए, भावओ भयणाए।
जहा खेत्तओ एवं कालओ, भावओ।

*लय : नमू अनन्त चौबीसी
†लय : पूज मोटा भांजे..

८६. जे भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादी रह्य‍ु ।
ते द्रव्य थी अप्रदेशि छै, परमाणु-पुद्गल नै कह्यु ॥
८७. जे भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादी कह्यु ।
ते खेत्र थी सप्रदेशि इम, बे आदि परदेशे रह्यु ॥
८८. जे भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादी कह्यु ।
ते खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु ॥
८९. जे भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादिक रह्यु ।
ते काल थी सप्रदेशि बे समयादि स्थितिकपणु लह्यु ।
९०. जे भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादिक रह्यु ।
ते काल थी अप्रदेशि इम, इक समय स्थितिकपणु लह्यु ॥

९१. *जे द्रव्य थकी छै, सप्रदेशि सुविशेषि ।
ए खेत्र थकी सिय सप्रदेशि अप्रदेशि ॥
९२. इम काल थकी पिण, भाव थकी पिण एम ।
हिव जूजुओ निर्णय, साभलजो धर प्रेम ॥

९१ जे दव्वओ सपएसे से खेत्तओ सिय सपएसे सिय अपएसे ।
९२ एव कालओ, भावओ वि ।

९३. †जे द्रव्य थी सप्रदेशि खध, दुपदेसियादिक नै कह्यु ।
ते खेत्र थी सप्रदेशि इम, बे आदि परदेशे रह्यु ॥
९४. जे द्रव्य थी सप्रदेशि खध, दुपदेसियादिक नै कह्यु ।
ते खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु ॥
९५. जे द्रव्य थी सप्रदेशि खध, दुपदेसियादिक नै कह्यु ।
ते काल थी सप्रदेशि बे समयादि स्थितिकपणु लह्यु ॥
९६. जे द्रव्य थी सप्रदेशि खध, दुपदेसियादिक नै कह्यु ।
ते काल थी अप्रदेशि इम, इक समय स्थितिकपणु लह्यु ॥
९७. जे द्रव्य थी सप्रदेशि खध, दुपदेसियादिक नैं कह्यु ।
ते भाव थी सप्रदेशि बे गुण आदि कृष्णादिक रह्यु ॥
९८. जे द्रव्य थी सप्रदेशि खध, दुपदेसियादिक नै कह्यु ।
भाव थी अप्रदेशि इम गुण एक कृष्णादिक रह्यु ॥

९९. *जे खेत्र थकी छै, सप्रदेशि सुविशेषि ।
ते द्रव्य थी कहियै, निश्चेई सप्रदेशि ॥
१००. वलि काल थी भजना, भाव थि भजना होय ।
जिम द्रव्य थकी तिम, काल भाव थी जोय ॥

९९ जे खेत्तओ सपएसे से दव्वओ नियमा सपएसे,
१०० कालओ भयणाए, भावओ भयणाए ।
जहा दव्वओ तहा कालओ, भावओ वि ।
(श० ५।२०५)

१०१. †जे खेत्र थी सप्रदेशि बे आकाश परदेशे रह्यु ।
ते द्रव्य थी सप्रदेशि निश्चै, खध अवगाही कह्यु ॥
१०२. द्रव्य अप्रदेशिक प्रमाणु, इक आकाश विषे रहै ।
ते भणी खेत्र थि सप्रदेशे, खध नु रहिवू लहै ॥

*लय : नमू अनन्त चौबीसी
†लय पूज मोटा भांजै.. ...

१०३. जे खेत्र थी सप्रदेशि वे आकाश परदेशे रह्या ।
ते काल थी सप्रदेशि वे समयादि स्थितिरूपणे कह्या ।।

१०४. जे खेत्र थी सप्रदेशि वे आकाश परदेशे रह्या ।
ते काल थी अप्रदेशि इम, इक समय स्थितिरूपणे कह्या ।।

१०५. जे खेत्र थी सप्रदेशि वे आकाश परदेशे रह्या ।
ते भाव थी सप्रदेशि वे गुण आदि कृष्णादिक कह्या ।।

१०६. जे खेत्र थी सप्रदेशि वे आकाश परदेशे रह्या ।
ते भाव थी अप्रदेशि इम, गुण एक कृष्णादिक कह्या ।।

१०७. जे काल थी सप्रदेशि वे समयादि स्थितिरूपणे रह्या ।
ते द्रव्य थी सप्रदेशि खंध, दुपदेसियादिक नें कह्या ।।

१०८. जे काल थी सप्रदेशि वे समयादि स्थितिरूपणे रह्या ।
ते द्रव्य थी अप्रदेशि इम परमाणु-पुद्गल नें कह्या ।।

१०९. जे काल थी सप्रदेशि वे समयादि स्थितिरूपणे कह्या ।
ते खेत्र थी सप्रदेशि वे आकाश परदेशे रह्या ।।

११०. जे काल थी सप्रदेशि वे समयादि स्थितिरूपणे कह्या ।
ते खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्या ।।

१११. जे काल थी सप्रदेशि वे समयादि स्थितिरूपणे रह्या ।
ते भाव थी सप्रदेशि वे गुण आदि कृष्णादिक कह्या ।।

११२. जे काल थी सप्रदेशि वे समयादि स्थितिरूपणे रह्या ।
ते भाव थी अप्रदेशि इम गुण एक कृष्णादिक कह्या ।।

११३. जे भाव थी सप्रदेशि वे गुण आदि कृष्णादिक रह्या ।
ते द्रव्य थी सप्रदेशि खंध, दुपदेसियादिक नें कह्या ।।

११४. जे भाव थी सप्रदेशि वे गुण आदि कृष्णादिक रह्या ।
ते द्रव्य थी अप्रदेशि इम, परमाणु-पुद्गल नें कह्या ।।

११५. जे भाव थी सप्रदेशि वे गुण आदि कृष्णादिक कह्या ।
ते खेत्र थी सप्रदेशि वे आकाश परदेशे रह्या ।।

११६. जे भाव थी सप्रदेशि वे गुण आदि कृष्णादिक कह्या ।
ते खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्या ।।

११७. जे भाव थी सप्रदेशि वे गुण आदि कृष्णादिक रह्या ।
ते काल थी सप्रदेशि वे समयादि स्थितिरूपणें लह्या ।।

११८. जे भाव थी सप्रदेशि वे गुण आदि कृष्णादिक रह्या ।
ते काल थी अप्रदेशि इम, इक समय स्थितिरूपणे लह्या ।।

दूहा

११९. अथ एहनुं द्रव्य प्रमुख थी, सप्रदेश नु तेह ।
वलि ते अप्रदेशी तणो, अल्पबहुत्व कहेह ।।

११९ अथैषामेव द्रव्यादित सप्रदेशाप्रदेशानामल्पबहुत्व-
विभागमाह— (वृ० प० २४१)

१२०. *एहनो हे भगवत! द्रव्य थकी सुविशेष ।
खेत्र काल भाव थी, सप्रदेश अप्रदेश ।।

१२१. कुण कुण थी थोड़ा, वलि बहुत्व बखाण ।
वलि तुल्य बरोबर, विशेषाधिक पहिछाण ।।

१२२. हे नारद-पुत्र! पुद्गल तेह अशेषा ।
सर्व थी थोडा है, भाव थकी अप्रदेशा ।।

१२३. †द्रव्य विषे वे आदि गुण थी, अनत गुण कृष्णादि वहु ।
एक गुण कृष्णादि थोडा, ते माटे ए अल्पहु ।।

१२४. *तेह थकी काल थी, अप्रदेशी पहिछाण ।
असखेज्ज गुणा छै, तास न्याय इम जाण ।।

१२५. †परिणाम बाहुल एम वृत्तौ, तास अर्थ वखाणियै ।
जे समय वर्ण गध रस फरस, सघात भेद पिछाणियै ।।

१२६. सूक्ष्म बादरपणू आदि, परिणाम अन्यज पामतु ।
ते समय काल थी अप्रदेशि, कह्य‍ु समय इक स्थिति हतु ।।

१२७. जे अन्य परिणामे परिणमै, तेह समय विषे सही ।
काल थी अप्रदेशि कहियै, ते माटे ए अधिक ही ।।

## यतनी

१२८. इम भाव वर्णादि परिणाम, पूर्वे कह्या ते रूपे ताम ।
द्रव्य परमाणु आदिक माहि, काल थी अप्रदेशि है ताहि ।।

१२९. खेत्र आश्री एक प्रदेश, आदि देइ अवगाढ विशेप ।
अन्य स्थान गमन आश्री जन्न, काल थी अप्रदेशि निप्पन्न ।।

१३०. सकोच विकोच अवगाण, ते आश्रयी पहिछाण ।
काल थी अप्रदेशि होय, तसु एक समय स्थिति जोय ।।

१३१. तथा सूक्ष्म वादर जोय, वलि अस्थिर स्थिर अवलोय ।
ते आश्री पिण सुविशेष, हुवै काल थकी अप्रदेश ।।

१३२. वलि सेज निरेज है ताम, वलि शब्दादिक परिणाम ।
इत्यादिक आश्री सुविशेष, नीपना काल थी अप्रदेश ।।

१३३. भाव थी अप्रदेशि थी तेह, असखेज गुणा छै एह ।
रह्या द्रव्य प्रमुख विषे सोय, परिणाम-बहुल अवलोय ।।

१२० एएसि णं भंते! पोग्गलाणं दव्वादेसेणं, खेत्तादेसेणं, कालादेसेणं, भावादेसेणं सपएसाणं अपएसाण य ।

१२१ कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

१२२ नारयपुत्ता! सव्वत्थोवा पोग्गला भावादेसेणं अपएसा,

१२४ कालादेसेणं अपएसा असंखेज्जगुणा,

१२५-१२७ यो हि यस्मिन् समये यद्वर्णगन्धरसस्पर्शसङ्घातभेदसूक्ष्मत्वबादरत्वादिपरिणामान्तरमापन्न स तस्मिन् समये तदपेक्षया कालतोऽप्रदेश उच्यते, तत्र चैकसमयस्थितिरित्यर्थ, परिणामांश्च बहव इति प्रतिपरिणाम कालाप्रदेशसभवात्तद्बहुत्वमिति । (वृ० प० २४३)

---

*लय : नमू अनन्त चोवीसी
†लय : पूज मोटा भांजे……

वा०—भाव थकी जे अप्रदेशी एक गुण कृष्णपणादिक हुवै ने काल थकी बे प्रकार पिण—सप्रदेशी अनै अप्रदेशी, तथा भाव करकै दोय गुण प्रमुख अनत गुण पर्यंत छै तिके पिण काल थी द्विविध हुवै—सप्रदेशी नै अप्रदेशी। एक गुण कालो, दोय गुण कालादिक जे गुण तेहना स्थानक नै विषे ते मध्ये एक-एक गुण नां स्थानक नै विषे काल थकी अप्रदेशी नीं एक-एक राशि हुई। ते भणी अनतपणां थकी गुण नां स्थानकनी राशि अनतीईज काल थकी अप्रदेशी राशि हुई। हिवै प्रेरक बोल्यो—इम ए जो एकिका गुण नै स्थानके काल थकी अप्रदेशी राशि तो अनतगुणा कहियै, असंखगुणा केम? अत्रोत्तरं—गुरु कहै—एहनों ए अभिप्राय छै—यद्यपि अनत गुण कालपणादिक नीं अनती राशि छै तो पिण एक गुण कृष्णपणादिक नैं अनंतमे भागईज ते वर्त्तै छै। ते भणी काल थकी अप्रदेशी कूं अनत गुणपणैं पिण भाव थकी अप्रदेशी थकी ए काल थी अप्रदेशी असख्यात गुणोईज हुवै।

वा०—भावतो येऽप्रदेशा एकगुणकालत्वादयो भवन्ति ते कालतो द्विविधा अपि भवन्ति—सप्रदेशा अप्रदेशाश्चेत्यर्थ, तथा भावेन द्विगुणादयोऽप्यनन्तगुणान्ताः 'एव' मिति द्विविधा अपि भवन्ति, ततश्च एकगुणकालाद् द्विगुणकालादिषु गुणस्थानकेषु मध्ये एकैकस्मिन् गुणस्थानके कालाप्रदेशानामेकैको राशिर्भवति, ततश्चानन्तत्वाद् गुणस्थानकराशीनामनन्ता एव कालाप्रदेशराशयो भवन्ति। अथ प्रेरक.—एवमिति—यदि प्रतिगुणस्थानक कालाप्रदेशराशयोऽभिधीयन्त इति, अत्रोत्तरम्—अयमभिप्राय.—यद्यप्यनन्तगुणकालत्वादीनामनन्ता राशयस्तयाऽप्येकगुणकालत्वादीनामनन्तभाग एव ते वर्त्तन्त इति न तद्द्वारेण कालाप्रदेशानामनन्तगुणत्व अपि त्वसख्यातगुणत्वमेवेति ॥

(वृ० प० २४३)

१३४. *तेह थकी द्रव्य थी, अप्रदेशि अवलोय।
असंखेज्जगुणा छै, ते परमाणू जोय॥

१३४. दव्वादेसेण अपएसा असखेज्जगुणा,

## यतनी

१३५. अनत प्रदेशी खध द्रव्य ताय, तेहथी अनत गुणा अधिकाय।
परमाणु-पुद्गल जाण, ए सूत्र तणो छै वाण॥
१३६. तिण कारण ए अवलोय, काल थी अप्रदेशि थी जोय।
द्रव्य थी अप्रदेशि ताय, असखेज्ज गुणा अधिकाय॥

१३७. *द्रव्य थी अप्रदेशि थी, खेत्र थकी अप्रदेश।
असंखेज्जगुणा छै, रह्या एक आकाश-प्रदेश॥

१३७. खेत्तादेसेणं अपएसा असखेज्जगुणा,

१३८. तेहथी खेत्र थकी जे, सप्रदेशी सुविशेष।
असंखेज्जगुणा छै, रह्या अनेक आकाश-प्रदेश॥

१३८ खेत्तादेसेणं चेव सपएसा असखेज्जगुणा,

१३९. तेहथी द्रव्य थकी जे, सप्रदेशी सुविचार।
विसेसाहिया आख्या, ए खंध द्रव्य प्रकार॥

१३९. दव्वादेसेणं सपएसा विसेसाहिया,

१४०. तेहथी काल थकी जे, सप्रदेशी अवलोय।
विशेषाधिक आख्या, अनेक समय स्थिति जोय॥

१४० कालादेसेणं सपएसा विसेसाहिया,

१४१. तेहथी भाव थकी जे, सप्रदेशि जे लाधि।
विसेसाधिकपणैं छै, अनेक गुण वर्णादि॥

१४१ भावादेसेणं सपएसा विसेसाहिया।

(श० ५।२०६)

१४२. नारदपुत्र तिवारै, निर्ग्रंथी-पुत्र प्रति सार।
वंदै वच स्तुति, नमस्कार सुखकार॥

१४२ तए णं से नारयपुत्ते अणगारे नियंठिपुत्त अणगार वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता,

१४३. ए अर्थ प्रतै मुनि, प्रवर रीत धर प्यार।
अति विनय करीनैं, खमावै वारूवार॥

१४३. एयमट्ठं सम्म विणएण भुज्जो-भुज्जो खामेति,

*लय : नमूं अनन्त चौबीसी

१४४ वर सजम तप करि, यावत विचरै विशेष ।
ए पचम शतक ना, अष्टमुद्देशा नों देश ।।

१४४ खामेत्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ ।
(श० ५।२०७)

१४५. ए ढाल बाणूमी, भिक्षु भारीमाल ऋषिराय ।
'जय-जश' सुख-संपति, वर वृद्धि हरष सवाय ।।

## ढाल : ९३

### दूहा

१. पूर्वे पुद्‌गल द्रव्य कह्या, ते पुद्‌गल नैं ताय ।
जीव ग्रहै तिह कारणें, जीव विचार कहाय ।।

१ अनन्तर पुद्‌गला निरूपितास्ते च जीवोपग्राहिण इति जीवाश्चिन्तयन्नाह— (वृ० प० २४४)

२. हे भदत ! इह विध कही, भगवत गोतम सार ।
प्रभु वंदी नें जाव इम, प्रश्न करै धर प्यार ।।

२. भतेत्ति ! भगव गोयमे समण भगव महावीर वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

*धिन प्रभु वीरजी, धिन गुणहीर जी ।
धिन ज्यारा शीष जी, गोयम गणईश जी, नमू निशि-दीसजी ।।
(ध्रुपद)

३. जीव वहु प्रभु ! वधै राशि थी, कै राशि थी जीव घटाय बे ।
के जेतला छै तेतलाज रहै छै ? ए अवट्ठिया कहिवाय बे ।।

३ जीवा ण भते ! किं वड्ढति ? हायति ? अवट्ठिया ?

४. जिन कहै जीव वधै न राशि थी, राशि थकी न घटाय ।
जेतला छै तेतलाज रहै छै, इण मे सिद्ध ससारी विहु आय ।।

४ गोयमा ! जीवा नो वड्ढति, नो हायति, अवट्ठिया ।
(श० ५।२०८)

५. हे प्रभु ! नेरइया वधै राशि थी ? राशि थी नेरइया घटाय ।
जेतला छै तेतलाज रहै छै ? ए अवट्ठिया छै ताय ?

५ नेरइया ण भते ! किं वड्ढति ? हायति ? अवट्ठिया ?

६. जिन कहै नेरइया वधै राशि थी, ओछा पिण राशि थी होय ।
अवट्ठिया पिण रहै नेरइया, इम जाव वैमानिक जोय ।।

६ गोयमा ! नेरइया वड्ढति वि, हायति वि, अवट्ठिया वि । (श० ५।२०९)
जहा नेरइया एवं जाव वेमाणिया । (श० ५।२१०)

७. सिद्धा रो प्रश्न कियां जिन भाख्यो, सिद्ध वधै न घटाय ।
विरह पड़े जव रहै अवट्ठिया, छै जितराईज पाय ।।

७ सिद्धाण भते ! पुच्छा ।
गोयमा ! सिद्धा वड्ढति, नो हायति, अवट्ठिया वि ।
(श० ५।२११)

८ हे प्रभु ! वहु वचने ए जीवा, रहै अवट्ठिया किता काल ?
जिन कहै अवट्ठिया सर्वकाल मैं, छै जितरा रहै न्हाल ।।

८ जीवा ण भते ! केवतिय काल अवट्ठिया ?
गोयमा ! सव्वद्ध । (श० ५।२१२)

९. नेरइया केतलो काल वधै प्रभु ! जघन्य समय इक भाग ।
उत्कृष्टो ए आवलिका नों, असख्यातमो भाग ।।

९ नेरइया ण भते ! केवतिय काल वड्ढति ?
गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण आवलियाए असखेज्जइभाग । (श० ५।२१३)

१०. काल एतलो घटै नेरइया, जघन्य समय इक भाग ।
उत्कृष्टो ए आवलिका नों, असख्यातमो भाग ।।

१०. एव हायति वि । (श० ५/२१४)

*लय : धिन प्रभु राम जी……

११. प्रभु ! नेरइया केतलो काल अवट्ठिया ? तब भाखै जगदीस ।
जघन्य थकी तो एक समय छै, उत्कृष्ट मुहूर्त्त चउवीस ।।

११ नेरइया ण भंते ! केवतियं कालं अवट्ठिया ?
गोयमा ! जहण्णेण एग समयं, उक्कोसेणं चउवीसं मुहुत्ता । (श० ५/२१५)

**यतनी**

१२. समकाले सातूं नरक मझार, ऊपजवा नीकलवा नों विचार ।
विहु नों साथै विरह जिवार, पडियो उत्कृष्ट मुहूर्त्त बार ।।
१३. जद द्वादश मुहूर्त्त ताई, कोइ ऊपजियो पिण नांही ।
वलि नीकलियो नहि कोय, विहु विरह साथै जद होय ।।
१४ पछै द्वादश मुहूर्त्त ताई, ऊपना जे समय नरक माही ।
तिण समय तेता निकलत, इम चउवीस मुहुर्त्त हुंत ।।
१५ इम चउवीस मुहुर्त्त जोय, वृद्धि नैं वलि हानि न होय ।
तिण सूं अवट्ठिया काल ताहि, न वधै घटै गिणती माहि ।।

१२,१३ सप्तस्वपि पृथिवीषु द्वादशमुहूर्त्तान् यावन्न कोऽप्युत्पद्यते उद्वर्त्तते वा, उत्कृष्टतो विरहकालस्यैवरूपत्वात्, (वृ० प० २४५)

१४,१५. अन्येषु पुनर्द्वादशमुहूर्त्तेषु यावन्त उत्पद्यन्ते तावन्त एवोद्वर्त्तन्त इत्येवं चतुर्विंशतिमुहूर्त्तान् यावन्नारकाणामेकपरिमाणत्वादवस्थितत्वं वृद्धिहान्योरभाव इत्यर्थः, (वृ० प० २४५)

१६. *इम सातूं नरक नैं जूजुइ कहिवी, वधै घटै ते काल ।
अवट्ठिया जघन्य एक समय छे, उत्कृष्ट मे णवरं न्हाल ।।
१७. रत्नप्रभा विरह चोवीस मुहूर्त्त, पछै चोवीस मुहूर्त्त जगीस ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, इम अवट्ठिया मुहूर्त्त अडतालीस ।।
१८. सूत्र पन्नवणा छट्ठा पद मे, विरहकाल कह्यो ताम ।
तेह थकी दुगुणो काल कहियें, अवट्ठिया नो आम ।।

१६. एवं सत्तसु वि पुढवीसु 'वड्ढति, हायंति' भाणियव्वं, नवरं अवट्ठिएसु इमं नाणत्तं,
१७. रयणप्पभाए पुढवीए अडयालीसं मुहुत्ता,

१८ एवं रत्नप्रभादिषु यो यत्रोत्पादोद्वर्त्तनाविरह-कालश्चतुर्विंशतिमुहूर्त्तादिको व्युत्क्रान्तिपदेऽभिहितः स तत्र तेषु तत्तुल्यस्य समसंख्यानामुत्पादोद्वर्त्तनाकालस्य मीलनाद् द्विगुणितः सन्नवस्थितकालोऽष्टचत्वारिंशन्मुहूर्त्तादिकः सूत्रोक्तो भवति ।

१९. विरह सक्कर नो सप्त अहोनिश, पछै सप्त अहोनिश ख्यात ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, अवट्ठिया चउद दिनरात ।।

१९. सक्करप्पभाए चोद्दस राइंदिया, (वृ० प० २४५)

२०. वालुप्रभा नों पनरै दिवस विरह छै, पछै पनर दिवस लग तास ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, इम अवट्ठिया इक मास ।।

२०. वालुयप्पभाए मासं,

२१. पंकप्रभा विरह एक मास नों, पछै एक मास वलि तास ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, इम अवट्ठिया इक मास ।।

२१ पंकप्पभाए दो मासा,

२२. धूमप्रभा मे विरह दोय मास नो, पछै दोय मास वलि तास ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकले, इम अवट्ठिया चउमास ।।

२२ धूमप्पभाए चत्तारि मासा,

२३. तमप्रभा मे विरह च्यार मास नो च्यार मास वलि तास ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, इम अवट्ठिया अठ मास ।।

२३ तमाए अट्ठ मासा,

२४. नरक सातमी मे विरह मास षट्, पछै वली षट्मास ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, इम अवट्ठिया इक वास ।।

२४ तमतमाए बारस मासा । (श० ५।२१६)

२५. असुरकुमार आदि भवनपति दस, वधै घटै नरक जेम ।
अवट्ठिया जघन्य एक समय छै, उत्कृष्ट सुणो धर प्रेम ।।
२६. दस भवनपति विरह चोवीस मुहूर्त्त, वलि मुहूर्त्त चउवीस ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, अवट्ठिया मुहूर्त्त अड़तालीस ।।

२५,२६ असुरकुमारा वि वड्ढंति, हायंति जहा नेरइया । अवट्ठिया जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अट्ठचत्तालीसं मुहुत्ता । (श० ५/२१७)
एवं दसविहा वि । (श० ५।२१८)

*लय : धिन प्रभु रामजी

२७. एकेंद्री वधै घटै अवट्ठिया त्रिहुं, जघन्य समय इक भाग ।
उत्कृष्टो ए आवलिका नो, असख्यातमो भाग ।।

२७ एगिंदिया वड्ढंति वि, हायंति वि, अवट्ठिया वि । एएहिं तिहि वि जहण्णेण एक्कं समयं, उक्कोसेण आवलियाए असखेज्जइभाग । (श० ५।२१६)

### सोरठा

२८. नहिं विरह एकेद्री मांय, वधै घटै वलि अवट्ठिया ।
ए तीनू कहिवाय, निसुणो न्यायज तेहनों ।।

२९. एकेद्री रै माहि, घणा ऊपजै जे समय ।
अल्प नीकलै ताहि, वृद्धि कहीजै ते समय ।।

२९ 'एगिंदिया वड्ढति वि त्ति' तेषु विरहाभावेऽपि वहुतराणामुत्पादादल्पतराणां चोद्वर्त्तनात्, (वृ० प० २४५)

३०. तथा एकेद्री माहि, अल्प ऊपजै जे समय ।
घणा नीकलै ताहि, घटै हाणि कहिजै तदा ।।

३० 'हायति वि' त्ति वहुतराणामुद्वर्त्तनादल्पतराणा चोत्पादाद् । (वृ० प० २४५)

३१. तथा एकेद्री माय, सरिखा उपजै नीकलै ।
ते समये कहिवाय, वृद्धि हाणि नहि, अवट्ठिया ।।

३१ 'अवट्ठिया वि' त्ति तुल्यानामुत्पादादुद्वर्त्तनाच्चेति । (वृ० प० २४५)

३२. *बेइन्द्री वधै घटै इमहिज कहिवा, अवट्ठिया इम होय ।
जघन्य समय इक नै उत्कृष्टो अतरमुहूर्त्त दोय ।।

३२ वेइंदिया 'वड्ढति, हायति' तहेव, अवट्ठिया जहण्णेण एक्क समयं, उक्कोसेणं दो अतोमुहुत्ता । (श० ५।२२०)

३३. †एक अतरमुहूर्त्त विरह, अतरमुहूर्त्त दूसरै ।
ऊपजै जेताज निकलै, अवट्ठिया दुगुणतरै ।।

३३. एकमन्तर्मुहूर्त्तं विरहकालो द्वितीय तु समानानामुत्पादोद्वर्त्तनकाल इति । (वृ० प० २४५)

३४. *इमहिज जाव चउरिंद्री कहिवा, शेष रह्या ते न्हाल ।
वधै घटै ते तिमहिज भणवा, हिवै अवट्ठिया नो काल ।।

३४ एव जाव चउरिंदिया । (श० ५।२२१) अवसेसा सव्वे 'वड्ढति, हायति तहेव, अवट्ठियाण नाणत्त इम,

३५. विरह सर्मूच्छिम तिर्यच पचेन्द्री, इक अतरमुहूर्त्त होय ।
तेहथी दुगुणो काल अवट्ठिया नो, अतरमुहूर्त्त दोय ।।

३५. संमुच्छिमपचिंदियतिरिक्खजोणियाणं दो अंतोमुहुत्ता;

३६. गर्भेज तिर्यच में विरह काल थी, मुहूर्त्त वार जगीस ।
दुगुणो काल है अवट्ठिया नों, कह्या मुहूर्त्त चउवीस ।।

३६. गब्भवक्कतियाणं चउव्वीसं मुहुत्ता,

३७. विरह सर्मूच्छिम मनुष्य मांहे जे, कह्या मुहूर्त्त चउवीस ।
दुगुणो काल है अवट्ठिया नों, मुहूर्त्त अडतालीस ।।

३७ समुच्छिममणुस्साण अट्ठचत्तालीसं मुहुत्ता,

३८. बार मुहूर्त्त विरह गर्भेज मनुष्ये, वलि मुहूर्त्त वार जगीस ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, अवट्ठिया मुहूर्त्त चउवीस ।।

३८ गब्भवक्कतियमणुस्साण चउवीस मुहुत्ता,

३९. व्यतर जोतिषि सुधर्म ईशाणे, विरह मुहूर्त्त चउवीस ।
दुगुणो काल है अवट्ठिया नो, मुहूर्त्त अड़तालीस ।।

३९ वाणमतर-जोतिसिय-सोहम्मीसाणेसु अट्ठचत्तालीस मुहुत्ता,

४०. तृतीय कल्प विरह नव अहोनिश, ऊपर मुहूर्त्त वीस ।
दुगुणो काल है अवट्ठिया नो, निशि अठारै मुहूर्त्त चालीस ।।

४० सणकुमारे अट्ठारस राइदियाइं चत्तालीस य मुहुत्ता ।

४१. माहिंद्र द्वादश दिन दस मुहूर्त्त, विरह कह्यो जगदीश ।
दुगुणो काल है अवट्ठिया नो, दिन चउवीस मुहूर्त्त वीस ।।

४१ माहिंदे चउवीस राइदियाइ वीस य मुहुत्ता ।

*लय : धिन प्रभु रामजी
† लय : पूज मोटा भांजे .....

४२. ब्रह्म पंचम देवलोक विरह छै, दिवस साढा बावीस ।
दुगुणो काल है अवट्ठिया नो, अहोनिशि पैंतालीस ॥

४३. लंतके विरह पैंतालीस अहनिशि, दिवस वलि पैताल ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, नेउ दिन अवट्ठिया न्हाल ॥

४४. महाशुक्र असी दिवस विरह छै, असी अहोनिश वाट ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, अवस्थिति दिन एक सौ साठ ॥

४५. अष्टम कल्पे विरह दिवस सौ, दिवस वलो सौ तित्थ ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, दोय सौ दिन अवस्थित्त ॥

४६. नवमे दशमें विरह मास सख्याता, तेहथी दुगुणा मास ।
अवट्ठिया नों काल कह्यो छै, मास सख्याता तास ॥

४७. आरण अच्चू विरह वर्ष सख्याता, तेहथी दुगुणा वास ।
अवट्ठिया नों काल कह्यो छै, संख्याता वर्ष नी राश ॥

४८. इमहिज नव ग्रीवेयक माहै, पिण वृत्ति माहै कह्यो एम ।
त्रिक त्रिहूं नों जूजुओ लेखो, साभलजो धर प्रेम ॥

४९. हेठली त्रिक वर्ष सख्याता सौ, मध्यमे संख्य हजार ।
ऊपरली त्रिक वर्ष सख्यात लक्ष, विरहकाल सुविचार ॥

५०. विरह अद्धा थी कालज दुगुणो, अवट्ठिया नो जान ।
विरह जेतलु काल पछै पिण, उत्पत्ति चवन समान ॥

५१. विरह अनुत्तर च्यार विषे छै, वर्ष असख हजार ।
तेहथी दुगुणो काल कहीजै, अवट्ठिया नु विचार ॥

५२. विरह काल सर्वार्थसिद्ध मे, पल्य नों सख्यातमो भाग ।
तेहथी दुगुणो काल कहीजै, अवट्ठिया नु माग ॥

५३. वधै घटै इक समय जघन्य थी, उत्कर्षे करि ताय ।
आवलिका नों असख्यातमों भाग कह्यो जिनराय ॥

५४. अवट्ठिया नुं काल जे पूर्वे, पभण्यू तेम पिछाण ।
आंख्यू ए सगलो सूत्रे करि, श्री जिन वचन प्रमाण ॥

५५ काल केतलु सिद्ध वधै प्रभु ! जिन भाखै शिव वाट ।
जघन्य थकी तो एक समय लग, उत्कर्ष समया आठ ॥

५६. काल केतलु अवट्ठिया नु ? भाखै जिन गुणरास ।
जघन्य थकी तो एक समय छै, उत्कृष्टो षट मास ॥

५७. †उत्कृष्टो विरहो मास षट नो, अवट्ठिया इतरो सही ।
पछै वाधै ना घटै इम, अवस्थित दुगुणो नही ॥

**सोरठा**

५८. हिव जीवादिक जेह, तेहनें इज अन्य भंग करि ।
गोयम प्रश्न करेह, चित्त लगाई साभलो ॥

४२. बंभलोए पंचचत्तालीसं राइंदियाइं,

४३ लंतए नउइं राइंदियाइं,

४४ महासुक्के सट्ठिं राइंदियसयं,

४५ सहस्सारे दो राइंदियसयाइं,

४६. आणयपाणयाणं संखेज्जा मासा,

४७. आरणच्चुयाणं संखेज्जाइं वासाइं,

४८. एवं गेवेज्जदेवाणं ।

४९ इह यद्यपि ग्रैवेयकाधस्तनत्रये संख्यातानि वर्षाणां शतानि मध्यमे सहस्राणि उपरिमे लक्षाणि विरह उच्यते । (वृ० प० २४५)

५१. विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियाणं असंखेज्जाइं वाससहस्साइं ।

५२ सव्वट्ठसिद्धे पलिओवमस्स संखेज्जइभागो ।

५३ एवं भाणियव्वं —'वड्ढंति, हायंति' जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं,

५४ 'अवट्ठियाणं जं भणियं' । (श० ५।२२२)

५५ सिद्धा णं भंते ! केवइयं कालं वड्ढंति ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अट्ठ समया । (श० ५।२२३)

५६ केवइयं कालं अवट्ठिया ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा । (श० ५।२२४)

५८. जीवादीनेव भङ्ग्यन्तरेणाह— (वृ० प० २४५)

---

† लय : पूज मोटा भांजे

५९. *वहु वच जीव स्यू सोवचया प्रभु ! वृद्धि-सहित कहिवाय ?
पूर्वं विपे अनेरा वलि ऊपजै, तिण सू उपचय-सहित कह्या ताय ।।

६०. सावचया ए हानि-सहित छै, पूर्वे छै जे माय ।
किणहिक ना नीकलवा थी ए, अपचय-सहित कहाय ।।
६१. सोवचय-सावचया तीजो, युगपत् ए वृद्धि हानि ।
ऊपजवू नीकलवू साथै, एक समय विहु जानि ।।

६२. निरुवचय-निरवचया चउथो, वृद्धि हानि विहु नाहि ।
ऊपजवो नीकलवो न हुवै, जेह काल रै माहि ।।

६३. जिन कहै जीव सोवचया नाही, सावचया नहिं थाय ।
सोवचय-सावचया पिण नही, पद इक चउथो पाय ।।

**यतनी**

६४ वृत्तिकार कहिवाय, इहा उपचय वृद्धि कहाय ।
वलि अपचय हानि निहाल, तीजे पद विहु समकाल ।।
६५. चउथै पद नही वृद्धि हानि, ते अवस्थिति पहिछानि ।
ए पद च्यारूंइ भाख्या, प्रश्न सर्व जीवा ऊपर आख्या ।।
६६. वड्ढति हायति अवट्ठिया, पूर्वे तीन पाठ ए किया ।
विहु सूत्रे कवण है फेर ? तसु उत्तर इह विधि हेर ।।
६७ पूर्वे तीन पाठ कह्या ताहि, वधै घटै अवट्ठिया माहि ।
तिहा संख्या रूप ग्रहण कीधो, गिणत प्रमाण नें मुख्य दीधो ।।
६८ द्वितीय सूत्र प्रमाण न वाछ्यू, उत्पत्ति नीकलवा मात्र इछ्यू ।
थोडा घणा तणी वाछा नाही, तिण सू न्यारो पाठ कह्यो याही ।।
६९. सोवचया सावचया ताहि, ए तीजा भागा रै माहि ।
वधै घटै अवट्ठिया आवत, तिण रो जूजुओ कहू वृत्तत ।।
७०. एक समय घणा उपजत, तिणहिज समय थोडा निकलत ।
ए तीजा भांगा रै माय, वड्ढति वधै ते इम आय ।।
७१. एक समय थोडा उपजत, तिणहिज समय घणा निकलत ।
ए तीजा भांगा रै माय, हायंति घटै ते इम आय ।।
७२ एक समय जेता उपजत, तिणहिज समय तेता निकलत ।
ए तीजा भागा रै माय, अवट्ठिया पाठ पिण आय ।।
७३ इण न्याय थकी कहिवाय, पूर्वे तीन पाठ कह्या ताय ।
इहा च्यार पाठ पहिछाण, विहु सूत्र जूजुआ जाण ।।

७४ *एगिंदिया तीजै पद कहिवा, सोवचया-सावचया भाल ।
समकाले ऊपजै नै निकलै, तिण सूं तीजै पद न्हाल ।।

* लय : धिन प्रभु रामजी

५९ जीवा णं भंते ! किं सोवचया ?
'सोपचया.' सवृद्धय. प्राक्तनेष्वन्येपामुत्पादात्
(वृ० प० २४५)

६०. सावचया ?
प्राक्तनेभ्य' केपाञ्चिदुद्वर्त्तनात् (वृ० प० २४५)
६१. सोवचया-सावचया ?
उत्पादोद्वर्त्तनाभ्या वृद्धिहान्योर्युगपद्भावात् ।
(वृ० प० २४५)

६२. निरुवचय-निरवचया ?
निरुपचयनिरपचया उत्पादोद्वर्त्तनयोरभावेन वृद्धि-हान्योरभावात् । (वृ० प० २४५)

६३. गोयमा ! जीवा नो सोवचया, नो सावचया, नो सोवचय-सावचया, निरुवचय-निरवचया ।

६४. ननूपचयो वृद्धिरपचयस्तु हानि., युगपद्द्वयाभाव-रूपश्चावस्थितत्वं, (वृ० प० २४५)

६६. एव च शब्दभेदव्यतिरेकेण कोऽनयो' सूत्रयोर्भेद ? (वृ० प० २४५)
६७. पूर्वं परिणाम (माण) मात्रमभिप्रेतम् । (वृ० प० २४६)
६८. इह तु तदनपेक्षमुत्पादोद्वर्त्तनामात्रं । (वृ० प० २४६)
६९. ततश्चेह तृतीयभङ्गके पूर्वोक्तवृद्ध्यादिविकल्पाना त्रयमपि स्यात्, (वृ० प० २४६)
७०-७२ तथाहि—वहुतरोत्पादे वृद्धिर्वहुतरोद्वर्त्तने च हानि, समोत्पादोद्वर्त्तनयोश्चावस्थितत्वमित्येव भेद इति । (वृ० प० २४६)

७४ एगिंदिया ततियपदे
सोपचयसापचया इत्यर्थः, युगपदुत्पादोद्वर्त्तनाभ्या वृद्धिहानिभावात् । (वृ० प० २४६)

**यतनी**

७५ "प्रथम पद सोवचया कहाय, ऊपजै पिण निकलै नाय।
ते एकेन्द्री मे नहिं पाय, निरन्तर नीकलै तिण न्याय ।।

७६. दूजो पद सावचया कहाय, नीकलै पिण ऊपजै नाय।
ए पिण एकेन्द्री में नहिं पाय, निरन्तर ऊपजै तिण न्याय ।।

७७. चउथै पद ऊपजवो न होय, वलि नीकलै पिण नहिं कोय।
ए पिण एकेन्द्री में न पावत, निरन्तर ऊपजै निकलत ।।

७८. ए तीनूंइ पद नहिं होय, पद एक तीजो अवलोय।
ऊपजै नीकलै समकाल, सोवचय-सावचया न्हाल" ।।

(ज० स०)

७९. शेष उगणीस दंडक देख, पद च्यारूइ छै सुविशेख।
ऊपजवा नीकलवा नु जगीस, विरह कह्यु दडक उगणीस ।।

७९. सेसा जीवा चउहिं वि पदेहिं भाणियव्वा। (श० ५।२२५)

८०. "कदै नीकलवा नु विरह होय, तिण वेला ऊपजियो कोय।
जव सोवचया पद पाय, ऊपनो पिण नीकल्यो नाय ।।

८१. कदै ऊपजवा नु विरह होय, तिण वेला नीकलियो कोय।
जव सावचया पद पाय, नीकल्यो पिण ऊपनो नाय ।।

८२. ऊपजवा नीकलवा नु जोय, कदे विरह दोनूं नहिं होय।
सोवचय-सावचया न्हाल, ऊपनो नीकल्यो समकाल ।।

८३. ऊपजवा नीकलवा नुं जोय, कदै विरह दोनूइ होय।
निरुवचय-निरवचया ताहि, उत्पत्ति नीकलवू विहु नाहि ।।

८४. इहा उगणीस दडक माय, पद च्यारूइ इणविध पाय।
यां में विरहकाल कह्यो ताय, तिण अनुसारे आख्यो ए न्याय" ।।

(ज० स०)

८५. *हे प्रभु ! सिद्ध सोवचया पूछा ? तव भाखै जिनराय।
सिद्ध सोवचया वृद्धि-सहित छै, उपजै पिण निकलै नाय ।।

८५. सिद्धा ण भते ! पुच्छा।
गोयमा ! सिद्धा सोवचया,

८६. सावचया दूजो पद नहिं छै, चवन अभाव निहाल।
सोवचय-सावचया पिण नहिं, उत्पत्ति चवन नही समकाल ।।

८६ नो सावचया, नो सोवचय-सावचया,

८७. निरुवचय-निरवचया पिण छै, नही वृद्धि नहि हानि।
मुक्ति नु विरह हुवै तिण वेला, चउथो पद ए जानि ।।

८७. निरुवचय-निरवचया। (श० ५।२२६)

८८. प्रथम चरम पद पावै सिद्धा मे, दूजो तीजो नहिं होय।
पहिलो तो मुक्ति जावै जिण वेला, छेहलो विरह मे जोय ।।

८९. जीवा प्रभु ! निरुवचय-निरवचया, केतलो काल रहत ?
जिन भाखै सदाकाल रहै ए, वृद्धि हानि नहि हुत ।।

८९ जीवा ण भंते ! केवतिय काल निरुवचय-निरवचया ?
गोयमा ! सव्वद्ध। (श० ५।२२७)

९०. नेरइया प्रभु ! काल किता रहै, सोवचया वृद्धि माग ?
जघन्य समय इक नै उत्कृष्टो, आवलिका नों असंख भाग ।।

९० नेरइया ण भते ! केवतियं काल सोवचया ?
गोयमा ! जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभाग। (श० ५।२२८)

---

* लय : धिन प्रभु रामजी।

९१. †आवलिका ना असख भाग लग, समय-समय विष यदा ।
नरक जावै वृद्धि थावै, नीकलै नहि छै तदा ।।

९२. *सावचया पिण इमहिज कहियै, आवलिका नै ताहि ।
असख्यातमा भाग लगै निकलै, पिण कोइ उपजै नाहि ।।

९२ केवतिय काल सावचया ?
एव चेव । (श० ५।२२९)

९३. सोवचय-सावचया इमहिज आवलिका नैं न्हाल ।
असख्यातमा भाग लगै, उपजै निकले समकाल ।।

९३ केवतिय कालं सोवचय-सावचया ?
एव चेव । (श० ५।२३०)

९४. निरुवचय-निरवचया नी पूछा, जघन्य समय इक थाय ।
उत्कृष्टो रहै द्वादश मुहूर्त्त, न ऊपजै नीकलै नाय ।।

९४ केवतिय काल निरुवचय-निरवचया ?
गोयमा ! जहण्णेण एक्क समय उक्कोसेण बारस मुहुत्ता ।

**सोरठा**

९५. उत्पत्ति-विरह निहाल, वलि नीकलवा नु विरह ।
दोनूई समकाल, उत्कृष्टपणे हुवै यदा ।।

९६. *एकेद्री सर्व सोवचय-सावचया, सदाकाल ते न्हाल ।
समय-समय उपजै नीकले छै, वृद्धि हानि समकाल ।।

९६ एगिंदिया सव्वे सोवचय-सावचया सव्वद्ध ।

९७. शेष दंडक विषे धुर पद तीनू, जघन्य समय इक भाग ।
उत्कृष्टो जे आवलिका नै असख्यातमै भाग ।।

९७ सेसा सव्वे सोवचया वि, सावचया वि, सोवचय-सावचया वि, जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेण आवलियाए असखेज्जइभागं ।

**यतनी**

९८. पद त्रिहु नरक मे पाय, तिणरो पूर्वे आख्यो न्याय ।
तेहिज न्याय इहा पहिछाण, बुद्धिवत ए लेसी जाण ।।

९९. *शेष दडक विषे चौथे पद इम, जघन्य समय इक जाण ।
उत्कृष्ट पन्नवण छठा पद मे, कह्यु विरहकाल ते प्रमाण ।।

९९ अवट्ठिएहिं वक्कतिकालो भाणियव्वो ।
(श० ५।२३१)

१०० ऊपजवा नें नीकलवा नों, कदै बिहु विरह हुवै साथ ।
निरुवचय-निरवचया ते काले, ते कहू पन्नवणा थी बात ।।

१०१. जघन्य थकी तो सगले ठामे, समय एक सुविचार ।
उत्कृष्ट विरह जूओ-जूओ छै, साभलजो विस्तार ।।

१०२. समचै नरक मे ऊपजवा नु, निकलवा नु निहाल ।
बार मुहूर्त्त कदे बिहु हुवै साथै, ए निरुवचय-निरवचया काल ।।

१०२ निरयगती ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण · ?
निरयगती ण भते केवतिय काल विरहिता उव्वट्टणयाए · ? (पण्णवणा ६।१,६)

१०३. रत्नप्रभा में चउवीस मुहूर्त्त, सकर सप्त निशि तास ।
वालुप्रभा में पनरै अहनिशि, पकप्रभा इक मास ।।

१०३ रयणप्पभापुढविनेरइया ण भते ?
(प० ६।१०-१३)

१०४. धूमप्रभा मे दोय मास नो, तमप्रभा मास च्यार ।
तमतमा षट् मास उत्कृष्टो, उभय विरह अधिकार ।।

१०४. धूमप्पभापुढविनेरइया ण भते ! ··
(प० ६।१४-१६)

---

†लय : पूज मोटा भाजै
*लय : धिन प्रभु रामजी

१०५. भवनपति में चउवीस मुहूर्त्त, अतरमुहूर्त्त विकलिंदि ।
समूच्छिम-तिर्यच-पचेंद्री, इक अतरमुहूर्त्त कहिदि ॥

१०५. असुरकुमारा ण भते ! ··
(प० ६।१७,१८,२०,२१)

१०६. गर्भज-तिर्यच बारे मुहूर्त्त, मनुष्य-समुच्छिम धार ।
उत्कृष्ट विरह चउवीस मुहूर्त्त नों, गर्भज-मनुष्य मे बार ॥

१०६ गब्भवक्कतियपचेंदियतिरिक्खजोणिया ण भते! ···
(प० ६।२२-२४)

१०७. व्यतर जोतिषी पहिलै दूजे, मुहूर्त्त चउवीस चउवीस ।
सनतकुमारे नव अहोरात्रि, मुहूर्त्त वीस जगीस ॥

१०७ वाणमतराण पुच्छा ·· (प० ६।२५-२८)

१०८. माहिंद्रे द्वादश दिन दश मुहूर्त्त, ब्रह्म साढा बावीस ।
लंतक पैताली निशि महाशुक्रे, असी रात्रि नुं जगीस ॥

१०८ माहिंददेवाण पुच्छा ·· (प० ६।३०-३३)

१०९. अष्टम[1] सौ निशि आणत पाणत, मास सख्याता दृष्ट ।
आरण अच्चु वर्ष सख्याता, उभय विरह उत्कृष्ट ॥

१०९ सहस्सारदेवाण पुच्छा (प० ६।३४-३८)

११०. हेठिम त्रिक वर्ष संख्याता सौ, मझम सख्याता हजार ।
उवरिम सख्याता लाख वर्ष नों, उभय विरह सुविचार ॥

११० हेट्ठिमगेवेज्जाण पुच्छा ·· (प० ६।३९-४१)

१११. च्यार अनुत्तर पल्य तणो जे, असख्यातमो भाग ।
सर्वार्थसिद्ध पल्य तणो ए, भाग सख्यातमो लाग ॥

१११ विजयवेजयतजयतापराजियदेवाणं पुच्छा ··
(प० ६।४२,४३)

११२. ए ऊपजवा नें नीकलवा नु विरह पडै समकाल ।
तिण वेला ए चउथा पद नु, उत्कृष्ट काल निहाल ॥

११३. सिद्ध प्रभु ! किता काल सोवचया ? जघन्य समय इक जोय ।
उत्कृष्ट अष्ट समय लग आख्यो, अंतर-रहित ए होय ॥

११३ सिद्धाण भते ! केवतिय काल सोवचया ?
गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण अट्ठ समया । (श० ५।२३२)

११४. काल कितो निरुवचय-निरवचया, जघन्य समय इक सोय ।
उत्कृष्टो पट्मास काल ए, विरह-समय अवलोय ॥

११४ केवतिय काल निरुवचय-निरवचया ?
जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेण छ मासा ।
(श० ५।२३३)

११५. सेवं भंते ! अक अठावन, ए आणूमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' मगलमाल ॥

११५. सेव भते ! सेव भते ! त्ति । (श० ५।२३४)

पंचमशते अष्टमोद्देशकार्थ ॥५।८॥

## ढाल : ९४

### दूहा

१. अर्थ-जात गोतमगणी, राजगृहे वर खत ।
बहुलपणें करि पूछिया, बहुल तिहा विचरत ॥
२. सरूप राजगृहादि नु, निर्णय तत्पर तत्र ।
विस्तार नवम उद्देशके, कहियै छै हिव अत्र ॥

१,२ इद किलार्थजात गौतमो राजगृहे प्राय पृष्टवान् बहुशो भगवतस्तत्र विहारादिति राजगृहादिस्वरूप-निर्णयपरसूत्रप्रपञ्च नवमोद्देशकमाह—
(वृ० प० २४६)

[1] सहस्रार स्वर्ग

३. तिण काले नै तिण समय, जाव वदै इम ताम ।
वीर प्रतै वदी करी, विनय करी अभिराम ।।

*कृपानिधि जयजश करण जिनेन्द्र !
जी हो अतर-तिमर मिटायवा, प्रभु ! प्रगट्यो जाण दिनेन्द्र । (ध्रुपद)

३ तेण कालेणं तेणं समएणं जाव एवं वयासी—

४. जी हो ए नगर राजगृह नाम ते, प्रभु ! किणनै कहियै ताम ।
जी हो स्यू कहियै पृथ्वी भणी, काइ नगर राजगृह नाम ?

५. जी हो नगर राजगृह अप प्रतै, जाव वनस्पति लग आम ।
जी हो जेम पचमा शतक मे, कह्या सप्तमुद्देशे नाम ।।

४ किमिद भते ! नगर रायगिह ति पवुच्चइ ? किं पुढवी नगर रायगिह ति पवुच्चइ ?

५ कि आऊ नगर रायगिह ति पवुच्चइ जाव वणस्सई ? जहा एयणुद्देसए पचिंदियतिरिक्खजोणियाण वत्तव्वया तहा भाणियव्वा । (पा० टि०)
'जहा एयणुद्देसए' त्ति एजनोद्देशकोऽस्यैव पञ्चम-शतस्य सप्तम, (सू० १८६)
(वृ० प० २४६)

६. जी हो पंचेन्द्री तिर्यच नै, कह्या परिग्रह माहे जेह ।
जी हो टक कूट शिखरी गिरी, इत्यादिक सहु पाठ कहेह ।।

६ तत्र पञ्चेन्द्रियतिर्यग्वक्तव्यता 'टङ्का कूडा सेला सिहरी' त्यादिका योक्ता सा इह भणितव्येति ।
(वृ० प० २४६)

७. जी हो जाव सचित्त अरु अचित्त नै, वलि मिश्र द्रव्य नै ताय ।
जी हो नगर राजगृह एहवू, काइ कहियै इम पूछाय ।।

८. जी हो श्री जिन कहै पृथ्वी प्रतै, कहियै नगर राजगृह नाम ।
जी हो जाव सचित्त अचित्त मिश्र नो, समुदाय राजगृह ताम ।।

७ जाव सचित्ताचित्तमीसयाइ दव्वाइं नगर रायगिह ति पवुच्चइ ?

८ गोयमा ! पुढवी वि नगर रायगिह ति पवुच्चइ जाव सचित्ताचित्तमीसयाइं दव्वाइ नगर रायगिह ति पवुच्चइ । (श० ५।२३५)

९. जी हो पृथव्यादिक समुदाय छै, काइ नगर राजगृह माय ।
जी हो तेह विना राजगृह इसी, काइ शब्द प्रवृत्ति न थाय ।।

१०. जी हो किण अर्थे ? तब जिन कहै, पृथ्वी जीव अजीव स्वभाव ।
जी हो राजगृह एहवू प्रसिद्धपणै, काइ नगर नु नाम कहाव ।।

११. जी हो जाव सचित्त अरु अचित्त छे, वलि मिश्र द्रव्य समुदाय ।
जी हो जीव अजीव दोनू अछै, तिण नै नगर राजगृह कहाय ।।

१२. जी हो तिण अर्थे करि गोयमा ! जाव नगर राजगृह कहंत ।
जी हो पुद्गल ना अधिकार थी, वलि पुद्गल नु विरतत ।।

१३. जी हो हे भगवत ! निश्चै करो, दिन उद्योत निशि अधकार ?
जी हो जिन कहै हता गोयमा ! प्रभु ! किण अर्थे ए प्रकार ।।

९ पृथिव्यादिसमुदायो राजगृह, न पृथिव्यादिसमुदाया-दृते राजगृहशब्दप्रवृत्ति , (वृ० प० २४६)

१० से केणट्ठेण ? गोयमा ! पुढवी जीवा इ य, अजीवा इ य नगर रायगिह ति पवुच्चइ,

११ जाव सचित्ताचित्त-मीसयाइ दव्वाइ जीवा इ य, अजीवा इ य नगर रायगिह ति पवुच्चइ,

१२ से तेणट्ठेण त चेव । (श० ५।२३६)
पुद्गलाधिकारादिदमाह— (वृ० प० २४६)

१३ से नूण भते ! दिया उज्जोए ? राइ अधयारे ?
हता गोयमा ! दिया उज्जोए, राइ अधयारे ।
से केणट्ठेण ? (श० ५।२३७)

१४. जी हो जिन कहै दिन शुभ पुद्गला, शुभ पुद्गल परिणत होत ।
जी हो वलि रवि-किरण मिलाप थी, तिण सू दिवस विषे उद्योत ।।

१४ गोयमा ! दिया सुभा पोग्गला सुभे पोग्गलपरिणामे शुभ पुद्गलपरिणाम स चार्ककरसम्पर्कात्,
(वृ० प० २४७)

१५. जी हो रात्रि अशुभ पुद्गल हुइ, अशुभ पुद्गल नो परिणाम ।
जी हो रवि-किरणादि अभाव थी, काइ तिण अर्थे ए ताम ।।

१५ राइ असुभा पोग्गला असुभे पोग्गलपरिणामे । से तेणट्ठेण । (श० ५।२३८)

*लय . चातुर नर पोखो पात्र विशेख

१६. जी हो स्यू प्रभु ! नेरइया नै अछै, कांइ उद्योत कै अधकार ?
जी हो जिन भाखै नेरइया तणे नहि उद्योत, छै अधयार ।।

१६. नेरइयाण भंते ! किं उज्जोए ? अधयारे ?
गोयमा ! नेरइयाण नो उज्जोए, अंधयारे ।
(श० ५।२३६)

१७. जी हो किण अर्थे ? जद जिन कहै, काइ नेरइया नै तिण ठाम ।
जी हो पुद्गल अशुभ अछै घणा, काइ अशुभ पुद्गल परिणाम ।।

१७. से केणट्ठेण ?
गोयमा ! नेरइयाण असुभा पोग्गला असुभे पोग्गल-परिणामे ।

१८. जी हो खेत्र तणाज स्वभाव थी, रवि-किरणादि शुभ निमित्तभूत ।
जी हो वस्तु-प्रकाशक त्यां नही, कांइ तिण अर्थे इम ब्रूत ।।

१८. तत्क्षेत्रस्य पुद्गलशुभतानिमित्तभूतरविकरादिप्रकाशकवस्तुवर्जितत्वात्, (वृ० प० २४७)
से तेणट्ठेणं । (श० ५।२४०)

१९. जी हो हे प्रभु ! असुरकुमार नै, कांइ उद्योत कै अंधकार ?
जी हो जिन कहै तिहा उद्योत छै, पिण नहि छै तिहा अधयार ।।

१९. असुरकुमाराणं भंते ! किं उज्जोए ? अधयारे ?
गोयमा ! असुरकुमाराण उज्जोए, नो अधयारे ।
(श० ५।२४१)

२०. जी हो किण अर्थे ? तव जिन कहै, कांइ असुरकुमार नै ताय ।
जी हो शुभ पुद्गल शुभ परिणम्या, तिण अर्थे इम वाय ।।

२० से केणट्ठेण ? गोयमा ! असुरकुमाराण सुभा पोग्गला सुभे पोग्गल-परिणामे । से तेणट्ठेण ।

२१. जी हो इम जाव थणियकुमार नै, हिवै पृथ्वी अप तेउ वाय ।
जी हो वनस्पति बे० ते० इदिया, इम नरक जेम कहिवाय ।।

२१. जाव थणियकुमाराणं । (श० ५।२४२)
पुढविक्काइया जाव तेइदिया 'जहा नेरइया' ।
(श० ५।२४३)

२२. जी हो एहनां खेत्र विषे अछै, रवि-किरणादिक नो संचार ।
जी हो तो पिण चक्षु-रहीत ए, तिण सू वस्तु न देखै लिगार ।।

२३. जी हो कार्य शुभ पुद्गल तणां, ते अणकरिवै करि धार ।
जी हो पुद्गल अशुभ कह्या तसु, तिण कारण एहनै अंधार ।।

२२,२३. एषामेतत्क्षेत्रे सत्यपि रविकरादिसंपर्के एषा चक्षुरिन्द्रियाभावेन दृश्यवस्तुनो दर्शनाभावाच्छुभपुद्गलकार्याकरणेनाशुभा पुद्गला उच्यन्ते ततश्चैषामन्धकारमेवेति । (वृ० प० २४७)

२४. जी हो हे प्रभु ! चउरिंद्री तणें, कांइ उद्योत कै अधकार ?
जी हो जिन कहै एहनें उद्योत छै, वलि छे एहनें अधयार ।।

२४ चउरिंदियाणं भंते ! किं उज्जोए ? अंधयारे ?
गोयमा ! उज्जोए वि अधयारे वि ।
(श० ५।२४४)

२५. जी हो किण अर्थे ? तव जिन कहै, कांइ चउरिंद्री नैं ताय ।
जी हो पुद्गल शुभाशुभ परिणमैं, कांइ तिण अर्थे ए वाय ।।

२५ से केणट्ठेण ? गोयमा ! चउरिंदियाणं सुभासुभा य पोग्गला सुभासुभे य पोग्गलपरिणामे । से तेणट्ठेण ।
(श० ५।२४५)

२६. जी हो रवि-किरणादि स्वभाव तैं, अर्थ देखवा जोग्य जे तास ।
जी हो तसु अवबोध हेतू थकी, शुभ पुद्गल कहियै उजास ।।

२६ एषां हि चक्षु सद्भावे रविकरादिसद्भावे दृश्यार्थावबोधहेतुत्वाच्छुभा. पुद्गला , (वृ० प० २४७)

२७. जी हो रवि-किरणादि अभाव तै, अर्थ अवबोध हेतु न होय ।
जी हो अशुभ पुद्गल कहियै तसु, इणरै चक्षु इद्रिय अवलोय ।।

२७ रविकराद्यभावे त्वर्थावबोधाजनकत्वादशुभा इति ।
(वृ० प० २४७)

२८. जी हो इमहिज जाव मनुष्य लगै, व्यतर जोतिपि नै विमानीक ।
जी हो असुरकुमार तणी परै, तम नही उद्योत सधीक ।।

२८ एव जाव मणुस्साण । (श० ५।२४६)
वाणमतर-जोइस-वेमाणिया जहा असुरकुमारा ।
(श० ५।२४७)

## सोरठा

२९. पुद्गल द्रव्य पिछाण, पूर्वे चितवणा तसु ।
काल द्रव्य नी जाण, चितवणा तेहनी हिवै ।।

२९. पुद्गला द्रव्यमिति तच्चिन्ताऽनन्तरं कालद्रव्यचिन्तासूत्रम्— (वृ० प० २४७)

३०. *जी हो हे प्रभुजी ! नारक तणै, नरक विषे रह्या नै सोय ।
जी हो जेणे करीनै जाणियै, एहवी प्रज्ञा तेहनै होय ।।

३१. जी हो समय आवलिका पिण वलि, जाव अवसर्पिणी छै एह ।
जी हो उत्सर्पिणी पिण एह छै, एहवू नरक विषे जाणेह ?

३२. जी हो जिन कहै अर्थ समर्थ नही, काइ किण अर्थे भगवान ?
जी हो जिन कहै समयादिक तणो, इण मनुष्यखेत्र मे मान ।।

३३. जी हो इण मनुष्यखेत्र नै विषे वलि, समयादिक तणोंज प्रमाण[1] ।
जी हो आदित्य गति करि जाणियै, समयादिक नै पहिछाण ।।

३४. जी हो मनुष्यखेत्र नैं विषेज छै, काइ समयादिक नों ज्ञान ।
जी हो नारकादिक नै विषे नही, तिण सू इहाइज मान प्रमान ।।

३५. †प्रकृष्ट मान प्रमाण सूक्षम, मुहूर्त्त मान कहीजियै ।
तसु अपेक्षा लवज सूक्षम, तेह प्रमाण लहीजियै ।।

३६. लव मान कहियै तसु अपेक्षा, थोव प्रमाण पिछाणियै ।
थोव मान तेहनी अपेक्षा, प्रमाण पाणू जाणियै ।।

३७. *जी हो नरक तणी पर जाणवा, काइ जाव पचेंद्री तिर्यंच ।
जी हो मनुष्य तणी पूछा हिवै, तसु साभलज्यो सुभ सच ।।

३८. जी हो छै भगवंत ! जे मनुष्य नै, काइ इहा रह्या नै ताम ।
जी हो जेणे करीनै जाणियै, एहवी प्रज्ञा बुद्धि अभिराम ।।

३९. जी हो समय आवलिका पिण वलि, जाव अवसर्प्पिणी छै एह ।
जी हो उत्सर्प्पिणी पिण एह छै, एहवू मनुष्य विषे जाणेह ?

४०. जी हो जिन कहै अर्थ समर्थ अछै, काइ किण अर्थे भगवान ।
जी हो जिन कहै समयादिक तणो, इण मनुष्य खेत्र मे मान ।।

४१. जी हो इण मनुष्यखेत्र नै विपे वलि, समयादिक तणो प्रमाण ।
जी हो आदित्य गति करि जाणियै, समयादिक नै पहिछाण ।।

४२. जी हो मनुष्यखेत्र नै विपेज छै, काइ समयादिक नों ज्ञान ।
जी हो तिण अर्थे करि इम कह्यु, काइ इहा इज मान प्रमान ।।

४३. जी हो वाणव्यतर नै जोतिषि, वलि वैमानिक नै ताम ।
जी हो कहियै नरक तणी परै, काइ सहु विरतत तमाम ।।

४४. जी हो समयखेत्र वाहिर रह्या, काइ सर्व तणै अवलोय ।
जी हो समयादिक पूर्वे कह्या, तेहनै जाणै नहिं ते कोय ।।

३० अत्थि ण भते ! नेरइयाण तत्थगयाण एव पण्णायए, त जहा—

३१ समया इ वा, आवलिया इ वा जाव ओसप्पिणी इ वा, उस्सप्पिणी इ वा ?

३२ णो तिणट्ठे समट्ठे । (श० ५।२४८)
से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—नेरइयाण तत्थगयाण नो एव पण्णायए, त जहा—समया इ वा, आवलिया इ वा जाव ओसप्पिणी इ वा, उस्सप्पिणी इ वा ?
गोयमा ! इह तेसिं माण,

३३ इह तेसिं पमाणं, (श० ५।२४९)
आदित्यगतिसमभिव्यग्यत्वात्तस्य, (वृ० प० २४७)

३४ आदित्यगतेश्च मनुष्यक्षेत्र एव भावात् नरकादौ त्वभावादिति, (वृ० प० २४७)

३५,३६ प्रमाण—प्रकृष्ट मान सूक्ष्ममानमित्यर्थ, तत्र मुहूर्त्तस्तावन्मान तदपेक्षया लव सूक्ष्मत्वात् प्रमाण तदपेक्षया स्तोक. प्रमाण लवस्तु मानमित्येव नेय यावत् समय इति, (वृ० प० २४७)

३७ एव जाव पचिदियतिरिक्खजोणियाणं । (श० ५।२५०)

३८ अत्थि ण भते ! मणुस्साण इहगयाण एव पण्णायते,

३९ समया इ वा जाव उस्सप्पिणी इ वा ?

४०. हता अत्थि । (श० ५।२५१)
से केणट्ठेण ? गोयमा ! इह तेसिं माण,

४१,४२ इह तेसिं पमाण, इह चेव तेसिं एव पण्णायते, त जहा—समया इ वा जाव उस्सप्पिणी इ वा । से तेणट्ठेण । (श० ५।२५२)

४३ वाणमतर-जोइस-वेमाणियाण जहा नेरइयाण । (श० ५।२५३)

४४. इह च समयक्षेत्राद्‌बहिर्वर्त्तिना सर्वेषामपि समयाद्यज्ञानमवसेयम्, (वृ० प० २४७)

---

*लय . चतुर नर पोषो पात्र विसेख

१. अंगसुत्ताणि मे 'इह तेसिं पमाणं' के बाद उपसंहारात्मक रूप में पूरा पाठ है । पर उस पाठ की जोड़ न होने के कारण उसे यहां उद्धृत नही किया गया ।

†लय : पूज मोटा भाजे……

४५. जी हो समयखेत्र रे बाहिरे, नहि समयादि काल विचार ।
जी हो काल तणै अभावे करी, काइ नहि छै ते व्यवहार ॥
४६. जी हो वृत्तिकार इहा इम कह्यु, कांइ पचेद्रिय तिर्यच ।
जी हो भवनपति व्यतर जोतिपि, केइ मनुष्यखेत्र छै संच ॥
४७. जी हो तो पिण ते तो अल्प छै, वलि बहुलपणे करि तेह ।
जी हो समयादिक जे काल ना, काइ अव्यवहारी जेह ॥
४८. जी हो तेह तणीज अपेक्षया, कांइ मनुष्यखेत्र रै वार ।
जी हो तिर्यचादिक छै घणा, तिके नहि जाणै तिहवार ॥
४९. जी हो रवि गति करिनै जाणवो, तिको लेखवियो इहा जोय ।
जी हो अवध्यादिक करि जाणिये, जिको गिण्यो नही छै कोय ॥
५०. जी हो देश गुणसठमा अक नों, काइ च्यार नेऊमी ढाल ।
जी हो भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, कांइ 'जय-जश' हरष विशाल ॥

४५. तत्र समयादिकालस्याभावेन तद्व्यवहाराभावात्,
(वृ० प० २

४६ तथा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो [illegible]
[illegible]काश्च यद्यपि केचित् मनुष्यलोके सन्ति ।
(वृ० प० २४७

४७,४८ तथापि तेऽल्पाः प्रायस्तदव्यवहारिणश्च इतरे बहव इति तदपेक्षया ते न जानन्तीत्युच्यत इति ।
(वृ० प० २४७)

## ढाल ९५

### दूहा

१. काल-निरूपण नों कह्यो, ए अधिकार पिछाण ।
निशि दिन काल विशेष हिव, तास निरूपण जाण ॥
२. तिण कालै नै तिण समय, पार्श्व-अपत्य सतान ।
शिष्य प्रशिष्यादिक प्रवर, स्थविर तपोवृद्ध जान ॥
३. पार्श्व स्थविर भगवत ते, वीर प्रभू पै आय ।
नहिं अति दूर न ढूकड़ा, बोलै इहविध वाय ॥

*पार्श्व स्थविर पूछा करै ।(ध्रुपद)

४. हे भगवत ! निश्चै करी, असखेज्ज लोक मांह्यो जी ।
प्रदेश असख्याता एहना, तिण सू असख्य लोक कहिवायो जी ॥
५. चवदै रज्जु खेत्र लोक छै, ते आधारभूत विषे जेहो ।
दिन रात्रि अनता ऊपनां, ऊपजै नै ऊपजस्यै तेहो ?
६. विनाश पाम्या अनता दिन निशा, वले विनाश पामै दिन रातो ।
विनाश पामस्यै ते वलि, काल त्रिहू आख्यातो ?

१. कालनिरूपणाधिकाराद्रात्रिन्दिवलक्षणविशेषकालनिरूपणार्थमिदमाह— (वृ० प० २४७)

२. तेण कालेणं तेण समएणं पासावच्चिज्जा थेरा भगवतो

३ जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर-सामते ठिच्चा एव वायसी—

४ से नूण भते ! असखेज्जे लोए
असख्यातेऽसख्यातप्रदेशात्मकत्वात्—
(वृ० प० २४८)

५ अणता राइदिया उप्पज्जिसु वा, उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा ?
लोके—चतुर्दशरज्ज्वात्मके क्षेत्रलोके आधारभूते
(वृ० प० २४८)

६ विगच्छिमु वा, विगच्छति वा, विगच्छिस्सति वा ?

*लय : धर्म दलाली चित करै

७. तथा परित्ता नियत परिमाण ते, दिवस अनै वलि रातो।
ऊपना ऊपजै ऊपजस्यै वलि, ए अनता नहि आख्यातो॥

८. तथा नियत परिमाण अहो निशा, गये काल पाम्या छै विनाशो।
हिवडा विनाश पामै अछै, वलि विनाश पामस्यै तासो?

९ जिन कहै हता हे अज्जो! लोक असखप्रदेशो।
तिण में अनत रात्रि दिन ऊपना, पूछ्यो तिम कहिवू अशेषो॥

७ परित्ता राइदिया उप्पज्जिसु वा, उप्पज्जति वा, उप्पज्जिस्सति वा?
परीतानि—नियतपरिमाणानि नानन्तानि,

८ विगच्छिसु वा, विगच्छति वा, विगच्छिस्सति वा?

९ हता अज्जो! असखेज्जे लोए अणता राइदिया त चेव। (भ० ५।२५४)

### सोरठा

१०. इहा छै ए अभिप्राय, लोक असखप्रदेश मे।
दिन रात्रि अनत किम माय? अल्प आधार आधेय बहु॥

११ लोक असख प्रदेश मे, वर्त्तै अनता जीवा।
तथाविध स्वरूपपणा थकी, गुण-भाजन अनत अतीवा॥

१२. जिम इक स्थानक नै विषे, प्रभा सहस्र दीवा नी पडतो।
तिम समयादिक इक काल मे, अनता ऊपजै विणसतो॥

१०. पृच्छतामयमभिप्राय—यदि नामासख्यातो लोकस्तदा तत्रानन्तानि तानि कथ भवितुमर्हन्ति? अल्पत्वादाधारस्य महत्त्वाच्चाधेयस्येति, (वृ० प० २४८)

११ असख्यातप्रदेशेऽपि लोकेऽनन्ता जीवा वर्त्तन्ते तथाविधस्वरूपत्वाद् (वृ० प० २४८)

१२ एकत्राश्रये सहस्रादिसख्यप्रदीपप्रभा इव, ते चैकत्रैव समयादिके कालेऽनन्ता उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति च, (वृ० प० २४८)

### सोरठा

१३. इहा छै ए अभिप्राय, अनत जो दिन निशि हुवै।
तो किम परित्त कहाय, आपस माहि विरोध इम॥

१४. [*]अनत काय साधरण नें विषे, समयादि काल वर्त्तातो।
तिण सू अनत समयादिक ते कह्या, इक समयादि अनत गिणतो॥

१५. प्रत्येकशरीरी नै विषे, समयादि काल वर्त्ततो।
प्रत्येक समयादि तसु कह्या, जीव दीठ एक-एक हुतो॥

१६. अनतकाय साधारण नै विषे, वर्त्तै रात्रि दिन एको।
तिण सू एक अहो रात्रि तेहनै अनत कह्या सुविशेखो॥

१७. प्रत्येकशरीरी नै विषे, वर्त्तै अहो रात्रि एको।
तिण सू एक अहो रात्रि तेहनै प्रत्येक कह्या सुविशेखो॥

१८. साधारण जीव आसरी, काल अनतो लेवो।
प्रत्येकशरीरी आसरी, काल प्रत्येकज केवो॥

१९. इण न्याय दिन रात्रि अनत छै, तथा परित्त दिन रातो।
ए तीनूइ काल विषे हुवै, इम भाखै जगनाथो॥

२०. किण अर्थे प्रभु! इम कह्यु, लोक असखप्रदेशे न्हालो।
दिन रात्रि अनता प्रत्येक ते, ऊपजवू विणसवू त्रिहु कालो?

२१. जिन कहै इम निश्चय करी, अहो आर्य! तुम्हारा जाणी।
पार्श्वनाथ पुरुषा मझे, आदेयकारी पिछाणी॥

१३ इहायमभिप्राय यद्यनन्तानि तानि तदा कथ परीतानि? इति विरोध., (वृ० प० २४८)

१४ स च समयादिकालस्तेषु साधारणशरीरावस्थायामनन्तेषु (वृ० प० २४८)

१५ प्रत्येकशरीरावस्थाया च परीतेषु प्रत्येक वर्त्तते, (वृ० प० २४८)

१९ एव चासख्येयेऽपि लोके रात्रिन्दिवान्यनन्तानि परीतानि च कालत्रयेऽपि युज्यन्त इति। (वृ० प० २४८)

२० से केणट्ठेण जाव विगच्छिस्सति वा?

२१ से नूण भे अज्जो! पासेण अरहया पुरिसादाणिएण
पुरुषाणा मध्ये आदानीय.—आदेय. पुरुषादानीय: (वृ० प० २४८)

[*]लय : धर्म दलाली चित करै……

. ते पार्श्वनाथ अरिहंत जे, सास्वतो स्थिर लोक आख्यातो ।
वले आदि-रहित अत-रहित छै, प्रदेशे परिमित असख्यातो ॥

. परिवुडे वीटचो अलोके करी, हेठै सात राज चोड़ो न्हालो ।
विचे साकडो ते एक राज छै, ऊपर है पंच राज विशालो ॥

**सोरठा**

. एहिज तीनू लोग, हेठै मध्य अरु ऊपरै ।
सुणज्यो धर उपयोग, कहियै छै उपमा थको ॥

. [1]हेठलु लोक कहै हिवै, ऊपर सांकड़ो जाणो ।
तल विस्तार चोडो अछै, विहुं करि पलिअक सठाणो ॥

.. मध्य लोक छै एहवो, वर प्रधान विचारो ।
वज्र शरीर आकार छै, मध्य साकडो तास प्रकारो ॥

.. ऊपरलो लोक एहवो, ऊर्द्ध मृदंग आकारो ।
सराव सपुट आकार छै, ऊपर तल क्षीण मध्य विस्तारो ॥

.. ते सास्वतो लोक कह्यो अछै, काल आश्री अनादि अनतो ।
प्रदेश करि परिमित अछै, अलोके करि वीटचो कहतो ॥

९. हेठै विस्तीर्ण लोक छै, मध्य सक्षिप्त वखाणो ।
ऊपर विशाल ए लोक छे, पचम कल्प आश्री ए जाणो ॥

०. हेठै पलिअक सठाण छै, मध्य वज्र आकारो ।
ऊपर ऊर्द्ध मृदग नें आकारे लोक विचारो ॥

१. एहवा लोक विपेज अनत छै, साधारण अपेक्षायो ।
एक शरीर मे जीवडा, अनंत कहीजै ताह्यो ॥

२. अनत पर्याय समूह छै, , प्रदेश पिड असख्यातो ।
तिण सू जीव घणां ए पाठ छै, उपजी-उपजी मर जातो ॥

३. प्रत्येकशरीर अपेक्षया, परित्ता जीव घणां कहायो ।
अनत पर्याय असख प्रदेश छै, उपज-उपज मर जायो ॥

---

[1] लय : धर्म दलाली चित करै

२२. सासए लोए वुडए—अणादीए अणवदग्गे परित्ते
अनवदग्र.—अनन्तः 'परित्ते' त्ति परिमितः प्रदेशतः
(वृ० प० २४८)

२३ परिवुडे हेट्ठा विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते,. उप्पि विसाले,
'परिवुडे' त्ति अलोकेन परिवृतः 'हेट्ठा विच्छिन्ने' त्ति सप्तरज्जुविस्तृतत्वात् 'मज्झे संखित्ते' त्ति एकरज्जुविस्तारत्वात् 'उप्पि विसाले' त्ति ब्रह्मलोकदेशस्य पञ्चरज्जुविस्तारत्वात्, (वृ० प० २४९)

२४. एतदेवोपमानत प्राह— (वृ० प० २४९)

२५ अहे पलियकसठिए
उपरि सकीर्णत्वाधोविस्तृतत्वाभ्यां
(वृ० प० २४९)

२६ मज्झे वरवइरविग्गहिए
वरवज्रवद्विग्रह.—शरीरमाकारो मध्यक्षामत्वेन यस्य स. । (वृ० प० २४९)

२७ उप्पि उद्धमुइगाकारसठिए ।
ऊर्ध्वो न तु तिरश्चीनो यो मृदङ्गस्तस्याकारेण सस्थितो य· स तथा, मल्लक-संपुटाकार इत्यर्थः, । (वृ० प० २४९)

२८ तेसिं च ण सासयंसि लोगंसि अणादियंसि अणवदग्गसि परित्तसि परिवुडंसि ।

२९. हेट्ठा विच्छिण्णसि, मज्झे संखित्तंसि, उप्पि विसालसि,

३० अहे पलियंकसंठियसि, मज्झे वरवइरविग्गहियसि, उप्पि उद्धमुइगाकारसठियसि

३१,३२ अणता जीवघणा उप्पज्जित्ता उप्पज्जित्ता निलीयति,
'अनन्ता.' परिमाणत सूक्ष्मादिसाधारणशरीराणां विवक्षितत्वात्, सन्तत्यपेक्षया वाऽनन्ता. जीवसन्ततीनामपर्यवसानत्वात्, जीवाश्च ते घनाश्चानन्तपर्यायसमूहरूपत्वादसख्येयप्रदेशपिण्डरूपत्वाच्च जीवघना, (वृ० प० २४९)

३३. परित्ता जीवघणा उप्पज्जित्ता-उप्पज्जित्ता निलीयति ।

३४. अनंत परित्त जीव संबध थी, काल विशेष प्रबोधो ।
तिण सूं अनत परित्त दिन रात्रि छै, इम मांहोमांहि अविरोधो ।।

३५. हिवै लोक स्वरूप कहै अछै, से भूत सद्भूत कहायो ।
उपण्णे विगए परिणए, उत्पन्न विगत परिणत पिण थायो ।।

**सोरठा**

३६. जे लोक विषे पहिछान, जीव घणा उपजी मरै ।
ते सद्भूत विद्यमान, उत्पत्ति धर्मज जोग थी ।।
३७. उत्पाद विनशनशील, परिणत अन्य पर्याय करि ।
पाम्यो लोक समील, ए पर्याय अपेक्षया ।।
३८. लोक सबंधी भाव, द्रव्य अपेक्षा नाश नहिं ।
तसु पर्याय कहाव, उत्पाद-विनशनशील है ।।
३९. द्रव्य जीव नों ताहि, वलि द्रव्य परमाणू तणो ।
उत्पाद विनशन नाहि, पर्याय विणसै ऊपजै ।।
४०. अथ ए कवण प्रकार, एवविध ए लोक नों ।
निश्चय करियै सार, आगल तेह कहीजियै ।।

४१. *अजीव पुद्गल आदि दे, अस्तित्व धारक जेहो ।
तेहनें ऊपजवै करि, वलि विणसवै करि तेहो ।।
४२. पर्याय अन्य परिणमवै करी, लोक्कइ—निश्चै कीजै ।
पलोक्कइ—प्रकर्षे करी, तेहिज निश्चै करीजै ।।

**सोरठा**

४३. ए भूतादिक धर्म, इहविध प्रकर्षे करी ।
निश्चै कीजै मर्म, प्रलोक्यते कहियै तसु ।।
४४. एहिज यथार्थ नाम, तेहिज देखाडता छता ।
स्थविरा नै तिण ठाम, पूछै छै हिव वीर प्रभु ।।

४५. *पुद्गलादिक प्रमाणे करि, लोकिय विलोकिय तासो ।
लोक कहीजै तेहनें, लोक शब्द वाच्य सुविमासो ।।
४६. इम पूछ्यं स्थविर इम उच्चरै, हंता हा भगवतो !
हे आर्य ! तिण अर्थे कह्यो, असख लोके त चेव कहतो ।।
४७. पास-अपत्य-स्थविर ते वेला थकी, श्रमण भगवत श्री महावीरो ।
त्यांनै प्रत्यक्षपणै जाणै तदा, सर्वज्ञानो सर्वदरिसि धीरो ।।

४८. ते स्थविर भगवत तिण अवसरे, श्रमण भगवत श्री महावीरो ।
त्यानै नमस्कार वदना करी, इम बोलै गुणहीरो ।।
४९. हे प्रभुजी ! तुझ आगलै, च्यार याम थकी पच यामो ।
पडिकमणा सहित धर्म प्रतै, वछा आदरो विचरवू तामो ।।

*लय : धर्म बलाली चित करै……

३४ यतोऽनन्तपरीत्तजीवसम्बन्धात्कालविशेषा अप्यनन्ताः परीत्ताश्च व्यपदिश्यन्तेऽतो विरोध परिहृतो भवतीति । (वृ० प० २४९)

३५,३६. अथ लोकमेव स्वरूपत आह— (वृ० प० २४९)

से भूए उप्पण्णे विगए परिणए,
स लोको भूत.—सद्भूतो भवनधर्मयोगात् । (वृ० प० २४९)

३७,३८ परिणत —पर्यायान्तराणि आपन्नो न तु निरन्वयनाशेन नष्ट । (वृ० प० २४९)

४० अथ कथमयमेवविधो निश्चीयते ? (वृ० प० २४९)

४१,४२. अजीवै पुद्गलादिभि सत्तां बिभ्रद्भिरुत्पद्यमानैविगच्छद्भि. परिणमद्भिश्च लोकानन्यभूतै 'लोक्यते' निश्चीयते 'प्रलोक्यते' प्रकर्षेण निश्चीयते, (वृ० प० २४९)

४३,४४ भूतादिधर्मकोऽयमिति, अत एव यथार्थनामाऽसाविति दर्शयन्नाह— (वृ० प० २४९)

४५ अजीवेहिं लोक्कइ पलोक्कइ, जे लोक्कइ से लोए ?

४६ हता भगव ! से तेणट्ठेण अज्जो ! एव वुच्चइ— असखेज्जे लोए अणता राइदिया त चेव ।

४७ तप्पभिइ च ण ते पासावच्चेज्जा थेरा भगवतो समण भगव महावीर पच्चभिजाणति सव्वण्णु सव्वदरिसी । (श० ५।२५५)

४८ तए ण ते थेरा भगवतो समण भगव महावीर वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

४९. इच्छामि ण भते ! तुब्भ अतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पचमहव्वइय सपडिक्कमण धम्म उवसपज्जित्ताण विहरित्तए ।

अहासुह देवानुप्रिया ! मा प्रतिबंध करेहो ।
पार्श्व-अपत्य-स्थविर तदा, ज्ञानवंत गुणगेहो ॥

५०. अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं । (श० ५।२५६)
तए णं ते पासावच्चिज्जा थेरा भगवतो चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति

जाव चरम उस्सास निस्सास ते, सिद्धा जाव सर्व दुखक्षीणा ।
केतला इक देवलोक में, ऊपनां तत्व-प्रवीणा ॥

५१ जाव चरिमेहिं उस्सास-निस्सासेहिं सिद्धा बुद्धा मुक्का परिनिव्वुडा सव्वदुक्खप्पहीणा । अत्थेगतिया देवलोएसु उववण्णा । (श० ५।२५७)

### सोरठा

पूर्वे आख्यो एह, देवलोक में ऊपना ।
तेहथी हिवै कहेह, परूपणा सुरलोक नी ॥

५२ अनन्तर 'देवलोएसु उववन्ना' इत्युक्तमतो देवलोकप्ररूपणसूत्रम्— (वृ० प० २४६)

*देवलोक प्रभु ! कतिविधा, जिन कहै च्यार प्रकारो ।
भवनवासी वाणव्यंतरा, जोतिषि वैमानिक सुविचारो ॥

५३ कइविहा णं भंते ! देवलोगा पण्णत्ता ?
गोयमा ! चउव्विहा देवलोगा पण्णत्ता, तं जहा— भवणवासी 'वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणियभेदेणं' ।

भेद भवणवासी दसविधा, व्यंतर आठ प्रकारो ।
पंचविधा छै जोतिषि, द्विविधा वैमानिक सारो ॥

५४ भवणवासी दसविहा, वाणमंतरा अट्ठविहा, जोतिसिया पंचविहा, वेमाणिया दुविहा ।

### दूहा

स्यू ए नगर राजगृह, अंधकार उज्जोय ?
समय पार्श्वशिष्य नी पृच्छा, रात्रि-दिवस सुरलोय ॥

५५. किमिदं रायगिह ति य, उज्जोए अंधयार-समए य ।
पासंतिवासिपुच्छा, रातिदिय देवलोगा य ॥ (श० ५।२५८ संगहणी-गाहा)

*सेव भंते ! सेव भंते ! प्रभु ! पंचम शतक मझारो ।
नवमा उद्देशा नु अर्थ ए, प्रवर कह्यु धर प्यारो ॥

५६ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ५।२५९)

**पंचमशते नवमोद्देशकार्थः ॥५।९॥**

### सोरठा

७. नवम उदेशक अंत, वर सुरलोक चतुर्विधा ।
देव विशेष दीपंत, चंद्र तणु दशमेज छै ॥

५७. अनन्तरोद्देशकान्ते देवा उक्ता इति देवविशेषभूतं चन्द्र समुद्दिश्य दशमोद्देशकमाह—

८. *तिण काले नें तिण समय, नगरी चम्पा नामो ।
प्रथम उदेशो जिम कह्यु, तिम ए पिण अभिरामो ॥

५८. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नगरी, जहा पढमिल्लो उद्देसओ तहा नेयव्वो एसो वि,

९. णवरं एतो विशेष छै, भणवू चंद्र नु भावो ।
दसम उदेशक दाखियो, पंचम शतक कहावो ॥

५९ नवरं—चंदिमा भाणियव्वा । (श० ५।२६०)

१०. पंच नेऊमी परवरी, ढाल रसाल उदारो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' संपति सारो ॥

**पंचमशते दशमोद्देशकार्थः ॥५।१०॥**

---

*लय : धर्म दलाली चित करै ……

### गीतक छंद

१. कह्यु वृत्तिकारे शिल्पकारक, पुरुष को कुशि कर लियै ।
रोहणगिरी ना देश भेदी, सन्मणीज प्रकासियै ॥
२. तिम बुद्ध जन उपदेश करि म्है, प्रवर पचम शत तणा ।
रव प्रतै भेदी अर्थ बहु जे, कृत-प्रकाश सुहामणा ॥
३. तिमहीज भिक्षू दीर्घमालज,[1] नृपति-इदु प्रसाद थी ।
पचम शतक नी जोड़ रचना, रची अति आह्लाद थी ॥
४. जिन-वयण-रयण अमूल्य है, व्यभिचारि-रहितपणै जिके ।
जिन-आण सिर ऊपर ठवी, समदृष्टि अगीकृत तिके ॥

१,२ श्री रोहणाद्रेरिव पञ्चमस्य,
शतस्य देवानिव साधुशब्दान् ।
विभिद्य कुश्येव बुधोपदिष्ट्या,
प्रकाशिता सन्मणिवन्मयाऽर्था ॥ (वृ० प० २४९)

## ढाल ९६

### सोरठा

१. पंचम शतक प्रकाश, आख्यो अति आनद स्यू ।
वर छट्ठो सुविलास, हिव अवसर आयो तसु ॥
२. उद्देशक दश आद, महावेदन महानिर्जरा ।
आहार तणो विधि वाद, पन्नवण[2] भणी भलावियो ॥

१ व्याख्यात विचित्रार्थं पञ्चम शत, अथावसरायात तथाविधमेव षष्ठमारभ्यते, (वृ० प० २५०)
२-५ वेदण आहार महस्सवे य सपदेस तमुए भविए ।
साली पुढवी कम्म अण्णउत्थि दस छट्ठगम्मि सए ॥
(श० ६।सगहणी-गाहा)

३. महाआश्रव छै तास, बहु पुद्गल नु उपचय ।
सप्रदेशि सुविमास, अप्रदेशि स्यू जीव छै ॥

३ 'महस्सवे य' त्ति महाश्रवस्य पुद्गला बध्यन्ते···
'सपएस' त्ति सप्रदेशो जीवोऽप्रदेशो वा
(वृ० प० २५०)

४. तमस्काय अधिकार, नरक उपजवा योग्य ते ।
सालि आदि सुविचार, धान्य योनि स्थिति सातमे ॥
५. पृथ्वी रत्नप्रभादि, कर्मबंध नवमें कह्यु ।
अन्यतीर्थिक सवादि, षष्ठ शते उद्देश दश ॥

४ भव्यो—नारकत्वादिनोत्पादस्य योग्य ··'सालि' त्ति शाल्यादि-धान्यवक्तव्यताऽऽश्रित (वृ० प० २५०)
५ 'पुढवि' त्ति रत्नप्रभादिपृथिवी वक्तव्यता · 'कम्म' त्ति कर्मबन्धाभिधायक (वृ० प० २५०)

*देव जिनेन्द्र दयाल तणा शिष गोयम गणधर गिरवा रे।
परम प्रीत वर प्रश्न पूछता, निज-पर-भवदधि तिरवा रे।
उत्तर स्वाम अमल चित अतिहित, विहु शिव-सुन्दर वरवा रे।
(ध्रुपद)

६. हे प्रभु ! जे महावेदन पोडा, ते महानिर्जरवतो रे ।
जे महानिर्जर ते महावेदन ? प्रश्न प्रथम ए ततो रे ॥
७. तथा महावेदन अल्पवेदन माहि, तेहिज श्रेय पिछाणी ।
जेह प्रशस्त निर्जरा प्रभुजी ? जिन कहै हता जाणी ॥

६ से नूण भते ! जे महावेदणे से महानिज्जरे ? जे महानिज्जरे से महावेदणे ?
७ महावेदणस्स य अप्पवेदणस्स य से सेए जे पसत्थनिज्जराए ?
हता गोयमा ! जे महावेदणे एव चेव । (स० पा०)
(श० ६।१)

१. द्वितीय आचार्य श्री भारीमालजी
२. पण्णवणा पद २८
*लय : लाल हजारी को जामो विराजै

८. प्रथम प्रश्न नां उत्तर में प्रभु ! महा उपसर्ग काले जाण्यु ।
द्वितिय-उपसर्ग अनें विण उपसर्ग, ए विहु काले पिछाण्यु ।।

८. इह च प्रथमप्रश्नस्योत्तरे महोपसर्गकाले भगवान् महावीरो ज्ञात, द्वितीयस्यापि स एवोपसर्गानुपसर्गावस्थायामिति । (वृ० प० २५१)

## सोरठा

९. जे महावेदनवत, ते महानिर्जरवत इम ।
भास्यो श्री भगवंत, हिव गोयम स्वामी तदा ।।
१०. ते उत्तर रैं माहि, एह वारता किणविधे ।
इम आशका ताहि, करता छताज प्रश्न हिव ।।

९,१०. यो महावेदनः स महानिर्जर इति यदुक्त तत्र व्यभिचार शङ्कमान आह— (वृ० प० २५१)

११. *छठी सातमी नरक विषे तिम, छै महावेदनवंता ?
जिन कहै हंता इमहिज जाणी, वलि गोयम पूछता ।।

११ छट्ठ-सत्तमासु ण भंते ! पुढवीसु नेरइया महावेदणा ?
हता महावेदणा । (भ० ६।२)

१२. ते प्रभु ! श्रमण निर्ग्रंथ थकी महानिर्जरावत अत्यतो ?
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नाही, वलि कहै गोयम सतो ।।

१२. तेण भंते ! समणेहिंतो निग्गंथेहिंतो महानिज्जरतरा ?
गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे । (भ० ६।३)

१३ ते किण अर्थे ? प्रभु ! इम कहियैं, जे महावेदनवतो ।
ते महानिर्जर जाव प्रशस्त निर्जरा इम पभणतो ।।

१३. से केण ग्गट्ठ अट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ—जे महावेदणे जाव पसत्थनिज्जराए (भ० पा०)

१४. ताम दृष्टात देइनें कहै जिन, वस्त्र दोय पिछाणी ।
वस्त्र रग्यो इक कर्दम रागे, चीकणं कर्दम जाणी ।।
१५. रग्यो वस्त्र इक खंजण रागे, दीप-कालिमा सरखो ।
गाढा नो वाग तास रगे रग्यो, रग्यो ते खरड्यो परखो ।।

१४. गोयमा ! से जहानामए दुवे वत्था सिया—एगे वत्थे कद्दमरागरत्ते,
१५. एगे वत्थे खंजणरागरत्ते ।

१६. ए विहुं वस्त्र मांहे पट केहवो, अति दुखे धोवा जोगो ।
कलक जावा जोग अति दुख करि तसु, कृष्णपणु अपजोगो ।।

१६. एएसि णं गोयमा ! दोण्हं वत्थाणं कयरे वत्थे दुद्धोयतराए चेव, दुवामतराए चेव,
'दुद्धोयतराए' त्ति दुष्करतरधावनप्रक्रिय···'दुर्वाम्यतरक' दुस्त्याज्यतरकलङ्कम् (वृ० प० २५१)

१७. कठिन परिकर्म—चमक उपावणी भांज वेठावणी ताह्यो ।
कवण वस्त्र सुखे धोवा योग्य वलि मेल कलक सुखे जायो ।।

१७ दुपरिकम्मतराए चेव; कयरे वा वत्थे सुद्धोयतराए चेव, सुवामतराए चेव,
'दुप्परिकम्मतराए' त्ति कष्टकर्त्तव्यतेजोजननभङ्गकरणादिप्रक्रियम् । (वृ० प० २५१)

१८. सुखे परिकर्म करवा जोगज, ए विहु वस्त्र मांह्यो ।
कर्दम खजण करिनें खरड्यो ? इम पूछै जिनरायो ।।
१९. गोतम ताम कहे हे भगवंत ! जे कर्दम खरडायो ।
अति दुख धोवा जोग तिको पट, अति दुख करि मल जायो ।।

१८. सुपरिकम्मतराए चेव; जे वा से वत्थे कद्दमरागरत्ते ?
जे वा से वत्थे खंजणरागरत्ते ?
१९. भगव ! तत्थ ण जे से कद्दमरागरत्ते से णं वत्थे दुद्धोयतराए चेव, दुवामतराए चेव,

२०. कष्ट करी परिकर्म करिवा जोग चमक उपावणो ताह्यो ।
एणे विशेषण करिनें ते पट, अति दुख करि सुध थायो ।।

२० दुप्परिकम्मतराए चेव,
कष्टकर्त्तव्यतेजोजननभङ्गकरणादिप्रक्रियं, अनेन च विशेषणत्रयेणापि दुर्विशोध्यम् (वृ० प० २५१)

२१. इण दृष्टांते करि हे गोतम ! नरक पूर्व भव माह्यो ।
पाप कर्म प्रति गाढा वांध्या, अशुभ परिणाम सू ताह्यो ।।
२२. गाढीकयाइ—पाप कर्म दृढ आत्मप्रदेशे साध्या ।
सूई-समूह नें सणसूत्रे करि, गाढपणें जिम वाध्या ।।

२१. एवामेव गोयमा ! नेरइयाण पावाइ कम्माइं गाढीकयाइ,
२२ 'गाढीकयाइ' ति आत्मप्रदेशैः सह गाढ़बद्धानि सनसूत्रगाढबद्धसूचीकलापवत् । (वृ० प० २५१)

---

*लय : लाल हजारी को जामो विराजे

२३. चिक्कणीकयाइ—कर्म सूक्ष्म खंध, सरसपणै माहो-माह्यो।
गाढ सबध चीकणा कीधा, माटी ना पिंड जिम ताह्यो॥

२३ चिक्कणीकयाइं,
'चिक्कणीकयाइ' त्ति सूक्ष्मकर्मस्कन्धाना सरसतया परस्पर गाढसवधकरणतो दुर्भेदीकृतानि तथाविध-मृत्पिडवत्, (वृ० प० २५१)

२४. सिलिट्ठीकयाइ—ने निधत्त कीधा, सूत्रे करीनै बधाणी।
अग्नि तप्त जिम लोह-शलाका, तास समूह पिछाणी॥

२४ सिलिट्ठीकयाइ,
निधत्तानि सूत्रवद्धाग्नितप्तलोहशलाकाकलापवत्, (वृ० प० २५१)

२५. खिलीभूताइ—एह निकाचित, भोगवियाज मुकायो।
अन्य उपाय सू एह खपायवा अशक्य कह्या वृत्ति माह्यो॥

२५ खिलीभूताइं भवति।
अनुभूतिव्यतिरिक्तोपायान्तरेण क्षपयितुमशक्यानि निकाचितानीत्यर्थ। (वृ० प० २५१)

२६. अतिसय गाढपणै ते वेदन वेदता नारकी भावै।
नहिं महानिर्जर नहि महापर्यवसान तिको निर्वावै।

२६ सपगाढ वि य ण ते वेदण वेदेमाणा नो महा-निज्जरा, नो महापज्जवसाणा भवति।

## दूहा

२७. आख्यू जे महावेदना, ते महानिर्जर होय।
विशिष्ट जीव अपेक्षया, तिण कारण ए जोय॥

२७ तदेव यो महावेदन. स महानिर्जर इति विशिष्ट-जीवापेक्षमवगन्तव्यम्। (वृ० प० २५१)

२८. यद्यपि जे महानिर्जरा, वेदन पिण महा तास।
तदपि वहुलपणै करी, ए पिण वचन विमास॥

२८ यदपि यो महानिर्जर स महावेदन इत्युक्तं तदपि प्रायिक। (वृ० प० २५१)

२९. श्रमण अजोगी नै वलि, महानिर्जरा थाय।
तेहनै महावेदन तणी, भजना इम वृत्ति माय॥

२९. यतो भवत्ययोगी महानिर्जरो महावेदनस्तु भजन-येति। (वृ० प० २५१)

३०. *दूजो दृष्टात वलि जिन भाखै, अहिरण नै विषे आमो।
अयघण करीनै लोहार जिहा, लोह कूटै ते अहिरण नामो॥

३०. अधिकरणी यत्र लोहकारा अयोघनेन लोहानि कुट्टयन्ति। (वृ० प० २५१)

३१. कोइ पुरुष एहवी अहिरण नै, लोहघण करि कूटंतो।
मोटे मोटे शब्द करीनै, अति परिश्रम करतो॥

३१. से जहा वा केइ पुरिसे अहिगरणिं आउडेमाण महया-महया सद्देण,

३२. लोहघण नै पडिवै करि ऊपनी, जे ध्वनि शब्द पिछाणी।
अथवा पुरुष हुकार रूपे करि, शब्द मोटे मोटे जाणी॥

३२. अयोघनघातप्रभवेण ध्वनिना पुरुषहुङ्कृतिरूपेण वा। (वृ० प० २५१)

३३. मोटे मोटे घोष करीनै, तेह शब्द नै पूठे।
नाद होवै ते घोष कहीजै, इम अहिरण नै कूटै॥

३३. महया-महया घोसेण,
'घोसेण' ति तस्यैवानुनादेन (वृ० प० २५१)

३४. मोटे मोटे परपराघात करि, एह निरंतर थातो।
घात ताडणा प्रतै कहीजै, ऊपर ऊपर घातो॥

३४ महया-महया परपराघाएण
परम्परा—निरन्तरता तत्प्रधानो घात—ताडन परम्परा-घातस्तेन उपर्युपरिघातेनेत्यर्थ, (वृ० प० २५१)

३५. इहविध अहिरण नै नर कूटै, पिण अहिरण नो त्याही।
वादर स्थूल असार पोग्गल नै, दूर करी सकै नाही॥

३५ नो सचाएइ तीसे अहिगरणीए केइ अहावायरे पोग्गले परिसाडित्तए,

३६ इण दृष्टात करी हे गोतम! नेरइया जे पापकर्मो।
गाढीकयाइ जाव कर्म नु, छेहडो न आणै पर्मो॥

३६ एवामेव गोयमा! नेरइयाण पावाइ कम्माइ गाढीकयाइ जाव नो (स० पा०) महापज्जवसाणा भवति।

---

*लय : लाल हजारी को जामो विराजै

३७. वस्त्र दूजा नों उत्तर दे गोयम, हे भगवंत ! शोभायो ।
खजण करिनें ते पट खरड्यो, सुख करि ते धोवायो ॥
३८. सुख करि मैल कलक तसु जावै, वलि सुख करि कहिवायो ।
परिकर्म करिवा योग्य तास विषे, तेज उपावणो ताह्यो ॥
३९. इण दृष्टात करी हे गोतम ! श्रमण निर्ग्रंथ नें ताह्यो ।
यथाबादर अति हि स्थूल कर्म खध, अधिक असार कहायो ॥

४०. सिढिलीकयाइ कर्म विपाक अछै तसु, जे मद कीधा ।
वलि निट्ठियाइं कयाइ जे, वलहीन किया सीधा ॥

४१. विप्परिणामियाइ—स्थितिघात अनें रसघातादि करनें ॥
कर्म-विध्वस हुवै इम शीघ्रज, अतिहि शुद्ध मुनिवर नें ।

४२. जेतली तेतली वेदन नें पिण, समचित मुनि वेदता ।
महानिर्जरा कर्म तणो अंत, निर्वाण फल पावता ॥
४३. दूजो दृष्टात वलि जिन भाखै, पुरुष कोई पहिछाणी ।
सूका तृणा नो पूलो अग्नि मे, घालै—प्रक्षेपे जाणी ॥
४४. हे गोतम ! सूको तृण-पूलो, न्हाख्यो थको अग्नि माह्यो ।
शीघ्र भस्म ह्वै ? तव कहै गोयम, हा प्रभु ! भस्मज थायो ॥

४५. इण दृष्टात करी हे गोतम ! श्रमण निर्ग्रंथ नें ताह्यो ।
यथाबादर अति स्थूल कर्म खध, अधिक असार कहायो ॥
४६. जाव महापज्जवसाणा भवति, जाव शब्द मे जाण ।
सिढिलीकयाइं प्रमुख पाठ है, महानिर्जरा पहिछाणं ॥
४७. तीजो दृष्टात कहै वलि स्वामी, कोइ पुरुष कहिवायो ।
अग्नि-तप्त अयधम्यो कवेलू, जल-विंदू जाव ताह्यो ?
४८. हंता, हा प्रभु ! विध्वंस पामै, इहविध गोयम जाणो ।
श्रमण तपस्वी निर्ग्रंथ नें जावत, ह्वै महापर्यवसाणो ॥

४९. तिण अर्थे करि जे महावेदन, ते महानिर्जर जाणी ।
जावत श्रेय प्रशस्त निर्जरा, तसु ए न्याय पिछाणी ॥

५०. इगसठ अंक नु देश कह्यु ए, सरस छन्नूमी ढालो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशालो ॥

३७ भगव ! तत्थ जे से खजणरागरत्ते, से ण वत्थे सुद्धोयतराए चेव,

३८. सुवामतराए चेव, सुपरिकम्मतराए चेव,

३९ एवामेव गोयमा ! समणाण निग्गथाण अहाबायराइ कम्माइ स्थूलतरस्कन्धान्यसाराणीत्यर्थं
(वृ० प० २५१)

४० सिढिलीकयाइ, निट्ठियाइ कयाइं,
श्लथीकृतानि मन्दविपाकीकृतानि 'निट्ठियाइ कयाइ' ति निस्सत्ताकानि विहितानि । (वृ० प० २५१)

४१. विप्परिणामियाइं खिप्पामेव विद्धत्थाइं भवति ।
विपरिणाम नीतानि स्थितिघातरसघातादिभि,
(वृ० प० २५१)

४२ जावतिय तावतिय पि ण वेदणं वेदेमाणा महानिज्जरा, महापज्जवसाणा भवति ।

४३ से जहानामए केइ पुरिसे सुक्कं तणहत्थयं जायतेयंसि पक्खिवेज्जा,

४४ से नूण गोयमा ! से सुक्के तणहत्थए जायतेयसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जति ? हंता मसमसाविज्जति ।

४५. एवामेव गोयमा ! समणाणं निग्गथाण अहाबायराइ कम्माइ

४६ जाव (स० पा०) महापज्जवसाणा भवति ।

४७. से जहानामए केइ पुरिसे तत्तसि अयकवल्लसि उदगबिंदु जाव (स० पा०)

४८ हंता विद्धसमागच्छइ ।
एवामेव गोयमा ! समणाण निग्गथाण जाव (स० पा०) महापज्जवसाणा भवति

४९ से तेणट्ठेण जे महावेदणे से महानिज्जरे, जे महानिज्जरे से महावेदणे, महावेदणस्स य अप्पवेदणस्स य सेए जे पसत्थनिज्जराए । (श० ६/४)

## ढाल : ६७

### दूहा

१. आखी पूर्वे वेदना, तिका करण थी होय ।
ते माटे कहियै हिवै, करण सूत्र अवलोय ।।

२. हे भदंत ! कतिविध करण ? जिन कहै च्यार प्रकार ।
मनोकरण व्यापार तसु, वचन-करण व्यापार ।

३. काय-करण व्यापार तसु, कर्म-करण सुविचार ।।
तुर्य करण नों अर्थ हिव, आख्यो वृत्ति मझार ।।

४. कर्म विषय जे करण ते, जीव वीर्य कहिवाय ।
बंधन संक्रम आदि दे, निमित्तभूत वृत्ति माय ।।

५. धर्मसीह इहा इम कह्यु, कर्म सजोगे ताय ।
कर्म बंधाइ ते भणी, कर्म करण कहिवाय ।।

६. यद्यपि तीनू जोग थी, उपशांत क्षीण सयोग ।
बधै सातावेदनी, इरियावहि प्रयोग ।।

७. किता करण प्रभु ! नरक मे ? जिन कहै एहिज च्यार ।
इम पचेंद्री सर्व नै, चउविध करण प्रकार ।।

८. पचेंद्रिय सगला कह्या, दडक आश्री धार ।
ते सन्नी आश्री अछै, असन्नी मे नहि च्यार ।।

९. एकेन्द्रिय नैं करण बे, काय, कर्म ए मर्म ।
विगलेंद्रिय नैं तीन है, वचन काय नैं कर्म ।।

*अहो गोयमगणि गुणनिला रे, जोवो प्रश्न प्रभु नै पूछ्या भला रे। (ध्रुपद)

१० स्यु प्रभु ! नारकी करण थी रे, असातावेदन वेदता रे ?
कै अकरण थी दुख वेदना रे, वेदै कष्ट सहता रे ?

११. श्री जिन भाखे नारकी, करण थकी पहिछाणी ।
वेदै असाता वेदनी, पिण अकरण थी नहि जाणी ।।

१२. किण अर्थे ? तब जिन कहै, नारकी नैं चिहु करणो ।
मन वच काया करण छै, कर्म करण उच्चरणो ।।

१३. अशुभ ए चिहु करण करी, करण थी वेदै असात ।
अकरण थी वेदै नहो, तिण अर्थे आख्यात ।।

१४. हे प्रभु ! असुरकुमार नै, करण थकी स्यू जोयो ।
सातावेदनी वेदता, कै अकरण थी होयो ?

* लय : राज पामियो रे करकडू कचनपुर तणो रे

---

१ अनन्तर वेदना उक्ता, सा च करणतो भवतीति करणसूत्रम्— (वृ० प० २५१)

२ कतिविहे णं भंते ! करणे पण्णत्ते ?
गोयमा ! चउव्विहे करणे पण्णत्ते, त जहा—मणकरणे, वइकरणे,

३ कायकरणे कम्मकरणे । (श० ६/५)

४ कर्मविषय करण—जीववीर्यं बन्धनसंक्रमादिनिमित्तभूत कर्मकरण । (वृ० प० २५२)

७ नेरइयाण भंते ! कतिविहे करणे पण्णत्ते ?
गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे । (श० ६/६)
एव पंचिंदियाण सव्वेसि चउव्विहे करणे पण्णत्ते ।

९. एगिंदियाण दुविहे—कायकरणे य, कम्मकरणे य ।
विगलिंदियाणं तिविहे—वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे । (श० ६/७)

१० नेरइयाण भंते ! कि करणओ असाय वेदण वेदेंति ?
अकरणओ असाय वेदण वेदेंति ?

११ गोयमा ! नेरइया ण करणओ असाय वेदण वेदेंति, नो अकरणओ असाय वेदण वेदेंति । (श० ६/८)

१२ से केणट्ठेण ? गोयमा ! नेरइयाण चउव्विहे करणे पण्णत्ते, त जहा—मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे ।

१३ इच्चेएण चउव्विहेण असुभेण करणेण नेरइया करणओ अस्साय वेदण वेदेंति, नो अकरणओ । से तेणट्ठेण । (श० ६/९)

१४ असुरकुमारा ण किं करणओ ? अकरणओ ?

१५. श्री जिन भाखै करण थी, पिण अकरण थी नाही ।
किण अर्थे ? तव जिन कहै, च्यार करण त्या माही ।।

१६. मन वच काय कर्म चिउ, शुभ करणे करि सात ।
असुभ करण थी वेदता, अकरण थी न आख्यात ।।

१७. इम जाव थणियकुमार नै, पृथ्वी नी इमहिज पृछा ।
णवर एतलो विशेष छै, सांभलज्यो धर इच्छा ।।

१८. ए शुभ अशुभ करणे करी, करण थकी पृथ्वीकायो ।
वेदै वेदन वेमात्रा करी, अकरण थी न वेदायो ।।

१९. कदाचित साता प्रतै, कदाचित वेदै असात ।
विविध मात्रा करी वेदता, ते वेमात्रा आख्यात ।।

२०. सर्व ऊदारिक ना धणी, करण शुभाशुभ जाणी ।
तिण करि वेदन वेदता, वेमात्राइ माणी ।।

२१. सगलाई जे देवता, शुभ करणे करि सोयो ।
साता वेदन वेदता, वहुलपणै अवलोयो ।।

२२. हे प्रभुजी ! वहु जीव ते, स्यू महावेदनवतो ।
महानिर्जरा तेहनै ? ए धुर भग कहतो ।।

२३. महावेदनावंत जे अल्प निर्जरा तासो ?
अल्पवेदनावंत जे महानिर्जरा जासो ?

२४. अल्पवेदनावंत जे, अल्प निर्जरा थायो ?
ए चिउ भगे पूछियां, उत्तर दे जिनरायो ।।

२५. कितलाइक जे जीव छै, महावेदनावंतो ।
महानिर्जरा पिण तसु, प्रथम भंग ए कथंतो ।।

२६. जीव कितायक जाणियै, महावेदनावंतो ।
अल्प थोड़ी तसु निर्जरा, भग दूजे इम हुतो ।।

२७. तत भगो हिव तीसरो, कितलाइक जे जीवा ।
अल्पवेदनावत छै, महानिर्जर सुअतीवा ।।

२८. जीव किता वलि जाणियै, अल्पवेदनावतो ।
अल्प—थोडी तसु निर्जरा, चउथो भग सोहतो ।।

२९. किण अर्थे ? तव जिन कहै, पडिमा अभिग्रहधारी ।
ते मुनि नै महावेदना, महानिर्जरा सारी ।।

३०. छठी सातमी रा नेरइया, महावदनावतो ।
अल्प—थोडी तसु निर्जरा, भग दूजो ए हुतो ।।

३१. सैलेसी मुनि मोटका, चउदशमें गुणठाणे ।
अल्पवेदनावत ते, महानिर्जरा माणे ।।

१५. गोयमा ! करणओ, नो अकरणओ । (श० ६/१०)
से केणट्ठेण ? गोयमा ! असुरकुमाराण चउव्विहे करणे पण्णत्ते, त जहा—

१६ मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे । इच्चेएण सुभेण करणेण असुरकुमारा करणओ सात वेदण वेदेंति, नो अकरणओ । (श० ६/११)

१७ एव जाव थणियकुमारा । (श० ६/१२)
पुढवीकाइयाण एवामेव पुच्छा नवर ।

१८ इच्चेएण सुभासुभेण करणेण पुढविकाइया करणओ वेमायाए वेदण वेदेंति, नो अकरणओ । (श० ६/१३)

१९. 'वेमायाए' त्ति विविधमात्रया कदाचित्साता कदाचिदसातामित्यर्थं । (वृ० प० २५२)

२० ओरालियसरीरा सव्वे सुभासुभेण वेमायाए ।

२१ देवा सुभेणं साय । (श० ६/१४)

२२ जीवा ण भते ! कि महावेदणा महानिज्जरा ?

२३. महावेदणा अप्पनिज्जरा ? अप्पवेदणा महानिज्जरा ?

२४ अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ?

२५. गोयमा ! अत्थेगतिया जीवा महावेदणा महानिज्जरा,

२६ अत्थेगतिया जीवा महावेदणा अप्पनिज्जरा,

२७ अत्थेगतिया जीवा अप्पवेदणा महानिज्जरा,

२८ अत्थेगतिया जीवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा । (श० ६।१५)

२९ से केणट्ठेण ?
गोयमा ! पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेदणे महानिज्जरे ।

३० छट्ठ-सत्तमासु पुढवीसु नेरइया महावेदणा अप्पनिज्जरा ।

३१. सेलेसिं पडिवन्नए अणगारे अप्पवेदणे महानिज्जरे ।

### सोरठा

३२. "चउदशमे गुणठाण, अल्प वेदना तसु कही ।
बहुलपणै करि जाण, एहवू न्याय जणाय छै ।।

३३. मुनि गजसुकुमालादि, दीसै तसु बहु वेदना ।
ते कारण ए साधि, भजना इहा जणाय छै ।।

३४. अथवा दूजो न्याय, कर्म निर्जरा अति घणो ।
ते देखता ताय, अल्प वेदना सभवै" ।। (ज० स०)

३५ *पच अनुत्तर ना सुरा, अल्प-वेदनावतो ।
अल्प निर्जरा तेहनै, सेव भते! सेव भतो! ।।

३५ अणुत्तरोववाइया देवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ।
(श० ६।१६)
सेव भते! सेव भते! त्ति । (श० ६।१७)

३६. †महावेदना अधिकार पट बे, कर्दम-खजण खरडीइ ।
दृष्टात अरिहण पूल तृण नो, तप्त लोह कवेलीइ ।।

३७. फुन करण चिउ महावेदना भग, सेव भते! जाणीइ ।
ए शतक छट्ठै प्रथमुदेशक, अर्थ एह पिछाणीइ ।।

३६,३७ महावेदणे य वत्थे, कद्दम-खजणकए य
अहिगरणी ।
तणहत्थे य कवल्ले, करण-महावेदणा जीवा ।।
(श० ६ सगहणी गाहा)

षष्ठशते प्रथमोद्देशकार्थ ।।६।१।।

### दूहा

३८. जीव वेदनासहित ते, धुर उद्देश विशेष ।
आहारक ते पिण हुवै, हिव ते आहार उद्देश ।।

३८ अनन्तरोद्देशके य एते सवेदना जीवा उक्तास्ते
आहारका अपि भवन्तीत्याहारोद्देशक ।
(वृ० प० २५२)

३९. राजगृह जाव गोयम कहै, आहार उद्देशो जाणी ।
पन्नवण पद अठवीस में, सर्व इहा पहिछाणी ।।

३९ रायगिह नगर जाव एव वयासी—आहारुद्देसओ जो
पण्णवणाए (पद २८) सो सव्वो निरवसेसो नेयव्वो ।
(श० ६।१८)

४०. सेव भते! अक बासठ तणु, ढाल सत्ताणूमी साची ।
भिक्षु भारिमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' सपति जाची ।।

४० सेव भते! सेव भते! त्ति । (श० ६।१९)

षष्ठशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।।६।२।।

---

* लय राज पामियो रे करकडू कचनपुर तणा रे
† लय : पूज मोटा भाजै

## ढाल : ६८

### दूहा

१. द्वितिय उद्देशे पुद्गला, आहार थकी चितित्त।
इहा ते बंधादिक बहु, कहियै अर्थ विचित्त॥

२. तृतीय उद्देशक आदि मे, संग्रह अर्थ तमाम।
बिहु गाथाइ करि कह्या, बीस द्वार ना नाम॥

३. महाकर्म छै तेहनै, कर्म बंध बहु थाव।
पट नै पुद्गल उपचय, स्यू प्रयोग स्वभाव?

४. पट नै पुद्गल उपचय, आदि सहित सुविचार।
आठ कर्म नी स्थिति कहो, चउथा द्वार मझार॥

५. कर्म आठ बधे वलि, वेद त्रिहु नं संध।
सजत समदृष्टी तणे, सन्नी भव्य नै बंध॥

६. चिउ दर्शण पर्याप्त नै, भासक परित्त कहाय।
ज्ञान जोग उपयोगवत, स्यू अठकर्म बधाय?

७. आहारक सूक्षम चरम मे, अष्ट कर्म स्यू बंध?
अल्पबहुत्व ए सहु तणी, द्वार बीस ए संध॥

८. सक्षेपे करि ए कह्या, बीस द्वार ना नाम।
जुआ-जुआ विस्तार करि, हिव कहिये छै ताम॥

९. [1]मेरा स्वामी वे, महाकर्म छै तास, महाक्रिया छे जेहनें।
मेरा स्वामी वे महा आश्रव छै जास, महावेदन छे तेहनें॥

१०. [†]स्थिती आदि अपेक्षया, महाकर्म जेहनं जाणिय।
फुन कायिकादिक क्रिया मोटी, तेहनै पहिचाणियं॥

११. मिथ्यात प्रमुखज जबर आश्रव, कर्म बंध नो हेतु जसु।
महावेदना महापीडा, वृत्तिकार कह्यु इसु॥

१२. [1]एहवा जीव नै ताय, सहु दिशि थी पुद्गल लह्या।
बज्झति तसु थाय, चिज्जति उवचिज्जति कह्या॥

### सोरठा

१३. सर्व थकी सुविशेष, ते सघली दिश नै विषे।
सघला जीव प्रदेश, बज्झति सकलन थी॥

१४. बज्झति सलग्न, चिज्जति नो अर्थ इम।
संचित करै अभग्न, आतम अघ-बन्धन थकी॥

१५. उवचिज्जति ताहि, ते निषेक रचना थकी।
प्रथम अर्थ वृत्ति माहि, द्वितिय अर्थ कहियै हिवे॥

---

१,२. अनन्तरोद्देशके पुद्गला आहारतश्चिन्तिता, इह तु बन्धादित स्तेषां सम्बन्धस्य तृतीयोद्देशकस्यादावर्थ-संग्रहगाथाद्वयम्— (वृ० प० २५२)

३-७ बहुकम्म वत्थपोग्गल-पयोगसा-वीससा य सादीए।
कम्मट्ठिति त्थि सजय सम्मदिट्ठी य सन्नी य॥
भविए दंसणपज्जत्त भासय परित्ते नाण जोगे य।
उवओगाहारग-सुहुम-चरिमबंधे य अप्पबहु॥
(श० ६, उ० ३ संगहणी गाहा १,२)

९ से नूणं भंते! महाकम्मस्स, महाकिरियस्स, महा-सवस्स, महावेदणस्स

१० महाकर्मणः स्थित्याद्यपेक्षया 'महाक्रियस्य' अलघु-कायिक्यादिक्रियस्य। (वृ० प० २५३)

११ बृहन्मिथ्यात्वादिकर्मबन्धहेतुकस्य 'महावेदनस्य' महापीडस्य। (वृ० प० २५३)

१२ सव्वओ पोग्गला बज्झंति, सव्वओ पोग्गला चिज्जंति, सव्वओ पोग्गला उवचिज्जंति।

१३ 'सर्वत' सर्वासु दिक्षु सर्वान् वा जीवप्रदेशानाश्रित्य बध्यन्ते—आसङ्कलनत। (वृ० प० २५३)

१४ चीयन्ते—बन्धनत। (वृ० प० २५३)

१५ उपचीयन्ते—निषेकरचनत। (वृ० प० २५३)

---

[1] लय : स्वामी म्हारो वे

[†] लय : पूज मोटा भाजे

१६. तथा वज्झति बध, चिज्जति ते निधत्त थी।
उवचिज्जति सध, निकाचित थी इम कह्य ॥

१६ अथवा वध्यन्ते—बन्धनत, चीयन्ते—निधत्तत, उपचीयन्ते—निकाचनत । (वृ० प० २५३)

१७. *सदा निरतर सोय, पुद्गल सकलन थी बध करै।
सदा निरतर जोय, पुद्गल चय उपचय धरै॥

१७ सया समियं पोग्गला वज्झति, सया समिय पोग्गला चिज्जति, सया समिय पोग्गला उवचिज्जति

१८. सदा निरतर तास, बाह्य-आत्म—तनु तेहनो।
दुष्ट रूपपणे जास, शरीर परिणमे जेहनो॥

१८ सया समिय च ण तस्स आया दुरूवत्ताए
यस्य जीवस्य पुद्गला वध्यन्ते तस्यात्मा वाह्यात्मा शरीरमित्यर्थ (वृ० प० २५३)

१९. भूडा वर्णपणै देख, वलि दुर्गन्धपणु लहै।
भूडा रसपणै पेख, भूडा फर्शपणे रहै॥

१९ दुवण्णत्ताए दुगधत्ताए दुरसत्ताए दुफासत्ताए,

२०. अनिष्ट अणवछनेतु, अकांत अणसुदरपणे।
अप्रिय अप्रेम हेतु, अशुभ अमगलपणै घणै॥

२० अणिट्ठत्ताए अकतत्ताए अप्पियत्ताए असुभत्ताए,
'अणिट्ठत्ताए' त्ति इच्छाया अविषयतया, 'अकतत्ताए' त्ति असुन्दरतया, 'अप्पियत्ताए' त्ति अप्रेमहेतुतया 'असुभत्ताए' त्ति अमङ्गलतयतयेत्यर्थः। (वृ प० २५३)

२१. अमणुन्न ते अमनोज्ञ, मन स्यू पिण सुन्दर जाणै नही।
अमणामत्ताए आरोग्य, मनसा सुमिरण हेत ही॥

२१ अमणुण्णत्ताए अमणामत्ताए
'अमणुन्नत्ताए' त्ति न मनसा—भावतो ज्ञायते सुन्दरोऽयमित्यमनोज्ञस्तद्भावस्तत्ता तया, 'अमणामत्ताए' त्ति न मनसा अम्यते—गम्यते सस्मरणतोऽमनोऽम्यस्तद्भावस्तत्ता तया। (वृ० प० २५३)

२२. अणिच्छियत्ताए जास, पामवा नी वाछा नहि करै।
अभिज्झियत्ताए तास, ते ऊपर लोभ न अश धरै॥

२२ अणिच्छियत्ताए अभिज्झियत्ताए
अनीप्सिततया प्राप्तुमनभिवाञ्छितत्वेन 'अभिज्झियत्ताए' त्ति भिध्या—लोभ सा सजाता यत्र सो भिध्यितो न भिध्यितोऽभिध्यितस्तद्भावस्तत्ता तया। (वृ० प० २५३)

२३. अहत्ताए अवलोय, परिणमै तेह जघन्यपणै।
नो उड्ढत्ताए होय, मुख्यपणे तसु नहि गिणै॥

२३ अहत्ताए—नो उड्ढत्ताए,
'अहत्ताए' त्ति जघन्यतया, नो 'उड्ढत्ताए' त्ति न मुख्यतया, (वृ० प० २५३,२५४)

२४. दुखपणै वार वार परिणमै वहु कर्म नों धणी।
सुख नहि पामै सार? जिन कहै हता तिम भणी॥

२४ दुक्खत्ताए—नो सुहत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति ?
हता गोयमा! महाकम्मस्स त चेव।
(श० ६/२०)

२५. किण अर्थे जगनाथ! जिन कहै दृष्टात देय नै।
वस्त्र एक विख्यात, भोगवियो नहि तेहनै॥

२५ से केणट्ठेण ? गोयमा! से जहानामए वत्थस्स अहयस्स वा,
'अहयस्स वा' त्ति अपरिभुक्तस्य। (वृ० प० २५४)

२६. अथवा भोगव्यो तास, धोयो ते वस्त्र पखालियो।
तथा ततुगत जास, तत्र थी तुरत उतारियो॥

२६ धोयस्स वा, ततुग्गयस्स वा
'धोयस्स व' त्ति परिमुज्यापि प्रक्षालितस्य, ततुगयस्स व' त्ति तन्त्रात्—तुरीवेमादेरपनीतमात्रस्य,।
(वृ० प० २५४)

२७. अनुक्रमे वस्त्र तेह, भोगवताज कहाइयै।
सर्व थकी पट जेह, पुद्गल मेल भराइयै॥

२७ आणुपुव्वीए परिभुज्जमाणस्स सव्वओ पोग्गला वज्झति,

* लय . स्वामी भाखै वे

२८. सर्व थकी वलि जोय, पुद्गल मैल तणा चिणै ।
जावत परिणमैं सोय, वस्त्र तेह अशुभपणै ॥

२८ सव्वओ पोग्गला चिज्जंति जाव परिणमंति ।

### सोरठा

२९. वज्झति इत्यादि, पद-त्रय थकी यथोत्तर ।
पट-पुद्गल सबादि, कहि सबध-प्रकर्षता ॥

२९ 'वज्झन्ती' इत्यादिना पदत्रयेणेह वस्त्रस्य पुद्गलानां च यथोत्तरं सम्बन्धप्रकर्ष उक्तः । (वृ० प० २५४)

३०. [*]जाव शब्द मे जाण, पाठ पूर्व सहु लीजियै ।
परिणमैं जिहा लग आण, तिण अर्थेज कहीजियै ॥

३० से तेणट्ठेण । (श० ६/२१)

३१. अल्प कर्म छै तास, अल्प क्रिया छै जेहनैं ।
अल्प आश्रव छै जास, अल्प वेदन छै तेहनैं ॥

३१ से नूणं भंते ! अप्पकम्मस्स, अप्पकिरियस्स, अप्पासवस्स, अप्पवेदणस्स

३२. एहवा जीव नैं ताय, सर्व थकी पुद्गल वही ।
भिज्जति भेद पाय, पूर्व सबध तज सही ॥

३२ सव्वओ पोग्गला भिज्जंति,
''भिज्जंति' त्ति प्राक्तनसम्बन्धविशेषत्यागात्, (वृ० प० २५८)

३३. पुद्गल सर्व थी तेह, छिज्जति छेदपणु लहै ।
सर्व थकी वलि जेह, विद्धसति ते थोड़ा रहै ॥

३३. सव्वओ पोग्गला छिज्जंति, सव्वओ पोग्गला विद्धंसंति,
'विद्धंसंति' त्ति ततोऽध पातात् । (वृ० प० २५४)

३४ पुद्गल सर्व थी जाण, परिविद्धसति कहीजियै ।
समस्तपणै पिछाण, विध्वसपणु लहीजियै ॥

३४. सव्वओ पोग्गला परिविद्धंसंति,
'परिविद्धंसंति' त्ति निःशेषतया पातात् । (वृ० प० २५८)

३५. सदा निरतर पेख, पुद्गल भेद सुदेखियै ।
छेद विध्वस विशेख, समस्त विध्वस विशेखियै ॥

३५ सया समियं पोग्गला भिज्जंति, सया समियं पोग्गला छिज्जंति, सया समियं पोग्गला विद्धंसंति, सया समियं पोग्गला परिविद्धंसंति,

३६. सदा निरतर तास, बाह्य-आतम—तनु तेहनो ।
भला रूपपणै जास, शरीर परिणमैं जेहनो ॥

३६. सया समियं च णं तस्स आया सुरूवत्ताए

३७. प्रशस्त सर्व कहत, यावत सुखपणै सही ।
वार वार परिणमंत, पिण दुखपणै परिणमैं नही ॥

३७ पसत्थं नेयव्वं जाव सुहत्ताए (सं० पा०)—नो दुक्खत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति ?

३८. हता गोयम ! जान, जाव परिणमैं सुखपणै ।
किण अर्थे भगवान ! हिव जिन उत्तर इम भणै ॥

३८. हंता गोयमा ! जाव परिणमंति । (श० ६/२२)
से केणट्ठेणं ?

३९. यथानाम दृष्टांत, जल्लियस्स मलयुक्त वस्त्र नैं ।
पकियस्स ते कहत, आर्द्र मल बहु जिह तणै ॥

३९. गोयमा ! से जहानामए वत्थस्स जल्लियस्स, वा, पंकियस्स वा,
'जल्लियस्स' त्ति मलयुक्तस्य, 'पंकियस्स' त्ति आर्द्रमलोपेतस्य, (वृ० प० २५४)

४०. मइल्लियस्स मल कठिन्न, रइलियस्स रज-युक्त नैं ।
अनुक्रम पट नैं जन्न, शुद्ध करता उपक्रम घनै ॥

४०. मइल्लियस्स वा, रइल्लियस्स वा आणुपुव्वीए परिकम्मिज्जमाणस्स
'मइल्लियस्स' त्ति कठिनमलयुक्तस्य, 'रइल्लियस्स' त्ति रजोयुक्तस्य। 'परिकम्मिज्जमाणस्स' त्ति क्रियमाणशोधनार्थोपक्रमस्य । (वृ० प० २५४)

४१. निर्मल उदक सू ताम, ते पट धोवतां वही ।
सर्व थकी अभिराम, पुद्गल भेद पामै सही ॥

४१ सुद्धेण वारिणा धोव्वेमाणस्स सव्वओ पोग्गला भिज्जंति

---

* लय : स्वामी म्हारै वे

४२. यावत परिणमै जाण, वस्त्र तिकोहिज शुभपणै।
तिण अर्थे पहिछाण, प्रथम द्वार इह विध भणै॥
४३. देश त्रेसठ अक आय, ढाल अठाणूमी कही।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय, 'जय-जश' सुख सपति लही॥

४२. जाव परिणमति। से तेणट्ठेणं। (श० ६/२३)

## ढाल ९९

### दूहा

१. पट ने प्रभु! पुद्गल तणो उपचय—वृद्धि कहाय।
प्रयोग पुरुप व्यापार करि, तथा स्वभावे थाय॥

१ वत्थस्स ण भते! पोग्गलोवचए किं पयोगसा? वीससा?
'प्रयोगेण' पुरुपव्यापारेण विस्रसया स्वभावेनेति। (वृ० प० २५८)

२ जिन कहै पुरुप व्यापार करि, पट-पुद्गल वृद्धि पाय।
स्वभाव करि पिण छै वलि, हिव गोतम पूछाय॥

२ गोयमा! पयोगसा वि, वीससा वि। (श० ६/२४)

३. जिह विध प्रभुजी! पट तणै, पुद्गल-उपचय जोय।
पुरुष व्यापार प्रयोग करि, स्वभाव करि पिण होय॥

३ जहा ण भते! वत्थस्स ण पोग्गलोवचए पयोगसा वि, वीससा वि,

४ तिह विध प्रभुजी! जीव रै, कर्मोपचय वृद्धि कहाय।
त्रिहु प्रयोग करके हुवै, कै स्वभाव कर थाय?

४ तहा ण जीवाण कम्मोवचए किं पयोगसा? वीससा?

५. जिन कहै जीव व्यापार करि, कर्मबध अवलोय।
स्वभाव करि कर्मा तणो, बंध नही छै कोय॥

५ गोयमा! पयोगसा, नो वीससा। (श० ६/२५)

६. स्वभाव थी जो वंध हुवै, तो सिद्ध चउदम ठाण।
तेहनै पिण कर्मां तणो, वध प्रसग पिछाण॥
७. किण अर्थे? तब जिन कहै, जीव तणै सुविचार।
त्रिविध प्रयोग परूपिया, मन वच काय व्यापार॥

७ से केणट्ठेण? गोयमा! जीवाण तिविहे पयोगे पण्णत्ते, त जहा—मणप्पयोगे, वइप्पयोगे, कायप्पयोगे।

८. ए त्रिहु व्यापारे करी, वहु जीवा रै जोय।
कर्म वृद्धि प्रयोग करि, स्वभाव थी नहि होय॥

८ इच्चेएण तिविहेण पयोगेण जीवाण कम्मोवचए पयोगसा नो वीससा।

९. इम सहु पंचेद्री तणै, त्रिहु प्रयोग कर्म-बध।
पचेद्रिय दडक मझै, सन्नी आश्री संध॥

९ एव सव्वेसि पचिंदियाण तिविहे पयोगे भाणियव्वे।

१० इक प्रयोग करि कर्म वृद्धि, एकेद्रिय नै होय।
काय वच दोय प्रयोग करि, विकलेद्रिय नै जोय॥

१० पुढवीकाइयाण एगविहेण पयोगेण एव जाव वणस्सइकाइयाण। विगलिंदियाण दुविहे पयोगे पण्णत्ते, त जहा—वइपयोगे, कायपयोगे य।

११. तिण अर्थे यावत कह्यो, स्वभाव थी नहि होय।
इम जे प्रयोग जेहनै, जाव वैमानिक जोय॥

११. से तेणट्ठेण जाव नो (स० पा०) वीससा। एव जस्स जो पयोगो जाव वेमाणियाण। (श० ६/२६)

१२. "जोग अपेक्षा इहा कह्या, मन वच काय सवादि।
कर्म वध हेतू वलि, न कह्या मिथ्यात्वादि॥

१. आश्रव पांचू जिन कह्या, पचम ठाणे पेख ।
वलि समवायग नै विषे, मिथ्यात्वादि अशेख ॥
८. जीव तणो व्यापार ए, जोग विना अवदात ।
मिथ्यात्वादिक नै विषे, छै तसु इहा न आत ॥

८. जीव क्रिया ना भेद बे, ठाणंग दूजै ठाण ।
धुर सम्यक्त्व क्रिया कही, क्रिया मिथ्यात्व पिछाण ॥

**सोरठा**

६. सम्यक्त्व तत्वश्रद्धान, ते जीव व्यापारपणा थकी ।
क्रिया कहीजै जान, सम्यक्त्व किरिया ते भणी ॥
७. मिथ्या अतत्व श्रद्धान, ते पिण जीव व्यापार छै ।
मिथ्यात्व किरिया जान, प्रथम उद्देशक वृत्ति मे ॥
८. ए कह्यो जीव व्यापार, पिण जोगरूप ए छै नथी ।
त्रिहु जोगा थी न्यार, तेहनो कथन नथी इहा ॥
९. अव्रत नै प्रमाद, वलि कषाय आश्रव थकी ।
कर्मबध सवाद, ए पिण जीव परिणाम छै ॥
०. जीव परिणाम व्यापार, ए च्यारू आश्रव तिके ।
त्रिहु जोगा थी न्यार, तास कथन न कियो इहा ॥
११. आख्या तीन प्रयोग, मन वचन काया तणा ।
ए छै आश्रव जोग, तेहनो कथन इहा कियो ॥"
[ज० स०]

* प्रभु ! वीनतडी अवधार जी, वर प्रश्न गोयम हृद कीधोजी ।
काइ देव देवेन्द्र दयालजी, उत्तर देवै सोधोजी ॥ध्रुपदम्॥

२२. वस्त्र नै पुद्गल तणो, उपचय—वृद्धि थायोजी ।
आदि-सहित अत-सहीत छै ? ए धुर भग पुछायोजी ॥
२३. आदि-सहित अत-रहित छै ? कै अनादि अत-सहीतो ।
कै अनादि अत-रहित छै ? ए चिहुं भग प्रतीतो ॥
२४. ताम कहै जिन पट तणे, पुद्गल उपचय थायो ।
आदि-सहित अत-सहित छै, धोया उतरै ते न्यायो ॥
२५. सादि रु अंत-रहित नही, नही अनादि सअतो ।
आदि-रहित अत-रहित ही, ए पिण भग न हुतो ॥
२६. जिम प्रभुजी ! वस्त्र तणे, पुद्गल उपचय थायो ।
सादि रु अत-सहित छै, त्रिहु भगे न कहायो ॥

२७. तिमहिज वहु जीवा तणे, कर्म नु उपचय होयो ।
चिउ भगे पूछा करी, हिव जिन उत्तर जोयो ॥

१३ पच आसवदारा पण्णत्ता, त जहा—मिच्छत्तं, अविरती, पमादो, कसाया, जोगा ।
(ठाणं ५/१०९)

पच आसवदारा पण्णत्ता त जहा—मिच्छत्तं अविरई पमाया कसाया जोगा । (समवाओ ५।८)

१५ जीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सम्मत्त-किरिया चेव, मिच्छत्तकिरिया चेव । (ठाण २।३)

१६ सम्यक्त्व—तत्वश्रद्धान तदेव जीवव्यापारात् क्रिया सम्यक्त्वक्रिया (ठाण वृ० प० ३७)

१७ एव मिथ्यात्वक्रियाऽपि, नवर मिथ्यात्वम्—अतत्व-श्रद्धान तदपि जीवव्यापार एवेति
(ठाण वृ० प० ३७)

२२ वत्थस्स ण भते ! पोग्गलोवचए कि सादीए सपज्ज-वसिए ?

२३ सादीए अपज्जवसिए ? अणादीए सपज्जवसिए ? अणादीए अपज्जवसिए ?

२४ गोयमा ! वत्थस्स ण पोग्गलोवचए सादीए सपज्ज-वसिए,

२५ नो सादीए अपज्जवसिए, नो अणादीए सपज्जवसिए नो अणादीए अपज्जवसिए । (श० ६।२७)

२६ जहा ण भते ! वत्थस्स पोग्गलोवचए सादीए सपज्ज-वसिए, नो सादीए अपज्जवसिए, नो अणादीए सपज्जवसिए, नो अणादीए अपज्जवसिए,

२७ तहा ण जीवाण कम्मोवचए पुच्छा ।

*लय . कुशल देश सुहामणो

२८. केतलाएक जीवा तणैं, कर्म नों उपचय थायो।
आदि-सहित अंत-सहित ते, ए धुर भंगो पायो॥

२८ गोयमा ! अत्थेगतियाण जीवाण कम्मोवचए सादीए सपज्जवसिए,

२९. केतलाएक जीवा तणै, अनादि अंत-सहीतो।
केतलाएक जीवा तणै, अनादि अंत-रहीतो॥

२९ अत्थेगतियाण अणादीए सपज्जवसिए, अत्थेगतियाण अणादीए अपज्जवसिए,

३०. निश्चै न ह्वै जीवा तणै, कर्म नो उपचय ताह्यो।
सादि रु अंत-रहित ते, ए दूजो भंग न थायो॥

३० नो चेव ण जीवाण कम्मोवचए सादीए अपज्जवसिए।
(श० ६।२८)

३१. किण अर्थे ? तब जिन कहै, इरियावहि सुवदीतो।
उपचय तेह कर्म तणो, सादि रु अंत-सहीतो॥

३१ से केणट्ठेण ? गोयमा ! इरियावहियबंधयस्स कम्मोवचए सादीए सपज्जवसिए,

**सोरठा**

३२. इरियावहि नो बंध, ग्यारम बारम तेरमै।
त्रिहु गुणठाणे संध, आदि-सहित अंत-सहित ते॥

३३. इरियावहि सवादि, पूर्वे कदही नहि बंध्यो।
तेह बंधवै सादि, अंत गुणठाणे चवदमै॥

३२,३३ ईर्यापथो—गमनमार्गस्तत्र भवमैर्यापथिक केवलयोगप्रयोगप्रत्यय कर्मेत्यर्थः तद्बन्धकस्योपशान्तमोहस्य क्षीणमोहस्य सयोगिकेवलिनश्चेत्यर्थ, ऐर्यापथिककर्मणो हि अबद्धपूर्वस्य बन्धनात् सादित्व, अयोग्यवस्थाया श्रेणिप्रतिपाते वाऽबन्धनात् सपर्यवसितत्व।
(वृ० प० २५५)

३४. *कर्मोपचय भवसिद्धिया[1] नै, अनादि अंत-सहीतो।
मोक्षगामी जे जीव छै, ते आश्रयी सुप्रतीतो॥

३४ भवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणादीए सपज्जवसिए,

३५. अभवसिद्धिया नैं अछै, कर्म नु उपचय भारी।
अनादि अंत-रहित ते, तिण अर्थे सुविचारी॥

३५ अभवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणादीए अपज्जवसिए। से तेणट्ठेण। (श० ६।२९)

३६. पट नैं स्यू कहियै प्रभु ! सादि रु अंतसहीतो ?
चउभंगे पूछा करी, जिन उत्तर सुवदीतो॥

३६ वत्थे ण भंते ! किं सादीए सपज्जवसिए—चउभंगो ?

३७. वस्त्र आदि-सहित छै, अंत-सहित पट होयो।
तीनू भागा थाकता[2], ते पावै नहि कोयो॥

३७ गोयमा ! वत्थे सादीए सपज्जवसिए, अवसेसा 'तिण्णि वि' पडिसेहेयव्वा। (श० ६।३०)

३८. प्रभु ! आदि-सहित जिम पट अछै, अंत-सहित पिण जेहो।
शेष त्रिहु भंगा तिके, तास निषेध करेहो॥

३८ जहा ण भंते ! वत्थे सादीए सपज्जवसिए, नो सादीए अपज्जवसिए, नो अणादीए सपज्जवसिए, नो अणादीए अपज्जवसिए,

३९. तिम जीवा स्यू सादिया-अंत-सहित कहाया।
चउभंगे पूछा किया, तब भाखै जिनराया॥

३९ तहा ण जीवा किं सादीया सपज्जवसिया ? चउभंगो — पुच्छा।

४०. जीव कितायक सादिया-अंत-सहितज होई।
च्यारूंई भंगा जिके, भणवा जिन वच जोई॥

४० गोयमा ! अत्थेगतिया सादीया सपज्जवसिया—चत्तारि वि भाणियव्वा। (श० ६।३१)

४१. किण अर्थे ? तब जिन कहै, नरक तिरि मनु देवा।
ए गति आगति आश्रयी, सादि-सअंत कहेवा॥

४१ से केणट्ठेण ? गोयमा ! नेरतिय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवा गतिरागतिं पडुच्च सादीया सपज्जवसिया।

**सोरठा**

४२. नरकादिक रै माय, सादि गमन आश्री अछै।
वलि आगमन कराय, ते आश्रयी सअंत छै॥

४२ नारकादिगतौ गमनमाश्रित्य सादय —आगमनमाश्रित्य सपर्यवसिना। (वृ० प० २५५)

---

*लय : कुशलदेश सुहामणो

१. भव्य २ अवशेष

ा गति आश्री तसु, आदि-सहित कहिवायो ।
-रहित कह्या वलि, अल्पकाल पेक्षायो ॥

### सोरठा

तराध्येन मझार छत्तीसम अध्ययन में ।
ठमी सुविचार गाथा में अधिकार ए ॥
ठ्न इक सिद्धापेक्षाय, आदि-सहित अंत-रहित छै ।
सिद्ध आश्री ताय, आदि-रहित अंत-रहित ए" ॥
(ज० स०)

ऽ्पणा नी लब्धि आश्रयी, भवसिद्धिया नें ताह्यो ।
ादि अंत-सहित छै, ए मुक्तिगामी कहिवायो ॥

वसिद्धिया जीवडा, संसार आश्री जाणी ।
ादि अंत-रहित छै, तिण अर्थे इम वाणी ॥
प्रकृति प्रभु ! केतली ? आठ कहै जिनरायो ।
ावरणी आदि दे, यावत वलि अंतरायो ॥

ावरणी कर्म नीं, बंध-स्थिति केतलो कालो ?
जिन भाखै जघन्य थी, अंतर्मुहूर्त निहालो ॥
कृष्टी ए तीस छै, सागर कोडाकोडो ।
र सहस्र वर्षा तणो, काल अबाधा जोडो ॥

### दूहा

उदय बाधा कह्यु, कर्म उदय नहिं आय ।
अबाधा नु अरथ, बंध उदय विच ताय ॥
त्कृष्टी स्थिति नो बध्यो, ज्ञानावरणी जेह ।
न सहस्र वर्षा लगे, उदय न आवै तेह ॥
न ए कर्म नों बंध नु, अनें उदय नों काल ।
न अबाधा काल ए, तीन सहस्र वर्ष न्हाल" ॥
(ज० स०)

अबाधा ऊण जे, कर्म-स्थिति छै जेह ।
-निषेक हुवै तसु, उदय आया थी एह ॥

दलिक नें भोगवा, तसु रचना सुविशेख ।
निषेक नाम तसुं, प्रवर न्याय संपेख ॥
म समय बहु भोगवै, द्वितिय समय वलि जाण ।
शो थोड़ भोगवै, तीजे अल्प पिछाण ॥

[illegible]

[illegible]

४३ सिद्धा गतिं पडुच्च सादिया अपज्जवसिया,

४५ एगत्तेण साईया, अपज्जवसिया वि य ।
पुहुत्तेण अणाईया, अपज्जवसिया वि य ॥
(उत्तर० ३६।६५)

४६ भवसिद्धिया लद्धिं पडुच्च अणादीया सपज्जवसिया, 'भवसिद्धिया लद्धिं' मित्यादि, भवसिद्धिकाना भव्यत्वलब्धि सिद्धत्वेऽपैतीति कृत्वाऽनादिसपर्यवसिता चेति । (वृ० प० २५५)

४७. अभवसिद्धिया संसारं पडुच्च अणादीया अपज्जवसिया । से तेणट्ठेणं । (श० ६।३२)

४८ कति णं भंते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—नाणावरणिज्जं दरिसणावरणिज्जं जाव (सं० पा०) अंतराइयं । (श० ६।३३)

४९. नाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवतियं कालं बंधट्ठिती पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

५० उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा,

५१ बाधा—कर्मण उदयः न बाधा अबाधा—कर्मणो बन्धस्योदयस्य चान्तरं । (वृ० प० २५५)

५४ अबाहूणिया कम्मट्ठिती—कम्मनिसेओ ।
अबाधया—उक्तलक्षणया ऊनिका अबाधोनिका कर्मस्थितिः कर्मावस्थानकालः उक्तलक्षणः कर्मनिषेको भवति । (वृ० प० २५५)

५५ तत्र कर्मनिषेको नाम कर्मदलिकस्यानुभवनार्थं रचनाविशेषः । (वृ० प० २५५)

५६ तत्र च प्रथमसमये बहुकं निषिञ्चति द्वितीयसमये विशेषहीनं तृतीयसमये विशेषहीनम्,
(वृ० प० २५५)

५७. इह विध भोगवता छतां, चरम समय अवधार ।
अतिही अल्पज भोगवै, ए निषेक सुविचार ।।

५८. *दर्शणावरणी दूसरो, इणहिज विध अवलोयो ।
जघन्य स्थिति वेदनी तणी, कहियै समया दोयो ।।

५९. ग्यारम बारम तेरमें, गुणठाणे ए बंधो ।
भेद सातावेदनी तणो, इरियावहि जिनचंदो ।।

६०. स्थिति समय बे जेहनी, पढम समय बंध पत्तो ।
बीजे समये भोगवै, केवल जोग निमित्तो ।।

६१. सकषाई रै सातावेदनी, बंधै ए संपरायो ।
द्वादश मुहूर्त्त जघन्य थी, तेवीसमां[1] पद मांह्यो ।।

६२. उत्कृष्ट स्थिति वेदनी तणी, ज्ञानावरणी तिम जाणी ।
जघन्य स्थिति मोहणी तणी, अंतर्मुहूर्त्त पिछाणी ।।

६३. उत्कृष्ट स्थिति मोहणी तणी, सित्तर सागर कोडाकोडो ।।
सात सहस्र वर्षा तणो, काल अबाधा जोड़ो ।।

६४. जघन्य स्थिति आउखा तणी, अंतर्मुहूर्त्त आखी ।
उत्कृष्टी वलि तेहनी, सागर तेतीस भाखी ।।

६५. पूर्व कोड तणो वलि, अधिक तीजो भाग जोयो ।
कर्म-स्थिति एहनें विषे, कर्म-निषेकज होयो ।।

६६. नाम गोत्र नी स्थिति कही, जघन्य मुहूर्त्त अठ जोडो ।
उत्कृष्टी स्थिति तेहनी, वीस सागर कोडाकोडो ।

६७. दोय सहस्र वर्षा तणो, काल अबाधा आख्यो ।
अबाधा ऊणी स्थिति विषे, कर्म-निषेकज भाख्यो ।।

६८. स्थिति कर्म अंतराय नी, ज्ञानावरणो जेमो ।
तुर्य द्वार ए आखियो, सुध सरध्या सुख खेमो ।।

६९. कर्म ज्ञानावरणी प्रभु ! स्त्री पु नपुसक बांधै ।
तथा अवेदी रै बंधै ? हिव जिन उत्तर साधै ।।

७०. त्रिहु वेदी बांधै सही, अवेदी रै कहाइ ।
कदाचित बांधै अछै, कदाचि नहीं बंधाइ ।।

## दूहा

७१. "दशमा गुणठाणा लगै, ज्ञानावरणी बंध ।
आगल ते बंधै नहीं, भजना कर इम संध ।।

---

*लय . कुशल देश सुहामणो

[1] प० प० २३।६३ ।

५७ एव यावदुत्कृष्टस्थितिकं कर्मदलिकं तावद्विशेषहीनं निषिञ्चति । (वृ० प० २५५)

५८ एवं दरिसणावरणिज्जं पि । (स० पा०)
वेदणिज्जं जहण्णेणं दो समया,

६०,६१ केवलयोगप्रत्ययबन्धापेक्षया वेदनीयं द्विसमयस्थितिकं भवति, एकत्र बध्यते द्वितीये वेद्यते, यच्चोच्यते 'वेयणियस्स जहन्ना बारस' · · तत्सकषायस्थितिबन्धमाश्रित्येति वेदितव्यम् ।
(वृ० प० २५७)

६२. उक्कोसेणं जहा नाणावरणिज्जं । (स० पा०)
मोहणिज्जं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं ।

६३ उक्कोसेणं सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ, सत्त य वाससहस्साणि अबाहा,

६४ आउगं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाणि

६५ पुव्वकोडितिभागमब्भहियाणि कम्मट्ठिती—कम्मनिसेओ ।

६६ नामगोयाणं जहण्णेणं अट्ठमुहुत्ता, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ ।

६७ दोण्णि य वाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिती—कम्मनिसेओ ।

६८ अंतराइयं जहा नाणावरणिज्जं । (स० पा०)
(श० ६।३४)

६९ नाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी बंधइ ? पुरिसो बंधइ ? नपुंसओ बंधइ ? नो इत्थी नो पुरिसो नो नपुंसओ बंधइ ?

७० गोयमा ! इत्थी वि बंधइ, पुरिसो वि बंधइ, नपुंसओ वि बंधइ । नो इत्थी नो पुरिसो नो नपुंसओ सिय बंधइ सिय नो बंधइ ।

७२ नवमें गुण आयू विना, सप्त कर्म वंधाय।
दशमें ग्रंधे कर्म षट, आयु मोह विण ताय''॥
(ज० स०)

७३. *इम आयू वरजी करी, सात कर्म कहिवायो।
आयू त्रिहुं वेदो तिके, भजनाइ वधायो॥

७३. एवं आउगवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ।
(श० ६।३५)

आउग ण भते ! कम्म किं इत्थी वंधइ ? पुरिसो बधइ ? नपुसओ वधइ ? नोइत्थी नोपुरिसो नोनपुसओ वधइ ?
गोयमा ! इत्थी सिय वधइ, सिय नो वंधइ। पुरिसो सिय वधइ, सिय नो वधइ। नपुसओ सिय वंधइ सिय नो वधइ। नोइत्थी नोपुरिसो नोनपुसओ न वधइ। (श० ६।३६)

### यतनी

७४. ''आयु वध काले वधाय, अन्य काले न वांधै ताय।
तिण सू भजना त्रिहु वेद माहि, अवेदी रै आयु वधै नाहि॥
७५. आयु प्रारम्भ्यो छट्ठे जेह, सातमे पिण वांधै तेह।
अवेदी नवमा थी कहाय, तिण सू अवेदी रै न वधाय''॥
(ज० स०)

७६. देश त्रेसठमा अक नो, निन्नाणूमी ढालो।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरष विशालो॥

## ढाल १००

### दूहा

१ ज्ञानावरणी कर्म प्रभु ! स्यू सजति बांधत ?
असजती वांधै अछै ? सजतासजती हुंत ?

१ नाणावरणिज्ज णं भते ! कम्म किं सजए वधइ ? अस्सजए वंधइ ? संजयासंजए वधइ ?

२. नोसजति नोअसजति, सजतासजति नाय।
एहवा सिद्ध वाधै अछै ? हिव जिन भाखै वाय॥

२ नोसजए नोअसजए नोसजयासजए वधइ ?

३. सजति रै वधै कदा, कदाचि नहि वधाय।
चिहु चारित्रिया रे वधै, यथाख्यात में नाय॥

३ गोयमा ! सजए सिय वधइ, सिय नो वधइ।
'सयत' आद्यसंयमचतुष्टयवृत्तिर्ज्ञानावरण वध्नाति, यथाख्यातसयतस्तूपशान्तमोहादिर्न वध्नाति।
(वृ० प० २५६)

४. असजती गुणठाण चिहु, ते पिण वाधै एह।
संजतासजति पचमे, गुणठाणे बाधेह॥

४ अस्सजए वधइ, सजयासजए वि वधइ।
असयतो मिथ्यादृष्ट्यादि सयतासयतस्तु देशविरत।
(वृ० प० २५६)

५. नोसजति नोअसजति, सजतासजत नाहि।
तेहनै पिण वधै नही, सिद्ध कहीजै ताहि॥

५ नोसजए नोअस्सजए नो संजयासजए न वधइ।
निषिद्धसयमादिभावस्तु सिद्ध। (वृ० प० २५६)

---

*लय . कुशल देश सुहामणो

६. इम आयू वरजो करी, सात कर्म पहिछाण ।
आयू नी पूछा कियां, उत्तर इह विध जाण ।।
७. सजति असजति वलि, सजतासजति न्हाल ।
वध काले बाधै त्रिहु, नहिं बांधै अन्य काल ।।
८. ते माटै भजना कही, धुरला त्रिहु नै ताय ।
ऊपरलो त्रिहु रहित सिद्ध, तसु आयू न बधाय ।।

६. एवं आउगवज्जाओ सत्त वि ।

७,८ आउगे हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, उवरिल्ले न बधइ । (श० ६।३७)
सयतोऽसयत सयतासयतश्चायुर्बन्धकाले बध्नाति अन्यदा तु नेति भजनयेत्युक्त, सयतादिपूपरितनः सिद्ध स चायुर्न बध्नाति । (वृ० प० २५६)

*कर जोडी गोयम कहै । (ध्रुपदम्)

९. ज्ञानवरणी स्यू प्रभु ! समदृष्टि बांधतो जो ?
मिथ्यादृष्टि बांधतो, समामिच्छदिट्ठी हुतो जो ?

९ नाणावरणिज्ज ण भते ! कम्म किं सम्मदिट्ठी बधइ ? मिच्छदिट्ठी बधइ ? सम्मामिच्छदिट्ठी बधइ ?

१०. जिन कहै समदृष्टी तिको, कदाचित बाधतो ।
कदाचित बाधै नही, तास न्याय इम हुंतो ।।
(वीर कहै सुण गोयमा !)

१० गोयमा ! सम्मदिट्ठी सिय बधइ, सिय नो बधइ ।

### सोरठा

११. राग-सहित समदृष्ट, तेहनै ए वधै अछै ।
वीतराग मुनि इष्ट, तेह तणे वधै नथी ।।

११ सम्यग्दृष्टि वीतरागस्तदितरश्च स्यात्तत्र वीतरागो ज्ञानावरण न बध्नाति एकविधबन्धकत्वात् इतरश्च बध्नातीति स्यादित्युक्त, (वृ० प० २५६)

१२. *मिथ्यादृष्टि सम्मामिथ्या, ए बेहु रै वधायो ।
इम आयू वरजो करी, सात कर्म कहिवायो ।।
१३. हिवै आउखो कर्म ते, समदृष्टि रै ताह्यो ।
वलि मिथ्यादृष्टी तणे, भजनाइ वंधायो ।।

१२ मिच्छदिट्ठी बंधइ, सम्मामिच्छदिट्ठी बधइ । एवं आउगवज्जाओ सत्त वि ।
१३ आउगे हेट्ठिल्ला दो भयणाए,

### यतनी

१४. आठमां थी आयु न वंधाय, और समदृष्टि रै ताय ।
वध काले आउखो बाधै, अन्य काले आयु नहिं साधै ।।
१५. इम मिथ्यादृष्टि रै ताय, बध काले आउखो वधाय ।
अन्य काल विषे न बधाय, तिण सू भजना कही जिनराय ।।

१४. इतरस्तु आयुर्बन्धकाले तद् बध्नाति अन्यदा तु न बध्नाति । (वृ० प० २५६)
१५ एव मिथ्यादृष्टिरपि । (वृ० प० २५६)

१६. *मिश्रदृष्टि बाधै नही, आयुवध अध्यवसायो ।
ते स्थानक ना अभाव थी, तास अवध कहायो ।।

१६ सम्मामिच्छदिट्ठी न बधइ । (श० ६।३८)
मिश्रदृष्टिस्त्वायुर्न बध्नात्येव तद्वन्धाध्यवसायस्थानाभावादिति । (वृ० पं० २५६)

१७. ज्ञानवरणी स्यू सन्नी, कै असन्नी बाधतो ?
'सन्नी असन्नी बिहु नही',[1] ते बाधै भगवतो ?
१८. जिन कहै सन्नी बांधै कदा, कदाचित नहिं बाधतो ।
अवध ग्यारमै बारमै, अन्य तणे वध हुतो ।।

१७ नाणावरणिज्ज ण भते ! कम्म किं सण्णी बधइ ? असण्णी बधइ ? नोसण्णी नोअसण्णी बधइ ?
१८ गोयमा ! सण्णी सिय बधइ, सिय नो बधइ ।
स च यदि वीतरागस्तदा ज्ञानावरण न बध्नाति यदि पुनरितरस्तदा बध्नाति । (वृ० प० २५६)

---

*लय : कर जोड़ी आगल रही
१ नोसन्नी नोअसन्नी

१९. असन्नी ए बाधै सही, सन्नी असन्नी नांही।
ते तो ए बाधै नही, केवली सिद्ध ते माही॥

१९. असण्णी बंधइ। नोसण्णी नोअसण्णी न बंधइ।
'नोसन्नीनोअसन्नि' त्ति केवली सिद्धश्च न बध्नाति।
(वृ० प० २५६)

२०. वेदनी आयू वरज नै, इम छ कर्म कहिवायो।
वेदनी सन्नी बाधै अछै, असन्नी पिण बाधै ताह्यो॥

२०. एवं वेदणिज्जाउगवज्जाओ छ कम्मपगडीओ। वेद-
णिज्जं हेट्ठिल्ला दो बधंति।
सञ्ज्ञी असञ्ज्ञी च वेदनीयं बध्नीत.,
(वृ० प० २५६)

२१. सन्नी असन्नी बिहु नही, ए भजनाइ बांधै।
तेरम गुणठाणे बधै, सिद्ध अजोगी न साधै॥

२१. उवरिल्ले भयणाए।
नोसञ्ज्ञीनोअसञ्ज्ञी, स च सयोगायोगकेवली सिद्धश्च, तत्र यदि सयोगकेवली तदा वेदनीयं बध्नाति, यदि पुनरयोगिकेवली सिद्धो वा तदा न बध्नाति। (वृ० प० २५६)

२२. आउखो सन्नी असन्निया, भजनाइ बंधायो।
सन्नी असन्नी बिहु नही, तास अबध कहायो॥

२२. आउगं हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले न बधइ।
(श० ६।३९)

## दूहा

२३. "ज्ञानावरणी क्षयोपशमे, भाव मन जसु होय।
सन्नी कहियै तेहनै, बारम गुण लग जोय॥
२४. ज्ञानवरणी कर्म नों, तेरम क्षायक थाय।
केवलज्ञानी ते भणी, सन्नी कहियै नाय"॥
(ज० स०)

२५. *ज्ञानावरणी स्यू प्रभु! भवसिद्धिक जे बांधै?
कै बाधै अभवसिद्धियो, नोभव नोअभव साधै?

२५ नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं भवसिद्धिए बधइ? अभवसिद्धिए बधइ? नोभवसिद्धिए नोअभव-सिद्धिए बधइ?

२६. जिण भाखै भवसिद्धियो, भजनाइ करि बाधै।
वीतराग बाधै नही, सरागी भव[1] साधै॥

२६. गोयमा! भवसिद्धिए भयणाए,
भवसिद्धिको यो वीतराग: स न बध्नाति ज्ञानावरणं तदन्यस्तु भव्यो बध्नातीति। (वृ० प० २५६)

२७. अभवसिद्धिक बाधै अछै, भव्य-अभव्य बिहु नाही।
तेहनै पिण बधै नही, सिद्ध कह्या इण माही॥

२७ अभवसिद्धिए बधइ। नोभवसिद्धिए नोअभवसिद्धिए न बधइ।
'नोभवसिद्धिएनोअभवसिद्धिए' त्ति सिद्ध,
(वृ० प० २५६)

२८. इम आयू वर्जी करी, सात कर्म कहिवायो।
आयु भव्य अभव्य बिहु, भजनाइ बधायो॥
२९. भव्य अभव्य दोनू नही, तेहनै सिद्ध कहीजै।
सिद्ध आयु बाधै नही, सुख अविचल सलहीजै॥

२८ एवं आउगवज्जाओ सत्त वि। आउगं हेट्ठिला दो भयणाए।
२९ उवरिल्ले न बधइ। (श० ६।४०)
'उवरिल्ले न बधइ' त्ति सिद्धो न बध्नातीत्यर्थः
(वृ० प० २५६)

३०. ज्ञानावरणी स्यू प्रभु! चक्षु-दर्शनी बाधै?
अचक्षु-अवधिदर्शनी, केवलदर्शनी साधै?

३० नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं चक्खुदसणी बधइ? अचक्खुदसणी बधइ? ओहिदसणी बधइ? केवलदसणी बधइ?

*लय कर जोड़ी आगल रही
1 भवसिद्धिक

३१. जिन कहै धुर त्रिहु दर्शनी, भजनाइ बंधायो।
ग्यारम बारम नहि बधै, बध सरागी रै थायो॥

३१ गोयमा! हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए,
चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनिनो यदि छद्मस्थवीतरागास्तदा न ज्ञानावरण बध्नन्ति, वेदनीयस्यैव वन्धकत्वात्तेषा, सरागास्तु वध्नन्ति। (वृ० प० २५६)

३२. वारू केवलदर्शनी, तेहनै ए न बधायो।
इम वेदनी वर्जी करी, सात कर्म कहिवायो॥

३२ उवरिल्ले न वधइ।
एव वेदणिज्जवज्जाओ सत्त वि।

३३. वेदनी धुर त्रिहु दर्शनी, बांधै छै अवलोयो।
भजनाइ केवलदर्शनी, तास न्याय इम होयो॥

३३. वेदणिज्ज हेट्ठिल्ला तिण्णि वधति, केवलदसणी भयणाए। (श० ६।४१)

## सोरठा

३४. कर्म वेदनी जोय, तेरम गुणठाणै बधै।
चवदम गुण सिद्ध सोय, तास वेदनी नहिं बधै॥

३४ केवलदर्शनी सयोगिकेवली बध्नाति अयोगिकेवली सिद्धश्च वेदनीय न बध्नातीति। (वृ० प० २५६)

३५. *ज्ञानावरणी पर्याप्तो, कै अपर्याप्तो बाधै?
पज्जत अपज्जत विहुं नही, ते बाधेवू साधै?

३५ नाणावरणिज्ज ण भते! कम्म कि पज्जत्तए वधइ? अपज्जत्तए बधइ? नोपज्जत्तए नोअपज्जत्तए वधइ?

३६. जिन भाखै पर्याप्तो, भजनाइ करि साधै।
कदाचित बाधै अछै, कदाचित नहि बाधै।

३६ गोयमा! पज्जत्तए भयणाए,

## यतनी

३७. पर्याप्त वीतरागी होय, वले सरागी पिण अवलोय।
ज्ञानावरणी सरागी बधाय, वीतरागी रै ए बध नाय॥

३७ पर्याप्तको वीतराग सरागश्च स्यात्तत्र वीतरागो ज्ञानावरण न बध्नाति सरागस्तु बध्नाति। (वृ० प० २५६)

३८. *अपर्याप्त बाधै सही, ज्ञानावरणी ताह्यो।
पज्जत अपज्जत बिहु नहि, ते सिद्ध रै न बंधायो॥

३८. अपज्जत्तए बधइ। नोपज्जत्तए नोअपज्जत्तए न वधइ।

३९. इम आयू वर्जी करी, सात कर्म नु विरततो।
आयू पज्जत अपज्जत नै, भजनाइ बंध हुतो॥

३९ एव आउगवज्जाओ सत्त वि। आउग हेट्ठिल्ला दो भयणाए,

## यतनी

४०. आयु कर्म पर्याप्तो जाण, वले अपर्याप्तो पिछाण।
बिहु बंध काले बाधत, अन्य काले बध न हुत॥

४० पर्याप्तकापर्याप्तकावायुस्तद्वन्धकाले वध्नीतोऽन्यदा नेति भजना। (वृ० प० २५६)

४१ *पज्जत अपज्जत बिहु नही, ते तो सिद्ध शोभाया।
ते आउखो बाधै नही, जामण मरण मिटाया॥

४१ उवरिल्ले न वधइ। (श० ६।४२)

४२ ज्ञानावरणी स्यू प्रभु! भाषक बाधै सोई।
अभाषक बाधै अछै? जिन कहै भजना दोई।

४२ नाणावरणिज्ज ण भते! कम्म कि भासए वधइ? अभासए वधइ?
गोयमा! दो वि भयणाए।

## यतनी

४३ भाषा-लब्धिवत पहिछान, तेहनै भाषक कहियै जान।
तेहथी अन्य जीव जे होय, तिणनै कहियै अभापक सोय॥

४३ भापको—भापालब्धिमास्तदन्यस्त्वभापक', (वृ० प० २५६, २५७)

*लय : कर जोड़ी आगल रही

४४ भाषक सरागी नै वीतरागी, ज्ञानावरणी कर्म जे सागी ।
वीतरागी रै नहि वधाय, सरागी रै ते बध कहाय ।।

४४. तत्र भाषको वीतरागो ज्ञानावरणीयं न बध्नाति सरागस्तु बध्नाति । (वृ० प० २५७)

४५. अभाषक एकेंद्रिय होय, वलि विग्रहगतिया सोय ।
वले सिद्ध अजोगी जोय, केवल समुद्घाते पिण होय ।।

४६. ज्ञानावरणी एकेंद्रिय बाधै, वलि विग्रहगतिया साधै ।
अन्य अभाषक रै न वधाय, तिण सू भजना कही जिनराय ।।

४५,४६. अभाषकस्त्वयोगी सिद्धश्च न बध्नाति पृथिव्यादयो विग्रहगत्यापन्नाश्च बध्नन्तीति । (वृ० प० २५७)

४७ *एव वेदनी वर्ज नै, सात कर्म कहिवाइ ।
भाषक बाधै वेदनी, अभाषक भजनाइ ।।

४७ एव वेदणिज्जवज्जाओ सत्त वि । वेदणिज्ज भासए बधइ, अभासए भयणाए । (श० ६।४३)

## यतनी

४८ तेरमै गुणठाणै ताय, समुद्घाती अभासक थाय ।
सातावेदनी वधक ताम, तिण रो इरियावहि छै नाम ।।

४६ वलि अभापक एकेंद्रिय ताय, तिण रै वेदनी नु वंध पाय ।
वलि विग्रहगतिया रै बधाय, अयोगी सिद्ध बाधै नाय ।।

४६. अभापकस्त्वयोगी सिद्धश्च न बध्नाति पृथिव्यादिकस्तु बध्नातीति भजना (वृ० प० २५७)

५० *ज्ञानावरणी परित्त स्यू, कै अपरित्त बाधतो ?
परित्त अपरित्त विहु नही, तेहनै ए बध हुंतो ?

५० नाणावरणिज्ज ण भते ! कम्म किं परित्ते बंधइ ? अपरित्ते बधइ ? नोपरित्ते नोअपरित्ते बधइ ?

## सोरठा

५१. "अठारमा पद माय, जीवाभिगम[1] विषे वलि ।
आख्यो तिम कहिवाय, लक्षण परित्त अपरित्त नो ।।

५२. परित्तपणै भगवान ? रहे परित्त अद्धा कितो ?
जिन कहै द्विविध जान, काय-परित्त ससार फुन ।।

५२. परित्ते ण भते ! परित्ते त्ति कालओ केवचिर होइ ? गोयमा ! परित्ते दुविहे पण्णत्ते, त जहा—कायपरित्ते य संसार-परित्ते य । (प० १८।१०६)
कायपरित्ते ण भते ! कालओ केवचिर होइ ?

५३ काय-परित्त पहिछान, अतर्मुहूर्त्त जघन्य थी ।
काल असख्या जान, ए उत्कृष्ट थकी रहै ।।

५३. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेणं पुढविकालो—असखेज्जाओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ । (प० १८।१०७)

५४. परित्त-संसार उदत, अतर्मुहूर्त्त जघन्य थी ।
उत्कृष्ट काल अनत, जाव देसूण पुग्गल अवड्ढ ।।

५४ ससारपरित्ते ण भते ! ससारपरित्ते त्ति कालओ केवचिर होइ ?
गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण अणत काल—अवड्ढ पोग्गलपरियट्ट देसूण । (प० १८।१०६)

५५ अपरित्त दोय प्रकार, प्रथम काय-अपरित्त कह्यो ।
वलि अपरित्त-संसार, एहनू भमवू वहु अद्धा ।।

५५ अपरित्ते ण भते ! अपरित्ते त्ति कालओ केवचिर होइ ?
गोयमा ! अपरित्ते दुविहे पण्णत्ते, त जहा—काय-अपरित्ते य ससार-अपरित्ते य । (प० १८।१०६)

---

*लय : कर जोड़ी आगल रही

1. जीवाभिगमे पडिवत्ती ६।७६-८१

५६. जीवाभिगम वृत्त, साधारण कायाऽपरित्त।
वलि ससाराऽपरित्त, कृष्णपक्षि इहविध कह्यो॥
५७ जे ससार-परित्त, उत्कृष्टो देसूण जे।
पुद्गल अवड्ढ कथित्त, एह शुक्लपाक्षिक अछै॥
५८ तिण लेखै सुविचार, जे अपरित्त-ससार ते।
कृष्णपक्षि अवधार, वृत्ति विषे तसु न्याय इम॥
५९ कह्यो काय-अपरित्त, अतर्मूहूर्त्त जघन्य थी।
उत्कृष्टो उचरित्त, काल वनस्पति नो तसु॥
६० जे अपरित्त-ससार, दोय प्रकारे पाठ मे।
आदि-रहित अवधार, अत-रहित अभव्य ए॥
६१ अथवा आदि-रहीत, अत-सहित भव्य जीव जे।
लहिस्यै मुक्ति पुनीत, ए विहु भेदज सूत्र मे''॥
(ज० स०)
६२ *श्री जिन भाखै गोयमा,! ज्ञानावरणी कर्मो।
परित्त बाधै भजना करी, तेहनो छै ए मर्मो॥

५६ कायापरीत्त साधारण ससारापरीत्त' कृष्णपाक्षिक।
(जी० वृ० प० ४४६)
५७,५८ उत्कर्षेण अनन्त काल, अनन्ता उत्सर्प्पिण्यवसर्प्पिण्य कालत, क्षेत्रतो देशोनमपार्द्ध पुद्गलपरावर्तं यावत्, तत ऊर्ध्वं नियमत सिद्धिगमनाद्, अन्यथा ससारपरीतत्वायोगात्। (जी० वृ० प० ४४६)
५९ काय अपरित्ते ण भते! ........
गोयमा! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण वणप्फइकालो। (प० १८।११०)
६० ससारअपरित्ते ण भते! ........
गोयमा! ससारअपरित्ते दुविहे पण्णत्ते, त जहा—अणादीए वा अपज्जवसिए,
६१ अणादीए वा सपज्जवसिए। (प० १८।१११)
६२ गोयमा! परित्ते भयणाए,

**यतनी**

६३ परित्त सरागी नै वीतरागी, ज्ञानावरणी कर्म जे सागी।
सरागी रै बध थाय, वीतरागी रै नहि बधाय॥
६४ *अपरित्त रै बधै अछै, ज्ञानावरणी ताह्यो।
नोपरित्त नोअपरित्त छै, तेहनै तो न बधायो॥
६५ इम आयू वर्जी करी, सात कर्म कहिवायो।
आयु परित्त अपरित्त पिण, भजनाइ बध थायो॥

६३ 'परीत्त' प्रत्येकशरीरोऽल्पससारो वा स च वीतरागोऽपि स्यात् न चासौ ज्ञानावरणीय बध्नाति, सरागपरीत्तस्तु बध्नातीति भजना। (वृ० प० २५७)
६४ अपरित्ते बधइ। नोपरित्ते नोअपरित्ते न बधइ।
६५. एव आउगवज्जाओ सत्तकम्मपगडीओ। आउय परित्ते वि अपरित्ते वि भयणाए,

**यतनी**

६६. परित्त अपरित्त दोनू इ न्हाल, आयु बाधै छै बध काल।
पिण सर्व काले न बधाय, तिण सू भजना कही जिनराय॥
६७. *नोपरित्त नोअपरित्त ते, आउखो न बाधतो।
सदा काल सुख सासता, ए छै सिद्ध भगवतो॥
६८. ज्ञानावरणी कर्म स्यू मतिज्ञानी बाधतो ?
श्रुत अवधि मनपर्यवा, केवलज्ञानी महृतो ?
६९. जिन कहै धुर ज्ञानी चिउ, ज्ञानावरणी ताह्यो।
भजनाइ बाधै अछै, केवलधर न बधायो॥

६६ प्रत्येकशरीरादि आयुर्बन्धकाल एवायुर्बध्नातीति न तु सर्वदा ततो भजना। (वृ० प० २५७)
६७ नोपरित्ते नोअपरित्ते न बधइ। (श० ६।१४४)
६८ नाणावरणिज्ज ण भते! कम्म किं आभिणिबोहियनाणी बधइ ? सुयनाणी बधइ ? ओहिनाणी बधइ ? मणपज्जवनाणी बधइ ? केवलनाणी बधइ ?
६९ गोयमा! हेट्ठिल्ला चत्तारि भयणाए। केवलनाणी न बधइ।

*लय : कर जोडी आगल रही

### यतनो

७० चिउं ज्ञानी सरागी वीतरागी, सरागी र बंधै छै सागी।
वीतरागी पिण छद्मस्थ ताय, त्यारै ज्ञानावरणी न बंधाय ॥

७०. आभिनिबोधिकज्ञानिप्रभृतयश्चत्वारो ज्ञानिनो ज्ञानावरण वीतरागावस्थायां न बध्नन्तीति सरागावस्थायां तु बध्नन्तीति भजना। (वृ० प० २५७)

७१. *कर्म वेदनी वर्ज नैं, सात कर्म इम जोयो।
वेदनी धुर ज्ञानी चिहु, बांधै छै अवलोयो ॥

७२. केवलज्ञानी वेदनी, बांधै छै भजनाइ।
तेरम गुणठाणे बंधै, चवदम नहि बंधाइ ॥

७१. एवं वेदणिज्जवज्जाओ सत्त वि। वेदणिज्जं हेट्ठिल्ला चत्तारि बंधति,

७२. केवलनाणी भयणाए। (श० ६।४५)
सयोगिकेवलिना वेदनीयस्य बन्धनादयोगिना सिद्धाना चाबन्धनाद्भजनेति। (वृ० प० २५७)

७३. ज्ञानावरणी स्यूं प्रभु! त्रिहु अज्ञानी बांधतो?
जिन कहै अज्ञानी त्रिहु, बांधै तेह अत्यतो ॥

७४. इम आयू वरजी करी, सात कर्म कहिवायो।
आऊखो भजना करी, बंध काले बंध न्यायो ॥

७३, ७४. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं मइअण्णाणी बंधइ? सुयअण्णाणी बंधइ? विभंगणाणी बंधइ?
गोयमा! आउगवज्जाओ सत्तवि बंधंति, आउगं भयणाए। (श० ६।४६)

७५. ज्ञानावरणी स्यूं प्रभु! मन जोगी बांधतो।
वचन काय जोगी वलि, अजोगी बंध हुंतो?

७५. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं मणजोगी बंधइ? वइजोगी बंधइ? कायजोगी बंधइ? अजोगी बंधइ?

७६. जिन भाखै जोगी त्रिहु, बांधै छै भजनाइ।
कदाचित बांधै अछै, कदाचित न बंधाइ ॥

### यतनो

७७. त्रिहु जोगी गुणठाणा तेर, ज्ञानावरणी तणो बंध हेर।
दसमा गुण[1] ताइ बंधाय आगै तो नहिं बंधै ताय ॥

७६, ७७. गोयमा! हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए,
मनोवाक्काययोगिनो ये उपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगिकेवलिनस्ते ज्ञानावरणं न बध्नन्ति तदन्ये तु बध्नन्तीति भजना। (वृ० प० २५७)

७८. *अजोगी बांधै नही, ज्ञानावरणी जिवारो।
इम वेदनी वर्जी करी, कहिवो न्याय विचारो ॥

७८. अजोगी न बंधइ। एवं वेदणिज्जवज्जाओ सत्तवि।

७९. त्रिहुं जोगी कर्म वेदनी, बांधै छै अवलोयो।
अजोगी बांधै नही, द्वार पनरमो होयो ॥

७९. वेदणिज्जं हेट्ठिल्ला बंधंति, अजोगी न बंधइ। (श० ६।४७)

८०. *सागारोवउत्ते प्रभु! ज्ञानावरणी बंधाइ।
कै अणगारोपयुक्त नैं? जिन कहै अठ भजनाइ ॥

८०. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं सागारोवउत्ते बंधइ?
अणागारोवउत्ते बंधइ?
गोयमा! अट्ठसु वि भयणाए। (श० ६।४८)

### यतनो

८१. अजोगी रै पिण उपयोग दोय, सागार अणागार सुजोय।
त्यारै आठूं कर्म न बंधाय, हिवै सजोगी रो सुणो न्याय ॥

८२. सजोगी रै सुविचार, आठूं कर्म प्रकृति अवधार।
आठ सात छ एक बंधाइं, बिहुं उपयोगे इम भजनाइ ॥

८३ *ज्ञानावरणी स्यूं प्रभु! आहारक बंधाइ?
अणाहारक बांधै अछै? जिन कहै बिहुं भजनाइं ॥

८३. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं आहारए बंधइ?
अणाहारए बंधइ?
गोयमा! दो वि भयणाए।

*लय : कर जोड़ी आगल रही

१. गुणस्थान।

### यतनी

८४. आहारक सरागी वीतरागी, ज्ञानावरणी कर्म जे सागी।
वीतरागी रै ते न बधाय, सरागी रै बंधै छै ताय॥

८५. केवली विग्रहगतिया सोय, अणाहारक त्यामे पिण होय।
केवली रै ए नहि बंधाय, विग्रहगतिया रै बध थाय॥

८६ *वेदनी आयू वर्ज नै, छ कर्म कहिवाइ।
आहारक बांधै वेदनी, अणाहारक भजनाइं॥

### यतनी

८७. विग्रहगति अणाहारक थाइं, केवल समुद्घाते बंधाइ।
अजोगी सिद्ध अबंध कहाइ, इम वेदनी छै भजनाइ॥

८८. *आउखो आहारीक रै, बंधै छै भजनाइ।
छै बंधकाले न सर्वदा, अणाहारक न बधाइ॥

८९. ज्ञानावरणी स्यू प्रभु! सूक्षम बादर बंधायो।
नोसूक्षम-बादर नही, तेहनें बध कहिवायो?

९०. जिन कहे बंध सूक्षम तणें, बादर रै भजनाइं।
वीतराग बांधै नही, सरागे बध थाई॥

९१. नोसूक्षम-बादर नही, सिद्ध अनत सुख पाया।
तेहनें तो बंधै नही, जामण मरण मिटाया॥

९२. इम आयू वर्जी करी, सात कर्म कहिवाइं।
सूक्षम बादर आऊखो, बांधै छै भजनाइ॥

### यतनी

९३. सूक्षम बादर दोनूई न्हाल, आऊखो बांधै बध काल।
सदा काल आयु न बंधाय, तिण सू भजना कही जिनराय॥

९४. *नोसूक्षम-बादर नही, आयू नहि बांधतो।
अनत गुणा सुख सुर थकी, सहु दुख नो कियो अंतो॥

९५. ज्ञानावरणी स्यू प्रभु! चरम अचरम बधाइ?
जिन कहे आठूइ कर्म नै, बांधै छै भजनाइ॥

### यतनी

९६. इहा वृत्तिकार कहिवाय, जेहनें होसी चरम भव ताय।
तेहनें चरम कहीजै जाण, ए मुक्तिगामी पहिछाण॥

*लय : कर जोड़ी आगल रही

८४ आहारको वीतरागोऽपि भवति न चासौ ज्ञानावरण बध्नातीति। (वृ० प० २५६)

८५ तथाऽनाहारक. केवली विग्रहगत्यापन्नश्च स्यात्तत्र केवली न बध्नाति इतरस्तु बध्नातीति। (वृ० प० २५६)

८६ एव वेदणिज्जाउगवज्जाण छण्ह। वेदणिज्ज आहारए बधइ, अणाहारए भयणाए।

८७ अनाहारको विग्रहगत्यापन्न समुद्घातगतकेवली च बध्नाति, अयोगी सिद्धश्च न बध्नातीति भजना। (वृ० प० २५६)

८८ आउए आहारए भयणाए, अणाहारए न बधइ। (श० ६।४९)

आयुर्बन्धकाल एवायुषो बन्धनात् अन्यदात्वबन्धकत्वाद् भजनेति। (वृ० प० २५६)

८९ नाणावरणिज्ज ण भते! कम्म कि सुहुमे बधइ। बादरे बधइ? नोसुहुमे नोबादरे बधइ?

९० गोयमा! सुहुमे बधइ, बादरे भयणाए।

वीतरागबादराणा ज्ञानावरणस्याबन्धकत्वात् सरागबादराणा च बन्धकत्वाद्भजनेति। (वृ० प० २५६)

९१ नोसुहुमे नोबादरे न बधइ।

९२ एव आउगवज्जाओ सत्त वि। आउग सुहुमे बादरे भयणाए।

९३ बन्धकाले बन्धनादन्यदा त्वबन्धनाद् भजनेति। (वृ० प० २५६)

९४ नोसुहुमे नोबादरे न बधइ। (श० ६।५०)

९५ नाणावरणिज्ज ण भते! कम्म कि चरिमे बधइ? अचरिमे बधइ?

गोयमा! अट्ठवि भयणाए। (श० ६।५१)

९६ इह यस्य चरमो भवो भविष्यतीति स चरम, (वृ० प० २५६)

भव चरम कदे नहि होय, तेहनै अचरम कहीजै सोय।
अभव्य ससारी अचरम एह, कदे मुक्ति न जावै तेह ।।
अथवा अचरम सिद्ध कहाय, चरम भव ना अभाव थी ताय।
नही चरम ते अचरम जाण, ए तो सिद्ध अचरम पिछाण ।।
चरम सजोगी अजोगी होय, सजोगी रै यथायोग्य जोय।
आठ सात छ एक नो बध, वृद्धिवत मिलावै सध ।।
अजोगी रै कर्म न बधाय, तिण कारण इम कहिवाय।
चरम भजनाइ आठू कर्म बाधै छै तेहनु ए मर्म ।।
अचरम अठ बाधै ससारी, सिद्ध अचरम अवध विचारी।
तिण सू अचरम रै कहिवाइ, अष्ट कर्म बध भजनाइ ।।

*त्रिहु वेदी अवेदी प्रभु[1] या जीवा रै कहिवायो।
कुण-कुण अल्पवहुत्व छै, तुल्य विशेप अधिकायो?

जिन कहै सर्व थोडा अछै, पुरिसवेदगा जीवा।
इत्थिवेदगा जीवडा, सखगुणाज कहीवा ।।

**यतनो**

सुर नर तिर्यच पुरुप थी, इम स्त्री अधिकी अनुक्रम थी।
बत्ती सत्तावी त्रिगुणी तद्रूप, अधिक वत्ती सत्तावी त्रिरूप ।।

*अवेदगा अनतगुणा, नवमा थी सिद्ध जाणी।
नपुसवेदि अनतगुणा, साधारण पहिछाणी ।।

आख्या सजति आदि दे, चरम अत सुविचारो।
अल्पवहुत्व चवदै द्वार नी, पन्नवणा[2] सूत्रानुसारो ।।
सर्व थोडा जीव अचरमा, इहा अचरम अवलोयो।
अभव्य तेह मुक्ति मझै जावा जोग्य न होयो ।।
तेहथी चरम अनतगुणा, भव्य चरम भव लहिसी।
मुक्ति जासी कर्म क्षय करी, आतमीक सुख रहिसी ।।

अचरम अभव्य तेहथी, अनतगुणा भव्य चरमो।
मुक्ति जावा जोग्य एह छै, ते लहिसी सुख परमो ।।
वृत्तिकार कह्यो अभव्य थी, सिद्ध अनतगुणा सोयो।
जेता सिद्ध तेता चरम छै, मुक्ति जासी कर्म खोयो ।।

---

१. कर जोड़ी आगल रही
पण्णवण पद ३

९७ यस्य तु नासौ भविष्यति सोऽचरम. (वृ० प० २५९)

९८ सिद्धश्चाचरम, चरमभवाभावात्, (वृ० प० २५९)

९९,१००. तत्र चरमो यथायोगमष्टापि वध्नाति अयोगित्वे तु नैत्येव भजना। (वृ० प० २५९)

१०१ अचरमस्तु ससारी अष्टापि वध्नाति, सिद्धस्तु नैत्येवमत्रापि भजनेति। (वृ० प० २५९)

१०२ एएसि ण भते! जीवाण इत्थीवेदगाण, पुरिसवेदगाण, नपुसगवेदगाण, अवेदगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

१०३ गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेदगा, इत्थिवेदगा सखेज्जगुणा,

१०४. यतो देवनरतिर्यक्पुरुषेभ्य तत्स्त्रिय क्रमेण द्वात्रिंशत्सप्तविंशतित्रिगुणा द्वात्रिंशत्सप्तविंशतित्रिरूपाधिकाश्च भवन्तीति। (वृ० प० २५९)

१०५ अवेदगा अणतगुणा नपुसगवेदगा अणतगुणा।
अनिवृत्तिबादरसम्परायादय सिद्धाश्च (वृ० प० २५९)

१०६ एएसि सव्वेसि पदाण अप्पबहुगाइ उच्चारेयव्वाइ

१०७ जाव सव्वत्थोवा जीवा अचरिमा
अत्राचरमाऽभव्या (वृ० प० २५९)

१०८. चरिमा अणतगुणा। (श० ६।५२)
चरमाश्च ये भव्याश्चरम भव प्राप्स्यन्ति—सेत्स्यन्तीत्यर्थ। (वृ० प० २५९)

१०९ ते चाचरमेभ्योऽनन्तगुणा,। (वृ० प० २५९)

११० यस्मादभव्येभ्य. सिद्धा अनन्तगुणा भणिता, यावन्तश्च सिद्धास्तावन्त एव चरमा। (वृ० प० २५९)

११ गये काल सिद्धा जिता, आगमिये पिण काला ।
जीव तेतला सीझसै, वृत्ति मझै अर्थ न्हालो ॥

१२. सेव भंते! अक तेसठ नु, आखी गोमी ढालो ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' गण गुणमालो ॥

पष्ठशते तृतीयोद्देशकार्थ ॥६।३॥

१११. यस्मात्कालात्सिद्धा अतीताद्धायां गताः ... अनागताद्धायामिति । (वृ० प० २५८)

११२ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ६।५३)

## ढाल : १०१

### दूहा

१. तृतीय उदेशक नै विषे, जीव-निरूपण जोय ।
तुर्य उदेशे तेहिज हिव, भगतर करि होय ॥

२. इक वचने करि जीव प्रभु! काल थकी कहिवाय ।
सप्रदेश स्यू ए अछै, अप्रदेश स्यू थाय ?

३ जिन भाखै नियमा करी सप्रदेश इक जीव ।
सप्रदेश अप्रदेश नु, लक्षण हिवै कहीव ॥

४. जे स्थिति एक समय तणी, कह्यु तास अप्रदेश ।
बे त्रिण आदि समय स्थिति, सप्रदेश छै एस ॥

५ "इक वच जीव भणी कह्यु, सप्रदेश सविभाग ।
अनादिपणै करि जीव कू, अनत समय स्थिति माग ॥

६. अप्रदेश इक समय स्थिति, तास विभाग न हुंत ।
बे त्रिण आदि समय स्थिति, तास विभाग पडंत ॥

७. एक समय नी क्रिया तणो, विभाग न पडै कोय ।
द्वयादिक समय तणो क्रिया, तेहनो विभाग होय ॥

८. ते माटै सप्रदेश जे, विभाग सहितज होय ।
विभाग रहित हुवै अछै, अप्रदेश अवलोय ॥

९. प्रथम समय मे वर्त्तता, अप्रदेश ते भाव ।
अन्य समय मे वर्त्तता, सप्रदेश ए न्याव ॥

१०. तिण सू इक वच जीव ते, सप्रदेश आख्यात ।
काल अनादिपणै करी, अनत समय स्थित जात" ॥
(ज० स०)

११. एक नारकी नै प्रभु! काल थकी पहिछाण ।
सप्रदेश अप्रदेश स्यू, कहियै हे जगभाण !

१ अनन्तरोद्देशके जीवो निरूपितोऽथ चतुर्थोद्देशकेऽपि तमेव प्रकारान्तरेण निरूपयन्नाह—
(वृ० प० २५६)

२ जीवे णं भंते ! कालादेसेणं किं सपदेसे ? अपदेसे ?

३ गोयमा ! नियमा सपदेसे । (श० ६।५४)

४ यो ह्येकसमयस्थितिः सोऽप्रदेशः, द्व्यादिसमयस्थितिस्तु सप्रदेशः । (वृ० प० २६१)

५ अनादित्वेन जीवस्यानन्तसमयस्थितिकत्वात् सप्रदेशता । (वृ० प० २६१)

९ जो जस्स पढमसमए वट्टति भावस्स सो उ अपदेसो ।
अण्णम्मि वट्टमाणो कालाएसेण सपदेसो ॥
(वृ० प० २६१)

११. नेरइए णं भंते ! कालादेसेणं किं सपदेसे ? अपदेसे ?

. जिन भाखै इक नारकी, कदाचित सप्रदेश।
कदाचित अप्रदेश ते, हिव तसु न्याय कहेस॥
. प्रथम समय नो ऊपनो, ते नारक अप्रदेश।
द्वयादिक समय नो ऊपनो, सप्रदेश सुविशेष॥
. इम यावत इक सिद्ध नैं, कदाचित सप्रदेश।
कदाचित अप्रदेश है, पूर्व न्याय अविशेष॥
हिव बहु वचनें करि कहै, जीव नारकी आद।
श्रोता चित दे सांभलो, विविध भंग विधि वाद॥

*वहु वच जीवा स्यूं प्रभु! काल थकी सुविशेषा।
सप्रदेशा कहियै तसु, कै कहियै अप्रदेशा?
जिन भाखै सुण गोयमा! निश्चै करि सप्रदेशा।
अनादिपणैं करि जीवडा, अनंत समय स्थिति एसा॥
नेरइया काल थी स्यूं प्रभु! सप्रदेशा अप्रदेशा।
जिन भाखै सुण गोयमा! इहा त्रिहु भंगा कहेसा॥
सगलाई नारकी हुवै, सप्रदेशा पहिछाण।
अथवा सप्रदेशा घणा, अप्रदेश इक जाण?
अथवा सप्रदेशा वहु, अप्रदेशा वहु होय।
ए तीनूं भांगा तणो, न्याय कहूं हिव सोय॥

†उत्पात नैं जे विरह काले, असंख्याता नेरिया।
जेह पूर्वे ऊपना ते, सप्रदेशा सहु लिया॥
तथा पूर्वे घणा नारक, ऊपना तेहनैं विखै।
नवो नारक एक उपजै, प्रथम समय तेहनु लखै॥
ते भणी इक अप्रदेशज, वहु समय ना ऊपना।
शेष ते वहु सप्रदेशा, भंग द्वितीय समुप्पना॥
तथा पूर्वे घणा नारक, ऊपना तेहनैं विखै।
नवा नारक उपजै वहु, प्रथम समय तेहनु लखै॥
ते भणी वहु अप्रदेशज, वहु समय ना ऊपना।
शेष ते वहु सप्रदेशा, भंग तृतीय समुप्पना॥

*एवं नरक तणी परै, जाव थणियकुमारा।
भांगा तीन विचारवा, वर न्याय उदारा॥
पृथवीकाइया हे प्रभु! काल थकी सुविशेषा।
स्यूं सप्रदेशा कहीजियै, कै कहियै अप्रदेशा?
जिन भाखै पृथ्वीकाइया, सप्रदेशा पिण होय।
अप्रदेशा पिण छै घणां, विहुं वहु वचनें जोय॥

१२. गोयमा! सिय सपदेसे, सिय अपदेसे। (श० ६।५५)

१३ नारकस्तु य प्रथमसमयोत्पन्न सोऽप्रदेश द्वयादिसमयोत्पन्न पुन सप्रदेश। (वृ० प० २६१)
१४ एवं जाव सिद्धे। (श० ६।५६)

१६ जीवा णं भंते! कालादेसेणं किं सपदेसा? अपदेसा?
१७ गोयमा! नियमा सपदेसा। (श० ६।५७)
१८ नेरइया णं भंते! कालादेसेणं किं सपदेसा? अपदेसा? गोयमा!
१९ सव्वे वि ताव होज्जा सपदेसा, अहवा सपदेसा य अपदेसे य।
२०. अहवा सपदेसा य अपदेसा य। (श० ६।५८)

२१ उपपातविरहकालेऽसंख्याताना पूर्वोत्पन्नाना भावात सर्वेऽपि सप्रदेशा भवेयु। (वृ० प० २६१)
२२,२३ पूर्वोत्पन्नेषु मध्ये यदैकोऽप्यन्यो नारक उत्पद्यते तदा तस्य प्रथमसमयोत्पन्नत्वेनाप्रदेशकत्वात् शेषाणा च द्वयादिसमयोत्पन्नत्वेन सप्रदेशत्वाद् उच्यते—'सप्पएसा य अप्पएसे य' त्ति, (वृ० प० २६१)
२४,२५ एवं यदा वहव उत्पद्यमाना भवन्ति ते तदोच्यन्ते—'सप्पएसा य अप्पएसा य' त्ति, (वृ० प० २६१)

२६ एवं जाव थणियकुमारा। (श० ६/५९)

२७ पुढविकाइया णं भंते! किं सपदेसा? अपदेसा?

२८ गोयमा! सपदेसा वि अपदेसा वि। (श० ६/६०)

---

* लय : प्रभवो मन माहे चिंतवै
† लय : पूज मोटा भाजै

### यतनी

२९ एहनै विरह-काल नहि हुंत, समय-समय घणा उपजंत।
तिण सू सप्रदेशा वहु सोय, अप्रदेश पिण वहु होय॥

३० इम जाव वणस्सइकाइया, बेंद्रियादिक शेष।
जेम नेरइया तिम सहु, जावत सिद्धा सपेष॥

३० एव जाव वणप्फइकाइया। (श० ६।६१)
सेसा जहा नेरइया तहा जाव सिद्धा। (श० ६।६२)

### यतनी

३१ जिम नारकी नै तीन भंगा, तिम एकेंद्री वर्जी प्रसगा।
दडक उगणीस नै सिद्ध इच्छा, भग त्रिण-त्रिण वहु वच पृच्छा॥

३१ यथा नारका अभिलापत्रयेणोक्तास्तथा शेषा द्वीन्द्रियादय सिद्धावसाना वाच्या, (वृ० प० २६२)

३२ *द्वितीय द्वार आहार कहिवै, आहारक वहु वचनंत।
जीव एकेंद्रिय वर्जनै, भांगा तीन भणत॥

३२ आहारगाण जीवेगिंदियवज्जो तियभगो।

वा० ए पाठ ना अर्थ नी पूर्वे गाथा कही। तिहा आहारगा वहु वचन नो विस्तार कह्यो। आगै पिण अणाहारगा वहु वचन छै, अनै नारकादिक २४ दडक एक वचन, वहु वचन पहिला कह्या ते माटै वृत्तिकार आहारक अनाहारक नो एक वचन जीवादिक कहै छै।

वा० एवमाहारकानाहारकशब्दविशेषितावेतावेकत्वपृथक्त्वदण्डकावध्येयौ, (वृ० प० २६१)

### यतनी

३३ वृत्तिकार कही इम वाय, शब्द आहार अणाहारक ताय।
इक वहु वच दडक दोय, कहिवो अनुक्रम इहविध जोय॥

३३ अध्ययनक्रमश्चायम्— (वृ० प० २६१)

### दूहा

३४ इक वच आहारक जीव ते, सप्रदेश अप्रदेश?
जिन कहै सिय सप्रदेश छै, सिय अप्रदेश कहेस॥

३४ 'आहारए ण भते! जीवे कालाएसेण किं सपएसे? गोयमा! सिय सप्पएसे सिय अप्पएसे' (वृ० प० २६१)

३५ इत्यादिक निज बुद्धि करि, कहिवू सर्व विचार।
नरकादिक दंडक विषे, एक वचन अवधार॥

३५ इत्यादि स्वधिया वाच्या, (वृ० प० २६१)

३६. तास न्याय—विग्रह विषे तथा समुद्घातेह।
प्रथम अनाहारक थइ, वलि ह्वै आहारक जेह॥

३६ तत्र यदा विग्रहे केवलिसमुद्घाते वाऽनाहारको भूत्वा पुनराहारकत्व प्रतिपद्यते (वृ० प० २६१)

३७ तदा प्रथम समया विषे, अप्रदेश ते होय।
द्वितीयादिक समया विषे, सप्रदेश अवलोय॥

३७ तदा तत्प्रथमसमयेऽप्रदेशो द्वितीयादिषु तु सप्रदेश (वृ० प० २६१)

३८. तिण कारण एहवू कह्यू, कदाचित सप्रदेश।
कदाचित अप्रदेश ह्वै, इण न्याये सुविशेष॥

३८ इत्यत उच्यते—'सिय सप्पएसे सिय अप्पएसे' त्ति, (वृ० प० २६१)

३९. एव इक वच सर्व ही, सादि भाव रै माय।
सिय सप्रदेश अनै वलि, सिय अप्रदेश कहाय॥

३९ एवमेकत्वे सर्वेष्वपि सादिभावेषु, (वृ० प० २६१)

४०. अनादिभाव विषे वलि, छै नियमा सप्रदेश।
इह विध आख्यू वृत्ति मे, इक वच आहार कहेस॥

४० अनादिभावेषु तु 'नियमा सप्पएसे' त्ति। (वृ० प० २६१)

*लय : प्रभवो मन मांहै चितवै

वा० इहा अनादि भाव मे नियमा सप्रदेशी कह्यो, ते आहारक मे अनादि भाव न सभवै, सादि भावपणु हुइ । ते भणी आहारक जीवादिक मे 'सिय सपदेसे सिय अपदेसे' इम कहिवू ।

वहु वचने आहारक तणू, सूत्र पूर्व आख्यात ।
आहारगा जीव एकेंद्रिय वर्जी त्रिण भंग ख्यात ॥

वा० आहारया ण भते' जीवा कालाएसेण कि सप्पएसा अप्पएसा ? गोयमा! 'सप्पएसा वि अप्पएगा वि' त्ति (वृ० प० २६१)

### सोरठा

एहनो पिण वृत्ति माहि, आख्यो छै इण रीत सू ।
प्रगट पाठ कर ताहि, कह्यो न्याय वलि इह विधे ॥

### दूहा

आहारकपणै करि, वहु जीव अवस्थित पाय ।
तास भाव थी वहु तणै, सप्रदेशपणु थाय ॥

४३ तत्र बहूनामाहारकत्वेनावस्थितानां भावात् सप्रदेशत्वम्, (वृ० प० २६१)

अथवा वहु जीवा तणै, विग्रह पछ विशेष ।
प्रथम समय आहारकपणै, वहु आहारक अप्रदेश ॥
तिण सू वहु वच आहारगा, सप्रदेशा पिण सच ।
वलि अप्रदेशा पिण कह्या, इम पृथिव्यादि पच ।

४४,४५ तथा बहूनां विग्रहगतेरनन्तर प्रथमसमये आहारकत्वसम्भवादप्रदेशत्वमप्याहारकाणां लभ्यत इति सप्रदेशा अपि अप्रदेशा अपीत्युक्त, एव पृथिव्यादयोऽप्यध्येयाः, (वृ० प० २६१)

एकेंद्रिय वर्जी करी, दंडक वलि उगणीस ।
कहिवा विकल्प तीन कर, ते इह रीत जगीस ॥

४६ नारकादयः पुनर्विकल्पत्रयेण वाच्या, (वृ० प० २६१)

एहिज सूत्रे आखियो, आहारक वहु वचनेह ।
जीव एकेंद्रिय वर्ज नै, त्रिक भग पावेह ॥

४७ आहारगाण जीवेगिंदियवज्जो तियभगो । जीवपदमेकेन्द्रियपदपञ्चकं च वर्जयित्वा त्रिकरूपो भङ्ग त्रिकभङ्गो—भङ्गत्रय वाच्यमित्यर्थः । (वृ० प० २६१)

इहा न कहिवू सिद्ध पद, तेह सिद्ध नै सोय ।
अनाहारक ना भाव थी, आहारक ते नहि होय ॥

४८ सिद्धपद त्विह न वाच्य तेषामनाहारकत्वात्, (वृ० प० २६१)

अनाहारक ते इह विधे, इक वच वहु वचनेह ।
दंडक वे कहिवा तसु, हिव तसु न्याय कहेह ॥

४९ अनाहारकदण्डकद्वयमप्येवमनुसरणीय, (वृ० प० २६१)

अनाहारक विग्रह गमन, वलि केवल समुद्घात ।
तथा अजोगी चवदमै, अथवा सिद्ध विख्यात ॥

५० तत्रानाहारको विग्रहगत्यापन्न. समुद्घातगतकेवली अयोगी सिद्धो वा स्यात्, (वृ० प० २६१,२६२)

तेह अनाहारकपणै, प्रथम समय अप्रदेश ।
द्वितियादिक समया विषे, सप्रदेश सुविशेष ॥

५१ न चानाहारकत्वप्रथमसमयेऽप्रदेश· द्वितीयादिषु तु सप्रदेश (वृ० प० २६२)

तिण सू इक वच जीव ते, अनाहारक सुविशेष ।
कदाचित अप्रदेश छै, कदाचित सप्रदेश ॥

५२ तेन स्यात् सप्रदेश इत्याद्युच्यते । (वृ० प० २६२)

वहु वच दंडक नै विषे, कहियै एह विशेख ।
अणाहारगा जीवड़ा, इत्यादिक सपेख ॥

५३ पृथक्त्वदण्डके विशेषमाह—'अणाहारगा ण' मित्यादि । (वृ० प० २६२)

*अनाहारका छै तिकै, जीव एकेंद्रिय अंग ।
वर्जी उगणीस दंडके, भणवा षट भंग ॥

५४ अणाहारगाण जीवेगिंदियवज्जा छ भगा एव भाणियव्वा—

---

१: प्रभवो मन माहे चितवे

**दूहा**

५५. जीव एकेंद्रिय विहु पदे, सप्रदेश वहु होय।
अप्रदेश पिण वहु हुवै, इम इक भंगो जोय॥

५५ जीवपदे एकेन्द्रियपदे च 'सपएसा य अप्पएसा ये' त्येवरूप एक एव भङ्गक। (वृ० प० २६२)

५६. ए वहु विग्रहगति रह्या, प्रथम समय अप्रदेश।
सप्रदेश अन्य समय मे, लाभै वहु सुविशेप॥

५६ वहूना विग्रहगत्यापन्नाना सप्रदेशानामप्रदेशाना च लाभात्। (वृ० प० २६२)

५७. ते माटै वहु वच कह्या, अनाहारका ताय।
जीव एकेंद्रिय वर्ज नैं, षट भंगा कहिवाय॥

५८. उगणीस दडक नै विषे, अल्प ऊपजै आय।
इक बे आदि अनाहारका, त्या षट भंगा पाय॥

५८ नारकादीना द्वीन्द्रियादीना च स्तोकतराणामुत्पाद, तत्र चैकद्वयादीनामनाहारकाणा भावात् षड्भङ्गिका-सम्भव। (वृ० प० २६२)

५९. ते माटै सूत्रे कह्या, अनाहारका माय।
जीव एकेंद्रिय वर्ज नैं, षट भंगा कहिवाय॥

६०. वे भग वहु वचनात छै, इकसजोगिक होय।
वलि च्यार भागा तिके, द्विकसयोगिका जोय॥

६० तत्र द्वौ वहुवचनान्तौ अन्ये तु चत्वार एकवचनवहु-वचनसयोगात्। (वृ० प० २६२)

६१. *सप्रदेशा वहु वचन थी, ए धुर भगो होय।
अन्य समय वर्त्तै वहु, प्रथम समय नहिं कोय॥

६१ सपदेसा वा।

६२ अप्रदेशा वहु वचन थी. दूजो भागो जोय।
प्रथम समय ना लाधे घणा, अन्य समय ना न होय॥

६२ अपदेसा वा।

६३. सपदेसे अपदेसे तथा, तीजो भागो देख।
प्रथम समय इक जीव छै, अन्य समय वर्त्ते एक॥

६३ अहवा सपदेसे य अपदेसे य।

६४. सपदेसे अपदेसा तथा, चउथो भागो कहीव।
अन्य समय इक वर्त्ततो, प्रथम समय वहु जीव॥

६४ अहवा सपदेसे य अपदेसा य।

६५. सपदेसा अपदेसे तथा, पचम भगो जोय।
अन्य समय वर्त्तै घणा, प्रथम समय इक होय॥

६५. अहवा सपदेसा य अपदेसे य।

६६. सपदेसा अपदेसा तथा, छट्ठो भांगो सपेख।
अन्य समय वहु वर्त्तता, प्रथम समय वहु देख॥

६६ अहवा सपदेसा य अपदेसा य।

६७. इम उगणीसज दडके, अल्प ऊपजै ते माय।
हुवै इक बे आदि अनाहारका, तिण सू षट भंग पाय॥

६८. केवल एक वचन तणा, भंग दोय नहिं होय।
वहु वच ना अधिकार थी, वृत्ति विषे इम जोय॥

वा० जिम पहिले भागे सप्रदेशी घणा अनै दूजे भागे अप्रदेशी घणा, ए वे भागा कह्या। तिम तीजे भागे सप्रदेशी एक अनै चोथे भागे अप्रदेशी एक, ए भागा अनाहारक एकसजोगिक एक वचनात किम न हुइ ? अना-हारक वहु जीव ना अधिकारपणा थकी। एटलै अनाहारक एक जीव नो अधिकार नथी, तिण सू एक वचनात भागो कह्यो नथी।

६८ केवलैकवचनभङ्गकाविह न स्त, पृथक्त्वस्याधिकृत-त्वादिति। (वृ० प० २६२)

६९. सिद्धा मे तीन भागा अछै, तीनू भांगा रै माय।
वहु वचने कर सूत्र मे, भागा तीन कहाय॥

६९ सिद्धेहिं तियभगो।

*लय : प्रभवो मन मांहे चितवै

### यतनो

सगला सिद्ध ह्वै सप्रदेशा, वहु काल ना छै सुविशेपा ।
सिद्धा मे ऊपजवा नो पिछाण, विरहकाल हुवै जद जाण ॥

अथवा सप्रदेशा वहु सिद्धा, अप्रदेशा एक गुण ऋद्धा ।
अथवा सप्रदेशा वहु जोय, अप्रदेशा पिण वहु होय ॥

वहु वच अणाहारगा माय, सिद्ध पद मे भागा त्रिण पाय ।
ए आहारक नै अणाहार, आख्यो ए वीजो द्वार ॥

*भवसिद्धिया अभवसिद्धिया, औघिक जेम कहाय ।
पाठ माहे तो एतोज छै, वृत्तिकार हिव वाय ॥

७३. भवसिद्धिया अभवसिद्धिया जहा ओहिया ।

### यतनी

जहा ओहिया नु अर्थ ताय, औघिक दडक जिम कहिवाय ।
इक वहु वच दंडक दोय, तिमहिज कहिवा अवलोय ॥
तिहा भव्य अभव्य विचार, जीव एक वचन अधिकार ।
निश्चै करीनै छै सप्रदेश, आदि-रहितपणे सुविशेप ॥
भव्य अभव्य नारकादि माय, इक वचन आश्री इम वाय ।
कदाचित अछै सप्रदेश, कदा अप्रदेस सुकहेस ॥
हिवै भव्य अभव्य वहु जीवा, निश्चै सप्रदेशाज कहीवा ।
नारकादि वहु वचन प्रसग, एकेंद्रिय विना त्रिण भग ॥
भव्य अभव्य एकेंद्रिया जीवा, वहु वच आश्री एम कहीवा ।
घणा सप्रदेशा अप्रदेशा, एकईज भंग सुलहेसा ॥
सिद्ध पद इहा कहिवु नाहि, भव्य अभव्य नहि सिद्धा माहि ।
हिवै भव्य अभव्य विहु नाही तिणरो संक्षेप सूत्र माही ॥

७४. 'ओहिय' त्ति, अयमर्थ —औघिकदण्डकवदेपा प्रत्येक दण्डकद्वय, (वृ० प० २६२)

७५ तत्र च भव्योऽभव्यो वा जीवो नियमात्सप्रदेश । (वृ० प० २६२)

७६ नारकादिस्तु सप्रदेशोऽप्रदेशो वा, (वृ० प० २६२)

७७ वहुवस्तु जीवा सप्रदेशा एव, नारकाद्यास्तु त्रिभङ्गवन्त, । (वृ० प० २६२)

७८ एकेन्द्रिया पुन सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येकभङ्ग एवेति । (वृ० प० २६२)

७९ सिद्धपद तु न वाच्य, सिद्धाना भव्याभव्यविशेपणानुपपत्तेरिति । (वृ० प० २६२)

¹नोभव्य-नोअभव्य-सिद्धिया, जीव अनै सिद्ध मांय ।
वहु वचनै कर सूत्र मे, भागा तीन कहिवाय ॥

८० नोभवसिद्धिय-नोअभवसिद्धिय-जीव-सिद्धेहि तियभगो ।

### यतनी

वृत्ति माहि कही इम वाय, नोभव्य नोअभव्य ताय ।
एक वचन वहु वच भणवा, जीवपद नै सिद्धपद थुणवा ॥
प्रभु! नोभव्य नोअभव्य जीव, इक वचन थकीज अतीव ।
स्यू सप्रदेश अप्रदेश ? हिव उत्तर आगै कहेस ॥
सिय सप्रदेश पहिछाण, सिय अप्रदेश वलि जाण ।
इम वहु वच पूछा मे जीवा, उत्तर तीन भागा कहीवा ॥
नोभव्य नोअभव्य सिद्ध पृच्छा, इक वचन वहु वच इच्छा ।
उत्तर पूर्ववत जाण, ए तीजो द्वार पिछाण ॥

८१ 'नोभवसिद्धिय नोअभवसिद्धिय' त्ति एतद्विशेपण जीवादिदण्डकद्वयमध्येय, । (वृ० प० २६२)

८२ 'नोभवसिद्धिए नोअभवसिद्धिए ण भते! जीवे सप्पएसे अप्पएसे' ? (वृ० प० २६२)

८३ इह च पृथक्त्वदण्डके पूर्वोक्त भङ्गकत्रयमनुसर्त्तव्यम् । (वृ० प० २६२)

---

१ · प्रभवो मन मांहे चितवै

## दूहा

८५. बे दडक सन्नी विषे, इक वच वहु वच जोय ।
द्वितिय दंडक जीवादि मे, भंगक त्रिण इम होय ।।

८५ सञ्ज्ञिपु यौ दण्डकौ तयोर्द्वितीयदण्डके जीवादिपदेपु भङ्गत्रय भवतीत्यत आह— (वृ० प० २६२)

८६. *सन्नी वहु वच काल थी, जीवादिक त्रिण भग ।
सूत्र माहे तो इतोज छै, वृत्तौ एम प्रसग ।।

८६ सण्णीहिं जीवादिओ तियभगो ।

## यतनी

८७. चिर काल नां ऊपना भेला, ऊपजवा नु विरह तिण वेला ।
वहु वचन सन्नी सुविशेपा, प्रथम भग सहु सप्रदेशा ।।

८७ तत्र सञ्ज्ञिनो जीवा कालत सप्रदेशा भवन्ति चिरोत्पन्नानपेक्ष्य उत्पादविरहानन्तरम् । (वृ० प० २६२)

८८. विरह काल पछै इक जीव, ऊपनो प्रथम समय कहीव ।
ते सप्रदेशा-अप्रदेश, ए द्वितीय भग सुविशेप ।।

८८ चैकस्योतपत्तौ तत्प्राथम्ये सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेति स्यात्, (वृ० प० २६२)

८९ विरह काल पछै वहु जीवा, ऊपना वहु समय कहीवा ।
ते सप्रदेशा-अप्रदेशा, ए तृतीय भग सुविशेषा ।।

८९ वहूनामुत्पत्तिप्राथम्ये तु सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेति स्यात्, तदेवभङ्गकत्रयमिति, (वृ० प० २६२)

९० इम सन्नी रा दडक माय, सहु पद मे भागा त्रिहु पाय ।
सिद्ध एकेंद्री विकलेंद्री जोय, एहनै विषे सन्नी नहिं होय ।।

९० एव सर्वपदेपु, केवलमेतयोर्दण्डकयोरेकेन्द्रियविकलेन्द्रिय-सिद्धपदानि न वाच्यानि, तेपु सञ्ज्ञिविशेपणस्यासभवादिति, (वृ० प० २६२)

९१ *वहु वचन असन्नी मध्ये, एकेंद्रिय वर्जी नैं ।
भागा तीन कहीजियै, पूर्व न्याय ग्रही नैं ।।

९१ असण्णीहिं एगिंदियवज्जो तियभगो ।
असञ्ज्ञिपु—असञ्ज्ञिविपये द्वितीयदण्डके पृथिव्यादिपदानि वर्जयित्वा भङ्गकत्रय प्राग् दर्शितमेव वाच्यम् (वृ० प० २६२)

## यतनी

९२. वृत्ति माहि कही इम वाय, एकेंद्रिय भग इक पाय ।
वहु सप्रदेशा-अप्रदेशा, घणा ऊपजै छै सुविशेषा ।।

९२ पृथिव्यादिपदेपु हि सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव, सदा वहूनामुत्पत्त्या तेषामप्रदेशवहुत्वस्यापि सम्भवात् । (वृ० प० २६२)

९३. *नेरइया देव मनुष्य मझै, पट भंगा पाय ।
वृत्तिकार तिहा आखियो, सुणज्यो चित ल्याय ।।

९३ नेरइयदेवमणुएहिं छब्भगो ।

## यतनी

९४. नारकादि व्यतर लग गिणिया, सन्नी नैं पिण असन्नी भणिया ।
असन्नी थी ऊपजै तिहा आय, अतीत भावपणै करि ताय ।।

९४ नैरयिकादीना च व्यन्तरान्ताना सञ्ज्ञिनामप्यसञ्ज्ञित्वमसञ्ज्ञिभ्य उत्पादाद्भूतभावतयाऽवसेयम्, (वृ० प० २६२)

९५. असन्नी नरकादिक रै माय, ऊपना ते एकादि पाय ।
वर्त्तमान ऊपजता सोय, ते पिण एक आदि अवलोय ।।

९६. तिण कारण छै षट भगा, पूर्वे कह्या तेह प्रसंगा ।
जोतिषि वैमानिक सिद्धा, यानैं असण्णीपणै नहि लीधा ।।

९५,९६ तथा नैरयिकादिष्वसञ्ज्ञित्वस्य कादाचित्कत्वेनैकत्ववहुत्वसम्भवात् पड् भगा भवन्ति, ते च दर्शिता एव, ज्योतिष्कवैमानिकसिद्धास्तु न वाच्यास्तेपामसञ्ज्ञित्वस्यासम्भवात् । (वृ० प० २६२)

*लय : प्रभवो मन मांहे चितवै

*नोसन्नी नोअसन्नी मझे, बहु वचन रै मांय ।
जीव मनुष्य सिद्धा विषे, तीन भागा पाय ॥

९७ नोसण्णि-नोअसण्णि-जीव-मणुय-सिद्धेहिं तियभगो ।
तेषु बहूनामवस्थिताना लाभादुत्पद्यमानाना चैका-दीना सम्भवादिति, एतयोश्च दण्डकयोर्जीवमनुज-सिद्धपदान्येव भवन्ति, (वृ० प० २६२)

**यतनी**

यामे सदाकाल बहु हुंत, वलि उत्पत्ति विरह पड़त ।
पछै ऊपजै इक बे आद, तिण सू तीन भागा इहा लाध ॥
नारकादिक पद रै माही, नोसन्नी नोअसन्नी नाही ।
ए आख्यो है चउथो द्वार, हिवै पचमो लेस विचार ॥

९९ नारकादिपदाना नोसज्ञीनोअसज्ञीतिविशेषणस्याघट-नादिति । (वृ० प० २६२)

*सलेसी जीव विषे वलि, सलेसी नरकादि ।
एक वचन बहु वचन मे, औघिक जेम सवादि ॥

१०० सलेसा जहा ओहिया ।
सलेश्यदण्डकद्वये औघिकदण्डकवज्जीवनारकादयो वाच्या । (वृ० प० २६२)

**यतनी**

सलेसीपणा विषे जीव, आदि-रहितपणेज अतीव ।
औघिक जेम कह्यु ताय, एक सिद्ध पद न कहाय ॥

१०१ सलेश्यतायाः जीवत्ववदनादित्वेन विशेषानुत्पाद-कत्वात् केवल सिद्धपद नाधीयते, सिद्धानामलेश्य-त्वादिति । (वृ० प० २६३)

*कृष्ण नील कापोतिया, जीव नारकादि देख ।
इक बहु वच आहारीक ना, जीवादिक जिम पेख ॥
णवर एतो विशेष छै, ज्यामे पावै ए लेस ।
त्या माहे कहिवी विचार नै, वारू न्याय विशेष ॥

१०२ कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्सा जहा आहा-रओ ।

१०३ नवर—जस्स अत्थि एयाओ ।

**यतनी**

जोतिषि वेमानिक माय, द्रव्य लेस्या ए त्रिहु न पाय ।
तिण कारण त्या नवि गिणवी, ज्यामे पावै त्यांमे इज भणवी ॥

१०४ एताश्च ज्योतिष्कवैमानिकाना न भवन्ति । (वृ० प० २६२)

*तेजु लेस्या नै जीवादिके, बहु वच त्रिण भंग जाण ।
पृथ्वी अप वनस्पति मझे, षट भगा पहिछाण ॥

१०५ तेउलेस्साए जीवादिओ तियभगो, नवर—पुढविक्का-इएसु आउवणप्फतीसु छब्भगा ।

**यतनी**

पृथ्वी अप वनस्पति माय, सुर एकादि ऊपना आय ।
वलि वर्त्तमान पिण काल, एकादिक उपजता न्हाल ॥

१०६ यत एतेषु तेजोलेश्या एकादयो देवा पूर्वोत्पन्ना उत्पद्यमानाश्च लभ्यन्त इति । (वृ० प० २६२, २६३)

तिण सू सप्रदेशा नो जोय, वलि अप्रदेशा नों सोय ।
इक वच बहु वचन प्रसग, तिण कारण है षट भग ॥

१०७ सप्रदेशानामप्रदेशाना चैकत्वबहुत्वसम्भव इति । (वृ० प० २६३)

इहा नरक तेउ वाउ काय, विकलेंद्रिय नै सिद्ध ताय ।
यामे तेजू लेश्या नहिं पाय, तिण सू ए पद नाहि गिणाय ॥

१०८ इह नारकतेजोवायुविकलेन्द्रियसिद्धपदानि न वाच्यानि, तेजोलेश्याया अभावादिति । (वृ० प० २६३)

*पद्म लेस शुक्ल लेस मे, बहु वच जीवादि माय ।
भागा तीन कहीजियै, वारू मेली न्याय ॥

१०९ पम्हलेस्स-सुक्कलेस्साए जीवादिओ तियभगो

---

प : प्रभवो मन माहे चिंतवै

### यतनी

११०. तिर्यंच पंचेंद्री ताहि, वलि मनुष्य वैमानिक माहि।
पद्म शुक्ल यामे ईज होय, अन्य मे नहि पावै कोय॥

११०. इह च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यवैमानिकपदान्येव वाच्यानि, अन्येष्वनयोरभावादिति। (वृ० प० २६३)

१११. *अलेसी इक बहु वचन थी, जीव मनुष्य सिद्ध माहि।
अन्य विषे अलेसीपणो, नही पामै ताहि॥

१११. अलेश्यदण्डकयोर्जीवमनुष्यसिद्धपदान्येवोच्यन्ते, अन्येषामलेश्यत्वस्यासम्भवात्। (वृ० प० २६३)

११२. जीव पदे वलि सिद्ध पदे, बहु वच त्रिण भगा।
अलेसी मनुष्य विषे हुवै, षट भग प्रसंगा॥

११२. अलेसेहिं जीव-सिद्धेहिं तियभगो। मणुएसु छब्भगा।

### यतनी

११३. अलेसीपणे नर जाण, गया काल ना लाभै पिछाण।
वर्त्तमान पामता जोय, एक आदि मनुष्य मे होय॥
११४. तिण सू सप्रदेश नो जाण, अप्रदेश नो वलि पहिछाण।
इक वच बहु वचन प्रसग, तिण कारण है षट भग॥

११३,११४. अलेश्यता प्रतिपन्नाना प्रतिपद्यमानाना चैकादीना मनुष्याणा सम्भवेन सप्रदेशत्वेऽप्रदेशत्वे चैकत्वबहुत्वसम्भवादिति। (वृ० प० २६३)

### दूहा

११५. समदृष्टी इक बहु वचन वर समदृष्टि लहेस।
प्रथम समय अप्रदेश है, द्वितीयादि सप्रदेश॥

११५. सम्यग्दृष्टिदण्डकयो सम्यग्दर्शनप्रतिपत्तिप्रथमसमयेऽप्रदेशत्व द्वितीयादिषु तु सप्रदेशत्वम्। (वृ० प० २६३)

११६. *बहु वचने समदृष्टि नें, जीवादिक त्रिण भग।
विकलेंद्रिय षट भग छै, सास्वादन नु प्रसग॥

११६. सम्मद्दिट्ठीहिं जीवादिओ तियभगो। विगलिंदिएसु छब्भगा।

### यतनी

११७. सास्वादन विकलेंद्रिय माय, पूर्व ऊपना एकादि पाय।
वलि ऊपजता वर्तमान, एक आदि लाभै ते जान॥
११८. इण कारण ते सुविशेष, सप्रदेश अनै अप्रदेश।
तिण रो इक बहु वचन प्रसंग, तसु सभव थी षट भंग॥

११७,११८. तथैव विकलेन्द्रियेषु तु षड्, यतस्तेषु सासादनसम्यग्दृष्टय एकादय पूर्वोत्पन्ना उत्पद्यमानाश्च लभ्यन्तेऽत सप्रदेशत्वाप्रदेशत्वयोरेकत्वबहुत्वसम्भव इति। (वृ० प० २६३)

११९. एकेंद्रिय पद नहिं भणवा, समदृष्टि अभावज थुणवा।
बहु वचन मिथ्यादृष्टि चीन, एकेंद्रिय वर्जी भग तीन॥

११९. इहैकेन्द्रियपदानि न वाच्यानि, तेषु सम्यग्दर्शनाभावादिति। (वृ० प० २६३)
मिच्छदिट्ठीहिं एगिंदियवज्जो तियभगो।

१२०. पूर्व काल ना मिथ्या प्रपन्ना, बहुला लाधै विसन्ना।
वलि सम्यक्त्व-भ्रष्ट विवादी, मिथ्या पडिवजता एकादी॥

१२०. मिथ्यात्व प्रतिपन्ना बहव सम्यक्त्वभ्रंशे तत्प्रतिपद्यमानाश्चैकादय सम्भवन्तीतिकृत्वा। (वृ० प० २६३)

१२१. तिण कारण है त्रिण भग, तीनू मे बहु वचन प्रसग।
एकेंद्री इक भग लहेसा, बहु सप्रदेशा-अप्रदेशा॥

१२१. एकेन्द्रियपदेषु पुन सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव। (वृ० प० २६३)

१२२. पूर्व ऊपना एकेंद्री मांय, बहु मिथ्यादृष्टीज कहाय।
उपजता थका पिण बहु होय, तिण सू एक भांगो अवलोय॥

१२२. तेष्ववस्थितानामुत्पद्यमानाना च बहूनामेव भावादिति। (वृ० प० २६३)

---

*लय : प्रभवो मन मांहे चितवै

. इहां सिद्ध न भणवा कोय, मिथ्यात्व अभाव थी सोय।
एहवो कह्यो वृत्ति रै माय, हिवै मिश्रदृष्टी कहिवाय ॥

'. *समामिथ्यादृष्टी विषे, वहु वच सुविचार।
भागा पट भणीजियै, इम न्याय उचार ॥

१२३. इह च सिद्धा न वाच्या, तेपा मिथ्यात्वाभावादिति। (वृ० प० २६३)

१२४. सम्मामिच्छदिट्ठीहिं छब्भगा।

**यतनी**

. वहु वच मिश्र दृष्टि भावंता, पडिवज्या वलि पडिवज्जंता।
एकादिक विहुं माहि लाभत, तिण कारण षट भंगा हुंत ॥

. एकेंद्री विकलेंद्रिय एह, वलि सिद्ध पद नवि उचरेह।
यामे मिश्रदृष्टि नो अभाव, तिण कारण ए न कहाव ॥

७ *सजत शब्द विशेष मे, जीवादिक पद मांय।
भागा तीन भणीजियै, निसुणो तसुं न्याय ॥

१२५ सम्यग्मिथ्यादृष्टित्व प्रतिपन्नका प्रतिपद्यमानाश्चैकादयोऽपि लभ्यन्त इत्यतस्तेषु पड् भङ्गा भवन्तीति। (वृ० प० २६३)

१२६ इह चैकेन्द्रियविकलेन्द्रियसिद्धपदानि न वाच्यान्यसम्भवादिति। (वृ० प० २६३)

१२७ सजएहिं जीवादिओ तियभगो।

**यतनी**

. पूर्व सजम पडिवज्या जाण, वहु लाभै मुनि गुणखाण।
चारित्र पडिवजता वर्त्तमान, एक आदि नो सभव जान ॥

. तिण सू तीन भागा कहिवाय, जीव पद नै मनुष्य पद पाय।
अन्य विषे सजम नो अभाव, इम आख्यो वृत्ति में न्याव ॥

. *वहु वच असजती विषे, एकेंद्रिय वर्जी नै।
भागा तीन भणीजियै, दिल न्याय धरी नै ॥

१२८ सयम प्रतिपन्ना वहूना प्रतिपद्यमानाना चैकादीना भावात्। (वृ० प० २६३)

१२९ इह च जीवपदमनुष्यपदे एव वाच्ये, अन्यत्र सयतत्वाभावादिति। (वृ० प० २६३)

१३० अस्सजएहिं एगिंदियवज्जो तियभगो।

**यतनी**

१. असंजतपणु पहिछाण, पूर्व पडिवजिया वहु जाण।
वलि सजम-भाव विराधि, असंजम पडिवजता एकादि ॥

२. तिण कारण छै त्रिहु भग, तीनू मे वहु वचन प्रसंग।
एकेंद्री इक भग लहेसा, वहु सप्रदेशा-अप्रदेशा ॥

३. इहा सिद्ध पद भणवो नाहि, तास असंभव थी ताहि।
जीवादिक वैमानिक अत, इहा पिणवीस दडक हुंत ॥

३४. सजतासंजत नै विषे, वहु वचन विचार।
जीवादिक पद नै विषे, भागा तीन उचार ॥

५. देश-व्रत रह्या वहु जाण, वलि असजम थी पहिछाण।
तथा सजम भाव विराधि, देश-व्रत ग्रहिता एकादि ॥

६ तिण कारण छै त्रिहु भग, तीनू मे वहु वचन प्रसंग।
जीव पंचेंद्रिय तिर्यंच, मनुष्य पद इज कहिवो सुसंच ॥

१३१,१३२ इहासंयतत्व प्रतिपन्नाना वहूना सयतत्वादिप्रतिपातेन तत्प्रतिपद्यमानाना चैकादीना भावाद् भङ्गकत्रय, एकेन्द्रियाणा तु पूर्वोक्तयुक्त्या सप्रदेशाश्चैक एव भङ्ग इति। (वृ० प० २६३)

१३३ इह सिद्धपदं नाध्येयमसम्भवादिति। (वृ० प० २६३)

१३४ सजयासजएहिं तियभंगो जीवादिओ।

१३५,१३६ इह देशविरतिं प्रतिपन्नाना वहूना सयमादसयमाद् वा निवृत्य ता प्रतिपद्यमानाना चैकादीना भावाद्भङ्गकत्रयसम्भव, इह जीवपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यपदान्येवाध्येयानि। (वृ० प० २६३)

---

य : प्रभवो मन माहे चितवै

१३७. नोसजत नोअसजत, संजतासजत नाय ।
वहु वच जीव सिद्धा विषे, त्रिण भगा पाय ।।

१३७ नोसंजय-नोअसंजय-नोसंजयासंजय - जीव - सिद्धेहिं तियभगो ।

१३८. *बहु वच सकषाई विषे, जीवादिक त्रिण भग ।
एकेंद्रिय अभग छै, सूत्रे एम सुचंग ।।

१३८ सकसाईहिं जीवादिओ तियभगो । एगिंदिएसु अभगक ।

**यतनी**

१३९ सकषाई सदा वहु पेख, सप्रदेशा भग इति एक ।
तथा उपशम श्रेणि थी पडतो, सकपायपणु पडिवजतो ।।
१४० एक जीव पिण लाधै विशेष, जद सप्रदेशा अप्रदेश ।
द्वितीय भग कहिवाय, हिव तीजा नो निसुणो न्याय ।।
१४१ उपशमश्रेणी थकी वहु पडता, सकपायपणो पडिवजता ।
जद सप्रदेशा-अप्रदेशा, ए तृतीय भग सुविशेषा ।।
१४२ नारकादिक माहे पाय, तीन भागा प्रसिद्ध कहाय ।
वलि एकेंद्रिय रै माहि, अभग ते भागा नाहि ।।

१३९, १४० सकषायाणा सदाऽवस्थितत्वात्ते सप्रदेशा इत्येको भङ्ग तथोपशमश्रेणीत प्रच्यवमानत्वे सकपायत्व प्रतिपद्यमाना एकादयो लभ्यन्ते ततश्च सप्रदेशाश्चाप्रदेशश्च । (वृ० प० २६३)
१४१ तथा सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्यपरभङ्गकद्वयमिति । (वृ० प० २६३)
१४२ नारकादिषु तु प्रतीतमेव भङ्गकत्रयम्, 'एगिंदिएसु अभगय' ति अभङ्गक—भङ्गकानामभावोऽभङ्गकम् । (वृ० प० २६३)

१४३. वहु सकपाई सदा पाय, ऊपजना पिण बहु थाय ।
घणा सप्रदेशा-अप्रदेशा, एक विकल्प वृत्ति कहेसा ।।

१४३ सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव विकल्प इत्यर्थ, बहूनामवस्थितानामुत्पद्यमानाना च तेषु लाभादिति । (वृ० प० २६३)

१४४ एकेंद्रिय मे अभग सूत्र माय, त्रिण षट भग नी अपेक्षाय ।
त्रिण षट माहिलू भग एक, तिण सूं वृत्ति विषे एक पेख ।।
१४५. इहा सिद्ध पद नें नहिं कहिवो, अकषाईपणें तसु रहिवो ।
दडक चोवीसा माहे कषाय, सिद्धा माहे ते नहिं पाय ।।

१४५ इह च सिद्धपद नाध्येयमकषायित्वात् । (वृ० प० २६३)

१४६ *क्रोधकपाई नें विषे, बहु वच पहिछाण ।
जीव एकेंद्रिय वर्ज नें, भागा तीन जाण ।।

१४६. कोहकसाईहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभगो ।

**यतनी**

१४७ वृत्ति मे कह्यो क्रोधकषाई, बहु वच जीव एकेंद्री माही ।
वहु सप्रदेशा-अप्रदेशा, शेप मे त्रिण भग कहेसा ।।

१४७. क्रोधकपायिद्वितीयदण्डके जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव भङ्ग शेषेषु त्रय । (वृ० प० २६३)

१४८. समचै सकषाई जीव माहि, पूर्व त्रिण भांगा कह्या ताहि ।
क्रोधकपाई मे त्रिण भग, किम न लाधै तेह प्रसग ?
१४९ तेहनो उत्तर इह विध जाण, मान माया लोभ पहिछाण ।
ए तीनू भावे न वर्त्ततां, क्रोध भावे घणा पामता ।।
१५०. अनतकाय नी राशि मभार, तिहा जीव अनता धार ।
क्रोध भावे सदा वहु होय, पिण एकादिक नहि सोय ।।
१५१. तिण सू क्रोधकषाई विशेषा, सव्व जीवा सप्रदेशा-अप्रदेशा ।
पिण तीन भागा नहि पाय, बुद्धिवत विचारै न्याय ।।

१४८ ननु सकषायिजीवपदवत्कथमिह भङ्गत्रय न लभ्यते ? (वृ० प० २६३)
१४९ उच्यते, इह मानमायालोभेभ्यो निवृत्ता क्रोध प्रतिपद्यमाना वहव एव लभ्यन्ते । (वृ० प० २६३)
१५० प्रत्येक तद्राशीनामनन्तत्वात्, न त्वेकादय । (वृ० प० २६३)

*लय : प्रभवो मन माहे चिंतवै

१५२ समचै सकपाई जीवां माय, तीन भागा कह्या तसु न्याय ।
सकपाईपणे सदा ताहि, बहु जीव रह्या जग मांहि ॥
१५३ पछै उपशमश्रेणि थी पड़तो, सकपायपणों पड़िवजतो ।
एक जीव तथा बहु जीवा, प्रथम समय लाधै ते अतीवा ॥
१५४. तिण सू सकपाई जीव माहि, तीन भागा पूर्व कह्या ताहि ।
क्रोधकपाई सदा विशेषा, तिणसू सप्रदेशा अप्रदेशा ॥

१५५ *बहु वच क्रोध कषाय मे, देव पदे कहिवाय ।
तेर दंडक सुर नै विषे, षट भगा तसु न्याय ॥

**यतनी**

१५६. देव वर्त्तता क्रोध रै भावै, अल्पपणे एकादिक थावै ।
तिण सू कहियै इक वचनेह, वलि बहु वचने पिण तेह ॥
१५७ सप्रदेशपणु अवलोय, वलि अप्रदेशपणु जोय ।
बिहु ना संभव थीज प्रसग, तिण कारण है षट भंग ॥

१५८ *मानकपाई नै विषे, वलि मायकपाई ।
जीव एकेंद्रिय वर्ज नै, त्रिण भगा थाई ॥
१५९ बहु वच नारक सुर विषे, मान माया कषाई ।
भागा षट लहियै अछै, तास न्याय कहिवाई ।

**यतनी**

१६०. नारकी देवता में जेह, मान माय भावे वर्त्ते तेह ।
तिके अल्पहिज कहिवाय, षट भागा पूर्वले न्याय ॥

१६१ *बहु वच लोभ कषाई में, वर्जी जीव एगिंदिया ।
तीन भागा पावै अछै, षट भंग नेरइया ॥

**यतनी**

१६२. वृत्ति मांहि कही इम वाय, एह सूत्र क्रोधवत पाय ।
नारकी नै विषे षट भग, तेहनो इम न्याय प्रसग ॥
१६३. नारकी नै लोभोदयवंत, अल्पपणां थकीज उदंत ।
पूर्वोक्त भांगा षट होय, नारक लोभकषाई जोय ॥
१६४. सुर नारक मे अल्प जोय, मान माय वर्तत्ता होय ।
पूर्वोक्त न्याय थी पेख, षट भागा हुवै इण लेख ॥
१६५. क्रोध मान माया सुर माय, तसु षट भांगा कहिवाय ।
मान माया लोभ नारकेह, तसुं पिण षट भग कहेह ॥

१६६. देवतां मे लोभ बहु होय, तिण सू लोभ भाव बहु जोय ।
नरक मे बहु क्रोधज पावै, तिण सू वर्त्ते बहु क्रोध भावै ॥

*लय : प्रभवो मन मांहे चितवै

१५३ यथोपशमश्रेणीत प्रच्यवमाना. सकपायित्वं प्रतिपत्तार इति । (वृ० प० २६४)

१५५ देवेहिं छब्भंगा ।
देवपदेषु त्रयोदशस्वपि षट्भङ्गाः । (वृ० प० २६४)

१५६, १५७. तेषु क्रोधोदयवतामल्पत्वेनैकत्वे बहुत्वे च सप्रदेशाप्रदेशत्वयो सम्भवादिति ।(वृ० प० २६४)

१५८ माणकसाई-मायाकसाईहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभगो ।
१५९ नेरइय-देवेहिं छब्भगा ।
मानकषायिमायाकषायिद्वितीयदण्डके 'नेरइयदेवेहिं छब्भग' त्ति (वृ० प० २६४)

१६०. नारकाणा देवानां च मध्येऽल्पा एव मानमायोदयवन्तो भवन्तीति पूर्वोक्तन्यायात् षड् भङ्गा भवन्तीति । (वृ० प० २६४)
१६१ लोभकसाईहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभगो । नेरइएसु छब्भंगा

१६२ एतस्य क्रोधसूत्रवद्भावना 'नेरइएहि छब्भग' त्ति (वृ० प० २६४)
१६३ नारकाणा लोभोदयवतामल्पत्वात् पूर्वोक्ता षड्भगा भवन्तीति । (वृ० प० २६४)

१६५ कोहे माणे माया बोद्धव्वा सुरगणेहिं छब्भगा ।
माणे माया लोभे नेरइएहिं पि छब्भगा ॥ (वृ० प० २६४)
१६६ देवा लोभप्रचुरा, नारका क्रोधप्रचुरा इति । (वृ० प० २६४)

१६७. *वहु वच अकषाई विषे, जीव मनुष्य सिद्ध न्हाल ।
भागा तीन पावै अछै, घणां केवली त्रिकाल ॥

१६८. औघिक समचै ज्ञान मे, मतिज्ञान श्रुतज्ञान ।
वहु वचने जीवादिके, त्रिण भागा जान ॥

**यतनी**

१६९. समचै ज्ञानी सदा वहु होय, इम मति श्रुत ज्ञानी जोय ।
वहु समय तणा सुविशेख, सप्रदेशा भांगो इक देख ॥

१७०. अज्ञान थकी कोइ ज्ञान पडिवजतो थको इक जान ।
एक समय थयो सुविशेख, ते सप्रदेशा अप्रदेश एक ॥

१७१ अज्ञान थकी केइ ज्ञान पडिवजता थका वहु जान ।
इक समय थया सुविशेषा, ते सप्रदेशा-अप्रदेशा ॥

१७२. [1]विकलेंद्रिय षट भग है, ज्ञान मति श्रुत लाध ।
पूर्व पडिवज्या लाभै एकादिक, पडिवजता पिण एकाद ॥

१७३. अवधि मनपर्यव ज्ञान मे, वलि केवलज्ञान ।
जीवादिक त्रिण भग छै, ज्यामे लाभै ते जान ॥

**यतनी**

१७४. मति श्रुत ज्ञान रै मांय, एकेंद्रिय सिद्ध न कहाय ।
अवधि विषे एकेंद्री न पाय, विकलेंद्रिय सिद्ध न थाय ॥

१७५. मनपर्यव जीव मनु जाण, केवल जीव मनुष्य सिद्ध माण ।
इम यथायोग्य कहिवाय, बुद्धिवत मिलावै न्याय ॥

१७६. वाचनातरे वृत्ति रै माहि, विण्णेय जस्स ज अत्थि ताहि ।
जेह माहे वोल जे पाय, ते कहिवू विचारी न्याय ॥

१७७. [†]औघिक समचै अज्ञान मे, वलि मति श्रुत अज्ञान ।
एकेंद्रिय वरजी करी, तीन भांगा जान ॥

**यतनी**

१७८. समचै अन्नाणी मति श्रुत अज्ञानी, सदा अवस्थित वहु जानी ।
कहियै तास सप्रदेशा, इक भांगो एम लहेसा ॥

१७९. वलि एक जीव ते मांय, ज्ञान मूकी अज्ञानी थाय ।
तिण रो प्रथम समय सुविशेख, ए सप्रदेशा-अप्रदेश एक ॥

*लय : प्रभवो मन माहे चितवै

१६७ अकमाई-जीव-मणुएहिं, सिद्धेहिं तियभंगो ।

१६८ ओहियनाणे, आभिणिवोहियनाणे, सुयनाणे जीवादिओ तियभगो ।

१६९ तत्रौघिकज्ञानमतिश्रुतज्ञानिना सदाऽवस्थितत्वेन सप्रदेशाना भावात्, सप्रदेशा इत्येक ।
(वृ० प० २६४)

१७०, १७१ मिथ्याज्ञानान्मत्यादिज्ञानमात्र''''''प्रतिपद्यमानानामेकादीना लाभात्सप्रदेशाश्चाप्रदेशश्च तथा सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्चेति द्वावित्येव त्रयमिति ।
(वृ० प० २६४)

१७२ विगलिदिएहिं छब्भगा ।

१७३ ओहिनाणे मणपज्जवनाणे केवलनाणे जीवादिओ तियभंगो ।

१७४ इह च यथायोग पृथिव्यादयः सिद्धाश्च न वाच्या. असभवादिति, एवमवध्यादिष्वपि भङ्गत्रयभावना, केवलमवधिदण्डकयोरेकेन्द्रियविकलेन्द्रिया सिद्धाश्च न वाच्या·, (वृ० प० २६४)

१७५. मन पर्यायदण्डकयोस्तु जीवा मनुष्याश्च वाच्या, केवलदण्डकयोस्तु जीवमनुष्यसिद्धा वाच्या.,
(वृ० प० २६४)

१७६ अतएव वाचनान्तरे दृश्यते 'विण्णेयं जस्स जं अत्थि' त्ति । (वृ० प० २६४)

१७७ ओहिए अण्णाणे, मइअण्णाणे, सुयअण्णाणे एगिंदियवज्जो तियभगो ।

१७८ सामान्येऽज्ञाने मत्यज्ञानादिभिरविशेषिते मत्यज्ञाने श्रुताज्ञाने च जीवादिषु त्रिभङ्गी भवति, एते हि सदाऽवस्थितत्वात्सप्रदेशा इत्येक. । (वृ० प० २६४)

१७९ यदा तु तदन्ये ज्ञान विमुच्य मत्यज्ञानादितया परिणमन्ति तदैकादिसम्भवेन सप्रदेशाश्चाप्रदेशश्चेत्यादिभङ्गद्वयम् । (वृ० प० २६४)

१८०. तथा अन्य वहु जीव ताय, ज्ञान मूकी अज्ञानी थाय।
त्यारो प्रथम समय सुविशेपा, ए सप्रदेशा-अप्रदेशा ॥

१८१. पृथिव्यादिक एकेंद्री मांय, तिहा एक भागो कहिवाय।
वहु सप्रदेशा-अप्रदेशा, न्याय पूर्व उक्त कहेसा ॥

१८१. पृथिव्यादिपु तु सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव इति। (वृ० प० २६४)

१८२. *विभग अज्ञानी विषे, जीवादिक त्रिण भंग।
न्याय पूर्व जे आखियो, कहिवो ते सुचग ॥

१८२ विभगनाणे जीवादिओ तियभगो।

१८३. सजोगी जीवादिक मझे, इक वहु वच माय।
जिम औघिक जीवादिक भणी, आख्या तिम कहिवाय ॥

१८३ सजोगी जहा ओहिओ,

## यतनी

१८४. इक वचन सजोगी जीव, नियमा सप्रदेशी अतीव।
नारकादि सिय सप्रदेश, सिय अप्रदेश सुकहेस ॥

१८४ सयोगी जीवो नियमात्सप्रदेशो नारकादिस्तु सप्रदेशोऽप्रदेशो वा। (वृ० प० २६४)

१८५. वहु वचन सजोगी जीवा, सप्रदेशाज होवै सदीवा।
एकेन्द्री वर्जी नारकादि, कहियै तीन भागा सुसाधि ॥

१८५ वहवस्तु जीवा सप्रदेशा एव, नारकाद्यास्तु त्रिभङ्गवन्त। (वृ० प० २६४)

१८६. एकेन्द्री इक भग विशेपा, वहु सप्रदेशा-अप्रदेशा।
इम औघिक जिम कहिवाय, इक सिद्ध पद कहिवो नाय ॥

१८६ एकेन्द्रिया पुनस्तृतीयभङ्गा इति, इह सिद्धपद नाध्येय। (वृ० प० २६४)

१८७. *मन वच काय जोगी मझे, जीवादिक त्रिण भंग।
णवरं काय जोगी विषे, एगिदिया में अभग ॥

१८७ मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी जीवादिओ तियभगो, नवर—कायजोगी एगिदिया, तेसु अभगय।

## यतनी

१८८. मनजोग त्रिहु जोगवत, ते तो सन्नी माहे इज हुत।
वचनजोग एकेन्द्री मे नाहि, पावै उगणीस दडक माहि ॥

१८८ मनोयोगिनो योगत्रयवन्त सञ्ज्ञिन इत्यर्थ, वाग्योगिन एकेन्द्रियवर्जा, (वृ० प० २६४)

१८९. कायजोग दडक चउवीस, हिवै निर्णय भग कहीस।
मन जोग जीवादिक मांय, त्रिहुं भागा नो इम न्याय ॥

१८९ काययोगिनस्तु सर्वेऽप्येकेन्द्रियादय, एतेपु च जीवादिपु त्रिविधो भङ्ग। (वृ० प० २६४)

१९०. वहु मन जोगे आदि जाण, अवस्थितपणे पहिछाण।
जद सप्रदेशा इज होय, इम प्रथम भग अवलोय ॥

१९० मनोयोगादीनामवस्थितत्वे प्रथम। (वृ० प० २६४)

१९१. छाडी अमनोजोगीपणु पेख, मनजोगीपणे थयु एक।
तिण रो प्रथम समय सुविशेप, इम सप्रदेशा-अप्रदेश ॥

१९२. छाडी अमनोजोगीपणु ताय, मनोजोगीपणै वहु थाय।
तिण रो प्रथम समय सुविशेषा, इम सप्रदेशा-अप्रदेशा ॥

१९१,१९२ अमनोयोगित्वादित्यागाच्च मनोयोगित्वाद्युत्पादेनाप्रदेशत्वलाभेऽन्यद्भङ्गकद्वयमिति। (वृ० प० २६४)

१९३. इम वचन काय जोगी जाण णवर इतो विशेप पिछाण।
काय-जोगी एकेन्द्री विशेपा, वहु सप्रदेशा-अप्रदेशा ॥

१९३ नवर काययोगिनो ये एकेन्द्रियास्तेष्वभङ्गक, सप्रदेशा अप्रदेशाश्चेत्येक एव भङ्गक इत्यर्थ। (वृ० प० २६४)

१९४. तीनू जोग दंडक रै माय, जीवादिक पद मे जे पाय।
यथासभव ते कहिवाय, पिण सिद्ध पद भणवो नाय ॥

१९४ एतेपु च योगत्रयदण्डकेपु, जीवादिपदानि यथासम्भवमध्येयानि सिद्धपदं च न वाच्यमिति। (वृ० प० २६४)

---

*लय : प्रभवो मन मांहे चिंतवै

१९५. अजोगी अलेसी जिम भणवा, एक वचन वहु वच गुणवा।
द्वितीय दडक वहु वच माय, अजोगी विषे इम कहिवाय ॥
१९६. जीव नै सिद्ध पद सुचीन, यामे भागा कहीजै तीन।
मनुष्य विषे छ भागा होय, वृत्ति विषे इम जोय ॥

१९७. *वहु वचने साकार नै, अणागारोवउत्ता।
जीव एकेन्द्रिय वर्ज नै, भागा तीनज उत्ता ॥

१९५, १९६ अजोगी जहा अलेस्सा।
दण्डकद्वयेऽप्यलेश्यसमवक्तव्यत्वात्तेषा, ततो द्वितीय-दण्डकेऽयोगिषु जीवसिद्धपदयोर्भङ्गकत्रय मनुष्येषु च षड्भङ्गीति। (वृ० प० २६४)

१९७ सागारोवउत्त-अणागारोवउत्तेहिं जीवेगिदियवज्जो तियभगो।

## यतनी

१९८. विहु उपयोग माहे सुचीन, नारकादिक में भग तीन।
जीव एकेन्द्री एक लहेसा, वहु सप्रदेशा-अप्रदेशा ॥

१९८ साकारोपयुक्तेष्वनाकारोपयुक्तेषु च नारकादिषु त्रयो भङ्गा, जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च सप्रदेशा-श्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव। (वृ० प० २६५)

१९९. एक उपयोग थी जे ताय, वीजा उपयोग नै विषे आय।
तिहा प्रथम समय सप्रदेश, द्वितीयादि समय अप्रदेश ॥
२००. वलि सिद्धा तणै कहिवाय, एक समय उपयोगी थाय।
किम सप्रदेश अप्रदेश, तिहा वृत्ति मे न्याय कहेस ॥
२०१. उपयोग सागार नै अनागार, पामवापणु छै वार वार -
सप्रदेश कहियै विशेष, एक वार पाम्या अप्रदेश ॥

१९९ तत्र चान्यतरोपयोगादन्यतरगमने प्रथमेतरसमयेष्व-प्रदेशत्वसप्रदेशत्वे भावनीये, (वृ० प० २६५)
२०० सिद्धाना त्वेकसमयोपयोगित्वेऽपि। (वृ० प० २६५)
२०१ साकारस्येतरस्य चोपयोगस्यासकृत्प्राप्त्या सप्रदेशत्व सकृत्प्राप्त्या चाप्रदेशत्वमवसेयम्। (वृ० प० २६५)

२०२. वार वार पाम्या छै सागार, एहवा वहु सिद्ध आश्री विचार।
एक वार सागार न कोय, सप्रदेशा इक भग होय ॥
२०३. त्या सिद्धा विषे नवो एक, सिद्ध थयो ससार थी पेख।
एक वार सागार लहेस, जद सप्रदेशा-अप्रदेश ॥
२०४. तथा तेह सिद्धा विषे सोय, नवा सिद्ध थया वहु जोय।
एक वार साकार लभेसा, जद सप्रदेशा-अप्रदेशा ॥
२०५. वार वार पाम्या अणागार, एहवा वहु सिद्ध आश्री विचार।
अनाकार न इक पिण पेख, सहु सप्रदेशा भग एक ॥
२०६. त्या सिद्धा विषे नवो एक, सिद्ध थयो ससारी थी पेख।
वार इक अणागार लहेस, जद सप्रदेशा-अप्रदेश ॥
२०७. तथा तेह सिद्धा विषे सोय, नवा सिद्ध थया वहु जोय।
वार इक अणागार लभेसा, जद सप्रदेशा-अप्रदेशा ॥

२०२ एव चासकृदवाप्तसाकारोपयोगान् वहूनाश्रित्य सप्रदेशा इत्येको भङ्ग, (वृ० प० २६५)
२०३ तानेव सकृदवाप्तसाकारोपयोग चैकमाश्रित्य द्वितीय, (वृ० प० २६५)
२०४ तथा तानेव सकृदवाप्तसाकारोपयोगाश्च वहूनधि-कृत्य तृतीय, (वृ० प० २६५)
२०५ अनाकारोपयोगे त्वसकृत्प्राप्तानाकारोपयोगानाश्रित्य प्रथम, (वृ० प० २६५)
२०६ तानेव सकृत्प्राप्तानाकारोपयोग चैकमाश्रित्य द्वितीय, (वृ० प० २६५)
२०७ उभयेषामप्यनेकत्वे तृतीय इति। (वृ० प० २६५)

२०८. *सवेदगा जीवादिक पदे, सकषाई जेम।
भागा तीन भणीजियै, एकेन्द्री इक तेम ॥

२०८ सवेदगा जहा सकसाई।
सवेदानामपि जीवादिपदेषु भङ्गकत्रयभावात्, एकेन्द्रियेषु चैकभङ्गसद्भावात्। (वृ० प० २६५)

## यतनी

२०९. जीव सवेदी वहु जग माहि, वहु काल तणा छै ताहि।
प्रथम समय सवेदी न पाय, जद सप्रदेशा वहु थाय ॥

२०९-२११ इह च वेदप्रतिपन्नान् बहून् श्रेणिभ्र शे च वेद प्रतिपद्यमानकादीनपेक्ष्य भङ्गकत्रय भावनीयम्, (वृ० प० २६५)

*लय : प्रभवो मन मांहे चितवै

२१०. घणा सवेदी माहे एक, श्रेणि थी पड़तो सपेख।
तिण रो प्रथम समय सुविशेप, जद सप्रदेशा-अप्रदेश ॥
२११. वले घणा सवेदी मे सोय, श्रेणि थी पडता वहु होय।
तिण रो प्रथम समय सुविशेपा, वहु सप्रदेशा-अप्रदेशा ॥

२१२. *स्त्री पु नपुसक वेदगा, जीवादिक त्रिण भग।
णवर नपुसक नें विषे, एकेन्द्री मे अभग ॥

२१२ इत्थिवेदग-पुरिसवेदग-नपुमगवेदगेमु जीवादिओ तियभंगो, नवर—नपुसगवेदे एगिदिएमु अभगय।

## यतनी

२१३. वेद थकी बीजा वेद माहि, सक्रमता छता जे ताहि।
जद प्रथम समय अप्रदेश, द्वितीयादि समय सप्रदेश ॥
२१४. तीन भागा पूर्ववत कहिवा, नपुसक एकेन्द्री इक लहिवा।
वहु सप्रदेशा-अप्रदेशा, पूर्वली परे युक्ति कहेसा ॥

२१५. स्त्री पुरुप दडक मनु देवा, तिर्यच पचेन्द्रिय लेवा।
नपुसक सुर वर्जी भणवा, पद सिद्ध सर्व मे न थुणवा ॥

२१६. *अवेदी जिम अकपाइया, जीव मनुष्य पद सिद्ध।
भागा तीन भणीजियै, अकपाई ज्यू ऋद्ध ॥

२१७. सशरीरी औघिक जिम अछै, एक वहु वच माय।
सप्रदेशपणो ईज छै, अनादिपणां थी थाय ॥

२१८. नारकादि वहु वचन मे, भंग त्रिण सुविशेपा।
तीजो भागो एकेन्द्री मझे, सप्रदेशा-अप्रदेशा ॥
२१९. औदारीक अरु वैक्रिय तनुवाला मे ताय।
जीव एकेन्द्रिय वर्ज नै, तीन भागा पाय ॥

२१३ इह वेदाद्वेदान्तरसङ्क्रान्तौ प्रथमे समयेऽप्रदेशत्वमितरेपु च सप्रदेशत्वमवगम्य। (वृ० प० २६५)

२१४ भङ्गकत्रय पूर्ववद्वाच्य नपुसकवेददण्डकयोस्त्वेकेन्द्रियेष्वेको भङ्ग सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येवरूप प्रागुक्तयुक्तेरेवेति, (वृ० प० २६५)

२१५ स्त्रीदण्डकपुरुपदण्डकेपु देवपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यपदान्येव, नपुसकदण्डकयोस्तु देववर्जानि वाच्यानि, सिद्धपद च सर्वेष्वपि न वाच्यमिति। (वृ० प० २६५)

२१६ अवेदगा जहा अकसाई।
जीवमनुष्यसिद्धपदेपु भङ्गकत्रयमकपायिवद्वाच्यम्। (वृ० प० २६५)

२१७ ससरीरी जहा ओहिओ।
औघिकदण्डकवत्सशरीरिदण्डकयोर्जीवपदे सप्रदेशतैव वाच्याऽनादित्वात्सशरीरत्वस्य, (वृ० प० २६५)

२१८ नारकादिपु तु वहुत्वे भङ्गकत्रयमेकेन्द्रियेपु तृतीयभङ्ग इति। (वृ० प० २६५)

२१९ ओरालिय-वेउव्वियसरीराण जीवेगिदियवज्जो तियभगो।

## यतनी

२२०. औदारिकादि वाला में ताहि, वहु वच जीव एकेंद्री माहि।
इक तीजो भांगो पावंत, वहु ऊपना वहु उपजंत ॥

२२१. शेप विपे भागा त्रिण होय, तेह विपे वहु रह्या सोय।
इम पूर्वला वहु हुत, सर्व सप्रदेशा पावंत ॥
२२२. तथा औदारिक छाडी नें, वलि वैक्रिय त्याग करीनें।
औदारिक मांहे आवता, तथा वैक्रियपणु पावंता ॥
२२३. प्रथम समय एक वहु होय, तिण सू तीन भांगा अवलोय।
इक वहु वच औदारीक, नारका सुर नाहि कथीक ॥

२२० औदारिकादिशरीरिसत्त्वेपु जीवपदे एकेन्द्रियपदेपु च वहुत्वे तृतीयभङ्ग एव, वहूना प्रतिपन्नाना प्रतिपद्यमानानां चानुक्षण लाभात्, (वृ० प० २६५)

२२१. शेपेपु भङ्गकत्रय वहूना तेपु प्रतिपन्नानां (वृ० प० २६५)

२२२, २२३ तथौदारिकवैक्रियत्यागेनौदारिकं वैक्रिय च प्रतिपद्यमानानामेकादीना लाभात्, इहौदारिकदण्डकयोर्नारका देवाश्च न वाच्या। (वृ० प० २६५)

---

*लय : प्रभवो मन माहे चितवै

२२४. वलि वैक्रिय इक वहु वाय, वाऊ वर्जी थावर मे नाय।
विकलेन्द्रिय मे पिण जोय, वैक्रिय तनु नहिं होय॥
२२५. जे वैक्रिय वायु माय, एक तीजो भागो कहिवाय।
समय-समय वायु असख्यात, तनु वैक्रिय करण आख्यात॥

२२६. तथा मनुष्य पचेन्द्रिय तिर्यच, वैक्रिय लब्धिवत सुसच।
थोडा हुवै ते पिण त्या माय, तीन भागा कह्या जिनराय॥
२२७. ते वचन सामर्थ्य थी जान, वहु वैक्रिय रह्यु पिछान।
तथा पडिवज्जमान एकादि, तिण सू तीन भागा इहा लाधि॥

२२८. *आहारक इक वहु वचन थी, जीव मनुष्य षट भंग।
ते तनु अल्पपणा थकी, शेष दडक न प्रसग॥

२२९. तेजस शरीर तणा धणी, वलि कार्मणवाला।
औघिक जेम कहीजियै, ए जिन वचन विशाला॥

## यतनी

२३०. तिहा वहु वचने जे जीवा, होवै सप्रदेशाज अतीवा।
तेजसादिक नो सजोग, अनादिपणा थी प्रयोग॥

२३१ नारकादिक मे त्रिण भंग, तीजो भग एकेद्री प्रसग।
सशरीरादिक दडकेह, पद सिद्ध तणो न कहेह॥

२३२. *अशरीरी जीव सिद्धां विषे, त्रिण भागा पाय।
चोवीस दंडक नै विषे, अशरीरी नहिं थाय॥

२३३ आहार शरीर नै इंद्रिय, पर्याप्त आणप्राण।
जीव एकेंद्रिय वर्ज नै, तीन भागा जाण॥

## यतनी

२३४. इहा जीव-पदे कहिवाय, वलि एकेंद्री पद माय।
आहार आदि पर्याप्ति च्यार, तिण सहित बहु अवधार॥

२३५ आहारादिक अपर्याप्ति जाण, तिके तजवै करि पहिछाण।
आहार पर्याप्ति प्रमुखेह, तिण कर पर्याप्तिभाव पामेह॥
२३६ पिण लाभै वहु सुविशेषा, तिण सू सप्रदेशा अप्रदेशा।
तिण सू भग तीजो कहिवाय, शेष मे तीन भागा थाय॥

---

*लय : प्रभवो मन मांहे चिन्तवै

२२४ वैक्रियदण्डकयोस्तु पृथिव्यप्तेजोवनस्पतिविकलेन्द्रिया न वाच्या। (वृ० प० २६५)

२२५ यश्च वैक्रियदण्डके एकेन्द्रियपदे तृतीयभङ्गोऽभिधीयते स वायूनामसख्याताना प्रतिसमय वैक्रियकरणमाश्रित्य, (वृ० प० २६५)

२२६ २२७ यद्यपि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च वैक्रियलब्धिमन्तोऽल्पे तथाऽपि भङ्गकत्रयवचनसामर्थ्याद् बहूना वैक्रियावस्थानसम्भव, तथैकादीना तत्प्रतिपद्यमानता चावसेया। (वृ० प० २६५)

२२८ आहारगसरीरे जीव-मणुएसु छब्भगा,
आहारकशरीरिणामल्पत्वात्, शेषजीवाना तु तन्न सभवतीति। (वृ० प० २६५)

२२९ तेयग-कम्मगाइ जहा ओहिया।

२३० तत्र च जीवा सप्रदेशा एव वाच्या, अनादित्वात्तैजसादिसयोगस्य,
(वृ० प० २६५)

२३१ नारकादयस्तु त्रिभङ्गा, एकेन्द्रियास्तु तृतीयभङ्गा, एतेषु च शरीरादिदण्डकेषु सिद्धपद नाध्येयमिति,
(वृ० प० २६५)

२३२ असरीरेहिं जीव-सिद्धेहिं तियभगो।
अन्यत्राशरीरत्वस्याभावादिति।
(वृ० प० २६५)

२३३ आहारपज्जत्तीए, सरीरपज्जत्तीए, इदियपज्जत्तीए, आणापाणपज्जत्तीए जीवेगिंदियवज्जो तियभगो,

२३४ इह च जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च वहूनामाहारादिपर्याप्ती प्रतिपन्नाना
(वृ० प० २६५)

२३५, २३६ तदपर्याप्तित्यागेनाहारपर्याप्त्यादिभि पर्याप्तिभाव गच्छता च बहूनामेव लाभात्सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव भङ्ग, शेषेषु तु त्रयो भगा इति।
(वृ० प० २६५)

२३७. *भाषा मन पर्याप्ति मे, सन्नी जिम कहिवाय ।
सर्व पदे भंग तीन छै, दडक पचेंद्री पाय ॥

२३७. भासा-मणपज्जत्तीए जहा सण्णी ।
सर्वपदेषु भङ्गकत्रयमित्यर्थ, पञ्चेन्द्रियपदान्येव चेह वाच्यानि,
(वृ० प० २६५)

### यतनी

२३८ भाषा मन पर्याप्ति एक, किणहि कारण थी सुविशेख ।
बहुश्रुत कही छै ताय, इम वृत्ति विषै छै वाय ॥

२३८ इह भाषामनसो: पर्याप्तिर्भाषामन:पर्याप्ति, भाषामन:पर्याप्त्योस्तु बहुश्रुताभिमतेन केनापि कारणेनैकत्व विवक्षित,
(वृ० प० २६५)

२३९. *आहार अपर्याप्ति विषे, अनाहारका जेम ।
निर्णय वृत्ति विषे कह्यो, सुणज्यो धर प्रेम ॥

२३९ आहार-अपज्जत्तीए जहा अणाहारगा,

### यतनी

२४० जीव एकेंद्री इक भग एसा, बहु सप्रदेशा अप्रदेशा ।
निरतर विग्रहगति बहु पाय, शेष मे षट भगा कहाय ॥

२४० इह जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव भङ्गकोऽनवरत विग्रहगतिमतामाहारपर्याप्तिमता बहूना लाभात्, शेषेषु च षड्भङ्गा: पूर्वोक्ता एवाहारपर्याप्तिमतामल्पत्वात्,
(वृ० प० २६६)

२४१. *शरीर इन्द्री आणपाण ए, अपर्याप्ति त्रिहु जाण ।
जीव एकेंद्रिय वर्ज नै, भग तीन पहिछाण ॥

२४१. सरीर-अपज्जत्तीए, इंदिय-अपज्जत्तीए, आणापाण-अपज्जत्तीए जीवेगिंदियवज्जो तियभगो,
(वृ० प० २६६)

२४२. नारक देव मनुष्य विषे, षट भागा होय ।
न्याय कहूं हिव वृत्ति थी, सुणज्यो सहु कोय ॥

२४२. नेरइय-देव-मणुएहिं छब्भगा,

### यतनी

२४३. जीव एकेंद्री मे भग एक, सप्रदेशा अप्रदेशा देख ।
अन्य विषे भग त्रिण पाय, तिण रो न्याय सुणो चित ल्याय ॥
२४४. शरीरादि अपर्याप्ति तीन, काल थी सप्रदेशा सुचीन ।
सदा काल लाभै छै ताय, अप्रदेशा कदाचित थाय ॥
२४५ तिके एक आदि पिण पाय, तिण सू तीन भागा कहिवाय ।
वले नारकी सुर नर माहि, षट भागा कहीजै ताहि ॥

२४३ इह जीवेष्वेकेन्द्रियेषु चैक एव भङ्गोऽन्यत्र तु त्रय,
(वृ० प० २६६)

२४४, २४५ शरीराद्यपर्याप्तकाना कालत सप्रदेशाना सदैव लाभात् अप्रदेशाना च कदाचिदेकादीना च लाभात्, नारकदेवमनुष्येषु च षडेवेति,
(वृ० प० २६६)

२४६. *भाषा मन अपर्याप्ति विषे, जीवादिक त्रिण भग ।
नारक सुर अरु मनुष्य मे, षट भंग प्रसग ॥

२४६ भासामणअपज्जत्तीए जीवादिओ तियभगो, नेरइय-देव-मणुएहिं छब्भगा ।
(श० ६।६३)

### यतनी

२४७ भाषा मन पर्याप्ति अवध, तेह अपर्याप्ति नी संध ।
पचेंद्रिय जाति प्रसंग, तिण सू जीवादिक त्रिण भग ॥

२४७ भाषामन पर्याप्त्याऽपर्याप्तिकास्ते येषां जातितो भाषामनोयोग्यत्वे मति तदसिद्धि:, ते च पचेन्द्रिया एव,
(वृ० प० २६६)

---

*लय : प्रभवो मन माहे चितवै

२४८. जो ए भाषा मन पर्याप्ति, कहै अभाव मात्र करि नाप्ति ।
जद तो एकेंद्री पिण तिहा आय, जीव पदे तीजो भग थाय ।।

२४८ यदि पुनर्भाषामनसोऽभावमात्रेण तदपर्याप्तका अभविष्यस्तदैकेन्द्रिया अपि तेऽभविष्यस्ततश्च जीवपदे तृतीय एव भङ्ग.स्यात्,
(वृ० प० २६६)

२४९. इहा कह्या जीवादि त्रि भग, तिण सू एकेंद्री नो न प्रसग ।
जीव पंचेद्री तिर्यच माहि, तीन भागा कहीजै ताहि ।।
२५०. तेणे भाषा मन पर्याय, अणबाधवै अपर्याप्ति थाय ।
पचेद्री तिर्यच रै माय, अपर्याप्ति बहुला पाय ।।
२५१ प्रतिपद्यमान ते माय, इक आदि नु संभव थाय ।
तिण कारण है त्रिण भग, पूर्ववत न्याय सुचग ।।

२४९-२५१ 'जीवाइओ तियभगो' त्ति, तत्र जीवेषु पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु च बहूना तदपर्याप्ति प्रतिपन्नाना प्रतिपद्यमानाना चैकादीना लाभात् पूर्वोक्तमेव भङ्गत्रयं,
(वृ० प० २६६)

२५२ नरक देव मनुष्य षट भग, मनो-अपर्याप्त नैं प्रसग ।।
तिहा सप्रदेशा पिण एकादि, अप्रदेशा एकादि लाधि ।।
२५३ तिण कारण षट भग थाय, इहा सिद्ध कहिवो नाय ।
हिव चवदेइ द्वार नी ताय, गाथा सग्रहणी कहिवाय ।।

२५२, २५३ 'नेरइयदेवमणुएसु छब्भग' त्ति नैरयिकादिषु मनोऽपर्याप्तिकानामल्पतरत्वेन सप्रदेशानामेकादीना लाभात्त एव षड् भङ्गा, एषु च पर्याप्त्यपर्याप्तिदण्डकेषु सिद्धपद नाध्येयमसम्भवादिति । पूर्वोक्तद्वाराणा सग्रहगाथा—
(वृ० प० २६६)

२५४. †सपदेश आहारग भव्य सन्नी लेस दृष्टी सयति ।
कषाय ज्ञान वलि जोग नैं उपयोग वेद तनु-पज्जति ।।

२५४ सपदेसाहारग-भविय-सण्णि-लेसा-दिट्ठि-सजयकसाए ।
नाणे जोगुवओगे, वेदे य सरीर-पज्जत्ती ।।
(श० ६।६३ सगहणीगाहा)

२५५ *ढाल एक सौ एकमी, अंक चोसठ देश ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरप विशेप ।।

## ढाल : १०२

### दूहा

१. जीव तणा अधिकार थी, जीव तणोज विचार ।
पूछै गोयम वीर नैं, वारू प्रश्न उदार ।।

१ जीवाधिकारादेवाह—
(वृ० प० २६६)

‡हो प्रभुजी ! परम अनुग्रह कीजै ।
देव जिनेंद्र दयाल दया करि, जन-सशय मेटीजै ।।
हो प्रभुजी ! कृपा अनुग्रह कीजै । (ध्रुपद)

२. जीवा स्यू प्रभु ! पचखाणी छै ? सर्व विरतवत जाणी ।
अपचखाणी तेह अविरति, कै पचखाणा-पचखाणी ?

२ जीवा ण भते ! किं पच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ? पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?
'पच्चक्खाणि' त्ति सर्वविरता, 'अपच्चक्खाणि' त्ति अविरता. । (वृ० प० २६७)

†लय : पूज मोटा भांजै
*लय : प्रभवो मन माहे चितवै
‡लय : सेवो रे साध सयाणा

३. जिन कहै जीवा पचखाणी पिण, वलि छै अपचखाणी ।
पचखाणा-पचखाणी पिण छै, बोल तीनूइ जाणी ।
(रे गोयम ! साभलजै चित ल्याय ।
चवदेइ गुणस्थान तीनू मे, निर्मल कहीजै न्याय) ॥

३ गोयमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि ।
(श० ६।६४)

४. सर्व जीवा नी पूछा इहविध, उत्तर दे जिनराय ।
नेरइया अपचखाणी अविरती, चिउ गुणठाणा पाय ॥

४ सव्वजीवाण एव पुच्छा ।
गोयमा ! नेरइया अपच्चक्खाणी,

५. जाव चोइदिया अपचखाणी, पचखाणी नहिं होय ।
पचखाणा-पचखाणी पिण नही, बोल न पावै दोय ॥

५ जाव चउरिंदिया (सेसा दो पडिसेहेयव्वा) ।

६. तिर्यंच-पचेद्री नोपचखाणी, अपचखाणी जाण ।
पचखाणा-पचखाणी पिण छै, पावै पच गुणठाण ॥

६ पंचिदियतिरिक्खजोणिया नो पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि ।

७. मनु पचखाणी अपचखाणी, पचखाणा-पचखाणी ।
व्यतर ज्योतिपि वेमानिक ते, नरक जेम पहिछाणी ॥

७. मणूसा तिण्णि वि । सेसा जहा नेरइया ।
(श० ६।६५)

**सोरठा**

८. पचखाणी तो होय, प्रत्याख्यान जाण्ये छते ।
ते माटै अवलोय, ज्ञान-सूत्र कहियै हिवै ॥

८ प्रत्याख्यान च तज्ज्ञाने सति स्यादिति ज्ञानसूत्रम्—
(वृ० प० २६७)

९. *जीव प्रभु ! पचखाण जाणै स्यू अपचखाण नै जाणै ?
पचखाणापचखाण नै जाणै ? हिव जिन उत्तर आणै ॥

९. जीवा णं भते ! किं पच्चक्खाण जाणति ? अपच्चक्खाण जाणति ? पच्चक्खाणापच्चक्खाण जाणति ?

१०. पचेद्रिया तीनू प्रति जाणै, पचेद्री दंडक माय ।
सन्नी विशिष्ट विज्ञान अपेक्षा, जाणै ते जीव कहाय ॥

१० गोयमा ! जे पंचिदिया ते तिण्णि वि जाणंति,
....पञ्चेन्द्रिया, समनस्कत्वात् सम्यग्दृष्टित्वे सति ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानादित्रय जानन्तीति,
(वृ० प० २६७)

११. शेप तीनूंइ प्रति नहिं जाणै, त्या मे विशिष्ट जाणपणो नाही ।
थावर विकलेद्री असन्नी मनुष्य तिरि, मन नही ते माही ॥

११ अवसेसा पच्चक्खाण न जाणति, अपच्चक्खाण न जाणति, पच्चक्खाणापच्चक्खाण न जाणति ।
(श० ६।६६)
एकेन्द्रियविकलेन्द्रिया प्रत्याख्यानादित्रय न जानन्त्यमनस्कत्वादिति ।
(वृ० प० २६७)

**सोरठा**

१२. कीधो ह्वै पचखाण, अणकीधो होवै नही ।
ते माटै पहिछाण, करण-सूत्र कहियै हिवै ॥

१२ कृत च प्रत्याख्यान भवतीति तत्करणसूत्रम्—
(वृ० प० २६७)

१३. *जीवा प्रभु ! पचखाण करै स्यू, अपचखाण करै छै ?
पचखाणापचखाण करै छै ? हिव जिन उत्तर दै छै ॥

१३ जीवा ण भते ! किं पच्चक्खाण कुव्वति ? अपक्चक्खाण कुव्वति ? पच्चक्खाणापच्चक्खाण कुव्वति ?

१४. जिम औधिक-सूत्रे नरकादिक आख्या तिमहिज जाणो ।
करिवा नो अधिकारज कहिवो, प्रवर न्याय पहिछाणो ॥

१४ जहा ओहिओ तहा कुव्वणा ।
(श० ६।६७)

*लय : सेवो रे साध सयाणा

## सोरठा

१५. नारक सुरवर जेह, एकेंद्री विकलेंद्रिय ।
अपचखाणी एह, अपचखाण करैंज ते ॥
१६. तिरि पचेंद्री जाण, न करै ए पचखाण नैं ।
पचखाणापचखाण, अपचखाण करै वलि ॥
१७. समचै जीव सपेख, वले मनुष्य तीनुं करै ।
औघिक न्याय अवेख, कह्यु तास विस्तार करि ॥
१८. पूर्वे कह्या पचखाण, ते आयू बंधण तणा ।
हेतू पिण ह्वै जाण, आयु-सूत्र कहियै हिवै ॥

१८ प्रत्याख्यानमायुर्बन्धहेतुरपि भवतीत्यायु-सूत्रम्—
(वृ० प० २६७)

१९. *जीव प्रभु ! पचखाण-करै स्यू आयु बाधै निपजावै ?
अपचखाण करि आयु बाधै, पचखाणापचखाण स्यू थावै ?

१९ जीवा ण भते ! किं पच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया ?
अपच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया ? पच्चक्खाणापच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया ?

२०. जिन कहै जीवा पचखाण करिकै, अपचखाण करि सोय ।
वलि पचखाणापचखाण करिकै, आयु-बध अवलोय ॥
२१. वैमानिक देवता नो आउखो, पचखाणी पिण बाधै ।
अपचखाणवत पिण बांधै, वलि पचखाणापचखाणी साधै ॥

२०, २१ गोयमा ! जीवा य, वेमाणिया य पच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया, तिण्णि वि ।
जीवपदे जीवा प्रत्याख्यानादित्रयनिबद्धायुष्का वाच्या, वैमानिकपदे च वैमानिका अप्येव, प्रत्याख्यानादित्रयवता तेषूत्पादात् । (वृ० प० २६७)

२२ शेष तेवीस दडक नों आउखो, अपचखाणी बाधै ।
पचखाणी नै पचखाणापचखाणी नरकादिक आयु न साधै ॥

२२. अवसेसा अपच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया ।
(श० ६।६८)

## सोरठा

२३. साधु श्रावक पहिछाण, वैमानिक विण अवर नों ।
आयु न बाधै जाण, तिण कारण ए वारता ॥

२४. *पचखाणी जिह दडक पावै, पचखाण जाणै करेह ।
पचखाणे करि आयु बाधै, चिहु सप्रदेश उद्देशेह ॥

२४ पच्चक्खाण जाणइ, कुव्वइ तिण्णेव, आउनिव्वत्ती ।
सपएसुद्देसम्मि य, एमेए दण्डगा चउरो ॥
(श० ६।६८ सगहणी-गाहा)

२५. सेवं भते ! अक चोसठ नु, ए एकसौ बीजी ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसादे 'जयजश' मंगलमाल ॥
षष्ठशते चतुर्थोद्देशकार्थ ॥६।४॥

२५ सेव भते ! सेव भते ! त्ति ।
(श० ६।६९)

---

*लय : सेवो रे साध सयाणा

## ढाल . १०३

### दूहा

१. जीव सप्रदेशा कह्या, तुर्य उद्देशा माहि।
सप्रदेश ए तेहिज हिव, तमस्कायादि ताहि॥

१ अनन्तरोद्देशके सप्रदेशा जीवा उक्ताः, अथ सप्रदेशमेव तमस्कायादिक प्रतिपादयितु पञ्चमोद्देशकमाह—
(वृ० प० २६७)

२. तमस्काय ए किण भणी कहियै हे भगवान!
स्यू पृथ्वी तमुकाय छै, अप तमुकाय पिछान?

२ किमियं भंते! तमुक्काए त्ति पव्वुच्चति? किं पुढवी तमुक्काए त्ति पव्वुच्चति? आऊ तमुक्काए त्ति पव्वुच्चति?

३ तमिस्र पुद्गल नी तिका, काय राशि छै तास।
तमस्काय ते खध इहा, वाछचो कोइक जास॥

३ तमसा—तमिस्रपुद्गलाना कायो—राशिस्तमस्काय स च नियत एवेह स्कन्ध कश्चिद् विवक्षित,
(वृ० प० २६८)

४. ते पृथ्वी-रज-खध हुइं, तेहवो ए दीसत।
तथा उदक-रज-खध ए, जल-रज सदृश हुंत॥

४ स च तादृश पृथ्वीरज स्कन्धो वा स्यादुदकरज-स्कन्धो वा।
(वृ० प० २६८)

५ जिन भाखै पृथ्वी तिका, तमस्काय न कहाय।
तमस्काय ए अप अछै, एहवूं कहियै ताय॥

५ गोयमा! नो पुढवी तमुक्काए त्ति पव्वुच्चति। आऊ तमुक्काए त्ति पव्वुच्चति। (श० ६।७०)

६. किण अर्थे? जिन कहै पृथ्वी शुभ पुद्गल केइ एक।
देश खेत्र सुप्रकाशता, मणि प्रमुख सपेख॥

६ से केणट्ठेणं? गोयमा! पुढविकाए णं अत्थेगइए सुभे देस पकासेइ,
कश्चिच्छुभो—भास्वर, य किंविध? इत्याह—देश विवक्षितक्षेत्रस्य प्रकाशयति भास्वरत्वान्मण्यादिवत्। (वृ० प० २६८)

७. केइयक पृथ्वीकाइया, देश खेत्र नैं सोय।
प्रकाशकारी नहिं तिके, तिण अर्थे इम होय॥

७ अत्थेगइए देस नो पकासेइ। से तेणट्ठेणं।
(श० ६।७१)
अस्त्येककः पृथवीकायो देश पृथवीकायान्तर प्रकाश्यमपि न प्रकाशयत्यभास्वरत्वात्‥ ‥‥
(वृ० प० २६८)

८. अप्रकाशक छै सर्व नैं, अपकाय पहिछाण।
तमस्काय अप्रकाशक, तिण अर्थे अप जाण॥

८ अप्कायस्तस्य सर्वस्याप्यप्रकाशत्वात्, ततश्च तमस्कायस्य सर्वथैवाप्रकाशकत्वादप्कायपरिणामतैव।
(वृ० प० २६८)

९ किहां थकी प्रभु! नीकली, तमस्काय ए ताय।
वली किहा जइ नैं रही? जिन कहै साभल वाय॥

९ तमुक्काए णं भंते! कहिं समुट्ठिए? कहिं सनिट्ठिए?

*सुण गोयमा रे! तमस्काय नी वारता रे लाल। (ध्रुपद)

१० जंबू द्वीप नैं बाहिरे रे लाल,
तिरिच्छा असंख्याता जाण। सुण गोयमा रे!
द्वीप समुद्र उलघ नै रे लाल,
तिहा अरुणवर द्वीप पिछाण॥ सुण गोयमा रे!

१० ११ गोयमा! जबूदीवस्स दीवस्स बहिया तिरियमसखेज्जे दीव-समुद्दे वीईवइत्ता, अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयताओ अरुणोदय समुद्द बायालीस जोयणसहस्साणि ओगाहित्ता

*लय: जाणपणो जग दोहिलो रे लाल

११. तिण अरुणवर द्वीप नें बारली, वेदिका ना छेहडा थी विचार।
अरुणोदय समुद्र मे, जोजन बयालीस हजार॥
१२. तिहां ऊपरला जल अंत थी, एक प्रदेश नी श्रेण।
तमस्काय ऊठी तिहा, उदयपणु पाम्यो तेण॥

१२ उवरिल्लाओ जलताओ एगपएमियाए सेढीए—एत्थ ण तमुक्काए समुट्ठिए।

**सोरठा**

१३. एक प्रदेश मझार, अपकाय तिहा किम रहै।
प्रदेश शब्दे धार, सम भीत आकारे क्षेत्र जे॥

१३ एक एव च न द्वयादय उत्तराधर्यं प्रति प्रदेशो यस्यां सा तथा तया, समभित्तितयेत्यर्थ। न च वाच्यमेकप्रदेशप्रमाणयेति,
(वृ० प० २६८)

१४. असंख्यात प्रदेश, अवगाहै छै जीवड़ो।
तिण कारण सुविशेष, एक आकाश प्रदेश नहि॥

१४ असख्यातप्रदेशावगाहस्वभावत्वेन जीवाना तस्यां जीवावगाहाभावप्रसङ्गात्,
(वृ० प० २६८, २६९)

१५. जिम जिन वचन सुजोय, एक प्रदेशे खेत्र मे।
विचरै मुनि अवलोय, तिम इहां एक प्रदेश छै॥

१६ *सतरै सौ इकवीस जोजन तणी, एक प्रदेश नी श्रेण।
ऊची जइनै तठा पछै, तिरछी विस्तारेण॥
१७. सोधर्म नै ईशाण नै, तीजो सनतकुमार।
माहेद्र ए चिहु कल्प नै, वीटी नै तिंणवार॥
१८. ऊचो पिण यावत जई, ब्रह्मकल्प मे जाण।
तीजा प्रतर नै विषे, पहुंती रिष्ट विमाण॥
१९ तमस्काय तिहा जइ रही, वलि गोयम पूछत।
हे प्रभुजी! तमस्काय नो, स्यूं सस्थान कहत?
(जिनराजजी! हो कृपा करि हियै आखियै रे लाल)
२०. जिन भाखै तमस्काय नो, हेठे मल्लगमूल संठाण।
मल्लग तेह सरावलो, तास मूल पहिछाण॥

१६ सत्तरस-एक्कवीसे जोयणसए उड्ढ उप्पइत्ता तओ पच्छा तिरिय पवित्थरमाणे-पवित्थरमाणे
१७ सोहम्मीसाण-सणकुमार-माहिंदे चत्तारि विकप्पे आवरित्ता णं
१८ ऊड्ढ पि य ण जाव बंभलोगे कप्पे रिट्ठविमाण-पत्थड सपत्ते—
१९ एत्थ ण तमुक्काए सनिट्ठिए। (श० ६।७२)
तमुक्काए ण भते! किसठिए पण्णत्ते?

२० गोयमा! अहे मल्लगमूलसठिए;
अधस्तान्मल्लकमूलसस्थित —शरावबुध्नसस्थान,
(वृ० प० २६९)

२१. ऊपर ए सठाण छै, कुर्कट पखी पेख।
तास पिजर नै आकार छै, ए जिन वचन विशेख॥
२२. हे प्रभुजी! तमस्काय नो, केतलू छै विस्तार?
केतली परिधि कहीजिये? ए बिहु प्रश्न उदार॥
२३ जिन भाखै द्विविध कही, सख्यातो विस्तार।
असख्यात विस्तरपणै, वर जिन वयण उदार॥

२१ उप्पि कुक्कुडग-पजरगसठिए पण्णत्ते।
(श० ६।७३)
२२ तमुक्काए ण भते! केवतियं विक्खभेण, केवतिय परिक्खेवेण पण्णत्ते?
२३ गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सखेज्जवित्थडे य, असखेज्जवित्थडे य।

**सोरठा**

२४ आदि थकी आरभ, ऊचो जोजन एतलु।
सख्याता लग लभ, सख्यातो विस्तार त्यां॥

२४, २५ आदित आरभ्योर्ध्व सख्येययोजनानि यावत्ततोऽसख्यातयोजन-विस्तृत उपरि तस्य विस्तार-गामित्वेनोक्तत्वात्। (वृ० प० २६९)

*लय: जाणपणो जग दोहिलो रे लाल

२५. तठा पछैज प्रपन्न, ऊपर जे तमुकाय छै।
असख्यात जोजन्न, विस्तरपणै अछै तिका।

२६. *तिहा सखेज्ज विस्तरपणै, ते संख्याता जोजन हजार।
विक्खंभ पहुलपणे एतलूं, परिधि असख जोजन सहस्र हजार।।

२६ तत्थ ण जे से सखेज्जवित्थडे, से ण सखेज्जाइ जोयणसहस्साइं विक्खभेण, असखेज्जाइ जोयण-सहस्साइ परिक्खेवेण पण्णत्ते।

### सोरठा

२७ जोजन ते संख्यात, विस्तरपणेंज तास पिण।
परिधि कही जगनाथ, असखेज जोजन सहस्र।।

२८ तमस्काय नै जाण, असख्यातमा द्वीप ते।
अति वृहत प्रमाण, तिण सू परिधि असंख छै।।

२७,२८ सख्यातयोजनविस्तृतत्वेऽपि तमस्कायस्या-सख्याततमद्वीपपरिक्षेपतो वृहत्तरत्वात्परिक्षेपस्या-सख्यातयोजनसहस्रप्रमाणत्वम्। (वृ० प० २६९)

२९. तमस माहिलो जेह, अथवा विभाग वारलो।
इहा न वाछ्यो तेह, असखपणो विहुं नो अछै।।

२९ आन्तरवहि परिक्षेपविभागस्तु नोक्त। उभय-स्याप्यसख्याततया तुल्यत्वादिति। (वृ० प० २६९)

३०. *तिहां असंख विस्तारपणै तिका, ते असंख्याता जोजन हजार।
विक्खंभ पहुलपणै एतलू, परिधि असख जोजन सहस्र धार।।

३० तत्थ ण जे से असखेज्जवित्थडे, से ण असखेज्जाइ जोयणसहस्साइ विक्खभेण, असखेज्जाइ जोयण-सहस्साइ परिक्खेवेण पण्णत्ते। (श० ६।७४)

३१. हे प्रभुजी! तमस्काय ते, केतली मोटी कहाय?
जिन कहै ए जंबूद्वीप छै, सर्व द्वीप समुद्र रै माय।।

३१ तमुक्काए ण भते! केमहालए पण्णत्ते?
गोयमा! अयण्ण जबुद्दीवे दीवे सव्वदीव-समुद्दाण सव्वब्भतराए

३२. जाव परिधि त्रिगुणी तसु, जाझी अधिक कहाव[1]।
सुर इक महाऋद्धि नो धणी, जावत महाअनुभाव।

३२ जाव परिक्खेवेण पण्णत्ते।
देवे ण महिड्ढीए जाव महाणुभावे (वृ० प० २६८)

३३. जाव इणामेव एहवू, शब्द कही दोय वार।
जाव शब्द इणामेव नै, तात्पर्यार्थ विचार।।

३३ इणामेव-इणामेवत्ति कट्टु
इह यावच्छब्द ऐदम्पर्यार्थ, (वृ० प० २६९)

३४. सुर नी महाऋद्धि आदि नु, एह विशेषण ताय।
गमन समर्थपणा तणो, प्रकर्ष ए अभिप्राय।।

३४ यतो देवस्य महर्द्ध्यादिविशेषणानि गमनसामर्थ्य-प्रकर्षप्रतिपादनाभिप्रायेणैव प्रतिपादितानि। (वृ० प० २६९)

३५. इणामेव इणामेव इम कही, इतलो मुझ जावूज।
अति शीघ्रपणै कर-व्यापार नी, चिंवठी माही प्रजूंझ।।

३५ 'इणामेवत्ति कट्टु' इद गमनमेवम्—अतिशीघ्रत्वा-वेदक-चप्पुटिकारूपहस्तव्यापारोपदर्शनपरम्। (वृ० प० २६९)

३६. इम कहिनै ते देवता, केवलकल्प जंबूद्वीप ताय।
तीन चिंवठी मे इकवीस वार ते, दोलो फिरी झट आय।।

३६ केवलकप्प जबूदीवं दीव तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तक्खुत्तो अणुपरियट्टित्ता ण हव्वमागच्छिज्जा,

### सोरठा

३७ अर्थ केवल नु जान, केवलज्ञान कहीजियै।
कल्प परिपूर्ण मान, टीकाकार कह्यो इसो।।

३७. 'केवलकप्प' ति केवलज्ञानकल्प परिपूर्णमित्यर्थः, (वृ० प० २६९)

---

*लय : जाणपणो जग दोहिलो रे लाल

१ यह जोड वृत्तिकार द्वारा स्वीकृत सक्षिप्त पाठ के आधार पर की गई है इस-लिए इस गाथा के सामने उसी पाठ को उद्धृत किया गया है। अगसुत्ताणि मे इसके स्थान पर विस्तृत पाठ है।

३८ वृद्ध व्याख्या पहिछाण, केवल संपूरण अछै।
कल्प स्वकार्य जाण, करण समर्थ कह्यो इसो ।।

३९ *ते सुर एहवी गति करि, उत्कृष्ट त्वरित सुचाल ।
जावत गति सुर नी करी, जातो थको सुविशाल ।।

४० जावत इक दिन बे दिनै, तीन दिवस लग ताय ।
छ मास लग उत्कृष्ट थी, तमस्काय मे जाय ।।

४१. पार पामै कोइ तमु तणो, सख जोजन ए जाण ।
न लहै पार कोइक तणो, ते जोजन असख प्रमाण ।।

४२ एतली मोटी तमु कही, गोयम पूछै तिवार ।
छै प्रभुजी ! तमुकाय मे, घर तथा हाट आकार ?

४३. जिन कहै अर्थ समर्थ नही, वलि गोयम पूछेस ।
छै प्रभुजी ! तमुकाय मे, ग्राम जाव सन्निवेस ?

४४ जिन कहै अर्थ समर्थ नही, वलि शिष्य पूछै जान ।
छै प्रभुजी ! तमस्काय मे, वादल मेघ प्रधान ।।

४५ ससेयति पाठ नो, अर्थ इसो अवधार ।
मेघ थकी जे ऊपना, पुद्गल स्नेह विचार ।।

४६. समुच्छति ए पाठ नो, अर्थ वली सुविचार ।
घन पुद्गल मिलवा थकी, ऊपना तसु आकार ।।

४७ अर्थ वासं वासंति तणो, तत्आकारज होय ।
वर्षा मेह वर्षे अछै, जिन कहै हता जोय ।।

४८ ते प्रभु ! स्यू करै देवता, वैमानिक थी हुत ।
असुर नाग वर्षा करै ? जिन कहै तीनू करत ।।

४९. छै प्रभुजी ! तमुकाय मे, वादर घन गर्जार ?
वलि वादर छै बीजली ? जिन कहै हता तिवार ।।

**सोरठा**

५०. वादर तेऊकाय, आगल तास निषेध छै ।
देव-जनित कहिवाय, भास्वर पुद्गल छै तिके ।।

---

३८ वृद्धव्याख्या तु—केवल'—संपूर्ण. कल्पत इति कल्प —स्वकार्यकरणसमर्थं । (वृ० प० २६९)

३९ से ण देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे-वीईवयमाणे

४० जाव एकाह वा, दुयाह वा, तियाहवा उक्कोसेणं छम्मासे वीईवएज्जा,

४१ अत्थेगतिय तमुक्काय वीईवएज्जा, अत्थेगतिय तमुक्काय नो वीईवएज्जा ।
सख्यातयोजनमान व्यतिव्रजेदितर तु नेति ।
(वृ० प० २६९)

४२ एमहालए ण गोयमा ! तमुक्काए पण्णत्ते ।
(श० ६।७५)
अत्थि ण भते ! तमुक्काए गेहा इ वा ? गेहावण' इ वा ?

४३ णो तिणट्ठे समट्ठे । (श० ६।७६)
अत्थि ण भते ! तमुक्काए गामा इ वा ? जाव सण्णिवेसा इ वा ?

४४ णो तिणट्ठे समट्ठे । (श० ६।७७)
अत्थि ण भते ! तमुक्काए ओराला वलाहया

४५ ससेयति ?
सस्विद्यन्ते तज्जनकपुद्गलस्नेहसम्पत्त्या,
(वृ० प० २६९)

४६ सम्मुच्छति ?
समूर्च्छन्ति तत्पुद्गलमीलनात्तदाकारतयोत्पत्ते ।
(वृ० प० २६९)

४७. वास वासति ?
हता अत्थि । (श० ६।७८)

४८ त भते ! किं देवो पकरेति ? असुरो पकरेति ? नागो पकरेति ?
गोयमा ! देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, नागो वि पकरेति । (श० ६।७९)

४९ अत्थि ण भते ! तमुक्काए वादरे थणियसद्दे ? वादरे विज्जुयारे ? हता अत्थि । (श० ६।८०)

५० इह न वादरतेजस्कायिका मन्तव्या, इहैव तेपा निषेत्स्यमाणत्वात्, किन्तु देवप्रभावजनिता भास्वरा. पुद्गलास्त इति । (वृ० प० २६९)

---

*लय : जाणपणो जग दोहिलो रे लाल

५१ *ते प्रभु ! स्यू करै देवता, असुर नाग पकरंत ?
जिन भाखै तीनूं करै, वलि गोयम पूछंत ।।

५१. तं भंते ! किं देवो पकरेति ? असुरो पकरेति ? नागो पकरेति ? तिण्णि वि पकरेंति ।
(श० ६।८१)

५२ छै प्रभुजी ! तमुकाय मे, वादर पृथ्वीकाय ?
वादर अग्नीकाय छै ? जिन भाखै तिहां नाय ।।

५२ अत्थि णं भंते ! तमुक्काए वादरे पुढविकाए ? वादरे अगणिकाए ?
णो तिणट्ठे समट्ठे

५३. नण्णत्थ इतरो विशेष छै, विग्रहगति ना थाय ।
आठ पृथ्वी गिरि-विमाने पृथ्वी काय छै,
मनुष्यक्षेत्रे तेउकाय ।।

५३. नण्णत्थ विग्गहगतिसमावन्नएणं । (श० ६।८२)
पृथिवी हि वादरा रत्नप्रभाद्यास्वष्टासु पृथिवीषु गिरिविमानेषु, तेजस्तु मनुजक्षेत्र एवेति ।
(वृ० प० २६६)

५४ छै प्रभुजी ! तमुकाय मे, चंद्र सूर्य ग्रह सोय ।
नक्षत्र ताराऊप ते ? जिन भाखै नहिं होय ।।

५४. अत्थि णं भंते ! तमुक्काए चंदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारारूवा ?
णो तिणट्ठे समट्ठे,

५५. पासै छै तमुकाय नै, चंद्रादिक सुकहेज ।
छै प्रभुजी ! तमुकाय में रवि-शशि-कांति सुतेज ?

५५. पलियस्सओ पुण अत्थि । (श० ६।८३)
परिपार्श्वतः पुन सन्ति तमस्कायस्य चन्द्रादय इत्यर्थः । (वृ० प० २६६)
अत्थि णं भंते ! तमुक्काए चंदाभा ति वा ? सूराभा ति वा ?

५६. जिन कहै अर्थ समर्थ नही, कादूसणिया तेह ।
प्रभा थई छै सावली, आतम दूषित जेह ।।

५६ णो तिणट्ठे समट्ठे, कादूसणिया पुण सा ।
(श० ६।८४)

**सोरठा**

५७. तमु पासै सपेख, चंद्रादिक सद्भाव थी ।
तास प्रभा पिण देख, तमु विषे छै सावली ।।

५७ ननु तत्पार्श्वतश्चन्द्रादीनां सद्भावात्तत्प्रभाऽपि तत्राऽस्ति ? (वृ० प० २६६)

५८. क—आतम प्रति देख, तमस्काय ते दूषवै ।
तमपरिणाम कर पेख, परिणमवा थी कादूपणा ।।

५८ कम्—आत्मानं दूषयति तमस्कायपरिणामेन परिणमनात् कदूषणा सैव कदूषणिका, (वृ० प० २६६)

५९ इण कारण थी एह, छती प्रभा चंद्रादि नी ।
तमस्काय मे जेह, अछती कहियै इह विधे ।।

५९. अत सत्यप्यसावसतीति । (वृ० प० २६६)

६०. *हे प्रभुजी ! तमस्काय नो, केहवो वर्ण कहाय ?
जिन भाखै कृष्ण वर्ण छै, कृष्ण कांति छै ताय ।

६० तमुक्काए णं भंते ! केरिसए वण्णएणं पण्णत्ते ?
गोयमा ! काले कालोभासे

६१ गंभीर ऊंडो अति घणो, अतिही डरावणो जेह ।
रोम ऊभा थावा तणो, हेतू कहियै जेह ।।

६१ गंभीरे लोमहरिसजणणे

६२. भीम भयंकर तेह छै, उत्कंप हेतु कहेह ।
त्रासे कंपै देखनै, परम कृष्ण वर्णेह ।।

६२ भीमे उत्तासणए परमकिण्हे वण्णेणं पण्णत्ते ,

६३. सुर पिण कोइक देखनै, पहिला क्षोभ पामंत ।
अथ प्रवेश करी पछै, शीघ्र त्वरित झट जंत ।।

६३. देवे वि णं अत्थेगतिए जे णं तप्पढमयाए पासित्ता णं खुभाएज्जा, अहेणं अभिसमागच्छेज्जा तओ पच्छा सीहं-सीहं तुरियं-तुरियं खिप्पामेव वीतीवएज्जा । (श० ६।८५)

---

*लय : जाणपणो जग दोहिलो रे लाल

६४ हे प्रभुजी ! तमस्काय नां, कह्या केतला नाम ?
जिन भाखै तेरे नाम छै, गुण-निष्पन ते ताम ॥

६५. तम अंधकारपणा थकी, तमस्काय तमराश ।
अंधकार नाम तीसरो, ए पिण तम विमास ॥

६६. महाअंधकार महातमपणो, लोकांधकार विचार ।
लोक विषे तथाविध इसो, अन्य नही अंधकार ॥

६७ लोकतमस छट्ठो कह्यो, लोक विषे तम होत ।
देव-अंधकार सातमो, तिहा नहिं सुर नें उद्योत ॥

६८. देवतमस आठमो कह्यो, देवअरण्य ए देख ।
बलवत सुर ना भय थकी, न्हासी जाय संपेख ॥

६९. देवव्यूह दशमों कह्यो, चक्रादि-व्यूह जिम ताम ।
देवता नें पिण भेदणो, अति दुर्लभ छै आम ॥

७० देवपरिघ इग्यारमो, सुर नें भय उपजत ।
गमनविघात हेतू थकी, देव-परिघ सुकथत ॥

७१. देवप्रतिक्षोभ बारमो, क्षोभ नो हेतु विचार ।
अरुणोदक ए तेरमों, ते उदधिजल नो विकार ॥

७२. हे प्रभु ! स्यू तमस्काय छै, पृथ्वी अप परिणाम ?
जीव पुद्गल परिणाम छै ? हिव जिन भाखै ताम ॥

७३. पृथ्वी-परिणाम ए नही, अप-परिणाम तमाम ।
जीव नु पिण परिणाम छै, पुद्गल नु परिणाम ॥

७४. सहु प्राण भूत जीव सत्व ते, तमस्काय मे जान ।
छहु कायपणें ऊपना, पूर्वकाल भगवान ?

७५. जिन कहै हता गोयमा ! वार अनेक विचार ।
अथवा अनत वार ऊपना, काल अतीत मझार ॥

७६. पिण बादर-पृथ्वीपणें, बादर-अग्निपणें एह ।
निश्चै करि नहिं ऊपनो, तसु स्थानक नहिं तेह ॥

६४ तमुक्कायस्स ण भते ! कति नामधेज्जा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तेरस नामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—

६५. तमे इ वा, तमुक्काए इ वा, अधकारे इ वा,
तम अन्धकाररूपत्वात् इत्येतत्, तमस्काय इति वाऽन्धकारराशिरूपत्वात्, अन्धकारमिति वा तमोरूपत्वात्, (वृ० प० २७०)

६६. महधकारे इ वा, लोगधकारे इ वा,
महान्धकारमिति वा महातमोरूपत्वात् लोकान्धकारमिति वा लोकमध्ये तथाविधस्यान्यस्यान्धकारस्याभावात् । (वृ० प० २७०)

६७ लोगतमिसे इ वा, देवधकारे इ वा,
देवानामपि तत्रोद्योताभावेनान्धकारात्मकत्वात् । (वृ० प० २७०)

६८. देवतमिसे इ वा, देवरण्णे इ वा,
बलवद्देवभयान्नश्यतां देवाना तथाविधारण्यमिव शरणभूतत्वात्, (वृ० प० २७०)

६९ देववूहे इ वा
देवव्यूह इति वा देवाना दुर्भेदत्वाद् व्यूह इव—चक्रादिव्यूह इव देवव्यूह । (वृ० प० २७०)

७०. देवफलिहे इ वा,
देवाना भयोत्पादकत्वेन गमनविघातहेतुत्वात्, (वृ० प० २७०)

७१ देवपडिक्खोभे इ वा, अरुणोदए इ वा समुद्दे । (श० ६।८६)
देवप्रतिक्षोभ इति वा तत्क्षोभहेतुत्वात्, अरुणोदक इति वा समुद्र, अरुणोदकसमुद्रजलविकारत्वादिति । (वृ० प० २७०)

७२. तमुक्काए ण भते ! किं पुढविपरिणामे ? आउपरिणामे ? जीव परिणामे ? पोग्गलपरिणामे ?

७३ गोयमा ! नो पुढविपरिणामे, आउपरिणामे वि, जीवपरिणामे वि, पोग्गलपरिणामे वि । (श० ६।८७)

७४. तमुक्काए ण भते ! सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता पुढविकाइयत्ताए जाव तसकाइयत्ताए उववन्नपुव्वा?

७५ हंता गोयमा ! असति अदुवा अणतखुत्तो,

७६ नो चेव ण बादरपुढविकाइयत्ताए, बादरअगणिकाइयत्ताए वा । (श० ६।८८)

### सोरठा

७७. अपकाय मे जाण, बादर वायू वणस्सई।
वलि त्रसकाय पिछाण, तसु उत्पत्ति संभव थकी ॥

७७. बादरवायुवनस्पतयस्त्रसाश्च तत्रोत्पद्यन्तेऽप्काये तदुत्पत्तिसम्भवात् । (वृ० प० २७०)

७८. 'बृहत टबे इम वाय, शका त्रस उत्पत्ति तणी ।
वृत्ति पिण भाजी नाय, जिन भाखै तेहीज सत्य ॥
७९. अरुणोदय नी सध, तमस तणी तूटी नथी ।
त्रस इण न्याय प्रबध, ते पिण जाणै केवली ॥
८०. बादर पृथ्वीकाय, वलि बादर तेऊ तणों ।
स्व स्थानक छै नाय, तिण सू ते नहिं ऊपजै' ॥(ज० स०)

८१. *देश अक पैंसठ तणु, इक सौ तीजी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' गण गुणमाल ॥

## ढाल : १०४

### दूहा

१. तमस्काय सरिखी अछै, वर्ण कृष्ण पहिछाण ।
तेह कृष्णराजी तणु, वर्णन सुणो सुजाण ?

१ तमस्कायसादृश्यात्कृष्णराजिप्रकरणम्— (वृ० प० २७०)

२. किती कृष्णराजी प्रभु ! जिन कहै अष्ट सुजोय ।
किहा कृष्णराजी प्रभु! आठूइ अवलोय ?

२ कइ ण भते ! कण्हरातीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा! अट्ठकण्हरातीओ पण्णत्ताओ ।(श० ६।८९)
कहि णं भते !एयाओ अट्ठ कण्हरातीओ पण्णत्ताओ ?

३. जिन कहै सनतकुमार नैं, वलि माहेंद्र विचार ।
तसु ऊपर तमुकाय छै, ब्रह्म तणै तल धार ॥

३. गोयमा! उप्पि सणकुमार-माहिंदाण कप्पाण, हव्वि बभलोए कप्पे ।
'हव्वि' ति समम् । (वृ० प० २७१)

४. पंचम कल्प विषे अछै, रिष्ट विमाने जोय ।
तास पाथडा नै विषे, कृष्णराजि अवलोय ॥

४ 'रिट्ठे विमाणपत्थडे'

५. प्रेक्षा-स्थान विषे अछै, आखाटक अभिधान ।
आसन विशेप छै प्रवर, तेह तणै सस्थान ॥

५ एत्थ ण अक्खाडग-
इह आखाटकः—प्रेक्षास्थाने आसनविशेपलक्षणस्तत्सस्थिता, (वृ० प० २७१)

६. समचउरंस सठाण छै, सहु खुणेज सरीस ।
आठ कृष्णराजी इसी, वर्णन तास कहीस ॥

६ समचउरंस-संठाणसंठियाओ अट्ठ कण्हरातीओ पण्णत्ताओ,

†वाण प्रभु नी ताजी ए, रूडी आठ कही कृष्णराजी ए। (ध्रुपदं)

७ पूर्व दिशि मे दोय परूपी, दोय पश्चिम दिशि कानी ए ।
दक्षिण दिशि मे दोय दीपती, दोय उत्तर दिशि जानी ए ॥

७ त जहा—पुरत्थिमे ण दो, पच्चत्थिमे ण दो, दाहिणे ण दो, उत्तरे ण दो ।

*लय : जाणपणो जग दोहिलो रे लाल
†लय : वलियां सू केम लागंता ए

८. पूर्व दिश नी अभ्यंतरा जे, कृष्णराजी छै जेहो ।
दक्षिण वारली कृष्णराजी प्रति, फर्शी जिन-वच एहो ॥
९ दक्षिण दिश नी अभ्यंतरा जे, कृष्णराजी कहिवाई ।
पश्चिम बारली कृष्णराजी प्रति, फर्शी वाण सुहाई ॥
१०. पश्चिम दिश नी अभ्यतरा जे, कृष्णराजी जे जाची ।
उत्तर वारली कृष्णराजी प्रति, फर्शी छै अति आछी ॥
११ उत्तर दिश नी अभ्यतरा जे, कृष्णराजी जे काली ।
पूर्व वारली कृष्णराजी प्रति, फर्शी एह विशाली ॥
१२ दोय पूर्व पश्चिम नी वारली, कृष्णराजी षट खूणा ।
दोय उत्तर दक्षिण नी वारली, त्रिखूणी नहिं ऊणा ॥

१३ दोय पूर्व पश्चिम नी माहिली, कृष्णराजी चउरंसा ।
दोय उत्तर दक्षिण नी माहिली, चउखूणी सुप्रससा ॥

**सोरठा**

१४ पूर्व अपर छह अस, तंस उत्तर दक्षिण वज्झा ।
अभ्यतर चउरस, सर्व कृष्णराजी कही ॥

१५ *कृष्णराजी प्रभु! केतली लांवी, किती विक्खभ विस्तारो ?
परिधिपणे करि केतली प्रभुजी ! हिव जिन उत्तर सारो ॥
१६ जिन कहै जोजन सहस्र असख्या, लावपणे सुविचारो ।
सख्याता सहस्र जोजन विक्खभ छै, परिधि जोजन असख हजारो ॥

१७ कृष्णराजी प्रभु! केतली मोटी ? जिन कहै जंबू एही ।
जाव इक पक्ष लग सुर जावै, पूर्व गति करि तेही ॥

१८. पार लहै कोइ कृष्णराजी नु, कोइ नो पार न पावै ।
एहवी मोटी कृष्णराजी छै, सुण गोतम हरसावै ॥

१९ कृष्णराजी नै विषे छै प्रभुजी! घर नै आकारे अगारो ।
घर नै आकारे हाट तिहा छै? जिन कहै नही लिगारो ॥
२० कृष्णराजी नै विषे छै प्रभुजी! ग्राम तथा. सुविशेषो ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नही ए, वलि गोयम पूछेसो ॥

२१. कृष्णराजी नै विषे हे प्रभुजी! मेघ उदार प्रधानो ।
ससेयति समुच्छति पूर्ववत, वलि घन वरसै जानो ॥

*लय : बलिया स्यू केम लागंता ए

८. पुरत्थिमब्भतरा कण्हराती दाहिण-वाहिर कण्हरातिं पुट्ठा,
९ दाहिणब्भतरा कण्हराती पच्चत्थिम-वाहिर कण्हरातिं पुट्ठा,
१० पच्चत्थिमब्भतरा कण्हराती उत्तर-वाहिर कण्हरातिं पुट्ठा,
११ उत्तरब्भतरा कण्हराती पुरत्थिम-वाहिर कण्हरातिं पुट्ठा ।
१२ दो पुरत्थिम-पच्चत्थिमाओ वाहिराओ कण्हरातीओ छलसाओ, दो उत्तर-दाहिणाओ वाहिराओ कण्हरातीओ तसाओ,
१३ दो पुरत्थिम-पच्चत्थिमाओ अब्भतराओ कण्हरातीओ चउरसाओ, दो उत्तर-दाहिणाओ अब्भतराओ कण्हरातीओ चउरसाओ । (श० ६/९०)

१४ पुव्वावरा छलंसा, तंसा पुण दाहिणुत्तरा वज्झा ।
अब्भतर चउरसा, सव्वा वि य कण्हरातीओ ॥
(श० ६।९० सगहणी-गाहा)

१५ कण्हरातीओ ण भते! केवतिय आयामेणं ? केवतिय विक्खभेण ? केवतिय परिक्खेवेण पण्णत्ताओ ?
१६ गोयमा! असखेज्जाइ जोयणसहस्साइ आयामेण, सखेज्जाइ जोयणसहस्साइ विक्खभेण, असखेज्जाइ जोयणसहस्साइ परिक्खेवेण पण्णत्ताओ ।
(श० ६।९१)

१७ कण्हरातीओ ण भते! केमहालियाओ पण्णत्ताओ ? गोयमा! अय ण जबुद्दीवे दीवे जाव (सं० पा०) अद्धमास वीईवएज्जा ।
१८ अत्थेगइए कण्हरातिं वीईवएज्जा । अत्थेगइए कण्हरातिं णो वीईवएज्जा, एमहालियाओ ण गोयमा! कण्हरातीओ पण्णत्ताओ । (श० ६।९२)
१९ अत्थि ण भते! कण्हरातीसु गेहा इ वा ? गेहावणा इ वा ? णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ६।९३)
२० अत्थि ण भते! कण्हरातीसु गामा इ वा ? जाव सण्णिवेसा इ वा ?
णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ६।९४)
२१ अत्थि ण भते! कण्हरातीसु ओराला वलाहया ससेयति ? सम्मुच्छति ? वास वासति ?

२२. श्री जिन भाखै हता अत्थि, कृष्णराजी रै माह्यो।
ससेयति आदि त्रिहुं छै, मेह तिहा वरसायो॥
२३. ते प्रभु! स्यू करै देव वैमानिक, असुर नाग थी हुतो?
जिन भाखै करै देव विमानिक, असुर नाग न करतो॥

## सोरठा

२४ ब्रह्म-कल्प रै मांय, कृष्णराजी आखी अछै।
असुर नाग नहिं जाय, तिण कारण वर्ज्या इहा॥

२५. *कृष्णराजी नै विषे छै प्रभुजी! बादर घन गर्जारो?
बादल नै आख्यो तिम कहिवो, सगलोई विस्तारो।

२६. कृष्णराजी नै विषे हे भगवत? छै बादर-अपकायो?
बादर-अग्निकाय अछै वलि, बादर-वणस्सई ताह्यो?
२७. जिन कहै अर्थ समर्थ ए नाही, णण्णत्थ एतलो विशेखो।
विग्रहगतिसमापन्न अछै त्या, वर जिन वचनै लेखो॥
२८. कृष्णराजी नै विषे छै भगवत! चंद्र सूरादिक तारा?
जिन कहै अर्थ समर्थ नही ए, प्रभु-वच अधिक उदारा॥

२९. कृष्णराजी नै विषे छै प्रभुजी! चद्र सूर्य नी क्राति?
जिन कहै अर्थ समर्थ नही ए, तिण मे म जाणो भ्राति॥

३०. कृष्णराजी प्रभु! वर्ण करी नै, केहवी परूपी ताह्यो?
जिन कहै काली जाव उतावलो सुरवर पिण झट जायो॥

३१. नाम किता प्रभु! कृष्णराजी ना? जिन भाखै अठ नामो।
कृष्णराजी ते काला पुद्गल, तेहनी रेखा तामो॥

३२. मेघराजी ते काला मेघ नी, रेखा तुल्य कहायो।
मघा ते अधकार करी नै, छठी नरक तुल्य थायो॥

३३. माघवती तम करि सातमी सम, वाय-परिघ वलि नामो।
वाय आधी तेह तुल्य तमिश्रज, परिघ दुर्लंघ्यज तामो॥

२२ हता अत्थि। (श० ६।९५)

२३. त भते! किं देवो पकरेति? असुरो पकरेंति? नागो पकरेंति?
गोयमा! देवो पकरेति, नो असुरो, नो नागो पकरेति। (श० ६।९६)

२४ असुरनागकुमाराणा तत्र गमनासम्भवादिति।
(वृ० प० २७१)

२५ अत्थि ण भते! कण्हरातीसु बादरे थणियसद्दे? बादरे विज्जुयारे? जहा ओराला तहा (स० पा०)
(श० ६।९७, ९८)

२६ अत्थि ण भते! कण्हरातीसु बादरे आउकाए? बादरे अगणिकाए? बादरे वणप्फइकाए?
२७ णो तिणट्ठे समट्ठे, नण्णत्थविग्गहगतिसमावन्नएण।
(श० ६।९९)
२८ अत्थि ण भते! कण्हरातीसु चदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारारूवा?
णो तिणट्ठे समट्ठे। (श० ६।१००)
२९ अत्थि ण भते! कण्हरातीसु चदाभा ति वा? सुराभा ति वा?
णो तिणट्ठे समट्ठे। (श० ६।१०१)
३० कण्हरातीओ ण भते! केरिसियाओ वण्णेण पण्णत्ताओ?
गोयमा! कालाओ जाव (स० पा०) खिप्पामेव वीतीवएज्जा। (श० ६।१०२)
३१ कण्हराती ण भते! कति नामधेज्जा पण्णत्ता?
गोयमा! अट्ठ नामधेज्जा पण्णत्ता, त जहा—कण्हराती इ वा,
३२ मेहराती इ वा, मघा इ वा,
मेघराजीति वा कालमेघरेखातुल्यत्वात्, मघेति वा तमिस्रतया पष्ठनारकपृथिवीतुल्यत्वात्,
(वृ० प० २७१)

३३ माघवई इ वा, वायफलिहा इ वा,
माघवतीति वा तमिस्रतयैव सप्तमनरकपृथिवीतुल्यत्वात्, 'वायफलिहे इ व' त्ति वातोऽत्र वात्या तद्वद्वातमिश्रत्वात्, परिघश्च दुर्लंघ्यत्वात् सा वातपरिघ., (वृ० प० २७१)

*लय : वलियां स्यू केम लागता ए

३४. वायपरिक्खोभ नाम छठो ए, वाय ते आंधी अशोभो।
तेह तुल्य छै तमिश्रपणा थकी, क्षोभ हेतु थी परिक्षोभो॥

३४ वायपलिक्खोभा इ वा,
वातोऽत्रापि वात्या तद्वद्वातमिश्रत्वात् परिक्षोभश्च परिक्षोभहेतुत्वात् सा वातपरिक्षोभ इति।
(वृ० प० २७१)

३५. देव-फलिह ए नाम सातमो. देवता नै पिण जाणी।
परिघ आगल जिम ए दुर्लघ्य छै, कृष्ण वर्ण पहिछाणी॥

३५ देवफलिहा इ वा,
क्षोभयति देवाना परिघेव—अर्गलेव दुर्लंघ्यत्वाद्देव-परिघ इति। (वृ० प० २७१)

३६. देव-पलिक्खोभ नाम आठमो, देवता नै पिण जोयो।
परिक्षोभ ना हेतुपणा थी, कृष्ण वर्ण अवलोयो॥

३६ देवपलिक्खोभा इ वा। (श० ६।१०३)
देवाना परिक्षोभहेतुत्वादिति। (वृ० प० २७१)

३७. हे भगवत जी! कृष्णराजी स्यू, पृथ्वी अप परिणामो?
जीव तणो परिणाम कहीजै, पुद्गल परिणत तामो?

३७ कण्हरातीओ ण भते! किं पुढवीपरिणामाओ? आउपरिणामाओ? जीवपरिणामाओ? पोग्गलपरि-णामाओ?

३८. जिन भाखै परिणाम पृथ्वी नो, अप-परिणाम न तामो।
जीव तणो परिणाम अछै ए, पुद्गल नो परिणामो॥

३८ गोयमा! पुढवीपरिणामाओ, नो आउपरिणामाओ, जीवपरिणामाओ वि, पोग्गलपरिणामाओ वि।
(श० ६।१०४)

३९. कृष्णराजी नै विषे प्रभु! सगला, प्राण भूत जीव सत्ता।
अतीत काले ऊपना पूर्वे? श्री जिन भाखै हता॥

३९ कण्हरातीसु ण भते! सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता पुढवीकाइयत्ताए जाव तसकाइयत्ताए उववण्णपुव्वा? हता गोयमा!

४० अनेक वार तथा वार अनती, सर्व ऊपना त्या माही।
वादर अप तेउ वनस्पतिपणे, निश्चै ऊपना नाहि॥

४० असइ अदुवा अणतक्खुत्तो, नो चेव ण वादरआउ-काइयत्ताए, वादरअगणिकाइयत्ताए, वादरवणप्फइ-काइयत्ताए वा। (श० ६।१०५)

४१. ए आठूइ कृष्णराजी विषे, आकाशातर अठ माह्यो।
आठ लोकातिक देव तणा वर, वारु विमान कहायो॥

४१ एएसि ण अट्ठण्ह कण्हराईण अट्ठसु ओवासतरेसु अट्ठ लोगतिगविमाणा पण्णत्ता, त जहा—

४२ अर्च्चि नै वलि अर्च्चिमाली, वैरोचन वलि वारू।
प्रभंकर चंद्राभ पंचमो, छठो सूराभ उदारू॥

४२ अच्ची, अच्चिमाली, वइरोयणे, पभकरे, चदाभे, सूराभे,

४३ शुक्राभ सुप्रतिष्ठाभ आठमो, कृष्णराजी रै मध्य भागो।
रिष्ट विमानज एहज नवमो, पेखत हर्ष अथागो॥

४३ सुक्काभे, सुपइट्ठाभे, मज्झे रिट्ठाभे। (श० ६।१०६)

४४ किहा प्रभु! अर्चि-विमाण परूप्यो? जिन कहै कूण ईशाणो।
किहा विमाण प्रभु! अर्चिमालो छै, जिन कहै पूरव जाणो॥

४४ कहि ण भते! अच्चि-विमाणे पण्णत्ते?
गोयमा! उत्तर-पुरत्थिमे ण। (श० ६।१०७)
कहि ण भते! अच्चिमाली विमाणे पण्णत्ते?
गोयमा! पुरत्थिमे ण।

४५. इम परिपाटी करनै जाणवू, किहां प्रभु! यावत रिष्टो?
श्री जिन भाखै साभल गोयम! वहुमध्य भागे दृष्टो॥

४५ एव परिवाडीए नेयव्व जाव— (श० ६।१०८)
कहि ण भते! रिट्ठे विमाणे पण्णत्ते?
गोयमा! वहुमज्झदेसभाए। (श० ६।१०९)

**सोरठा**

४६. विहु नो अतर मध्य, अठ अवकाशातर विषे।
अष्ट विमाण सुसिद्ध, अठ लोकातिक सुर तणा॥

४६ द्वयोरन्तरमवकाशान्तरम् (वृ० प० २७२)

४७. भ्यतर उत्तर धार, वाह्य अछै पूरव तणी।
वीच इशाण मझार, अर्च्चि विमान अछै तिहा॥

४७ तत्राभ्यन्तरोत्तरपूर्वयोरेकम्। (वृ० प० २७२)

४८. पूरव दिशि मे दोय, कृष्णराजी छै तास विच।
अर्च्चीमाली जोय, विमान अति रलियामणो॥
४९. पूर्वाभ्यतर पेख, दक्षिण वाहिर तास विच।
अग्निकूण सुविशेख, वेरोचन तीजो कह्यो॥
५० दक्षिण दिश मे दोय, कृष्णराजी छे तास विच।
प्रभकर अवलोय, तुर्य विमान, सुहामणो॥
५१. भ्यतर दक्षिण लाभ, वाहिर पश्चिम तास विच।
नैऋत मे चद्राभ, वर विमान ए पंचमो॥
५२. पश्चिम दिश मे दोय, कृष्णराजी है तास विच।
वर सूराभज सोय, विमान ए छट्ठो कह्यो॥
५३. भ्यतर पश्चिम आभ, वाहिर उत्तर तास विच।
वायव्य कूण शुक्राभ, विमान ए सप्तम कह्यो॥
५४. उत्तर दिश मे दोय, कृष्णराजी है तास विच।
सुप्रतिष्ठाभ अवलोय, अष्टम विमानज आखियो॥

५५. *इम परिपाटी अनुक्रम करिकै, अष्ट विमाण सुमागो।
रिष्ट विमान किहां? तव जिन कहै, वहुमध्य देशज भागो॥

## सोरठा

५६. अरिष्टाभ अवलोय, घणु देश मध्य भाग ए।
नवमो विमान सोय, ब्रह्म तृतीय प्रतर विषे॥

५७. *ए अष्ट लोकांतिक पवर विमाने, अष्ट प्रकार ना देवा।
लोकातिया वसै छै ब्रह्मलोके, ते कहियै सुर भेवा॥
५८. सारस्वत आदित्या वह्नी, वरुण गर्दतोय वारू।
तुसिया अव्यावाधा अग्गिच्चा, रिष्टा देव उदारू॥

५९. सारस्वत नामै जे देवा, हे प्रभु! किहा वसता?
श्री जिन भाखै अर्चि विमाने, वसै छै सुख विलसता॥

६०. किहा वसै प्रभु! देव आदित्या? तव भाखै जिनरायो।
अर्चिमाली विमाने वसता, इम अनुक्रम कहिवायो॥

६१. जाव किहा वसै रिष्ट देवा ते? जिन कहै रिष्ट विमानो।
सुर सख्या परिवार कहै हिव, साभलज्यो धर कानो॥

६२. सारस्वत आदित्य ने प्रभुजी! केतला कहियै देवा?
किता सैकडा सुरवर कहियै, ए परिवारज लेवा?

---

४८ पूर्वयोर्द्वितीयम्। (वृ० प० २७२)

४९ अभ्यन्तरपूर्वदक्षिणयोस्तृतीयम्। (वृ० प० २७२)

५० दक्षिणयोश्चतुर्थम्। (वृ० प० २७२)

५१ अभ्यन्तरदक्षिणपश्चिमयो पञ्चमम्। (वृ० प० २७२)

५२ पश्चिमयो. पष्ठम्। (वृ० प० २७२)

५३. अभ्यन्तरपश्चिमोत्तरयो· सप्तमम्। (वृ० प० २७२)

५४ उत्तरयोरष्टमम्। (वृ० प० २७२)

५५ एव परिवाडीए नेयव्व जाव— (श० ६।१०८)
कहि ण भते! रिट्ठे विमाणे पण्णते?
गोयमा! बहुमज्झदेसभाए। (श० ६।१०९)

५६ यत् कृष्णराजीना मध्यभागवर्ति रिष्ट विमान नवममुक्त तद्विमानप्रस्तावादवसेयम्। (वृ० प० २७२)

५७ एएसु ण अट्ठसु लोगतियविमाणेसु अट्ठविहा लोगतिया देवा परिवसति, त जहा—

५८. सारस्सयमाइच्चा, वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिया अव्वावाहा, अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य॥
(श० ६।११० सगहणी-गाहा)

५९ कहि ण भते! सारस्सया देवा परिवसति?
गोयमा! अच्चिम्मि विमाणे परिवसति। (श० ६।१११)

६० कहि ण भते! आइच्चा देवा परिवसति?
गोयमा! अच्चिमालिम्मि विमाणे। एव नेयव्व जहाणुपुव्वीए

६१ जाव— (श० ६।११२)
कहि ण भते! रिट्ठा देवा परिवसति?
गोयमा! रिट्ठम्मि विमाणे। (श० ६।११३)

६२ सारस्सयमाइच्चाण भते! देवाण कति देवा, कति देवसया पण्णत्ता?

---

* लय : वलिया स्यू केम लागंता ए

६३. श्री जिन भाखै सप्त देव छै, वलि सप्त सय सारो।
एह अक्षर अनुसार वृत्ति में, आख्यो तसु परिवारो॥

**सोरठा**

६४. सप्त देव सुविचार, स्वामीपणै जणाय छै।
अन्य तास परिवार, इतर स्थानके पिण इमज॥

६५. *वह्नी—वरुण नै चउदे देवा, परिवार चउद हजारो।
गर्दतोय—तुसिया सप्त देवा, सात सहस्र परिवारो॥

६६. शेष थाकता नै नव देवा, नवसौ सुर परिवारो।
संग्रहणी गाथा नो अर्थज, कहियै छै अधिकारो॥

६७. प्रथम जुगल नै सातसौ सुर, बीजा जुगल नै चउद हजारो।
तीजा जुगल नै सात सहस्र छै, शेष नै नवसय सारो॥

६८. लोकातिक ना विमान प्रभुजी! रह्या छै किण आधारो ?
श्री जिन भाखै वायु आधारे, अर्द्ध गाथा हिव सारो॥

**सोरठा**

६९. विमान जसु आधार, बाहल्य ऊंचपणेज तसु।
वलि सठाण विचार, वक्तव्यता ब्रह्मलोक नी॥

७०. जीवाभिगम मझार, दाखी तिमहिज जाणवी।
जावत हता धार, असतिं अदुवा पाठ लग॥

७१ *विमान नो प्रतिष्ठान आधार जे, हिवडा देखाड्यो सुमन्नो।
विमान नी पृथ्वी जे जाडी, पणवीससौ जोजन्नो॥

७२. सातसौ जोजन ऊंचपणै छै, नाना सठान प्रससो।
आवलिका बध एह नही छै, वृत्त त्रस चउरसो॥

७३ ब्रह्मलोके जे विमान नै सुर नी, जीवाभिगम अवदातो।
ते सहु वक्तव्यता इहा भणवी, छेहड़ै ए पाठ आख्यातो॥

७४. लोकांतिक ना विमान विषे प्रभु! सर्व जीव पहिछाणी।
पृथ्वीकायपणै ऊपना पूर्वे, जाव वनस्पतिपणै जाणी॥

७५. देवपणै पिण ऊपना प्रभुजी! तव भाखै जिनरायो।
बहु वार तथा वार अनती, पूर्वे ऊपना ताह्यो॥

*लय : बलिया सू केम लागंता ए

६३ गोयमा! सत्त देवा, सत्त देवसया परिवारो पण्णत्तो।
परिवार इत्यक्षरानुसारेणावसीयते, (वृ० प० २७२)

६४ एवमुत्तरत्रापि, (वृ० प० २७२)

६५ वण्ही—वरुणाण देवाण चउद्दस देवा, चउद्दस देवसहस्सा परिवारो पण्णत्तो। गद्दतोय—तुसियाण देवाण सत्त देवा, सत्त देवसहस्सा परिवारो पण्णत्तो।

६६. अवसेसाण नव देवा, नव देवसया परिवारो पण्णत्तो। (श० ६।११४)

६७ पढम-जुगलम्मि सत्तओ सयाणि, बीयम्मि चउद्दस-सहस्सा।
तइए सत्तसहस्सा, नव चेव सयाणि सेसेसु॥
(श० ६।११४ सगहणी-गाहा)

६८ लोगतिगविमाणा ण भते! किं पइट्ठिया पण्णत्ता ?
गोयमा! वाउपइट्ठिया पण्णत्ता। एव नेयव्व

६९,७० 'विमाणाण पइट्ठाण, वाहुल्लुच्चत्तमेव सठाण' बभलोयवत्तव्वया (जीवा० ३।१०५९, १०६६, १०६८, १०७१) नेयव्वा जाव— (श० ६।११५)

७१ तत्र विमानप्रतिष्ठान दर्शितमेव बाहल्य तु विमानाना पृथिवीबाहल्य तच्च पञ्चविंशतिर्योजनशतानि, (वृ० प० २७२)

७२ उच्चत्व तु सप्तयोजनशतानि, सस्थान पुनरेपा नानाविधमनावलिकाप्रविष्टत्वात्, आवलिकाप्रविष्टानि हि वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रभेदात् त्रिसस्थानान्येव भवन्तीति। (वृ० प० २७२)

७३ ब्रह्मलोके या विमानाना देवाना च जीवाभिगमोक्ता वक्तव्यता सा तेपु 'नेतव्या' अनुसर्त्तव्या। (वृ० प० २७२)

७४ लोयतियविमाणेसु ण भते! सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता पुढविकाइयत्ताए, आउकाइयत्ताए, तेउकाइयत्ताए, वाउकाइयत्ताए, वणप्फइकाइयत्ताए,

७५ देवत्ताए'''' 'हता गोयमा! असइ अदुवा अणतक्खुत्तो,

७६. देविपणै निश्चै नहिं ऊपना, लोकातिक नैं विमानो।
बुद्धिवंत न्याय विचारै वारू, रहिस तणो ए स्थानो॥

७६ नो चेव ण देवित्ताए। (श० ६।११६)

### सोरठा

७७ 'इहा केइ एम कहन्त, लोकांतिक सुर मुख्य जे।
सम्यक्‌दृष्टी हुंत, तिण सू तिहा न ऊपजै॥
७८. पन्नवण अर्थ मझार, समदृष्टी लोकातिका।
रिष्ट विमाने सार, एकावतारी मुख्य सुर॥
७९ आठ आतरां माहि, आठ विमाण तणा सुरा।
एकावतारी ताहि, एकाते नहिं छै तिके॥
८०. लोक शब्द ससार, तेह तणें अते हुआ।
चतुर्थ पद अर्थकार, निश्चै जाणै केवली'॥
(ज० स०)

८१. *लोकांतिक नां विमान विषे प्रभु! सुर-स्थिति केती भाखी ?
श्री जिन भाखै साभल गोयम! आठ सागर नी आखी॥

८१. 'लोगतियदेवाण' भते! केवइय काल ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा! अट्ठसागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। (श० ६।११७)

८२ लोकातिक नां विमाण थकी प्रभु! केतलै अतर जाणी।
लोक तणो अत छेहडो परूप्यो ? हिव जिन भाखै वाणी॥
८३. जोजन सहस्र असखिज्ज अतर, लोक अंत कह्यो जाणी।
तठा पछै ज अलोक परूप्यो सेवं भते! सत्य वाणी॥
८४. छठा शतक नु पचमुद्देशो, एकसौ चौथी ढालो।
भिक्खु भारीमाल ऋपराय प्रसादे, 'जय-जश' हरप विशालो॥

८२ लोगतियविमाणेहिंतो ण भते! केवतियं अबाहाए लोगते पण्णत्ते ?
८३ गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइ अबाहाए लोगते पण्णत्ते। (श० ६।११८)
सेव भते! सेव भते! त्ति। (श० ६।११९)

षष्ठशते पचमोद्देशकार्थ. ॥६।५॥

## ढाल : १०५

### सोरठा

१ पंचमुद्देशे पेख, विमान प्रमुखज वारता।
षष्ठम तेहिज देख, कहियै छै अधिकार हिव॥

१. व्याख्यातो विमानादिवक्तव्यताऽनुगतः पञ्चमोद्देशक., अथ षष्ठस्तथाविध एव व्याख्यायते, तत्र—
(वृ० प० २७२)

### दूहा

२. हे प्रभु! पृथ्वी केतली ? जिन कहै पृथ्वी सात।
रत्नप्रभा जावत कही, तले तमतमा घात॥

२ कति ण भते! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा।

*लय : वलिया स्यू केम लागंता ए

३ सप्त नरक पृथ्वी तणी, आगल कहिस्यै बात ।
सिद्धशिला कहिस्यै नथी, तिण सू सप्तज ख्यात ।।
४ पूर्वे पिण ए पाठ है, सत्त पुढवी आख्यात ।
एह पाठ वलि आखवै, पुनरुक्त दोष कहात ।।
५ तिहां अपेक्षा अन्य नी, इहां मरण समुद्घात ।
वक्तव्यता कहिवा अरथ, पुनरुक्त दोष न थात ।।
६. रत्नप्रभादिक सात ना, नरकावासा जाण ।
इम तसु आवासा जिता, ते कहिवा पहिछाण ।।
७ भवनपती व्यंतर तणां, जोतिषि ना आवास ।
वैमानिक ग्रैवेयक लग, कहिवा विमान तास ।।
८. पन्नवण[1] दूजा पद थकी, कहिवू सहु अधिकार ।
जावत प्रभुजी ! केतला अनुत्तर विमान सार ?
९. जिन कहै पच परूपिया, पवर अणुत्तर पेख ।
विजय प्रथम जावत वलि, सर्वार्थसिद्ध देख ।।

*जिनजी जयकारी,
गोतमजी पूछ्या प्रश्न उदारी । (ध्रुपद)

१०. मारणातिक समुद्घात करी नै, हे भगवत! जे जीव ।
एहिज रत्नप्रभा पृथ्वी मे, ऊपजवा जोग अतीव ।।
११. तीस लाख नरकावासा विषे ते, एक अनेरो जाण ।
नरकावासा में नरकपणै जे, ऊपजवा जोग माण ।।
१२. ते जीव नरकावासे रह्यो प्रभुजी ! पुद्गल द्रव्य आहारै छै ?
अथवा परिणामै—तेह आहार नो खल रस भाव करै छै ?

१३ अथवा तिण कर तनु निपजावै ? तव भाखै जगतार ।
केइक जीव तेहिज समुद्घाते, मरण पामी तिण वार ।।
१४ नरकावासा मे गयो थको ते, आहार करै छै जेह ।
परिणामै—करै खल रस भावज, वलि तनु वांधै तेह ।।
१५. केइक तिहां थकी पाछो वली नै, इहा निज तनु आय ।
वीजी वार मारणातिक नामे, समुद्घाते मर ताय ।।

१६. एहिज रत्नप्रभा पृथ्वी मे, तीस लख नरकावास ।
कोइक नरकावासे ऊपजै, नरकपणै ते तास ।।

१७. ऊपजी नै पछै आहार करै छै, आहार प्रतै परिणमावै ।
शरीर प्रतै वांधै निपजावै, इम जाव सातमी कहावै ।।

३ इह पृथिव्यो नरकपृथिव्य ईषत्प्राग्भाराया अनधिकरिष्यमाणत्वात् । (वृ० प० २७३)

४,५ इह च पूर्वोक्तमपि यत् पृथिव्याद्युक्त तत्तदपेक्षमारणान्तिकसमुद्घातवक्तव्यताऽभिधानार्थमिति न पुनरुक्तता । (वृ० प० २७३)

६ रयणप्पभाईण आवासा भाणियव्वा जाव अहेसत्तमाए ।

७ एव जत्तिया आवासा ते भाणियव्वा ।

८ जाव— (श० ६।१२०)
कति ण भते ! अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता ?

९ गोयमा ! पच अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता, त जहा—
विजए, जाव (स० पा०) सव्वट्ठसिद्धे ।
(श० ६।१२१)

१० जीवे ण भते ! मारणतियसमुग्घाएण समोहए, समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए

११ तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु अण्णयरसि निरयावाससि नेरइयत्ताए उववज्जित्तए,

१२ से ण भते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा ? परिणामेज्ज वा ? ।
'आहारेज्ज वा' पुद्गलानादद्यात् 'परिणामेज्ज व' त्ति तेषामेव खलरसविभाग कुर्यात् ।
(वृ० प० २७३)

१३,१४ सरीर वा बधेज्जा ?
गोयमा ! अत्थेगतिए तत्थगए चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीर वा बधेज्जा,

१५ अत्थेगतिए तओ पडिनियत्तति, ततो पडिनियत्तित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता दोच्च पि मारणतियसमुग्घाएण समोहण्णइ, समोहणित्ता

१६ इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु अण्णयरसि निरयावाससि नेरइयत्ताए उववज्जित्तए,

१७ तओ पच्छा आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीर वा बधेज्जा । एव जाव अहेसत्तमा पुढवी ।
(श० ६।१२२)

* लय : दशकधर राजा रावण रा
१. पण्णवणा पद २।३०-६२ ।

जीव प्रभु! मारणातिक नामे, समुद्घात करि सोय।
चउसठ लक्ष आवास असुर ना, कोइक आवासे जोय॥
ऊपजवा जोग तिहा ऊपजी नै, तिहां प्रभु! करै आहार?
नरक तणी परै ए पिण भणवो, यावत थणियकुमार॥

१८,१९. जीवे ण भते! मारणतियसमुग्घाएण समोहए, समोहणित्ता जे भविए चउसट्ठीए असुरकुमारावाससय-सहस्सेसु अण्णयरसि असुरकुमारावाससि असुरकुमार-त्ताए उववज्जित्तए, जहा नेरइया तहा भाणियव्वा जाव थणियकुमारा। (श० ६।१२३)

जीव प्रभु! मारणातिक नामे, समुद्घात करि सोय।
ऊपजवा जोग पृथ्वीकाय मे, जीव तिको अवलोय॥
लाख असख आवास पृथ्वी ना, एक आवासे स्थान।
पृथ्वीकायपणै तिहा ऊपजै? जीव तिको भगवान!

२०,२१. जीवे ण भते! मारणतियसमुग्घाएण समोहए, समोहणित्ता जे भविए असखेज्जेसु पुढविकाइयावास-सयसहस्सेसु अण्णयरसि पुढवीकाइयावाससि पुढवी-काइयत्ताए उववज्जित्तए,

मेरू थी पूर्व किती दूर जावै? ए गमन आश्रयी कथित्त।
केतली दूर जईनै रहै छै? ए अवस्थान आश्रित्त॥

२२. से णं भते! मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण केवइय गच्छेज्जा? केवइयं पाउणेज्जा?
कियद्दूर गच्छेद्? गमनमाश्रित्य, ....कियद्दूर प्राप्नुयात्? अवस्थानमाश्रित्य,
(वृ० प० २७३, २७४)

जिन कहै लोक नै अत जावै ते, लोक अत रहै ताय।
ते प्रभु! तिहा गयो आहारै छै, परिणामै तनु निपजाय?

२३. गोयमा! लोयत गच्छेज्जा, लोयंत पाउणेज्जा।
(श० ६।१२४)
से ण भते! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा? परिणा-मेज्ज वा? सरीर वा बधेज्जा?

४. जिन कहै तिहा रह्यो थको कोइक, आहार करै छै सोय।
खल-रसपणै आहार परिणमावै, तनु निपजावै जोय॥

२४ गोयमा! अत्थेगतिए तत्थगए चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बधेज्जा;

५ कोइक तेह स्थानक थी वली नै, तिहा निज तनु में आय।
दूजी वार मारणातिक नामे, समुद्घाते मरै ताय॥

२५ अत्थेगतिए तओ पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता इहमा-गच्छइ, दोच्च पि मारणंतिय-समुग्धाएण समोहण्णइ, समोहणित्ता,

६ मेरू पर्वत थी पूर्व दिशि मे, आगुल असखेज भाग।
अथवा सख्यातमा भाग विषे जे, अथवा वालाग्रे माग॥

२६ मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे ण अगुलस्स असखेज्जइ-भागमेत्त वा, सखेज्जइभागमेत्त वा, वालग्ग वा,

७. अथवा पृथक वालाग्र विषे जे, इम लीख जू जव देख।
अगुल जावत जोजन कोडी, तिहा जई सुविशेख॥

२७ वालग्ग-पुहत्त वा, एव लिक्ख-जूय-जव-अगुल जाव जोयणकोडिं वा,

८ जाव शब्दे वेहत रयणी कुक्षि, धनुष कोश जोजन्न।
जोजन-सय वलि जोजन-सहस्रज, लक्ष-जोजन इति मन्न॥

२८ इह यावत्करणादिद दृश्य—विहत्थि वा रयणिं वा कुच्छि वा धणु वा कोस वा जोयण वा जोयणसय वा जोयणसहस्सं वा जोयणसयसहस्स वा।
(वृ० प० २७४)

९. जाव शब्द में ए सहु आख्या, तेह इहा पद जोड।
कोड जोजन नै अतर जई नै, जोजन कोडाकोड़॥

२९ जोयणकोडाकोडिं वा

०. मेरू थी जोजन सहस्र संख्याता, जोजन असख हजार।
अथवा लोक नै अंत जई नै, उत्पत्ति-स्थान ए धार॥

३०. सखेज्जेसु वा असखेज्जेसु वा जोयणसहस्सेसु, लोगते वा,

## सोरठा

३१. उत्पत्तिस्थानक एथ, आगुल नो असख्यातमो ।
भाग मात्रादिक खेत, समुद्घात थी त्या जई ॥

३२. 'एक प्रदेश नी श्रेणि मूकी नैं, असंख लक्ष पृथ्वी वास ।
कोइक वासे पृथ्वीपणैं ऊपजी, आहारादिक त्रिहु तास ॥

## सोरठा

३३. असख्यात परदेश, अवगाहै आकाश नैं ।
जीव स्वभाव विशेष, तिण प्रकार करिकै इहा ॥

३४. एक प्रदेश नी श्रेण, खंध जीव नु नां रहै ।
पाठ जीवेणं तेण, रहै अनेक प्रदेश मे ॥

३५. 'वर्ज्यो एक प्रदेश, प्रतिपक्ष इक शब्द नु ।
अनेक कहिय शेष, तेह विषे रहै जीवडो ॥

३६. अनेक शब्दे ताहि, प्रदेश असख लीजियै ।
उणा प्रदेशा माहि, खध जीव नो नहि रहै ॥

३७. दशवैकालिक देख, जीव अनेक पृथ्वी मभै ।
चउथै अध्येन पेख, तेह असंखिज्ज जाणवा ॥

३८. तिम इहा पिण अवलोय, एक शब्द करि वर्जिया ।
अनेक रह्या सुजोय, असखिज्ज इहा पिण अछै' ॥
(ज० स०)

३९. *जिम पूर्व दिशि मदर गिरि नो, कह्यो आलावो एह ।
इम दक्षिण पश्चिम उत्तर दिशि, ऊर्द्ध अधो पिण तेह ॥

४०. जिम पृथ्वीकाय नां षट आलावा, तिमहिज आलावा प्रगट ।
एकेंद्री सर्व विषे इम भणवा, इक-इक ना षट-षट ॥

४१. *जीव प्रभु! मारणातिक नामे, समुद्घाते मरि सोय ।
लक्ष असख बेइंद्रि आवासे, एक स्थान जावा जोग जोय ॥

४२. बेइंद्रिपणै ऊपजी आहार लेवै ? जिम नारक आख्यात ।
जाव अणुत्तर विमान ना देवा, तेहिज हिव अवदात ॥

४३ जीव प्रभु! मारणातिक नामे, समुद्घाते मरि सोय ।
जावा जोग मोटा पच अणुत्तर महाविमान मे जोय ॥

---

३१ उत्पादस्थानानुसारेणागुलासख्येयभागमात्रादिके क्षेत्र समुद्घाततो गत्वा । (वृ० प० २७४)

३२ एगपएसिय सेढि मोत्तूण असखेज्जेसु पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु अण्णयरसि पुढविकाइयावाससि पुढविकाइयत्ताए उववज्जेत्ता, तओ पच्छा आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीर वा बधेज्जा ।

३३,३४ यद्यप्यसख्येयप्रदेशावगाहस्वभावो जीवस्तथाऽपि नैकप्रदेशश्रेणीवर्त्यसख्यप्रदेशावगाहनेन गच्छति तथा स्वभावत्वात् । (वृ० प० २७४)

३७ पुढवी चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएण । (दसवे० ४।४ गद्याश)

३९ जहा पुरत्थिमे ण मदरस्स पव्वयस्स आलावओ भणिओ, एव दाहिणे ण, पच्चत्थिमे ण, उत्तरे णं, उड्ढे, अहे ।

४० जहा पुढविकाइया तहा एगिंदियाण सव्वेसिं एक्केक्कस्स छ आलावगा भाणियव्वा । (श० ६।१२५)

४१. जीवे ण भते ! मारणतियसमुग्घाएण समोहण्णइ, समोहणित्ता जे भविए असखेज्जेसु बेइदियावाससयसहस्सेसु अण्णयरसि बेइदियावाससि

४२ बेइदियत्ताए उववज्जित्तए, से ण भते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा ? परिणामेज्ज वा ? सरीर वा बधेज्जा ?
जहा नेरइया, एव जाव अणुत्तरोववाइया ।
(श० ६।१२६)

४३ जीवे ण भते ! मारणतियसमुग्घाएण समोहए, समोहणित्ता जे भविए पचसु अणुत्तरेसु महतिमहालएसु महाविमाणेसु

---

* लय : दशकंधर राजा रावण रा

अनेरे कोइक अनुत्तर विमाने, देवपणे उपजंत।
ते प्रभु! तिहा रह्यो आहार लेवै ? जाव पूर्ववत हुंत॥

### सोरठा

'कह्यो धर्मसी ताहि, भवनपती विगलिंदिया।
तिरि पचेंद्री माहि, मनुष्य व्यंतर जोतिपि॥
वैमानिक पहिछाण, जाव अणुत्तर लग कह्या।
नरक तणी पर जाण, उपजै त्या आहारादि लै॥
छद्मस्थ समणी संत, सख्याता चारित्र सहित।
अणुत्तर विमाण पर्यंत, देवपणे ते ऊपजै॥
इण न्याय करी अवधार, तिर्यंच श्रावक श्राविका।
असखेज्ज सुविचार, सहस्रार लग ऊपजै॥
अच्युत लग अवलोय, मनुष्य श्रावक श्राविका।
इह विध कहिवो जोय, पूर्व न्याय करि सर्व ए॥
मारणातिक समुद्घात करि पाछो एह तनु मुझे।
अतर्मुहूर्त ख्यात, चारित्र-सहित रहै अछै॥
अनुत्तर विमान मांय, चारित्रवत तिहा जई।
फिर पाछो तनु आय, अतर्मुहूर्त्त रही मरै॥
समुद्घात धुर कीध, रुचक न ऊठ्या ज्या लगै।
प्रदेश अनुत्तर सीध, कहियै नर गति सजमी।
इणहिज रीत विचार, तिरि पचेंद्री आदि जे।
कहिवो न्याय उदार, यथाजोग जाणी करी॥
केइक जीव आख्यात, रत्नप्रभा महि नी परै।
दोय वार विख्यात, मारणांतिक समुद्घात छै॥
इतलै ए अवदात, ऊपजवूं जेहनै जिहा।
मारणातिक समुद्घात, प्रथम करी ते स्थान जइ॥
पाछो वलि विख्यात, बीजी वार करै अछै।
मारणातिक समुद्घात, एकेक जीव इसा अछै॥
एकेद्री रै मांहि, जेहनै ऊपजवो अछै।
ते उत्कृष्टो ताहि, लोक अत जइ नै वली॥
पाछो वलि को एक, स्व स्थानक आवै तिको।
बीजी वारे देख, समुद्घात मरणात करि॥
मेरू थी अवलोय, जे पूरव दिशि नै विषे।
अगुल तणोज जोय, भाग मात्र असंख्यातमो॥
जाव लोकांत पर्यंत, एक प्रदेश नी श्रेणि नै।
मूकी नै उपजत, पछै आहारादिक त्रिहुं करै॥
सर्व लोक रै माय, एकेद्रिय छै ते भणी।
लोकानिक उपजाय, यत्र धर्मसी कृत मझे'॥

(ज० स०)

४४ अण्णयरंसि अणुत्तरविमाणंसि अणुत्तरोववाइयदेवत्ताए उववज्जित्तए, से ण भंते! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा ? परिणामेज्ज वा ? सरीर वा बंधेज्जा ? त चेव जाव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीर वा बंधेज्जा। (श० ६।१२७)

६२. *सेवं भते! सेवं भते! कही इम, पुढवी उद्देसो सम्मत्तो ।
छठा शतक नो छठो उद्देशो, अक छासठ नु सुतत्तो ॥

६२. सेव भते ! सेव भते ! त्ति । (श० ६।१२८)

६३. उगणीसै वीसै सावण विद पचमी, एकसौ पचमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' गण गुणमाल ॥

षष्ठशते षष्ठोद्देशकार्थः ॥६।६॥

## ढाल : १०६

### दूहा

१. छठे उदेशे जीव नी, वक्तव्यता अवलोय ।
सप्तम जीव विशेष ते, योनि वारता जोय ॥

१ षष्ठोद्देशके जीववक्तव्यतोक्ता सप्तमे तु जीवविशेषयोनिवक्तव्यतादिरर्थ उच्यते— (वृ० प० २७४)

†कर जोडी गोयम कहै । (ध्रुपद)

२ अथ हिव हे भगवत जी! साली कलम प्रधानो जी ।
व्रीही सामान्य थकी कह्यो, गेहूं नै जव वलि जाणो जी ॥

२ अह भते ! सालीण, वीहीण, गोधूमाण, जवाण,
'सालीण' त्ति कलमादीना 'वीहीण' ति सामान्यत । (वृ० प० २७४)

३ जवजव जव नो विशेष छै, ए धान्य कोठे गुप्ति राखै ।
पालो ते वसादिक तणो, धान्य आधारज आखै ॥

३ जवजवाण—एएसि ण धन्नाण कोट्ठाउत्ताण, पल्लाउत्ताण,
'जवजवाण' ति यवविशेषाणाम्"' ""'कोट्ठाउत्ताण' त्ति कोष्ठे—कुशूले आगुप्तानि" 'पल्लाउत्ताण' ति इह पल्यो—वशादिमयो धान्याधारविशेषः । (वृ० प० २७४)

४. मंच माला में घालिया, भेद बिहुं मे निहालो ।
भीत रहित ते मंच है, घर ऊपर ते मालो ॥

४ मचाउत्ताण, मालाउत्ताण,
मञ्चमालयोर्भेदः—"अकुड्डे होइ मचो, मालो य घरोवरिं होति ।" (वृ० प० २७४)

५. वारणा नै ढाकी करी गोवरादिक संघातो ।
द्वार देश नै लीपियो, ते ओलित्ताण कहातो ॥

५ ओलित्ताण
द्वारदेशे पिधानेन सह गोमयादिनाऽवलिप्तानाम् (वृ० प० २७४)

६. सर्व थी गोवरादिक करि लीप्यो ते लित्ताण ।
तथाविध ढाकणे करी ढांक्यो ते पिहित्ताण ॥

६. लित्ताण पिहियाणं
'लित्ताण' ति सर्वतो गोमयादिनैव लिप्ताना 'पिहियाण' ति स्थगिताना तथाविधाच्छादनेन । (वृ० प० २७४)

७. माटी प्रमुख सू मूंदियो, कहियै ते मुद्दित्ताण ।
रेखादिक लछन कियां, कहियै ते लछियाण ॥

७ मुद्दियाण लछियाण
'मुद्दियाण' ति मृत्तिकादिमुद्रावत्ता 'लछियाण' ति रेखादिकृतलाञ्छनाना (वृ० प० २७४)

*लय : दशकंधर राजा रावण रा
†लय : श्रेणक मन इचरज थयो हूं बड़भागी

१. काल कितो योनी रहै, अंकुर उत्पत्ती हेतु ?
श्री जिन भाखै जघन्य थी, अतर्मुहूर्त्त लभेतु ॥
(वीर कहै सुण गोयमा!)

८ केवतियं काल जोणी संचिट्ठइ ?
गोयमा! जहण्णेण अतोमुहुत्त,
'जोणि' त्ति अकुंरोत्पत्तिहेतु:, (वृ० प० २७४)

. उत्कृष्ट तीन वर्ष लगै, योनि रहै छै ताह्यो।
वडा टवा मे इम कह्यो, त्या लग सचित कहायो ॥

९. उक्कोसेण तिण्णि सवच्छराइं ।

. ते उपरांते योनि ते, वर्णादि हानिज पावै।
ते उपराते योनि ते, विध्वसै क्षय थावै ॥

१०. तेण पर जोणी पमिलायइ, तेण पर जोणी पविद्धमइ, प्रम्लायति वर्णादिना हीयते, 'पविद्धसइ' त्ति क्षीयते। (वृ० प० २७४)

. ते उपराते योनि ते, बीज अबीजज होयो।
वृत्तिकार इहा इम कह्यो, वाह्यो न ऊगै कोयो ॥

११. तेण पर वीए अवीए भवति ।
उप्तमपि नांकुरमुत्पादयति। (वृ० प० २७४)

. ते उपरांते योनि ते, विच्छेदपणों पामंतो।
हे श्रमण आयुष्मान्! साभलो, इम भाखै भगवंतो ॥

१२ तेण पर जोणीवोच्छेदे पण्णत्ते समणाउसो !
(श० ६।१२९)

**सोरठा**

. 'वडा टवा में वाय, सजीवपणु टली करी।
अजीवपणुज थाय, मिलतो अर्थ अछै तिको ॥
. सूको धान अजीव, केइक करै परूपणा।
पिण इहा आख्यो जीव, अर्थ अनूपम देखलो ॥
. दशवैकालिक देख, द्वितीय उदेश पचम भयण।
बावीसमी उवेख, गाथा मे इह विध कह्यु ॥
. चावल नो पहिछाण, आटो मिश्र उदक वली।
शस्त्र-अपरिणत जाण, ते काचा लेणा नही ॥

१६ तहेव चाउल पिट्ठं वियड वा तत्तनिव्वुड ।
तिलपिट्ठपूइपिन्नाग, आमग परिवज्जए ॥
(द० ५।२।२२)

७. वलि कह्यो प्रथम उदेश, चोतीसमी गाथा मझै।
पिट्ठ नो अर्थ विशेष, दल्यो आटो तत्काल नों ॥
८. ते खरड्या हस्तादि, वहिरावै साधू भणी।
नहि कल्पै विधिवादि, धान्य सचित्त इण न्याय है' ॥
(ज० स०)

१७ पिट्ठं—तत्काल पिसा हुआ आटा।
(दसवेआलिय ५।१ टि० १३४)

९. *अथ हिव हे भगवत जी! वृत्त चिणा सुविशेखो।
मसूर मूग तिल उडद नैं, निस्फाव वल्ला देखो ॥

१९ अह भते! कल-मसूर-तिल-मुग्ग-मास-निप्फाव-
'कल' त्ति कलाया वृत्तचनका इत्यन्ये....'निप्फाव' त्ति वल्ला.। (वृ० प० २७४)

०. कुलथ अनै चंवला कह्या, तुवरि चिणा वलि काला।
आदि देई ए धान्य नैं, घाल्या कोठे विशाला ॥

२० कुलत्थ-आलिसदग-सतीण-पलिमथगमाईण—एएसि ण घन्नाणं कोट्ठाउत्ताण....
'कुलत्थ' त्ति चवलिकाकारा चिपिटिका भवन्ति, 'आलिसदग' त्ति चवलकप्रकारा. चवलका एवान्ये, 'सईण' त्ति तुवरी, 'पलिमथग' त्ति वृत्तचनका कालचनका इत्यन्ये। (वृ० प० २७४)

---

लय : श्रेणक मन इचरज थयो हूं बड़भागी

२१. सालि आलावे जिम कह्यु, तिम ए पिण कहिवायो ।
णवरं पच वर्ष लगै, शेष तिमज वच ताह्यो ॥

२२. अथ हिव हे भगवत जी! अयसी भाग नो बीजो ।
कसूबो कोद्रव कागु नै, वरट्ट धान्य वलि लीजो ॥

२३. रालग कागु विशेष छै, कोदूसग सुविचारो ।
कोद्रव तणो विशेष ए, सण सरिसव वलि धारो ॥

२४. बीज मूला नां आदि दे, ए पिण तिमहिज जाणी ।
णवरं सात वर्ष लगै, शेष तिमज पहिछाणी ॥

**सोरठा**

२५. स्थिती कही छै एह, स्थिती तणोज विशेष हिव ।
मुहूर्त्तादिक छै जेह, कहियै स्वरूप तेहनो ॥

२६ *इक-इक मुहूर्त्त ना प्रभु! किता ऊसास वखाण्या ?
श्री जिन उत्तर दे हिवै, अनुक्रमै इम आंण्या ॥

२७. असंख्याता समय तणा, समुदाय वृंद सुयोगो ।
समिति कहिता तसु मेलवो, समागम तास संजोगो ॥

२८. काल मान तिण करि हुवै, ते आवलिका कहियै ।
इतरै असख समय तणी, एक आवलिका लहियै ॥

२९. सख्याती आवलिका तणो, एक ऊसास विचारो ।
सख्याती आवलिका तणो, एक निस्सास प्रकारो ॥

**सोरठा**

३०. हृष्ट-तुष्ट नर जान, जरा करी अपराभव्यो ।
पहिला नै वर्त्तमान, व्याधि करीनै रहित ते ॥

३१. एहवो पुरुष युवान, इक उस्सास-निस्सास तसु ।
ए पाणु अभिधान, कह्यो देव तीर्थंकरे ॥

३२. *सात पाणु एक थोव छै, सात थोवे लव एको ।
सितंतर लव मुहूर्त्त कह्यो, केवलज्ञाने विशेखो ॥

२१ जहा सालीण तहा एयाणि वि नवर पच सवच्छराइ सेस त चेव । (स० पा०)
(श० ६।१३०)

२२ अह भते ! अयसि-कुसुभग-कोद्दव-कगु-वरग
'अयसि' त्ति भङ्गी..... 'वरग' त्ति वरट्टो,
(वृ० प० २७४)

२३ रालग-कोद्दूसग-सण-सरिसव-
'रालग' त्ति कगुविशेष , 'कोद्दूसग' त्ति कोद्रवविशेष ।
(वृ० प० २७४)

२४ मूलावीयमाईण—एएसि ण धन्नाण.....
एयाणि वि तहेव नवर सत्त सवच्छराइ, (स० पा०)
(श० ६।१३१)

२५ अनन्तर स्थितिरुक्तास्त स्थितिरेव विशेषाणा मुहूर्त्तादीना स्वरूपाभिधानार्थमाह— (वृ० प० २७४)

२६ एगमेगस्स ण भते ! मुहुत्तस्स केवतिया ऊसासद्धा वियाहिया ?

२७ गोयमा ! असखेज्जाण समयाण समुदय-समिति-समागमेण
समुदाया—वृन्दानि तेषा या समितयो—मीलनानि तासा य समागम —सयोग । (वृ० प० २७६)

२८ सा एगा 'आवलिय' त्ति पवुच्चइ,

२९ सखेज्जा आवलिया ऊसासो, सखेज्जा आवलिया निस्सासो—

३० हट्ठस्स अणवगल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जतुणो ।
'हृष्टस्य' तुष्टस्य, 'अनवकल्पस्य' जरसाऽनभिभूतस्य, 'निरुपक्लिष्टस्य' व्याधिना प्राक् साम्प्रत चानभिभूतस्य । (वृ० प० २७६)

३१ एगे ऊसास-नीसासे, एस पाणु त्ति वुच्चइ ।

३२ सत्त पाणूइ से थोवे, सत्त थोवाइ से लवे ।
लवाण सत्तहत्तरिए, एस मुहुत्ते वियाहिए ॥

---

*लय : श्रेणक मन इचरज थयो हूं बड़भागी

३३. सैंतीसौ तिहोत्तर वलि, उस्सास-निस्सास जानी।
मुहूर्त्तमान देख्यो तसु, सर्व अनंत वरज्ञानी॥

३३. तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तरिं च ऊसासा।
एस मुहुत्तो दिट्ठो, सव्वेहिं अणंतनाणीहिं॥

३४. ए मुहूर्त्त प्रमाण करी अछै, तीस मुहूर्त्त दिनरातो।
पनर अहोरत्त पक्ख कह्यु, बे पक्ख मास विख्यातो॥

३४ एएणं मुहुत्तपमाणेणं तीसमुहुत्ता अहोरत्तो, पण्णरस अहोरत्ता पक्खो, दो पक्खा मासो,

३५, बे मासे इक ऋतु कही, तीन ऋतू इक अयनो।
बे अयने इक वर्ष छै, पंच वर्ष युग वयनो॥

३५ दो मासा उडू, तिण्णि उडू अयणे, दो अयणा संवच्छरे, पंच संवच्छराइं जुगे,

३६. वीस युगे सौ वर्ष छै, दश सय वर्ष हजारो।
सौ हजार वर्ष एकठा, ते इक लक्ख अवधारो॥

३६ वीसं जुगाइं वाससयं, दस वाससयाइं वाससहस्सं, सयं वाससहस्साइं वाससयसहस्सं।

३७ चोरासी लक्ख वर्षे हुवै, एक पूर्व नों अंगो।
चोरासी लाख गुणा किया, पूर्व एक सुचंगो॥

३७. चउरासीइं वाससयसहस्साणि से एगे पुव्वंगे, चउरासीइं पुव्वंगा सयसहस्साइं से एगे पुव्वे।

### सोरठा

३८. वर्ष सित्तर लख कोड, छपन सहस्रज कोड वलि।
ए सगला मिलि जोड, पूर्व संख्या तसु कही॥

३९ *एक पूर्व छै तेहनें, चोरासी लक्ख गुणा कीजै।
एक तुटित नो अंग छै पट अंग पनर बिंदु लीजै॥

३९ एवं तुडियंगे।

४०. एह तुटित ना अंग नें, वर्ष चउरासी लक्ख गुणा कीजै।
तुटित कहीजै तेहनें, अठ अंक बिंदु वीस लीजै॥

४० तुडिए।

४१. तिणनें चोरासी लाख गुणां किया, एक अडड नो अंगो।
इणनें चोरासी लक्ख गुण्या, अडड एक सुचंगो॥

४१ अडडंगे, अडडे।

४२. तिणनें चोरासी लाख गुणां किया, एक अवव नो अंगो।
तास चोरासी लक्ख गुण्या, अवव एक सुचंगो॥

४२ अववंगे, अववे।

४३. तिणनें चोरासी लाख गुणा किया, एक हूहूक नो अंगो।
इणनें चोरासी लक्ख गुण्यां, हूहूक एक सुचंगो॥

४३ हूहूयंगे, हूहूए।

४४. तिणनें चोरासी लाख गुणा किया, एक उत्पल नो अंगो।
इणनें चोरासी लक्ख गुण्या, उत्पल एक सुचंगो॥

४४. उप्पलंगे, उप्पले।

४५. तिणनें चोरासी लाख गुणा कियां, एक पद्म नो अंगो।
इणनें चोरासी लक्ख गुण्या, पद्म एक सुचंगो॥

४५ पउमंगे, पउमे।

४६. तिणनें चोरासी लाख गुणा कियां, एक नलिन नो अंगो।
इणनें चोरासी लक्ख गुण्यां, नलिन एक सुचंगो॥

४६ नलिणंगे, नलिणे।

४७. तिणनें चोरासी लाख गुणां किया, अर्थनिपूरकअंगो।
इणनें चोरासी लक्ख गुण्या, अर्थनिपूरक चंगो॥

४७. अत्थनिउरंगे, अत्थनिउरे।

४८. तिणनें चोरासी लाख गुणा किया, एक अयुत नो अंगो।
इणनें चोरासी लक्ख गुण्यां, अयुत एक सुचंगो॥

४८ अउयंगे, अउए।

---

*लय : श्रेणक मन इचरज थयो हूं बड़भागी

४९. तिणनै चोरासी लाख गुणा किया, एक प्रयुत[1] नो अगो।
इणनै चोरासी लक्ख गुण्यां, प्रयुत एक सुचंगो॥
५०. तिणनै चोरासी लाख गुणा किया, एक नयुत नो अगो।
इणनै चोरासी लक्ख गुण्या, नयुत एक सुचगो॥
५१. तिणनै चोरासी लाख गुणा किया, एक चूलिका-अगो।
तिणनै चोरासी लक्ख गुण्या, चूलिका एक सुचगो॥
५२. तिणनै चोरासी लाख गुणा किया, सीसपहेलिका-अगो।
तिणनै चोरासी लक्ख गुण्या, सीसपहेलिका[2] चगो॥
५३. गणित-सख्या एता लगै, गणित-विषय गिण एती।
उत्कृष्ट सख्या दूर छै, एतो गिणत नी वात कहेती॥
५४. ते उपरात ओपम कही, कतिविध ते भगवानो?
जिन कहै ते द्विविध अछै, पल्य सागर उपमानो[3]॥
५५. देश अक सतसठ तणु, एकसौ छट्ठी ढालो।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरष विशालो॥
(जय-जय ज्ञान जिनेन्द्र नो)

४९ पउयगे, पउए।

५० नउयगे, नउए।

५१ चूलियगे, चूलिया।

५२ सीसपहेलियगे, सीसपहेलिया।

५३ एताव ताव गणिए, एताव ताव गणियस्स विसए।

५४ तेण पर ओवमिए। (श० ६।१३२)
से किं त ओवमिए?
ओवमिए दुविहे पण्णत्ते, त जहा—
पलिओवमे य, सागरोवमे य। (श० ६।१३३)

## ढाल १०७

### दूहा

१. से अथ कि स्यू तं तिको, पल्योपम पहिछाण?
अथ स्यू ते सागरोपम? तास उत्तर हिव जाण॥

१. से किं तं पलिओवमे? से किं त सागरोवमे?

---

१ प्रस्तुत ढाल की ४९वी और ५०वी गाथा जिस पाठ के आधार पर बनाई गई है, अगसुत्ताणि भाग २ श० ६।१३२ मे उसका क्रम उलटा है। वहा पहले नउयगे, नउए और उसके बाद पउयगे, पउए पाठ है। अनुयोगद्वार मे भी यह क्रम इसी प्रकार रखा गया है। यही क्रम उचित प्रतीत होता है, पर कुछ आदर्शों मे 'पउयगे, पउए' पाठ पहले है। इस क्रम को हमने पाठान्तर मे रखा है। जयाचार्य को प्राप्त आदर्श मे यही क्रम रहा होगा। इसीलिए जोड की रचना इस क्रम से की गई है। जोड के सामने अगसुत्ताणि के पाठ को जोड के अनुसार ही उलटकर उद्धृत किया गया है।

२. देखें प० स० ५।

३. इस ढाल की गाथा ३७ से ५४ तक कालमान का जो विवरण है, वही ढाल ७५ गाथा ८ से ३७ तक है। ७५वी ढाल पाचवें शतक की जोड है और यह (१०६) ढाल छठे शतक की जोड है। एक आगम मे यह प्रसग द्विरुक्त-सा प्रतीत होता है, पर सदर्भो की भिन्नता के कारण द्विरुक्त होने पर भी यह दोप नही है। क्योकि पाचवे शतक मे अयन आदि की चर्चा है और प्रस्तुत ढाल मे गणना-काल-पद के अन्तर्गत इसका उल्लेख हुआ है। यही प्रसग अणुओगदाराइं (सू० ४१७) मे भी उल्लिखित है।

२. अनि तीखे शस्त्रे करी, छेदवू तेह पिछाण।
खड्गादिक करिनै इहा, द्विधा भाव सुजाण॥

३. सूई प्रमुख कर भेदवू, छिद्र सहित कहिवाय।
छेद भेद प्रारभवा, करण समर्थ को नाय॥

४. तास नाम परमाणुओ, सिद्धा वदै सुजेह।
ज्ञानसिद्ध ए केवली, पिण सिद्धिगत न भणेह॥

५. बोलण तास असभव, तिण कारण पहिछाण।
ज्ञानसिद्ध एहनै कह्या, वर तेरम गुणठाण॥

६. पूर्वे परमाणू कह्यु, प्रमाण नी ए आदि।
उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका प्रमुख प्रमाण सुवादि॥

७. निश्चय परमाणू तणा, एहिज लक्षण होय।
तो पिण व्यवहारीक ए, परमाणू अवलोय॥

८. प्रमाण ना अधिकार थी, व्यवहारिक ना एह।
इहा लक्षण आख्या अछै, इम वृत्तिकार कहेह॥

९. अथ हिव अन्य प्रमाण नो, लक्षण अर्थ विशेख।
श्रोता चित दे साभलो, वर जिन वचन सुरेख।

१०. *अनता व्यवहारिक जाण, परमाणू नो पहिछाण।
समुदाय छै प्रमुख सोय, तसु समिति मिलण अवलोय॥

११. तेहनो समागम कहिवाय, एकठो थायवो जे ताय।
तेणे करी मात्रा पुज पेख, ते उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णा एक॥

१२. इतरै अनत व्यवहारिक परमाणु, भेला कीधा जे पुज पिछाणु।
तेहनै कहियै सुविशेख, उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका एक॥

१३. उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका वेद, प्रमुख प्रमाण ना दस भेद।
यथोत्तर अष्ट गुणा उच्चार, आगुल पर्यंत कहिवा विचार॥

१४. श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका जाण, वलि ऊर्ध्वरेणू पहिछाण।
ऊचो नीचो अनै तिरछो तेह, चलनधर्म ऊर्ध्वरेणू एह॥

१५. पूर्वादिक वायु पिछाण, तिण सू प्रेरी थकी रज जाण।
इम चालै जे रज ताय, त्रसरेणू ते कहिवाय॥

१६. रथ जाता पडै रज जेह, रथरेणू कहीजै तेह।
वाल नो अग्र नै वलि लीख, जू जवमध्य अगुल सधीक॥

---

*लय : विना रा भाव सुण गूजे

२,३. सत्थेण सुतिक्खेण वि, छेत्तु भेत्तु व ज किर न सक्का।
छेत्तुमिति खड्गादिना द्विधा कर्त्तुं, 'भेत्तु' सूच्यादिना सच्छिद्र कर्त्तुम्। (वृ० प० २७६)

४,५. त परमाणु सिद्धा वदति
'सिद्ध' त्ति ज्ञानसिद्धाः केवलिन इत्यर्थ न तु सिद्धाः—सिद्धिगतास्तेपा वदनस्यासम्भवादिति। (वृ० प० २७६)

६. आदि पमाणाण॥१॥
'आदि' प्रथम 'प्रमाणाना' वक्ष्यमाणोत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकादीनामिति। (वृ० प० २७६)

७,८ यद्यपि च नैश्चयिकपरमाणोरपीदमेव लक्षण तथाऽपीह प्रमाणाधिकाराद्व्यावहारिकपरमाणुलक्षणमिदमवसेयम्। (वृ० प० २७६)

९ अथ प्रमाणान्तरलक्षणमाह— (वृ० प० २७६)

१०,११ अणताण परमाणुपोग्गलाण समुदय-समिति-समागमेण सा एगा उस्सण्ह-सण्हिया इ वा।
'अनन्ताना' व्यावहारिकपरमाणुपुद्गलाना समुदया—द्व्यादिसमुदयास्तेपा समितयो—मीलनानि तासा समागम—परिणामवशादेकीभवन समुदयसमितिसमागमस्तेन या परिमाणमात्रेति गम्यते। (वृ० प० २७६)

१३ एते च उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकादयोऽङ्गुलान्ता दश प्रमाणभेदा यथोत्तरमष्टगुणा। (वृ० प० २७७)

१४ सण्हसण्हिया इ वा, उड्ढरेणू इ वा,
'उड्ढरेणु' त्ति ऊद्र्ध्वाधस्तिर्यक्चलनधर्मोपलम्यो रेणु ऊद्र्ध्वरेणु। (वृ० प० २७७)

१५ तसरेणू इ वा,
त्र्यस्यति—पौरस्त्यादिवायुप्रेरितो गच्छति यो रेणु. स त्रसरेणुः। (वृ० प० २७७)

१६ रहरेणू इ वा, वालग्गे इ वा, लिक्खा इ वा, जूया इ वा, जवमज्झे इ वा, अगुले इ वा।
'रहरेणु' त्ति रथगमनोत्खातो रेणू रथरेणु.। (वृ० प० २७७)

१७. एतो नाम मात्र दस देख, आगल अठगुणा कहियै विशेख ।
अठ उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका नी, इक श्लक्ष्णश्लक्ष्णा जानी ॥
१८. आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका नी, एक ऊर्ध्वरेणू जिन वानी ।
आठ ऊर्ध्वरेणू नी जोय, एक त्रसरेणू अवलोय ॥
१९. आठ त्रसरेणू नी ताम, एक रथरेणू हुवै आम ।
आठ रथरेणू नी उदग्ग, एक देव-उत्तरकुरु वालग्ग ॥
२०. देव-उत्तरकुरु नर देख, त्यारा वालाग्र आठ नु पेख ।
हरिवर्ष रम्यक ना विशेख, नर नो हुवो वालाग्र एक ॥
२१ हरिवर्ष रम्यक नर जान, त्यारा वालाग्र आठ नु मान ।
हेमवंत एरण्य ना लहियै, नर नो इक वालाग्र कहियै ॥
२२. हेमवत एरण्य नर जोय, त्यारा वालाग्र आठ नु होय ।
पूर्व अपर विदेह ना ताय, नर नो इक वालाग्र थाय ॥
२३. पूर्व अपर विदेह नर जेह, त्यारा वालाग्र आठ नु तेह ।
एक लीख हुवै छै सोय, आठ लीख नी जू इक होय ॥
२४ अठ जू जवमध्य इक पेख, अठ जवमध्य अगुल एक ।
इण अगुल प्रमाणै जाण, षट अगुल पाओ पिछाण ॥
२५. बारै अगुल वेंहत आख्यात, अगुल चउवीस नो एक हाथ ।
अगुल अडताली कुक्षि सपेख, ए धनुष्य तणु अर्ध देख ॥

२६. छनू अगुल नो दड एक, वलि धनुष यूप सपेख ।
वलि नालिका यष्टि विशेख, अक्ष गाडा नो अवयव देख ॥

२७. वलि मूसल पिण अवलोय, छहु छनूं अगुल ना जोय ।
एणैं धनुष प्रमाणै पेख, दोय सहस्र धनुष गाऊ एक ॥
२८. च्यार गाऊ नो जोजन जाण, एहवै जोजन तणै प्रमाण ।
एक पालो वाटलो होय, जोजन लावो चोडो अवलोय ॥
२९. एक जोजन ऊचो ताय, त्रिगुणी जाझी परिधि कहाय ।
एक दिवस तणा वध्या वाल, दोय तीन दिवस ना न्हाल ॥
३०. उत्कृष्टपणै निशि सात, तेहना वाध्या वाल विख्यात ।
तेह वालाग्र नी बहु कोड, काना लगै चापी भरचो जोड ॥

**सोरठा**

३१. वालाग्र कोड विख्यात, पाठ माहे इहा आखिया ।
बृहत टवे असख्यात, न्याय कहू छू तेहनो ॥
३२. अनुयोगद्वार मझार, एक एक वालाग्र ना ।
खंड असख विचार, सूक्ष्म पल्य कही तसु ॥

१७ अट्ठ उस्सण्हसण्हियाओ सा एगा सण्हसण्हिया ।

१८ अट्ठ सण्हसण्हियाओ सा एगा उड्ढरेणू, अट्ठ उड्ढरेणूओ सा एगा तसरेणू ।

१९ अट्ठ तसरेणूओ सा एगा रहरेणू, अट्ठ रहरेणूओ से एगे देवकुरु-उत्तरकुरुगाण मणुस्साण वालग्गे

२०-२३ 'एव हरिवास-रम्मग-हेमवय-एरन्नवयाण, पुव्व-विदेहाण मणुस्साण अट्ठ वालग्गा सा एगा लिक्खा, अट्ठ लिक्खाओ सा एगा जूया

२४ अट्ठ जूयाओ से एगे जवमज्झे, अट्ठ जवमज्झा से एगे अगुले । एएण अगुलपमाणेण छ अगुलाणि पादो,

२५ बारस अगुलाइ विहत्थी, चउवीस अगुलाइ रयणी, अडयालीस अगुलाइ कुच्छी
'रयणि' त्ति हस्त । (वृ० प० २७७)

२६. छन्नउति अगुलाणि से एगे दडे इ वा, धणू इ वा, जूए इ वा नालिया इ वा, अक्खे इ वा
'नालिय' त्ति यष्टिविशेष 'अक्खे' त्ति शकटावयव-विशेष । (वृ० प० २७७)

२७ मुसले इ वा । एएण धणुप्पमाणेण दो धणुसहस्साइ गाउय,

२८ चत्तारि गाउयाइ जोयण । एएण जोयणप्पमाणेण जे पल्ले जोयण आयामविक्खभेण,

२९ जोयण उड्ढ उच्चत्तेण, त तिउण, सविसेस परिरएण—से ण एगाहिय-बेहिय-तेहिय,

३० उक्कोस सत्तरत्तप्परूढाण समट्ठे सनिचिए भरिए वालग्गकोडीण ।
'ससृष्ट' आकर्णभृतः । (वृ० प० २७७)

३२ से किं त सुहुमे उद्धारपलिओवमे ? ...... तत्थ ण एगमेगे वालग्ग असखेज्जाइ खडाइ कज्जइ । ...
(अणुओग० सू० ४२४)

३३. *नही वलै अगिन रै माहि, वायु हरै उडावै नांहि।
पाणी प्रवाहे सडिवो न थाय, किणहि सूं विध्वस न पाय।।

३३ ते ण वालग्गे नो अग्गी डहेज्जा, नो वातो हरेज्जा, नो कुच्छेज्जा, नो परिविद्ध सेज्जा,

**सोरठा**

३४ कुहै—सड़ै नहिं जेह, प्रचय विशेषपणै करी।
वलि शुषिर अभावपणेह, वायु ना असंभव थकी।।

३४ न कुथ्येयु. प्रचयविशेषाच्छुषिराभावाद्वायोरसम्भवाच्च नासारता गच्छेयुरित्यर्थ । (वृ० प० २७७)

३५ *नहिं होवै दुर्गंध पेख, सौ-सौ वर्ष खंड इक-एक।
जेतलै काले करि जेह, पालो क्षीण थयो सहु तेह।।

३५ नो पूतित्ताए हव्वमागच्छेज्जा।
तओ ण वाससए-वाससए गते एगमेग वालग्ग अवहाय जावतिएण कालेण से पल्ले खीणे

३६ निरए रजरहित ज्यूं जाण, सूक्ष्म वालाग्र रहित पिछाण।
धान्य रज रहित कोठागार, तेहनी परै एह विचार।।

३६ निरए
निर्गतरज कल्पसूक्ष्मतरवालाग्रोऽपकृष्टधान्यरज-कोष्ठागारवत्। (वृ० प० २७७)

३७ निम्मले मलरहित ज्यूं रीत, अतिहि सूक्ष्म रजरहीत।
पूंज्यां विमल थयो कोठागार, तेहनी परै एह विचार।।

३७ निम्मले
विगतमलकल्पसूक्ष्मतरवालाग्र प्रमार्जनिकाप्रमृष्ट-कोष्ठागारवत्। (वृ० प० २७७)

३८. निट्ठिए नो अर्थ अवलोय, वालाग्र खड नीठ्या सोय।
विशिष्ट यत्न पूंज्यो कोठागार, तेहनी परै ए अवधार।।

३८ निट्ठिए
अपनेयद्रव्यापनयमाश्रित्य निष्ठा गत विशिष्टप्रयत्न-प्रमार्जितकोष्ठागारवत्। (वृ० प० २७७)

३९. निल्लेवे निर्लेप अत्यंत, सर्व वालाग्र खध काढत।
भीत्यादिक धान्य लेपन होय, तेह कोठागार जिम जोय।।

३९ निल्लेवे
अत्यन्तमश्लेषात्तन्मयता गत वालाग्रापहारादपनीन-भीत्यादिगतधान्यलेपकोष्ठागारवत्। (वृ० प० २७७)

४०. अवहडे सहु वालाग्र खड, लेप अपहरवा थी सुमड।
इण कारण थी सपेख, विशुद्धे शुद्ध थयो विशेख।।

४० अवहडे विसुद्धे भवइ।
निःशेषवालाग्रलेपापहारात्। (वृ० प० २७७)

४१. सहु शब्द एकार्थ तेम, इहा वृत्तिकार कह्यु एम।
कोड़ा वालाग्रे पालो भरंत, व्यवहारिक पल्य कहंत।।

४१ एकार्थाश्चैते शब्दा व्यावहारिक चेदमद्धापल्योपमम्। (वृ० प० २७७)

४२. इक-इक वालाग्र खड असख्यात, तिण सू पालो भरै विख्यात।
इक-इक खड सौ-सौ वर्ष गहियै, सूक्ष्म अद्धा पल्य ते कहियै।।

४२ इदमेव यदाऽसंख्येयखण्डीकृतैकैकवालाग्रभृतपल्याद् वर्षशते-वर्षशते खण्डशोऽपोद्धार क्रियते तदा सूक्ष्म-मुच्यते। (वृ० प० २७७)

४३. उद्धार अद्धा क्षेत्र पल्ल, व्यवहारिक सूक्ष्म अदल्ल।
वहु विस्तार अनुयोगद्वार[1], इहा नाम मात्र अधिकार।।

४३ समये समयेऽपोद्धारे तु द्विधैवोद्धारपल्योपम भवति, तथा तैरेव वालाग्रैर्ये स्पृष्टा प्रदेशास्तेषा प्रतिसमया-पोद्धारे य कालस्तद्व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम, पुन-स्तैरेवासख्येयखण्डीकृतै स्पृष्टास्पृष्टाना तथैवापोद्धारे य· कालस्तत्सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपमम्। (वृ० प० २७७)

४४. एतो कह्यो पल्योपम जोय, दस कोडाकोडि पल्य सोय।
एक सागरोपम प्रमाण, एह प्रमाण करि पहिछाण।।

४४ से त्तं पलिओवमे।
एएसि पल्लाण, कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया।
त सागरोवमस्स उ, एक्कस्स भवे परिमाण।।

*लय : विना रा भाव सुण गूजे
१. (सू० ४१९-४२४)

४५. च्यार सागर कोडाकोड, काल सुषम-सुषमा जोड ।
कोडाकोडि सागर वलि तीन, काल सुषमा युगल[1] सुचीन ॥

४६. कोडाकोडि सागर जे दोय, काल सुपमदुपमा होय ।
तृतीय आरो ते हुत, पहिला युगल आदि जिन अत ॥
४७ कोडाकोडि सागर इक तास, ऊणा सहस वयालीस वास ।
काल दुष्षम-सुषमा विचार, जिन तेवीस चउथै आर ॥
४८ इकवीस सहस जे वास, काल दुष्पमा पचम जास ।
इकवीस सहस वर्ष जोय, काल दुष्पम-दुषमा होय ॥
४९. अवसर्प्पिणी काल आख्यात, उत्सर्प्पिणी नी हिव वात ।
इकवीस सहस वर्ष न्हाल, कहियै दुष्पम-दुपमा काल ॥
५०. वलि वर्ष इकवीस हजार, काल दुष्षम दूजो आर ।
इणमे साधु श्रावक नहि थाय, वीजू एह पचम जिसो पाय ॥
५१. कोडाकोडि सागर इक तास, ऊणा सहस वयालीस वास ।
दूषम-सुषमा तीजो आर, जिन जन्म तेवीस उदार ॥
५२. कोडाकोडि सागर जे दोय, काल सुपम-दुष्पमा होय ।
चउथो आरो चरम जिन आदि, पछै युगल धर्म सुख साधि ॥
५३. कोडाकोडि सागर वलि तीन, काल सुषमा युगल सुचीन ।
च्यार सागरोपम कोडाकोड, काल सुषम-सुपमा जोड ॥
५४. कोडाकोडि सागर दस लाधि, अवसर्प्पिणी काल छै आदि ।
कोडाकोडि सागर दस देख, उत्सर्प्पिणी काल सपेख ॥
५५. कोडाकोडि सागर वीस सोय, अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी होय ।
विहुं मिलिया काल चक्र एक, वर ज्ञान नेत्रे करि देख ॥

## दूहा

५६. काल तणा अधिकार थी, काल स्वरूप कहत ।
गणधारक गोयम गणी, प्रवर प्रश्न पूछत ॥

५७. *जंबूद्वीप विषे जिनराय ! एह अवसर्प्पिणी काल ताय ।
सुपमा-सुपम आरा मे सुसाधि, उत्कृष्ट अर्थ आउखादि ॥
५८. उत्तमार्थ प्राप्त कह्यु तेह, तथा उत्तम काष्ठा प्राप्त एह ।
प्रकृष्ट अवस्था आप्त, तिको उत्तम काष्ठा प्राप्त ॥

५९. भरत नामा खेत्र नो उदार, केहवो आकार भाव प्रकार ?
जिन कहै बहु सम रमणीक, भूमिभाग हुतो तहतीक ॥

६०. यथानाम दृष्टांत परीखो मादल मुखपुट तेह सरीखो ।
उत्तरकुरु नी परै सहु वात, जीवाभिगम सूत्रे आख्यात ॥

*लय : विना रा भाव सुण गूजै
१. यौगलिक काल

४५ एएण सागरोवमपमाणेणं चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसम-सुसमा, तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमा,
४६ दो सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसम-दूसमा,

४७ एगा सागरोवमकोडाकोडी वायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिया कालो दूसम-सुसमा,
४८ एक्कवीस वाससहस्साइ कालो दूसमा, एक्कवीस वाससहस्साइ कालो दूसम-दूसमा ।
४९ पुणरवि उस्सप्पिणीए एक्कवीस वाससहस्साइ कालो दूसम-दूसमा ।
५० एक्कवीस वाससहस्साइ कालो दूसमा ।

५१ एगा सागरोवमकोडाकोडी वायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिया कालो दूसम-सुसमा ।
५२ दो सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसम-दूसमा ।

५३ तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमा, चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसम-सुसमा ।
५४ दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी, दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणी ।
५५ वीस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी उस्सप्पिणी य । (श० ६।१३४)

५६ कालाधिकारादिदमाह— (वृ० प० २७७)

५७,५८ जबुद्दीवे ण भते ! दीवे इमीसे ओसप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए उत्तिमपट्ठत्ताए,
उत्तमान्—तत्कालापेक्षयोत्कृष्टानर्थान्—आयुष्कादीन् प्राप्ता उत्तमार्थप्राप्ता उत्तमकाष्ठा प्राप्ता वा—प्रकृष्टावस्था गता तस्याम् । (वृ० प० २७७)
५९ भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभाव-पडोयारे होत्था ?
गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था ।
६० से जहानामए—आलिगपुक्खरे ति वा, एव उत्तरकुरुवत्तव्वया नेयव्वा ।
'आलिगपुक्खरे' त्ति मुरजमुखपुट ''''' उत्तरकुरुवक्तव्यता च जीवाभिगमोक्तैव दृश्या
(जीवा० प० ३।५७८-६३१) । (वृ० प० २७७)

६१. जाव वेसै सूवै कीडा करिवो, एतला लगै सर्व उचरिवो ।
तेह काल विषे पहिछाण, भरतखेत्र विषे इम जाण ॥

६१ जाव तत्थ ण वहवे भारया मणुस्सा मणुस्सीओ य आसयति सयति चिट्ठति निसीयति तुयट्टति हसति रमति ललति ।

६२. तत्थ-तत्थ तिहा-तिहा ताहि भरत ना खंड-खड रै मांहि ।
देशे-देशे नो अर्थ विचार, खड-खड ना अश मझार ॥

६२. तीसे ण समाए भारहे वासे तत्थ तत्थ देसे-देसे
तत्र तत्र भारतस्य खण्डे खण्डे 'देसे देसे' खण्डांशे खण्डाशे । (वृ० प० २७८)

६३. तहि-तहि नों अर्थ कहेज, देश-देश ना अश विषेज ।
घणा उद्दाल कोद्दालादि, वारू वृक्ष विशेष समाधि ॥

६३ तहि तहि वहवे उद्दाला कोद्दाला
'तहि तहि' ति देशस्यान्ते देशस्यान्ते उद्दालकादयो वृक्षविशेषा । (वृ० प० २७८)

६४. जाव कुस विकुस विशुद्ध रूख मूल हुता अविरुद्ध ।
कुस—दर्भ, विकुस—तृण थूल, तेणे करी रहित तरु-मूल ॥

६४. जाव कुस-विकुस-विसुद्धरुक्खमूला
कुशा—दर्भा विकुशा—वल्वजादय. तृणविशेषास्तैर्विशुद्धानि—तदपेतानि वृक्षमूलानि—तदधोभागा येषा ते तथा । (वृ० प० २७८)

६५. जाव छहविध मनुष्य वसंता, पद्मगध कमलगधवता ।
मृगगधा कस्तूरी सरीख, तनु-सुगध वास तहतीक ॥

६५ जाव छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जित्था, त जहा—पम्हगधा, मियगधा,
'पम्हगध' त्ति पद्मसमगन्धय 'मियगध' त्ति मृगमदगन्धय. । (वृ० प० २७८)

६६. अममा ममत करीनै रहीत, तेयतली—तेज-रूप सहीत ।
सहा पचमो नाम पिछाण, समर्था एह अर्थ सुजाण ॥

६६ अममा, तेतली, सहा,
'अमम' त्ति ममकाररहिता., 'तेयतलि' त्ति तेजश्च तल च रूप येपामस्ति ते तेजस्तलिन , 'सह' त्ति सहिष्णव समर्था । (वृ० प० २७८)

६७. सणचारी मदगतिवता, उत्सुक भावरहित चालना ।
सेव भते ! सेव भते ! ताम, इम वोलै गोतम स्वाम ॥
६८. छठा शतक नों सातमों न्हाल, कही एकसौ सातमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय, 'जय-जश' सुख सपति पाय ॥

६७. सणिचारी (श० ६।१३५)
सेवं भते ! सेव भते ! त्ति । (श० ६।१३६)
'सणिचारे' त्ति शनै —मन्दमुत्सुकत्वाभावाच्चरन्तीत्येवशीला शनैश्चारिण । (वृ० प० २७८)

षष्ठशते सप्तमोद्देशकार्थ. ॥६।७॥

## ढाल १०८

### दूहा

१. सप्तमुद्देशा नै विषे, भरत स्वरूप विशेख ।
अष्टमुद्देशे हिव अखू, पृथ्वी स्वरूप पेख ॥
२. प्रभु ! पृथ्वी केती कही ? जिन कहै पृथ्वी अट्ठ ।
रत्नप्रभा यावत वलि, इसिप्पभारावट्ठ ॥

१ सप्तमोद्देशके भारतस्य स्वरूपमुक्तमष्टमे तु पृथिवीना तदुच्यते— (वृ० प० २७८)

२ कति ण भते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, त जहा—रयणप्पभा जाव ईसीपब्भारा । (श० ६।१३७)

*जय जय ज्ञान जिनेन्द्र नो रे लाल (ध्रुपदं)

३ ए रत्नप्रभा पृथ्वीतले रे, छै प्रभुजो ! घर जेह रे,
जिनेन्द्र देव !
घर आकारे हाट छै रे लाल, अर्थ समर्थ नहिं एह रे,
सुजाण सीस !

३. अत्थि ण भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे गेहा इ वा ?
गेहावणा इ वा ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ६।१३८)

४ ए रत्नप्रभा पृथ्वी तले, छै भगवतजी ! ग्राम ?
जाव तिहा सन्निवेश छै ? अर्थ समर्थ न आम ॥

४. अत्थि ण भंते ! इमीसे रयणप्पभाए अहे गामा इ वा ?
जाव सण्णिवेसा इ वा ?
णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ६।१३९)

५. छै प्रभु ! रत्नप्रभा तले, बादल जे महामेह।
पुद्गल मे स्नेह ऊपजै, मिलि वर्षा वर्षेह ?

५ अत्थि ण भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे ओराला बलाहया संसेयंति ? समुच्छंति ? वासं वासंति ?

६. जिन भाखै हता अत्थि, तीनूंई पकरत।
देव वैमानिक तिण करै, असुर नाग थी हुंत ॥

६ हंता अत्थि। तिण्णि वि पकरेंति—देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, नागो वि पकरेति।
(श० ६।१४०)

७. छै प्रभु ! रत्नप्रभा तले, बादर घन गर्जार ?
जिन भाखै हता अत्थि, तीनूइ करै तिवार ॥

७ अत्थि ण भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बादरे थणियसद्दे ?
हंता अत्थि। तिण्णि वि पकरेंति। (श० ६।१४१)

८ छै प्रभु ! रत्नप्रभा तले, बादर अग्नीकाय ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नही, णण्णत्थ विग्रहगति पाय ॥

८ अत्थि ण भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे बादरे अगणिकाए ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, नन्नत्थ विग्गहगतिसमावन्नएण। (श० ६।१४२)

**सोरठा**

९ बादर अग्नी जान, मनुष्यक्षेत्र माहेज हुवै।
ते माटै पहिछान, निषेध कीधो एहनो ॥

९ ननु यथा बादराग्नेर्मनुष्यक्षेत्र एव सद्भावान्निषेध इहोच्यते। (वृ० प० २७९)

१० तो बादर-पृथ्वीकाय, पृथ्व्यादिक स्वस्थान अछै।
पिण रत्नप्रभा-तल नाय, तेहनो निषेध किम नहिं ?

१० एव बादरपृथिवीकायस्यापि निषेधो वाच्य स्यात् पृथिव्यादिष्वेव स्वस्थानेषु तस्य भावादिति।
(वृ० प० २७९)

११. सत्य, किंतु इह स्थान, अभाव जिण-जिण वस्तु नो।
तिण-तिण नो पहिछान, निषेध सहु नो नहिं कियो ॥
१२. रत्नप्रभा-तल वेद, मनुष्य मात्र अभाव छै।
न कियो इहा निषेध, तिम बादर-पृथ्वी तणो ॥

११-१२ सत्य, किन्तु नेह यद्यत्र नास्ति तत्तत्र सर्वं निषिध्यते मनुष्यादिवद् (वृ० प० २७९)

१३ जेहनी पूछा कीध, तेहनो इहा निषेध छै।
विचित्र सूत्रगति सीध, तिणसू निषेध नवि कियो ॥

१३ विचित्रत्वात् सूत्रगतेरन्नोऽमतोऽपीह पृथिवीकायस्य न निषेध उक्त। (वृ० प० २७९)

१४. उदक वनस्पतिकाय, घनोदध्यादिक भाव कर।
तेहनो सभव थाय, तिण सू तास निषेध नहिं ॥

१४ अप्कायवायुवनस्पतीना त्विह घनोदध्यादिभावेन भावान्निषेधाभाव सुगम एवेति। (वृ० प० २७९)

१५ *छै प्रभु ! रत्नप्रभा-तले, चदिम यावत तार।
जिन कहै अर्थ तुम्हे कह्यो, समर्थ नहिं छै लिगार ॥

१५ अत्थि ण भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे चदिम जाव तारारूवा (स० पा०)।
णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ६।१४३)

---

*लय : धीज करै सीता सती रे लाल

१६. छै प्रभु ! रत्नप्रभा तले, चंद्रादि क्रांति शोभत ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नही, वलि गोयम पूछत ॥

१७. रत्नप्रभा नै विषे कह्यो, तिम सगलो विस्तार ।
बीजी पृथ्वी नै विषे, कहिवो सर्व प्रकार ॥

१८. इम तीजी पृथ्वी तले, णवर देव करत ।
असुरकुमार करै वलि, नाग थकी नहिं हुत ॥

**सोरठा**

१९. तीजी पृथ्वी हेठ, नागकुमार करै नही ।
इण पद करकै नेठ, तास गमन नहिं संभवै ॥

२० *इम चउथी पृथ्वी तले, णवरं वैमानिक एह ।
बादल प्रमुख सहू करै, असुर नाग न करेह ॥

**सोरठा**

२१. 'चउथी नरक मझार, असुर तिहां जावै नही ।
ते माटै सुविचार, गमन वैमानिक नूज छै ॥

२२. पद्म-पुराण मझार, सीतेंद्र चउथी गयो ।
ते मिलतो सुविचार, एह वचन अवलोकता' ॥
(ज० स०)

२३. *हेठली सहु पृथ्वी तले, देव मेघादि करत ।
असुर नाग न करै तिहां, तास गमन नहिं हुत ॥

२४. छै प्रभु ! सोधर्म ईशाण नै, नीचै घरादिक जेह ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नही, वलि गोयम पूछेह ॥

२५. महामेह बादल छै प्रभु ! हंता कहै जिनराय ।
देव असुर दोनूं करै, नाग थकी न कराय ॥

**सोरठा**

२६. चमर तणी पर जोय, असुर तिहा जावै अछै ।
नाग न जावै कोय, अशक्त छै ते कारणै ॥

२७. गाज शब्द पिण एम, देव असुर दोनू करै ।
नाग करै नहिं तेम, सोधर्म नै ईशान तल ॥

२८. *प्रभु ! बादर पृथ्वीकाय छै, बादर अग्नीकाय ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नही, णण्णत्थ विग्रहगति पाय ॥

*लय : बीज करै सीता सती रे लाल

१६. अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे चंदाभा ति वा ? सूराभा ति वा ?
णो इणट्ठे समट्ठे ।

१७ एवं दोच्चाए पुढवीए भाणियव्वं,

१८ एवं तच्चाए वि भाणियव्वं, नवरं—देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, नो नागो पकरेति ।

१९ 'नो नागो' त्ति नागकुमारस्य तृतीयाया पृथिव्या अधोगमनं नास्तीत्यत एवानुमीयते ।
(वृ० प० २७९)

२० चउत्थीए वि एवं, नवरं—देवो एक्को पकरेति, नो असुरो नो नागो ।

२३ एवं हेट्ठिल्लासु सव्वासु देवो पकरेति ।
(श० ६।१४४)

चतुर्थ्यादीनामधोऽसुरकुमारनागकुमारयोर्गमनं नास्तीत्यनुमीयते । (वृ० प० २७९)

२४ अत्थि णं भंते ! सोहम्मीसाणाणं कप्पाणं अहे गेहा इ वा ? गेहावणा इ वा ?
णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ६।१४५)

२५ अत्थि णं भंते ! ओराला बलाहया ?
हंता अत्थि ।
देवो पकरेति, असुरो वि पकरेति, नो नागो ।

२६ सौधर्मेशानयोस्त्वधोऽसुरो गच्छति चमरवत्, न नागकुमारः अशक्तत्वात् । (वृ० प० २७९)

२७. एवं थणियसद्दे वि । (श० ६।१४६)

२८. अत्थि णं भंते ! बादरे पुढवीकाए ? बादरे अगणिकाए ?
णो इणट्ठे समट्ठे, नन्नत्थ विग्गहगतिसमावन्नएणं ।
(श० ६।१४७)

### सोरठा

२९. 'कल्प विषे रत्नादि, तेह तणी पूछा नथी ।
प्रश्न कल्प तल वादि, तल पिण अतर रहित नू ॥
३०. आगल पिण इम ताहि, कल्प विषे अप आदि है ।
तेहनी पूछा नाहि, तल पूछा सहु स्थानके ॥
३१. वादर पृथ्वी तेज, सुधर्मा नै ईशाण तल ।
प्रगट निषेध कहेज, अस्वस्थानपणा थकी ॥
३२. वनस्पती अप वाय, तास निषेध कियो नथी ।
उदधि प्रतिष्ठित ताय, अप[1] वण[2] ना सभव थकी ॥
३३. वादर वाऊकाय, सर्व लोक आकाश ना ।
छिद्र विषे कहिवाय, तिण सू ते पिण सभवै ॥
३४. मनुष्यक्षेत्र रै माय, वादर अग्नि स्वभाव छै ।
तिण कारण कहिवाय, दोनू कल्प तले नथी ॥
३५. विहु कल्प तल ताहि, वादर पृथ्वी नो तिहा ।
स्व स्थानक छै नाहि, तिण सू निषेध तेहनो ॥
३६. तिण कारण पहिछान, वादर विहूं निषेधिया ।
जाता वीजे स्थान, विग्रहगतिया पामियै' ॥
(ज० स०)

३७ *छै प्रभु ! चद्रादिक तिहा, अर्थ समर्थ न थाय ।
छै प्रभु ! ग्रामादिक वली, जिन कहै ए पिण नाय ॥

३७ अत्थि ण भते ! च दिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारा-रूवा ?
णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ६।१४८)
अत्थि ण भते ! गामा इ वा ? जाव सण्णिवेसा इ वा ?
णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ६।१४९)

३८. छै प्रभु ! विहुं कल्प नै तलै, चद्रादिक नी क्राति ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नही, तिण मे म जाणो भ्राति ॥
३९. सनतकुमार माहेद्र नै, इमहिज णवर विशेख ।
देव एक वर्षादि करै, एव ब्रह्म पिण देख ॥

३८ अत्थि ण भते ! चदाभा ति वा ? सूराभा तिवा ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।
३९ एव सणकुमार-माहिंदेसु, नवर—देवो एगो पकरेति ।
एव वभलोए वि ।

### सोरठा

४०. तृतीय तुर्य ब्रह्म सोय, घनवाय आधारे अछै ।
तसु तल अप किम होय ? वनस्पति वलि किम हुवै ?
४१. सभव तास जणाय, तमस्काय सद्भाव थी ।
अतिदेश थकी कहिवाय, वृत्ति विषे ए न्याय छै ॥

४०,४१ इहातिदेशतो वादराव्वनस्पतीना सम्भवोऽनुमीयते स च तमस्कायसद्भावतोऽवसेय इति ।
(वृ० प० २७९)

४२ *ब्रह्म ऊपर जे कल्प छै, तेहनै तल पिण एम ।
वारमा कल्प लगै करै, देव वर्षादिक तेम ॥
४३ वादर अप अग्नि वणस्सइ, पूछेवो त्रिहु जाण ।
अण्ण त चेव पाठ छै, अन्य तिमज पहिछाण ॥

४२, एव वभलोगस्स उवरिं सव्वेहिं देवो पकरेति ।
'सव्वेहिं' ति अच्युत यावदित्यर्थ । (वृ० प० २७९)
४३ पुच्छियव्वो य वादरे आउकाए, वादरे अगणिकाए, वादरे वणस्सइकाए । अण्ण त चेव ।
(श० ६।१५०)

---

*लय : धीज करै सीता सती रे लाल
१. अप्काय   २ वनस्पतिकाय ।

## सोरठा

४४. अण्ण त चेव वाय, अन्य तिमज ए वच थकी।
अप अग्नि वणस्सइकाय, निषेध ए तीनू तणो॥

४४. 'अन्न त चेव' त्ति वचनान्निषेधश्च।
(वृ० प० २७६)

४५. छठो सातमो जोय, वलि सहसारज आठमो।
अप वायू अवलोय, उभय प्रतिष्ठित ए त्रिहु॥

४६. ए त्रिहु तल घनवाय, अतर-रहित अछै तिको।
तिण सू तसु तल ताय, अप नै वनस्पती नही॥

४७. नवमा थी अवधार, अष्टादश सुरलोक जे।
आकाश तणे आधार, तसु तल नहि अप वणस्सइ॥

४८. तथा ग्रैवेयक आदि, ईसिपब्भारा अत लग।
पूर्वे कह्या गृहादि, एहनै पिण कहिवा तिमज॥

४९. इहा वाचना माहि, न कह्या तो पिण ते सहु।
निषेध करिवा ताहि, एह अर्थ छै वृत्ति मे॥

४८,४९ तथा ग्रैवेयकादीषत्प्राग्भारान्तेषु पूर्वोक्त सर्व गेहादिकमधिकृतवाचनायामनुक्तमपि निषेधतोऽध्येयमिति। (वृ० प० २७६)

५०. हिव पृथ्वी अप आदि, जे जिहा भाखी ते प्रतै।
कहिवा अर्थ सुसाधि, सग्रहणी गाथा हिवै॥

५० अथ पृथिव्यादयो ये यत्राध्येतव्यास्ता सूत्रसग्रहगाथयाऽऽह— (वृ० प० २७६)

५१. तमस्काय कहिवाय, प्रकरण पूर्व कह्या विषे।
अनतरोक्तज ताय, सोधर्मादिक पचके॥

५१ तमुकाए कप्पपणए,
'तमुकाए' त्ति तमस्कायप्रकरणे प्रागुक्ते 'कप्पपणए' त्ति अनन्तरोक्तसौधर्मादिदेवलोकपञ्चके।
(वृ० प० २७६)

५२. अग्नी पृथ्वीकाय, वादर नी पूछा किया।
जिन कहै ए विहु नाय, णण्णत्थ विग्रहवत हुवै॥

५२ अगणी पुढवी य
अत्थि ण भते ! वादरे पुढविकाए वादरे अगणिकाए?
नो इणट्ठे समट्ठे, नण्णत्थनिग्गहगतिसमावन्नएण।
(वृ० प० २७६)

५३. अग्निकाय पहिछाण, रत्नप्रभादिक नै तले।
पूछा प्रमुखज जाण, जिन कहै अर्थ समर्थ नही॥

५३ अगणि-पुढवीसु।

५४. जे वादर अपकाय, तेऊ वनस्पती तणी।
पूछा कीधा ताय, उत्तर एम जणाय छै॥

५५. ब्रह्म ऊपरै तेह, कल्प अछै तेहनै तले।
तीनू ए न कहेह, इण गाथा नै न्याय कर॥

५६. तथा वादर अप्काय, तेऊ वनस्पती वली।
कृष्णराजि रै माय, ए तीनू कहियै नही।

५४-५६. आऊ तेऊ वणस्सई, कप्पुवरिमकण्हराईसु॥
(सगहणी-गाहा ६।१५०)
अत्थि णं भते ! वादरे आउकाए वायरे तेउक्काए वायरे वणस्सइकाए?
णो इणट्ठे समट्ठे। इत्यादिनाऽभिलापेन, केषु? इत्याह—'कप्पुवरिम' त्ति कल्पपञ्चकोपरितनकल्पसूत्रेषु, तथा 'कण्हराईसु' त्ति प्रागुक्ते कृष्णराजीसूत्र इति। (वृ० प० २७६)

५७. ब्रह्म उपरला जाण, कल्प अछै तेहनै तले ।
अप तेऊ पहिछाण, वनस्पती वर्जी इहा ॥
५८. लतक प्रमुखज तीन, अप वायू आधार छै ।
तो किण न्याय सुचीन, वर्जी अप नै वणस्सई ॥
५९. त्रिहु कल्प तल वाय, अतर-रहित अछै तिहा ।
तसु तल अप इण न्याय, अप वणस्सई निषेध ह्वै ॥
६०. नवम कल्प थी सोय, सहु आकाश प्रतिष्ठिता ।
ते माटे अवलोय, ए त्रिहु तणो निषेध है ॥

५७-६० इह च ब्रह्मलोकोपरितनस्थानानामधो योऽव्वनस्पतिनिषेध· स यान्यव्वायुप्रतिष्ठितानि तेपामव आनन्तर्येण वायोरेव भावादाकाशप्रतिष्ठितानामाकाशस्यैव भावादवगन्तव्य अग्नेस्त्वस्वस्थानादिति । (वृ० प० २७९)

६१. कह्या वादर अप आदि, आयु-बध छतैज छै ।
ते माटे हिव साधि, सूत्र आयु-बध नो प्रवर ॥

६१ अनन्तर वादराप्कायादयोऽभिहितास्ते चायुर्वन्धे सति भवन्तीत्यायुर्वन्धसूत्रम्— (वृ० प० २७९)

६२. *कतिविध प्रभु! आयु-बध कह्यो ? जिन भाखै आयु-बध ।
षट प्रकारे परूपियो, कहियै तेहनी सध ।

६२ कतिविहे ण भते ! आउयवधे पण्णत्ते ?
गोयमा ! छव्विहे आउयवधे पण्णत्ते, त जहा—

### यतनी

६३. जाति नाम निहत्त सुसच, जाति एकेंद्रियादिक पच ।
तेहिज नाम कहिता अवलोय, नाम कर्म नी प्रकृति जोय ॥

६३ जातिनामनिहत्ताउए,
जाति —एकेन्द्रियजात्यादि पञ्चधा सैव नामेति—नामकर्मण । (वृ० प० २८०)

६४. तसु उत्तर प्रकृति विशेख, अथवा नाम कहिता वृत्ति लेख ।
जे जीव तणा परिणाम, तिको जाति नाम छै ताम ॥
६५. तेणे सघाते निधत्त निषेक, कर्म पुद्‌गल नो जे पेख ।
समय-समय पहिछाण, अनुभवनार्थे रचना जाण ॥
६६ एणे रचनाइ थाप्यो जे आयु, ते जाति नाम निहत्तायु ।
ए प्रथम आयु-बध कहियै, हिवै बीजा नो लेखो लहियै ॥

६४-६६. उत्तरप्रकृतिविशेषो जीवपरिणामो वा । तेन सह निधत्त—निषिक्त यदायुस्तज्जातिनामनिधत्तायु, निषेकश्च कर्मपुद्‌गलाना प्रतिसमयमनुभवनार्थं रचनेति । (वृ० प० २८०)

६७. गति नाम निहत्त आयु धार, गति नारकादिक जे च्यार ।
तेहिज नाम कर्म नी देख, कही उत्तर प्रकृति विशेख ॥
६८. तेणे सघाते निधत्त कहाइ, अनुभवन कर्म रचनाइ ।
एणे प्रकारे थाप्यो जे आयु, ते गतिनाम निहत्तायु ॥

६७,६८ गतिनामनिहत्ताउए,
गति —नरकादिका चतुर्धा शेष तथैव । (वृ० प० २८०)

६९ स्थिति नाम निहत्तायु जोय, स्थिति ते रहिवू होय ।
किणहि वंछित भव रै माय, जीव कर्मकर्ता कहिवाय ॥
७०. तथा आयु कर्म कर जेह, रहिवू ते स्थिति कहेह ।
तेहिज नाम परिणाम ते धर्म, तिको स्थिति नाम ए मर्म ॥

६९,७० ठितिनामनिहत्ताउए,
स्थितिरिति यत्स्थातव्य क्वचिद् विवक्षितभवे जीवेनायु कर्मणा वा सैव नाम—परिणामो धर्म स्थितिनाम । (वृ० प० २८०)

७१. तिण करिकै विशिष्ट निधत्त, अनुभवन नी रचना उपत्त ।
जेह आयु कर्म दल कहायु, ते स्थितिनामनिहत्तायु ॥

७१ तेन विशिष्ट निधत्त यदायुर्दलिकरूप तत् स्थितिनामनिधत्तायु. । (वृ० प० २८०)

७२ अथवा स्थिति रूप जे जाण, नाम कहिता कर्म पहिछाण ।
ते स्थिति नाम छै ताम, नाम शब्दे कर्म सहु ठाम ।
७३. तेणे साथ निषेक, भोगविवा नी रचना सपेख ।
इह रीत थाप्यो जे आयु, ते स्थितिनामनिहत्तायु ॥

७२,७३ नामशब्द सर्वत्र कर्मार्थो घटत इति स्थितिरूप नाम—नामकर्म्म स्थितिनाम तेन सह निधत्त यदायुस्तत्स्थितिनामनिधत्तायुरिति । (वृ० प० २८०)

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल

७४. अवगाहणा नाम ते ताय, शरीर औदारिकादि कहाय।
तेहनु नाम औदारिक आद, शरीर नाम कर्म ते लाध॥
७५. तेह अवगाहणा नाम जाण, अथवा अवगाहणा रूप पिछाण।
नाम कहिता परिणाम विचार, तेह अवगाहणा नाम धार॥

७४,७५ ओगाहणानामनिहत्ताउए,
अवगाहते यस्यां जीव. साऽवगाहना—शरीर औदारिकादि तस्या नाम—औदारिकादिशरीरनामकर्म्मेत्यवगाहनानाम अवगाहनारूपो वा नाम—परिणामोऽवगाहनानाम। (वृ० प० २८०)

७६. तेणे सघाते निधत्त जे आयु, ते अवगाहणानामनिधत्तायु।
ए चउथो आयु-बध जोय, हिवै पांचमो कहियै सोय॥

७६ तेन सह यन्निधत्तमायुस्तदवगाहनानामनिधत्तायु। (वृ० प० २८०)

७७. प्रदेशनामनिहत्तायु, प्रदेश आयु द्रव्य कहायु।
नाम तथाविध परिणत्ति, तेह प्रदेश नाम उप्पत्ति॥

७७ पएसनामनिहत्ताउए,
प्रदेशाना—आयु' कर्म्मद्रव्याणा नाम—तथाविधा परिणति प्रदेशनाम। (वृ० प० २८०)

७८ तथा प्रदेशरूपज ताय, नाम कहिता कर्म कहिवाय।
तेणे साथ निधत्त जे आयु, ते प्रदेशनामनिधत्तायु॥

७८ प्रदेशरूप वा नाम—कर्मविशेष इत्यर्थ प्रदेशनाम तेन सह निधत्तमायुस्तत्प्रदेशनामनिधत्तायुरिति। (वृ० प० २८०)

७९. अनुभागनामनिहत्तायु, अनुभाग विपाक जे आयु।
तेहिज नाम परिणाम पिछाण, ते अनुभाग नाम जाण॥

७९ अणुभागनामनिहत्ताउए।
अनुभाग—आयुर्द्रव्याणामेव विपाकस्तल्लक्षण एव नाम—परिणामोऽनुभागनाम। (वृ० प० २८०)

८०. तथा अनुभाग रूप जाण, नाम कहिता कर्म पहिछाण।
तेणे साथ निधत्त जे आयु, ते अनुभागनामनिहत्तायु॥

८० अनुभागरूप वा नामकर्म अनुभागनाम तेन सह निधत्त यदायुस्तदनुभागनामनिधत्तायुरिति। (वृ० प० २८०)

### सोरठा

८१. इहा कोइ प्रश्न आख्यात, जात्यादि नाम कर्म करि।
कह्या आयु सघात, किण अर्थे ए वारता?

८१ अथ किमर्थं जात्यादिनामकर्म्मणाऽऽयुर्विशेष्यते? (वृ० प० २८०)

८२ तसु उत्तर कहिवाय, प्रधानपणो आयू तणो।
देखाडिवा नै ताय, आयु सहित जात्यादिक॥

८२ उच्यते, आयुष्कस्य प्राधान्योपदर्शनार्थम्। (वृ० प० २८०)

८३. नरकादिक नो जाण, आयु उदय पामे छते।
जात्यादिक पहिछाण, नाम कर्म नो उदय छै॥

८३ यस्मान्नारकाद्यायुरुदये सति जात्यादिनामकर्म्मणामुदयो भवति। (वृ० प० २८०)

८४ नरकादि आयू लाधि, प्रथम समय जे वेदतो।
पचेंद्रिय जात्यादि, तसु सहचारी उदय छै॥

८४ नारकायु प्रथमसमयमवेदन एव नारका उच्यन्ते तत् सहचारिणा च पञ्चेन्द्रियजात्यादिनामकर्मणामप्युदय इति। (वृ० प० २८०)

८५. *इमहिज नारक नै कह्यो, छवविध आयू बध।
यावत वैमानिक लगै, ए दडक सर्व सबध॥

८५ दडओ जाव वेमाणियाण। (श० ६।१५१)

### दूहा

८६. कर्म विशेष कह्यो हिवै, कर्म-विशेषित जीव।
नरकादिक जे पद तणां, दडक बार कहीव॥

८६ अथ कर्म्मविशेषाधिकारात्तद्विशेषिताना जीवादिपदाना द्वादश दण्डकानाह— (वृ० प० २८०)

### सोरठा

८७ हे प्रभु! स्यू बहु जीव, जातिनाम निधत्ता अछै?
एहनो अर्थ अतीव, चित्त लगाई साभलो॥

८७ जीवा ण भते! किं जातिनामनिहत्ता?

---

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल

८८. जाति एकेंद्री आदि, नाम अर्थ कहियै करम।
निधत्त निषेक लाधि, अथवा बध विशिष्ट कृत॥

८९. गतिनामनिधत्ता जाण, जाव अनुभाग नाम निधत्ता ?
जिन कहै छहुं पिछाण, दडक जाव वेमाणिया॥

८९. गतिनामनिहत्ता ? जाव (स० पा०) अणुभागनाम निहत्ता ?
गोयमा ! जातिनामनिहत्ता वि जाव अणुभागनाम-निहत्ता वि। दडओ जाव वेमाणियाण। (श० ६।१५२)

९०. *जातिनामनिहत्ताउया, हे प्रभु! छै वहु जोव।
जाव अनुभागनामनिहत्ताउया ? हिव जिन उत्तर कहीव॥

९१. छै जातिनामनिधत्ताउया, जाव छठो पिण जोय।
छै अनुभागनामनिहत्ताउया, दडक चोवीसे होय॥

९० जीवा ण भते ! किं जातिनामनिहत्ताउया ? जाव अणुभागनामनिहत्ताउया ?

९१ गोयमा ! जातिनामनिहत्ताउया वि जाव अणुभाग-नामनिहत्ताउया वि।
दडओ जाव वेमाणियाण। (श० ६।१५३)

## सोरठा

९२. जाति नाम सघात, निधत्त आयू जिण कियो।
तेह भणी आख्यात, जातिनामनिहत्ताउया॥

९२ जातिनाम्ना सह निधत्तमायुर्यैस्ते जातिनामनिधत्ता-युष, (वृ० प० २८१)

९३. इम गति स्थिति अन्य आदि, इहविध कहिवा बोल षट।
वलि कहिवा नरकादि, षट षट बोल सहू तणा॥

९३ एवमन्यान्यपि पदानि, अयमन्यो दण्डक। (वृ० प० २८१)

९४. इण प्रकार करि होय, द्वादश दडक एहना।
आख्या ए धुर दोय, सख्या पूरण वलि कहै॥

९४ एव एए दुवालसदडगा भाणियव्वा—
अमुना प्रकारेण द्वादश दण्डका भवन्ति, तत्र द्वावाद्यौ दर्शितावपि सख्यापूरणार्थं पुनर्दर्शयति। (वृ० प० २८१)

९५. दडक प्रथम पिछाण, जातिनामनिहत्ता कह्यो।
दूजो इहविध जाण, जातिनामनिहत्ताउया ?

९५ जीवा ण भते ! किं जातिनामनिहत्ता ? जातिनाम निहत्ताउया ?

९६. हे प्रभु! स्यू वहु जीव, जातिनामनिउत्ता अछै ?
दडक तृतीय कहीव, अर्थ सुणो हिव एहनो॥

९६ जीवा ण भते ! किं जातिनामनिउत्ता ?

९७. जातिनाम कर्म जेण, नियुक्त निकाचित बाधियो।
तथा वेदवा तेण, पहुचाव्यो इम अन्य पिण॥

९७ तत्र जातिनाम नियुक्त—नितरा युक्त—सवद्ध निकाचित वेदने वा नियुक्त यैस्ते जातिनामनियुक्ता.। (वृ० प० २८१)

९८. हे प्रभु! स्यू बहु जीव, जातिनामनिउत्ताउया ?
दडक तुर्य कहीव, अर्थ सुणो हिव एहनो॥

९८ जातिनामनिउत्ताउया ?

९९. जाति नाम कर्म साथ, निकाचित आयू कियो।
अथवा जेह विख्यात, वेदण माड्यो अन्य इम॥

९९ तत्र जातिनाम्ना सह नियुक्त—निकाचित वेदयितु-मारब्ध वाऽऽयुर्यैस्ते तथा। (वृ० प० २८१)

१००. पचम दंडक वत्त, जाति गोत्र जे निधत्ता।
इम गति गोत्र निधत्त, इत्यादिक तसु अर्थ हिव॥

१०० जीवा ण भते ! किं जातिगोयनिहत्ता ?

१०१. जाति एकेंद्री आदि, तसु योग्य नीच गोत्रादि जे।
ते निधत्त संवादि, जाति गोत्र जे निधत्ता॥

१०१. तत्र जाते. एकेन्द्रियादिकाया यदुचित गोत्र—नीचै-र्गोत्रादि तज्जातिगोत्र तन्निधत्त यैस्ते जातिगोत्र-निधत्ता (वृ० प० २८१)

---

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल

१०२. छठो दडक एह, जातिगोतनिधत्ताउया ।
इत्यादिक पट जेह, तास अर्थ निसुणो हिवै ॥
१०३. जाति एकेंद्री आद, तसु योग्य गोत्र करिनैं सहित ।
निधत्त आयू बाध, जिण कीधो इम अन्य पिण ॥
१०४. सप्तम दंडक जान, जाति गोत्र जे निउत्ता ।
गतिगोत्रनिउत्ता मान, इत्यादिक तसु अर्थ हिव ॥
१०५ जाति एकेंद्री आदि, तसु योग्य निकाच्यो गोत्र जिण ।
ते जातिगोत्रनिउत्तादि, निउत्ता तेह निकाचित ॥
१०६. अष्टम दंडक एह, जातिगोत्रनिउत्ताउया ।
इत्यादिक पट जेह, अर्थ तास निसुणो हिवै ॥
१०७ जाति एकेंद्री आद, गोत्र संघाते जीव जिण ।
आयु निकाच्यो बाध, इम बीजा पिण जाणवा ॥
१०८ नवमो दडक भाल, जातिनामगोत्रनिधत्ता ।
इम गति प्रमुख निहाल, अर्थ तास निसुणो हिवै ॥
१०९ जाति जोग्य जे नाम, अनै गोत्र करि सहित तिण ।
जे निधत्त कियो ताम, ते जातिनामगोत्रनिधत्ता ॥
११०. दशमो दडक देख, जातिनामगोत्रनिधत्ताउया ।
इत्यादिक पट पेख, हिवै अर्थ एहनो कहूं ॥
१११. जाति योग्य जे नाम, अनै गोत्र करि सहित तिण ।
जे निधत्त आयु ताम, ते जातिनामगोत्रनिहत्ताउया ॥
११२. दडक ग्यारम एह, जातिनामगोत्रनिउत्ता ।
गति प्रमुख इम लेह, तास अर्थ कहियै हिवै ॥
११३. जाति योग्य जे नाम, अनै गोत्र करि सहित तिण ।
कियो निकाचित ताम, ते जातिनामगोत्रनिउत्ता ॥
११४ जो द्वादशम कहीव, तेह तणो विस्तार हिव ।
हे प्रभु ! स्यू बहु जीव, जातिनामगोत्रनिउत्ताउया ?
११५. जाव छठो अनुभागनामगोत्रनिउत्ताउया ?
उत्तर प्रश्न जिम माग, दडक जाव वेमाणिया ॥
११६. जाति योग्य जे नाम, अनै गोत्र करि सहित तिण ।
आयु निकाच्यो ताम, ते जातिनामगोत्रनिउत्ताउया ॥
११७. दंडक बारमो जेह, धुर पद नो ए अर्थ छै ।
इम गति प्रमुख सुलेह, कहिवा सर्व विचार नै ॥
११८. ए जात्यादिक जाण, नाम गोत्र सह आयु फुन ।
भव उपग्रहे पिछाण, प्रधानपणु कहिवा भणी ॥
११९. अन्य वाचना माय, आदिईज जे आखिया ।
दडक आठ दिखाय, वृत्तिकार इहविध कह्यो ॥

१०२. जातिगोयनिहत्ताउया ?
१०३. तत्र जातिगोत्रेण सह निधत्तमायुर्यैस्ते जातिगोत्र-निधत्तायुषः । (वृ० प० २८१)
१०४ जीवा णं भंते ! किं जातिगोयनिउत्ता ?
१०५ तत्र जातिगोत्र नियुक्तं यैस्ते तथा । (वृ० प० २८१)
१०६. जातिगोयनिउत्ताउया ?
१०७ तत्र जातिगोत्रेण सह नियुक्तमायुर्यैस्ते तथा एवम-न्यान्यपि । (वृ० प० ८२१)
१०८ जीवा ण भंते ! किं जातिनामगोयनिहत्ता ?
१०९ तत्र जातिनाम गोत्र च निधत्त यैस्ते तथा । (वृ० प० २८१)
११० जातिनामगोयनिहत्ताउया ।
१११ तत्र जातिनाम्ना गोत्रेण च सह निधत्तमायुर्यैस्ते तथा । (वृ० प० २८१)
११२ जीवा ण भंते ! किं जातिनामगोयनिउत्ता ?
११३ तत्र जातिनाम गोत्रं च नियुक्त यैस्ते तथा । (वृ० प० २८१)
११४ जातिनामगोयनिउत्ताउया ?
११५ जाव अणुभागनामगोयनिउत्ताउया ?
गोयमा ! जातिनामगोयनिउत्ताउया वि जाव अणु-भागनामगोयनिउत्ताउया वि ।
दडओ जाव वेमाणियाण । (श० ६।१५४)
११६ तत्र जातिनाम्ना गोत्रेण च सह नियुक्तमायुर्यैस्ते तथा । (वृ० प० २८१)
११८ इह च जात्यादिनामगोत्रयोरायुषश्च भवोपग्राहे प्राधान्यख्यापनार्थं यथायोग जीवा विशेपिता । (वृ० प० २८१)
११९. वाचनान्तरे चाद्या एवाष्टौ दण्डका दृश्यन्त इति । (वृ० प० २८१)

१२०. पूर्वे ए पहिछाण, जीव स्व धर्म थकी कह्या।
लवणोदधि हिव जाण, कहियै ते स्व धर्म थी॥

१२०. पूर्वं जीवा स्वधर्मत प्ररूपिता, अथ लवणसमुद्र स्वधर्मत एव प्ररूपयन्नाह— (वृ० प० २८१)

१२१. *हे प्रभु! लवणसमुद्र ते, स्यू उस्सितोदए होय?
ऊर्ध्व उदक जल-वृद्धि छै, कै सम जल छै सोय?

१२१ लवणे ण भते! समुद्दे किं उस्सिओदए? पत्थडोदए?
उच्छ्रितोदक ऊर्द्ध्ववृद्धिगतजल,………'पत्थडोदए' त्ति प्रस्तृतोदक समजल इत्यर्थ·। (वृ० प० २८१,२८२)

१२२. खुभिय जल वेल वस थकी, मोटा कलस पाताल।
तेह विषे वायू थकी, जल क्षोभ पामै असराल?

१२२ खुभियजले?
वेलावशात्, वेला च महापातालकलशगतवायुक्षोभादिति। (वृ० प० २८२)

१२३. अखुभिय जल क्षोभ ना लहै? ए चिहु प्रश्न प्रसिद्ध।
जिन भाखै लवणोदधे, ऊर्ध्व उदक नी वृद्ध॥

१२३ अखुभियजले?
गोयमा! लवणे ण समुद्दे उस्सिओदए।

१२४. पत्थडोदए सम जल नही, खुभिय जल ए होय।
अक्षोभित जल पिण नही, उत्तर ए अवलोय॥

१२४ नो पत्थडोदए, खुभियजले, नो अखुभियजले। (श० ६।१५५)

१२५. प्रारभी ए पाठ थी, जिम जीवाभिगम मझार।
यावत तिण अर्थे करी, द्वीप समुद्र अढी द्वीप बार॥

१२५ इत· सूत्रादारब्ध तद्यथा जीवाभिगमे (प० ३।७८३, ७८४) तथाऽध्येतव्यम्। (वृ० प० २८२)

## सोरठा

१२६. जाव शब्द मे एह, जिम लवणोदधि प्रश्न चिहु।
तिम चिहु प्रश्न पूछेह, अढी द्वीप बाहिर उदधि॥

१२६ जहा ण भते! लवणसमुद्दे उस्सिओदए, नो पत्थडोदए खुभियजले, नो अखुभियजले, तहा ण बाहिरगा समुद्दा किं उस्सिओदगा? पत्थडोदगा? खुभियजला? अखुभियजला?

१२७. जिन कहै उदधि सुजोय, अढी द्वीप रै बारलै।
उस्सितोदगा न होय, पत्थडोदगाज समजला॥

१२७ गोयमा! बाहिरगा समुद्दा नो उस्सिओदगा, पत्थडोदगा,

१२८. क्षोभित-जला म जाण, छै ते अक्षोभित-जला।
पूर्णा पूर्ण-प्रमाण, जल भर या ऊणा नही॥

१२८. नो खुभियजला, अखुभियजला पुण्णा पुण्णप्पमाणा,

१२९. वोलट्टमाणा जान, अति भरिवै जल नीकलै।
वोसट्टमाणा मान, प्रचुरपणै वर्धमान जल॥

१२९ वोलट्टमाणा, वोसट्टमाणा।

१३०. समो भर्‌यो घट जेह, तेहनी, परि तिष्ठै अछै।
वलि गोतम पूछेह, चित्त लगाई सांभलो॥

१३०. समभरघडत्ताए चिट्ठति। (श० ६।१५६)

१३१. लवणसमुद्रे भत! वहु महाबादल स्नेह हुवै।
वलि वर्षा वरसंत? जिन भाखै हता अत्थि॥

१३१ अत्थि ण भते! लवणसमुद्दे वहवे ओराला वलाहया ससेयति? समुच्छति? वास वासति?
हता अत्थि। (श० ६।१५७)

१३२. जिम लवणोदधि मेह, तिम बाहिरलै उदधि ह्वै।
अर्थ समर्थ नहि एह? गोतम कहै किण अर्थ प्रभु!?

१३३. समुद्र जेह पिछाण, अढी द्वीप रै बारला।
पूर्णा पूर्ण-प्रमाण, यावत घट जिम जलभृता॥

१३२,१३३ जहा ण भते! लवणसमुद्दे वहवे ओराला वलाहया· "तहा णं बाहिरगेसु वि समुद्देसु वास वासति? णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ६।१५८)
से केणट्ठेण भते! एव वुच्चइ—बाहिरगा ण समुद्दा पुण्णा जाव समभरघडत्ताए चिट्ठति?

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल

| | |
|---|---|
| १३४. गोयम! वारले (समुद्र) सोय, उदक-जोणिया जीव वहु ।<br>पुद्गल पिण अवलोय, उदकपणै उपजै अछै ॥ | १३४ गोयमा ! वाहिरगेसु ण समुद्देसु वहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमति, विउक्कमति, चयति, उवचयति । |
| १३५ तिण अर्थे इम जाण, द्वीप समुद्र जे वारला ।<br>पूर्णा पूर्ण-प्रमाण, वोलट्टमाणा पिण कह्या ॥ | १३५ से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—वाहिरया ण समुद्दा पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा । |
| १३६ वोसट्टमाणा पेख, प्रचुरपणै वर्धमान जल ।<br>सम जल भृत घट देख, तेहनी परि तिष्ठै तिके ॥ | १३६ वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठति, |
| १३७ *सठाण थी इकविध कह्या, रथ चक्रवाल आकार ।<br>विधान तेह स्वरूप नो, करिवू जसु अवधार[1] ॥ | १३७ संठाणओ एगविहिविहाणा,<br>एकेन 'विधिना' प्रकारेण चक्रवाललक्षणेन विधान—स्वरूपस्य करण येषां ते एकविधिविधानाः ।<br>(वृ० प० २८२) |
| १३८. जावत तिरछा लोक में, असंख द्वीपोदधि हुत ।<br>स्वयभूरमण छेहडे कह्यो, अहो श्रमण आउखावत ! | १३८ जाव अस्सि तिरियलोए असखेज्जा दीव-समुद्दा सयभूरमणपज्जवसाणा पण्णत्ता समणाउसो !<br>(श० ६।१५६) |
| १३९. हे प्रभु! द्वीप समुद्र नां, किता परूप्या नाम ?<br>जिन कहै शुभ नाम लोक मे, स्वस्तिकादिक अभिराम ॥ | १३९. दीवसमुद्दा ण भते ! केवतिया नामवेज्जेहि पण्णत्ता ? गोयमा ! जावतिया लोए सुभा नामा, स्वस्तिकश्रीवत्सादीनि (वृ० प० २८२) |
| १४०. रूप अछै शुभ जेतला, शुक्ल पीतादिक जेह ।<br>अथवा जे रूपवत छै, देवादिक वर्णेह ॥ | १४० सुभा रूवा,<br>शुक्लपीतादीनि देवादीनि वा । (वृ० प० २८२) |
| १४१. गध अछै सुभ जेतला, सुगध नां वहु भेद ।<br>अथवा कपूरादिक कह्या, ए गधवंत संवेद ॥ | १४१ सुभा गधा,<br>सुरभिगन्धभेदा गन्धवन्तो वा कर्पूरादय ।<br>(वृ० प० २८२) |
| १४२. रस अछै शुभ जेतला, मधुरादिक रस स्वाद ।<br>अथवा रसवत जाणवा, साकर प्रमुख अहलाद ॥ | १४२ सुभा रसा,<br>मधुरादय. रसवन्तो वा शर्करादय ।<br>(वृ० प० २८२) |
| १४३. फर्श अछै शुभ जेतला, मृदु प्रमुख सुविशाल ।<br>अथवा फर्शवत जाणवा, माखण प्रमुख निहाल ॥ | १४३ सुभा फासा,<br>मृदुप्रभृतयः स्पर्शवन्तो वा नवनीतादय. ।<br>(वृ० प० २८२) |
| १४४. नाम इता द्वीप समुद्र ना, जाणवा इम शुभ नाम ।<br>उद्धार नै परिणाम ते, सहु जीव ऊपना ताम ॥ | १४४ एवतिया णं दीवसमुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता । एव नेयव्वा सुभा नामा उद्धारो, परिणामो, सव्वजीवाण (उप्पाओ) (श० ६।१६०) |

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल

१. प्रस्तुत ढाल की १३७ वी गाथा जिस पाठ के आधार पर है, अगसुत्ताणि भाग २ श० ६।१५९ मे उसके आगे यह पाठ है—

'वित्थारओ अणेगविहिविहाणा दुगुणा दुगुणप्पमाणा'

सभव है जयाचार्य को उपलब्ध आदर्श मे यह पाठ नही था, इसलिए इस पाठ की जोड नही है।

## सोरठा

१४५. उद्धार अर्थ कहेह, द्वीप समुद्र तणा प्रभु ?
उद्धार समय करेह, किता कह्या ? तव जिन कहै ॥

१४५ दीवसमुद्दा णं भंते ! केवइया उद्धारसमएणं पन्नत्ता ? (वृ० प० २८२)

१४६. जिता अढाई जान, उद्धार सागरोपम तणा ।
उद्धार समया मान, द्वीप समुद्रज एतला ॥

१४६ गोयमा ! जावइया अड्ढाइज्जाणं उद्धारसागरोवमाण उद्धारसमया एवइया दीवसमुद्दा उद्धारसमएण पन्नत्ता । (वृ० प० २९२)

१४७. समय-समय इक एक, खंड काढै पल्य माहि थी ।
खाली थाय विशेख, उद्धार पल्य कही तसु ॥

१४७. येनैकैकेन समयेन एकैक वालाग्रमुद्धियतेऽसावुद्धारसमय. । (वृ० प० २८२)

१४८. पल्य दस कोडाकोड, इक उद्धार सागर हुवै ।
तेह अढाई जोड, उद्धार सागर ना समय ॥

१४९. ते समय प्रमाण सुजोड, द्वीप समुद्रज एतला ।
पल्य पचीस कोड़ाकोड, समय-समय खंड काढियै ॥

१५०. परिणाम ते इम ताम, स्यूं प्रभु ! द्वीप समुद्र ते ।
पृथ्वी अप परिणाम, जीव पोग्गल परिणाम छै ?

१५०. दीवसमुद्दाण भंते ! किं पुढविपरिणामा आउपरिणामा जीवपरिणामा पोग्गलपरिणामा ? (वृ० प० २८२)

१५१. तव भाखै जिन स्वाम, पृथ्वी अप परिणाम है ।
जीव तणु परिणाम, पुद्गल नो परिणाम पिण ॥

१५१ गोयमा ! पुढविपरिणामावि आउपरिणामावि जीवपरिणामावि पोग्गलपरिणामावीत्यादि । (वृ० प० २८२)

१५२. सव्व जीवाणं एम, द्वीप समुद्र विषे प्रभु !
सहु प्राणादि तेम, उपना काय छहुपणै ?

१५२. दीवसमुद्देसु ण भंते ! सव्वेपाणा४ पुढविकाइयत्ताए जाव तसकाइयत्ताए उववन्नपुव्वा ? (वृ० प० २८२)

१५३. हंता कहै भगवंत, असकृत—वार अनेक जे ।
अथवा वार अनंत, सगला जीव समूपना ॥

१५३. हंता गोयमा ! असइ अदुवा अणंतखुत्तो त्ति । (वृ० प० २८२)

१५४. जीवाभिगम जोय, वर्णन द्वीप समुद्र नो ।
जिहा सपूर्ण होय, तिहां थकी ए आखियो ॥

१५४ दीवसमुद्दा ण भंते ! किं पुढविपरिणामा........ । (जीवा० प० ३।९७४, ९७५)

१५५. *सेव भंते ! अक अड़सठ तणो, एकसौ आठमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगलमाल ॥

१५५ सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (६।१६१)

षष्ठशते अष्टमोद्देशकार्थः ॥६।८॥

## ढाल : १०९

### दूहा

१. जीव पृथव्यादिकपणै, पूर्व काल सुविशेष ।
द्वीपादिके समुप्पना, आख्यो अष्टमुदेश ॥

१ द्वीपादिषु जीवा पृथिव्यादित्वेनोत्पन्नपूर्वा इत्यष्टमोद्देशके उक्त, (वृ० प० २८२)

२ तेह ऊपना नै प्रथम, कर्म तणो बंध होय ।
नवम उदेशे आदि ए, कर्म-बंध अवलोय ॥

२ नवमे तूत्पादस्य, कर्मबन्धपूर्वकत्वादसावेव प्ररूप्यत इत्येव सम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्— (वृ० प० २८२)

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल

३. ज्ञानावरणी हे प्रभु! कर्म बांधतो जीव ।
कर्म-प्रकृति बांधै किती? उत्तर वीर कहीव ॥

३ जीवे णं भंते ! नाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कति कम्मपगडीओ बंधति ?

४. सात कर्म बांधै तथा, अठविध बंध पिछाण ।
अथवा बांधै कर्म षट, ए दशमे गुणठाण ॥

४. गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा, छव्विहबंधए वा ।
'छव्विहबंधए' त्ति सूक्ष्मसम्परायावस्थायां मोहायुर्वर्जनात् । (वृ० प० २८२, २८३)

५. पन्नवणा पद चोवीस मे, बंध उद्देशे न्हाल ।
इह स्थानक सहु जाणवा, वर जिन वयण विशाल ॥

५. बंधुद्देसो पण्णवणाए (पद २४।२-८) नेयव्वो ।
(श० ६। १६२)

*जय-जय ज्ञान जिनेंद्र नो ॥ (ध्रुपद)

६. सुर प्रभु! महाऋद्धि नो धणी,
यावत महा अनुभाग! जिणंद! मोरा हो ।
बाहिरला पुद्गल भणी,
अणलीधे ए भाग । जिणंद! मोरा हो ॥

६ देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महाणुभागे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता

७. एक वर्ण कालादिक कह्यो, इक रूप ते आकार ।
विकुर्विवा समर्थ अछै? अर्थ समर्थ न निगार ॥

७. पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए ?
गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे । (श० ६। १६३)
'एगवन्नं' ति कालाद्येकवर्णम्, 'एगरूवम्' एकविधाकारं स्वशरीरादि, (वृ० प० २८३)

८. सुर प्रभु! पुद्गल बारला, लेई नैं समर्थ होय?
जिन भाखै हंता प्रभू, समर्थ ते अवलोय ॥

८ देवे णं भंते ! बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए ? हंता पभू ।
(श० ६। १६४)

९. ते प्रभु! स्यूं मनुष्य क्षेत्र ना, पुद्गल ले विकुर्वित ।
कै सुर स्थान तणा लिये, कै अन्य स्थान ना निन?

९ से णं भंते ! किं इहगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति? तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति? अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति ?

१०. जिन भाखै मनुष्य क्षेत्र ना, पुद्गल ले विकुर्वै नाय ।
विकुर्वै स्व स्थान ना ग्रही, अन्य स्थानक ना न ग्रहाय ॥

१०. गोयमा ? नो इहगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति, तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति, नो अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति ।

## सोरठा

११. बहुलपणै जे देव, वर्त्तै छै सुर स्थानके ।
तिण सूं एम कहेव, पुद्गल ग्रहै सुर स्थान ना ॥

११ देव किल प्रायो देवस्थान एव वर्त्तत इति तत्रगतान् – देवलोकादिगतान्, (वृ० प० २८३)

१२. उत्तरवैक्रियरूप, बहुलपणै ते स्थान करि ।
अन्यत्र जाय तद्रूप, ते माटे इहविध कह्यु ॥

१२ यत कृतोत्तरवैक्रियरूप एव प्रायोऽन्यत्र गच्छतीति नो इहगतान् पुद्गलान् पर्यादाय इत्याद्युक्तमिति ।
(वृ० प० २८३)

१३. *इम एणे आलावे करी, जाव एक वर्ण एक रूप ।
इक वर्ण रूप अनेक नैं, करै विकुर्वण चूप ॥

१३ एवं एएणं गमेणं जाव एगवण्ण एगरूवं, एगवण्ण अणेगरूवं,

१४. अनेक वर्ण रूप इक वलि, अनेक वर्ण नैं रूप अनेक ।
बे-बे आलावा च्यारूं तणा, ए कही चउभंगी विशेख ॥

१४ अणेगवण्ण एगरूवं, अणेगवण्ण अणेगरूवं—चउभंगो ।
(श० ६। १६५)

---

* लय : राधा प्यारी हे, लै नी भलोलो ठंडा नीर नो

१५. *सुर प्रभु! महाऋद्धि नो धणी, यावत महानुभाग।
वाहिरला पुद्गल भणी, अणलीधे ए भाग॥

१५ देवे ण भते! महिड्ढीए जाव महाणुभागे वाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता।

१६. पुद्गल जे काला प्रतै, नीला पुद्गलपणै पेख।
परिणामिवा समर्थ अछै, तथा नीला कृष्णपणै देख?

१६. पभू कालग पोग्गल नीलगपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए? नीलग पोग्गल वा कालगपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए?

१७. जिन भाखै सुण गोयमा! एह अर्थ समर्थ न ताय।
वाहिरला पुद्गल ग्रही, सुर समर्थ कहिवाय॥

१७ गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। परियाइत्ता पभू।
(श० ६।१६६)

१८. ते प्रभु! स्यूं नरलोक ना, पुद्गल ग्रहि नै ताय।
त चेव णवरं विशेष ए, परिणामिवा कहिवाय॥

१८. से ण भते! किं इहगए पोग्गले (स० पा) त चेव नवर परिणामेति त्ति भाणियव्व।

## सोरठा

१६ विकुर्वणा तिहा जाण, परिणामिवा समर्थ इहां।
इतलो विशेष माण, शेष पूर्ववत जाणवा॥

२०. *इम काला पुद्गल प्रतै, लालपणै परिणमाय।
एवं कृष्ण वर्णे करी, जाव शुक्ल प्रति आय॥

वा० जिम पूर्वे कह्यो कालो नीलैपणै परिणमावै अनै नीलो कालैपणै परिणमावै ए एक सूत्र१। तिम कालो लालपणै तथा लाल कालापणै२। कालो पीलापणै पीलो कालापणै३। कृष्ण शुक्लपणै तथा शुक्ल कृष्णपणै४।

२० एव कालगपोग्गल लोहियपोग्गलत्ताए। एव कालएणं जाव सुक्किलं।

२१ *इम नीले वर्णे करी, जाव शुक्ल प्रति आण॥
इम लोहित वर्णे करी, जाव शुक्ल प्रति आण॥

वा० इम नीलो लालपणै तथा लाल नीलापणै परिणमावै५। नीलो पीलापणै तथा पीलो नीलापणै६। नील शुक्लपणै तथा शुक्ल नीलपणै७। इम लाल पीलापणै तथा पीलो लालपणै८। लाल शुक्लपणैं तथा शुक्ल लालपणै९।

इहा जाव शब्द कह्यो ते वीच भागो तो नथी पिण पोग्गल ए तीन अक्षर जाव शब्द मे सभवै एतलै पीलो पुद्गल शुक्लपणै तथा शुक्ल पीलापणै परिणमावै। इम वे-वे नो एक-एक सूत्र कहिवै वर्ण ना १० सूत्र थया, इम आगल पिण जाणवा।

२१ एव नीलएण जाव सुक्किल। एव लोहिएण जाव सुक्किल।

वा०—कालनीललोहितहारिद्रशुक्ललक्षणाना पचानां वर्णाना दश द्विकसयोगसूत्राण्यध्येयानि।
(वृ० प० २८३)

२२ *इम पीलै वर्णे करी, जाव शुक्ल अवभास।
इम ए परपाटी करी, गंध अनै रस फास॥

वा० दुगध सुगधपणै परिणमावै तथा सुगध दुगधपणै परिणमावै१। तिक्त कटुकपणै परिणमावै तथा कटुक तिक्तपणै परिणमावै१। तिक्त कसायलापणै तथा कसायलो तिक्तपणै२। तिक्त खाटापणै तथा खाटो तिक्तपणै३। तिक्त मीठापणै तथा मीटो तिक्तपणै४। कटुक कसायलापणै तथा कसायलो कटुकपणै५। कटुक खाटापणै तथा खाटो कटुकपणै६। कटुक मीठापणै तथा मीठो कटुकपणै७। कसायलो खाटापणै तथा खाटो कसायलापणै८। कसायलो मीठापणै तथा मीठो कसायलापणै९। खाटो मीठापणै तथा मीठो खाटापणै परिणमावै१०॥

२२ एव हालिद्दएण जाव सुक्किल। एवं एयाए परिवाडीए गध-रस-फासा।

इह सुरभिदुरभिलक्षणगन्धद्वयस्यैकमेव, तिक्तकटुकपायाम्लमधुररसलक्षणाना पञ्चाना रसाना दश द्विकसयोगसूत्राण्यध्येयानि। (वृ० प० २८३)

---

* लय : राधा प्यारी हे, लै नी झखोलो ठंडा नीर नो

२३. *कक्खड फर्श पुद्गल प्रतै, मृदुपणै परिणमाय।
मृदु फर्श पुद्गल प्रतै, कक्खडपणै कहिवाय॥

२४. एव दो कहिवा अछै, गुरु लघु ना वे सोय।
शीत उष्ण ना दोय छै, स्निग्ध लुक्ख ना दोय॥

यतनी

२५. कक्खड फर्श मृदुपणै भाल, मृदु खरधरापणै निहाल।
गुरु लघुपणै परिणमावै, लघु गुरुपणै इम भावै॥

२६ शीत उष्णपणै इम कहियै, उष्ण शीतपणै इम लहियै।
निद्ध लुक्खपणै परिणामै, लूखो निद्धपणै इम पामै॥

२७ *वर्ण गंध रस नै विषे, फर्श विषे वलि जाण।
सगला स्थानक नै विषे, कहि परिणामेइ माण॥

२८. बे-बे आलावा सर्व ना, पुद्गल विण लियां ताय।
परिणामिवा समर्थ नही, पुद्गल ले परिणमाय'॥

यतनी

२९. पुद्गल लियां विना सहु एह, नहीं परिणमावै छै तेह।
बारला पुद्गल नै लेई, परिणमावै एम कहेई॥

दूहा

३०. देव तणा अधिकार थी, देव तणोंज विचार।
पूछै गोयम गणहरू, ते सुणज्यो विस्तार॥

३१. *प्रभु! अविशुद्धलेसी देवता, ए विभंग अज्ञानी संगीत।
असमोहए नो अर्थ ए, सुर उपयोग-रहीत॥

३२. अविशुद्धलेसी विभंग सहित जे, देव तथा देवी जोय।
तथा अन्यतर एक जे, ते त्रिहुं माहिलो सोय॥

वा० अविशुद्धलेसी विभग अज्ञानी देव अणउपयोग आतमा अविशुद्धलेसी देवादिक प्रतै ए तीन पद ना द्वादश विकल्प हुवै।

३३ *ए त्रिहुं प्रति जाणै प्रभु! दर्शण कर देखंत?
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, ए धुर भांगो हुंत॥

३४. †सुर विभगयुत उपयोग विण ते, विभंगवंत सुर सुरी प्रते।
त्रिहु मांहिला एक प्रति वलि, न जाणै देखै न ते॥

२३ कक्खडफासपोग्गले मउय-फासपोग्गलत्ताए,

२४. एव दो दो गरुय-लहुय-सीयउसिण-णिद्धलुक्ख,

२७ वण्णाई सव्वत्थ परिणामेइ।

२८ आलावगा दो दो पोग्गले अपरियाइत्ता, परियाइत्ता। (श० ६।१६७)

३० देवाधिकारादिदमाह— (वृ० प० २८३)

३१ अविसुद्धलेसे णं भंते! देवे असमोहएणं अप्पाणेणं अविशुद्धलेश्यो—विभङ्गज्ञानी देव 'असमोहएण अप्पाणेण' ति अनुपयुक्तेनात्मना। (वृ० प० २८४)

३२ अविसुद्धलेसं देवं, देविं, अण्णयरं, इहाविशुद्धलेश्यः, असमवहतात्मा देवः, अविशुद्धलेश्य देवादिक इत्यस्य पदत्रयस्य द्वादशविकल्पा भवन्ति। (वृ० प० २८४)

३३. जाणइ-पासइ?
णो तिणट्ठे समट्ठे।

---

* लय : राधा प्यारी हे, लै नी झालो ठंडा नीर नो

१ इस ढाल की गाथा २३, २४, २७ और २८ की जोड अंगसुत्ताणि पृ० २६६ के टिप्पण ११ के आधार पर की गई है।

† लय : पूज मोटा भांजै

विभंग-अनाणी देवादि नैं, जाणै देखै वर रीत ॥

४९. अवधिज्ञानी जे देवता, उपयोग-सहित रहीत ।
अवधिज्ञानी देवादिक प्रतै, जाणै देखै तसु रीत ॥

द्धलम देव ।

४९. विसुद्धलेसे देवे समोहयासमोहएण अप्पाणेण विसुद्ध-लेस देव । (श० ६।१६९)

### सोरठा

५० चिहु भग सम्यक्त्व रीत, उपयोगी जाणै तथा ।
उपयोग-सहित रहीत, ते पिण जाणै देखियै ॥

५० एमि पुनश्चतुर्भिर्विकल्पैः सम्यग्दृष्टित्वादुपयुक्तत्वा-नुपयुक्तत्वाच्च जानाति । (वृ० प० २८४)

५१. उपयोग-अणउपयोग-पक्षे जे उपयोग नु ।
अश अधिक सुप्रयोग, ज्ञान हेतु छै ते भणो ॥

५१. उपयोगानुपयोगपक्षे उपयोगाशस्य सम्यग्ज्ञानहेतु-त्वादिति । (वृ० प० २८४)

५२. विकल्प अठ जे आदि, नवि जाणै देखे नही ।
ऊपरलै चिहु साधि, ते जाणै नै देखियै[1] ॥

५२ एव हेट्ठिल्लएहिं अट्ठहिं न जाणइ, न पासइ उवरि-ल्लएहिं चउहिं जाणइ-पासइ ।

### दूहा

५३. वाचनातरे सर्व ही, दीसै छै साख्यात ।
विकल्प जे आठू तणो, जुओ-जुओ अवदात ॥

५३ वाचनान्तरे तु सर्वमेवेद साक्षाद् दृश्यत इति । (वृ० प० २८४)

५४. *सेवं भते! अंक गुणतर तणो, एकसौ नवमी ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मगल माल ॥

५४ सेव भते । सेव भते ! त्ति । (श० ६।१७०)

षष्ठशते नवमोद्देशकार्थः ॥६।९॥

## ढाल : ११०

### दूहा

१. नवम उद्देशक नैं विषे, अविशुद्ध लेस्यावत ।
ज्ञान अभाव कह्यु तसु, दसमे तेहिज हुत ॥

१ प्रागविशुद्धलेश्यस्य ज्ञानाभाव उक्त, अथ दशमो-द्देशकेऽपि तमेव दर्शयन्निदमाह— (वृ० प० २८४)

†गोयम प्रभुजी सू वीनवै रे लाल । (ध्रुपद)

२. अन्यतीर्थी प्रभु! इम कहे रे लाल,
जावत इम परूपत हो, जिनेंद्र देव!
राजगृह नगर विषे अछै रे लाल,
जीव जेतला हुत हो, जिनेंद्र देव!

२ अण्णउत्थिया ण भते ! एवमाइक्खति जाव परूवेंति जावतिया रायगिहे नयरे जीवा,

---

* लय : राधा प्यारी हे लै नी झखोलो ठंडा नीर नो

† लय : पुन नीपजै सुभ जोग सू

१ यह जोड जिस पाठ के आधार पर की गई है, वह अगसुत्ताणि के पादटिप्पण ३ पृ. २६७ मे है ।

३. एतलाईज जीवा तणा, सुख अथवा दुख ताहि।
यावत बोर-कुलिया जितो, देखवा समर्थ नाहि॥

३ एवइयाण जीवाण नो चक्किया केइ सुह वा दु
जाव कोलट्ठिगमायमवि,

**सोरठा**

४. यावत जितो पिछाण, बोर-कुलिक मात्रक अपि।
बहु वा अतिबहु जाण, ते तो अलगा ही रहो॥

४ आस्ता बहु बहुतरं वा यावत् कुवलास्थिकमात्र
तत्र कुवलास्थिक—बदरकुलक। (वृ० प० २

५. *झालर[1] कलाय जे धान्य छै, उडद मूंग जूं लीख।
तेतलो पिण काढी तनु थकी, देखवा समर्थ न दीख॥

५ निप्फावमायमवि, कलमायमवि, मासमाय
मुग्गमायमवि, जूयामायमवि, लिक्खामायमवि
निवट्टेत्ता उवदसेत्तए। (श० ६।१

६ ते किम प्रभु! ए इहविधे, इम? पूछ्ये कहै नाथ, रे सुगण शीस!
अणतीर्थी जे इम कहै, जाव मिथ्या इम ख्यात, रे सुगण शीस!

६. से कहमेय भते! एव?
गोयमा! ज ण ते अण्णउत्थिया एवमाइ
जाव मिच्छ ते एवमाहसु,

**सोरठा**

७. अन्यतीर्थी नी वाय, राजगृह नगर विषेज ए।
अन्य स्थान कहै नाय, तिण सू मिथ्या वचन ते॥

८ *हू पिण गोतम इम कहूं, जाव परूपू एम।
सहु लोक विषे सर्व जीव नो, सुख अथवा दुख तेम॥
९. त चेव जाव देखाड़िवा, समर्थ नही छै ताय।
किण अर्थे प्रभु! इम कह्यो? हिव जिन भाखै न्याय॥

८,९ अह पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवे
सव्वलोए वि य ण सव्वजीवाण नो चक्किया
सुह वा (स० पा०) त चेव जाव उवदसेत्तए।
(श० ६।१

से केणट्ठेण?

१०. ए जबूद्वीप नामा द्वीप छै, जाव विशेषाधिक परिधि माग।
देव महाऋद्धि नो धणी, जावत महाअनुभाग॥

१० गोयमा! अयण्ण जबुद्दीवे दीवे जाव विसेस
परिक्खेवेण पण्णत्ते। देवे ण महिड्ढीए जाव म
भागे,

११. इक महा विलेपन सहित नै, गध डाबो ग्रही ताम।
ते गध डावा ना मुख प्रतै, उघाड़ै उघाड़ी आम॥

११ एग मह सविलेवण गधसमुग्गग गहाय त अवद्दा
अवद्दालेत्ता,

**यतनी**

१२. जाव इणामेव इणामेव[2], इम कहि चाल्यो ते देव।
केवल कल्प सपूर्ण एह, जबूद्वीप नामा द्वीप तेह॥
१३. तीन चिवठी वजावै ते माहि, एक वीस वेला ते ताहि।
चोफेर दोलो फिरि जोय, शीघ्र आवै उतावलो सोय॥

१२. जाव इणामेव कट्टु केवलकप्प जबुद्दीव दीव।

१३ तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरिय
ण हव्वमागच्छेज्जा।

१४ *ते निश्चै करि गोयमा, जबूद्वीप सपूर्ण ताय।
फर्शै गध पुद्गल करी? गोतम कहै फर्शाय॥

१४ से नूण गोयमा! से केवलकप्पे जबुद्दीवे दीवे
घाणपोग्गलेहिं फुडे? हता फुडे।

---

* लय : पुन नीपजै शुभ जोग स्यू

१. वल्ल नामक धान्य

२ अगसुत्ताणि भाग २ श० ६।१७६ मे इणामेव पाठ एक वार ही है।

णो तिणट्ठे समट्ठे ।

१६. †जिम गंध पुद्गल अतिहि सूक्षम अमूर्त्त तुल्य ते अछै ।
वोर गुठली मात्र पिण देखाड़िवा समरथ न छै ॥

१६ एवं यथा गन्धपुद्गलानामतिसूक्ष्मत्वेनामूर्त्तकल्पत्वात् कुवलास्थिकमात्रादिक न दर्शयितु शक्यते ।
(वृ० प० २८५)

१७. †तिण अर्थे करि गोयमा, सर्व जीवा नां ताहि ।
गुठली मात्र सुख दुख प्रतै, जाव देखाडी सकै नाहि ॥

१७ से तेणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चइ—नो चक्किया केइ सुह वा जाव उवदंसेत्तए । (श० ६।१७३)

## दूहा

१८. जीव तणा अधिकार थी, जीव तणोज विचार ।
पूछै गोयम गणहरू, आछी रीत उदार ॥

१८ जीवाधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० २८५)

१९. *जीव प्रभु! स्यू जीव छै, केवल जीव कहिवाय ?
जीव शब्द दोय वार नो, अर्थ सुणो चित ल्याय ॥

१९ जीवे णं भंते ! जीवे ? जीवे जीवे ?

## सोरठा

२०. एक जीव शब्देन, जीवईज ग्रहिवू अछै ।
जीव शब्द द्वितीयेन, ग्रहिवूं छै चेतनपणु ॥

२० इह एकेन जीवशब्देन जीव एव गृह्यते द्वितीयेन च चैतन्यम्, (वृ० प० २८५)

## यतनी

२१. जिन भाखै जीव सदीव, तिणनै कहीजै नियमा जीव ।
बीजो जीव शब्द चैतन्य, ते पिण नियमा जीव मुजन्य ॥

२१ गोयमा ! जीवे ताव नियमा जीवे, जीवे वि नियमा जीवे । (श० ६।१७४)

## सोरठा

२२. जीव अनै चैतन्य, माहोमाहि जुदा नही ।
जीव ते चैतन्य जन्य, चैतन्य ते पिण जीव छै ॥

२२ जीवचैतन्ययो परस्परेणाविनाभूतत्वाज्जीवश्चैतन्यमेव चैतन्यमपि जीव एवेत्येवमर्थमवगन्तव्यं ।
(वृ० प० २८५)

२३. *हे प्रभु! जीव ते नेरइयो, नेरइयो जीव कहीव ?
श्री जिन भाखै नेरइयो, निश्चै करि छै जीव ॥
(वीर कहे सुण गोयमा! रे लाल)

२३ जीवे णं भंते ! नेरइए ? नेरइए जीवे ?
गोयमा ! नेरइए ताव नियमा जीवे,

२४. जीव कदाचित नेरइयो, कदा अनेरइयो होय ।
नरके ऊपना नेरइयो, अन्य गति अनेरइयो जोय ॥

२४. जीवे पुण सिय नेरइए, सिय अनेरइए ।
(श० ६।१७५)

२५. हे प्रभु! जीव ते असुर छै, कै असुरकुमार छै जीव ?
जिन कहै असुरकुमार ते, निश्चै जीव कहीव ॥

२५ जीवे णं भंते ! असुरकुमारे ? असुरकुमारे जीवे ?
गोयमा ! असुरकुमारे ताव नियमा जीवे,

२६. जीव कदाचित असुर छै, कदा अणअसुर कहीव ।
असुर विषे गया असुर छै, अणअसुर ते अन्य जीव ॥

२६ जीवे पुण सिय असुरकुमारे, सिय नोअसुरकुमारे ।
(श० ६।१७६)

---

† लय : पूज मोटा भांजै

* लय : पुन नीपजै सुभ जोग स्यू

२७. एव दडक जाणिवा, जाव वैमानिक जोय ।
जीव तणा अधिकार थी, जीव प्रश्न वलि होय ॥

२७ एव दडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियाणं। (श० ६।

## सोरठा

२८. नारकादि पद माहि, वली जीवपणा तणो ।
अव्यभिचारी थी ताहि, इह कारण थी एह हिव ॥

२८ नारकादिपु पदेपु पुनर्जीवत्वमव्यभिचारि जी नारकादित्व व्यभिचारीत्यत आह —
(वृ० प० -

२९. *जीवै प्राण धरै तिको, जीव अछै भगवंत !
अथवा जीव अछै तिको, जीवै प्राण धरत ?

२९ जीवति भते ! जीवे ? जीवे जीवति ?
जीवति—प्राणान् धारयति य स जीव. उ जीव. स जीवति ? (वृ० प०

३०. जिन कहै आयू नै वले, जीवै प्राण धरत ।
निश्चै करि तै जीव छै, ए जीव संसारी हुत ॥

३० गोयमा ! जीवति ताव नियमा जीवे,

## सोरठा

३१. अजीव नै अवलोय, आयू कर्म अभाव कर ।
जीवन अभाव जोय, तिण सू अजीव ते जीवै नही ॥

३१. अजीवस्यायु. कर्म्माभावेन जीवनाभावात् । (वृ० प० ·

३२ *जीव तिको जीवै कदा, ससारीक पिछाण ।
कदाचित जीवै नही, सिद्ध धरै नहिं प्राण ॥

३२ जीवे पुण सिय जीवति, सिय नो जीवति । (श० ६।
सिद्धस्य जीवनाभावादिति । (वृ० प० :

३३ जीवै प्राण धरै तिको, नेरइयो छै भगवत !
कै नेरइयो जीवै अछै ? हिव जिन उत्तर तत ॥

३३ जीवति भते ! नेरइए ? नेरइए जीवति ?

३४. नेरइयो प्रथम निश्चै करी, जीवै प्राण धरेह ।
जीवै तिको कदा नेरइयो, कदा अनेरइयो कहेह ॥

३४ गोयमा ! नेरइए ताव नियमा जीवति, ज पुण सिय नेरइए, सिय अनेरइए । (श० ६।१

३५. एवं दडक जाणवा, जावत वैमानीक ।
कहिवो सर्व विचार नै, वर जिन वच तहतीक ॥

३५ एव दंडओ नेयव्वो जाव वेमाणियाण । (श० ६।१

३६. भवसिद्धियो प्रभु! नेरइयो, कै नेरइयो भवसिद्धि जाण ?
जिन कहै भव्य कदा नेरइयो, कदा अनेरइयो पिछाण ॥

३६ भवसिद्धिए ण भते ! नेरइए ? नेरइए सिद्धिए ?
गोयमा ! भवसिद्धिए सिय नेरइए, सिय अनेर

३७ नेरइयो पिण कदा भव्य छै, कदा अभव्य अवलोय ।
एव दडक जाणिवा, जाव वैमानिक जोय ॥

३७ नेरइए वि य सिय भवसिद्धिए, सिय : सिद्धिए । (श० ६।:
एव दडओ जाव वेमाणियाण । (श० ६।१

## दूहा

३८. जीव तणा अधिकार थी, जीव विषे हिव जेह ।
अन्यतीर्थी छै तेहनी, वक्तव्यता जु कहेह ॥

३८ जीवाधिकारात्तद्गतमेवान्यतीर्थिकवक्तव्यतमाह (वृ० प० २

३९. *अन्यतीर्थी प्रभु! इम कहै, जावत इम परूपत ॥
सर्व प्राण भूत जीव सत्व ते, एकात दुख वेदत ॥

३९ अण्णउत्थिया ण भते ! एवमाइक्खति जाव वेति—एव खलु सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता ए दुक्ख वेदण वेदेति । (श० ६।१

* लय : पुन नीपजै सुभ जोग सू रे

एवमाहंसु,

४१. हूं पिण इम कहुं चिउं पदे, केइ प्राण भूत सत्व जीव।
वेदै एकांत दुख वेदना, कदाचित साता कहीव॥

४१. अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एगंतदुक्खं वेदणं वेदेंति, आहच्च सायं।

४२. प्राण भूत जीव सत्व ते, केतला इक सुविचार।
वेदै एकांत साता वेदना, असाता वेदै किवार॥

४२ अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एगंतसायं वेदणं वेदेंति, आहच्च अस्सायं।

४३. प्राण भूत जीव सत्व ते, केइ वेमात्रा वेदन वेदंत।
साता वेदै किण अवसरे, कदा असाता हुंत॥

४३. अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता वेमायाए वेदणं वेदेंति, आहच्च सायमसायं। (श० ६।१८४)

४४. किण अर्थे? तव जिन कहै, नरक जीव सुविशेख।
वेदै एकांत दुख वेदना, साता कदाचित देख॥

४४. से केणट्ठेणं?
गोयमा! नेरइया एगंतदुक्खं वेदणं वेदेंति, आहच्च सायं।

## सोरठा

४५. जिन जन्मादि कल्याण, अथवा देव प्रयोग कर।
कदाचित साता जाण, पिण न मिटै क्षेत्र वेदना॥

४५ "उववाएण व सायं नेरइओ देवकम्मुणा वावि[1]।" (वृ० प० २८६)

४६. *भवनपति व्यंतर जोतिपि, वैमानिक सुविचार।
वेदै एकांत साता वेदना, असाता वेदै किवार॥

४६ भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया एगंतसायं वेदणं वेदेंति, आहच्च अस्सायं।

## सोरठा

४७. वल्लभ तणैं विजोग, अथवा प्रहारे करी।
इत्यादीक प्रयोग, कदा असाता वेदना॥

४७ देवा आहननप्रियविप्रयोगादिष्वसाता वेदना वेदयन्तीति। (वृ० प० २८६)

४८. *पृथ्वीकाय जाव मनुष्य ते, वेमात्रा वेदन वेदंत।
साता वेदै किण अवसरे, कदा असाता हुंत॥

४८ पुढविक्काइया जाव मणुस्सा वेमायाए वेदणं वेदेंति—आहच्च सायमसायं।

४९. तिण अर्थे करि गोयमा!, आख्यूं एहवूं ताय।
जीव तणा अधिकार थी, जीव तणुंज कहाय॥

४९ से तेणट्ठेणं। (श० ६।१८५)
जीवाधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० २८६)

५०. नेरइया प्रभु! आतमा करी, जे पुद्गल ग्रही करै आ'र।
स्व तनू क्षेत्र अवगाही रह्या, ते पुद्गल लै तिण वार॥

५०. नेरइया णं भंते! जे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति तं किं आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति?

५१. तनु अवगाह अपेक्षया, अंतर-रहित जे खेत।
तिते अनंतर क्षेत्र विषे रह्या, पुद्गल ग्रही आहारंत?

५१. अणंतरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति?

५२. आत्म क्षेत्र अनंतर क्षेत्र थकी, परंपर जे अन्य खेत।
तिहां रह्या पुद्गल ग्रही, आहार करै छै तेथ?

५२ परंपरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति?

५३. जिन कहै स्व तनु क्षेत्रे रह्या, पुद्गल ग्रही आहार करंत।
अनंतर परंपर क्षेत्र में रह्या पुद्गल नहि आहारंत॥

५३. गोयमा! आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति, नो अणंतरखेत्तोगाढे...नो परंपरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति।

---

* लय : पुन नीपजे सुभ जोग स्यूं रे

१. अपिशब्दात्तीर्थंकरजन्मादिदिनेषु वेदयते। (वृ० प० २८६)

५४. जेम कह्यो छै नारकी, तिम यावत सुजगीस ।
वैमानिक लग जाणिवा, दडक ए चउवीस ॥

५४. जहा नेरइया तहा जाव वेमाणियाणं दडओ
(श० १

**सोरठा**

५५. पाठ आयाए जाण, अर्थ तास पुद्‌गल ग्रही ।
नरक जीव पहिछाण, आहार करै इहविध कह्यू ॥
५६. आगल जे अभिराम, आयाणे इद्री करी ।
जाणै केवलि ताम, वच-साधर्म्य थी प्रश्न हिव ॥

५५ 'अत्तमायाए' त्ति आत्मना आदाय—गृहीत्वे
(वृ० प०
५६ 'अत्तमायाए' इत्युक्तमत आदानसाधर्म्यात्
ण' मित्यादि सूत्र, तत्र च 'आयाणेहिं' ति इ
(वृ० प०

५७. *प्रभु! आयाणे इद्रिय करी, केवली जाणै देखत ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नही, किण अर्थे इम हुत ?

५७ केवली ण भते ! आयाणेहिं जाणइ-पासइ ?
गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ? (श० ६
से केणट्ठेण ?

५८. केवली पूर्व दिशि विषे, जाणै मित वस्तु मान-सहीत ।
अमित वस्तु पिण जाणता, जाव दर्शण आवरण-रहीत ॥
५९. तिण अर्थे करि केवली, इंद्रिय करि जाणै नाय ।
एह उदेशा नी हिवै, सग्रहणि गाथा कहाय ।
६०. सुख दुख जे जीवा तणो, जीवे जीवति भवि हुत ।
एकत दुख आत्मा करि ग्रही, केवली सेव भत !

५८ गोयमा ! केवली ण पुरत्थिमे ण मिय पि
अमिय पि जाणइ जाव निव्वुडे दसणे केवलि
५९ से तेणट्ठेण । (श० ६

६० जीवाण य सुह दुक्ख, जीवे जीवति तहेव भवि
एगतदुक्ख वेयण-अत्तमायाय के
(श० ६।सगहणी
सेव भते ! सेव भते ! त्ति । (श० ६

६१. ए अर्थ कह्यो छठा शतक नो, ए एकसौ दशमी ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' गण गुणमाल ॥

षष्ठशते दशमोद्देशकार्थ ॥६।१०॥

**गीतक-छंद**

१. जिम दंत भजक नालिकेर प्रतै शिला पर योजनै ।
निज पर भणी भोगवा योग्यज करै मानव सुध मनै ॥
२. तिम शतक षष्ठम नालिकेरज मम मती-रद भजनं ।
विद्वत्-सभामय शुभ शिला संयोजि जन-मन-रजनं ॥
३. अति कठिण अर्थज रूप छै जे भेद प्रति आश्रित्य ही ।
निज पर भणी सुगमार्थ म्है्ज प्रकाश प्रति कीधू सही ॥
४ इम वृत्तिकारे कह्यु, ए दृष्टात प्रति देई करी ।
ते वृत्ति प्रति अवलोकनै, ए रची जोडज चित धरी ॥

१-३ प्रतीत्य भेद किल नालिकेर,
षष्ठ शत मन्मतिदन्तभञ्जि ।
तथाऽपि विद्वत्सभसच्छिलाया,
नियोज्य नीत स्वपरोपयोगम् ॥ (वृ० प०

* लय : पुन नीपजै सुभ जोग स्यू रे

## दूहा

१. पष्ठम शतक विषे कह्यो, अर्थ जीवादिक जाण।
तेहिज सप्तम शतक हिव, गाह सग्रहणी आण॥

१ व्याख्यात जीवाद्यर्थप्रतिपादनपरं पष्ठ शत, अथ जीवाद्यर्थप्रतिपादनपरमेव सप्तमशत व्याख्यायते, तत्र चादावेवोद्देशकार्थसङ्ग्रहगाथा— (वृ० प० २८७)

२. आहार अनाहारक तणू, वर पचखाण विचार।
वणस्सइ ससारीक फुन, पक्खी योनि प्रकार॥

२,३ आहार विरति थावर, जीवा पक्खी य आउ अणगारे। छउमत्थ असवुड अण्णउत्थि दस सत्तममि सए॥ (श० ७ सगहणी-गाहा)

३. आयु वली अणगार नो, छद्म असवृत कथ्य।
कालोदाई अन्ययूथि, सप्तम दस अवितथ्य॥

'आहार' त्ति आहारकानाहारकवक्तव्यतार्थ, 'विरइ' त्ति प्रत्याख्यानार्थ., 'थावर' त्ति वनस्पतिवक्तव्यतार्थ, 'जीव' त्ति ससारिजीवप्रज्ञापनार्थ, 'पक्खी य' त्ति खचरजीवयोनिवक्तव्यतार्थं ..........'अन्नउत्थिय' त्ति कालोदायिप्रभृतिपरतीर्थिकवक्तव्यतार्थ (वृ० प० २८७)

४. तिण काले नै तिण समय, जावत गोतम स्वाम।
वीर प्रतै वदी करी, इम बोल्या सिर नाम॥

४ तेण कालेण तेण समएण जाव एवं वदासी—

५. *जीव प्रभु! परभव विषे रे हा, जाता छतां अवलोय। देव जिनेंद्रजी!
कवण समय नै विषे तिको रे हा, अणाहारक हुवै सोय? देव जिनेंद्रजी!

५ जीवे ण भते! क समयमणाहारए भवइ? 'क समय अणाहारए' त्ति परभवं गच्छन् कस्मिन् समयेऽनाहारको भवति? (वृ० प० २८७)

६. जिन कहै प्रथम समय विषे रे हा, कदा आहारक होय। सांभल गोयमा!
कदा अणाहारक हुवै रे हा, न्याय हियै अवलोय। साभल गोयमा!

६ गोयमा! पढमे समए सिय आहारए, सिय अणाहारए,

७ बीजा समय विषे तिको, कदाचित आहारीक।
कदा अणाहारक हुवै, वर जिन वच तहतीक॥

७. बितिए समए सिय आहारए, सिय अणाहारए,

८. तीजा समय विषे वलि, कदा आहारक तेह।
कदा अणाहारक हुवै, श्री जिन वच निसदेह॥

८. ततिए समए सिय आहारए, सिय अणाहारए,

९. चोथा समय विषे हुवै, निश्चै करि आहारीक।
न्याय कहूं हिव एहनो, साभलज्यो तहतीक॥

९ चउत्थे समए नियमा आहारए।

## सोरठा

१०. जीव ऋजुगती जाण, उत्पत्ति-स्थानक जाय तव।
प्रथम समय इज मान, आहारक होवै सही॥

१० यदा जीव ऋजुगत्योत्पादस्थान गच्छति तदा परभवायुप. प्रथम एव समये आहारको भवति। (वृ० प० २८७)

---

* लय : किण किण नारी सिर घड़ो रे

११ इक वक्रे करि पेख, दोय समय करि ऊपजै ।
अनाहारक धुर एक, द्वितीय समय आहारक सही ।।
१२. बे वक्रे करि सोय, तीन समय करि ऊपजै ।
अनाहारक धुर दोय, तृतीय समय आहारक हुवै ।।
१३ त्रिण वक्रे करि धार, च्यार समय करि ऊपजै ।
प्रथम चरम बे आ'र, समय मज्झिम बे आ'र नहि ।।

वा०—ए च्यार समय करि ऊपजै, तिहा प्रथम समय आहारक कह्यु । ते समय पाछला भव नु छेलु समय देशबध जणाय छै । जिण स्थानक ऊपजै, ते भव नु ए समय होवै, ते स्यू सर्व बध कै देश बध ? चोथै समय उत्पत्ति क्षेत्रे आहार ले ते सर्व बध हुवै, पिण ए च्यार समय मे प्रथम समय सर्व बध नही । एकेंद्रिय मे तीन समय ऊणी क्षुल्लक भव देश बध नी स्थिति जघन्य कही । ते भणी च्यार समय मे प्रथम समय, ए एकेंद्रिय ना भव नु न लेखव्यो । ते माटै ए समय पूर्व भव नो देश बध सभवै । (ज० स०)

१४. वृत्ति मझे इम वाय, अन्य आचार्य इम कहै ।
पच समय उपजाय सूत्रे कथन न इम कह्यु ।।

१५. अणाहारक ना जेह, समय तीन केई कहै ।
पाठ मझे नहि तेह, बुद्धिवत न्याय विचारियै ।।
१६. पन्नवण मे तहतीक, अठारमा पद नै विषे ।
छद्मस्थ अणाहारीक, स्थिति कही बे समय नी ।।

वा०—तथा शतक छह, सू० त्रेसठ मध्ये कालादेसे अणाहारक सप्रदेश कै अप्रदेश ? तिहा छह भागा त्रस अणाहारक नै कह्या । तिहा प्रथम भागे सगला सप्रदेश अणाहारक कह्या, सप्रदेश ते केहनै कहियै ? एक समय सूधी अप्रदेश । ते उपरात समय थया हुवै, तेहनै सप्रदेश कहियै । इण न्याय जोता त्रस नै दोय समय अणाहारक कह्यो छै ।

१७. तिण सू सूत्रे वाय, आखी तेहिज सत्य छै ।
विरुद्ध वहु वृत्ति माय, ते किण रीते मानियै ?

१८. *दडक इह विध आखियै, जीव एकेंद्री कथीक ।
चोथा समय विषे हुवै, निश्चै ते आहारीक ।।

* लय : किण किण नारी सिर घड़ो रे

११ यदैकेन वक्रेण द्वाभ्या समयाभ्यामुत्पद्यते तद
नाहारको द्वितीये त्वाहारक । (वृ० प

१२ यदा वक्रद्वयेन त्रिभि समयैरुत्पद्यते तदाऽद्य
रकस्तृतीये त्वाहारक । (वृ० प

१३ यदा तु वक्रत्रयेण चतुर्भि समयैरुत्पद्यते, तद
त्रयेऽनाहारकश्चतुर्थे तु नियमादाहारक[1] ।
(वृ० प

१४ अन्ये त्वाहु —वक्रचतुष्टयमपि सभवति,
विदिशो विदिश्येवोत्पद्यते तत्र समयत्रय
चतुर्थे समये तु नाडीतो निर्गत्य समश्रेणि
पञ्चमेन तूत्पत्तिस्थान प्राप्नोति, तत्र चा
चतुष्टये वक्रचतुष्टय स्यात्, तत्र चानाहार
इद च सूत्रे न दर्शितम् । (वृ० प० २८

१६ छउमत्थअणाहारए ण भते ! छउमत्थए
केवच्चिर होई ? गोयमा ! जहण्णेण एक
उक्कोसेण दो समया । (पन्नवणा

१८ एव दडओ—जीवा य एगिंदिया य चउत्थे
जीवपदे एकेन्द्रियपदेषु च पूर्वोक्तभावनयैव चत
नियमादाहारक इति वाच्यम् । (वृ० प

१ चार समय वाली अन्तराल गति मे जीव ती
तक अनाहारक रहता है। टीकाकार का यह
जयाचार्य के मतव्य से भिन्न है। इसका उल्ले
जयाचार्य ने इसी ढाल की पन्द्रहवी गाथा
दिया है ।

२०. जीव प्रभु! किण समय मे, सर्व थको अल्प आहार ?
जिन कहे ऊपजवा तणो, प्रथम समय सुविचार ॥
२१. चरम समय वलि भव तणो, अल्प आहार लै जीव।
यावत वैमानिक लगै, दडक सर्व कहीव ॥

वा०—इहा गोतम पूछ्यो—किण समय सर्व अल्प आहार ? सर्व अल्प ते सर्वथा थोडो, जेह थी अन्य थोडो आहार नहीं, ते सर्वाल्पाहार, तेहिज सर्वाल्पाहारक। भगवान कहै—प्रथम समयोत्पन्न नै। ते प्रथम समय नै विषे आहार ग्रहण करिवा नो हेतु शरीर ना अल्पपणा थकी सर्व अल्प आहारपणो हुवै तथा भव नै चरम समये हुवै ते आउखा नै छेहला समय नै विषे जाणवू। तिवारै प्रदेश नै सहृतपणै करी एतलै प्रदेश नै संकोचवै करी अल्प शरीर ना अवयव नै विषे रहिवा ना भाव थकी सर्वथी अल्प आहारपणो हुइ।

२०. जीवे ण भते ! क समय सव्वप्पाहारए भवति ?
गोयमा ! पढमसमयोववन्नए वा,
२१ चरिमसमयभवत्थे वा, एत्थ ण जीवे सव्वप्पाहारए भवति। दडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियाण।
(श० ७।२)

वा०—कस्मिन् समये सर्वाल्प—सर्वथा स्तोको न यस्मादन्यः स्तोकतरोऽस्ति स आहारो यस्य स सर्वाल्पाहार स एव सर्वाल्पाहारकः, 'पढमसमयोववन्नए' त्ति प्रथमसमय उत्पन्नस्य प्रथमो वा समयो यत्र तत् प्रथमसमय तदुत्पन्न—उत्पत्तिर्यस्य स तथा, उत्पत्तेः प्रथमसमय इत्यर्थः, तदाहारग्रहणहेतो शरीरस्याल्पत्वात्सर्वाल्पाहारता भवतीति, 'चरमसमयभवत्थे व' त्ति चरमसमये भवस्य—जीवितस्य तिष्ठति य. स तथा, आयुषश्चरमसमय इत्यर्थः तदानी प्रदेशाना सहृतत्वेनाल्पेषुशरीरावयवेषु स्थितत्वात्सर्वाल्पाहारतेति। (वृ० प० २८८)

## दूहा

२२ पूर्वे जीव कह्या तिके, विशेष थी कहिवाह।
लोक सठाण थकी हुवै, लोकपरूपण आह ॥

२३. *हे भगवन! ए लोक छै, किण संठाण पिछाण ?
जिन भाखै सुण गोयमा! सुप्रतिष्ठक सठाण ॥
वा०—सुप्रतिष्ठक ते शरयन्त्रक, ते वली इहा ऊपरि स्थापित कलसादिक ग्रहिवू।
२४. ऊधा सरावला ऊपरै, थाप्यो कलश विशेष।
ए आकारे लोक छै, हिव एहिज अर्थ कहेस ॥
२५. हेठे[1] विस्तीरण कह्यो, जाव ऊपर पहिछान।
ऊर्ध्व मृदग आकार नै, आख्यो ए सस्थान ॥

२२. अनाहारकत्व च जीवाना विशेषतो लोकसस्थानवशाद् भवतीति लोकप्ररूपणसूत्रम्—
(वृ० प० २८८)
२३ कि सठिए ण भते ! लोए पण्णत्ते ?
गोयमा ! सुपइट्ठगसठिए लोए पण्णत्ते—
वा०—सुप्रतिष्ठक शरयन्त्रक तच्चेह उपरिस्थापितकलशादिक ग्राह्य, (वृ० प० २८८)
२४ तथाविधेनैव लोकमादृश्योपपत्तेरिति, एतस्यैव भावनार्थमाह— (वृ० प० २८८)
२५ हेट्ठा विच्छिण्णे,

---

* लय : किण किण नारी सिर घडो रे

१ इस ढाल की पचीसवी गाथा मे जाव शब्द कहकर सक्षिप्त पाठ की सूचना दी है, पर छव्वीसवी गाथा मे जाव शब्द से गृहीत होने वाला पाठ आ गया है। इसलिए इन गाथाओं के सामने अगसुत्ताणि भाग २ का पूरा पाठ उद्धृत किया गया है।

### सोरठा

२६. जाव शब्द थी जाण, सक्षिप्त ऊर्द्ध विशाल है।
तल पल्यक सठाण, मध्य प्रवर वज्र विग्रहिक॥
२७ आख्यो लोक-स्वरूप, लोक विषे जे केवली।
करै तिको तद्रूप, हिव देखाडै तेहनै॥

२८. *तेह सास्वता लोक मे, तल विस्तीरण माय।
मध्य विषे सक्षिप्त छै, जावत वलि कहिवाय॥
२९. ऊपर ऊर्द्ध मृदग नै, आकारे सठाण।
तेह विपे जे जीव नै, वले अजीव पिछाण॥
३०. उत्पन्न ज्ञान 'दर्शन तणा, धरणहार अरहत।
केवली जिन जाणै अछै, वलि देखै चित शत॥
३१ पछै सीझै बूझै सही, जाव करै दुख अत।
सिद्ध तणा सुख सास्वता, पामै तेह अनत॥

२६. मज्झे सखित्ते, उप्पि विसाले, अहे पलिय
मज्झे वरवइरविग्गहिए, उप्पि उद्धमुइगाका
२७ अनन्तर लोकस्वरूपमुक्त, तत्र च यत्केवली
तद्दर्शयन्नाह— (वृ० प०

२८ तसि च ण सासयसि लोगसि हेट्ठा वि
जाव
२९, ३० उप्पि उद्धमुइगाकारसठियसि उप्पण्णना
धरे अरहा जिणे केवली जीवे वि जाण
अजीवे वि जाणइ-पासइ।

३१ तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परि
सव्वदुक्खाण अत करेइ। (श

### दूहा

३२. सिद्ध क्रिया नो अतकृत, विशेप थी ते आम।
श्रावक नै किरिया हिवै, देखाडै छै ताम॥

३३ *श्रमणोपासक छै तिको, करी सामायक जान।
वैठो साधु रै स्थानके, तेहनै हे भगवान!
३४. स्यू इरियावहि क्रिया हुवै, कै हुवै छै सपराय?
जिन कहै इरियावहि नही, सपरायकी थाय॥

३५. किण अर्थे? तव जिन कहै, श्रमणोपासक जान।
सामायक करिनै रह्यो, साधु रहै ते स्थान॥

३६ तेहनु जीवज आतमा, अधिकरण कहिवाय।
हल सकटादि कपाय नै, आश्रयभूतज थाय॥

३७ आतम तसु अधिकरण छै, ते कारण करि ताय।
इरियावहि क्रिया नही, सपरायकी थाय॥
३८ तिण अर्थे करि गोयमा! आख्यू एहवू ताय।
श्रावक ना अधिकार थी, वलि तेहिज कहिवाय॥

३२ 'अत करेइ' त्ति, अत्र क्रियोक्ता, अथ तद्
श्रमणोपासकस्य दर्शयन्नाह— (वृ० प०

३३ समणोवासगस्स ण भते! सामाइयकडस्स
वस्सए अच्छमाणस्स
३४ तस्स ण भते! किं रियावहिया किरिया क
सपराइया किरिया कज्जइ?
गोयमा! नो रियावहिया किरिया कज्जइ, स
किरिया कज्जइ। (श
३५. से केणट्ठेण भते! एव वुच्चइ—नो रिय
किरिया कज्जइ? सपराइया किरिया कज्ज
गोयमा! समणोवासयस्स ण सामाइयकडस्स
वस्सए अच्छमाणस्स
३६ आया अहिगरणी भवइ,
आत्मा—जीव अधिकरणानि—हलशक
कपायाश्रयभूतानि यस्य सन्ति सोऽधिकरणी।
(वृ० प०
३७ आयाहिगरणवत्तिय च ण तस्स नो रिय
किरिया कज्जइ, सपराइया किरिया कज्जइ।
३८ से तेणट्ठेण। (श०
श्रमणोपासकाधिकारादेव (वृ० प०

---

* लय : किण किण नारी सिर घड़ो रे

४०. कह्यो धर्मसी एम, श्रावक सामायक मझ।
अव्रत रही छै तेम, अधिकरण अव्रत कही॥

४१ वली सुर्वथा जाण, उपगरण वोसिराव्या नथी।
तिण कारण पहिछाण, अधिकरण छै आतमा॥

४२. शत अप्टम पचमुदेश, श्रावक सामायिक मझे।
भड हर्या सुविशेख, पार्या गवेपणा करै॥

४३ वोसिराव्यु भड जेह, ममत्व-भाव पिण तेहनु।
पचख्यो नहि छै तेह, ते माटै भड तेहनो॥

४४ वलि सामायिक कीध, तसु स्त्री कोई भोगवै।
स्त्री तेहनी प्रसीध, आखी छै जिनवर तिहां॥

४५. भावे भावना एम, पुत्रादिक नहि माहिरा।
न मिट्यो वधन प्रेम, तिण कारण तेहनीज छै॥

४६. इहा अव्रत रहि ताय, तिण सू सामायिक मझे।
तसु आतम अधिकाय, अधिकरणी कहियै सही॥

४७. सोलम-शतक कहीव, प्रथम उदेशे प्रश्न ए।
अधिकरण प्रभु! जीव, स्यू अधिकरणी जीव छै?

४८ जिन भाखै ए जीव, अधिकरणी अधिकरण पिण।
ते किण अर्थ कहीव? जिन कहै अव्रत आसरी॥

४९. इहा अविरत नै जोय, अधिकरण आखी अछै।
साधू विण अवलोय, सगलाई दडक मझे॥

५०. साधू रै पहिछाण, जावजीव अविरत तणा।
सर्व थकी पचखाण, तिण सू अविरत नहि रही॥

५१. एहिज उदेशा माय, आहारक तन निपजावतो।
अधिकरण प्रभु! थाय, कै अधिकरणी जीव छै?

५२. तव भाखै जिनराय, प्रमाद आश्री अधिकरण।
अधिकरणी पिण थाय, आहारक तनु निपजावतो॥

५३. न कही अविरत ताय, प्रमाद आश्री इहा कही।
ते अशुभ जोग कहिवाय, ते तो पचख्यो छै तिणे॥

५४. पिण तिण वेला जाण, उत्सुकभावज आवियो।
आज्ञा भग पिछाण, आलोई नै सुध हुवै॥

५५. ए अशुभ जोग नै जाण, आख्यो छै प्रमाद इहा।
जावजीव पचखाण, दीक्षा लेता तिण किया॥

५६. श्रावक करि सामाय, ममत्व-भाव पचख्यो नथी।
वलि अनुमोदन ताय, ते पिण दीसै छै प्रत्यक्ष॥

४२,४३. भगवई ८।२३०-२३२

४४,४५ भगवई ८।२३३-२३५

४६-४८ भगवई १६।८,९

५१-५३ भगवई १६।२३,२४

५७ नव भागे करि जाण, सामायक कीधी कदा।
वाह्यपणैं पचखाण, अभ्यंतर पचख्यो नथी॥
५८. इमहिज पोसा ताहि, महिना मे षट-पट करै।
बार मास रै माहि, वोहितर तो इह विधे॥
५९. वलि सवच्छरी आदि, पोसा ते अठपहरिया।
त्या दिन तणोज लाधि, व्याज आवै तसु घर मझै॥
६०. लाभ खर्च वलि हाण, द्रव्य सहू नो ते धणी।
नव भागे पिण जाण, ममत्व-भाव भ्यंतर रह्यु॥
६१. ग्यारमी पडिमा माहि, श्रमण सरीखो तसु कह्यो।
पेज्ज बधण तसु ताहि, ज्ञात तणो छूटो नथी॥
६२. तिण कारण छे तास, न्यातीला री गोचरी।
दशाश्रुतखध विमास, तिमहिज सामायिक मझै॥
६३. ते माटै पहिछाण, सामायिक पोसा मझै।
अविरति ना पचखाण, सर्व थकी कीधा नथी॥
६४. आणद अणसण माय, आख्यो हू गृहस्थ अछू।
गृहस्थावास वसाय, अवधि इतरो मुझ ऊपनो॥
६५. आणद अणसण माहि, गृहस्थपणो पोतै कह्य।
तो पडिमा मे ताहि, किम गृहस्थ कहियै नही॥
६६. गृहस्थ नैं असणादि, दीधा नैं अनुमोदिया।
दड चोमासी लाधि, नशीत उदेशे पनरमें॥
६७. तिण सूं पडिमा माहि, आहार तणी अविरति अछै।
देणहार नैं ताहि, आज्ञा नहिं अरिहंत नी॥
६८. तिण कारण कहिवाय, श्रावक नी जे आतमा।
सामायिक रै माय, अधिकरण इण न्याय छै'॥
(ज० स०)

६९. *हे भगवन! श्रावक तिको, पहिलांईज पिछाण।
त्रस वधवो पचख्यो तिणे, पृथ्वी ना अपचखाण॥

७०. ते पृथ्वी खणते थके, कोइक त्रस हणाय।
तो प्रभु! श्रावक व्रत तणो, अतिचार-रूप भग थाय?
७१. जिन कहै अर्थ समर्थ नही, नहिं निश्चै प्रवर्त्तेह।
त्रस नो वध करिवा भणी, सकल्पी नै जेह॥

**सोरठा**

७२. त्रस वध करिवो मोय, इम संकल्पी निवर्त्यो।
संकल्प न थयो कोय, तिण सू व्रत अतिचार नहिं॥

* लय : किण किण नारी सिर घड़ो रे

६१,६२. अहावरा एक्कारसमा उवामगपडिमा''' '''के॰
'से णातए' पेज्जवधणे अव्वोच्छिन्ने भवति एव
कप्पति नायवीथिं एत्तए। (दसासुय० ६।१॰

६४ तए ण से आणदे समणोवासए'''''''मम वि गिहि॰
गिहमज्झावसतस्स ओहिणाणे समुप्पण्णे।
(उवासगदसाओ १।७६

६६ जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स ॰
असण वा (४) देति, दॆत वा सातिज्जति।
(निसीहज्झयण १५।७६

६९ समणोवासगस्स ण भते! पुव्वामेव तसपाणसमार॰
पच्चक्खाए भवइ, पुढवि-समारभे अपच्चक्खा॰
भवइ।
७०. से य पुढवि खणमाणे अण्णयर तस पाण विहि॰
सेज्जा, से ण भते! त वय अतिचरति?
७१ णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु से तस्स अतिवाया॰
आउट्टति। (श० ७।६)
'तस्य' त्रसप्राणस्य 'अतिपाताय' वधाय 'आवर्त्तते
प्रवर्तते इति न सकल्पवधोऽसौ। (वृ० प० २८९)
७२ सकल्पवधादेव च निवृत्तोऽसौ, न चैप तस्य सपन्न
इति नासावतिचरति व्रत, (वृ० प० २८९)

७४. ते पृथ्वी खणते थके, इक तरु-मूल छिदाय ।
तो प्रभु! श्रावक व्रत तणो, अतिचार-रूप भग थाय ?
७५. जिन कहै अर्थ समर्थ नही, नहिं निश्चै प्रवर्त्तेह ।
वनस्पती हणवा भणी, सकल्पी न करेह ।।
७६ श्रमणोपासक हे प्रभु ! तथारूप जे योग्य ।
श्रमण अनै माहण प्रतै, विहुं वच मुनि प्रयोग्य ।।
७७. फासु अचित्तज एपणी, असणादिक जे च्यार ।
प्रतिलाभतो स्यूं लहे ? हिव जिन उत्तर सार ।।
७८. तथारूप श्रमण माहण भणी, श्रमणोपासक जेह ।
असणादिक प्रतिलाभतो, अधिक भक्ति करि एह ।।

७९. श्रमण अनै माहण भणी, पवर समाधि पमाय ।
तेहिज समाधि लहै तिको, दाने करि नैं ताय ।।

८०. श्रमणोपासक हे प्रभु! श्रमण-माहण प्रति जेह ।
जाव आहार प्रतिलाभतो, भक्ति भाव करि तेह ।।

८१. किं चयइ ते स्यूं दियै ? जिन कहे जीवित दान ।
असणादिक देतो छतो, जीवित नी परि जान ।।

८२. दुच्चय चयइ पाठ छै, दुस्त्यज त्याग पिछान ।
देवू छै जे दोहिलो, तेह दियै ए दान ।।

८३. दुक्कर करेइ पाठ छै, करता दुक्कर जाण ।
करणी तेह करै तिका, पात्रदान गुणखाण ।।
८४ अथवा किं चयइ प्रभु ! ते नर स्यू छाडेह ?
जिन कहै दीर्घ स्थिति कर्म नी, तेहनै तेह तजेह ।।

८५. दुच्चयं जे दुष्ट कर्म नो, सचय नैज तजेह ।
दुक्कर अपूर्वकरण थी, ग्रथी-भेद करेह ।।
८६. दुर्लभ अनिवृत्ति-करण नै, लाभे तेह विचार ।
वोधि समदृष्टि प्रति अनुभवै, पछै जावै मोक्ष मझार ।।

---

* लय : किण किण नारी सिर घड़ो रे

७४. स य पुढाव खणमाण अण्णयरस्स ६५५८स्स मू
छिदेज्जा, से ण भते ! त वय अतिचरति ?
७५ नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु से तस्स अतिवायाए
आउट्टति । (श० ७।७)
७६ समणोवासए ण भते ! तहारूव समण वा माहण वा

७७. फासु-एसणिज्जेण असण-पाण-खाइम-साइमेण पडिला-
भेमाणे किं लब्भइ ?
७८ गोयमा ! समणोवासए ण तहारूव समण वा माहण
वा फासु-एसणिज्जेण असण-पाण-खाइम-साइमेणं
पडिलाभेमाणे
७९ तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा समाहिं उप्पा-
एति, समाहिकारए ण तामेव समाहिं पडिलभइ ।
(श० ७।८)
८० समणोवासए ण भते ! तहारूव समण वा माहण
वा फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं
पडिलाभेमाणे
८१. किं चयति ?
गोयमा ! जीविय चयति,
'किं चयइ ?' त्ति किं ददातीत्यर्थः 'जीविय चयइ'
त्ति जीवितमिव ददाति, अन्नादिद्रव्यं यच्छन्
जीवितस्यैव त्याग करोतीत्यर्थः । (वृ० प० २८९)
८२. दुच्चय चयति,
दुस्त्यजमेतद्, त्यागस्य दुष्करत्वात् ।
(वृ० प० २८९)
८३ दुक्कर करेति,

८४ अथवा किं त्यजति—किं विरहयति ? उच्यते,
जीवितमिव जीवित कर्म्मणो दीर्घा स्थितिं ।
(वृ० प० २८९)
८५. 'दुच्चय' ति दुष्ट कर्म्मद्रव्यसञ्चय 'दुक्कर' त्ति
दुष्करमपूर्वकरणतो ग्रन्थिभेद । (वृ० प० २८९)
८६. दुल्लह लहइ, वोहिं वुज्झइ, तओ पच्छा सिज्झति
जाव अत करेति । (श० ७।९)
'दुल्लभ लभइ' त्ति अनिवृत्तिकरण लभते, ततश्च
'वोहिं वुज्झइ' त्ति 'वोधि' सम्यग्दर्शन 'वुध्यते'
अनुभवति । (वृ० प० २८९)

## यतनी

८७. श्रमणोपासक पहिछाण, साधु नी सेवा मात्र सुजाण।
एह सूत्र छै ते अपेक्षाय, वृत्तिकार कह्यु इम वाय॥

८८. साधु नी सेवा थी पिछाण, फासु-एषणीक नों जाण।
तथा श्रावक पिण ए होय, ते पिण सर्वज्ञ जाणे सोय॥

८९ बोधि खायक सम्यक्त पाय, दर्शणमोहणी सर्व खपाय।
तथा बोधि धर्म चारित तथ्य, ते पिण ज्ञानी वदै ते सत्य॥

९० श्रमण माहण नें सुखकार, प्रतिलाभै च्यारू आहार।
श्रमण माहण ते मुनि जान, त्यारी सेवा करी देवै दान॥

९१ छेहडै पामै ते निर्वाण, कह्यु अकर्मपणु प्रधान।
हिव अकर्म सूत्र कहाय, तिण रो आगल प्रश्न पूछाय॥

९२. *अक इकोत्तर नो देश ए, एकसौ ग्यारमी ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल॥

८७ इह च श्रमणोपासक साधूपासनामात्रकारी तदपेक्षयैवास्य सूत्रार्थस्य घटमानत्वात्।
(वृ० प० :

९१ अनन्तरमकर्म्मत्वमुक्तमतोऽकर्म्मसूत्रम्—
(वृ० प० :

## ढाल : ११२

### दूहा

१. कर्म रहित जे जीव नै, गती—गमन भगवान।
स्यू अंगीकृत कीजियै? जिन कहै हंता जान॥

२ कर्म रहित छै जेहनै, गती—गमण भगवत!
अंगीकृत किम कीजियै? हिव जिन उत्तर तंत॥

३. निस्सगपणै करि नै प्रथम, अघमल नैं अपहाय।
नीरागपणै करि नै वली, मोह टालवै थाय॥

४. गति परिणाम करी वली, गति स्वभाव करि सोय।
तुबा नी परि जाणवो, आगै वर्णन होय॥

५. कर्म बधन नै छेदवै, एरड फल जिम एह।
इंधन कर्म विमोचवै, धूम्र तणी परि जेह॥

६. पूर्व प्रयोग करी वलि, सकर्मपणा रै माय।
गतिपरिणामपणै करी, वाण तणी पर थाय॥

१. अत्थि णं भते! अकम्मस्स गती पण्णायति?
हता अत्थि। (श० ७

२ कहण्ण भते! अकम्मस्स गती पण्णायति?

३ गोयमा! निस्सगयाए निरगणयाए,
'नि सङ्गतया' कर्म्ममलापगमेन 'निरगणयाए' नीरागतया मोहापगमेन। (वृ० प० :

४. गतिपरिणामेण,
'गतिपरिणामेण ति' गतिस्वभावतयाऽलाबुद्रव्यस
(वृ० प० २

५ बधणछेदणयाए, निरिंधणयाए,
'बधणच्छेयणयाए' त्ति कर्म्मबन्धनछेदनेन एरण्ड स्येव 'निरन्धणताए' त्ति कर्मेन्धनविमो धूमस्येव। (वृ० प० २

६. पुव्वप्पओगेण,
सकर्मताया गतिपरिणामवत्त्वेन वाणस्येवेति।
(वृ० प० २१

---

* लय : किण किण नारी सिर घड़ो रे

वा०—इहा निस्सगपणै करी, नीरागपणै करी, गति-परिणाम करी, बधण नै छेदवै करी, निरधणपणै करी, पूर्वप्रयोगे करी—ए छह प्रकारे करी अकर्म नै शिवगति अगीकार कीजियै । इम प्रभु कह्यां । तिवारै गोतम निस्सग, नीराग, गति-परिणाम—ए तीन नु प्रश्न वली पूछै—

*आ तो थारी वाण लगै हो प्रभु ! प्यारी,
थारी सूरत री बलिहारी ।
आ तो थारी वाण लगै हो प्रभु ! प्यारी । (ध्रुपद)

८. हे भगवत ! निस्सगपणै करी, कर्म-मल दूर निवारी ।
निरगणयाए नीरागपणै करी, मोह कर्म नै टारी ॥

८ कहण्ण भते ! निस्सगयाए, निरगणयाए,

९. गइ-परिणाम ते गति नै स्वभावे, तुवडी नी परि धारी ।
कर्म रहित नै हे प्रभ ! शिव-गति किम कीजियै अगीकारी ?

९ गतिपरिणामेण अकम्मस्स गती पण्णायति ?

१० श्री जिन भाखै यथादृष्टाते, कोइक पुरुप तिवारी ।
सूको तूबडो छिद्र रहित ते, उत्तम अधिक उदारी ॥
(आ तो जिन वाण सदा जयकारी)

१० से जहानामए केइ पुरिसे सुक्क तुव निच्छड्ड

११. वायु प्रमुख करिनै न हणाणो, अनुक्रम परिक्रमकारी ।
दर्भ ते मूल सहित डाभे करि, छिन्न मूल कुस धारी ॥

१२. ते डाभ कुसे करि वीटै तुबो, लेप मट्टी अठ कारी ।
इक-इक लेप दे तडके सुकावै, इम अठ लेप प्रकारी ॥

११, १२ निरुवहय आणुपुव्वीए परिकम्मेमाणे-परिकम्मेमाणे दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ, वेढेत्ता अट्ठहिं मट्टियालेवेहिं लिपइ, लिपित्ता उण्हे दलयति, 'निरुवहय' ति वाताद्यनुपहत 'दब्भेहि य' त्ति दर्भैः समूलैः 'कुसेहि य' त्ति कुशैः—दर्भैरेव छिन्नमूलै
(वृ० प० २६०)

१३. सूका छता ते तुम्ब प्रतै हिव, उदग अथाग मझारी ।
जेह उदक तिरियो नहि जावै, पुरुप थी ऊडो अपारी ॥

१३ भूति-भूति सुक्क समाण अत्थाहमतारमपोरिसियसि

१४. तेह उदक मे प्रक्षेपै तुबो, सुण गोतम ! गणधारी ।
जेह तुवडो अष्ट माटी नै, लेप करी तिहवारी ॥

१४. उदगसि पक्खिवेज्जा, से नूण गोयमा ! से तुवे तेसि अट्ठण्ह मट्टियालेवाण ।

१५. गुरुयत्ताए विस्तीर्णपणै करि, भारियत्ताए भारी ।
गुरुसभारियत्ताए तणो अर्थ, उभयपणै अधिकारी ॥

१५ गुरुयत्ताए भारियत्ताए गुरुसभारियत्ताए

१६. उदक तणा तल प्रति छाडी नै, अधो धरणि तल धारी ।
भूमि विषे रहै तेह तूवडो ? इम प्रभु पूछै तिवारी ॥

१६ सलिलतलमतिवइत्ता अहे धरणितलपइट्ठाणे भवइ ?

१७ हा भगवंत ! रहै कहै गोयम, तव बोल्या जगतारी ।
हिव ते तुव अठ लेप माटी ना, क्षय थये थके तिवारी ॥

१७ हता भवइ ।
अहे ण से तुवे तेसि अट्ठण्ह मट्टियालेवाण परिक्खएण

१८. पृथ्वी तणा तल प्रति छाडी नै, उदक ऊपर रहै धारी ।
इम जिन पूछै गोतम बोलै, हा प्रभु ! रहै तिवारी ॥

१८ धरणितलमतिवइत्ता उप्पि सलिलतलपइट्ठाणे भवइ ?
हता भवइ ।

१९. वीर कहै तव इम निश्चै करि, सुण गोयम ! सुखकारी ।
निस्सगपणै निरागपणै करि, गति-परिणाम विचारी ॥

१९ एव खलु गोयमा ! निस्सगयाए, निरगणयाए, गति-परिणामेण

---

* लय : आवत मेरी गलियन मे गिरधारी

२०. कर्म रहित नै वर शिव-गति नो, अभ्युपगम अगीकारी ।
अर्थ हिवै बधन छेदन नो, साभलज्यो हितकारी ।।
२१. किम भगवत ! बंधन छेदन करि, कर्म रहित नै सारी ।
शिव-गति नो अगीकार करेवो ! वीर कहै तिणवारी ।।
२२. यथादृष्टात कलायज नामै, धान तणी फलि धारी ।
फली मूग नै उडद तणी वलि, सिवलि तरु नी विचारी ।।

२३ अथवा एरड तणी वलि मीजी, तावड़ै दीधी तिवारी ।
सूकी थकी फूटी निकली नै, पड़ै एकत भूमि मझारी ।।
२४ इम निश्चै करिनै हे गोतम ! बधन छेदवै सारी ।
कर्म रहित नै वर शिव-गति नो, अभ्युपगम है उदारी ।।
२५. जे भगवत ! निरधणपणै करि, कर्म रहित नै उदारी ।
किम अगीकार करै शिव-गति वर ? हिव जिन वाण उचारी ।।
२६. यथादृष्टाते इधण रहित जे, धूम्र स्वभावे तिवारी ।
निर्व्याघातपणै ऊची गति, तेह प्रवर्तै जिवारी ।।

२७. इम निश्चै करि नै हे गोतम ! कर्म इधन अपहारी ।
कर्म रहित नै शिव गति सुदर, कीजियै छै अगीकारी ।।
२८. पूर्व प्रयोगे करि किम प्रभुजी ! कर्म रहित नै सारी ।
शिव-गति वर अगीकार कीजियै ? हिव जिन भाखै उदारी ।।
२९. यथादृष्टात धनुष्य थी छूटो, कड ते वाण तिवारी ।
लक्ष-वेध नै साहमो प्रवर्तै, निर्व्याघात गतिकारी ।।
३०. इम निश्चै करि नै हे गोतम ! पूर्व प्रयोग विचारी ।
कर्म रहित नै मोक्ष तणी गति, प्रवर्त्तै सुखकारी ।।
३१ इम निश्चै करि नै हे गोतम ! निस्सगपणै उदारी ।
नीरागपणै जाव पूर्व प्रयोगे, अकर्म नै गति सारी ।।
३२. एकोत्तर नु देश ढाल ए, एक सौ बारमी धारी ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' सपति सारी ।।

## ढाल ११३

### दूहा

१. कही अकर्मी नी कथा, तास विपर्यय जेह ।
कर्म सहित जे जीव नी, वक्तव्यताज कहेह ।।

२० अकम्मस्स गती पण्णायति । (श० ७।

२१ कहण्ण भते ! बधणछेदणयाए अकम्मस्स पण्णायति ?

२२ गोयमा ! से जहानामए कलसिबलिया इ मुग्गसिवलिया इ वा, माससिवलिया इ वा, लिसिवलिया इ वा
'कलसिवलियाइ वा' कलायाभिधानधान्यफ 'सिबलि' त्ति वृक्षविशेष । (वृ० प० २

२३ एरडमिजिया इ वा उण्हे दिन्ना सुक्का स फुडित्ता ण एगतमत गच्छइ ।

२४. एव खलु गोयमा ! बधणछेदणयाए अकम्मस्स पण्णायति । (श० ७।

२५ कहण्ण भते ! निरिंधणयाए अकम्मस्स पण्णायति ?

२६ गोयमा ! से जहानामए धूमस्स इधणविप्पमुव उड्ढ वीससाए निव्वाघाएण गती पवत्तति ।
'विस्ससया' स्वभावेन । (वृ० प० २

२७ एव खलु गोयमा ! निरिंधणयाए अकम्मस्स पण्णायति । (श० ७।

२८ कहण्ण भते ! पुव्वप्पओगेण अकम्मस्स पण्णायति ?

२९ गोयमा ! से जहानामए कडस्स कोदडविप्पमुव लक्खाभिमुही निव्वाघाएणं गती पवत्तइ ।

३० एव खलु गोयमा ! पुव्वप्पओगेण अकम्मस्स पण्णायति ।

३१ एव खलु गोयमा ! निस्सगयाए, निरगणयाए, (स० पा०) पुव्वप्पओगेण अकम्मस्स पण्णायति । (श० ७।

१ अकर्म्मणो वक्तव्यतोक्ता, अथाकर्म्मविपर्यय कर्म्मणो वक्तव्यतामाह— (वृ० प० २

३. के अदुखी कर्म करी फर्श्या बध्या स्वाम ?
उभय प्रश्न ए पूछिया, हिव जिन भाखै ताम ॥
४. दुखी कर्मवत कर्म करि फर्श्यो कर्म बधाय ।
अदुखी कर्म रहीत जे, कर्मे फर्श्यो नाय ॥
५. अदुखी कर्म रहीत नें, कर्म फर्श जो थाय ।
तो अदुखी जे सिद्ध नें, कर्म प्रसग कहाय ॥
६. दुखी कर्मवत नारकी, कर्मे फर्श्यो जेह ।
अदुखी नारक अकर्मी, कर्म करी फर्शेह ?
७. जिन भाखै जे नारकी, दुखी कर्मवत जोय ।
दुख निमित्त कर्मे करी, फर्श्यो ते अवलोय ॥
८. अदुखी अकर्म नारकी, कर्मे फर्श्यो नाय ।
अदुखी नारक छै नही, प्रश्न रूप कहिवाय ॥
९. पूर्वे भोगव्यो नरक पद, तेह जीव नें जाण ।
नारक कहियै एहवू, किण ही टवै पिछाण ॥
१०. नेगम नय मानै अछै, त्रिहू काल अवदात ।
तिण वच करि केई कहै, जाणै केवली वात ॥
११. इम दंडक यावत कह्यो, वैमानिक पर्यंत ।
कहिवा दडक पच इम, आगल नाम उदत ॥
१२. दुखी कर्मवत जीव ते, दुख कर्मे करि ताय ।
फर्श्यो बाध्यो कर्म नें, प्रथम आलाव कहाय ॥
१३. दुखी कर्मवत जीव जे, कर्म प्रतेज ग्रहंत ।
निधत्त नें निकाच फुनि, समस्तपणै करत ॥
१४. दुखी कर्मवत जीव जे, कर्म उदीरै जेह ।
दुखी कर्मवत कर्म नें, वेदै चउथो एह ॥
१५. दुखी कर्मवत जीव जे, कर्म निरजरै जान ।
आलावो ए पचमो, आख्यो श्री भगवान ॥
१६. कर्म बध अधिकार थी, अघ बध चित सहीत ।
ते अणगार तणो हिवै, कहियै सूत्र वदीत ॥
१७. *अणगार अहो भगवंत ! उपयोग रहित चालंत हो ।
जिनवर जयकारी ॥
उपयोग रहित पहिछाण, ऊभो रहितो जिह स्थान हो ।
जिनवर जयकारी ॥
१८. उपयोग रहित वेसतो, उपयोग रहित सूवतो ।
वस्त्र पात्र कंबल रजुहरण, उपयोग रहित करै ग्रहण ॥

*लय : हिवै कहै छै रूप श्री नार

दुक्खी भंते ! दुक्खेण फुडे ?
अदुक्खी दुक्खेण फुडे ?
४. गोयमा ! दुक्खी दुक्खेण फुडे, नो अदुक्खी दुक्खेण फुडे । (श० ७।१६)
५. अदुःखी—अकर्म्मा दुःखेन स्पृष्ट, सिद्धस्यापि तत्-प्रसङ्गादिति । (वृ० प० २९१)
६. दुक्खी भंते ! नेरइए दुक्खेण फुडे ? अदुक्खी नेरइए दुक्खेण फुडे ?
७ गोयमा ! दुक्खी नेरइए दुक्खेण फुडे ।
८. नो अदुक्खी नेरइए दुक्खेण फुडे । (श० ७।१७)
११ एव दडओ जाव वेमाणियाण । (श० ७।१८)
एव पच दडगा नेयव्वा—
१२ दुक्खी दुक्खेण फुडे,
१३. दुक्खी दुक्ख परियायइ,
'दुःखी' कर्म्मवान् 'दुःख' कर्म्म 'पर्याददाति' सामस्त्येनोपादत्ते, निधत्तादि करोतीत्यर्थः । (वृ० प० २९१)
१४. दुक्खी दुक्खं उदीरेइ, दुक्खी दुक्ख वेदेति,
१५. दुक्खी दुक्ख निज्जरेति । (श० ७।१९)
१६. कर्म्मबन्धाधिकारात्कर्म्मबन्धचिन्तान्वितमनगार-सूत्रम्— (वृ० प० २९१)
१७. अणगारस्स ण भंते ! अणाउत्त गच्छमाणस्स वा, चिट्ठमाणस्स वा,
१८ निसीयमाणस्स वा, तुयट्टमाणस्स वा, अणाउत्तं वत्थं पडिग्गह कबल पायपुछण गेण्हमाणस्स वा,

`. ूक, इम वार वार ते चूकै ।
२ १५ वहि तसु थाय, अथवा वंधै सपराय ?
२०. जिन कहै इरियावहि नाय, सपरायकी किरिया वंधाय ।
जव गोतम पूछै न्याय, किण अर्थे इम कहिवाय ?

२१ जिन कहै क्रोध अरु मान, माया अरु लोभ पिछान हो ।
गोयम गणधारी ।।
जिण रै उदय न होय प्रसिद्धा, उपशात तथा क्षय कीधा हो ।
गोयम गणधारी ।।
२२. तसु इरियावहि वंधाय, हिव सपराय नो न्याय ।
जसु क्रोध मान अरु माय, वलि लोभ उदय कहिवाय ।।
२३ उपशात सर्वथा नाही, वलि क्षय पिण न किया त्याही ।
तसु सपरायकी किरिया, सरागी तणे उच्चरिया ।।
२४. जिम कह्यो सूत्र मे सागी, तिम प्रवर्त्ते वीतरागी ।
ते कदेई न चूकै ताय, तसु इरियावहि वंधाय ।।'
२५ विपरीत प्रवर्त्ते ताप, तसु सपरायकी पाप ।
उत्सूत्र प्रवर्ते एह, तिण अर्थे एम कहेह ।।

१९. निक्खिवमाणस्स वा तस्स णं भते ! किं रियावहिया किरिया कज्जइ ? सपराइया किरिया कज्जइ ?
२० गोयमा ! नो रियावहिया किरिया कज्जइ, सपराइया किरिया कज्जइ । (श० ७।२०)
से केणट्ठेण ?
२१ गोयमा ! जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा भवति
'वोच्छिन्ने' त्ति अनुदिता, (वृ० प० २९२)
२२, २३ तस्स ण रियावहिया किरिया कज्जइ, जस्स ण कोह-माण-माया-लोभा अवोच्छिण्णा भवति तस्स ण सपराइया किरिया कज्जइ ।
२४ अहासुत्त रीयमाणस्स रियावहिया किरिया कज्जइ,
२५ उस्सुत्त रीयमाणस्स सपराइया किरिया कज्जइ । से ण उस्सुत्तमेव रीयती । से तेणट्ठेण । (श० ७।२१)

**सोरठा**

२६. आख्यो ए अणगार, तेह तणा अधिकार थी ।
तसु भोजन पान विचार, जेह सूत्र कहियै हिवै ।।
२७ *अथ हिवै अहो भगवान ! चारित्र ईंधन पहिछान ।
अगार कोयला देख, ते सरिखो करै विशेख ।।
२८ जे भोजन विपय सुराग, तेहिज छै अग्नि अथाग ।
जे वर्त्ते अगार सहीत, तेह सअगार कहीत ।।
२९ सअगार पाणी नै भोजन, तेहनो स्यू अर्थ कथन ?
ए प्रथम प्रश्न आख्यात, हिव द्वितीय सधूम कहात ।।
३०. चरण रूप इधण नै एह, करै धूम सरीखो जेह ।
ए द्वेप सहित करै आहार, तेहनो कुण अर्थ विचार ।।
३१ लोलपणो आणी मन माय, द्रव्य सू अन्य द्रव्य मिलाय ।
दुष्ट दोप सयोजन नाम, तसु कवण अर्थ ताम ?
३२ ए त्रिहु प्रश्न सकज्जा, जिन भाखै निर्ग्रंथ अज्जा ।
फासु एपणीक चिहु आहार, वहिरी नै तेह तिवार ।।

२६ अनगाराधिकाराच्च तत्पानकभोजनसूत्राणि—
(वृ० प० २९१)
२७. अह भते ! सइंगालस्स,
'सइगालस्स' त्ति चारित्रेन्धनमङ्गारमिव य. करोति
(वृ० प० २९२)
२८, २९ भोजनविपयरागाग्नि सोऽङ्गार एवोच्यते तेन सह यद् वर्त्तते पानकादि तत् साङ्गार,
(वृ० प० २९२)
३० सधूमस्स,
चारित्रेन्धनधूमहेतुत्वाद् धूमो—द्वेपस्तेन सह यत्पानकादि तत् सधूमम् । (वृ० प० २९२)
३१ सजोयणादोसदुट्ठस्स पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?
सयोजना—द्रव्यस्य गुणविशेपार्थं द्रव्यान्तरेण योजन सैव दोपस्तेन दुष्ट यत्तत्तथा । (वृ० प० २९२)
३२ गोयमा ! जे ण निग्गथे वा निग्गथी वा फासु-एसणिज्ज असण-पाण-खाइम-साइम पडिग्गाहेत्ता

*लय : हिवै कहै छै रूप थी नार

३४ गढिए ते आहार नैं जाणो, स्नेह ततू करि गूथाणो ।
अज्भोववन्ने पहिछाणी, एकाग्र चित तसु जाणी ॥

३५. करै आहार सराय-सराय, चारित्र नां कोयला थाय ।
अगार-सहित ए ताय, पाणी-भोजन कहिवाय ॥
३६. निर्ग्रंथ निग्रंथी सार, निर्दोप ग्रहि चिउ आ'र ।
अप्रीतिपणो अति आणी, क्रोध थकी खेद तनु ठाणी ॥
३७ निरस आ'र करै विसराय, धूंओ ऊठै चारित्र माय ।
ए सधूम भोजन-पाण, हे गोतम ! इह विध जाण ॥

३८. निर्ग्रंथ-निग्रंथी सार, निर्दोप ग्रही चिउ आ'र ।
गुण-रस उपजावण हेत, अति लोलपणा थी तेथ ॥

३९. अन्य द्रव्य सघात संयोजी, इम असणादिक नो भोजी ।
दुष्ट दोप सयोजन आहार, पाणी भोजन ए धार ॥
४०. अगार-सहित नो एह, सधूम नो अर्थ कहेह ।
दोप दुष्ट संयोजन पान-भोजन नुं ए अर्थ जान ॥

**गीतक छंद**

४१. अथ हे प्रभू ! अंगार-रहितज, विगत-धूम वखाणियै ।
मयोग ना फुन दोप रहितज, पान-भोजन जाणियै ॥
४२. कुण अर्थ आख्यो ए त्रिहुं नो ? एम गोयम गणहरे ।
वर प्रश्न पूछयं छते, श्री जिनराज उत्तर उच्चरे ॥

४३. *जिन कहै सत अरु समणी, वर नीत आतम नैं दमणी ।
निर्दोप ग्रही चिहुं आहार, मूर्च्छा रहित थको तिणवार ॥

४४. यावत इम करै आहार, चारित्र नहि हुवै अगार ।
अंगार-रहित जल अन्न, हे गोतम ! एह सुजन्न ॥
४५. जे समणी-सत सुतोप, जाव आहार ग्रही निर्दोप ।
महा अप्रीति भाव मन धार, जाव विसराई न करै आहार ॥

४६. तसु चरण मे धूओ न होय, हे गोतम ! इह विध जोय ।
धूम-दोप-रहित ए जाण, आख्यो है भोजन-पाण ॥

*लय : हिवै कहै छै रूप थी नार

३४ गढिए अज्झोववन्ने,
'गढिए' त्ति तद्गतस्नेहतन्तुभि सदर्भित. 'अज्झोववन्ने' त्ति तदेकाग्रता गत । (वृ० प० २९२)

३५ आहारमाहारेइ, एस ण गोयमा ! सइंगाले पाण-भोयणे ।

३६, ३७. जे णं निग्गथे वा निग्गथी वा फासु-एसणिज्ज असण पाण-खाइम-साइम पडिग्गाहेत्ता महया-अप्पत्तिय कोहकिलाम करेमाणे आहारमाहारेइ, एस ण गोयमा ! सधूमे पाण-भोयणे ।
'कोहकिलाम' ति क्रोधात् क्लम.—शरीरायास (वृ० प० २९२)

३८. जे ण निग्गथे वा निग्गथी वा फासु-एसणिज्ज असण-पाण-खाइम-साइम पडिग्गाहेत्ता गुणुप्पायणहेउ
'गुणुप्पायणहेउ' ति रसविशेपोत्पादनायेत्यर्थ, (वृ० प० २९२)

३९ अण्णदव्वेण सद्धि सजोएत्ता आहारमाहारेइ, एस ण गोयमा ! सजोयणादोसदुट्ठे पाण-भोयणे ।

४० एस ण गोयमा ! सइंगालस्स सधूमस्स, सजोयणा-दोसदुट्ठस्स पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते । (श० ७।२२)

४१ ४२ अह भते ! वीतिंगालस्स, वीयधूमस्स, सजोयणा-दोसविप्पमुक्कस्स पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

४३. गोयमा ! जे णं निग्गथे वा निग्गथी वा फासु-एसणिज्ज असण-पाण-खाइम-साइम पडिग्गाहेत्ता अमुच्छिए ।

४४. जाव (स० पा०) आहारेइ, एस ण गोयमा ! वीतिंगाले पाण-भोयणे ।

४५ जे ण निग्गथे वा निग्गथी वा फासु-एसणिज्ज असण-पाण-खाइम-साइम पडिग्गाहेत्ता णो महयाअप्पत्तिय कोहकिलाम करेमाणे आहारमाहारेइ,

४६. एस ण गोयमा ! वीयधूमे पाण-भोयणे

॥ सु..कार, निर्दोष ग्रही तिणवार।
जिम लाधो तिम आहारत, लोलपणो दूर तजत॥

४८. हे गोतम ! एह पुनीत, सयोजन-दोष-रहीत।
पाणी-भोजन कहिवाय, इम भाखै श्री जिनराय॥
४९. ए वीतो दोष अगार, वलि विगत धूम सुविचार।
दोष दुष्ट सयोज रहीतं, अन्न जल नु अर्थ ए कहीत॥
५० एकोत्तर देश निहाल, एकसौ नै तेरमी ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय, सुख 'जय-जश' हरष सवाय॥

४७. जे ण निग्गथे वा निग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइम पडिग्गाहेत्ता जहा लद्ध तहा आहारमाहारेइ,

४८ एस ण गोयमा ! सजोयणादोसविप्पमुक्के पाण-भोयणे।

४९. एस णं गोयमा ! वीतिंगालस्स, वीयधूमस्स, सजोयणादोसविप्पमुक्कस्स पाणभोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते।
(श० ७।२३)

'वीइंगालस्स' त्ति वीतो गतोऽङ्गारो—रागो यस्मात्तद्वीताङ्गार, (वृ० प० २९२)

## ढाल ११४

### दूहा

१. अथ क्षेत्रातिक्रात प्रभु ! कालातिक्रात कहत।
वलि मारग अतिक्रात नु, फुन प्रमाण अतिकत॥
२. ए च्यारूं ना उदक ना, वलि भोजन ना जोय।
अर्थ किसो जे आखियो ? ए पूछा अवलोय॥
३. सूर्य सवधी खेत्र छै, ताप-खेत्र दिन हुत।
अतिक्रात ते अतिक्रम्यो, ए क्षेत्रातिक्रत॥
४. तेह दिवस ना पहर त्रिण, अतिक्रम्यो जे काल।
ते कालातिक्रात छै, वारू अर्थ निहाल॥
५. मार्ग अर्ध जोजन प्रतै, अतिक्रम्यो जे माग।
ते मार्गातिक्रात छै, मारग तणो विभाग॥
६. कवल वतीस प्रमाण जे, अतिक्रम्यो प्रमाण।
प्रमाणातिक्रांत ते, दाख्यो श्री जगभाण॥
७. ए चिहु ना पाणी तणो, वलि भोजन नो अर्थ।
किसु परूप्यो हे प्रभु ! हिव जिन कहै तदर्थ॥

८. *जे निर्ग्रथ निर्ग्रथी फासु एषणी रे, असणादिक च्यारू आहार जिवार रे।
सूर्य विण ऊगै वहिरी करी रे, रवि ऊगा पाछै ते करै आहार रे।
ए क्षेत्रातिक्रात पाण भोजन कह्यो रे॥

१,२. अह भते ! खेत्तातिक्कतस्स, कालातिक्कतस्स मग्गातिक्कतस्स, पमाणातिक्कतस्स पाणभोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

३. 'खेत्ताइक्कतस्स' त्ति क्षेत्र—सूर्यसम्वन्धि तापक्षेत्र दिनमित्यर्थ. तदतिक्रान्त यत्तत् क्षेत्रातिक्रान्तम्।
(वृ० प० २९२)

४ 'कालाइक्कतस्स' त्ति काल—दिवसस्य प्रहरत्रयलक्षणमतिक्रान्त कालातिक्रान्तम्। (वृ० प० २९२)

५ 'मग्गाइक्कतस्स' त्ति अर्द्धयोजनमतिक्रान्तस्य।
(वृ० प० २९२)

६. 'पमाणाइक्कतस्स' त्ति द्वात्रिंशत्कवललक्षणमतिक्रान्तस्य। (वृ० प० २९२)

८. गोयमा ! जे ण निग्गथे वा निग्गथी वा फासु-एसणिज्ज असण-पाण-खाइम-साइम अणुग्गए सूरिए पडिग्गाहेत्ता उग्गए सूरिए आहारमाहारेइ, एस णं गोयमा ! खेत्तातिक्कते पाण-भोयणे।

---

*लय : श्री जिनवर गणधर

ए कालातिक्रात पाण भोजन कह्या रे ॥

१०. जे निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी फासु एषणी, असणादिक च्यारूं आहार जिवार।
योजन अर्द्ध तणी मर्याद थी, उपरत ले जाइ करै आहार।
ए मार्गातिक्रांत पाण भोजन कह्यो रे ॥

११. जे निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी फासु एषणी, वहिरी असणादिक चिहु जेह।
वत्तीस कुकुडी अड प्रमाण छै, ते मात्र-कवल थी अधिक जीमेह।
ए प्रमाणातिक्रात पाण भोजन कह्यो रे ॥

### सोरठा

१२. कुकुड़ी अडक जाण, जे प्रमाण है मान तसु।
ते परिमाण पिछाण, कुकुडी अडग ते कह्यु ॥

१३. तथा कुटी जिम जाण, जीव तणां आश्रय थकी।
कुटी शरीर पिछाण, अशुच-वहुल थी कुकुटी ॥

१४. कुकुटी तनु कहिवाय, तेहना अंड तणी परै।
अडक आहारज थाय, उदर पूरक ना भाव थी ॥

१५. कुकुटी अड तद्रूप, प्रमाण थी मात्रा तसु।
वत्तीसम अश रूप, अड प्रमाण मात्रा तिका ॥

१६. कुकुड़ी अंडग प्रमाण, कवल वत्तीस ए अर्थ धुर।
उदर प्रमाणे जाण, द्वितिय अर्थ ए जाणवू ॥

१७. प्रथम अर्थ वत्तीस, कवल कह्या जे पुरुप नां।
वहुलपणै ए दीस, कहुं द्वितिय अर्थ नी वार्त्तिका ॥

वा०—जे उदर प्रमाण आहार नी वात कही, तेहनो ए अभिप्राय—जे पुरुप नो जेतलो आहार ते पुरुप नी अपेक्षा तिण आहार नो वत्तीसमो भाग कवल। जे चउसठ आदि कवल आहार पिण किण ही स्थाने प्रसिद्ध छै। तेमा पिण एहिज कवल मान नी अपेक्षाय वत्तीस कवला थकी प्रमाणोपेतता सिद्ध थाय छै।

चउसठ कवल नु जेनो आहार अनै ते वत्तीस कवल खावै तो प्रमाणोपेतता केम थाय ? केम कै पोता ना भोजन नु आधु आहार प्रमाण-प्राप्त भोजन नही थइ सकै।

१८. *आठ कुकुडी ना अड प्रमाण जे, ते मात्र कवल नो करै आहार।
अल्प आहारी कहियै तेहनै, कवल नो लीज्यो न्याय विचार ॥
(वीर जिनेश्वर गोतम नै कहै रे) ॥

* लय : श्री जिनवर गणधर

णं गोयमा ! कालातिक्कते पाण-भोयणे।

१० जे णं निग्गथे वा निग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिग्गाहेत्ता परं अद्धजोयणमेराए वीइक्कमावेत्ता आहारमाहारेइ, एस णं गोयमा ! मग्गातिक्कते पाण-भोयणे।

११ जे णं निग्गथे वा निग्गथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिग्गाहेत्ता परं वत्तीसाए कुक्कुडिअडगपमाणमेत्ताणं कवलाणं आहारमाहारेइ, एस णं गोयमा ! पमाणातिक्कते पाण-भोयणे।

१२ कुक्कुट्यण्डकस्य यत् प्रमाण—मान तत् परिमाण—मान येषा ते तथा (वृ० प० २९२)

१३ अथवा कुकुटीव—कुटीरमिव जीवस्याश्रयत्वात् कुटी—शरीर कुत्सिता अशुचिप्रायत्वात् कुटी कुकुटी (वृ० प० २९२)

१४ तस्या अण्डकमिवाण्डक—उदरपूरकत्वादाहार कुकुट्यण्डक (वृ० प० २९२)

१५ तस्य प्रमाणतो मात्रा—द्वात्रिंशत्तमाशरूपा येषा ते कुक्कुट्यण्डकप्रमाणमात्रा। (वृ० प० २९२)

१७ प्रथम व्याख्यान तु प्रायिकपक्षापेक्षयाऽवगन्तव्यम् (वृ० प० २९२)

वा०—अतस्तेषामयमभिप्राय—यावान् यस्य पुरुपस्याहारस्तस्याहारस्य द्वात्रिंशत्तमो भागस्तत्पुरुपापेक्षया कवल, इदमेव कवलमानमाश्रित्य प्रसिद्धकवलचतु:-षष्ट्यादिमानाहारस्यापि पुरुपस्य द्वात्रिंशता कवलै प्रमाणप्राप्ततोपपन्ना स्यात्, न हि स्वभोजनस्यार्द्धं भुक्तवत प्रमाणप्राप्तत्वमुपपद्यते। (वृ० प० २९२)

१८ अट्ठ कुक्कुडिअडगपमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे अप्पाहारे

१९. वारै कुकुड़ी नो अड प्रमाण जे, ते मात्र कवल नो करै आहार।
अपार्द्ध ऊणोदरि कहियै तेहनै, आधा सू ऊणो आहार तिवार॥

वा०—अवड्ढोमोयरियत्ति अवम—ऊणो उदर नु करवू अवमोदरिका कहियै। अपकृष्ट किंचित जे ऊण अर्द्ध जे उणोदरी नै विपे तिका अपार्द्धा। वत्तीस कवल नी अपेक्षा वारह कवल नैं अपार्द्ध रूपपणा थकी, अर्द्ध ऊणोदरिका मे चार कवल ऊणा ते माटै।

१९ दुवालस कुक्कुडिअडगपमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे अवड्ढोमोयरिए,

वा०—'अवड्ढोमोयरिय' त्ति अवमस्य—ऊनस्योदरस्य करणमवमोदरिका, अपकृष्ट—किञ्चिदूनमर्द्ध यस्या साऽपार्द्धा द्वात्रिंशत्कवलापेक्षया द्वादशानामपार्द्धरूपत्वात्। (वृ० प० २९२, २९३)

२०. सोलै कुकुडी ना अड प्रमाण जे, ते मात्र कवल नो करै आहार।
बे भाग अर्द्ध प्राप्ति तेहनै कह्यो, अर्द्ध ऊणोदरिका ते सार॥

२० सोलस कुक्कुडिअडगपमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे दुभागप्पत्ते,

द्विभाग—अर्द्धं तत्प्राप्तो द्विभागप्राप्त आहारो भवतीति गम्यम् (वृ० प० २९२)

२१. चउवीस कुकुड़ी ना अड प्रमाण जे, जाव करतो ऊणोदरी जाण।
जाव शब्द मे पाठ कह्या तिके, सूत्र उववाई[1] सूं पहिछाण॥

२१ चउव्वीस कुक्कुडिअडगपमाणे जाव आहारमाहारेमाणे ओमोदरिए,

### सोरठा

२२. जाव शब्द मे ताहि, कहियै प्राप्त उणोदरी।
बीजा अर्द्ध रै माहि, मध्य भाग प्राप्तज कह्यो॥
२३. कवल वत्तीस प्रसिद्ध, तीन भाग लीधा तिणे।
चोथो भाग न लिद्ध, प्राप्त कहीजै तेहनै॥
२४. कवल लिये इकतीस, किंचित ऊण उणोदरी।
ए सहु अर्थ जगीस, जाव शब्द मे जाणवा॥

२५. *वत्तीस कुकुडी ना अड प्रमाण जे,
ते मात्र कवल नो करतो आहार।
प्रमाण-प्राप्त आहार कहियै तसु,
ए पुरुप मर्याद प्रमाण विचार॥

२५ वत्तीस कुक्कुडिअडगपमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे पमाणपत्ते,

२६ एहथी इक ग्रास—कवलिय ऊण जे, आहार करै श्रमण निर्ग्रंथ।
तसु अधिक सरसभोजी कहियै नही, सूत्रे इम भाख्यो छै भगवंत॥

२६ एत्तो एक्केण वि घासेण ऊणग आहारमाहारेमाणे समणे निग्गथे नो पकामरसभोईति वत्तव्व सिया।

२७. हे गोतम! ए क्षेत्रातिक्रात ना, कालातिक्रात तणा वलि जाण।
मार्गातिक्रात प्रमाणातिक्रात ना, पाण भोजन ना अर्थ पिछाण॥

२७ एस ण गोयमा! खेत्तातिक्कतस्स, कालातिक्कतस्स, मग्गातिक्कतस्स, पमाणातिक्कतस्स पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते। (श० ७।२४)

२८ अथ प्रभु! अग्नि आदि शस्त्रे करी, ऊतर्‍यो ते शस्त्रातीत कहाय।
कदा अपरिणत ह्वै पहुकादिक[2] नी परै,
तिण सु हिव आगल कहियै ताय॥

२८ अह भते! सत्थातीतस्स,

शस्त्राद्—अग्न्यादेरतीत—उत्तीर्णं शस्त्रातीत, एवभूत च तथाविधपृथुकादिवदपरिणतमपि स्यादत आह—(वृ० प० २९३)

२९ शस्त्र परिणमियो वर्णादिक फिर्‍या,
अचित्त ए प्रासुक कहीजै ताय।
विशुद्ध गवेपण करी गवेषियो, एसिय एपणीक सुखदाय॥

२९ सत्थपरिणामियस्स, एसियस्स,

'सत्थपरिणामियस्स' त्ति वर्णादीनामन्यथाकरणेनाचित्तीकृतस्येत्यर्थ, अनेन प्रासुकत्वमुक्त, 'एसियस्स' त्ति एपणीयस्य गवेपणाविशुद्ध्या वा गवेपितस्य। (वृ० प० २९३)

*लय : श्री जिनवर गणधर
१ ओवाइय सू० ३
२. पृथुक, चिवडा।

३१. अथवा मुनि वेप करीज गवेपियो,
पिण गुण कीर्त्तन करनें लीधो नाहि ।
मुनि ना आकार मात्र थी पामियो,
वैपिक अर्थ द्वितीय वृत्ति माहि ॥

३१ अथवा वेगो—मुनिनेपथ्य स हेतुर्लाभे यस्य तद् वैपिकम्—आकारमात्रदर्शनादवाप्त न त्वावर्ज्जनया (वृ० प० २९३)

**सोरठा**

३२ इण वचने करि जाण, उत्पादन ना दोप फुन ।
तजै मुनी गुणखाण, आगल तेह कहीजियै ॥

३२ अनेनपुनरुत्पादनादोपायोहमाह— (वृ० प० २९३)

३३. [1]सामुदाणिक ते वहुला घर तणो,
लेवै मुनि पाणी भोजन सार ।
जे इक घर वहु लीधा आरभ हुवै,
इण विध नहि लेवै अणगार ॥

३३ सामुदाणियस्स
ततस्ततो भिक्षारूपस्य । (वृ० प० २९३)

३४. शस्त्रातीत नैं शस्त्रपरिणम्यो, एसिय वेसिय नैं समुदान ।
पाण भोजन नो अर्थ किसो कह्यो ?
ए पाचू नो पूछ्यो अर्थ प्रधान ॥

३४ पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

३५. श्री जिन भाखै साभल गोयमा ! निर्ग्रंथ अथवा निर्ग्रंथी सोय ।
केहवो निर्ग्रंथ मुनीश्वर तेहना कहियै विशेपण आगल दोय ॥

३५ गोयमा ! जे ण निग्गथे वा निग्गथी वा

३६. शस्त्र खड्गादिक मूसल छाडिया,
ए प्रथम विशेपण मुनि नो जाण ।
पुष्पमाल वण्णक[1] चदन चर्चण तज्यू,
ए द्वितीय विशेपण मुनि नो माण ॥

३६ निक्खित्तसत्थमुसले ववगयमालावण्णग-विलेवणे 'निक्खित्तसत्थमुसले' त्ति त्यक्तखड्गादिशस्त्रमुशल. 'ववगयमालावन्नगविलेवणे' त्ति व्यपगतपुष्पमाला चन्दनानुलेपन· (वृ० प० २९३)

**सोरठा**

३७. मुनि उभय विशेपण ख्यात, हिव शस्त्रातीत प्रमुख तणु ।
कवण अर्थ जगनाथ ! पूछ्यो ते कहियै अछै ॥

३८. [*]भोगववा जोग जेह वस्तु विपे, उपना वा आया जे कीडादि ।
ते वस्तु थी पोते इज न्यारा थया, ए ववगय शब्द नु अर्थ सवादि ॥

३८. ववगय-
व्यपगता.—स्वय पृथग्भूता भोज्यवस्तुसभवा आगन्तुका वा कृम्यादय: । (वृ० प० २९३)

३९. असनादिक आहार सचित्त वस्तु अछै,
पुढवि जल अन्न प्रमुख कहिवाय ।
चुय कहिता जतु आफे चव्या, अथवा जे पर थी चविया ताय ॥

३९ चुय-
च्युता—मृता. स्वत एव परतो वाऽभ्यवहार्य-वस्त्वात्मका. पृथिवीकायिकादय । (वृ० प० २९३)

४०. भोगववा जोग अचित्त जे द्रव्य थी, त्रस थावर जीव प्रतै दातार ।
चइय कहिता अन्य पास कढाविया, हिवै चत्तदेह नो अर्थ विचार ॥

४० चइय-
'चइय' त्ति त्याजिता—भोज्यद्रव्यात् पृथक्कारिता दायकेन । (वृ० प० २९३)

---

* लय : श्री जिनवर गणधर

१. पीठी

. ।।।।.१ जोग अचित्त जे द्रव्य थी, देहं ते जीव सहित तनु तास ।
चत्त दायक स्वयमेव जुदा किया, इहां देही अरु देह अभेद विमास ।।

४१ चत्तदेह,
'चत्त' त्ति स्वयमेव दायकेन त्यक्ता—भक्ष्यद्रव्यात् पृथक्कृता । 'देहा' अभेदविवक्षया देहिनो यस्मात् स तथा तमाहार, (वृ० प० २९३)

**सोरठा**

४२. ववगयादि पद च्यार, वृद्ध व्याख्या कर तसु अरथ ।
आख्यु जेह उदार, तेह अर्थ कहियै हिवै ।।

४३. *वृद्ध व्याख्या तो ववगय ओघ थी, चेतन पर्याय थकी रहीत ।
चुय जीवन-क्रिया थी भ्रष्ट छै, चइय आयु क्षय करी कथीत ।।

४३ वृद्धव्याख्या तु व्यपगत—ओघतश्चेतनापर्यायादपेत च्युत—जीववत्क्रियातो भ्रष्ट च्यावित—स्वत एवायुष्कक्षयेण भ्रंशित । (वृ० प० २९३)

४४. ससर्ग थकी जे असणादि विषे, आवी ऊपना छै जे त्रस जीव ।
आहार थकी जे जंतु नीकल्या, ए चत्तदेह नु अर्थ कहीव ।।

४४ त्यक्तदेह—परित्यक्तजीवससर्गजनिताहारप्रभवोपचय., (वृ० प० २९३)

४५. पूर्वे स्यू वात कही ते हिवै कहै, जीवविप्पजढ फासु ताहि ।
दायक मुनि अर्थ आहार कियो नही,
फुन दायक अन्य पास करायो नाहि ।।

४५,४६ जीवविप्पजढं, अकय, अकारिय,
'जीवविप्पजढ' ति प्रासुकमित्यर्थ । अकृत—साध्वर्थमनिर्वर्तित दायकेन, एवमकारित दायकेनैव, अनेन विशेषणद्वयेनानाधाकर्म्मिक उपात्त. । (वृ० प० २९३)

**सोरठा**

४६. साधु अर्थे आहार, न कियो नही करावियो ।
ए उभय विशेपण धार, अणआधाकर्मिक तणा ।।

४७. *प्रारम्भ्यो छै पोता नै कारण,
तेह आहार निपजायो पिण निज काज ।
मुनि नै अथ ते निपजायो नही, ते असकल्पित लेवै मुनिराज ।।

४७ असकप्पिय,
'असङ्कल्पित' स्वार्थं सस्कुर्वता साध्वर्थतया न सङ्कल्पित (वृ० प० २९३)

**सोरठा**

४८. प्रारम्भ्यो निज काज, ते पछै निपायो मुनि अरथ ।
सकल्पितक समाज, ते पिण आधाकर्मिक: ।।

४८ स्वार्थमारब्धस्य साध्वर्थं निष्ठा गतस्याप्याधाकर्म्मिकत्वात् । (वृ० प० २९३)

४९. प्रारम्भ्यो स्व निमित्त, निपजायो पिण निज अरथ ।
एह असकल्पित्त, अणआधाकर्मी तिको ।।

४९ अनेनाप्यनाधाकर्म्मिक एव गृहीत । (वृ० प० २९३)

५०. *गृही कहै नित्य प्रति मुझ घर वहिरियै,
ते नित्यपिंड नहि लेवै मुनिराय ।
अथवा साह्मो आण्यो लेवै नही, ए अणाहूय नो अर्थ कहाय ।।

५० अणाहूय,
न च विद्यते आहूत—आह्वानमामन्त्रण नित्य मद्गृहे पोपमात्रमन्न ग्राह्यमित्येवरूप कर्म्मकराद्याकारण वा साध्वर्थं स्थानान्तरादन्नाद्यानयनाय यत्र सोऽनाहूत.—अनित्यपिण्डोऽनभ्याहृतो वेत्यर्थ । (वृ० प० २९३)

५१. कृतगड—मोल लियो लेवै नही, उद्देशक नहि लेवै अणगार ।
नव ही जे कोटि करिनै विशुद्ध छै, कोटि विभाग आगल इम धार ।।

५१. अकीयकड, अणुद्दिट्ठ, नवकोडीपरिसुद्ध,
इह कोट्यो विभागास्ताश्चेमा — (वृ० प० २९४)

**सोरठा**

५२. वीजादिक जे जीव, हणै हणावै नहि मुनि ।
अनुमोदै न सदीव, कोटि विभागज तीन ए ।।

५२ वीजादिक जीवं न हन्ति, न घातयति, घ्नन्त नानुमन्यते ३, (वृ० प० २९४)

---

* लय : श्री जिनवर गणधर

५४ *शकित म्रक्षित आदि दश कार, एषणा ना दस दोष रहीत ।
ए दोष लागै ग्रहस्थ साधु थकी, वर्जै ते महामुनि वर नीत ॥

५५ आधाकर्मादि सोलै उद्गम तणा, सोलै उत्पादन धाई आदि ।
एषणा पिंड विशुद्धपणे करी, सुष्ठु परिशुद्ध पवर सवादि ॥

५६ आख्या अणआख्या इहा सग्रह किया, अगार धूम दोष थी रहीत ।
सयोजन दोष करी विप्रमुक्त छै, इह वचने कर ग्रास एषणा रीत ॥

वा०—इहा पाठ मे दश दोष-विप्रमुक्त कह्यो, तिहा वृत्तिकार शकित, म्रक्षितादिक कह्या। अनै पाठ मे उद्गम, उत्पादन कह्या। तिहा वृत्तिकार उद्गम ते आधाकर्मादि सोलै प्रकार अनै उत्पादन ते धाई इत्यादिक सोलै-विध, अनै दस दोष एषणा ना—इम सक्षेप करिकै ४२ दोष कह्या। अनै भगवती टवा री, तेहना पाना १८२२, तेहनै विषे अर्थ मे सोलै उद्गम तणा, सोलै उत्पादन तणा, दस एषणा ना, और पाच मडला ना—एव ४७ दोष कह्या, तिण अनुसारे लिखियै छै।

हिवै आहार ना ४७ दोष लिखियै छै—

तत्र षोडश दोषा दातारत समुत्पद्यते—

आहाकम्मुद्देसिय पूइकम्मे य मीसजाए य ।
ठवणा पाहुडियाए पाओयर कीयपामिच्चे ॥
परियट्टिए अभिहडे उब्भिन्ने मालोहडे य ।
अच्छिज्जे अणिसिट्ठे अज्झोयरए सोलस पिंडुग्गमे दोसा ॥

अथ षोडश उद्गमदोषा —

तत्र साधुनिमित्त पाचयित्वा दीयते तदाधार्कर्मिक। य आगमिष्यति तत्-उद्दिश्य निष्पाद्यते तदुद्देशिक। यदाधाकर्मी-आहार-खरडित-दर्वी-प्रमुखेण ददाति स पूतिकर्मदोष.। यतिनिमित्त कुटुबनिमित्त च एकत्र पाच्यते पश्चात् साधुभ्यो दीयते स मिश्रजातिदोष। साधुनिमित्त संस्थाप्य मुचति स स्थापनादोष·। साधुनिमित्तं प्राघूर्णकान् पूर्वं पश्चाद् वा भोजयति स प्राभृतिकादोष। अधकारस्थाने उद्योत कृत्वाऽर्प्यति स प्रादुष्करणदोष। विक्रीत गृहीत्वा साधवे ददाति स क्रीतदोष। उद्धारक ग्रहीत्वा साधवे दद्यात् स प्रामित्यदोष·। दातव्यवस्तुन परावर्त्तं कृत्वा साधवेऽर्प्यति स परिवर्त्तितदोष.।

आहारादिक सन्मुखमानीयाऽर्प्यति सोभ्याहृतदोष.। यत्रकमुद्राकपाटादिक-मुद्घाट्याऽर्प्यति साधवे स उद्भिन्नदोष.। उच्चनीचतिर्यगविकटभूमित. आहारमुत्तार्य साधवे ददाति स मालापहृतदोष। स्वय बलवत्तया अन्यनिर्बलपार्श्वादिवदाल्य साधवेऽर्प्यति सोऽच्छिद्यदोष। वस्तुन स्वामिनौ द्वौ, भाव विना द्विस्वामिक वस्तु

*लय : श्री जिनवर गणधर

५४. दसदोसविप्पमुक्क,
दोषा.—शङ्कितम्रक्षितादय.। (वृ० प० २९४)

५५ उग्गमुप्पायणेसणासुपरिसुद्धं,
उद्गमश्च—आधाकर्मादि. षोडशविध: उत्पादना च—धात्रीदूत्यादिका षोडशविधैव उद्गमोत्पादने एतद्विषया या एषणा—पिण्डविशुद्धिस्तयासुष्ठु परिशुद्धो य: स उद्गमोत्पादनैषणासुपरिशुद्धोऽतस्तम्, (वृ० प० २९४)

५६ वीतिगाल, वीतधूम, सजोयणादोसविप्पमुक्क,
अनेन चोक्तानुक्तसङ्ग्रह कृत वीताङ्गारादीनि क्रिया-विशेषणान्यपि भवन्ति, प्रायोऽनेन च ग्रासैषणा-विशुद्धिरुक्ता। (वृ० प० २९४)

साधवे ददाति सोऽनिसृष्टदोष । साध्वाऽऽगमन श्रुत्वा पच्यमानान्नविषयेऽध्यवपूरयत्यऽन्न सोऽध्यवपूरकदोष । एते षोडश दोषा उद्गमदोषा उच्यते ।

अथ षोडश दोषा साधुत समुत्पद्यते, तदाह—

**धाई दूइनिमित्ते, आजीव वणीमगे तिगिच्छा य ।**
**कोहे माणे माया लोभे य हवंति दस एए ।।**

**पुव्विपच्छासंथव, विज्जामंते य चुण्णजोगे य ।**
**उप्पायणाइदोसा, सोलसमे मूलकम्मे य ।।**

तत्र धाइत्ति धात्री मातृवत् बालकस्य क्रीडा विधाय आहार गृण्हाति स धात्रीदोष । दूतवल्लोकाना सदेश कथयित्वा आहार गृण्हाति स दूतिदोष । नैमित्तिकवन्निमित्त भापयित्वा आहार गृह्लाति स निमित्तदोष । आत्मनो जातिकुलादिक ज्ञापयित्वा आहार गृण्हाति स आजीवदोष । रकवत् दीनत्व भापयित्वा आहार गृह्लाति स वनीपकदोष । वैद्यवत् चिकित्सा विधाय आहार गृह्लाति स चिकित्सादोष । क्रोधेन आहार गृह्लाति स क्रोध-दोष । अहकारेण आहार गृह्लाति स मानदोष । कपटेन वेष परावर्त्य आहार गृह्लाति स मायादोष । लोभेन बहु आहार गृह्लाति स लोभदोष । आहारग्रहणात् पूर्वं पश्चाद्वा दातार व्याख्याति सस्तौति स पूर्वं-पश्चात्-सस्तवदोष. । कार्मणमोहनवशीकरणादिक कृत्वा आहार गृह्लाति स विद्या-दोष । मत्रतत्रादिक कृत्वा आहार गृह्लाति स मत्रदोष. । अक्षण चूर्णं दत्वा आहार गृह्लाति स चूर्णदोष. । सौभाग्यार्थं स्वपदे लेप कृत्वा आहार गृह्लाति स योगदोष । य आहारार्थं गर्भस्य सातनपातनादिक करोति स मूलकर्मदोष । एते षोडश उत्पादन दोषा । एव जाता द्वात्रिंशत् ।

अथ आहारस्य गवेषणाया दश दोषानाह—

**संकियमक्खियनिक्खित्तपिहियसाहरियदायगुम्मीसे ।**
**अपरिणयलित्तछड्डिय एसणदोसा दस हवंति ।।**

सकियत्ति दायकस्य वा साधो शका समुत्पद्यते इद शुद्ध अशुद्ध इति शकादोष । सचित्तपृथिव्यादिना खरडितहस्तेन गृह्लाति स म्रक्षितदोष । आहार सचित्तवस्तूपरि मुक्तो भवति स निक्षिप्तदोष । सचित्तेनाऽऽच्छादित यद्भवति स पिहितदोष । येन कटोरिकादिना दातुमिच्छति तस्मिन् सचित्तादिकमस्ति तदन्यत्र क्षिप्त्वा ददाति स सहृतदोष । अधादिदायकस्य हस्तेन गृह्लाति स दायकदोष. । अयोग्य—सचित्तमचित्तमेकत्र भवति तन्मध्ये अचित्त गृह्लाति स उन्मिश्रदोष । यद्वस्तुनि सपूर्णशस्त्रपरिणतो न भवति सोऽपरिणतदोष । हस्त खरडयित्वा पश्चात् हस्त प्रक्षालयति स लिप्तदोष । अन्नादिक विकीर्णमान सन्नानयति स छर्दितदोष. । इमे दश एषणा दोषा उभयत समुत्पद्यते । एव जाता द्वाचत्वारिंशत् दोषा ।

अथ सयोजनादि पच दोषा भोजनसमये साधुभिस्त्याज्यास्तेषा नामान्याह—

**सजोयणापमाणे इंगाल-धूम-कारणे ।**
**वसेहिं बहिरंतरे वा रसहेउं दव्वसंजोगा ।।**

स्वादहेतवे क्षीरखडघृतादिकमेकत्रीविधाय पश्चाद् भुक्ते स सयोजनादोष: ।

गृह्णाति स कारणदोपः । पट् कारणान्याह—

वेयणवेयावच्चे इरियट्ठाए य संजमट्ठाए ।

तह पाणवत्तियाए छट्ठे पुण धम्मचिन्ताए ॥ (उ० २६।३२)

**११ दोषों के नाम स्थानांग में—**

(१) आहाकम्मिय

(२) उद्देसिय

(३) मीसजाय

(४) पाओयर (अज्झोयरय)

(५) पूतिय

(६) कीन

(७) पामिच्च

(८) अच्छेज्ज

(९) अणिसट्ठ

(१०) अभिहड (९।६२)

(११) ठवणा

[नोट—ठाण मे 'पाओयर' के स्थान पर 'अज्झोयरय' पाठ मिला है और 'स्थापना' दोप का नाम उस प्रसग मे नही है । जयाचार्य को उपलब्ध किसी प्रति मे ११ दोषों का नाम रहा होगा ।]

**१५ दोषों के नाम निशीथ मे—**

(१) धाईपिंड

(२) दूतिपिंड

(३) णिमित्तपिंड

(४) आजीवियपिंड

(५) वणीमगपिंड

(६) तिगिच्छापिंड

(७) कोहपिंड

(८) माणपिंड

(९) मायापिंड

(१०) लोभपिंड

(११) विज्जापिंड

(१२) मतपिंड

(१३) जोगपिंड

(१४) चुण्णपिंड

(१५) पुव्वपच्छा (१३।६१ से ७५)

[नोट—निशीथ मे चौदह दोपो के नाम यथावत् हैं । वहा पुव्वपच्छा के स्थान पर अतद्धाणपिंड है । सभव है जयाचार्य को उपलब्ध प्रति मे यही नाम होगा ।]

का नाम आचारांग में—

(१) परियट्ट

ें के नाम भगवती में—

(१) सइंगाल

(२) सधूम

(३) सजोयणा (७।२२)

(४) पाहुडेभोइ

[नोट—'पाहुडेभोइ' दोष भगवती की उपलब्ध प्रति मे नही मिला।]

का नाम प्रश्नव्याकरण में—

(१) मूलकम्म (२।१२)

४ दोषों के नाम दशवैकालिक में—

(१) उब्भिन्न (५।१।४५,४६)

(२) मालोहड (५।१।६९)

(३) अज्झोयर (५।१।५५)

(४) सकिय (५।१।४४,७७)

(५) मक्खिय (५।१।३३,३४)

(६) निक्खित्त (५।१।५९,६१)

(७) पिहिय (५।१।४५)

(८) साहरिय (५।१।३०)

(९) दायग (५।२।१२)

(१०) मिस्स (५।१।५५)

(११) असत्थपरिणय (५।२।२३)

(१२) लित्त (५।१।२१)

(१३) छड्डिय (५।१।२८)

[नोट—जयाचार्य ने छड्डिय दोष का उल्लेख किया है। दशवैकालिक की मुद्रित प्रतियो मे ऐसा कोई दोष उल्लिखित नही है। इसके स्थान पर परिसाडिय दोष का उल्लेख है। जयाचार्य ने 'छड्डिय' शब्द किस प्रति के आधार पर दिया ? यह अन्वेषणीय है।

२ दोषो के नाम उत्तराध्ययन में—

(१) कारण (२६।३१)

(२) अप्रमाण (१६।८)

एव सर्व मिली ४७ दोष थया।

५७. *सुर-सुर चव-चव शब्द करै नहिं,
अति शीघ्र, अति धीरै न करै आहार।
शाक शीतादिक नु अणछाडवु, इण विध आहार करै अणगार॥

५७. असुरसुर, अचवचव, अदुय, अविलबिय, अपरिसाडि, 'अदुय' ति अशोघ्रम् 'अविलंबिय' ति नातिमन्थर 'अपरिसाडि' ति अनवयवोज्झनम् (वृ० प० २९४)

* लय : श्री जिनवर गणधर

विवक्षितार्थसिद्धिरशनादिनिरभिष्वङ्गतासाधर्म्याद् य सोऽक्षोपाञ्जनव्रणानुलेपनभूत (वृ० प० २९४)

५९. संजम यात्रा चारित्र पालवु, तेहिज मात्रा कहियै एह ।
घणा आलवन नो ए अश छै, तिण अर्थे प्रवृत्ति आहार विषेह ।।

५९ सजमजायामायावत्तिय,
सयमयात्रा—सयमानुपालन सैव मात्रा—आलम्बन-समूहाश. सयमयात्रामात्रा तदर्थं वृत्ति —प्रवृत्तिर्यत्रा-हारे स सयमयात्रामात्रावृत्तिकोऽनस्तम् ।
(वृ० प० २९४)

### सोरठा

६०. चरण पालण रा सोय, वहु आलवण तेहनो ।
एक अंश अवलोय, मुनिवर आहार करै जिको ।।

६१. *संजम तेहिज भार कहीजियै, तसु वहिवु ते चरण पालवु सार ।
तेहिज अर्थ प्रयोजन छै तसु, ते सजम भार वहण अर्थ धार ।।

६१. सजमभारवहणट्ठयाए
संयम एव भारस्तस्य वहन—पालन स एवार्थ सयम-भारवहनार्थस्तद्भावस्तत्ता तस्यै, (वृ० प० २९४)

६२. ते संजम भार वहण अर्थ कारणे, पूर्व रीत कही तिम सार ।
विल विषे जिम पन्नग नी परै,
निज आतम कर आहार करै अणगार ।।

६२ बिलमिव पन्नगभूएण अप्पाणेण आहारमाहारेइ,

### सोरठा

६३. जिम भुजंग विल मांहि, करै प्रवेशज आतम प्रति ।
निज पसवाड़ा ताहि, तेह प्रतै अणफर्शतो ।।

६४. इम मुनि पिण सुगुणेण, मुख कंदर पासा प्रतै ।
अफर्शंत आहारेण, अशन प्रवेशै जठर-विल ।।

६३. यथा किल विले सर्प्प आत्मान प्रवेशयति पार्श्वान-सस्पृशन् (वृ० प० २९४)

६४. एव साधुर्वदनकन्दरपार्श्वानसस्पृशन्नाहारेण तदसञ्चा-रणतो जठरविले आहार प्रवेशयतीति ।
(वृ० प० २९४)

६५. लोलपणै भावेह, फर्शै नहि मुख पार्श्व प्रति ।
लोलपणां विण तेह, दोप नही छै फर्शवै ।।

६६. *शस्त्रातीत शस्त्रपरिणत वलि, जावत पाण भोजन नु धार ।
अर्थ परूप्यो गोयम ! एहवु, सेव भंते ! सेव भते ! प्रभु वच सार ।।

६६ एस ण गोयमा ! सत्थातीतस्स सत्थपरिणामियस्स, जाव (स० पा०) पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते ।
(श० ७।२५)
सेव भते ! सेव भते ! त्ति । (श० ७।२६)

६७. सत्तम शतक उद्देशो धुर कह्यु,
आखी इकसौ चिहुदसमी ढाल ।
भिक्षु नै भारीमाल ऋपिराय थी,
'जय-जश' संपति हरख विशाल ।।

सप्तमशते प्रथमोद्देशकार्थः ।।७।१।।

---

* लय : श्री जिनवर गणधर

## ढाल ११५

### दूहा

१. प्रथम उदेश विषे कह्या, पचखाणी पहिछाण।
द्वितीय उदेशक नैं विषे, कहियै बलि पचखाण ॥

*जिनजी जयकारी ॥ (ध्रुपदं)

२. हे प्रभु! ते निश्चै करी, सर्व प्राण सर्व भूत रे।
सर्व जीव सर्व सत्व नों, म्हे वध पचख्यो सूत रे ॥

३. इम कहिता नैं स्वामजी, सुपचखाणज थाय?
दुपचखाण हुवै सही? इम पूछ्ये जिन वाय ॥

४. सर्व प्राण जावत वली, सर्व सत्व नैं सोय।
हणवा नों त्याग कियो अछै, इम कहै तेहनै जोय ॥

५. सुपचखाण हुवै कदा, दुपचखाण किवार।
किण अर्थे? तव जिन कहै, सांभल मुनि सुखकार ॥

वा०—सिय सुपच्चक्खाय सिय दुपच्चक्खाय इम प्रभु कह्यो। हिवै पहिला दुपचखाण नों न्याय प्रभु कहै ते किम? तेहनो उत्तर—जे यथासख्य न्याय ते अनुक्रम न्याय। जे पहिला सुपचखाण नु वर्णन करिवू ते तजीनैं यथाआसन्नता न्याय ते नजीकपणा नो न्याय अंगीकार करीनैं जे दुपचखाण शब्द नजीक ते माटै ते नजीक अंगीकरी पहिला दुपचखाण नु वर्णन करियै छै।

६. सर्व प्राण जाव सत्व नैं, म्हे पचख्या है सदीव।
एम कहै तिण जीव नैं, न जाण्या जीव-अजीव ॥

७. एह जीव ए अजीव छै, ए त्रस स्थावर एह।
इण रीते जाण्या विना, वलि भाखै छै तेह ॥

८. सर्व प्राण जाव सत्व नैं, म्हे पचख्या इम वाय।
वदता दुपचखाण छै, सुपचखाण न थाय ॥

### सोरठा

९. वृत्ति टबै ए वाय, जाण्यां विण जे जीवडा।
ते पालै नहिं ताय, सुपचखाण न ते भणी ॥

१०. जीव न जाणै जेह, जाण्या विण जे जीव ना ॥
त्याग केम पालेह, तिण सू दुःपचखाण छै ॥

११. *इम निश्चै करि गोयमा! दुपचखाणी छै तेह।
सर्व प्राण जाव सत्व नो, निज पचखाण वदेह ॥

१. प्रथमोद्देशके प्रत्याख्यानिनो वक्तव्यतोक्ता द्वितीये तु प्रत्याख्यान निरूपयन्नाह— (वृ० प० २९४)

२. से नूण भंते! सव्वपाणेहिं, सव्वभूएहिं, सव्वजीवेहिं, सव्वसत्तेहिं पच्चक्खाय—

३ इति वदमाणस्स सुपच्चक्खायं भवति? दुपच्चक्खाय भवति?

४ गोयमा! सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खाय-मिति वदमाणस्स

५. सिय सुपच्चक्खाय भवति, सिय दुपच्चक्खायं भवति। (श० ७।२७)

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—

वा०—'सिय सुपच्चक्खायं सिय दुपच्चक्खाय' इति प्रतिपाद्य यत्प्रथम दुष्प्रत्याख्यानत्ववर्णन कृतं तद्यथासंख्यन्यायत्यागेन यथाऽऽसन्नतान्यायभङ्गीकृत्येति द्रष्टव्यम्। (वृ० प० २९५)

६,७ गोयमा! जस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स णो एव अभिसमन्नागयं भवति इमे जीवा, इमे अजीवा, इमे तसा, इमे थावरा,

८ तस्स ण सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स नो सुपच्चक्खाय भवति, दुपच्चक्खाय भवति।

९ ज्ञानाभावेन यथावदपरिपालनात् सुप्रत्याख्यानत्वा भाव, (वृ० प० २९५)

११ एव खलु से दुपच्चक्खाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं।

* लय : भामा ठग लागो

१३. मृषावादी ते खरा, इम [illegible] धार ।
सर्व प्राण जाव सत्व नों, त्रिविध-त्रिविध वधकार ॥
१४. करण करावण अनुमति, ए त्रिहु करणे जेह ।
मन वचन काया करै, त्रिहु जोगे करि तेह ॥
१५ त्रिविध-त्रिविध इम असजती, अविरति विरति-रहीत ।
पाप कर्म पचखाण थी, न हण्या रूडी रीत ॥
१६. सकिरिए क्रिया सहीत, काइया प्रमुख विचार ।
असवुडे अणसवर्‌या, पांचूइ आश्रव द्वार ॥
१७ एकात कहिता सर्वथा, निश्चै करि ते जान ।
दंडै—हणै पर प्राण नै, एगत दड पिछान ॥
१८. तेहिज एकांत वाल छै, सर्वथा निश्चै जेह ।
वाल-विरति नहिं आदरी, अधिक अजाण कहेह ॥

**सोरठा**

१९. 'इहां जाण्यां विण जीव, त्याग किया थी तेहना ।
दुपचखाण कहीव, जाण्या विण किम पालियै ॥
२०. जीव त्रसादिक जेह, जाणी तसु हणवा तणां ।
जो पचखाण करेह, पिण समदृष्टी ते नही ॥
२१. सवर आश्री तास, दुपचखाण कहीजियै ।
सवर गुण सुविमास, कर्म रोकण नो तसु नही ॥
२२ हिंसादिक पहिछाण, त्यागी मिथ्याती तणै ।
निर्जरा लेखै जाण, सुध पचखाण कहीजियै ॥
२३. सप्तम उत्तरज्झयण, वर गाथा जे वीसमी ।
धुर गुणठाणे वयण, कह्यो सुव्वअे स्वामजी ॥
२४. देश आराधक जाण, धुर गुणठाणा नो धणी ।
अष्टम शतक पिछाण, दशम उदेशे भगवती ॥
२५. सूत्र विपाक मझार, सुमुख दान दे मुनि भणी ।
कियो परित्त ससार, मनुष्य आउखो वाधियो ॥

१३ एव खलु से मुसावाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं तिविह तिविहेण

१४. 'तिविह' ति त्रिविध कृतकारितानुमतिभेदभिन्न योगमाश्रित्य 'तिविहेण' ति त्रिविधेन मनोवाक्काय-लक्षणेन करणेन (वृ० प० २९५)

१५, असजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मे,

१६ सकिरिए, असवुडे,
'सकिरिए' त्ति कायिक्यादिक्रियायुक्त सकर्म्मवन्धनो वाऽत एव 'असवुडे' त्ति असवृताश्रवद्वार । (वृ० प० २९५)

१७ एगंतदडे,
एकान्तेन—सर्वथैव परान् दण्डयतीत्येकान्तदण्ड. । (वृ० प० २९५)

१८. एगतवाले यावि भवति ।

२३ वेमायाहि सिक्खाहिं, जे नरा गिहिसुव्वया । (उत्तरज्झयण ७।२०)

२४ ………तत्थ णं जे से पढमे पुरिसजाए से ण पुरिसे सीलव असुयव—उवरए अविण्णायधम्मे । एस ण गोयमा ! मए पुरिसे देसाराहए पण्णत्ते । (भगवई श० ८।४५०)

२५ तए ण तस्स सुमुहस्स गाहावइस्स तेण दव्वसुद्धेण गाहगसुद्धेण दायकसुद्धेण तिविहेण तिकरणसुद्धेण सुदत्ते अणगारे पडिलाभिए समाणे ससारे परित्तीकए (विपाक २।१।२३)

२६. गज भव मेघकुमार, परित्त संसार दया थकी ।
धुर गुणठाणे धार, नर आयू बाध्यो तिणे ॥

२७. असोच्चा अधिकार, प्रथम गुणठाणे जिन कह्यो ।
अपोह अर्थ विचार, धर्म ध्यान परिणाम शुभ ॥

२८. इत्यादिक अवलोय, पहिला गुणठाणा तणी ।
निरवद करणी जोय, ते छै आज्ञा माहिली ॥

२९. ते माटै पहिछाण, तेहना दुपचखाण ते ।
सबर आश्री जाण, निर्जरा आश्री छै नहीं ॥
(ज० स०)

वा०—'अट्टे लोए परिजुण्णे दुस्सवोहे—इहा अट्टे ते विपय कषाय करी आर्त्यो, लोए—एकेंद्री, बेइद्री तेइद्री, चउइद्री पचेंद्री नी जीव राशि, ते लोक ।

परिजुण्णे—प्रशस्त ज्ञानादिक भाव विकल, वलि जे एहवो हुवै ते ।

दुस्सवोहे—प्रतिवोधिवा अशक्य ब्रह्मदत्त नी परै, ते ।

इहा पिण दुस्सवोहे नो अर्थ ब्रह्मदत्त नी परै प्रतिवोधिवा अशक्य इम कियो, ते माटै इहा दु शब्द अभाव वाची सभवै । तिम दुपचखाण ते पचखाण नही, ए पिण दु शब्द अभाववाची सभवै । ए पचखाण नाम सवर नो छै । ए जीव, ए अजीव जाणै नही ते किम पालै ? अनै प्रथम गुणठाणे जीवादिक ओलखी नै पचखाण करै, तेहनै सवर रूप पचखाण तो नथी, निर्जरा रूप पचखाण कहियै । तेहथी कर्म कटै छै, पिण रुकै नही ।

३०. *सर्व प्राण जाव सत्व ना, म्हे कीधा पचखाण ।
इण विध कहिता जीव नैं, वलि ते एहवू जाण ॥

३१. ए जीव ए अजीव त्रस स्थावरा, जाण्या रूडी रीत ।
सर्व प्राण जीव सत्व नैं, पचख्या छै धर प्रीत ॥

३२. म्है पचखाण कीधा अछै इम कहिता नै ताय ।
सुपचखाण हुवै अछै, दुपचखाण न थाय ॥

३३. इम निश्चै करि गोयमा ! सुपचखाणी तेह ।
सर्व प्राण जाव सत्व ना, निज पचखाण वदेह ॥

३४. म्है पचखाण कीधा अछै, इम कहिता नै ताहि ।
सत्य भाषा बोलै तिका, मृषा कहियै नाहि ॥

३५. इम निश्चै करि गोयमा ! सत्यवादी अवितत्थ ।
सर्व प्राण जाव सत्व नो, त्रिविध-त्रिविध सयत्त ॥

*लय : भामा ठग लागो

२६ तए ण तुम मेहा ! ताए पाणाणुकंपयाए, भूयाणुकंपयाए, जीवाणुकपयाए सत्ताणुकंपयाए ससारे परित्तीकए, माणुस्साउए निवद्धे
(नायाधम्मकहाओ १।१८२)

२७ तस्स णं छट्ठछट्ठेण अणिक्खित्तेणं. . अण्णया कयावि सुभेण अज्झवसाणेण सुभेण परिणामेण लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं-विसुज्झमाणीहिं........ईहापोहमग्गण-गवेसणं करेमाणस्स विब्भगे नाम अण्णाणे समुप्पज्जइ
(श० ९।३३)

३० जस्स ण सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स एव अभिसमन्नागय भवति—

३१,३२ इमे जीवा, इमे अजीवा, इमे तसा, इमे थावरा, तस्स ण सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स सुपच्चक्खाय भवति, नो दुपच्चक्खाय भवति ।

३३,३४ एव खलु से सुपच्चक्खाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणे सच्च भास भासइ, नो मोस भास भासइ ।

३७. अकिरिए किरिया नही, आगार आश्री विचार।
संवुडे तिण सवर्‍या, रूंध्या आश्रवद्वार॥
३८. एकात कहितां सर्वथा, निश्चै करि ते जाण।
सर्वविरति ग्रहिवै करी, एकांत पडित पिछाण॥
३९. तिण अर्थे करि गोतमा! इम कहियै छै ताय।
जाव कदाचित ते सही, दुपचखाणज थाय॥

## सोरठा

४०. आख्या ए पचखाण, तेह तणां अधिकार थी।
कहियै वली सुजाण, भेद प्रवर पचखाण ना॥
४१. *कितले भेदे हे प्रभु! आख्या छै पचखाण?
जिन भाखै पचखाण ते, दोय प्रकारे पिछाण॥
४२. वर मूलगुण पचखाण जे, चरण कल्पतरु जाण।
मूल तुल्य महाव्रत गुणा, तेह मूलगुण माण॥

वा०—मूलगुण पचखाण नो अर्थ—चारित्र कल्पवृक्ष नैं मूल तुल्य जे गुण प्राणातिपातविरमणादिक मूलगुण ते रूप पचखाण—हिंसादिक निवृत्ति, अथवा मूलगुण विषयक प्रत्याख्यान—अभ्युपगम—अंगीकरण मूलगुणपचखाण।

४३. उत्तरगुण पचखाण छै, प्रवर मूल पेक्षाय॥
उत्तरभूत गुण छै तिके, तरु शाखा जिम थाय।

४४. प्रभु! मूलगुण पचखाण नां, आख्या कितला प्रकार?
जिन भाखै द्विविध कह्या, साभलज्यो विस्तार॥
४५. सर्व मूलगुण शोभता, देश मूलगुण देख।
सर्व मूलगुण ना प्रभु! कितला भेद विशेख?

४६. जिन भाखै पच विध कह्या, सर्व हिंसा पचखाण।
यावत सर्व थकी वलि, परिग्रह पचख्यो जाण॥

४७. देश मूलगुण ना प्रभु! आख्या कितला भेद?
जिन भाखै पच विध कह्या, साभल आण उमेद॥
४८. स्थूल थकी हिंसा तणा, जावजीव पचखाण।
यावत स्थूल थकी वलि, परिग्रह पचख्यो जाण॥

*लय : भामा ठग लागो

३७ अकिरिए, सवुडे,

३८. एगतपडिए यावि भवति।

३९ से तेणट्ठेण गोयमा! एव वुच्चइ—जाव (स पा०) सिय दुपच्चक्खाय भवति। (श० ७।२८)

४० प्रत्याख्यानाधिकारादेव तद्भेदानाह— (वृ० प० २९५)

४१. कतिविहे ण भते! पच्चक्खाणे पण्णत्ते?
गोयमा! दुविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—
४२. मूलगुणपच्चक्खाणे य,

वा०—चारित्रकल्पवृक्षस्य मूलकल्पा गुणा—प्राणातिपातविरमणादयो मूलगुणास्तद्रूप प्रत्याख्यान—निवृत्तिर्मूलगुणविषय वा प्रत्याख्यान—अभ्युपगमो मूलगुणप्रत्याख्यान (वृ० प० २९६)

४३ उत्तरगुणपच्चक्खाणे य। (श० ७।२९)
मूलगुणापेक्षयोत्तरभूता गुणा वृक्षस्य शाखा इवोत्तरगुणास्तेषु प्रत्याख्यानमुत्तरगुणप्रत्याख्यानम्। (वृ० प० २९६)

४४. मूलगुणपच्चक्खाणे ण भते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, त जहा—
४५ सव्वमूलगुणपच्चक्खाणे य, देसमूलगुणपच्चक्खाणे य। (श० ७।३०)

सव्वमूलगुणपच्चक्खाणे ण भते! कतिविहे पण्णत्ते?
४६ गोयमा! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण जाव (स० पा०) सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण (श० ७।३१)

४७. देसमूलगुणपच्चक्खाणे ण भते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—
४८. थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमण जाव (स० पा०) थूलाओ परिग्गहाओ वेरमण (श० ७।३२)

## सोरठा

४६. सर्व मूलगुण सोय, कह्या सर्वविरती तणां ।
देश मूलगुण जोय, देशव्रती नां दाखिया ॥

५०. *उत्तरगुण पचखाण ना, हे प्रभु ! कितला प्रकार ?
जिन भाखै सुण गोयमा ! द्विविध आख्या सार ॥

५१. सर्व उत्तरगुण शोभता, देश उत्तरगुण देख ।
सर्व उत्तरगुण ना प्रभु ! कितला भेद विशेख ?

५२. जिन भाखै दशविध कह्या, अनागत अतिक्रात ।
कोडीसहिय नियटिय, सागार अणागार शात ॥

५३. परिमाणकृत निर्विशेप ही, सकेत अद्धाकाल ।
सर्व उत्तरगुण ए दशू, मुनिवर ना ए न्हाल ॥

## यतनी

५४. 'अनागत' आगमिये काल, तप पर्युसणादि न्हाल ।
घोर व्यावच नी अतराय, तसु भय थकी प्रथम कराय ॥

५५. तप पहिला करि सकै नाहि, पछै ते तप करिवू ताहि ।
ते 'अतिक्रात' पहिछाण, ए कह्यो बीजो पचखाण ॥

५६. आदि अत बे कोटि सरीस, आदि मे चउथ भक्त जगीस ।
अत मे पिण चउथ भक्त, 'कोडीसहियं' तीजो ए व्यक्त ॥

५७ रोगादिक कारणे पिण जेह, तप नै नहि छाडै तेह ।
नियमा तप जेह कराय, ते 'नियंत्रित' कहिवाय ॥

५८. पंचमो ते 'आगार-सहीत', तप छठो 'आगार-रहीत' ।
परिमाण ते दाती नु जाण, कवल घर भिक्षा द्रव्य परिमाण ॥

वा०—केवल आगार रहित नै पिण अजाणपणा नो आगार अनै सहसात्कारे मुखे खाडादिक नी रज आफेइ आवी पडै, ते पिण आगार ।

५६. सव्व असणं पाण पचखाण, सव्व खज्ज सव्व पेज्जविह जाण ।
सर्व शब्द करिनै उच्चरिवु, 'निरवशेष' आठमू धरिवु ॥

६०. गाठ प्रमुख छाडु नांय, त्या लग असणादिक पचखाय ।
सकेत चिन्ह नु करिवु, ते 'संकेत' नवमो उच्चरिवु ॥

६१ पोहरसी दोढ पोहरसी तास, इम मास यावत पट मास ।
काल नु मान करि पचखेह, 'अद्धा-पचखाण' छै एह[1] ॥

४६ तत्र सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान सर्वविरताना, देशमूलगुण-प्रत्याख्यान तु देशविरतानाम् । (वृ० प० २६६)

५० उत्तरगुणपच्चक्खाणे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, त जहा—

५१ सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणे य, देसुत्तरगुणपच्चक्खाणे य । (श० ७।३३)

सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणे ण भते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

५२,५३ गोयमा ! दसविहे पण्णत्ते, त जहा—
अणागयमइक्कत कोडीसहिय नियटिय चेव ।
सागारमणागार परिमाणकड निरवसेस ।
सकेय चेव अद्धाए पच्चक्खाण भवे दसहा ॥
(श० ७।३४ गाहा)

---

१ प्रस्तुत ढाल की गाथा ५४ से ६१ तक टीका के आधार पर लिखी हुई है, इस दृष्टि से यहा जोड के सामने टीका का पाठ उद्धृत करना जरूरी था। किन्तु इन गाथाओ से आगे वार्तिका मे यही वात पुन स्पष्ट रूप से लिखी गई है। उस टीका का पाठ वार्तिका के सामने रखना अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ, इसलिए उक्त पद्यो के सामने टीका का उल्लेख नही किया गया है।

*लय : भामा ठग लागो

[1]अणागयं कहिता अनागत करवा थकी। अनागत—पर्युषणादिक नैं विषे आचार्यादिक नी वेयावच्च करिवैं करी अंतराय ना सद्भाव थकी पर्युषणा पहिला ईज ते तप नु करिवु। आह्च—

होही पज्जोसवणा, मम य तया अंतराइयं होज्जा।
गुरुवेयावच्चेणं, तवस्सिगेलण्णयाए वा ॥२॥

पर्युषणा हुस्यै अनै माहरै तिण काले गुरु नी वैयावृत्य नों, तपस्वी नी वैयावृत्य नों अथवा निज शरीर नै विषे रोगादि करी ग्लानपणैं करी अंतराय थास्यै। उक्तं च—

सो दाइ तवोकम्मं पडिवज्जइ तं अणागए काले।
एयं पच्चक्खाण अणागयं होइ नायव्व ॥३॥

ते तप-कर्म पर्युषण काले गुरु देस्यैं, ते तप कारण थी करी न सकै ते भणी पर्युषण तप करवा नो काल आया पहिला करै, ए पचखाण अनागत हुवै जाणवो।

[2]अइक्कंत कहिता अतिक्रांत काल, ते तप नो काल उल्लंघ्ये थकै करै ते अतिक्रांत पचखाण कहियैं। भावना पूर्ववत्। उक्तं च—

पज्जोसवणाइ तव जो खलु न करेइ कारणज्जाए।
गुरुवेयावच्चेणं तवस्सिगेलण्णयाए वा ॥४॥

पर्युषणा नै विषे अवश्य करिवु ते अष्टमादि तप, ते कारण ऊपने छतें न करै। कारण हीज देखाड़े छै—गुरु नी वेयावच्च आदि। आह च—

सो दाइ तवोकम्म, पडिवज्जइ त अइच्छिए काले।
एय पच्चक्खाणं, अतिक्कंतं होइ नायव्व ॥५॥

जे तप कर्म पर्युषण काले गुरु देस्यैं, ते तप-कर्म पर्युषण तप नो काल अतिक्रम्ये थकै करै, एतलै पर्युषण मे करवा जोग ते तप पर्युषण थी पछै करै, ए पचखाण अतिक्रांत हुवै इम जाणवो।

[3]कोडीसहियं कहिता वे पचखाण नी कोटी ते श्रेणि मिली, चतुर्थभक्तादि करीनै अनंतरहीज चतुर्थ भक्तादिक नु करिवु इत्यर्थ।
अवाचि च—

पट्ठवणओ उ दिवसो पच्चक्खाणस्स निट्ठवणओ य।
जहियं समेति दोन्नि उ, त भन्नइ कोडिसहियं तु ॥६॥

प्रारंभिक दिवस पचखाण नो वली निष्ठापनक ते तप पूरो हुवै ते दिवस। जे तप नैं विषे मिलि दोय पिण कोटी ते तप प्रतैं कहे कोटी-सहित। एतलै तप प्रारम्यो तिवारैं प्रथम उपवास करी, पछै छठ भक्तादिक करीनैं छेहड़ैं वलि उपवास कियो—ए कोटी-सहित। इम प्रथम छट्ठादिक करी वीच मे चोथ, छठ,

[1] अनागतकरणादनागत, पर्युषणादावाचार्यादिवैयावृत्यकरणेनान्तरायसद्भावादारत एव तत्तपः करणमित्यर्थः।

[2] एवमतिक्रान्तकरणादतिक्रान्त भावना तु प्राग्वत्,

[3] कोटीसहितमिति—मीलितप्रत्याख्यानद्वयकोटि चतुर्थादि कृत्वाऽनन्तरमेव चतुर्थादेः करणमित्यर्थ

अष्टमादि करीनें छेहडे छठ करे। इम अष्टमादिक प्रारभ काले अनें चरम काले सरीखो करे ते कोडी-सहित।

'नियटित चेव कहिता नितरा अति ही यत्र वश कीधी आत्मा ते नियंत्रित। प्रतिज्ञा कीधी ते दिनादिक नैं विषे ग्लानपणादिक अतराय भाव छते पिण निश्चय थकी करिवू, इति हृदय। यदाह—

'नियटित चेव' नितरा यन्त्रितं नियन्त्रित, प्रतिज्ञात-दिनादौ ग्लानत्वाद्यन्तरायभावेऽपि नियमात्कर्त्तव्य-मिति हृदय,

**मासे-मासे य तवो, अमुगो अमुगे दिणंमि एवइयो।**
**हट्ठेण गिलाणेण वा, कायव्वो जाव ऊसासो ॥७॥**

अमुको तप मास-मास नैं विषे अमुक दिन कै विषे ए तप हृष्ट ते नीरोग छता तथा रोगादिक ग्लानपणु पाम्या छता जिहा लगै उस्सास त्या लगै करिवूं।

**एयं पच्चक्खाण, नियंटियं धीरपुरिसपन्नत्तं।**
**जं गेण्हंतऽणगारा, अणिस्सियप्पा अपडिबद्धा ॥८॥**

धीर पुरिसे परूप्यो ए नियंत्रित पचखाण, ते अणगार जेहनी आत्मा ग्रहण करै, ग्रामादिक नी नेश्राय रहित छै।

'सागार कहिता आगार सहित वर्त्ते ते सागार। आ—मर्यादा करी कीजियै ते आगार पचखाण। आगार ते हेतु महत्तरागारेण इत्यादि। आगार सहित वर्त्ते ते साकार।

'साकार' मिति आक्रियन्त इत्याकारा—प्रत्या-ख्यानापवादहेतवो महत्तराकारादय सहाकारैर्वर्त्तत इति साकारम्,

'अविद्यमान आकार ते अनाकार। जे विशिष्ट प्रयोजन ऊपजवा नैं अभाव छते, कातार दुर्भिक्षादिक नै विषे तथा सरीरादिक कारण पडचा पिण महत्तरादिक आगार राखै नही, ते अनाकार इति भाव। केवल अनाकार नैं विषे पिण अजाणपणें अनै सहसात्कारे ए वे आगार तो रहै हीज। काष्ठ अगुली आदि मुख विषे प्रक्षेपवा थकी भग नही हुवै। इण कारण थकी अजाणपणें अनें सहसात्कार अपेक्षा करिकै सदा आगार हीज।

अविद्यमानाकारमनाकार—यद् विशिष्टप्रयोजन-सम्भवाभावे कान्तारदुर्भिक्षादौ महत्तराद्याकारमनु-च्चारयद्भिर्विधीयते तदनाकारमिति भाव केवल-मनाकारेऽप्यनाभोगसहसाकारावुच्चारयितव्यावेव, काष्ठाङ्गुल्यादेर्मुखे प्रक्षेपणतो भङ्गो मा भूदिति, अतोऽनाभोगसहसाकारापेक्षया सर्वदा साकारमेवेति,

'परिमाणकड कहिता दात आदि करिकै कीधो परिमाण। अभाणि च—

'परिमाणकृत' मिति दत्त्यादिभि कृतपरिमाणम्,

**दत्तीहि व कवलेहि व घरेहि भिक्खाहि अहव दव्वेहिं।**
**जो भत्तपरिच्चायं करेति परिमाणकडमेय ॥९॥**

दाति करिकै, कवल करिकै, घर करिकै, अनै भिक्षा करिकै, परिमाण कीधु अथवा जे साधु भक्त परित्याग करै परिमाणकृत ए पूर्वे कह्यु ते।

'निरवसेस कहिता सपूर्ण अशनादिक तजै। भणित च—

'निरवशेष' समग्राशनादिविषय,

**सव्वं असणं सव्वं च पाणगं सव्वखज्जपेज्जविहिं।**
**परिहरइ सव्वभावेणेय भणियं निरवसेसं ॥१०॥**

सर्व अशन अनै सर्व पाणी, खज्ज कहिता खावा जोग, पेज्ज कहिता पीवा जोग नी विधि परिहरै सर्व भाव करिनै, ए निरवसेस पचखाण कह्यो।

'साकेय चेव कहिता केत कहियै चिह्न, केत—चिह्न करी सहीत ते सकेत। प्राकृतपणा थकी सकार दीर्घ थयु, ते माटै साकेय कह्यु। अथवा सकेत युक्त हुवा थकी सकेत। सकेत ते अगुष्ठ सहितादि। यदाह—

'साएय चेव' त्ति केत—चिन्ह सह केतेन वर्त्तते सकेत, दीर्घता च प्राकृतत्वात्, सङ्केतयुक्तत्वाद्वा सङ्केतम्—अङ्गुष्ठसहितादि,

**अंगुट्ठमुट्ठिगंठीघरसेऊसासथिवुगजोइक्खे।**
**भणिय सकेयमेयं धीरेहिं अणंतणाणीहिं ॥११॥**

अगुष्ठ, मुट्ठी, गठी, डोरा, डाभ प्रमुख नी वीटी, घर, स्वेद, उच्छ्वास, पाणी नो वुद्‌वुदो, जोतिष्क ते दीवादिक वस्तु—धीर पुरुष अनत ज्ञानी ए सकेत कह्यो,

७८।—कालस्तस्या: प्रत्याख्यान—पौरुष्यादिकालस्य नियमनम्,

(वृ० प० २९६, २९७)

नियम करिवु । आह च—

अद्धापच्चक्खाणं जं तं कालप्पमाणछेएणं ।
पुरिमड्ढपोरुसीहिं मुहुत्तमासद्धमासेहिं ॥१२॥

जे अद्धा पचखाण ते काल परिमाण नो छेद ते विभाग हुवै । पुरिमड्ढ ते दोय प्रहर, पोरसी, मुहूर्त्त, मासखमण, अर्द्धमास करिकै ए अद्धा पचखाण कह्यो ।

ए दशविध सर्व उत्तरगुण पचखाण हुवै ।

६२. *देश उत्तरगुण ना प्रभु! आख्या कितला प्रकार ?
श्री जिन भाखै सप्तविध, दिश व्रत प्रथम उदार ॥

६३. उपभोग नै परिभोग नो, करिवू जे परिमाण ।
दूजो व्रत ए दाखियो, हिव तसु अर्थ सुजाण ॥

६२. देसुत्तरगुणपच्चक्खाणे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ? गोयमा ! सत्तविहे पण्णत्ते, त जहा—दिसिव्वय,

६३ उवभोगपरिभोगपरिमाण,

## सोरठा

६४. एक वार जे भोग, अशन पान अनुलेपन -
आदि देइ सुप्रयोग, ते उपभोग कहीजियै ॥

६५. वारवार जे भोग, भूपण आसन शयन वथ ।
फुन वनितादि संयोग, ते परिभोग कहीजियै ॥

६६. *अनर्थदड नु छाडवु, सामायक सुविमास ।
देशावगासी नै वली, पवर पोपध उपवास ॥

६७. अविरत नहिं किणही तिथि विषे, तेह अतिथि महाभाग ।
तसु अशनादिक आपवू, एह अतिथि-संविभाग ॥

६८. अपच्छिम मारणातिके, सलेखणा सुख साव ।
तेहनु सेविवू ते भूसणा, तास अराधन भाव ॥

६४. उपभोग —सकृद्भोग , स चाशनपानानुलेपनादीना, (वृ० प० २९७)

६५ परिभोगस्तु पुन पुनर्भोग , स चासनशयनवसनवनितादीनाम् । (वृ० प० २९७)

६६ अणत्थदडवेरमणं, सामाइय, देसावगासियं, पोसहोववासो,

६७ अतिहिसविभागो ।

६८ अपच्छिममारणतियसलेहणाभूसणाराहणता । (श० ७।३५)

वा०—'अपच्छिममारणतियसलेहणाभूसणाराहणय' त्ति । इहा केवल पश्चिम शब्द अमगलीक हुवै, इण कारण अकार युक्त पश्चिम शब्द कह्यो । तिणसू अपश्चिम मरण ते प्राण नु तजवु प्राण त्याग लक्षण । यद्यपि प्रतिक्षण आवीची मरण छै तो पिण ते इहा ग्रहण न कर्‍यु, तो स्यू मरण इहा ग्रहण कर्‍यु ? सर्व आयु क्षय लक्षण मरण वछ्यो । मरणहीज अत ते मरणात, तेह मरणात नै विपे थइ ते मारणातिक शरीर, कपायादिक नै कृश—दुर्बल करै ते सलेखना तपोविशेप लक्षणा, ते अपश्चिम-मारणातिक-सलेखना, अपश्चिम मारणातिक सलेखना नु भूपणा—सेविवू, तेहनी आराधना, ते अखड काल कहिता भव पर्यंत करवी । तेहनु भाव ते अपश्चिम मारणातिक सलेखना झोसणा आराधनता ।

पश्चिमैवामङ्गलपरिहारार्थमपश्चिमा मरण—प्राणत्यागलक्षणम्, इह यद्यपि प्रतिक्षणमावीचीमरणमस्ति तथापि न तद्‌गृह्यते, किं तर्हि ? विवक्षितसर्वायुष्कक्षयलक्षण इति, मरणमेवान्तो मरणान्तस्तत्र भवा मारणान्तिकी सलिख्यते—कृशीक्रियतेऽनया शरीरकपायादीति सलेखना—तपोविशेपलक्षणा तत कर्मधारयाद् अपश्चिममारणान्तिकसलेखना तस्या जोपण—सेवन तस्याराधनम्—अखण्डकालकरण तद्‌भाव अपश्चिममारणान्तिकसलेखनाजोपणाराधनता ।

वली इहा दिशि व्रत आदि सप्त देश उत्तर गुणहीज छै । अनै सलेखणा भजना करिकै देश उत्तर गुण छै । देश उत्तर गुणवत नै तिका सलेखणा देश उत्तर गुण

इह च सप्त दिग्व्रतादयो देशोत्तरगुणा एव, सलेखना तु भजनया, तथाहि—सा देशोत्तरगुणवतो देशोत्तरगुण., आवश्यके तथाऽभिधानात्, इतरस्य तु सर्वो-

*लय : भामा ठग लागो

कहियै, आवश्यक विषे तिण प्रकार करिकै कहिवा थकी । अनै सर्व उत्तर गुणवत साधु नै साकार अनाकारादिक पचखाणरूपपणा थकी सलेखणा सर्व उत्तर गुण मे कहियै । श्रावक रै सप्त व्रत देश-उत्तर-गुण कह्या । ते सलेखणा विना कह्या छै तो सप्त देश उत्तरगुण नै विषे सलेखणा नो पाठ किम दियो ? देश उत्तर गुणधारी नै पिण ए सलेखणा मरणाते करवी, इण अर्थ नै जणावा नै अर्थे इति । ए अर्थ वृत्तिकार कह्यु छै ।

त्तरगुण साकारानाकारादिप्रत्याख्यानरूपत्वादिति सलेखनामविगणय्य सप्त देशोत्तरगुणा इत्युक्तम्, अस्याश्चैतेपु पाठो देशोत्तरगुणधारिणाऽपीयमन्ते विधातव्येत्यस्यार्थस्यख्यापनार्थ इति ।

(वृ० प० २९७)

इहा वृत्ति मे देश उत्तर गुणधारी रै सलेखणा देश उत्तरगुण मे कही अनै साधु रै दश पचखाणरूपपणा थकी सलेखणा सर्व उत्तरगुण मे कही । अनै इणहीज उद्देशे श्रावक रै सर्व उत्तरगुण पचखाण कह्या छै, जो ए सलेखना श्रावक रै देश उत्तरगुण पचखाण हुवै तो श्रावक रै सर्व उत्तरगुण पचखाण किसा ? ते भणी ए सलेखणा श्रावक रै देश थकी सर्व उत्तरगुण जणाय छै । वली केवली वदै ते सत्य । अनै दश विध पचखाण माहिला केयक पचखाण श्रावक रै देश थकी सर्व उत्तरगुण मे हुवै, ते पिण ज्ञानी वदै ते सत्य ।

### सोरठा

६९. कह्या पूर्वे पचखाण, वली अपचखाणे करी ।
पद जीवादि पिछाण, कहियै छै ते साभलो ।।

६९ अथोक्तभेदेन प्रत्याख्यानेन तद्विपर्ययेण च जीवादिपदानि विशेपयन्नाह— (वृ० प० २९७)

७०. *प्रभु ! स्यू मूल पचखाणी जीवा, उत्तरगुण पचखाणी अतीवा ।
कै अपचखाणी कहियै ताय ? जिन भाखै तीनू इ थाय ।।

७० जीवा ण भंते ! किं मूलगुणपच्चक्खाणी ? उत्तरगुणपच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ?
गोयमा ! जीवा मूलगुणपच्चक्खाणी वि, उत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि । (श० ७।३६)

७१. पूछा दंडक चउवीस नी जाणी, जिन कहै नारक अपचखाणी ।
ते मूलगुण पचखाणी न होय, उत्तरगुण पचखाणी न कोय ।।

७१ नेरइया ण भते ! किं मूलगुणपच्चक्खाणी ? पुच्छा।
गोयमा ! नेरइया नो मूलगुणपच्चक्खाणी, नो उत्तरगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी ।
(श० ७।३७)

७२. इम जावत चउरिंद्री ताइ, जे तिर्यंच पचेन्द्री माहि ।
वलि मनुष्य माहै पहिछाण, औघिक जीव तणी पर जाण ।।

७२ एव जाव चउरिंदिया । (श० ७।३८)
पचिंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य जहा जीवा,

### सोरठा

७३. नवर पं तिर्यंच, देश थकी जे मूलगुण ।
पचखाणी हुवै संच, सर्व विरति नहि ते भणी ।।

७३. नवर पचेन्द्रियतिर्यञ्चो देशत एव मूलगुणप्रत्याख्यानिन:, सर्वविरतेस्तेपामभावात् । (वृ० प० २९८)

७४ नवर पाठ विशेख, सूत्र विषे खोल्यो नथी ।
पिण इहा न्याय अवेख, वृत्ति टबा थी आखियो ।।

वा०—इहा तिर्यंच पचेद्रिय नै देश मूलगुण नी अपेक्षाय मूलगुण पचखाणी कह्या, पिण सर्व मूलगुण पचखाणी ते नही । अनै मनुष्य नै सर्व मूलगुण अनै देश मूलगुण ए विहु नी अपेक्षाय मूलगुण पचखाणी कह्या ।

---

*लय : भामा ठग लागो

७६. जीव प्रभु! मूलगुण पचखाणी, उत्तरगुण पचखाणी जाणी ।
वलि अपचखाण माहि कहेस, कुण-कुण थी जाव अधिक विशेष ?

७७. जिन कहै थोडा सर्व थी जाणी, जीव मूलगुण वर पचखाणी ।
सर्व देश गुण मूल सुहाया, ए दोनू ही इण में आया ।।

७८. तेहथी उत्तरगुण पचखाणी, ए असखगुणा पहिछाणी ।
पं० तिर्यंच उत्तर गुणवान, मूल थी असखगुणा ए जान ।।

७९. तेह थकी जे अपचखाणी, आख्या अनंतगुणा जिन जाणी ।
वणस्सइ आदि जीव जे जोय, धुर चिहुं गुणठाणां ना होय ।।

वा०—देश थकी अथवा सर्व थकी जे मूल गुणवत ते सर्व थी थोडा, तेह थकी देश उत्तरगुणवत अनै सर्व थकी उत्तरगुणवत असख्यातगुणा । इहा सर्व विरति नै विषै जे उत्तरगुणवत ते अवश्य मूल गुणवत हुवै अनै जे मूल गुणवत ते उत्तरगुणवत स्यात् हुवै स्यात् नहि पिण हुवै । इहा उत्तरगुण रहित मूल-गुणवत ग्रहिवा, ते उत्तरगुण पचखाणी थी थोडाहीज हुवै । वहुतर यती दश प्रत्याख्यान युक्त लाभै, तिण कारण निकेवल मूलगुण पचखाणी थोडा अनै तेहथी पिण सर्व उत्तरगुण पचखाणी सख्यात-गुणाहीज लाभै, पिण असख्यात गुणा नथी । सर्व पिण साधु सख्याता छै तिणे कारणे । अनै देशविरति नै विषे मूल गुण थकी जुदा पिण उत्तरगुणवत लाभै ते किम ? पच अणुव्रत अगीकार नही कीधा अनै मधु मासादिक विचित्र प्रकार ना अभिग्रह किया ते उत्तरगुण पचखाणी घणा लाभै । इण कारण देशविरति ना उत्तरगुण पचखाणी नै आश्रयी मूलगुण थी उत्तरगुण पचखाणी असंख्यात गुणा कह्या, इम वृत्ति माहै कह्यो ।

७६. एएसि ण भंते ! जीवाण मूलगुणपच्चक्खाणीण, उत्तरगुणपच्चक्खाणीणं, अपच्चक्खाणीण य कयरे कयरेहितो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

७७ गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मूलगुणपच्चक्खाणी,

७८. उत्तरगुणपच्चक्खाणी असखेज्जगुणा,

७९ अपच्चक्खाणी अणतगुणा । (श० ७।४०)

वा०—देशत. सर्वतो वा ये मूलगुणवन्तस्ते स्तोका:, देशसर्वाभ्यामुत्तरगुणवतामसख्येयगुणत्वात्, इह च सर्व-विरतेषु ये उत्तरगुणवन्तस्तेऽवश्य मूलगुणवन्त , मूल-गुणवन्तस्तु स्यादुत्तरगुणवन्त. स्यात्तद्विकला., य एव च तद्विकलास्त एवेह मूलगुणवन्तो ग्राह्या , ते चेतरेभ्य स्तोका एव, बहुतरयतीना दशविधप्रत्या-ख्यानयुक्तत्वात्, तेऽपि च मूलगुणेभ्य सख्यातगुणा एव नासख्यातगुणा , सर्वयतीनामपि सख्यातत्वात्, देशविरतेषु पुनर्मूलगुणवद्भ्यो भिन्ना अप्युत्तरगुणिनो लभ्यन्ते, ते च मधुमासादिविचित्राभिग्रहवशाद् बहुतरा भवन्तीति कृत्वा देशविरतोत्तरगुणवतोऽधिकृत्योत्तर-गुणवता मूलगुणवद्भ्योऽसख्यातगुणत्व भवति । अत एवाह —'उत्तरगुणपच्चक्खाणी असखेज्जगुण' त्ति ।
(वृ० प० २९८, २९९)

८०. ए प्रभु! तिरि पंचेंद्री माहि, पूछा कीधी गोतम ताहि ।
मूल उत्तरगुण अपचखाणी, कुण-कुण थी अल्पादिक माणी ।।

८१ जिन कहै तिरि पचेंद्री जाणी, सर्व थोड़ा मूलगुण पचखाणी ।
असखगुणा उत्तरगुण त्यागी, अपचखाणी असख गुण सागी ।।

८२. ए प्रभु! मनुष्य विषे पहिछाणी, पवर मूलगुण जे पचखाणी ?
पूछा कीधा कहै जिनराय, अल्पबहुत्व सुणज्यो चित ल्याय ।।

८३. मनुष्य सर्व थी थोडा पिछाणी, सखर मूलगुण वर पचखाणी ।
सखगुणा उत्तरगुण त्यागी, अपचखाणी असखगुणा सागी ।।

८० एएसि ण भंते ! पचिदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

८१ गोयमा ! सव्वत्थोवा पचिदियतिरिक्खजोणिया मूल-गुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी असखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असखेज्जगुणा । (श० ७।४१)

८२ एएसि ण भंते ! मणुस्साण मूलगुणपच्चक्खाणीण पुच्छा ।

८३ गोयमा ! सव्वत्थोवा मणुस्सा मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी सखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असखेज्जगुणा । (श० ७।४२)

---

*लय : भामा ठग लागो

वा०—मनुष्य नै विषे अपचखाणी असख्यातगुणा कह्या ते छमूर्च्छिम मनुष्य नी अपेक्षाय, गर्भेज नै सख्यातपणा थकी ।

८४. हे भगवत! जीव स्यू जाणी, सर्व मूलगुण वर पचखाणी ?
कै देश मूलगुण पचखाणी छै, कै अपचखाणी इम त्रिहु पृच्छै ।।
८५. जिन कहै गोयम ! जीवा जाणी, सर्व मूलगुण वर पचखाणी ।
देश मूलगुण वर पचखाणी, अपचखाणी पिण पहिछाणी ।।

८६. नारक पूछ्या जिन कहै त्याही, सर्व मूलगुण त्यागी नाही ।
देश मूलगुण पिण नहि कहियै, अपचखाणी नारक लहियै ।।

८७. एवं जाव चउरिंद्रिया ताम, पं. तिर्यंच पूछ्या कहै स्वाम ।
पंचेंद्रिय तिर्यंच पिछाणी, सर्व मूलगुण नहि पचखाणी ।।

८८. देश मूलगुण पचखाणी छै, ए पचम गुणठाण सही छै ।
अपचखाणी पिण तिरि कहियै, ए धुर चिहु गुणस्थानक लहियै ।।
८९. मणुसा जीव तणी पर जाणी, सर्व देश फुन अपचखाणी ।
व्यतर जोतिषि वैमानीक, नारकी जिम कहियै तहतीक ।।

### यतनी

९०. प्रभु ! एह जीवा पहिछाणी, सर्व मूलगुण पचखाणी ।
देश मूलगुण पचखाणी, वलि अपचखाणी जाणी ।।
९१. यामे कुण-कुण थी सुविचार, अल्प हुवै अथवा बहु धार ।
तथा तुल्य वा अधिक विशेष, तसु उत्तर भाखै जिनेश ।।
९२. सर्व मूलगुण पचखाणी, जीव सर्व थी थोडा जाणी ।
देश मूलगुण पचखाणी, असंख्यातगुणा पहिछाणी ।।
९३ वलि तेहथी अपचखाणी, हुवै अनतगुणा ए ठाणी ।
समचै जीव नी ए अवधार, कही अल्पबहुत्व जगतार ।।
९४. इम अल्पबहुत्व त्रिहु जाण, जिम प्रथम दडक तिम माण ।
नवर कहिता एतलो विशेष, तिणरो आगल भेद कहेस ।।
९५. सर्व थोड़ा पचेंद्रिय तिर्यच, देश मूलगुण पचखाणी सच ।
तेहथी असंखगुणा अधिकाय, ए तो अपचखाणी ताय ।।

### सोरठा

९६. तिर्यंच श्रावक तास, देश मूलगुणईज हुवै ।
सर्व मूलगुण राश, साधु विना हुवै नही ।।

वा०—मनुष्यसूत्रे 'अपच्चक्खाणी असखेज्जगुणे' ति यदुक्त तत्सम्मूर्च्छिममनुष्यग्रहणेनावसेयमितरेषा सख्यातत्वादिति । (वृ० प० २९९)

८४ जीवा ण भते ! किं सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी ? देसमूलगुणपच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ?

८५ गोयमा ! जीवा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी वि, देसमूलगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि । (श० ७।४३)

८६ नेरइयाण पुच्छा ।
गोयमा ! नेरइया नो सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, नो देशमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी । (श० ७।४४)

८७ एव जाव चउरिंदिया । (श० ७।४५)
पचिंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! पचिंदियतिरिक्खजोणिया नो सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी,

८८. देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि । (श० ७।४६)

८९ मणुस्साण भते ! किं सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी ? देसमूलगुणपच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ?
गोयमा ! मणुस्सा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी वि, देसमूलगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि । (श० ७।४७)

वाणमतर-जोइस-वेमाणिया जहा नेरइया । (श० ७।४८)

९०. एएसि ण भते ! जीवाण सव्वमूलगुणपच्चक्खाणीण, देसमूलगुणपच्चक्खाणीण, अपच्चक्खाणीण य

९१ कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

९२ गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, देसमूलगुणपच्चक्खाणी असखेज्जगुणा,

९३. अपच्चक्खाणी अणतगुणा । (श० ७।४९)

९४ एव अप्पाबहुगाणि तिण्णि वि जहा पढमिल्ले दडए, नवर—

९५ सव्वत्थोवा पचिंदियतिरिक्खजोणिया देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी असखेज्जगुणा । [स० पा०] (श० ७।५०,५१)

सर्वमूलगुण पचखाणी, देश मूलगुण पचखाणी अनै अपचखाणी ए तीनू नी कहवी।

णवर पचेंद्रिय तिर्यंच नै विषे सर्व मूलगुण पचखाणी नथी, ते भणी देश मूलगुण पचखाणी अनै अपचखाणी ए बेहु बोल नी अल्पबहुत्व छै। अनै समचै जीव अनै मनुष्य ए बे दडके सर्व मूलगुण पचखाणी, देश मूलगुण पचखाणी, अपचखाणी ए त्रिहु बोल नी अल्पबहुत्व प्रथम दडक नी परै जाणवी।

त्रीण्यपि वाच्यानि, (वृ० प० २६६)

## यतनी

९७. बहु जीव हे प्रभु ! स्यू जाणी, सर्व उत्तरगुण पचखाणी।
देश उत्तरगुण पचखाणी, कै अपचखाणी माणी ?

९८. जिन भाखै तीनूइ तेम, पंचेंद्रिय तिरि नैं मनु एम।
शेष अपच्चक्खाणी एक, जाव वैमानिक लग पेख।।

९७ जीवा ण भते ! कि सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी ? देसुत्तरगुणपच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ?

९८. गोयमा ! जीवा सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, देसुत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि। पचिंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य एव चेव। सेसा अपच्चक्खाणी जाव वेमाणिया। (श० ७।५२)

९९ हे प्रभुजी ! ए जीवा जाणो, सर्व उत्तरगुण पचखाणी।
अल्पबहुत्व तीनू पिण तेह, प्रथम दंडक जेम कहेह।।

१००. जाव मनुष्य तणी कहिवाय, इम कह्यो सूत्तर रै माय।
जीव पं. तिरि मनुष्य नी एम, अल्पबहुत्व प्रथम दंडक जेम।।

९९ एएसि णं भते ! जीवाण सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणीण अप्पाबहुगाणि तिण्णि वि जहा पढमे दडए

१००. जाव मणुस्साण। (श० ७।५३)

वा०—इम इहा तीनू पिण कहिवी। नवर इत्यादि पचेंद्रिय तिर्यंच पिण सर्व उत्तरगुण पचखाणी हुवै, इम जाणवू। देशविरति नै देश थकी सर्व उत्तरगुणपचखाण नै अभिमतपणा थकी।

वा०—इह च पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोऽपि सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानिनो भवन्तीत्यवसेयं, देशविरताना देशत सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानस्याभिमतत्वादिति। (वृ० प० २९९)

१०१. *बोहितर नों देश ए, एकसौ पनरमी ढालो।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' गण गुणमालो।।

## ढाल : ११६

### सोरठा

१. मूल उत्तर पचखाण, वलि अपचखाणी छै तिके।
संयत प्रमुख सुजाण, हिवै संजयादिक कहै।।

१. मूलगुणप्रत्याख्यानिप्रभृतयश्च सयतादयो भवन्तीति संयतादिसूत्रम्— (वृ० प० २९९)

*लय : भामा ठग लागो

*वीर प्रभु नैं गोयम पूछै ॥ध्रुपदं॥

२. जीव प्रभुजी ! स्यू सजया छै ? कै असजया छै जीवा ?
कै सजतासजत जीव अछै ए ? जिन कहै तीनू पिण कहीवा ॥

२. जीवा णं भंते ! किं सजया ? असजया ? सजया-संजया ?
गोयमा ! जीवा संजया वि, असंजया वि, सजया-सजया वि ।

३. इम जिम पन्नवणा बत्तीसमैं पद, तिमहिज भणवू तेहो ।
जाव वैमानिक लग सहु कहिवू, जिन वचनामृत जेहो ॥

३ एव जहेव पणवणाए (३२।१) तहेव भाणियव्व जाव वेमाणिया ।

४. अल्पबहुत्व पिण तिमहिज त्रिहु नी, ए तीजा पद माही ।
ते पिण केहवी छै इण रीते, साभलज्यो चित ल्याई ॥

वा०—समचै जीव पंचेंद्रिय तिर्यंच और मनुष्य ए त्रिहु नैं विषे सजतादिक नीं अल्पबहुत्व कहै छैं । तिहा सर्व थोडा सजती जीव । सजतासजती असखेज्ज गुणा । अनैं असजती अनत गुणा । पचेंद्रिय तिर्यंच मे सर्व थोड़ा सजतासजती । असजती असखेज्ज गुणा । मनुष्यो मे सर्व थोडा सजती, सजतासजती सखेज्ज गुणा । असजती असख्यातगुणा समूर्च्छिम आश्रयी ।

४ अप्पाबहुग तहेव तिण्ह वि भाणियव्व ।
(श० ७।५४)

वा०—जीवाना पञ्चेन्द्रियतिरश्चा मनुष्याणा च, तत्र सर्वस्तोका सयता जीवा, सयतासयता असख्येयगुणा, असयतास्त्वनन्तगुणा, पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चस्तु सर्वस्तोका सयतासयता, असयता असख्येयगुणा., मनुष्यास्तु सर्वस्तोका सयता, सयता-सयता सख्येयगुणा, असयता असख्येयगुणा इति ।
(वृ० प० २९९)

५. नो-सजति नो-असंजति वली, नो-सजतासंजनी इच्छा ।
ए चोथा बोल नी पूछा इहा न करी, पन्नवण चिउ नी पृच्छा ॥

५. जीवा ण भते ! किं सजया ? असजया ? सजता-सजता ? णोसजत-णोअसजत-णोसजयासजया ?
गोयमा ! जीवा सजया वि असजया वि सजया-सजया वि णोसजयणोअसजयणोसजतासजया वि
(पन्नवणा ३२।१)

सोरठा

६. आख्या संयत आद, ते पचखाणादिकपणैं ।
तिण कारण विधिवाद, पचखाणादिक सूत्र हिव ॥

६ सयतादयश्च प्रत्याख्यान्यादित्वे सति भवन्तीति प्रत्या-ख्यान्यादिसूत्रम्— (वृ० प० २९९)

७. *जीव प्रभू ! स्यूं पचखाणी छै, कै कह्या अपचखाणी ।
पचखाणापचखाणी जीव छै, ? जिन कहै तीनूंइ जाणी ॥
(वीर प्रभु कहै गोतम शिष्य नैं)

७ जीवा ण भते ! किं पच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ? पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?
गोयमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि । (श० ७।५५)

८. मनुष्य विषे ए तीनूंइ पावैं, पंचेद्री तिर्यंच में जाणी ।
आदि संयत विन दोय कहीजै[1], शेप सर्व अपचखाणी ॥

८ एव मणुस्साण वि । पंचिंदियतिरिक्खजोणिया आदिल्लविरहिया । सेसा सव्वे अपच्चक्खाणी जाव वेमाणिया । (श० ७।५६)

९. अल्पबहुत्व तीनूं नी पूछी, जीव तणैं अधिकारो ।
जिन कहै सर्व थी थोडा जीव छै पचखाणी अणगारो ॥

९ एएसि ण भंते ! जीवाण पच्चक्खाणीण, अपच्चक्खा-णीण, पच्चक्खाणापच्चक्खाणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?
गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पच्चक्खाणी,

१०. पचखाणापचखाणी श्रावक, असंख्यातगुणा होयो ।
अपचखाणी च्यार गुणठाणा, अनतगुणा अवलोयो ॥

१० पच्चक्खाणापच्चक्खाणी असखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी अणतगुणा ।

*लय : थिर थिर चेतन सजम पथे

१ तिर्यंचपञ्चेन्द्री मे प्रत्याख्यानी नही होते । क्योकि वे संयती नही हो सकते । इसलिए वे प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी—ये दो ही होते हैं ।

१२ मनुष्य सर्व थी थोडा पचखाणी, पचखाणापचखाणी ।
श्रावक एह सखेज्जगुणा छै, अपचखाणी असखगुणा जाणी ॥

१२ मणुस्सा सव्वत्थोवा पच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी सखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असखेज्जगुणा ।
(श० ७।५७)

## सोरठा

१३. छठा शतक मझार, चउथा उद्देशा मझै ।
श्री जिनवर जयकार, पचखाणी आदि परूपिया ॥
१४ वली परूपण तेह, स्यू कारण है तेहनो ।
तसु उत्तर छै एह, चित्त लगाई साभलो ॥
१५. अल्पवहुत्व करि रहीत, सूत्र निकेवल त्या कह्यो ।
इहा अल्पवहुत्व सहीत, वलि अन्य सम्वन्ध करी अख्यो ॥

१३, १४. ननु षष्ठशते चतुर्थोद्देशके (६।६४,६५) प्रत्याख्यान्यादय प्ररूपिता इति किं पुनस्तत्प्ररूपणेन ?
(वृ० प० २९९)

१५ सत्यमेतत् किन्त्वल्पवहुत्वचिन्तारहितास्तत्र प्ररूपिता इह तु तद्युक्ता. सम्बन्धान्तरद्वारायाताश्चेति ।
(वृ० प० २९९)

## दूहा

१६. जीव तणा अधिकार थी, जीव सास्वता जाण ।
कै छै जीव असास्वता ? हिवै प्रश्न ए आण ॥

१६ जीवाधिकारात्तच्छाश्वतत्वसूत्राणि—
(वृ० प० २९९)

१७. *हे भगवंत ! स्यू सास्वता जीवा, कै असास्वता सुविचारो ?
जिन कहै जीवा कदाच सास्वता, असास्वता छै किवारो ॥

१७ जीवा ण भते ! किं सासया ? असासया ?
गोयमा ! जीवा सिय सासया, सिय असासया ।
(श० ७।५८)

१८. किण अर्थे तव श्री जिन भाखै, द्रव्यार्थपणै सुजाणी ।
सास्वता जीव छै त्रिहु काल मे, ए द्रव्य जीव पहिछाणी ॥

१८. से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—जीवा सिय सासया ? सिय असासया ? गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया,
'दव्वट्ठयाए' त्ति जीवद्रव्यत्वेनेत्यर्थः । (वृ० प० २९९)

१९. भावअर्थपणै जीव असास्वता, नारकादि पर्यायो ।
तिण अर्थे कह्या कदा सास्वता, कदा असास्वता ताह्यो[1] ॥

१९. भावट्ठयाए असासया । से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—जीवा सिय सासया, सिय असासया ।
(श० ७।५९)
'भावट्ठयाए' त्ति नारकादिपर्यायत्वेनेत्यर्थ ।
(वृ० प० २९९)

२०. हे प्रभु ! नेरइया सास्वता छै स्यू कै असास्वता कहिवायो ?
जेम जीव तिम नेरइया पिण, इम जाव वैमानिक ताह्यो ॥

२० नेरइया ण भते ! किं सासया ? असासया ?
एव जहा जीवा तहा नेरइया वि । एव जाव वेमाणिया ।

*लय : थिर थिर चेतन संजम पथे

१ भगवती सूत्र के इसी सन्दर्भ को स्पष्ट करते हुए आचार्य भिक्षु ने कालवादी की चौपई ढाल ३ मे कुछ पद्य लिखे हैं, वे इस प्रकार हैं—
दरवे सासतो नै भावे असासतो, जीव नै कह्यो जिनराय हो ।
ते सूतर भगोती रै शतक सातमैं दूजा उदेसा माय हो ॥२७॥
दरवे सासतो जीव नैं यू कह्यो, जीव रो अजीव न थाय हो ।
भावे जीव नैं कह्यो छै असासतो, ते तो परजाय पलटे जाय हो ॥२८॥
नारकी देवता रो मिनख तिरजच हुवै, मिनख तिरजच रो देवता थाय हो ।
इत्यादिक जीव रा भाव अनेक ही, ते और रो और हुय जाय हो ॥३७॥

२१. इण अर्थे जाव[1] कदा सास्वता, कदा असास्वता जाणी ।
सेवं भते ! सेवं भते ! इम कहै गौतम वाणी ॥

२१. सिय सासया, सिय असासया । (श० ७।६०)
सेव भते ! सेव भते ! त्ति (श० ७।६१)

२२. सातमा शतक नो बीजो उदेशो, एक सौ सोलमी ढालो ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' हरप विशालो ॥

सप्तमशते द्वितीयोद्देशकार्थः ॥७।२॥

## ढाल : ११७

### दूहा

१. जीव तणा अधिकार थी, प्रतिबद्ध ईज पिछाण ।
तृतीय उद्देशक पुन., ते सूत्र वणस्सइ जाण ॥

१. जीवाधिकारप्रतिबद्ध एव तृतीयोद्देशकस्तत्सूत्रम्—
(वृ० प० २९९)

*देव जिनेन्द्र दयाल गोयम नी, जग माहि जुगती जोडी जी ॥ध्रुपदं॥

२. वनस्पतिकाय हे भगवतजी, काल किसै सुविचारो जी ।
सर्व थकी अल्प आहार करे छै, सर्व थकी महा आहारो जी ?

२. वणस्सइक्काइया णं भते ! क काल सव्वप्पाहारगा वा ? सव्वमहाहारगा वा भवति ?

३. श्री जिन भाखै श्रावण भाद्रवे, पाउस ऋतू मझारो ।
आसोज काती वर्पा ऋतु मे, सर्व थकी महा आहारो ॥

३. गोयमा ! पाउस-वरिसारत्तेसु ण एत्थ ण वणस्सइ-काइया सव्वमहाहारगा भवति ।
प्रावृट् श्रावणादिर्वर्पारात्रोऽश्वयुजादिः ।
(वृ० प० ३००)

४. तिवार पछै मृगसिर नै पोस मे, शरद ऋतु अल्प आहारो ?
तिवार पछै माह फागुण हेमत, अल्प आहारी सुविचारो ॥

४ तदाणतर च ण सरदे, तदाणतरं च ण हेमते,
'सरदे' ति शरत् मार्गशीर्षादिस्तत्र ।
(वृ० प० ३००)

५. तिवार पछै जे चैत वैशाखे, वसत ऋतु अल्प आहारो ।
तदनतर जे ग्रीष्म ऋतु मे, कहियै तास प्रकारो ॥

५ तदाणतर च ण वसते, तदाणतर च ण गिम्हे ।

६. जेठ आसाढ ग्रीष्म ऋतु माहै, वणस्सइकाय विचारो ।
सर्व थकी अल्प आहार करै छै, ए जिन वाण उदारो ॥

६. गिम्हासु ण वणस्सइकाइया सव्वप्पाहारगा भवति ।
(श० ७।६२)

७. जो प्रभु ! ग्रीष्म मांहि वनस्पती, सर्व अल्प आहारवतो ।
तो प्रभु ! ग्रीष्मे वनस्पति किम, पत्र फूल फल हुतो ।

७ जइ ण भते ! गिम्हासु वणस्सइकाइया सव्वप्पा-हारगा भवति, कम्हा ण भते ! गिम्हासु बहवे वणस्सइकाइया पत्तिया, पुप्फिया, फलिया,

८. हरित नील वर्णे करिनै जे, देदीप्यमान दीपता ।
वन लक्ष्मी करि घणु-घणु ते, शोभायमान रहता ?

८ हरियगरेरिज्जमाणा, सिरीए अतीव-अतीव उवसोभे-माणा-उवसोभेमाणा चिट्ठति ?
हरितकाश्च ते नीलका रेरिज्जमानाश्च—देदीप्यमाना हरितकरेरिज्यमाना. । (वृ० प० ३००)

९. जिन भाखै ग्रीष्म ऋतु माहै, बहु उष्णयोनिया जीवा ।
वलि पुद्गल पिण वनस्पतिपणै, वक्कमति कहिता उपजै अतीवा ॥

९ गोयमा ! गिम्हासु ण बहवे उसिणजोणिया जीवा य, पोग्गला य वणस्सइकाइयत्ताए वक्कमति,

---

१. अगसुत्ताणि भाग २ सू० ७।६० मे यह 'जाव' उपलब्ध नही है ।

*लय : शातिनाथ मेरे मन वसिया

ए चिहु पद नो अर्थ द्वितीय शतक पचमुद्देशे' तिम कहियै ।।

१२ इम निश्चै ग्रीष्म ऋतु नै विषे, वनस्पती बहु जीवा ।
पानवत अरु पुष्पवत ए, जावत तिष्ठै अतीवा ।।

१३. मूल प्रभु ! मूल जीव सघाते, फर्श्या छै अधिकायो ।
कद संघाते कद जीव ते, फर्श्या छै ए ताह्यो ।।

१४ जाव बीज ते बीज जीव थी, फर्श्या एम पिछाणी ।
गोतमजी इण विध प्रश्न पूछ्ये ? जिन कहे हता जाणी ।।

### सोरठा

१५. कद जमी रै माहि, गाठ रूप मध्य भाग जे ।
ते कद थी नीकली ताहि, चिहु दिशि जटाज मूल ते ।।

१६. तिण सू मूलज जीव, पृथ्वी करी प्रतिबद्ध छै ।
मही-रस अधिक अतीव, तेह प्रतै ए आहरै ।।

१७. कद जीव छै तेह, मूल करी प्रतिबद्ध छै ।
मूल तणो रस जेह, तेह प्रतै ए आहरै ।।

१८. *जो प्रभु ! मूल फर्श्यो मूल साथै, जाव बीज फर्श्यो बीज साथो ।
तो किम वणस्सइ आहार करै छै, केम परिणमै नाथो ?

### सोरठा

१९. मूल भूमि रै माहि, बीज भूमि स्यू दूर छै ।
आहार सहु नै ताहि, वलि सहु नै किया परिणमैं ।।

२०. *जिन कहै मूल ते मूल जीव थी, फर्श्या एह अत्यतो ।
पृथ्वी जीव सघात बध्या छै, तिण सू आहार करै परिणमतो ।।

२१. कद जीव कद साथ फर्श्या छै, मूल जीव थी बधाणो ।
तिण सू आहार करै नै परिणमैं, इम खधादिक जाणो ।।

२२. इम जाव बीज ते बीज जीव थी, फर्श्या थकाज अत्यतो ।
फल जीव प्रतिबद्ध रस पाम्या, तिण सू आहार करै परिणमतो ।।

१२ एवं खलु गोयमा ! गिम्हासु बहवे वणस्सइकाइया पत्तिया, पुप्फिया, फलिया, हरियगरेरिज्जमाणा, सिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणा-उवसोभेमाणा चिट्ठंति । (श० ७।६३)

१३ से नूण भते ! मूला मूलजीवफुडा, कदा कदजीवफुडा,

१४ जाव (स० पा०) बीया बीयजीवफुडा (श० ७।६४)

१६. मूलानि मूलजीवस्पृष्टानि केवल पृथिवीजीवप्रतिबद्धानि.....'तस्मात्' तत् प्रतिबन्धाद्धेतो पृथिवीरस मूलजीवा आहारयन्ति । (वृ० प० ३००)

१७ कन्दा कन्दजीवस्पृष्टाः केवल मूलजीवप्रतिबद्धा 'तस्मात्' तत्प्रतिबन्धात् मूलजीवोपात्त पृथिवीरसमाहारयन्ति । (वृ० प० ३००)

१८ जइ ण भते ! मूला मूलजीवफुडा जाव बीया बीयजीवफुडा, कम्हा ण भते ! वणस्सइकाइया आहारेंति ? कम्हा परिणामेति ?

२० गोयमा ! मूला मूलजीवफुडा पुढवीजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेति ।

२१ कदा कदजीवफुडा मूलजीवपडिबद्धा, तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेति ।

एव स्कन्धादिष्वपि वाच्यम् (वृ० प० ३००)

२२ एव जाव बीया बीयजीवफुडा फलजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेति । (श० ७।६५)

---

*लय : शान्तिनाथ मेरे मन बसिया

१ अगसुत्ताणि (भाग २) ७।६३ मे विउक्कमति पाठ पाठान्तर मे लिया गया है, मूल मे तीन ही पद रखे गए हैं । दूसरे शतक (२।११३) मे चारो पद उल्लिखित हैं ।

२३. अथ प्रभु! आलू मूलो नै आदो, हिरिलि सिरिलि ताह्यो ।
सिस्सिरिलि किट्टिका नै छिरिया, अनंतकाय कहिवायो ?
२४. क्षीरविरालिया कृष्णकद वलि, वज्रकद सूरणकदो ।
खेलूड नै अद्दमुत्था[1] पिंडहलिद्दा लोहि णीहू मदो ॥
२५. थीहू विभगा[2] वे भाग सरीखा, अश्वकर्णी सीहकर्णी ।
सिउढी मुसढी सहु लोकरूढि गम्य अनतकाय ए वर्णी ॥

२३ अह भते ! आलुए, मूलए, सिंगवेरे, हिरिलि, मिरिलि, सिस्सिरिलि, किट्टिया, छिरिया,
२४ छीरविरालिया, कण्हकदे, वज्जकदे, सूरणकदे, खेलूडे, भद्दमोत्था, पिंडहलिद्दा, लोही, णीहू,
२५. थीहू, थिभगा, अस्सकण्णी, सीहकण्णी, सिउढी, मुसढी,
एते चानन्तकायभेदा लोकरूढिगम्या, (वृ० प० ३००)

२६. अन्य वलि जे एह सरीखी, अनत जीव सहु माह्यो ।
विविह सत्व वर्णादि भेद थी, वहु प्रकार कहिवायो ॥

२६ जेयावण्णे तहप्पगारा सव्वे ते अणतजीवा विविहसत्ता ?
विविधा—वहुप्रकारा वर्णादिभेदात् (वृ० प० ३००)

२७. विविह सत्ता किहाइक दीसै, वि कहितां विचित्र कहीजै ।
विध कहिता भेद छै जेहना, ते सत्ता जीवा लहीजै ॥

२७ 'विविहसत्त (चित्ताविहि)' त्ति क्वचिद् दृश्यते तत्र विचित्रा विधयो—भेदा येषा ते तथा ते सत्त्वा येषु ते तथा । (वृ० प० ३००)

२८. हे प्रभु! ए सहु अनतकाय छै? प्रश्न गोयम इम मत्ता ।
जिन कहै हता आलू मूल ए, जाव अनत जीव विविध सत्ता ॥

२८ हता गोयमा ! आलुए मूलए, जाव अणतजीवा विविहसत्ता । (श० ७।६६)

## दोहा

२९. जीव तणा अधिकार थी, जीव नारकी आद ।
लेस्या करि तसु प्रश्न हिव, पूछै धर अहलाद ॥

२९ जीवाधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० ३००)

३०. *कृष्णलेस्यावत नारक हे प्रभु ! अल्पकर्मी किणवारै ?
नील लेश्यावत महाकर्मी छै? जिन कहै हता जिवारै ॥

३० सिय भते ! कण्हलेसे नेरइए अप्पकम्मतराए ? नीललेसे नेरइए महाकम्मतराए ? हता सिय । (श० ७।६७)

३१. किण अर्थे तव श्री जिन भाखै, स्थिति पडुच्च कहीजै ।
तिण अर्थे जाव महा-कर्मवत, न्याय हिवै इम लीजै ॥

३१ से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—कण्हलेसे नेरइए अप्पकम्मतराए ? नीललेसे नेरइए महाकम्मतराए ? गोयमा ! ठिति पडुच्च । से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव महाकम्मतराए । (श० ७।६८)

## सोरठा

३२. नरक सातमी माय, कृष्णलेस्यावत नेरइयो ।
निज स्थिति घणी खपाय, अल्प रही वर्तै तिहा ॥
३३. नरक पंचमी माहि, नीललेसी जे नेरइयो ।
सतर सागर स्थिति ताहि, ते तत्काल समुप्पनो[3] ॥

३२ सप्तमपृथिवीनारक कृष्णलेश्यस्तस्य च स्वस्थितौ वहुक्षपितायां तच्छेषे वर्त्तमाने । (वृ० प० ३०१)
३३ पञ्चमपृथिव्यां सप्तदशसागरोपमस्थितिर्नारको नीललेश्य समुत्पन्न, (वृ० प० ३०१)

*लय : शान्तिनाथ मेरे मन वसिया

१ इसके स्थान पर अगसुत्ताणि भाग २ मे 'भद्दमोत्था' पाठ है । 'अद्दमोत्था' को वहा पाठान्तर माना गया है ।

२ इसके स्थान पर अगसुत्ताणि भाग २ मे 'थिभगा' पाठ है । 'विभगा' को वहा पाठान्तर माना गया है ।

३ प्रस्तुत आगम की वृत्ति मे नील लेश्या वाले नैरयिक की उत्कृष्ट स्थिति सतरह सागर की उल्लिखित है । जयाचार्य ने उसका अनुवाद मात्र किया है, →

३५. *नील लेस्यावंत नारक प्रभुजी ! अल्प कर्म किण वारै ।
कापोत नारक महाकर्मी छै ? जिन कहै हंता जिवारै ॥

३५ सिय भंते ! नीललेसे नेरइए अप्पकम्मतराए ? काउलेसे नेरइए महाकम्मतराए ? हंता सिय । (श० ७।१६९)

३६. किण अर्थे ?तब श्री जिन भाखै, स्थिति आश्री कहिवायो ।
तिण अर्थे नील अल्पकर्मवत, कापोत महाकर्म थायो ॥

३६ से केणट्ठेणं भंते !……गोयमा ! ठिंति पडुच्च । से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव महाकम्मतराए । (श० ७।१७०)

३७. असुरकुमार पिण इमहिज भणवा, णवर तेजू अधिकाइ ।
एवं जाव वैमानिक कहिवा, लेस पावै ते थाइ ॥

३७. एव असुरकुमारे वि, नवर—तेउलेसा अब्भहिया । एव जाव वेमाणिया जस्स जइ लेस्साओ तस्स तत्तिया भाणियव्वाओ ।

३८. जोतिपि नो दडक नहि भणवो, लेस्या इक तिण मांही ।
लेस सयोग नहीं तिण माटै, जोतिपि भणवो नाही ॥

३८ जोइसियस्स न भण्णइ
एकस्या एव तेजोलेश्यायास्तस्य सद्भावाद् सयोगो नास्तीति । (वृ० प० ३०१)

३९. जाव कदा पद्मलेसी वैमानिक, अल्पकर्मी किण वारै ।
महाकर्मी शुक्ललेसी वैमानिक ? जिन कहे हता जिवारै ॥

३९ जाव— (श० ७।७१)
सिय भंते ! पम्हलेस्से वेमाणिए अप्पकम्मतराए ? सुक्कलेस्से वेमाणिए महाकम्मतराए ?
हंता सिय । (श० ७।७२)

४०. किण अर्थे प्रभुजी ! इम कहियै, शेप नरक जिम जाणी ।
जावत महाकर्मवंत कहीजै, न्याय पूर्ववत छाणी ॥

४० से केणट्ठेण ? सेसं जहा नेरइयस्स (मं० पा०) जाव महाकम्मतराए । (श० ७।७३)

## सोरठा

४१. कह्या सलेसी जोय, वेदनवंत हुवै तिके ।
हिवै वेदना सोय, ते आगल कहियै अछै ॥

४१ सलेश्या जीवाश्च वेदनावन्तो भवन्तीति वेदना-सूत्राणि— (वृ० प० ३०१)

---

*लय : शान्तिनाथ मेरे मन वसिया

पर इस विषय मे अपना कोई मत प्रदर्शित नही किया । इसकी समीक्षा में कोई वार्तिका या टिप्पण भी नहीं लिखा । उत्तराध्ययन (३४।३५) के सदर्भ में यह अभिमत सगत नहीं है । वहा नीललेश्या वाले नैरयिक की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक दस सागर वताई गई है । यह तथ्य आचार्यश्री तुलसी द्वारा निर्मित तीन सोरठों मे निरूपित है । वे सोरठे इस प्रकार हैं—

वृत्ति विषे इम वाय, नीललेसी जे नेरइयो ।
सतर सागर स्थिति ताय, उपजै नरक पंचमी विषे ॥
उत्तराध्ययन मझार, चउतीसम अध्ययन मे ।
नील लेश्या स्थिति सार, दश सागर जाझी कही ॥
तिणसू ए अप्रमाण, नीललेसी जे नेरियो ।
सतर सागर स्थिति माण, उपजै नहि पंचमि नरक ॥

४२. *ते निश्चै प्रभु ! जिका वेदना, तिका निर्जरा कहियै ।
जिका निर्जरा तिका वेदना ? जिन कहै इम नहिं लहियै ॥

४३. किण अर्थे प्रभु ! जिका वेदना, तिका निर्जरा नाही ।
जिका निर्जरा नहिं ते वेदना ? हिव जिन भाखै त्याही ॥

४४. उदय कर्म हुवै ते वेदना, निर्जरा कर्म अभावो ।
एहवा स्वरूप थकी तिण अर्थे, जुदा विहु इण न्यावो ॥

४५. नारकी नै प्रभु ! जिका वेदना, तिका निर्जरा जोयो ।
जिका निर्जरा तिका वेदना ? जिन कहै इम नहिं होयो ॥

४६. किण अर्थे ? तब जिन कहै नरके, कर्म उदय वेदन छै ।
कर्म अभाव निर्जरा कहियै, तिण अर्थे ए वचन छै ॥

४७. एव जाव वैमानिक कहिवा, समचै एह बताया ।
काल त्रिहु आश्री हिव आगल, प्रश्न उत्तर सुखदाया ॥

४८ ते निश्चै प्रभु ! गया काल मे, वेद्यो ते निर्जर्‍यो कहियै ।
निर्जरियो कर्म वेद्यो कहियै ? जिन कहै इम न उच्चरियै ॥

४९. किण अर्थे ? तब श्री जिन भाखै, जे वेद्यो ते कर्मो ।
निर्जर्‍यो ते नोकर्म कहीजै, तिण कारण ए मर्मो ॥

५०. नारकी जे गये काले वेद्यो, ते निर्जरियो कहियै ।
पूरववत दडक चउवीसे, इमज प्रश्नोत्तर लहियै ।

५१. जे निश्चै प्रभु ! हिवड़ा वेदै छै, ते निर्जरै इम कहियै ।
ते हिवड़ा निर्जरै ते वेदै ? जिन कहै इम नहिं थइये ॥

५२. किण अर्थे ? तब श्री जिन भाखै, वेदै ते कर्म पिछानो ।
निर्जरै ते नोकर्म कहीजै, तिण अर्थे ए जानो ॥

५३. एव नारकी जाव वैमानिक, आख्यो ए वर्त्तमानो ।
काल अनागत ना हिव कहियै, सुणो सुरत दे कानो ॥

४२ से नूणं भते ! जा वेदणा सा निज्जरा ? जा निज्जरा सा वेदणा ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ७।७४)

४३ से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—जा वेदणा न सा निज्जरा ? जा निज्जरा न सा वेदणा ?

४४ गोयमा ! कम्म वेदणा, नोकम्म निज्जरा । से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—जा वेदणा न सा निज्जरा, जा निज्जरा न सा वेदणा । (श० ७।७५)
कम्मवेयण' त्ति उदय प्राप्त कर्म वेदना" "नोकम्म निज्जरे' ति कर्माभावो निर्जरा तस्या एव स्वरूपत्वादिति । (वृ० प० ३०२)

४५ नेरइया ण भते ! जा वेदणा सा निज्जरा ? जा निज्जरा सा वेदणा ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ७।७६)

४६ से केणट्ठेण भते ! ……
गोयमा ! नेरइयाण कम्म वेदणा, नोकम्म निज्जरा । से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव (स० पा०) न सा वेदणा । (श० ७।७७)

४७ एवं जाव वेमाणियाण । (श० ७।७८)

४८ से नूण भते ! ज वेदेंसु त निज्जरेंसु ? ज निज्जरेंसु त वेदेंसु ? णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ७।७९)

४९ से केणट्ठेणं भते ! ……
गोयमा ! कम्म वेदेंसु, नोकम्म निज्जरेंसु । से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव नो त वेदेंसु । (श० ७।८०)

५० एव नेरइया वि, एव जाव वेमाणिया ॥
(श० ७।८१)

५१ से नूण भते ! ज वेदेंति त निज्जरेंति ? ज निज्जरेंति त वेदेंति ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ७।८२)

५२ से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—जाव नो त वेदेंति ?
गोयमा ! कम्मं वेदेंति, नोकम्म निज्जरेंति । से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव नो त वेदेंति । (श० ७।८३)

५३ एव नेरइया वि जाव वेमाणिया । (श० ७।८४)

---

* लय : शान्तिनाथ मेरे मन बसिया

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ७।८५)

५५. किण अर्थे ? तव श्री जिन भाखै, वेदस्ये ते कर्म सारो ।
निर्जरस्ये नोकर्म भणी इज, तिण अर्थे इम धारो ॥

५५ से केणट्ठेणं जाव नो तं वेदिस्सति ?
गोयमा ! कम्मं वेदिस्सति, नोकम्मं निज्जरिस्सति ।
से तेणट्ठेणं जाव नो तं निज्जरिस्सति ।
(श० ७।८६)

५६. एवं नारकी जाव वैमानिक, काल त्रिहुं रै माही ।
वेदना नै निर्जरा नहिं कहियै, निर्जरा वेदना नाही ॥

५६ एवं नेरइया वि जाव वेमाणिया । (श० ७।८७)

## यतनी

५७. प्रभु ! वेदना समय छै जेह, ते निर्जरा समय कहेह ।
जे निर्जरा समयो होय, ते वेदना समयो जोय ?

५७. से नूणं भंते ! जे वेदणासमए से निज्जरासमए ? जे निज्जरासमए से वेदणासमए ?

५८. तव भाखै श्री जिनराय, अर्थ समर्थ ए न कहाय ।
किण अर्थे ए प्रभु ! वाय ? हिव श्री जिन दाखै न्याय ॥

५८ णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ७।८८)
से केणट्ठेणं भंते ! ..........

५९. जे समय वेदै छै ज्याही, ते समय निर्जरै नाही ।
जे समय निर्जरै जेह, ते समय वेदै नहिं तेह ॥

५९ गोयमा ! जं समयं वेदेंति नो तं समयं निज्जरेंति,
जं समयं निज्जरेंति नो तं समयं वेदेंति ।

६०. वेदै समय अनेरा मांय, अन्य समय निर्जरा थाय ।
वेदना नो समय अन्य होय, निर्जरा नो समय अन्य जोय ॥

६०. अण्णम्मि समए वेदेंति, अण्णम्मि समए निज्जरेंति ।
अण्णे से वेदणासमए, अण्णे से निज्जरासमए ।

६१. तिण अर्थे कह्यो ए मर्म, जे समय वेदै जे कर्म ।
ते समय निर्जरै न ताय, निर्जरै ते समय न वेदाय ॥

६१. से तेणट्ठेणं जाव न से वेदणासमए, न से निज्जरासमए । (श० ७।८९)

६२. नारकी नै हे भगवान ! जे समय वेदै कर्म जान ।
तेहिज समय विषे कहिवाय, निर्जरा ते कर्म नी थाय ?

६२. नेरइया णं भंते ! जे वेदणासमए से निज्जरासमए ?

६३. जे समय निर्जरा जेह, ते समय वेदना तेह ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नाय, किण अर्थे ? तव श्री जिन वाय ॥

६३ जे निज्जरासमए से वेदणासमए ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ७।९०)
से केणट्ठेणं भंते !........

६४. नारकी जे समय वेदंत, ते समय नही निर्जरंत ।
जे समय निर्जरै जेही, ते समय वेदै नहिं तेही ॥

६४ गोयमा ! नेरइया णं जं समयं वेदेंति नो तं समयं निज्जरेंति, जं समयं निज्जरेंति नो तं समयं वेदेंति—

६५. अन्य समय विषे वेदंत, अन्य समय विषे निर्जरंत ।
वेदना नो समय अन्य जोय, निर्जरा नो समय अन्य होय ॥

६५ अण्णम्मि समए वेदेंति, अण्णम्मि समए निज्जरेंति ।
अण्णे से वेदणासमए, अण्णे से निज्जरासमए ।

६६. तिण अर्थे जे समय विचार, वेदना निर्जरा नों न्यार ।
इम जाव वैमानिक ताई, अर्थ समझ लेवो मन माही ॥

६६ से तेणट्ठेणं जाव न से वेदणासमए । (श० ७।९१)
एवं जाव वेमाणियाणं । (श० ७।९२)

## सोरठा

६७. वेदनवत विमास, किणहि प्रकार करी प्रभु ।
कह्या सास्वता तास, सूत्र हिवै सास्वत तणु ॥

६७ पूर्वकृतकर्मणश्च वेदना तद्वत्ता च कथञ्चिच्छाश्वतत्वे सति युज्यत इति तच्छाश्वतत्वसूत्राणि ।
(वृ० प० ३०२)

६८. *स्यू प्रभु ! नारकी कह्या सास्वता, असास्वता कहिवायो ?
श्री जिन भाखै कदाच सास्वता, कदा असास्वता थायो ।।

६८ नेरइया ण भते ! कि सासया ? असासया ?
गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया ।
(श० ७।९३)

६९ किण अर्थे ? प्रभु ! सिय सास्वता, सिय असास्वता थायो ?
जिन कहै इहा नय दोय परूपी, सांभलजे चित ल्यायो ।।

६९ से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—नेरइया सिय सासया ? सिय असासया ?

७० अव्यवच्छित्ति-प्रधान नये करि, द्रव्य विच्छेद न पायो ।
एतलै जे द्रव्य आश्री नेरइया, सास्वता छै इण न्यायो ।।

७० गोयमा ! अव्वोच्छित्तिनयट्ठयाए सासया ।
अव्यवच्छित्तिप्रधानो नयोऽव्यवच्छित्तिनयस्तस्यार्थो—द्रव्यमव्यवच्छित्तिनयार्थस्तद्भावस्तत्ता तयाऽव्यवच्छित्तिनयार्थतया—द्रव्यमाश्रित्य शाश्वता इत्यर्थ. ।
(वृ० प० ३०२)

७१. विच्छेद-प्रधान जे नय अर्थे करि, पर्याय आश्री ताह्यो ।
नारक जीव असास्वता कहियै, तिण अर्थे ए वायो ।।

७१ वोच्छित्तिनयट्ठयाए असासया । से तेणट्ठेण जाव सिय सासया, सिय असासया । (श० ७।९४)
व्यवच्छित्तिप्रधानो यो नयस्तस्य योऽर्थ.—पर्यायलक्षणस्तस्य यो भाव सा व्यवच्छित्तिनयार्थता तया २—पर्यायानाश्रित्य अशाश्वता नारका इति ।
(वृ० प० ३०२)

७२. एव जाव वेमाणिया कहिवा, जाव कदा असास्वत जाणो ।
सेव भते ! सेव भंते ! गोयम वचन प्रमाणो ।।

७२. एव जाव वेमाणिया जाव सिय असासया ।
सेव भते ! सेव भते ! त्ति । (श० ७।९५,९६)

७३. सातमा शतक नो तीजो उद्देशो, एक सौ सतरमी ढालो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' हरप विशालो ।।

सप्तमशते तृतीयोद्देशकार्थ· ।।७।३।।

## ढाल : ११८

### दूहा

१. तृतीय उदेशक नैं विषे, ससारी जे जीव ।
सास्वत आदि स्वरूप थी, आख्या अधिक अतीव ।।

१ तृतीयोद्देशके ससारिण शाश्वतादिस्वरूपतो निरूपिता । (वृ० प० ३०२)

२. तुर्य उदेश विषे हिवैं, तेहिज प्रति सुविचार ।
भेद थकी कहियै अछै, प्रश्न उत्तर सुखकार ।।

२ चतुर्थोद्देशके तु तानेव भेदतो निरूपयन्नाह—
(वृ० प० ३०२)

३. राजगृह यावत इम कहै, प्रभु ! ससारी जीव ।
कतिविध ? जिन कहै पटविधा, ते पट काय कहीव ।।

३ रायगिहे नयरे जाव एव वयासी—कतिविहा ण भते ! ससारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता ?
गोयमा ! छव्विहा ससारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता, त जहा—पुढविकाइया जाव तसकाइया ।

* लय : शान्तिनाथ मेरे मन वसिया

५. पटविध जीव छ काय ते, वादर पृथ्वी जेह।
पट प्रकार नी ते अछै, वलि स्थिति तास कहेह॥

वा०—वादर पृथ्वी छह प्रकार नी छै—श्लक्षणा, शुद्धा, वालुका, मन शिला, शर्करा और खर पृथ्वी। ए पृथ्वी ना छह भेद कह्या ते जीव नी स्थिति—

५ जीवा छव्विह पुढवी जीवाण ठिती भवट्ठिती काए। (वृ० प० ३०२)

वा०—पड्विधा वादरपृथ्वी श्लक्षणा, शुद्धा, वालुका, मन शिला, शर्करा, खरपृथिवीभेदात्, तयैपामेव पृथिवीभेदजीवाना स्थिति . (वृ० प० ३०२)

६. जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तणी, उत्कृष्टी अवलोय।
वर्ष वावीस हजार नी, पृथ्वी नी स्थिति जोय॥

६. अन्तर्मुहूर्त्तादिका यथायोग द्वाविंशतिवर्पसहस्रान्ता वाच्या। (वृ० प० ३०३)

७. भव-स्थिती नरकादि नी, तसु सामान्य कहत।
अन्तर्मुहूर्त्त आदि दे, तेतीस सागर अन्त॥

७ तथा नारकादिपु भवस्थितिर्वाच्या, सा च सामान्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तादिका त्रयस्त्रिशत्सागरोपमान्ता। (वृ० प० ३०३)

८. कायस्थिति इणविध कही, जीवकाय मे जीव।
सदा काल रहियै अछै, इत्यादिक सुकहीव॥

८ तथा कायस्थितिर्वाच्या, सा च जीवस्य जीवकाये सर्वाद्धमित्येवमादिका। (वृ० प० ३०३)

९. निर्लेपन ते इह विधे, पृथ्वीकाय रै माय।
वर्त्तमान काले जिता, जीव ऊपजै आय॥

१०. समय-समय अपहार करि, असख्यात अवधार।
अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी, तिण करिनै अपहार॥

९,१० तथा निर्लेपना वाच्या, सा चैव—प्रत्युत्पन्नपृथिवीकायिकाः समयापहारेण जघन्यपदेऽसख्याभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिरपह्लियन्ते। (वृ० प० ३०३)

११. इम उत्कृष्ट पदे अपि, जघन्य पद थी जाण।
उत्कृष्ट पद असंखेज्ज गुण, इत्यादिक पहिछाण॥

११ एवमुत्कृष्टपदेऽपि, किन्तु जघन्यपदादुत्कृष्टपदमसख्येयगुणमित्यादि। (वृ० प० ३०३)

१२. अणगार नी वक्तव्यता ते इम—अविसुध-लेस।
वेदनादि समुद्घात करि, असमवहत सुविशेप॥

१३. अविसुधलेसी सुर सुरी, वलि तीजो अणगार।
देखै या तीनू भणी ? अर्थ समर्थ न धार॥

१२,१३ अनगारवक्तव्यता वाच्या, सा चेयम्—अविशुद्धलेश्योऽनगारोऽसमवहतेनात्मनाऽविशुद्धलेश्यं, देव देवीमनगार जानाति ? नायमर्थ (समर्थ.) इत्यादि। (वृ० प० ३०३)

१४. सम्मत्त मिच्छत्त वे क्रिया, अन्ययूथिक कहै ताय।
एके समये करै अछै, जिन कहै मिथ्या वाय॥

१४ अन्ययूथिका एवमाख्यान्ति—एको जीव एकेन समयेन द्वे क्रिये प्रकरोति सम्यक्त्वक्रियां मिथ्यात्वक्रिया चेति, मिथ्या चैतद्विरोधादिति। (वृ० प० ३०३)

१५ सेवं भते ! वार वे, सप्तम शते विचार।
तुर्य उदेशे अर्थ ए, हिव पंचम अधिकार॥

१५ सेव भते ! सेव भते ! त्ति। (श० ७।९८)

सप्तमशते चतुर्थोद्देशकार्थः ॥७।४॥

१६. संसारी नां भेद ए, तुर्य उदेशे वेद।
तसु विशेप हिव पचमे, योनी-सग्रह भेद॥

१६. चतुर्थे ससारिणो भेदत उक्ता पञ्चमे तु तद्विशेपाणामेव योनिसग्रह भेदत आह— (वृ० प० ३०३)

१७. राजगृह जावत इम कहै, हे प्रभु ! खेचर जीव।
पचेंद्री तिर्यंच नी, कतिविध योनि कहीव ?

१७ रायगिहे जाव एव वयासी—खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाण भते ! कतिविहे जोणीसंगहे पण्णत्ते ?

१८. जिन भाखै त्रिविध अछै, योनी-संग्रह ताय ।
अडज पोतज संमूर्च्छिम, जीवाभिगम भलाय ॥

१८. गोयमा ! तिविहे जोणीसंगहे पण्णत्ते, तं जहा—
अडया पोयया, समुच्छिमा । एव जहा जीवाभिगमे

१६ जाव अनुत्तर देव नां, केता वड़ा विमान ?
उदय अस्त रवि गगन नो खेत्र नव गुणो मान ॥

२०. आठ लाख पचास सहस्र, सप्त सया चालीस ।
योजन किंचित अधिक वली, इतलो खेत्र कहीस ॥

१६ जाव
ते ण भते ! विमाणा के महालया पन्नत्ता ?
गोयमा ! जावइय च ण सूरिए उदेइ जावइय च ण सूरिए अत्थमेइ यावताऽन्तरेणेत्यर्थ एवरूवाइ नव उवासतराइ । (वृ० प० ३०३)

२१. एहवो जे इक पांवडो, कोइक देव भरेह ।
महापराक्रम नो धणी, एहवी चाल चलेह ॥

२१ अत्थेगइयस्स देवस्स एगे विक्कमे सिया से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे (वृ० प० ३०३)

२२. एक दोय त्रिण दिन लगै, जाव छह् मास पिछाण ।
तो पिण पार लहै नही, एहवा वड़ा विमाण ॥

२२ जाव एगाह वा दुयाहं वा उक्कोसेण छम्मासे वीईवएज्जा । (वृ० प० ३०३)
नो चेव ण ते विमाणे वीतीवएज्जा, एमहालया णं गोयमा ! ते विमाणा पण्णत्ता । (श० ७।६६)

२३. वाचनातरे पुन वलि, इम दीसै छै ताह ।
एहवो आख्यो वृत्ति मे, जे सग्रहणी गाह ॥

२३ वाचनान्तरे त्विद दृश्यते—
जोणिसगहलेसा दिट्ठी णाणे य जोगउवओगे ।
उववायठिइसमुग्घायचवणजाईकुलविहीओ ॥
(वृ० प० ३०३)

२४. योनी-संग्रह ते इहा, प्रगट देखाड्यो ईज ।
लेश्या आदिक नै हिवै, कहियै अर्थ थकीज ॥

२४ तत्र योनिसग्रहो दर्शित एव, लेश्यादीनि त्वर्थतो दर्श्यन्ते । (वृ० प० ३०३)

२५. खेचर प०तिर्यंच मे, लेश्या छ दृष्टि तीन ।
ज्ञान तीन, अज्ञान त्रिण, वलि त्रिण जोग कथीन ॥

२५. एपा लेश्या षड् दृष्टयस्तिस्र ज्ञानानि त्रीणि आद्यानि भजनया अज्ञानानि तु त्रीणि भजनयैव योगास्त्रय. (वृ० प० ३०३)

२६. वे उपयोग सागार जे, अणागार कहिवाय ।
ऊपजवो सामान्य थी, चिहु गति थकीज आय ॥

२६. उपयोगौ द्वौ उपपात सामान्यतश्चतसृभ्योऽपि गतिभ्य:
(वृ० प० ३०३)

२७. स्थिति अतर्मुहूर्त्त जघन्न, उत्कृष्ट पल्ल नु सच ।
असख्यातमो भाग है, समुद्घात है पच ॥

२७. स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तादिका पल्योपमासख्येयभागपर्यवसाना समुद्घाता केवल्याहारकवर्ज्जा पञ्च ।
(वृ० प० ३०३)

२८. गति च्यारूं मे जाय ते, द्वादश लख कुल कोड ।
कही वार्त्तिका वृत्ति थी, वाचनातरे जोड ॥

२८ तथा च्युत्वा ते गतिचतुष्टयेऽपि यान्ति तयैपा जातौ द्वादश कुलकोटीलक्षा भवन्तीति । (वृ० प० ३०३)

२६. आयुपवत अहो श्रमण, सेव भते ! स्वाम ।
सप्तम शतके पाचमो, कह्यो उदेशो ताम ॥

२६ सेव भते ! सेव भते ! त्ति । (श० ७।१००)

सप्तमशते पंचमोद्देशकार्थः ॥७।५॥

३०. पंचमुदेश विषे कह्या, योनी-संग्रह आदि ।
आयुवंत नै ते हुवै, छठै आयुष्कादि ॥

३० अनन्तर योनिसग्रहादिरर्थ उक्त, स चायुष्मता भवतीत्यायुष्कादिनिरूपणार्थ षष्ठ. ।
(वृ० प० ३०४)

३१. राजगृह नगर जावत गोतमजी बोल्या इह विध वाय हो ।
जीव प्रभु ! जे नरक रै माहै, ऊपजवा योग्य ताय हो ॥

३२. ते प्रभु ! इहा रह्यो पहिला भव मे, नरकायु बध करंत ।
ऊपजतो छतो नरकायु बाधै, ऊपना पछै बाधंत ?

३३. जिन कहै इहा रह्यो पहिला भव मे, नरकायु बध करत ।
ऊपजतो नरकायु न बाधै, ऊपना पछै न बाधत ॥

गोयम शिष्य महागुणधारी ।
महा गुणधारी शासण सिणगारी, परम विनीत उदारी हो ॥

३४. एवं असुरकुमार पिण कहिवा, एवं जाव विमानीक ।
जीव प्रभु ! जे नरक रै माहै, ऊपजवा जोग तहतीक ॥

३५. ते प्रभु ! इहा रह्यो पहिला भव मे, नरक नो आयु वेदत ।
कै ऊपजतो नरकायु वेदै, कै ऊपना पछै वेदत ?

३६. जिन कहै इहां रह्यो पहिला भव मे, नरकायु नहि भोगवंत ।
ऊपजतो छतो नरकायु वेदै, ऊपना पछै वेदत ॥

३७. एवं जाव वैमानिक कहिवा, वलि गोयम पूछाय ।
जीव प्रभु ! जे नरक रै माहै, ऊपजवा योग्य ताय ॥

३८. ते प्रभु ! इहां रह्यो पहिला भव मे, महा वेदनावत ।
कै ऊपजतो महावेदनवत छै, कै ऊपना पछै हुत ?

३९. जिन कहै इहा रह्यो पहिला भव मे, रोगादि कारणे जोय ।
महावेदनावंत कोइक छै, अल्पवेदनवंत कोय ॥

४०. नरक विषे ऊपजतो छतो पिण, जीव कोइ एक जोय ।
महा वेदनावत हुवै छै, अल्पवेदनवत कोय ॥

४१. अथ हिव नरक विषे ऊपना पछै, एकात सर्वथा ताय ।
दुख रूप वेदन प्रति वेदै, साता किवारै थाय ॥

### सोरठा

४२. परमाधामी आदि, असंयोग अद्धा विषे ।
तीर्थंकर जन्मादि, कदाचित साता हुवै ॥

४३. *हे प्रभु ! असुरकुमार विषे इज, तास पूछा जिन वाय ।
जिन कहै कदा इहा रह्यो महावेदन, अल्प वेदन कदा थाय ॥

*लय : परम गुरु ऊभा थे रहिज्यो

३१. रायगिहे जाव एव वयासी—जीवे ण भते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए ।

३२ से ण भते ! कि इहगए नेरइयाउयं पकरेइ ? उववज्जमाणे नेरइयाउय पकरेइ ? उववन्ने नेरइयाउय पकरेइ ?

३३. गोयमा ! इहगए नेरइयाउय पकरेइ, नो उववज्जमाणे नेरइयाउय पकरेइ, नो उववन्ने नेरइयाउय पकरेइ ।

३४ एव असुरकुमारेसु वि, एव जाव वेमाणिएसु । (श० ७।१०१)

जीवे ण भते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए,

३५. से ण भते ! कि इहगए नेरइयाउय पडिसवेदेइ ? उववज्जमाणे नेरइयाउयं पडिसवेदेइ ? उववन्ने नेरइयाउय पडिसवेदेइ ?

३६ गोयमा ! नो इहगए नेरइयाउय पडिसवेदेइ, उववज्जमाणे नेरइयाउय पडिसवेदेइ, उववन्ने वि नेरइयाउय पडिसवेदेइ ।

३७. एव जाव वेमाणिएसु । (श० ७।१०२)

जीवे ण भते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए,

३८ से ण भते ! कि इहगए महावेदणे ? उववज्जमाणे महावेदणे ? उववन्ने महावेदणे ?

३९. गोयमा ! इहगए सिय महावेदणे सिय अप्पवेदणे,

४० उववज्जमाणे सिय महावेदणे सिय अप्पवेदणे,

४१ अहे ण उववन्ने भवइ तओ पच्छा एगतदुक्ख वेदण वेदेंति, आहच्च साय । (श० ७।१०३)

सर्वथा दु खरूपा वेदनीयकर्म्मानुभूतिम्
(वृ० प० ३०५)

४२. कदाचित् सुखरूपा नरकपालादीनामसयोगकाले ।
(वृ० प० ३०५)

४३ जीवे ण भते ! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए, पुच्छा ।

गोयमा ! इहगए सिय महावेदणे सिय अप्पवेदणे,

४४ ऊपजतो छतो कदा महावेदन, अल्प वेदन कदा थाय ।
ऊपनां पछै एकात सुख वेदना, कदा असाता थाय ॥

४४ उववज्जमाणे सिय महावेदणे सिय अप्पवेदणे, अहे ण उववन्ने भवइ तओ पच्छा एगंतसात वेदण वेदेति, आहच्च असाय ।

### सोरठा

४५. देवी प्रमुख वियोग, कदा असाता वेदना ।
तथा प्रहार प्रयोग, जावत थणियकुमार इम ॥

४५ 'आहच्च असाय' ति प्रहाराद्युपनिपातात्, (वृ० प० ३०५)
एव जाव थणियकुमारेसु । (श० ७।१०४)

४६. *जीव प्रभु ! पृथ्वी विषे ऊपजै, तास पूछा जिन वाय ।
इहा रह्यो महावेदन कदाचित, अल्प वेदन कदा थाय ॥

४६ जीवे ण भते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए, पुच्छा ।
गोयमा ! इहगए सिय महावेदणे सिय अप्पवेदणे ।

४७. ऊपजतो थको पिण इम कहिवो, ऊपनां पछै अवलोय ।
वेमात्रा करि वेदना वेदै, इम जाव मनुष्य मे जोय ॥

४७ एव उववज्जमाणे वि, अहे णं उववन्ने भवइ तओ पच्छा वेमायाए वेदण वेदेति । एव जाव मणुस्सेसु ।

४८. व्यंतर जोतिपि वैमानिक मे, ऊपजवा जोग ताय ।
प्रश्न उत्तर जेम असुर मे ऊपजै तिम कहिवाय ॥

४८ वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिएसु जहा असुरकुमारेसु । (श० ७।१०५)

४९. जीव जाणतो थको प्रभु ! स्यू आयु बाधै—निपजाय ।
कै अणजाणतो आउखो बाधै ? हिव भाखै जिनराय ॥

४९ जीवा ण भते ! किं आभोगनिव्वत्तियाउया ? अणाभोगनिव्वत्तियाउया ?

५०. जाणतो थको आयु नहिं बाधै, अजाणतो आयु बधाय ।
नारकी नै पिण इहविध कहिवो, इम जाव वैमानिक पाय ॥

५० गोयमा ! नो आभोगनिव्वत्तियाउया, अणाभोगनिव्वत्तियाउया ।
एव नेरइया वि, एव जाव वेमाणिया । (श० ७।१०६)

५१. कर्कस रोद्र दुखे करि वेदै, कर्म इसा दुखदाय ।
हे प्रभु ! जीव करै छै उपार्जै ? हता ए जिन वाय ॥

५१ अत्थि ण भते ! जीवाण कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जति ?
हता अत्थि । (श० ७।१०७)
कर्कशै:—रौद्रदु:खैर्वेद्यते यानि तानि कर्कशवेदनीयानि (वृ० प० ३०५)

### सोरठा

५२. खधक ना जे शीस, पीत्या घाणी नै विषे ।
तेहनी परै जगीस, कहियै कर्कस वेदनी ॥

५२ स्कन्दकाचार्यसाधूनामिवेति (वृ० प० ३०५)

५३. *किम प्रभु ! कर्कस वेदनी बाधै ? तब भाखै जिन वाय ।
पाप अठारै करि नै जीवा, कर्कस वेदनी उपाय ॥

५३ कहण्ण भते ! जीवाण कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जति ?
गोयमा ! पाणाइवाएण जाव मिच्छादसणसल्लेण—एव खलु गोयमा ! जीवाण कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जति । (श० ७।१०८)

५४. नरक प्रभु ! बाधै कर्कस वेदनी ? जिन कहै इमज कहाय ।
एव जाव वैमानिक नै, पाप सेव्या बधाय ॥

५४ अत्थि ण भते ! नेरइयाण कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जति ? एव चेव । एव जाव वेमाणियाण । (श० ७।१०९)

५५. हे प्रभु ! जीव अकर्कस वेदनी, कर्म करै ते बधाय ?
पुन्य अत्यन्त अकर्कस कहियै, जिन कहै हता वाय ॥

५५ अत्थि ण भते ! जीवाण अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जति ?
हता अत्थि । (श० ७।११०)

---

*लय . परम गुरु ऊभा थे रहिजो

जवर पुन्य महिमाण, ते अकर्कस वेदनी ॥

दीनामिव, (वृ० प० ३०५)

५७. *हे प्रभु! जीव अकर्कस वेदनी, ते कर्म केम बधाय?
जिन कहै प्राणातिपात सू निवर्त्ते, ए त्याग आश्री कहिवाय ॥

५७ कहण्ण भते! जीवाण अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जति?
गोयमा! पाणाइवायवेरमणेण

५८. एव जाव परिग्रह थी निवर्त्ते, क्रोध तजै क्षमताय।
जाव मिच्छादसणसल्ल थी निवर्त्ते, अकर्कस वेदनी बधाय ॥

५८. जाव परिग्गहवेरमणेण, कोहविवेगेण जाव मिच्छादसणसल्लविवेगेण—एव खलु गोयमा! जीवाण अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जति। (श० ७।१११)

५६. नेरइया नैं अकर्कस वेदनी, ते प्रभु! कर्म बधाय?
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नाही, संजम नहिं तिण माय ॥

५६ अत्थि ण भते! नेरइयाण अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जति?
णो इणट्ठे समट्ठे।

६०. एव जाव वेमाणिया कहिवा, णवर मनुष्य रै माय।
बध अकर्कस जीव तणी परि, सजम इण मे पाय ॥

६० एव जाव वेमाणियाण, नवरं—मणुस्साण जहा जीवाण। (श० ७।११२)

६१. †प्राणातिपात नो वेरमण ते, वृत्ति मे सजम कह्यो।
ते भणी इक मनुष्य मे इज, वंध अकर्कस लह्यो ॥

६१ 'पाणाइवायवेरमणेण' त्ति संयमेनेत्यर्थ। (वृ० प० ३०५)

६२. नारकादिक माहि संजम, नही छै तिण कारणै।
कर्म अकर्कस न वंधै, वृत्तिए वर धारणै ॥

६२ नारकादीना तु सयमाभावात्तदभावोऽवसेय:। (वृ० प० ३०५)

६३. *जीव प्रभु! साता वेदनी वाधै? हता कहे जिनराय।
हे भगवत! जीव साता वेदनी, कर्म ते केम वधाय?

६३ अत्थि ण भते! जीवाण सातावेयणिज्जा कम्मा कज्जति?
हता अत्थि। (श० ७।११३)
कहण्ण भते! जीवाण सातावेयणिज्जा कम्मा कज्जति?

६४. जिन कहै प्राण भूत जीव सत्व नी, अनुकंपा करि ताय।
प्राण भूत वहु जीव सत्व नैं, दुख अणदेवै थाय ॥

६४ गोयमा! पाणाणुकपयाए, भूयाणुकपयाए, जीवाणुकपयाए, सत्ताणुकपयाए, वहूण पाणाणं भूयाण जीवाण सत्ताण अदुक्खणयाए

६५. असोयणयाए दीनपणु ते, अणकरिवै अधिकाय।
अजूरणयाए तनु क्षयकारी, सोग नही उपजाय ॥

६५ असोयणयाए अजूरणयाए
'असोयणयाए' त्ति दैन्यानुत्पादनेन 'अजूरणयाए' त्ति शरीरापचयकारिशोकानुत्पादनेन। (वृ० प० ३०५)

६६ अतिप्पणयाए आसू लालादिक, सोग कारण न उपाय ॥
अपिट्टणयाए लाठी प्रमुख सू, ताडणा न करै ताय ॥

६६ अतिप्पणयाए अपिट्टणयाए
'अतिप्पणयाए' त्ति अश्रुलालादिक्षरणकारणशोकानुत्पादनेन 'अपिट्टणयाए' त्ति यष्ट्यादिताडनपरिहारेण। (वृ० प० ३०५)

६७. अपरियावणयाए शरीर नैं, परितापना न उपाय।
तेणे करी जीव साता वेदनी, कर्म निश्चैइ वधाय ॥

६७. अपरियावणयाए—एव खलु गोयमा! जीवाण सातावेयणिज्जा कम्मा कज्जति।
'अपरियावणयाए' त्ति शरीरपरितापानुत्पादनेन। (वृ० प० ३०५)

*लय : परम गुरु ऊमा थे रहिजो

†लय : पूज मोटा भांजे तोटा

६८. एव नारकी जाव वेमाणिया, बुद्धिवत जाणै न्याय।
दुख न दिया बधै साता वेदनी, पिण सुख दिया कह्यो नाय॥

६८ एव नेरइयाण वि, एव जाव वेमाणियाण। (श० ७।११४)

६९. जीव प्रभु! बाधै असाता वेदनी? हता कहै जिनराय।
हे प्रभु! जीव असाता वेदनी कर्म ते केम वधाय?

६९. अत्थि ण भते! जीवाण असातावेयणिज्जा कम्मा कज्जति?
हता अत्थि। (श० ७।११५)
कहण्ण भते! जीवाण असातावेयणिज्जा कम्मा कज्जति?

७०. जिन भाखै पर नै दुख देवै, पर नै दीन करै ताय।
पर नैं झूरावै तनु क्षयकारी, तास सोग उपजाय॥

७० गोयमा परदुक्खणयाए, परसोयणयाए, परजूरणयाए,

७१. आसू लालादिक पर नै करावै, सोग कारण उपजाय।
लाठी प्रमुख सू पर नै ताड़ै, पर परिताप उपाय॥

७१. परतिप्पणयाए, परपिट्टणयाए, परपरियावणयाए,

७२. घणा प्राण भूत जीव सत्व नै, दुक्ख सोग उपजाय।
जाव परितापना पर नैं उपावै, इम असाता वेदनी वधाय॥

७२. वहूण पाणाण भूयाण जीवाण सत्ताण दुक्खणयाए, सोयणयाए, जूरणयाए, तिप्पणयाए, पिट्टणयाए, परियावणयाए—एव खलु गोयमा! जीवाण असाता-वेयणिज्जा कम्मा कज्जति।

७३ एव नारकी जाव वैमानिक, दुख दिया असाता बधाय।
दुख न दीधा बधै साता वेदनी, बुद्धिवत जाणै न्याय॥

७३ एव नेरइयाण वि, एव जाव वेमाणियाण। (श० ७।११६)

## सोरठा

७४. 'दुख नहि दीधा तास, दाखी साता वेदनी।
जोवो हिये विमास, पिण सुख दीधा नहिं कह्यो॥

७५. असजती रो जाण, मरणो नै वलि जीवणो।
राग द्वेप पहिछाण, धर्म नही ते वछिया॥

७६ दशवैकालिक माय, गृहस्थ नी व्यावच किया।
अणाचार कहिवाय तो गृहि-व्यावच मे धर्म नहिं॥

७६ गिहिणो वेयावडिय (दसवेआलिय ३।६)

७७. साता पूछै सोय, अणाचार छै सोलमो।
साता करेज कोय, धर्म किहा थी तेहमे॥

७७ ········सपुच्छणा·· ·· (दसवेआलिय ३।३)

७८. साधु नैं अणाचार, श्रावक नै थापै धरम।
वचन वदै अविचार, मिथ्यादृष्टी जीवड़ा॥

७९. नशीत पनरमा माय, गृहस्थ नै चिहुं आ'र दे।
अनुमोदै मुनिराय, चोमासी दड तेहनै॥

७९ निसीहज्झयण १५।७६

८०. नशीत बारमै वाण, अनुकंपा त्रस नी करी।
बाधै छोड़ै जाण, अनुमोद्या दड मुनि भणी॥

८० जे भिक्खू कोलुणपडियाए अण्णयरिं तसपाणजातिं····
निसीहज्झयण १२।१,२

८१. इकवीसमे सूगडाग, वध म वध ए जीव नै।
इम न कहै मुनि चग, मरण जीवतव्य वाछनै॥

८१. ········वज्झा पाणा अवज्झत्ति, इति वाय ण णीसिरे
सूयगडो २।५।३०

८२. तिण कारण ए सध, सुख उपजाया पर भणी।
साता वेदनी वध, एहवू जिन आख्यो नही'॥
(ज० स०)

९. वहु पखी दुख पीडिया, तसु आरति असराल ।
कोलाहल करिस्यै घणो, कोलाहलभूत काल ।।

९. कोलाहलभूए ।
कोलाहल इहार्त्तशकुनिसमूहध्वनिस्त भूत—प्राप्त कोलाहलभूत । (वृ० प० ३०६)

१०. काल तणाज प्रभाव थी, फर्श अत्यन्त कठोर ।
एहवी धूल सहीत जे, मलिन वायु अति घोर ।।

१० समाणुभावेण य ण खर-फरुस-धूलिमइला
कालविशेपसामर्थ्येन ……'खरफरुसधूलिमइल' त्ति खरपरुपा—अत्यन्तकठोरा धूल्या च मलिना ये वातास्ते तथा । (वृ० प० ३०६)

११. दुस्सह चित व्याकुल करै, वले भयकर ताय ।
करै तृणादिक एकठा, एहवा वाजस्यै वाय ।।

११ दुव्विसहा वाउला भयकरा वाया सवट्टगा य वाहिति ।
'सवट्टय' त्ति तृणकाष्ठादीना सवर्त्तका (वृ० प० ३०६)

१२. वार-वार तिण काल मे, दश दिश धूयर देख ।
वलि दिशि होस्यै केहवी ? साभलज्यो सुविशेष ।।

१२ इह अभिक्ख धूमाहिति य दिसा
'धूमाहिति य दिस' त्ति धूमायिष्यन्ते—धूममुद्वमिष्यन्ति दिश , पुन. किंभूतास्ता ? (वृ० प० ३०६)

१३. रज सहित हुस्यै सगली दिशा, धूल मलिनतम तास ।
तेहनै पटल वृंदे करी, दूर गयो छै प्रकाश ।।

१३ समता रउस्सला रेणुकलुम-तमपडल-निरालोगा ।

१४. समय नै लुक्खपणै करी, रजनीकर पिण भूर ।
शीत अपथ्य अति मूकस्यै, अधिको तपस्यै सूर ।।

१४ समयलुक्खयाए य ण अहिय चदा सीय मोच्छति ।
अहिय सूरिया तवइस्सति ।
'अहिय' त्ति अधिक 'अहित वा' अपथ्य (वृ० प० ३०६)

१५. अन्य चिह्न वलि एहवा, अरसमेहा रस-रहीत ।
वार वार वहु वर्षस्यै, ते जल अधिक अप्रीत ।।

१५ अदुत्तर च णं अभिक्खण वहवे अरसमेहा

१६. विरुद्ध रस छै जेहनो, विरसमेहा अधिकेह ।
खारमेहा साजी खार सा, वहुला वर्षस्यै मेह ।।

१६. विरसमेहा खारमेहा
'विरसमेह' त्ति विरुद्धरसा मेघा , एतदेवाभिव्यज्यते—'खारमेह' त्ति सर्जादिक्षारसमानरसजलोपेतमेघाः । (वृ० प० ३०६)

१७. खत्तमेहा ते करीप सम, रस जल सहित पिछान ।
खट्टमेहा दीसै किहा, खाटा जल जिम जान ।।

१७. खत्तमेहा
'खत्तमेह' त्ति करीपसमानरसजलोपेतमेघा , 'खट्टमेह' त्ति क्वचिद् दृश्यते तत्राम्लजला इत्यर्थ । (वृ० प० ३०६)

१८. अग्निमेहा अग्नि सारिखो, दाहकारी जल जेह ।
विज्जुमेहा वीजली, जल वर्जित वर्षेह ।।

१८ अग्गिमेहा विज्जुमेहा
'अग्गिमेह' त्ति अग्निवद्दाहकारिजला इत्यर्थ 'विज्जुमेह' त्ति विद्युत्प्रधाना एव जलवर्जिता इत्यर्थ. (वृ० प० ३०६)

१९. विपमेहा जन-मरण नो, हेतू जल छै जेह ।
गडादि निपातवत जे, अशनिमेह कहेह ।।

१९. विसमेहा असणिमेहा—
'विसमेह' त्ति जनमरणहेतुजला इत्यर्थ. 'असणिमेह' त्ति करकादिनिपातवन्त । (वृ० प० ३०६)

२०. अथवा गिरि प्रमुख भणी, विदारवा नै जेह ।
समर्थ उदकपणै करी, ते अशनि वज्रमेह ।।

२० पर्वतादिदारणसमर्थजलत्वेन वा वज्रमेघा. । (वृ० प० ३०६)

३६. पर्व दिवस ओच्छव तणो, हुवै जिहां विस्तार ।
ते क्रीडा पर्वत कह्या, वेभारादिक सार ॥
३७ गिरि ते शब्द करै जिहा, जे जन निवासभूत ।
चित्रकूट गोपालगिरि, आदि देइ वर सूत ॥
३८. डूंगर वृंद सिला तणो, उत्थल स्थल उन्नतेह ।
धूल उच्चय रूप एह स्थल, किहा उत् शब्द न एह ॥

३६. पर्वतननात्—उत्सवविस्तारणात् पर्वता —क्रीडापर्वता उज्जयन्तवैभारादय (वृ० प० ३०६)
३७ गृणन्ति—शब्दायन्ते जननिवासभूतत्वेनेति गिरय — गोपालगिरिचित्रकूटप्रभृतय. । (वृ० प० ३०६,३०७)
३८ डुङ्गाना—शिलावृन्दाना........'उच्छ (त्थ) न त्ति उत्—उन्नतानि स्थलानि धूल्युच्छ्रयरूपाण्युच्छ(त्थ) लानि, क्वचिदुच्छब्दो न दृश्यते । (वृ० प० ३०७)

३९. धूल आदि वर्जित जमी, तेहनै भट कहिवाय ।
आदि शब्द थी शिखर वलि, प्रासादादिक ताय ॥

३९. भट्ठिमादीए
पाश्वादिवर्जिता भूमय ......आदिशब्दात् प्रासाद-शिखरादिपरिग्रह । (वृ० प० ३०७)

४०. वैताढ गिरी वर्जी करी, पर्वत प्रमुख धार ।
सगलाई क्षय थायस्यै, दुस्समदुसमा आर ॥
४१. सलिल विल ते भूमि थी, नीझरणा निकलत ।
गर्त्ता कहिता खाड है, दुर्ग खाइ गढ हुत ॥

४० वेयड्ढगिरिवज्जे विरावेहिंति,

४१. सलिलविल-गड्ड-दुग्ग
सलिलविलानि च—भूमिनिर्झरा, गर्त्ताश्च—श्वभ्राणि दुर्गाणि च—खातवलयप्राकारादिदुर्गमाणि । (वृ० प० ३०७)

४२. विपम भूमि-प्रतिष्ठ जे, नीची ऊंची जेह ।
गगा सिंधू वर्ज नै, करस्यै सम भूमि तेह ॥

४२ विसमनिण्णुन्नयाइ च गगा-सिंधुवज्जाइ समीकरेंहिंति । (श० ७।११७)
विपमाणि च—विपमभूमिप्रतिष्ठितानि । (वृ० प० ३०७)

४३. हे भगवत ! ते काल मे, भरतखेत्र मे धार ।
भूमि तणो केहवो हुसी, आकार भाव प्रकार ?
४४. जिन कहै भूमि इसी हुस्यै, लाल अगार समान ।
मुरमुर कणिया अग्नि ना, छार सरीखी जान ॥
४५. तप्त कवेलू सारिखी, ताप करी अवलोय ।
अग्नि सरीखी ते जमी, महा दुखदायी होय ॥

४३. तीसे णं भते ! समाए भरहस्स वासस्स भूमीए केरिसए आगारभाव-पडोयारे भविस्सति ?
४४ गोयमा ! भूमी भविस्सति इगालब्भूया मुम्मुरब्भूया छारियभूया
४५. तत्तकवेल्लयब्भूया तत्तसमजोतिभूया
तप्तेन—तापेन समा—तुल्या. ज्योतिपा—वह्निना भूता—जाता या सा तया । (वृ० प० ३०७)

४६. धूल घणी वेलू घणी, पक कर्दम वहु पेख ।
पतलो कर्दम पणग जे, ते पिण बहुल विशेख ॥

४६. धूलिवहुला रेणुवहुला पकवहुला पणगवहुला
पङ्क —कर्दम., पनक —प्रवल कर्दमविशेप. । (वृ० प० ३०७)

४७. कर्दम चलण प्रमाण जे, चलिणी कहियै ताय ।
ते चलिणी पिण छै घणी, छट्ठा आरा माय ॥

४७ चलणिवहुला
चलनप्रमाण कर्दमश्चलनीत्युच्यते । (वृ० प० ३०७)

४८. पृथ्वी विपे वहु जीव नैं, दुखे चालवो होय ।
छट्ठे आरे एहवी, पृथ्वी होस्यै सोय ॥

४८ वहूण धरणिगोयराण सत्ताण दुन्निक्कमा यावि भविस्सति । (श० ७।११८)
'दुन्निक्कम' त्ति दु खेन नितरा क्रम.—क्रमण यस्या सा दुर्निक्रमा । (वृ० प० ३०७)

४९. हे भगवत ! तिण काल मे, भरतक्षेत्र मे धार ।
मनुष्य तणो केहवो हुस्यै, आकार भाव प्रकार ?
५०. जिन कहै नर एहवा हुस्यै, दुष्ट रूप करि तास ।
वर्ण गध रस पिण बुरो, वलि भूंडो तनु फास ॥

४९ तीसे ण भते ! समाए भरहे वासे मणुयाण केरिसए आगारभाव-पडोयारे भविस्सइ ?
५० गोयमा ! मणुया भविस्सति दुरूवा दुवण्णा दुग्गधा दुरसा दुफासा

५२ अणआदरवा जोग वच, जन्म थकी पिण जाण ।
निर्लज्जा लज्जा रहित, कूड कपट नी खान ॥
५३. कलह अनै वध बध विषे, रक्त वैर मे जान ।
मर्यादा अतिक्रमण मे, होस्यै अतिहि प्रधान ॥
५४. पर स्त्री गमन प्रमुख जे, करिवा जोग न न्हाल ।
तेह अकार्य करण मे, होस्यै नित उजमाल ॥
५५. मात पितादिक जे वडा, तेह विषे जे रीत ।
नियोग अवश्य जे विनय छै, तिण करिनै जे रहीत ॥

५६. रूप असपूरण विकल, वध्याज नख सिर केस ।
वध्या केश दाढी तणा, वडा रोम तनु शेष ॥
५७. काला फर्श कठोर अति, वर्ण अनुज्वल एम ।
वीखरिया केश सिर तणा, पीला धवला केस ॥

५८. घणी नसा करिनै वध्यो, दुखे देखवा योग्य ।
एहवो रूप छै जेहनो, जोता दुखम प्रयोग्य ॥
५९ संकोचाणो जेहनों, लीलरियै करि जोय ।
वीट्या छै अंग जेहना, वृद्ध तणी परि होय ॥
६०. जरा करी परिणत स्थविर, ते नर जेहवा एह ।
विरल भग्न पडिवे करी, थइ दंत-श्रेणी तेह ॥

६१. उद्‌भट जे विकराल अति, घट मुख जिम मुख तास ।
तुच्छ दशनच्छद—होठ छै, नयण विषम जे विमास ॥
६२. नान्हा मोटा नैत्र छै, चक्षू नान्ही एक ।
एक मोटी चक्षू अछै, विषम नयण इम देख ॥
६३. मूहढै वाकी नासिका, वंक वक्र मुख जास ।
पाठतरेण वंग ते, लंछण सहित विमास ॥
६४. वलि लीलरिया तिण करी, वीहामणोज आकार ।
देखता भय ऊपजै, एहवो मुख नो प्रकार ॥
६५. व्याप्त पाम खसडे करी, तीखा नख करि ताय ।
खाज खणेवै व्रण अतिहि, एहवो तनु दुखदाय ॥

अमणामसमरा

५२. अणादेज्जवयणपच्चायाया, निल्लज्जा, कूड-कवड-

५३ कलह-वह-बंध-वेरनिरया, मज्जायातिक्कमप्पहाणा,

५४. अकज्जनिच्चुज्जता,

५५. गुरुनियोग-विणयरहिया य,
गुरुषु—मात्रादिषु नियोगेन—अवश्यतया यो विनय-स्तेन रहिता ये ते । (वृ० प० ३०८)

५६ विकलरूवा, परूढनह-केस-मंसु-रोमा,
'विकलरूव' त्ति असम्पूर्णरूपा । (वृ० प० ३०८)

५७. काला, खर-फरुस-झामवण्णा, फुट्टसिरा, कविल-पलियकेसा,
खरपरुषा:—स्पर्शतोऽतीव कठोरा, ध्यामवर्णा—अनुज्ज्वलवर्णा '''फुट्टसिर' त्ति विकीर्णशिरोजा इत्यर्थं, 'कविलपलियकेस' त्ति कपिला: पलिताश्च—शुक्ला केशा येषां ते । (वृ० प० ३०८)

५८ बहुण्हारुसंपिणद्ध-दुद्दंसणिज्जरूवा,

५९ संकुडितवलीतरंगपरिवेढियंगमंगा,

६० जरापरिणतव्व थेरगनरा, पविरलपरिसडियदंतसेढी,
'पविरलपरिसडियदंतसेढी' प्रविरला दन्तविरलत्वेन परिशटिता च दन्तानां केषाञ्चित्पतितत्वेन भग्नत्वेन वा दन्तश्रेणि र्येषां ते, (वृ० प० ३०८)

६१ उब्भडघडामुहाविसमणयणा,
उद्‌भट—विकरालं घटकमुखमिव मुखं तुच्छदशनच्छदत्वाद्येषां ते (वृ० प० ३०८)

६३,६४ वंकनासा, वंक-वलीविगय-भेसणमुहा,
वङ्क—वक्रं पाठान्तरेण व्यङ्ग'—सलाञ्छनं वलिभि-विकृतं च बीभत्सं भेषण—भयजनकं मुखं येषां ते ।
(वृ० प० ३०८)

६५ कच्छु-कसराभिभूया, खरतिक्खनखकंडूइय-विक्खयतणू,
'कच्छूकसराभिभूया' कच्छू —पामा तया कशरैश्च—खशरैरभिभूता—व्याप्ता ये ते'''''खरतिक्ख' ''' त्ति खरतीक्ष्णनखानां कण्डूयितेन विकृता—कृतव्रणा तनु:—शरीरं येषां ते, (वृ० प० ३०८)

(वृ० प० ३०८)

### सोरठा

८०. अल्प आउखा माहि, पुत्रादिक बहु तेहनें ।
अल्प काल करि ताहि, जोवन ना सद्भाव थी ॥

८० अनेनाल्पायुष्कत्वेऽपि बहुपत्यता तेषामुक्ताऽल्पेनापि कालेन यौवनसद्भावादिति । (वृ० प० ३०९)

८१ *गगा सिंधु महानदी, वैताढ नी नेश्राय ।
बोहितर बिल-वासि ना, कुटुब निगोदा कहाय ॥

८१. गगा-सिधूओ महानदीओ, वेयड्ढ च पव्वय निस्साए बावत्तरि निओदा
निगोदा:—कुटुम्बानीत्यर्थः । (वृ० प० ३०९)

८२. †गंगा नदि जिहा उत्तर दिशि वैताढ रै,
नीचै प्रवेश करै तिहा बिहु पासै धरै ।
नव नव बिल छै एम अठारै बिल थया,
इम गगा दक्षिण वैताढ कनै कह्या ॥

८३. उत्तर दिशि मे अठार अठार दक्षिण दिशे,
एव बिल पट तीस तिहां जतू वसे ।
इम सिंधू बिहु पास छतीस पिछाणियै,
बोहितर बिल एम सर्व ही जाणियै ॥

८४. *बीज तणी परि बीज ते, जे आगमियै काल ।
जन समूह होस्यै तसु, हेतू एह निहाल ॥

८५. बीज मात्र परिमाण जसु, अल्पईज अवलोय ।
ते नर बिलवासी हुस्यै, छट्ठे आरे जोय ॥

८४,८५. बीय बीयमेत्ता बिलवासिणो भविस्सति ।
(श० ७।११६)
बीजमिव बीज भविष्यता जनसमूहाना हेतुत्वात् ।
(वृ० प० ३०९)

८६. देश छीहतर, एक सौ एगुणवीसमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल ॥

## ढाल : १२०

### दूहा

१ हे भगवंत ! मनुष्य ते, करिस्यै किसो आहार ?
जिन भाखै सुण गोयमा ! तास आहार अधिकार ॥

१ ते ण भते ! मणुया क आहार आहारेहिंति ?

---

* लय : करेलणा नीं

† लय : नदी जमुना रे तीर

'अच्छ' त्ति ऋक्षाः 'तरच्छ' त्ति व्याघ्रविशेषाः ।
(वृ० प० ३०९)

१७. वलि अष्टापद जाणियै, अणुव्रत रहित पिछान ।
तिमज जाव मरनै तिके, ऊपजस्यै किण स्थान ?

१७. परस्सरा निस्सीला तहेव जाव कहिं उववज्जिहिंति ?
'परस्सर' त्ति शरभा. । (वृ० प० ३०९)

१८. जिन कहै वहुलपणै करी, नरक तिर्यंच मझार ।
मरता केइ वाकी रह्या, ते चउपद गति धार ॥

१८. गोयमा ! उस्सण्ण नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति । (श० ७।११२)
क्षीणावशेषाश्चतुष्पदाः केचन भविष्यन्ति
(वृ० प० ३०९)

१९ ते प्रभु ! ढंका कागला, कक विलक कहिवाय ।
मदुगा ते जलवायसा, मयूर निस्सीला ताय ॥

१९. ते णं भंते ! ढंका, कंका, विलका, मद्दुगा, सिही निस्सीला
'ढंक' त्ति काका. 'मद्दुग' त्ति मद्गवो—जलवायसा
'सिहि' त्ति मयूराः (वृ० प० ३०९)

२०. तिमहिज जाव वहुलपणै, नरक तिर्यंच मझार ।
वे वार सेवं भंते ! कहै, श्री गोयम गणधार ॥

२०. तहेव जाव कहिं उववज्जिहिंति ?
गोयमा ! उस्सण्ण नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति । (श० ७।१२३)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ७।१२४)

२१ अंक छीहुतर नो अख्यो, इक सौ वीसमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' हरप विशाल ॥

सप्तमशते पष्ठोद्देशकार्थः ॥७।६॥

## ढाल १२१

### दूहा

१. छठा उदेशा में कही, नरकादिक उत्पत्ति ।
असवरी नै ते हुवै, आस्रव वृत्ति प्रवृत्ति ॥

१ अनन्तरोद्देशके नरकादावुत्पत्तिरुक्ता सा चासंवृतानाम्,
(वृ० प० ३०९)

२. तास विपर्जयभूत जे, समर्थ संवरवत ।
वीतराग ते पिण मुनि, तेहनो हिवै उदत ॥

२ अथैतद्विपर्ययभूतस्य संवृतस्य यद्भवति तत्सप्तमोद्देशके आह— (वृ० प० ३०९)

*जिनेश्वर धिन धिन थांरो ज्ञान । (ध्रुपदं)

३. हे प्रभु ! सवुडो मुनि जी, रूंध्या आश्रव द्वार ।
आयुक्त उपयोग सहीत ते जी, चालतो तिण वार ॥

३ संवुडस्स णं भंते ! अणगारस्स आउत्तं गच्छमाणस्स,

४. जाव उपयोग सहित सुयै, वस्त्र पात्र पिछाण ।
कवल नै पायपुच्छणो, लेवै मूकै जाण ॥

४ जाव (सं० पा०) आउत्तं तुयट्टमाणस्स, आउत्तं वत्थं पडिग्गहं कंवलं पादपुंछणं गेण्हमाणस्स वा निक्खिवमाणस्स वा,

* लय : क्षमावंत जोय भगवत रो ज्ञान

(श० ७।१२९)

### सोरठा

२०. शरीर जीव सहीत, तेहना रूप अपेक्षया ।
जीव काम इण रीत, अजीव काम हिवै कहू ॥
२१. अजीव काम कहाय, शब्द तणीज अपेक्षया ।
तथारूप पेक्षाय, चित्र पूतली आदि जे ॥

२०. जीवा अपि कामा भवन्ति जीवशरीररूपापेक्षया,
(वृ० प० ३१०)

२१. अजीवा अपि कामा भवन्ति शब्दापेक्षया चित्रपुत्रिकादिरूपापेक्षया चेति । (वृ० प० ३१०)

२२ *प्रभू ! काम छै जीव रै, तथा अजीव रै काम ?
जिन कहै जीव रै काम छै, अजीव रै नहि ताम ॥

२२. जीवाणं भंते ! कामा ? अजीवाणं कामा ?
गोयमा ! जीवाणं कामा, नो अजीवाणं कामा ।
(श० ७।१३०)

### सोरठा

२३. जीव तणे हुवै काम, तास काम हेतूपणो ।
अजीव रै नहि ताम, काम असभव थी तसु ॥

२३. जीवानामेव कामा भवन्ति कामहेतुत्वात्, अजीवानां न कामा भवन्ति तेषां कामासम्भवादिति ।
(वृ० प० ३१०)

२४ [1]काम प्रभू ! कतिविध कह्या ? जिन कहै दोय प्रकार ।
शब्द रूप विहु आखिया, दो इद्री विषय विचार ॥

२४ कतिविहा णं भंते ! कामा पण्णत्ता ?
गोयमा ! दुविहा कामा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा य, रूवा य । (श० ७।१३१)

२५. हे प्रभु ! रूपी भोग छै, तथा अरूपी कहाय ?
जिन कहै रूपी भोग छै, भोग अरूपी नाय ॥

२५ रूवी भंते ! भोगा ? अरूवी भोगा ?
गोयमा ! रूवी भोगा, नो अरूवी भोगा ।
(श० ७।१३२)

### सोरठा

२६. गध फर्श रस भोग, शरीर करि जे भोगवै ।
विशिष्टपणे प्रयोग, गधादिक ए त्रिहुं अछै ॥
२७. घाणेंद्री अवलोय, रस इद्री फर्श इद्रिय ।
त्रिहु इद्री नो जोय, गध प्रमुख त्रिहु विषय छै ॥

२६ भुज्यन्ते—शरीरेण उपभुज्यन्ते इति भोगाः—विशिष्टगंधरसस्पर्शद्रव्याणि । (वृ० प० ३१०)

२८. *सचित्त प्रभु ! ए भोग छै, अचित्त भोग कहिवाय ?
जिन कहै सचित पिण भोग छै, भोग अचित्त पिण थाय ॥

२८. सचित्ता भंते ! भोगा ? अचित्ता भोगा ?
गोयमा ! सचित्ता वि भोगा, अचित्ता वि भोगा ।
(श० ७।१३३)

### सोरठा

२९ सचित्त भोग इण न्याय, कोइक चित्त सहीत जे ।
जीव शरीर ना ताय, गधादिक गुण जाणिवा ॥

२९ सचित्ता अपि भोगा भवन्ति गन्धादिप्रधानजीवशरीराणां केषाञ्चित् समनस्कत्वात् ।
(वृ० प० ३१०)

३० अचित्त भोग इण न्याय, कोइक चित्त रहीत जे ।
जीव शरीर ना ताय, गंधादिक पुष्पादि ते ॥

३०. तथाऽचित्ता अपि भोगा भवन्ति केषाञ्चिद्गन्धादिविशिष्टजीवशरीराणाममनस्कत्वात् ।
(वृ० प० ३१०)

३१ *जीव प्रभू ! ए भोग छै, अजीव भोग ए होय ?
जिन कहै जीव पिण भोग छै, अजीव पिण अवलोय ॥

३१. जीवा भंते ! भोगा ? अजीवा भोगा ?
गोयमा ! जीवा वि भोगा, अजीवा वि भोगा ।
(श० ७।१३४)

---

[1] लय : क्षमावंत जोय भगवंत रो ज्ञान

## सोरठा

३२. जीव भोग इम उक्त, जीव सहित तनु ना विशिष्ट ।
गंधादिक गुण युक्त, तेहना भाव थकी हुवै ॥

३३. अजीव द्रव्य ना जोय, विशिष्ट गंध रस फर्श जे ।
गुण सहीत थी होय, अजीव भोगा ते कह्या ॥

३४. *जीव तणै प्रभु ! भोग छै, भोग अजीव रै थाय ?
जिन कहै जीव रै भोग छै, अजीव रै न कहाय ॥

## सोरठा

३५. भोग जीव रै होय, तास भोग हेतूपणै ।
अजीव रै नहि कोय, भोग असंभव थी तसु ॥

३६. *भोग प्रभू ! कतिविध कह्या ? जिन कहै तीन प्रकार ।
गंध रस फर्श परूपिया, विशिष्ट तनु फर्श द्वार ॥

३७. काम-भोग प्रभु ! कतिविधा ? जिन कहै पंच प्रकार ।
शब्द रूप गंध आखिया, वलि रस फर्श विचार ॥

३८. जीव प्रभू ! कामी अछै, कै भोगी छै अतीव ?
जिन कहै कामी जीव छै, वलि भोगी पिण जीव ॥

३९. किण अर्थे तब जिन कहै, श्रोत्र इंद्री छै ताय ।
चक्षू इंद्री आश्रयी, कामी जीव कहाय ॥

४०. घाणेंद्री रसनेन्द्रिये, वलि फर्श इंद्री जाण ।
ते आश्री भोगी कह्या, तिण अर्थे ए वाण ॥

४१ नरक प्रभू ! कामी अछै, कै भोगी अवधार ?
जीव तणी पर जाणिवा, यावत थणियकुमार ॥

४२. पूछा पृथ्वीकाय नी, जिन कहै कामी नाय ।
भोगी पृथ्वी जीवडा, किण अर्थे ए वाय ?

४३. जिन भाखै फर्शेंद्रिय, ते आश्री कहिवाय ।
तिण अर्थे भोगी पृथ्वी, इम जाव वणस्सइकाय ॥

४४ इम निश्चै वेइंदिया, णवरं इतरो विशेख ।
जीभिंदिया फासिंदिया, तेह आश्रयी पेख ॥

---

* लय : क्षमावंत जोय भगवत रो ज्ञान

३२ 'जीवा वि भोग' त्ति जीवशरीराणां विशिष्टगन्धादि-गुणयुक्तत्वात्, (वृ० प० ३१०,३११)

३३. 'अजीवा वि भोग' त्ति अजीवद्रव्याणां विशिष्टगन्धादि-गुणोपेतत्वादिति । (वृ० प० ३११)

३४ जीवाणं भंते ! भोगा ? अजीवाणं भोगा ?
गोयमा ! जीवाणं भोगा, नो अजीवाणं भोगा ।
(श० ७।१३५)

३६ कतिविहा णं भंते ! भोगा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तिविहा भोगा पण्णत्ता, तं जहा—गंधा, रसा, फासा । (श० ७।१३६)

३७ कतिविहा णं भंते ! काम-भोगा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंचविहा काम-भोगा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा, रूवा, गंधा, रसा, फासा । (श० ७।१३७)

३८ जीवा णं भंते ! किं कामी ? भोगी ?
गोयमा ! जीवा कामी वि, भोगी वि ।
(श० ७।१३८)

३९ से केणट्ठेणं भंते ! ........
गोयमा ! सोइंदिय-चक्खिदियाइं पडुच्च कामी,

४०. घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च भोगी । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—
(श० ७।१३९)

४१ नेरइया णं भंते ! किं कामी ? भोगी ?
एवं चेव जाव थणियकुमारा । (श० ७।१४०)

४२ पुढविकाइयाणं—पुच्छा ।
गोयमा ! पुढविकाइया नो कामी, भोगी ।
(श० ७।१४१)
से केणट्ठेणं जाव भोगी ?

४३ गोयमा ! फासिंदियं पडुच्च । से तेणट्ठेणं जाव भोगी । एवं जाव वणस्सइकाइया ।

४४. बेइंदिया एवं चेव, नवरं—जिब्भिंदियफासिंदियाइं पडुच्च ।

४६. पूछा चउरिंद्री तणी, जिन कहै कामी होय।
भोगी पिण चउरिंद्रिया, किण अर्थे इम जोय ?

४६. चउरिंदियाणं—पुच्छा।
गोयमा ! चउरिंदिया कामी वि, भोगी वि। (श० ७।१४३)
से केणट्ठेणं जाव भोगी वि ?

४७. जिन कहै चक्षु-इंद्रिय, तेह आश्रयी ताय।
कामी छै चउरिंद्रिया, हिव भोगी नो न्याय॥

४७. गोयमा ! चक्खिदियं पडुच्च कामी,

४८. घ्राणेंद्रिय जीभिद्रिय, फर्शेंद्री पहिछाण।
ते आश्री भोगी कह्या, तिण अर्थे इम वाण॥

४८. घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च भोगी। से तेणट्ठेणं जाव भोगी वि।

४९. दंडक जे अवशेष छै, रह्या थाकता जेह।
जीव तणी पर जाणिवा, जाव वैमानिक तेह॥

४९. अवसेसा जहा जीवा जाव वेमाणिया। (श० ७।१४४)

५०. हे प्रभुजी ! ए जीवड़ा, काम-भोगी सपेख।
कामी नहि, भोगी नही, वलि भोगी जे देख॥

५०. एएसि णं भंते ! जीवाणं कामभोगीणं, नोकामीणं, नोभोगीणं, भोगीण य।

५१. कवण जाव विसेसाहिया ? तब भाखै जिनराय।
सर्व थोडा छै जीवडा, कामी-भोगी कहिवाय॥

५१. कयरे कयरेहिंतो जाव (सं० पा०) विसेसाहिया वा ?
गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा कामभोगी।

५२. कामी-भोगी बिहु नही, अनंतगुणा छै तेह।
भोगी अनतगुणा कह्या, हिव तसु न्याय सुणेह॥

५२. नोकामी नोभोगी अणंतगुणा, भोगी अणंतगुणा। (श० ७।१४५)

५३. *सर्व थोडा काम-भोगी, चउरिंद्रिया पचेंद्रिया।
नही कामी नही भोगी, अनतगुणा सिध वद्धिया॥

५३. 'सव्वत्थोवा कामभोगि' त्ति ते हि चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाश्च स्युस्ते च स्तोका एव, 'नो कामी नो भोगि' त्ति सिद्धास्ते च तेभ्योऽनन्तगुणा एव। (वृ० प० ३११)

५४. एकेंदिया बेइदिया, तेइदिया भोगी कह्या।
अनतगुणा ए सिद्ध सेती, न्याय जिन वच थी लह्या॥

५४. 'भोगि' त्ति एकद्वित्रीन्द्रियास्ते च तेभ्योऽनन्तगुणा वनस्पतीनामनन्तगुणत्वादिति। (वृ० प० ३११)

५५. †देश सितंतर अंक नो, सौ इकवीसमी ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' मंगल माल॥

---

* लय : पूज मोटा भांजे तोटा

† लय : क्षमावंत जोय भगवंत रो ज्ञान

ढाल १२२

**दूहा**

१. भोग तणा अधिकार थी, हिव भोगी कहिवाय।
छउमत्थे इत्यादि हिव, च्यार सूत्र धुर आय॥

*जी हो देव जिणेंद्र नै देख, गोयम प्रश्न पूछ्या भला। (ध्रुपद)

२. जी हो छद्मस्थ नर प्रभु ! जान, सुरलोक कोयक नै विषे तिको।
जी हो उपजवा जोग पिछाण, देवपणै उपजे जिको॥

३. ते नर निश्चै भगवान ! क्षीण दुर्बल तनु तसु थयो।
वृत्तिकार कहि वान, तप रोगादिक करि भयो॥

**सोरठा**

४. 'आख्यो तप रोगादि, तप ते ताव कहीजियै।
पिण तपसा नही साधि, वा शब्द न कह्यो ते भणी॥

५. तप ते ताव कहाय, तेहिज रोग छै आदि मे।
वहु वच कहिवै ताय, अन्य रोग पिण जाणवा॥

६. तिण रोगे करि जाण, दुर्बल तनु छै जेहनो।
सुर गति योग्य पिछाण, पूछा नो अभिप्राय ए'॥
(ज० स०)

७. *उट्ठाणादिक करि जेह, भोगविवा समर्थ नही।
हे भगवत ! अर्थ एह, इमहिज आप कहो सही ?

८. †इहां प्रश्न नो अभिप्राय एहवो, भोग भोगविवा भणी।
समर्थ नहि रोगादि करिनै, क्षीण देह छै ते तणी॥

९. ते भणी भोगी जे नही वलि, तेह भोग-त्यागी नही।
भोग त्याग्या विना निर्जरवंत किम कहियै वही ?

१०. अथवाज भोग त्याग्या विना, किम देवलोके जायवो।
ए अभिप्राय सू प्रश्न पूछ्यो, इम वृत्तिकार जणायवो॥

११. *उत्तर दे जिनराय, एह अर्थ समर्थ नही।
ते भोगी त्यागी नाय, सुर गति जोग नही सही॥

१२. उट्ठाणादिक करि जेह, भोग विस्तीर्ण अति घणु।
भोगवतो विचरेह, समर्थ छै तनु तेह तणु॥

---

* लय : जी हो धनो नै सालभद्र दोय

† लय : पुज मोटा भांजे तोटा

१ भोगाधिकारादिदमाह— (वृ० प० ३११)

२ छउमत्थे ण भते ! मणूसे जे भविए अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जित्तए,

३ से नूण भते ! से खीणभोगी
'खीणभोगि' त्ति भोगो जीवस्य यत्रास्ति तद्भोगि— शरीर तत्क्षीण तपोरोगादिभिर्यस्य स क्षीणभोगी क्षीणतनुर्दुर्बल इति यावत्। (वृ० प० ३११)

७ नो पभू उट्ठाणेण ……भोग-भोगाइ भुंजमाणे विहरित्तए ? से नूण भते ! एयमट्ठ एव वयह ?

८,९ पृच्छतोऽयमभिप्राय —यद्यसौ न प्रभुस्तदाऽसौ भोगभोजनासमर्थत्वान्न भोगी अत एव न भोगत्यागी-त्यत. कथ निर्जरावान् ? (वृ० प० ३११)

१०. कथं वा देवलोकगमनपर्यवसानोऽस्तु ? (वृ० प० ११)

११ गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे।

१२ पभू णं से उट्ठाणेण वि……विपुलाइ भोगभोगाइ भुजमाणे विहरित्तए,

१४ मनुष्य अहो भगवान! अल्प अवधि ज्ञानी थयु।
नियत खेत्र सुज्ञान, सुर गति जोग तिको कह्यु॥

१४. आहोहिए णं भंते! मणूसे जे भविए अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जित्तए,
'आहोहिए णं' ति 'आधोऽवधिक' नियतक्षेत्रविषयावधिज्ञानी। (वृ० प० ३११)

१५. कह्यो छद्मस्थ आलाव, ए पिण इमहिज जाणवो।
जाव पर्यवसान भाव, एह लगै सहु आणवो[1]॥

१५ एवं चेव जहा छउमत्थे जाव (सं० पा०) महापज्जवसाणे भवइ।

## सोरठा

१६. अवधिवत मनु साधि, रोगादिक तनु क्षीण तसु।
उट्ठाण प्रमुखे वादि, भोग भोगविवा नहिं प्रभु?

१६. से नूणं भंते! जे खीणभोगी नो पभू उट्ठाणेणं, ...... भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए?

१७. सुर गति योग्यज एह, एम अर्थ कहो छो तुम्हे?
तव भाखै जिन तेह, एह अर्थ समर्थ नहीं॥

१७. से नूणं भंते! एयमट्ठं एवं वयह?
गोयमा! णो तिणट्ठे समट्ठे।

१८. उट्ठाण प्रमुख करेह, भोग भोगविवा छै प्रभु।
ते भोगी भोग तजेह, महानिर्जरा त्यूं नगु॥

१८. पभू णं से उट्ठाणेण वि...... भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए, तम्हा भोगी, भोगे परिच्चयमाणे महानिज्जरे। (श० ७।१४७)

१९. *परम अवधिज्ञानी पेख, ते प्रभु! तिणहिज भव मही।
मुक्ति जावा योग्य देख, चरमशरीरी ते सही॥

१९ परमाहोहिए णं भंते! मणूसे जे भविए तेणेव भवग्गहणेण सिज्झित्तए जाव अंतं करेत्तए,

## दूहा

२०. परम अवधिज्ञानी प्रवर, चरमशरीरी होय।
तिण सू तिण भव शिव-गमन योग्य कह्या छै सोय॥

२० परमाधोऽवधिकज्ञानी, अवश्य च चरमशरीर एव भवतीत्यत आह—'तेणेव भवग्गहणेण सिज्झित्तए' इत्यादि। (वृ० प० ३११)

२१. *ते नर हे भगवान! दुर्बल देह रोगादि करी।
छद्मस्थ नर जिम जाण, सर्व पाठ कहिवो फिरी॥

२१ से नूणं भंते! जे खीणभोगी सेसं जहा छउमत्थस्स। (सं० पा०) (श० ७।१४८)

२२. केवली मनु भगवान, मुक्ति जोग तिण भव मही।
परम अवधि जिम जाण, जाव पर्यवसान ते हुई॥

२२ केवली णं भंते! मणूसे जे भविए तेणेव भवग्गहणेणं एवं चेव जहा परमाहोहिए जाव (सं० पा०) महापज्जवसाणे भवति। (श० ७।१४९)

---

* लय : जी हो धनो नै सालभद्र दोय

१. यहां महापज्जवसाण का अनुवाद सुरलोक किया गया है।

२ यह जोड संक्षिप्त पाठ के आधार पर की गई है। इसके बाद की तीन गाथाओं में उस संक्षिप्त पाठ को पूरा कर दिया गया है। संभव है जयाचार्य को उपलब्ध प्रति में यह पाठ दोनों प्रकार से था। अगसुत्ताणि भाग २ में भी यही क्रम रखा गया है।

**सोरठा**

२३. ज्ञानी छद्मस्थादि, वक्तव्यता तेहनी कही।
अज्ञानी पृथिव्यादि, हिवै वार्त्ता तेहनी॥

२३. अनन्तर छद्मस्थादिज्ञानवक्तव्यतोक्ता, अथ पृथिव्याद्यज्ञानिवक्तव्यतोच्यते— (वृ० प० ३११)

२४. *हे भगवत ! जे एह, मन रहित जे असन्निया।
पुढवीकाइया जेह, जाव वणस्सइ सहु लिया॥

२४ जे इमे भते ! असण्णिणो पाणा, त जहा—पुढविकाइया जाव वणस्सइकाइया,

२५. छट्ठा त्रस केइ एक, समुच्छिम अन्य त्रस नही।
ए सहु अध जिम पेख, ज्ञान रहित कह्या सही॥

२५ छट्ठा य एगतिया तसा—एए ण अधा,
'एगइया तस' त्ति 'एके' केचन न सर्वे समूच्छिमा इत्यर्थः, 'अध' त्ति अध इवान्धा—अज्ञाना.
(वृ० प० ३१२)

२६ मूढा—तत्व श्रद्धान ते पिण नहि छै जेहनै।
ओपम करिनै जाण, कहियै छै हिव तेहनै॥

२७. तम प्रविष्ट जिम तेह, अधकार विषे जाणियै।
प्रवेश छै अधिकेह, ते तम प्रविष्ट जिम माणियै॥

२६,२७. मूढा, तमपविट्ठा
'मूढ' त्ति मूढा तत्त्वश्रद्धान प्रति एत एवोपमयोच्यन्ते। 'तमपविट्ठ' त्ति तम प्रविष्टा इव तम प्रविष्टा। (वृ० प० ३१२)

२८. तम-पडल मोहजाल, तम-पडल जिम एह छै।
ज्ञानावरण मोह न्हाल, विहु जाले ढाक्या अछै॥

२८ तमपडल-मोहजालपडिच्छन्ना,
तम पटलमिव तम पटल—ज्ञानावरण मोहो—मोहनीय तदेव जाल मोहजाल ताभ्या प्रतिच्छन्ना—आच्छादिता ये ते। (वृ० प० ३१२)

२९. अकाम-निकरण जास, मन रहित इच्छा विना।
निकरण कारण तास, भोगवै सुख दुख वेदना॥

३०. असण्णी इम भगवान, मन विन वेदन भोगवै।
कारण तास अज्ञान ? जिन कहै हंता अनुभवै॥

२९,३० अकामनिकरण वेदण वेदेंतीति वत्तव्व सिया ? हता गोयमा ! जे इमे असण्णिणो पाणा जाव वेदण वेदेंतीति वत्तव्व सिया। (श० ७।१५०)
अकामो—वेदनानुभावेऽनिच्छाऽमनस्कत्वात् स एव निकरण—कारण यत्र तदकामनिकरण अज्ञानप्रत्ययमिति भावस्तद्यथा भवतीत्येव 'वेदना' सुखदुःखरूपाम्। (वृ० प० ३१२)

**सोरठा**

३१. 'असण्णी मे वे ज्ञान, दूजै गुणठाणै हुवै।
वमती सम्यक्त जान, ते इहा लेखविया नही॥

३२. कडेमाणे कडे जाण, इहा अभिप्राय जणाय जे।
वली वहुल वच माण, बुधवंत न्याय विचारियै'॥ (ज० स०)

३३. आख्या असन्नी एह, तास विपक्ष सन्नी तणी।
वेदन हिवै कहेह, चित्त लगाई साभलो॥

३३. अथासञ्ज्ञिविपक्षमाश्रित्याह— (वृ० प० ३१२)

३४. *जीव अछै भगवान ! समर्थ पिण सन्नी छता।
अकाम-निकरण जान, वेदन प्रति जे वेदता॥

३४. अत्थि ण भते ! पभू वि अकामनिकरण वेदण वेदेंति ?

---

* लय : जी हो धनो नै सालभद्र दोय

इच्छा विण पहिछान, वेदन प्रति वेदै अछै ॥

३६. अकाम अर्थज एह, इच्छा विण जे जीवड़ा ।
निकरण कारण तेह, अनाभोग थी इम वृत्ती ॥

३७ अन्य आचार्य ताय, आखै छै इण रीत सू ।
अकाम अर्थ कहाय, अनिच्छा पूर्वक जिके ॥

३८. निकरण अर्थ कहाय, क्रिया इष्ट फल शून्य जे ।
अकाम-निकरण ताय, केवल वेदै वेदना ॥

३९. *जिन कहै हंता तेम, वलि गोयम इम पूछता ।
समर्थ पिण प्रभु ! केम, अकाम-निकरण वेदता ?

**सोरठा**

४०. सन्नीपणे करि जेह, समर्थ आख्या तेहनें ।
पिण उपाय विण तेह, देखण नें समरथ नहीं ॥

४१. समर्थ पिण इण न्याय, आख्या ते समरथ नहीं ।
अणइच्छाइ ताय, अकाम-निकरण वेदना ?

४२. *जिन कहै समर्थ जेह, रूप अंधारे दीवा विना ।
देखण समर्थ न तेह, पेखण मन छै जेहना ॥
[जिन कहै गोयम! एह, अकाम-निकरण वेदना] ॥

४३ आगल रूप छै जास, तो पिण चक्षु व्यापरया विना ।
देखी न सकै तास, अध्यवसाय देखण तणा ॥

४४. पूठै रूप छै जास, तो पाछै दृष्टि फेरया विना ।
देखण समर्थ न तास, जोवण मन छै जेहनां ॥

(वृ० प० ३१२)

३६. 'अकामनिकरणं' अनिच्छाप्रत्ययमनाभोगात् ।
(वृ० प० ३१२)

३७. अन्ये त्वाहु—अकामेन—अनिच्छया ।
(वृ० प० ३१२)

३८. 'निकरणं' क्रियाया—इष्टार्थप्राप्तिलक्षणाया अभावो यत्र वेदने तत्तथा तद्यथा भवतीत्येवं वेदनां वेदयन्ति ।
(वृ० प० ३१२)

३९ हंता अत्थि । (श० ७।१५१)
अत्थि णं भंते ! पभू वि अकामनिकरणं वेदणं वेदेंति ?

४० यः प्राणी सञ्ज्ञित्वेनोपायसद्भावेन च रूपादीनां ज्ञानादौ समर्थोऽपि 'नो पभु' त्ति न समर्थः ।
(वृ० प० ३१२)

४२. गोयमा ! जे णं नो पभू विणा पदीवेणं अंधकारंसि रूवाइं पासित्तए,
एस णं गोयमा ! पभू वि अकामनिकरणं वेदणं वेदेंति ।[1] (श० ७।१५२)

४३. जे णं नो पभू पुरओ रूवाइं अणिज्झाइत्ता णं पासित्तए,
'अनिध्याय' चक्षुरव्यापार्य (वृ० प० ३१२)

४४. जे णं नो पभू मग्गओ रूवाइं अणवयक्खित्ता णं पासित्तए,
'अनवेक्ष्य' पश्चाद्भागमनवलोक्येति
(वृ० प० ३१२)

---

* लय : जी हो धनो नें सालभद्र दोय

१ यह पाठ सैंतालीसवीं गाथा के सामने दिए गए पाठ के बाद आता है और फिर सूत्र पूरा होता है । किन्तु जोड़ में बयालीसवीं गाथा के बाद नया ध्रुपद दिया गया है । उसमें इस पाठ का अनुवाद है । इसलिए १५२ वें सूत्र के अन्तिम अंश को यहां उद्धृत किया गया है । आगे ४७ वीं गाथा तक यही सूत्र चलेगा ।

४५. रूप रह्या विहुं पास, दृष्टि फेरचा विण त्या भणी ।
देखण समर्थ न तास, पिण इच्छा देखण तणी ॥
४६. ऊर्ध्व रूप छै सोय, अवलोकन कीधा बिना ।
जोवा समर्थ न कोय, देखण मन छै जेहना ॥
४७. हेठे रूप छै जेह, अवलोकन कीधां विना ।
देखण समर्थ न तेह, पेखण मन छै जेहना ॥
४८. सन्नी छतो जे ताहि, समर्थ रूप देखण घणा ।
जोया विण समर्थ नाहि, अध्यवसाय देखण तणा ॥

## सोरठा

४९. अकाम-निकरण देख, वेदन वेदै इम कह्यु ।
तास विपर्जय पेख, प्रकाम-निकरण हिव कहै ॥

५०. *समर्थ पिण छै स्वाम ! प्रकाम-निकरण वेदना ।
वेदै छै ते ताम ? जिन कहै हता छै घना ॥

५१. †हिव समर्थ पिण जे प्रकाम-निकरण, वेदनाज कहीजियै ।
समर्थ पिण जे रूप देखण, सन्नीपणै करि लीजियै ॥
५२. प्रकाम वाछित अर्थ नैं, अणपामिवै करि जेहनै ।
प्रवर्द्धमान भावे करी, प्रकृष्ट वाछा तेहनै ॥
५३. तेहीज निकरण अछै कारण, तेह वेदना नै विषे ।
समर्थ पिण जे प्रकाम-निकरण, वेदना वेदै इसे ॥
५४. अन्य आचार्य इम कहै छै, प्रकाम कहिता जाणियै ।
तीव्र अभिलाषा छते वा, अतिहि अर्थ पिछाणियै ॥
५५. निकरण इष्टार्थ साधक, क्रिया नही जेहनै विषे ।
समर्थ पिण जे प्रकाम-निकरण वेदना वेदै तिसे ॥

५६. *हे प्रभु ! किणविध ताम, समर्थ पिण सन्नी छता ।
प्रकाम-निकरण नाम, वेदन प्रति किम वेदता ?
५७. जिन कहै सन्नी जीव, समुद्र पार जावू वही ।
एहवी वाछा अतीव, पिण पार जावा समर्थ नही ।
[जिन कहै गोयम ! एह, प्रकाम-निकरण वेदना] ॥
५८. समुद्र नें जे पार, रूप देखण समरथ नही ।
पिण ते रूप उदार, देखण वाछा तीव्र ही ॥
५९. वलि देवलोक मझार, जावा नैं समरथ नही ।
त्यां जावा नी अपार, अभिलाषा तसु तीव्र ही ॥
६०. देवलोक नां रूप, देखण नैं समरथ नही ।
पिण तसु देखण चूप, मनसा छै तसु तीव्र ही ॥

* : लय : जी हो धनो नैं सालभद्र दोय

† : लय : पूज मोटा भाजै तोटा

४५. जे ण नो पभू पासओ रूवाइ अणवलोएत्ता णं पासित्तए,

४६ जे ण नो पभू उड्ढ रूवाइ अणालोएत्ता ण पासित्तए,

४७. जे ण नो पभू अहे रूवाइ अणालोएत्ता ण पासित्तए ।
(श० ७।१५२)

४९. अकामनिकरण वेदना वेदयतीत्युक्तम्, अथ तद्विपर्ययमाह—
(वृ० प० ३१२)

५० अत्थि ण भते ! पभू वि पकामनिकरण वेदण वेदेंति ?
हता अत्थि ।
(श० ७।१५३)

५१ प्रभुरपि संज्ञित्वेन रूपदर्शनसमर्थोऽपि ।
(वृ० प० ३१२)

५२ प्रकाम —ईप्सितार्थाप्राप्तितः प्रवर्द्धमानतया प्रकृष्टोऽभिलाषः
(वृ० प० ३१२)

५३ स एव निकरण—कारण यत्र वेदने तत्तथा ।
(वृ० प० ३१२)

५४,५५ अन्ये त्वाहु —प्रकामे—तीव्राभिलाषे सति प्रकाम वा अत्यर्थं निकरण—इष्टार्थसाधकक्रियाणामभावो यत्र तत् प्रकामनिकरण तद्यथा भवतीत्येव वेदना वेदयति ।
(वृ० प० ३१२)

५६ कहण्ण भते ! पभू वि पकामनिकरण वेदण वेदेंति ?

५७ गोयमा ! जे ण नो पभू समुद्दस्स पार गमित्तए,

५८ जे ण नो पभू समुद्दस्स पारगयाइ रूवाइ पासित्तए,

५९. जे ण नो पभू देवलोग गमित्तए,

६०. जे ण नो पभू देवलोगगयाइ रूवाइ पासित्तए,

## ढाल १२३

### दूहा

१. सप्तमुदेशक अंत मे, छद्मस्थ वेदन जाण।
अष्टमुदेशक आदि हिव, छद्म वारता आण॥

२. हे प्रभु ! नर छद्मस्थ जे, अतीत काल अनंत।
सास्वत समय विषे तिको, केवल संजमवंत॥

३. इम जिम प्रथम-शते[1] कह्यो, चउथ उदेशक मांय।
तिमहिज भणवो ज्यां लगे, अलमत्थु कहिवाय॥

४. जीव तणा अधिकार थी, जीव तणो पहिछाण।
प्रश्न हिवै गोयम करै, ऊजम अधिको आण॥

*जय-जय जिनराज तणी वाणी। (ध्रुपद)

५. हे प्रभु ! निश्चै तै परिखो, गज कुंथु नो जीव अछै सरिखो ?
जिन भाखै हंता जाणी॥

६. इम जिम रायप्रश्रेणी मही, जाव नान्ही मोटी काय कही।
तिण अर्थ जावत सम ठाणी॥

७. वाचनातरे सर्व तिको, पाठ साख्यात लिखित दीसै छै जिको।
वृत्ति मध्ये इहविध माणी॥

### सोरठा

८. जीव तणो अधिकार, आख्यो छै तेहथी हिवै।
वली जीव विस्तार, निसुणो चित्त लगाय नै॥

९. *नारकी नै प्रभुजी ! न्हालं, पाप कर्म किया जे गये काल।
हिवड़ा करै आगै करिस्यै प्राणी॥

१०. ते सर्व दुक्ख हेतू कहियै, तिके निर्जरयां सुख हेतू लहियै ?
जिन भाखै हंता इम जाणी॥

१ सप्तमोद्देशकस्यान्ते छाद्मस्थिक वेदनामुक्ताष्टमे त्वा-
दावेव छद्मस्थवक्तव्यतोच्यते, (वृ० प ३१२)

२ छउमत्थे णं भंते ! मणूसे तीयमणंतं सासयं समयं
केवलेण संजमेण।

३ एवं जहा पढमसए चउत्थे उद्देसए तहा भाणियव्वं
जाव अलमत्थु। (सं० पा०) (श० ७।१५६, १५७)

५ से नूणं भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव
जीवे ?
हंता गोयमा ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे।

६ एवं जहा रायपसेणइज्जे (रायप० सू० ७७२) जाव
खुड्डियं (सं० पा०) वा महालियं वा से तेणट्ठेणं
गोयमा ! एवं वुच्चइ—हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव
जीवे। (श० ७।१५८, १५९)

८. जीवाधिकारादिदमाह— (वृ० प० ३१३)

९,१०. नेरइयाणं भंते ! पावे कम्मे जे य कडे, जे य
कज्जइ, जे य कज्जिस्सइ सव्वे से दुक्खे, जे निज्जिण्णे
से सुहे ? हंता गोयमा !

---

१. भगवती श० १।२००-२०६

*लय : प्रभु वासपुज्य भजलै प्राणी

११. इम जाव वैमानिक लग कहिवो, नारकादिक नै संज्ञा रहिवो।
तसु सज्ञा सूत्र हिवै आणी ॥

११ एव जाव वेमाणियाणं। (श० ७।१६०)
नारकादयश्च सञ्ज्ञिन इति सञ्ज्ञा आह—
(वृ० प० ३१४)

१२. केतली प्रभु ! सज्ञा[1] भाखी, जिन भाखै दश सज्ञा दाखी।
आहार भय मिथुन परिग्रह जाणी ॥

१२ कति ण भते ! सण्णाओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ, त जहा—आहार-सण्णा, भयसण्णा, मेहुणसण्णा, परिग्गहसण्णा,

१३. क्रोध मान माया नै लोभ वली, ओघ सज्ञा—दर्शनोपयोग मिली।
ज्ञानोपयोग लोक सज्ञा माणी ॥

१३ कोहसण्णा, माणसण्णा, मायासण्णा, लोभसण्णा, लोग-सण्णा, ओहसण्णा[1]।
ततश्चौघसञ्ज्ञा दर्शनोपयोगो लोकसञ्ज्ञा तु ज्ञानोप-योग इति। (वृ० प० ३१४)

१४. नवमी लोक सज्ञा अन्य गणि भाखै, ओघ सज्ञा नै दशमी दाखै।
एहवी वृत्तिकार कहि छै वाणी ॥

१४ व्यत्यय त्वन्ये। (वृ० प० ३१४)

१५ फुन अन्य आचारज इम आखै, ओघ संज्ञा सामान्य प्रवृत्ति दाखै।
लोक सज्ञा लोक दृष्टी ठाणी ॥

१५ अन्ये पुनरित्थमभिदधति—सामान्यप्रवृत्तिरोघसञ्ज्ञा लोकदृष्टिस्तु लोकसञ्ज्ञा। (वृ० प० ३१४)

१६. इम जाव विमानिक नै कहिवी, दश सज्ञा सर्व दंडक लहिवी।
प्रवर प्रभू वच पहिछाणी ॥

१६ एव जाव वेमाणियाण। (श० ७।१६१)

---

१ ससार के बहुसख्यक प्राणियो मे पाई जाने वाली एक विशेष प्रकार की वृत्ति का नाम सज्ञा है। संज्ञा की अनेक परिभाषाए हो सकती हैं, उनमे से कुछ परि-भाषाए ये हैं—

- जिससे जाना जाता है, सवेदन किया जाता है, वह संज्ञा है।
- मानसिक ज्ञान अथवा समनस्कता का नाम संज्ञा है।
- भौतिक वस्तु की प्राप्ति तथा प्राप्त वस्तु के सरक्षण की व्यक्त अथवा अव्यक्त अभिलाषा का नाम सज्ञा है।
- वेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से प्राणी मे आहार आदि की प्राप्ति के लिए जो स्पष्ट या अस्पष्ट व्यग्रता अथवा सक्रियता रहती है, वह सज्ञा है।
- मनोविज्ञान की भाषा मे प्राणी जगत् की जो मूल वृत्तिया है, उन्ही को जैन सिद्धान्त सज्ञा के रूप मे प्रतिपादित करता है।

ज्ञान, सवेदन, अभिलाषा, चित्त की व्यग्रता या मूल वृत्ति किसी भी शब्द का प्रयोग हो, वह जैन दर्शन मे सज्ञा कहलाती है। भगवती ७।१६१ मे उसके दस प्रकार बतलाए है। दस सज्ञाओ मे आठ सज्ञाए ऐसी है, जो अपने नाम से ही अपने स्वरूप का बोध करा देती हैं। शेष दो सज्ञा—लोक सज्ञा और ओघ सज्ञा का स्वरूप उनकी परिभाषा से स्पष्ट होता है।

लोक सज्ञा वैयक्तिक चेतना की प्रतीक है और ओघ सज्ञा सामुदायिक चेतना की। भगवती मे सामान्य प्रवृत्ति को ओघ सज्ञा और लोक दृष्टि को लोक सज्ञा कहा गया है। सज्ञा के दस प्रकारो मे प्रथम आठ सज्ञाओ को सवेगात्मक और अंतिम दो सज्ञाओ को ज्ञानात्मक माना गया है।

१. जयाचार्य ने वृत्तिकार द्वारा व्याख्यात पाठ के क्रम से जोड लिखी है तथा अन्य आचार्यों का मत प्रदर्शित करते हुए पहले लोक सज्ञा और बाद मे ओघ संज्ञा होने का निर्देश किया है। अग सुत्ताणि (भाग २ श० ७।१६१) मे वृत्तिकार के 'व्यत्यय त्वन्ये'—अन्य आचार्यों द्वारा सम्मत पाठ को ही मान्य किया है। इसलिए जोड के सामने जो पाठ उद्धृत है, उसमे नौवीं एव दशवी सज्ञा के नामो मे विपर्यय है।

तिम ज्ञानावरण पिछान, क्षय उपशम थी विहु तणें ।।

१८. पचेंद्री नैं पेख, दश सज्ञा सुख समझियै ।
एगिदियादि विशेख, जिन वचने करि जाणियै ।।

१९. प्राय यथोक्त तद्रूप, क्रिया-निबधनभूत जे ।
कर्मोदयादि रूप, एकेंद्रियादि नैं सज्ञा ।।

१८,१९. एताश्च सुखप्रतिपत्तये स्पष्टरूपा पञ्चेन्द्रियान-धिकृत्योक्ता., एकेन्द्रियादीना तु प्रायो यथोक्तक्रिया-निबन्धन कर्मोदयादिरूपा एवावगन्तव्या इति ।
(वृ० प० ३१८)

२०. जीव तणो अधिकार, कहिवा थी वलि जीव नो ।
कहियै छै विस्तार, चित्त लगाई सामलो ।।

२०. जीवाधिकारात्— (वृ० प० ३१८)

२१. *नेरइया दशविध न्हाली, विरूइ वेदन महा विकराली ।
ए तो भोगवता विचरै जाणी ।।

२१. नेरइया दसविह वेयण पच्चणुभवमाणा विहरंति,

२२. शीत उष्ण नें क्षुधा आखी, वली तृषा खाज वेदन भाखी ।
परवस्यपणो अनंत जाणी ।।

२२ त जहा—सीय, उसिण, खुह, पिवास, कडु, परज्झ 'परज्झ' त्ति पारवश्यम् । (वृ० प० ३१४)

२३. ज्वर दाह भय सोग कही, दश वेदन वार अनत लही ।
सुध श्रद्धा विण रुलियो प्राणी ।।

२३. जरं, दाह, भय, सोग । (श० ७।१६२)

## सोरठा

२४. आखी वेदन एह, तिका कर्म ना वस थकी ।
वली क्रिया थी जेह, जीव सहे छै वेदना ।।

२४ प्राग् वेदनोक्ता सा च कर्मवशात् तच्च क्रियाविशे-षात् । (वृ० प० ३१८)

२५. तिका क्रिया सम थाय, महा तनु अल्प तनु बिहु तणै ।
ते देखाड़ण ताय, गोयम प्रश्न करै हिवै ।।

२५ सा च महतामितरेषा च समैवेति दर्शयितुमाह—
(वृ० प० ३१४)

२६. *ते निश्चै करि भगवानं, गज कुथु बिहु नें सम जान ।
अपचखाण क्रिया माणी ?

२६. से नूण भते ! हत्थिस्स य कुथुस्स य समा चेव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ ?

२७ जिन भाखै हता होयो, किण अर्थे प्रभु ! अवलोयो ?
जिन कहै अव्रत आश्री ठाणी, तिण अर्थे जावत सम जाणी ।।

२७ हता गोयमा ! ········ (श० ७।१६३)
से केणट्ठेणं भते ! एव वुच्चइ— ······
गोयमा ! अविरति पडुच्च । से तेणट्ठेण जाव (स० पा०) कज्जइ । (श० ७।१६४)

## सोरठा

२८. असजती नैं जोय, अव्रत नी किरिया कही ।
हिव सयत नैं होय, आधाकर्मी जे क्रिया ।।

२८. अनन्तरमविरतिरुक्ता सा च सयतानामप्याधाकर्म्म-भोजिना कथञ्चिदस्तीत्यत. पृच्छति ।
(वृ० प० ३१५)

२९. [1]आधाकर्मी प्रभु ! जाणी, भोगवतो स्यू बांधै ताणी ।
स्यूं पकरै चय उपचय ठाणी ?

२९. अहाकम्म ण भते ! भुजमाणे किं बधइ ? किं पक-रेइ ? किं चिणाइ ? किं उवचिणाइ ?

३०. इम जिम प्रथम शते आख्यो, नवमे उदेशे जे भाख्यो ।
तिम इहा भणवू पहिछाणी ।।

३०. एव जहा पढमे सए नवमे उद्देसए (१।४३६) तहा भाणियव्व । (स० पा०)

---

*लय : प्रभु वासुपूज्य भजलै प्राणी !

३१. जाव सासतो पंडित जीवो, ए द्रव्य जीव आश्री कह्यो।
पंडितपणो असासतो चरित्तागी॥

३१. जाव सासए पंडिए, पंडियत्तं असासयं।
(श० ७।१६५)

जीवः शाश्वतः, पण्डितत्वमशाश्वतं [illegible]
इति। (वृ० प० ३१५)

३२. सेव भंते! सेव भंते! शत सप्तमुद्देश अष्टमते।
ढाल एकसौ तेवीसमी वर वाणी॥

३२. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श० ७।१६६)

३३. भिक्खु भारीमाल नैं ऋषिराया, 'जय-जश' सुख हरष संपति पाया।
गण-वच्छल संत अज्जा स्याणी॥

सप्तमशते अष्टमोद्देशकार्थः ॥७।८॥

## ढाल १२४

### दूहा

१. अशुद्ध आहार भोजी कह्यो, प्रमत्तपणे करि जेह।
असंवरी आतम जिणे, नवमे पिण वलि तेह॥

१ पूर्वमाधाकर्मभोक्तृत्वेनानुक्तवक्तव्योऽसौ, नवमोद्देशकेऽपि तद् वक्तव्यतोच्यते, (वृ० प० ३१५)

२. असवृत अणगार प्रभु! अशुभ जोग अपेक्षाय।
आतम वस कीधी नहीं, प्रमत्त कह्यो वृत्ति माय॥

२. असंवुडे णं भंते! अणगारे
असंवृतः प्रमत्तः। (वृ० प० ३१५)

३. पुद्गल बाह्य लिया विना, एक वर्ण इक रूप।
विकुर्वण समरथ अछै? जिन कहै नहिं तद्रूप॥

३ बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए?
णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ७।१६७)

४. असवृत अणगार प्रभु! बाहिर पुद्गल लेय।
एक वर्ण इक रूप प्रति, जाव हंत विकुर्वेय॥

४. असंवुडे णं भंते! अणगारे बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए?
हंता पभू। (श० ७।१६८)

५. ते प्रभु! स्यूं पुद्गल ग्रहै, इह नरलोके जेह।
ते पुद्गल लेई करी, विकुर्वणा करेह॥

५. से णं भंते! किं इहगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ?
'इहगतान्' नरलोकव्यवस्थितान्। (वृ० प० ३१५)

६. तत्थगए वैक्रिय करि, जास्यै जे जिण स्थान।
तिहां रह्या पुद्गल ग्रही, करै विकुर्वण जान?

६ तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ?
'तत्रगतान्' इति वैक्रियं कृत्वा यत्र यास्यति तत्र व्यवस्थितानित्यर्थः। (वृ० प० ३१५)

७. अन्नत्थगत ए स्थान बे, तेह थकी अन्य स्थान।
तिहां रह्या पुद्गल ग्रही, करै विकुर्वण जान?

७ अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ?
'अन्यत्रगतान्' इति उक्तस्थानद्वयव्यतिरिक्तस्थानाश्रितानित्यर्थः। (वृ० प० ३१५)

८. जिन कहै पुद्गल इहां रह्या, लेई विकुर्वेह।
वैक्रिय करै ते स्थान ना, पुद्गल ग्रहण करेह॥

८ गोयमा! इहगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ।

९. तत्थगए वैक्रिय करि, जास्यै जे जिण स्थान।
तिहां रह्या पुद्गल ग्रही, विकुर्वै नहिं जान॥

९. नो तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ।

११ एक वर्ण वहु रूप इम, चउभंगा छ ताय।
शत छट्ठे नवमे कह्यु, तेम इहा कहिवाय॥

११. एव एगवण्ण अणेगरूव चउभंगो जहा छट्ठसए नवमे उद्देसए (६।१६५) तहा इह वि भाणियव्व।

१२. णवरं इतो विशेष छै, इण शतके अणगार।
इहा रह्या पुद्गल ग्रही, विकुर्वणा विचार॥

१२. नवर अणगारे इहगय च इहगते चेव पोग्गले परिया-इत्ता विकुव्वइ।

१३. शेष तिमज कहिवूं सहु, तिण शतके छै देव।
तिहा रह्या पुद्गल ग्रहे, आख्यूं एहवूं भेव॥

१३. सेस त चेव
तत्र तु देव इति तत्रगतानिति चोक्तम्। (वृ० प० ३१५)

१४. जाव लुक्ख पुद्गल प्रतै, निद्धपणे अवलोय।
समर्थ प्रभु! परिणामिवा? हंता समर्थ होय॥

१४. जाव लुक्खपोग्गल निद्धपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए?
हता पभू।

१५. ते प्रभु! स्यू पुद्गल ग्रहै, इहा रह्या छै जेह।
जाव अन्य स्थानक रह्या, ग्रहि वैक्रिय न करेह॥

१५ से भते! कि इहगए पोग्गले परियाइत्ता जाव नो अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ। (स०पा०)
(श० ७।१६६-१७२)

१६. आख्यो ए पुद्गल तणो, जे परिणाम विशेष।
ते संग्राम विषे हुवै, तसु विशेष हिव लेख॥

*सुगुण जन! साभलो, वारू श्री जिन-वयण विशाल॥(ध्रुपद)

१६ अनन्तर पुद्गलपरिणामविशेष उक्त, स सङ्ग्रामे सविशेषो भवतीति सङ्ग्रामविशेषवक्तव्यताभणनाय प्रस्तावयन्नाह— (वृ० प० ३१५)

१७ जाण्यो सामान्य थकी सही जी, अरिहंत श्री वर्धमान।
आगल वस्तु जे आखियै जी, सर्वज्ञपणा थी जाण॥

१७. नायमेय अरहया,
ज्ञात सामान्यत. 'एतत्' वक्ष्यमाण वस्तु 'अर्हता' भगवता महावीरेण सर्वज्ञत्वात्। (वृ० प० ३१६)

१८. स्मृत नी परे समरियो, प्रगटपणे प्रतिभास।
महावीर महिमानिला, छानो नहिं कोइ तास॥

१८ सुयमेय अरहया,
'सुय' ति स्मृतमिव स्मृत स्पष्टप्रतिभासभावात्।
(वृ० प० ३१६)

१९. जाण्यो विशेषपणे करी, अरिहंत अतिसयधार।
महाशिलाकंटक हिवै, संग्राम नो अधिकार॥

१९. विण्णायमेयं अरहया—महासिलाकटए सगामे।
विज्ञातं विशेषतः, (वृ० प० ३१६)

## सोरठा

२०. महाशिला इज जाण, कंटक ते जीवित तणा।
विनाश करिवै माण, महाशिला कंटक कह्यो॥

२०. महाशिलेव कण्टको जीवितभेदकत्वात् महाशिला-कण्टक (वृ० प० ३१६)

२१. तृण-शलाकादि करेह, हण्या थका गज प्रमुख जे।
महाशिला प्रहारेह, हण्या जिसो वेदन हुवै॥

२१ यत्र तृणशलाकादिनाऽप्यभिहतस्याश्वहस्त्यादेर्महा-शिलाकण्टकेनेवाभ्याहतस्य वेदना जायते।
(वृ० प० ३१६)

२२. महाशिलाकंटक संग्राम, दोय वार सूत्रे वचन।
ते उल्लेख नु ताम, अनुकरणे आख्यो वृतौ॥

२२. द्विर्वचन चोल्लेखस्यानुकरणे, (वृ० प० ३१६)

२३. *महाशिलाकटक प्रभु! संग्रामे वर्त्तमान।
कुण जीतो कुण हारियो? उत्तर दे भगवान॥

२३ महासिलाकटए ण भते! सगामे वट्टमाणे के जइत्था? के पराजइत्था?
'जइत्थ' त्ति जितवान्
'पराजइत्थ' त्ति पराजितवान् हारितवान्।
(वृ० प० ३१६)

* लय : अमड मड रावणो इंदा सू अड़ियो रे

२४ वज्री विदेहपुत्र जीतियो, वज्री ते इद्र पिछाण।
विदेहपुत्र कोणिक कह्यो, ए बिहु जीता जाण॥

२५ नव मल्लकी नव लेच्छकी, कासी कोसल देश ना राय।
अष्टादश गण राजवी, ते हार्‍या कहिवाय॥

२४. गोयमा ! वज्जी, विदेहपुत्ते जइत्था,
'वज्जि' त्ति 'वज्री' इन्द्र. 'विदेहपुत्ते' त्ति कोणिक',
एतावेव तत्र जेतारौ। (वृ० प० ३१७)

२५ नव मल्लई, नवलेच्छई—कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो पराजइत्था। (श० ७।१७३)

**सोरठा**

२६. जेह मल्लकी नाम, नव विशेष राजा जिके।
कासी जनपद ताम, तेह संबधी ए कह्या॥
२७. वले लेच्छकी नाम, नव विशेष राजा जिके।
कोसल जनपद ताम, तेह सबधी ए कह्या॥

२६,२७ 'नवमल्लइ' त्ति मल्लकिनामानो राजविशेषा. 'नवलेच्छइ' त्ति लेच्छकिनामानो राजविशेषा एव 'कासीकोसलग' त्ति काशी—वाणारसी तज्जनपदोऽपि काशी तत्सम्बन्धिन आद्या नव कोशला—अयोध्या तज्जनपदोऽपि कोशला तत्सबधिनो नव द्वितीया।
(वृ० प० ३१७)

२८. *प्रयोजन ऊपने छते, जे करै गण-समुदाय।
गणप्रधान राजा तिके, गण-नृप सामत ताय॥

२८ समुत्पन्ने प्रयोजने ये गणं कुर्वन्ति ते गणप्रधाना राजानो गणराजा. सामन्ता इत्यर्थ।
(वृ० प० ३१७)

२९. कोणक राजा तिण अवसरे, महाशिलाकटक सग्राम।
उपस्थित इम जाणनै, सेवग नै कहै ताम॥

२९ तए ण से कोणिए राया महासिलाकटगं सगाम उवट्ठियं जाणित्ता कोडुबिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी—

३०. शीघ्र तुम्हे देवानुप्रिया! उदाई नामै एह।
गजराज प्रति सझ करो, चउरगी सैन्य सझेह॥

३० खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! उदाइं हत्थिरायं पडिकप्पेह, हय-गय-रह-पवर-जोहकलियं चाउरगिणिं सेण सण्णाहेह,
'पडिकप्पेह' त्ति सन्नद्धं कुरुत। (वृ० प० ३१७)

३१. ए मुझ आज्ञा शीघ्र थी, पाछी सूंपो आण।
कोडुबिक कोणिक तणो, वच सुण हरष भराण॥

३१ मम एयमाणत्तिय खिप्पामेव पच्चप्पिणह।
(श० ७।१७४)
तए ण ते कोडुबियपुरिसा कोणिएण रण्णा एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्तमाणदिया

३२. यावत शिर अजलि करी, एव सामी! तहत्त।
जो आज्ञा तिण विध हुस्यै, आप तणो वच सत्त॥
३३. इह विध वचन-विनय करी, राय वचन नै तिवार।
अगीकार करै आदरै, सेवक पुरुष जिवार॥
३४. शीघ्रपणै डाहो तिको, युद्ध सिखावणहार।
एहवो आचार्य तेहनो, जे उपदेश-दातार॥
३५. तेहनो जे मति बुद्धि करी, कल्पना रचना पिछाण।
तिण रचना करिनै रची अतिहि निपुण नर जाण॥

३२. जाव मत्थए अंजलिं कट्टु एव सामी! तहत्ति आणाए

३३ विणएण वयण पडिसुणति,

३४,३५ पडिसुणित्ता खिप्पामेव छेयायरियोवएसमति-कप्पणा-विकप्पेहिं सुनिउणेहिं
छेको—निपुणो य आचार्य—शिल्पोपदेशदाता तस्योपदेशाद् या मति—बुद्धिस्तस्या ये कल्पना-विकल्पा ""
(वृ० प० ३१७)

३६. जिम उववाई मे कह्यो, यावत रोद्र सग्राम।
तेह जोग गजराज नै, सज्ज करै तिण ठाम॥

३६ एव जहा ओववाइए सू० ५६, ५७ (स०पा०) भीम सगामिय अओज्झ उदाइ हत्थिराय पडिकप्पेंति।

**सोरठा**

३७. कह्यु वृत्ति रै माय, वाचनातरे वारता।
सर्व लिखत देखाय, पाठ सहु साख्यात जे॥

३७ वाचनान्तरे त्विद साक्षाल्लिखितमेव दृश्यत इति।
(वृ० प० ३१८)

*लय : अमड भड रावणो इदा स्यू अड़ियो रे

३९. यावत कोणिक राय नें, आज्ञा सूंपी जेह।
कोणिक नृप तिण अवसरै, आयो मज्जण-गेह ॥

३९. कूणियस्स रण्णो तमाणात्तय ५०५ । ।त।
(श० ७।१७५)
तए ण से कूणिए राया जेणेव मज्जणघरं तेणेव उवागच्छति,

४०. मज्जण-घर मे पैसने, स्नान किया बलिकर्म।
वृत्तिकार कह्यो देव नो, कृतबलिकर्म ए मर्म ॥

४०. उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे
'कयबलिकम्मे' त्ति देवताना कृतबलिकर्म्मा।
(वृ० प० ३१८)

४१. तिलक मसी कोतुक किया, मगलीक द्रोबादि।
अशुभ स्वप्न नें टालिवा, प्रायश्चित ए साधि ॥

४१. कयकोउय-मगल-पायच्छित्ते
कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव प्रायश्चित्तानीव दुःस्वप्नादिव्यपोहायावश्य कर्त्तव्यत्वात् प्रायश्चित्तानि येन स तथा, तत्र कौतुकानि—मषीपुण्ड्रादीनि मङ्गलानि—सिद्धार्थकादीनि। (वृ० प० ३१८)

४२. सर्वालकार तेणे करी, कियो विभूषित गात।
सन्नद्ध कहिता सन्नाह नें, कसिणे करि बधनात ॥

४२. सव्वालंकारविभूसिए सण्णद्ध-बद्ध-
सन्नद्ध सहननिकया तया बद्ध कशाबन्धनत
(वृ० प० ३१८)

४३. वरमित तनु रक्षा भणी, कवच भणी पहिरेह।
पुणच पसारवै करी, शरासन-पट्टिका जेह ॥
४४. एहवो धनुर्दंड छै तिको, बाहु विषे तिणवार।
बाधी शरासन-पट्टिका, कोणिक नृपति जिवार ॥

४३,४४ वम्मियकवए उप्पीलियसरासणपट्टिए
उत्पीडिता—गुणमारणेन कृतावपीडा शरासनपट्टिका—धनुर्दण्डो येन स तथा, उत्पीडिता वा—बाहौ बद्धा शरासनपट्टिका—बाहुपट्टिका येन सः।
(वृ० प० ३१८)

४५ पहिर्‍या है आभरण कठ नां, निमल पवर सुप्रधान।
राज्य चिह्न नु पट्ट जिणे, ते बाध्यो छै जान ॥
४६ ग्रह्या आयुध बहु शस्त्र नें, जेह प्रहरण कहाय।
पर नें प्रहार करण भणी, ए आयुध प्रहरणाय ॥

४५. पिणद्धगेवेज्ज-विमलवरबद्धचिधपट्टे
ग्रैवेयक—ग्रीवाभरणम्। (वृ० प० ३१८)
४६. गहियाउहप्पहरणे
गृहीतानि आयुधानि—शस्त्राणि प्रहरणाय—परेषां प्रहारकरणाय येन स.। (वृ० प० ३१८)

## सोरठा

४७. अथवा आयुध तेह, अक्षेप्य खड़गादी ग्रही।
अधिक उलालि वधेह, पिण न्हाखै नहिं हाथ थी ॥
४८ क्षेप्य शस्त्र बाणादि, प्रहरण छै ए कर थकी।
अधिक वेगला साधि, न्हाखै पर हणवा भणी ॥

४७. अथवाऽऽयुधानि अक्षेप्यशस्त्राणि खड्गादीनि
(वृ० प० ३१८)
४८ प्रहरणानि तु—क्षेप्यशस्त्राणि नाराचादीनि।
(वृ० प० ३१८)

४९ *कोरटक नाम तरु तणा, पुष्पमाला करि सहीत।
तेह छत्र धरिवै करी, पेखत पामै प्रीत ॥

४९. सकोरेंटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण
'सकोरिट ·······' ·······कोरिण्टकाभिधानकुसुमगुच्छै माल्यदामभिः—पुष्पमालाभिः। (वृ० प० ३१८)

५०. चिउ चामर वाले करी, वीजित अग सुजान।
मगल जय रव जन करै, दर्शन देखत पान ॥

५० चउचामरवालवीजियगे मगलजयसद्दकयालोए
'मगल·····' ·····जयशब्दः कृतः जनै विहितः।
(वृ० प० ३१८)

*लय : असड़ मड़ रावणो इन्दा स्यू अड़ियो रे

५१. इम जिम उववाई विपे, लोक अनेक सघात।
मज्जण घर थी नीकली, मन मांहे हरष धरात।।

५२. जिहां बाहिरली उवट्ठाण साल छै, जिहां उदाई नाम।
हस्ती नो राजा अछै, जाव आया तिण ठाम।।

५१,५२ जाव (ओ० सू० ६३) जेणेव उदाई हत्थिराया तेणेव उवागच्छइ,

५३. उदाई हस्तिराजा प्रतै, थया आरूढ तिवार।
कोणिक नृप तणो तदा, शोभ रह्यो दीदार।।

५३. उवागच्छित्ता उदाइ हत्थिराय दुरूढे। (श० ७।१७६)

५४. प्रवर हार आच्छादन करी, सुकृत रचित सुरीत।
वक्ष हृदय तसु शोभतो, पेखत पामै प्रीत।।

५४. तए ण से कूणिए राया हारोत्थय-सुकय-रइयवच्छे
हारावस्तृतेन—हारावच्छादनेन सुष्ठु कृतरतिक वक्ष.—उरो यस्य स तथा (वृ० प० ३१९)

५५. जिम उववाई विषे कह्यो, जावत चामर स्वेत।
उर्ध्व कर्‌या छै तिणे करी, चउरगी सेन्य समेत।।

५५ एव जहा उववाइए (सं० पा० सू० ६५) जाव सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं-उद्धुव्वमाणीहिं हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरगिणीए सेणाए सद्धि संपरिवुडे

५६. मोटा जे भड़ तेहना, चडगर विस्तारवान।
तेहनै संग वृंदे करी, वीट्यो कोणिक राजान।।

५६. महयाभडचडगरविंदपरिक्खित्ते
महाभटाना विस्तारवत्सघेन परिकरित इत्यर्थ (वृ० प० ३१९)

५७. जिहा महाशिलाकटक सग्राम छै, आयो तिहा चलाय।
तेह सग्राम आगै वलि, शक्र सुरिंद सुरराय।।

५७. जेणेव महासिलाकटए सगामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता महासिलाकटग सगाम ओयाए। पुरओ य से सक्के देविंदे देवराया।

५८. पर प्रहार लागै नही, अभेद्य कवच विशेख।
एहवो मोटो एक विकुर्वे, वज्र सरीखो देख।।

५८ एग मह अभेज्जकवय वइरपडिरूवग विउव्वित्ता ण चिट्ठइ।

५९ वे इद्र इम निश्चै करी, करै सग्राम सवाय।।
देविंद मणुयिंद दीपता, शक्र कोणिक कहिवाय।।

५९ एवं खलु दो इदा सगाम सगामेति, त जहा—देविंदे य, मणुइंदे य।

६० इक गज करिनै पिण तदा, समर्थ कोणिक राय।
जीपवा पर वैरी भणी, शक्र सहाय थी ताय।।

६० एगहत्थिणा वि ण पभू कूणिए राया जइत्तए, एगहत्थिणा वि ण पभू कूणिए राया पराजिणित्तए। (श० ७।१७७)

६१. कोणिक नृप तिण अवसरे, महाशिलाकटक सग्राम।
जवर युद्ध करतो छतो, प्रबलपणो दिल पाम।।

६१ तए ण से कूणिए राया महासिलाकटगं सगाम संगामेमाणे

६२. नव मल्लकी नव लेच्छकी, ए गणराय अठार।
कासी कोसल देश ना धणी, पराजित किया तिण वार।।

६२. नव मल्लई नव लेच्छई—कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो

६३ हता प्रहार देई करो, मथिता मथियो मान।
प्रवर वीर भट जेहना, परभव कियो प्रयाण।।

६३ हय-महिय-पवरवीर-घाइय-
हता—प्रहारदानतो मथिता—माननिर्मथनत प्रवरवीरा.—प्रधानभटा घातिताश्च येपा ते। (वृ० प० ३१९)

६४. पाड़ी लूटी अवगणी, ध्वजा पताका जास।
कष्ट-पतित प्राण देखनै, गया दिशो दिशि न्हास।।

६४ विवडियचिंध-द्धयपडागे किच्छपाणगए दिसोदिसिं पडिसेहित्था। (श० ७।१७८)
'किच्छपाणगए' त्ति कृच्छ्रगतप्राणान्—कष्टपतितप्राणानित्यर्थः। (वृ० प० ३१९)

६६. महाशिलाकंटक संग्राम म, वत्तमान [illegible]
अश्व तथा गज ते तिहा, सुभट सारथी तेह ॥

[illegible]
हत्थी वा जोहे वा सारही वा

६७. तृण करि वा काष्ठे करी, पत्र करी नै पेख।
अथवा जे कांकरै करी, हणैं वैरी नै देख ॥

६७. तणेण वा, कट्ठेण वा, पत्तेण वा, सक्कराए वा, अभिहम्मति ।

६८. ते सहु जाणे एहवूं, महाशिला करि सोय।
इहां हणाणा म्हे सही, तिण अर्थे इम जोय ॥

६८ सव्वे से जाणेइ महासिलाए अहं अभिहए। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—महासिलाकटए सगामे । (श० ७।१७६)

६९. महाशिलाकटक संग्राम मे, प्रभु! किता मनुष्य नी घात ?
जिन कहे चोरासी लख तणी, तेह हणाणा विख्यात ॥

६९ महासिलाकंटए णं भंते! संगामे वट्टमाणे कति जणसयसाहस्सीओ वहियाओ ?
गोयमा! चउरासीइं जणसयसाहस्सीओ वहियाओ। (श० ७।१८०)

७०. हे भगवंत ! मनुष्य तिके, शीलव्रत करी रहीत।
जाव पचक्खाण पोसा रहित, वलि मन तसु कोप सहीत ॥

७१. शरीर विषे पिण सर्वथा, दीसतो कोप विकार।
उपशम रहित युद्धे मरी, ऊपना किण गती मझार ?

७० ते णं भंते! मणुया निस्सीला निग्गुणा निम्मेरा निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा रुट्ठा

७१ परिकुविया समरवहिया अणुवसंता कालमासे कालं किच्चा कहिं गया ?
कहिं उववण्णा ?

७२. जिन कहै बहुलपणै करी, नरक तिर्यंच मझार।
ऊपना दुष्ट कर्म करी, गया जमारो हार ॥

७२ गोयमा! उस्सण्णं नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववण्णा। (श० ७।१८१)

७३. देश अक गुण्यासी तणो, एकसौ चोवीसमी ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल ॥

## ढाल : १२५

### दूहा

१. जाण्यो ए अरिहंत जिन, स्मृत ए जिन नै ताम।
विशेष करि जाण्यो प्रभु, रथ-मूसल संग्राम ॥

१. नायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया—रहमुसले सगामे ।

२. हे भदंत! रथ-मूसले, संग्रामे वर्त्तमान।
कुण जीतो कुण हारियो ? भाखै तव भगवान ॥

२ रहमुसले णं भंते! सगामे वट्टमाणे के जइत्था ? के पराजइत्था ?

३. वज्री ते सौधर्म इंद, कोणिक विदेहज पूत।
चमर असुर नो इंद्र ते, ए जीता युध जूत ॥

३. गोयमा! वज्जी, विदेहपुत्ते, चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया जइत्था,

४. नव मल्लकी नव लेच्छकी, अष्टादश ए राय।
रथ-मूसल संग्राम में, ए हार्‌या अधिकाय ॥

४. नव मल्लई, नव लेच्छई पराजइत्था। (श० ७।१८२)

*कोणिक आवियो हो ॥ (ध्रुपदं)

५ कोणिक नृप तिण अवसरे, रथ-मूसल संग्राम।
सज्ज थयो जाणी करी, चढ़ियो देइ दमाम ॥

५ तए णं से कूणिए राया रहमुसलं संगामं उवट्ठियं जाणित्ता

*लय : राघव आवियो हो

६. जिम महाशिलाकंटक कह्यो, तिमहिज शेष कहाय।
णवरं इतलो विशेष छै, भूतानद गजराय॥

६. सेस जहा महासिलाकंटए नवर भूयाणदे हत्थिराया,

७. तेह गजेद्र प्रते चढी, जाव जिहां लग जाण।
रथमूसल संग्राम में, आयो ऊजम आण॥

७. जाव रहमुसल सगाम ओयाए।

८. रथमूसल सग्राम नै, आगल शक्र देविंद।
इम तिमहिज यावत रहै, सूत्रे एम कथिंद॥

८. पुरओ य से सक्के देविंदे देवराया एवं तहेव जाव चिट्ठइ। (स० पा०)

९ ए वचने करि जाणियै, पूरववत पहिछाण।
अभेद्य कवच माडी रह्यो, वडे टवे पिण जाण।

१०. पूठ पाछै चमरे रच्यो, लोहमय मोटो एक।
तापस-भाजन वस नो, तास आकार विशेख॥

१०. मग्गओ य से चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया एगं मह आयस किढिणपडिरूवग
'मग्गओ' त्ति पृष्ठत. 'आयस' ति लोहमय 'किढिण-पडिरूवग' ति किठिन—वशमयस्तापससम्बन्धी भाजन-विशेषस्तत्प्रतिरूपक—तदाकार वस्तु। (वृ० प० ३२२)

११. ते विकुर्वी नै रहै, करै तीनू इद्र संग्राम।
देविंद मणुयिद दीपता, असुर-इंद वलि आम॥

११. विउव्वित्ता ण चिट्ठइ। एव खलु तओ इदा सगाम सगामेति, त जहा—देविंदे य, मणुइदे य, असुरिंदे य।

१२. इक गज करिनै पिण तिको, समर्थ कोणिक राय।
जीपवा वेर्‍या भणी, शेप तिमज कहिवाय॥

१२ एगहत्थिणा वि ण पभू कूणिए राया जइत्तए तहेव जाव दिसोदिसिं (स० पा०)।
(श० ७।१८३-१८६)

१३. कोणिक नृप तिण अवसरे, रथमूसल सग्राम।
प्रवल युद्ध करतो छतो, कोप करीनैं ताम॥

१३ तए ण से कूणिए राया रहमुसलं सगाम सगामेमाणे

१४. नव मल्लकी नव लेच्छकी, सामत राय अठार।
कासी कोसल तणा धणी, दीधो तास प्रहार॥

१४ नव मल्लई, नव लेच्छई—कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो हय-

१५. मान मथ्यो दहि नी परै, वीरा प्रवर पिछाण।
घात घणां सुभटां तणी, परभव पूगा जाण॥

१५. महिय-पवरवीर-घाइय-

१६. ध्वजा पताका जेहना, पाड़चा लूट्या तास।
प्राणे पड़ी अति आपदा, गया दिशो दिशि न्हास॥

१६ विवडियचिंध-द्धयपडागे किच्छपाणगए दिसोदिसिं पडिसेहित्था। (श० ७।१८७)

१७. जीत्यो कोणिक राजवी, हार्‍या अठारै राय।
दिशो दिशि न्हासी गया, कारी न लागी काय॥

१८. हार हाथी नै कारणै, वहु जन नो घमसाण।
कोणिक निज नाना तणी, कांय न राखी काण॥

१९. चेड़े एकीके शर हण्या, कालादि दश कुमार।
निरावलिया[1] माहे कह्यो, तेहनो वहु विस्तार॥

१९ तए ण से चेडए राया..........कूडाहच्च जीवियाओ ववरोवेइ। (निरया० १।१।१४०)

२० हार हाथी तो ज्याही रह्या, हाडे पड़ियो वैर।
कोणिक नृप तिण अवसरे, इंद्र वोलाया खैर॥

२१. महाशिलाकंटक कियो, पहिलो जे युद्ध ताय।
लाख चोरासी मनुष्य मुआ, जीत्यो कोणिक राय॥

२२. रथमूसल ए दूसरो, दूजा युद्ध रै मांय।
जीतो कोणिक राजियो, हार्‍या अठारै राय॥

1 सू० १।२-१०।१४७,१४८

इक रथ अश्व रहीत पिण, सारथि सुभट रहीत।

२५. समुसल ते मूसल सहित, मोटो जन क्षय नाश।।
वध करै वहु जन तणो, मर्दन चूरण तास।

२६. लोक तणो संहार अतिहि, कर्दम रुधिर करेह।
सर्व थकी चिहुं दिशि विषे, दोड़ंतो रथ जेह।।

२७. तिण अर्थे करि गोयमा, म्है इम आख्यो ताम।
रथमूसल संग्राम नो, ए गुणनिप्पन नाम।।

२८. रथमूसल संग्राम मे प्रभु ! मनुष्य मुआ के लाख ?
जिन कहै छन्नू लख मूंआ, समय वचन वर साख।।

२९. व्रत रहित जे मानवो प्रभु ! जाव काल करि ताय।
किहा गया किहां ऊपना ? हिव भाखै जिनराय।।

३०. इक मछली री कूख मे, दस हजार नर देख।
ऊपजिया कर्मां वसै, अशुभ जोग सू पेख।।

३१. इक देवलोके ऊपनो, सुकुल मनुष्य भव एक।
शेष नरक तिर्यंच में, वहुलपणे सुविशेख।।

३२. हे भगवंत ! किण कारणे, शक्र सुरिंद्र सुरराय।
चमर असुर-इंद वेहु थया, कोणिक नृपति सहाय।।

३३. जिन कहै शक्र सुरिंद्र सुरनृप, कोणिक जीव नो जोय।
मित्र हुंतो भव पाछिले, कार्त्तिक भव अवलोय।।

३४. चमर असुर-इंद असुर-राजा पूरण तापस जीव।
कोणिक नो पर्यायमित्रि, तापसपणां नो अतीव।।

३५. इम निश्चै करि गोयमा ! शक्र चमर विहु इंद।
स्हाज दियो कोणिक भणी, ए मोह राग कथिंद।।

३६. देश अक गुण्यासी तणो, इकसौ पचीसमी ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' संपति न्हाल।।

असारहिए, अणारोहए,

२५ समुसले महया जणक्खय, जणवह, जणप्पमद्द,
'महताजणक्खय' ति महाजनविनाश...... 'जणपमद्द' ति लोकचूर्णनम्। (वृ० प० ३२२)

२६ जणसंवट्टकप्प रुहिरकद्दम करेमाणे सव्वओ समंता परिधावित्था।
जनसवर्त्त इव लोकसंहार इव। (वृ० प० ३२२)

२७. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—रहमुसले संगामे। (श० ७।१८८)

२८. रहमुसले ण भंते ! संगामे वट्टमाणे कति जणसय-साहस्सिओ वहियाओ ?
गोयमा ! छण्णउतिं जणसयसाहस्सीओ वहियाओ। (श० ७।१८९)

२९ ते ण भंते ! मणुया निस्सीला....काल किच्चा कहिं गया ? कहिं उववन्ना ?

३०. गोयमा ! तत्थ णं दससाहस्सीओ एगाए मच्छियाए कुच्छिसि उववन्नाओ।

३१. एगे देवलोगेसु उववन्ने। एगे सुकुले पच्चायाए। अवसेसा उस्सण्ण नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववन्ना। (श० ७।१९०)

३२ कम्हा ण भंते ! सक्के देविंदे देवराया, चमरे य असुरिंदे असुरकुमारराया कूणियस्स रण्णो साहेज्जं दलइत्था ?

३३ गोयमा ! सक्के देविंदे देवराया पुव्वसगतिए,
"पुव्वसंगइए" त्ति कार्त्तिकश्रेष्ठ्यवस्थाया शक्रस्य कूणिकजीवो मित्रमभवत्। (वृ० प० ३२२)

३४. चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया परियायसंगतिए।
परियायसगइए' त्ति पूरणतापसावस्थायां चमरस्यासौ तापसपर्यायवर्त्ती मित्रमासीदिति। (वृ० प० ३२२)

३५ एव खलु गोयमा ! सक्के देविंदे देवराया, चमरे य असुरिंदे असुरकुमारराया कूणियस्स रण्णो साहेज्जं दलइत्था। (श० ७।१९१)

## ढाल : १२६

### दूहा

१. हे भदत ! भव अत प्रभु ! बहु जन माहोमाहि।
इम कहै यावत इह विधे, करै परूपणा ताहि॥
२ इम निश्चै करि वहु मनुष्य, लघु मोटा सग्राम।
तेह विषे सम्मुख थई, जूझै सूरा ताम॥
३. शस्त्रे तेह हण्या छता, काल मास करि काल।
अन्य एक देवलोक मे, उपजै तेह विशाल॥

१ वहुजणे ण भते ! अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेइ—
२ एव खलु वहवे मणुस्सा अण्णयरेसु उच्चावएसु सगामेसु अभिमुहा चेव
३ पहया समाणा कालमासे काल किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति। (श० ७।१९२)

४. ते किम ए भगवंत ! इम ? जिन कहै माहोमाय।
बहु जन भाखै वात ए, ते मिथ्या कहिवाय॥

४. से कहमेय भते ! एव ?
गोयमा ! जण्ण से वहुजणे अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव····
जे ते एवमाहंसु मिच्छ ते एवमाहसु।

५. हूं पिण गोतम ! इम कहूं, जाव परूपूं एम।
इम निश्चै करि गोयमा ! साभलजे धर प्रेम॥

५ अह पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—
एव खलु गोयमा !

*जिन भाखै सुण गोयमा ! सुगणा। (ध्रुपद)

६. तिण काले नै तिण समै सुगणा, गोयमजी ! हो नगरी विशाला नाम।
हुती अति रलियामणी सुगणा, गोयम जी ! हो तसु वर्णक वहु ताम॥

६. तेण कालेण तेण समएण वेसाली नाम नगरी होत्था—वण्णओ।

७. तिण विशाला नगरी विषे, वरुण इसो तसु नाम।
नाग तणो ए पोतरो, तेह वसै तिण ठाम॥
८. ते वरुण वडो ऋद्धिवत छै, जावत अपरिभूत।
धन करि गज सकै नही, श्रावक छै शुभ सूत॥
९. जीव अजीव नै जाणिया, जाव श्रमण निर्ग्रंथ।
असणादिक प्रतिलाभतो, श्रावक व्रत पालत॥
१०. वेले वेले पारणो, अतर-रहित इक धार।
तप करि आतम भावतो, विचरै छै तिणवार॥
११. वरुण नागनत्तुओ तदा, एकदा ते किणवार।
राजा नी आज्ञा करी, रायाभिओगेण धार॥
१२. गण समुदाय ते न्यात नी, आज्ञा करी तिणवार।
वलवत नै जोगे करी, युद्ध भणी हुओ त्यार।
१३. रथमूसल सग्राम मे, नृप नी आज्ञा पाय।
तिण अवसर छठ भक्त नो, अट्ठम दीधो ठाय॥

७ तत्थ ण वेसालीए नगरीए वरुणे नाम नागनत्तुए परिवसइ—
८ अड्ढे जाव अपरिभूए समणोवासए,
९ अभिगयजीवाजीवे जाव समणे निग्गथे फासु-एसणिज्जेण असण-पाण' ''पडिलाभेमाणे।
१० छट्ठछट्ठेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेणं अप्पाण भावेमाणे विहरति। (श० ७।१९३)
११ तए ण से वरुणे नागनत्तुए अण्णया कयाइ रायाभिओगेण,
१२ गणाभिओगेण, वलाभिओगेण
१३ रहमुसले सगामे आणत्ते समाणे छट्ठभत्तिए अट्ठमभत्त अणुवट्टेति,

*लय : तपसी मे गुण अति घणां

रथ सामग्री संकलन करो, सज क रन तुम आण ॥

**सोरठा**

१६. जाव शब्द अवदात, पाठ तिके वाचनांतरे ।
दीसै छै साख्यात, वृत्तिकार इहविध कही ॥

१७. *हय गय रथ यावत सझी, आज्ञा म्हारी एह ।
पाछी सूंपो आणनै, कारज सर्व करेह ॥

१८. कोटुंविक तिण अवसरे, वरुण तणो तिणवार ।
जाव विनय कर जोड़नै, वचन कियो अंगीकार ॥

१९. शीघ्र करे सझै रथ भणी, छत्र ध्वजा करि सहीत ।
जावत स्थापै आणनै, प्रवर रथ सुप्रतीत ॥

२०. †इहां जाव शब्दे पाठ छै ए, घंट सहित वखाणियै ।
पताका मोटी ध्वजा, तिण सहित रथ पहिछाणियै ॥

२१. वलि प्रवर तोरण तिण करी, जे सहित रथ शोभावियै ।
रव नदिघोप सहीत द्वादश, तूर्यध्वनि जन चावियै ॥

२२. लघु घटिका तेणे करी, जे सहित ही सुंदर कियो ।
वर हेमजाले करी रथ पर्यंत चिहुं दिशि वींटियो ॥

---

*लय : तपसी मे गुण अति घणां
†लय : पूज मोटा भांजै टोटा

[illegible]

(वृ० प० ३२२)

१७. हय-गय-रह-पवर जाव [स० पा०] सण्णाहेत्ता मम एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह । (श० ७।१९४)

१८ तए णं ते कोडुवियपुरिसा जाव पडिसुणेत्ता ।

१९ खिप्पामेव सच्छत्त सज्झय जाव चाउग्घंट आसरह जुत्तामेव उवट्ठावेंति,

२० यावत्करणादिद दृश्य—सघंट सपडाग (वृ० प० ३२२)

२१ सतोरणवर सणदिघोस (वृ० प० ३२२)
भंभा मउगमद्दलकडव झल्लरि हुडुक्क कंसालो ।
"काहलतिलिमावंसो संखो पणवो य वारसमो"[1] ।

२२ 'सकिंकिणीहेमजालपेरंतपरिक्खित्तं' सकिङ्किणीकेन—क्षुद्रघण्टिकायुक्तेन हेमजालेन पर्यन्तेपु परिक्षिप्तो य सः । (वृ० प० ३२२)

---

१. जयाचार्य ने प्रस्तुत ढाल की २१वी गाथा मे वारह प्रकार की वाद्य ध्वनि का संकेत देकर नीचे एक गाथा उद्धृत की है । किन्तु वह किस ग्रन्थ से ली गई है, इस सम्बन्ध मे कोई निर्देश नही किया । भगवती के इस शतक की वृत्ति मे उसका कोई उल्लेख नही है । नौवें शतक की टीका पत्र ४७६ मे कुछ वाद्यो का उल्लेख है, पर उनका इस गाथा के साथ पूरा मेल नही होता है । वृहत्कल्पभाष्य की वृत्ति मे वारह प्रकार के वाद्यो का उल्लेख है । किन्तु जयाचार्य द्वारा उल्लिखित गाथा मे और उस गाथा मे थोड़ा अन्तर है । इसलिए हमने मूल गाथा को 'जोड' की गाथा के सामने उद्धृत किया है । वृहत्कल्प-वृत्ति मे प्राप्त गाथा इस प्रकार है—
भंभा मुकुंदमद्दल, कडवझल्लरिहुडुक्ककंसाला ।
काहलतलिमावंसो, पणवो संखो य बारसमो ॥
(सनिर्युक्तिभाष्यवृत्तिके वृहत्कल्पसूत्रे पृ० १२)

२३. गिरि हेमवत ना नीपना, जे चित्र विविध प्रकार नां।
कठ तिनिश नामै तरु तणा ते, कनक खचित रथ तना ॥

२३. 'हेमवयचित्ततेणिसकणगनिउत्तदारुयागं' हैमवतानि—हिमवद्गिरिजातानि चित्राणि—विचित्राणि तैनिशानि—तिनिशाभिधानवृक्षसम्बन्धीनि स हिमवतीति तद्ग्रहण कनकनियुक्तानि—नियुक्तकनकानि दारूणि यत्र सः। (वृ० प० ३२२)

२४. अति भला छै जे चक्र जेहनै, मडला वृत वाटला।
धुरा पिण रमणीक अति, शोभायमानज झिलमिला ॥

२४ सविद्धचक्कमडलधुराग' सुष्ठु सविद्धे चक्रे यत्र मडला च—वृत्ता धूर्यत्र स। (वृ० प० ३२२)

२५. अय जेह कालायस विशेपज, तिण करी कीधू भलू।
नेमी तिका जे चक्र नु वर, भाग ऊपरलू झिलू ॥

२६. तिण अय करी जे चक्र धारा, वाधवा नी वर क्रिया।
रथ चक्र नु जे अग्र भागज, नेमि ते दृढ़ता लिया ॥

२५,२६ 'कालायससुकयनेमिजतकम्म' कालायसेन—लोहविशेपेण सुष्ठु कृत नेमे.—चक्रमण्डलमालाया यन्त्रकर्म—वन्धनक्रिया यत्र स.। (वृ० प० ३२२)

२७. वलि जातिवतज वर तुरगम, जोतर्‍या ते रथ तणै।
नर चतुर अवसर जाण सारथि, सग्रह्या सयतपणै ॥

२७ 'आइन्नवरतुरयसुसपउत्त' जात्यप्रधानाश्वैः सुष्ठु सप्रयुक्तमित्यर्थ, 'कुशलनरच्छेयसारहिसुसपग्गहिय।' (वृ० प० ३२२)

२८. शर घालवा ना भातड़ा, बत्तीस करि मडित वही।
इक एक भातड विषे, सौ सौ वाण छै अति प्रवर ही ॥

२८ 'सरसयवत्तीसयतोणपरिमडिय।' (वृ० प० ३२२)

२९. कवचे करीनै वली जेह, वतस शेखर सहित ही।
शिरत्राण शिररक्षा सुकारक, तिण करीनै युक्त ही ॥

२९. 'सकंकडवडेसग' सह कङ्कटै—कवचैरवतसैश्च—शेखरकै. शिरस्त्राणभूतैर्य स.। (वृ० प० ३२२)

३० फुन धनुप शर करिके सहित, हथियार खड्गादिक घणा।
ढालादि करि सभृत सुसज्जित सुभट-रथ रलियामणा ॥

३० 'सचावसरपहरणावरणभरियजोहजुद्धसज्ज' (वृ० प० ३२२)

३१. चिहुं-घट हय रथ जोतरी, ए जाव शब्द विषे कृता।
वलि वाचनातर मे सकल साख्यात पाठज दीसता ॥

३१ 'चाउग्घट आसरह जुत्तामेव' त्ति वाचनान्तरे तु साक्षादेवेद दृश्यते। (वृ० प० ३२२)

३२ *हय गय रथ जावत सभी, सेवक पुरुष सुजाण।
वरुण नागनतुओ जिहा, जाव आज्ञा सू पै आण ॥

३२ हय-गय-रह जाव सण्णाहेति, [स० पा०] सण्णाहेत्ता जेणेव वरुणे नागनत्तुए''''जाव तमाणत्तिय पच्चप्पिणंति। (श० ७।१९५)

३३. वरुण नागणतुओ तदा, मज्जणघर मे आय ॥
स्नान कियो कोणिक नी परै, जाव प्रायश्चित ताय।

३३ तए ण से वरुणे नागनत्तुए जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छति, जहा कूणिओ जाव (सं० पा०) पायच्छित्ते।

३४. सर्व अलंकारे करी, कियो विभूपित अग।
सन्नद्ध वद्ध थयो तदा, वगतर टोप सुचंग ॥

३४ सव्वालकारविभूसिए सण्णद्ध-वद्धवम्मियकवए

३५. कोरट नामा वृक्ष नां, फूला री माल सहीत।
एहवै छत्र धरीजते, पेखत पामै प्रीत ॥

३५ सकोरेटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेणं,

३६. वहु गणपति सामत ते, जाव दूत सधिपाल।
तेह संघाते परिवर्‍यो, शोभित वरुण विशाल ॥

३६ अणेगगणनायग जाव (स० पा०) दूय-सधिपालसद्धि सपरिवुडे

३७. मज्जणघर सू नीकल्यो, जिहा वाहिरली पेख।
उवट्ठाणशाला ओपती, दीवानखानो ए देख ॥

३७. मज्जणघराओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला,

---

*लय : तपसी मे गुण अति घणा

३९. हय गय रथ जाव परिवर्यो, मोटा सुभट विख्यात।
भाट प्रमुख जाव वीटियो, युद्ध करण नै जात॥

३९. हय-गय-रह जाव (स० पा०) सपरिवुडे, महयाभड-चडगरविंदपरिक्खित्ते

४०. जिहां रथमूसल सग्राम छै, आयो तिहा चलाय।
अभिग्रह धार्यो एहवो, साभलज्यो चित ल्याय॥

४० जेणेव रहमुसले सगामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहमुसल सगाम ओयाए। (श० ७।१९६)
तए ण से वरुणे नागनत्तुए रहमुसल सगाम ओयाए समाणे अयमेयारूव अभिग्गहं अभिगेण्हइ—

४१ रथमूसल सग्राम जे, करता थकाज मोय।
प्रथम हणै जे पुरुप नै, हणवो कल्पै सोय।

४१ कप्पति मे रहमुसल सगाम संगामेमाणस्स जे पुव्वि पहणइ से पडिहणित्तए,

४२. अन्य पुरुप नै मारिवा, मुझ नहिं कल्पै ताम।
एहवो अभिग्रह आदरी, करै रथमूसल सग्राम।

४२ अवसेसे नो कप्पतीति; अयमेयारूव अभिग्गह अभिगेण्हइ,अभिगेण्हेत्ता रहमुसलं सगाम सगामेति।
(श० ७।१९७)

४३. वरुण सग्राम करता छता, इक नर आप सरीस।
त्वचा करी पिण सारिखो, सरिखो वय करि दीस॥

४३ तए ण तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स रहमुसल सगाम सगामेमाणस्स एगे पुरिसे सरिसए सरित्तए सरिव्वए

४४. भड मत्त उपकरण सारिखा, भड मत्त—शस्त्र कोशादि।
उपकरण ककट[1] आदि दे, तेह सरीखा लाधि॥

४४ सरिसभडमत्तोवगरणे
सदृशी भाण्डमात्रा—प्रहरणकोशादिरूपा उपकरण च—कङ्कटादिक यस्य स। (वृ० प० ३२२)

४५. ते नर रथ करि वरुण नो, रथ प्रति साहमो तेह।
आयो शीघ्र उतावलो, वरुण नै एम वदेह।

४५ रहेण पडिरह हव्वमागए। (श० ७।१९८)
तएण से पुरिसे वरुण नागनत्तुय एव वदासी—

४६. अहो वरुण! नागणत्तुया! मुझ हण शस्त्रे मार।
इण विध ते नर वरुण नै, वोल्यो दूजी वार॥

४६ पहण भो वरुणा! नागनत्तुया! पहण भो वरुणा! नागनत्तुया! (श० ७।१९९)

४७. वरुण नागणत्तुओ तदा, ते नर प्रति कहै एम।
साभल हे देवानुप्रिया! म्है धार्यो छै नेम॥

४८. पहिला मोनै नहि हणै, तेहनै हणवो सोय।
मुझनै तो कल्पै नही, पहिला हण तूं मोय।

४७,४८ तए ण से वरुणे नागनत्तुए त पुरिस एव वदासी—
नो खलु मे कप्पइ देवाणुप्पिया! पुव्वि अहयस्स पहणित्तए, तुम चेव ण पुव्वि पहणाहि।
(श० ७।२००)

४९. तिण अवसर ते पुरुप ही, वरुण नागनत्तुयेह।
एम कह्यो आसुरुत्त ही, जाव मिसिमिसेमाणेह॥

४९. तए ण से पुरिसे वरुणेण नागनत्तुएण एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे (स० पा०)।

**सोरठा**

५०. आसुरुत्ते जाण, शीघ्र कोप ना उदय थी।
थयो विमूढ अयाण, स्फुरित कोप चिह्नोऽथवा॥

५०. 'आसुरुत्ते' त्ति आशु—शीघ्र रुप्त—कोपोदयाद् विमूढ',
स्फुरितकोपलिङ्गो वा। (वृ० प० ३२२)

५१. जाव शब्द मे एह, रुट्ठे कुविए चडिक्किए।
रुट्ठे रुष्ट कहेह, उदय थयो छै क्रोध तसु॥

५१ यावत्करणादिद दृश्य 'रुट्ठे कुविए चडिक्किए' त्ति तत्र 'रुष्ट' उदितक्रोध.। (वृ० प० ३२२)

---

1. कवच

५२. कुविए कुपित अत्यंत, बढतो क्रोधोदय तसु ।
चंडिक्किय फुन मत, रोद्र रूप है प्रगट ही ॥

५३. वली मिसिमिसेमाण, क्रोध रूप अग्नी करी ।
दीप्यमान जिम जाण, रक्त वर्ण मुख जेहनु ॥
५४ वलि ए शब्दज पच, कह्या इहां एकार्थिका ।
अतिहि कोप विरच, ते प्रतिपादन अर्थ ही ॥

५५. *धनुष ग्रहै निज हाथ में, धनुष्य लेई ताम ।
उसु बाण प्रते ग्रहै, बाण ग्रही नें आम ॥
५६. 'ठाण ठाइ' नु अर्थ ए, ठाण पदन्यास विशेख ।
ठाइ कहिता करै तिहा, पदन्यास करीनै देख ॥

५७. आयत सामान्य थी ताणियो, तेहिज कर्ण लग ताण ।
एहवो बाण करी तदा, एम करीनै जाण ॥

५८. वरुण नागणत्तुया प्रतै, कीधो गाढ प्रहार ।
शस्त्र घात कीधे छते, आसुरुत्ते धार ॥

**यतनो**

५९. जाव मिसिमिसेमान, ग्रहै धनुष्य प्रति जान ।
वलि लीधो है हाथ मे बाण, कर्ण लगै बाण नें ताण ॥

६०. तेह पुरुष प्रतै तिणवार, गाढो दीधो एक प्रहार ।
तिण सूं विलंब रहित जिवार, जीव काया होय गया न्यार ॥
६१. जिम परवत नो कूट जाण, तिको पड़तो थको पहिछाण ।
काल विलंब करै नहिं जेह, तिम विलब रहित मार्‌यो तेह ॥

६२. *वरुण नागणत्तुओ तदा, लागा गाढ प्रहार ।
अत्थामे शक्ति-रहित थयो, सामान्य थी सुविचार ॥

६३. बल रहित ते शरीर नी, शक्ति रहित थयो ताम ।
वीर्य रहित ते मन तणी, शक्ति घटी तिण ठाम ॥

६४. पुरुपकार ते रह्यो नहि, पौरुप पुरुषाभिमान ।
कार्य निष्पन्नकारी तिको, पराक्रम घट्यो जान ॥

* लय : तपसी मे गुण अति घणां

५२ 'कुपितः' प्रवृद्धकोपोदय. 'चाण्डिकित.' सञ्जात-चाण्डिक्यः प्रकटितरौद्ररूप इत्यर्थ. ।
(वृ० प० ३२२)

५३. 'मिसिमिसीमाणे' त्ति क्रोधाग्निना दीप्यमान इव ।
(वृ० प० ३२२)

५४. एकार्थिका वैते शब्दा कोपप्रकर्षप्रतिपादनार्थमुक्ता ।
(वृ० प० ३२२,३२३)

५५. धणु परामुसइ, परामुसित्ता उसु परामुसइ, परामुसित्ता

५६. ठाण ठाति
'ठाण' ति पादन्यासविशेपलक्षण 'ठाति' त्ति करोति ।
(वृ० प० ३२३)

५७ आययकण्णायय उसु करेइ, करेत्ता
'आयय....' ति आयत· आकृष्टः सामान्येन स एव कर्णायत —आकर्णमाकृष्ट आयतकर्णायतस्तम्,
(वृ० प० ३२३)

५८. वरुणं नागनत्तुय गाढप्पहारी करेइ । (श० ७।२०१)
तए ण से वरुणे नागनत्तुए तेण पुरिसेण गाढप्प-हारीकए समाणे आसुरुत्ते

५९ जाव मिसिमिसेमाणे (स० पा०) धणु परामुसइ, परामुसित्ता उसु परामुसइ, परामुसित्ता आययकण्णा-यय उसु करेइ, करेत्ता

६० त पुरिस एगाहच्च कूडाहच्च जीवियाओ ववरोवेइ ।
(श० ७।२०२)

६१. कूटे इव तथाविधपापाणसपुटादौ कालविलम्वाभाव-साधर्म्यादाहत्या—आहनन यत्र तत् कूटाहत्यम् ।
(वृ० प० ३२३)

६२ तए ण से वरुणे नागनत्तुए तेणं पुरिसेणं गाढप्पहारी-कए समाणे अत्थामे
'अस्थामा' सामान्यतः शक्ति-विकल. ।
(वृ० प० ३२३)

६३ अबले अवीरिए
'अबले' त्ति शरीरशक्तिवर्जित. 'अवीरिए' त्ति मान-सशक्तिवर्जित· । (वृ० प० ३२३)

६४. अपुरिसक्कारपरक्कमे
पुरुपक्रिया पुरुपकारः—पुरुपाभिमान स एव निष्पादितस्वप्रयोजन. पराक्रमः । (वृ० प० ३२३)

६६. युद्ध थकी ते रथ प्रतै, तनखिण पाछो वाल ।
रथमूसल संग्राम थी, नीकलियो तिण काल ॥

६६. रह परावत्तेइ, परावत्तत्ता रहमुसलाओ संगामाओ पडिनिक्खमति ।

६७. एकांत मनुष्य-रहित जे, अंत कहिता भूमिभाग ।
तिहा जईने हय प्रते, चालता नी ग्रहे वाग ॥

६७. एगतमत अवक्कमइ, अवक्कमित्ता तुरए निगिण्हइ ।

६८. रथ थापी हेठो ऊतरी, मूकै ताम तुरग ।
सीख दीधी घोड़ा भणी, अधिक वैराग उमग ॥

६८. रह ठवेइ, ठवेत्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता तुरए मोएइ, मोएत्ता तुरए विसज्जेइ ।

६९. दर्भ-संथारो सथरी, ऊपर बैठो आप ।
पूरब साहमो मुख करी, पल्यंक आसन· स्थाप ॥

६९ दब्भसथारग सथरइ, सथरित्ता दब्भसथारग दुरूहइ, दुरूहित्ता पुरत्थाभिमुहे सपलियंकनिसण्णे

७०. कर तल जावत इम करी, तिहा बोलै इह विध वाय ।
नमोत्थुणं कियो सिद्ध नें, धुर अरिहंत गुण पाय ॥

७०. करयल जाव कट्टु (सं० पा०) एवं वयासी—नमोत्थु ण अरहताण भगवंताण जाव सिद्धिगतिनामधेय ठाण सपत्ताण,

७१ नमस्कार थावो माहरो, भगवत श्री महावीर ।
धर्म नी आदि करण धुरा, शासणनाथ सधीर ॥

७१ नमोत्थु ण समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स

७२. यावत मुक्ति जावा तणां, वांछक नमु अभिलाख ।
धर्म-आचारज माहरा धर्मोपदेशक साख ॥

७२ जाव सिद्धिगतिनामधेय ठाण संपाविउकामस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स,

७३. समवसरण नें विषे रह्या, भगवत श्री महावीर ।
ते प्रति हूं वांदू अछू, इहा रह्योज सधीर ॥

७३. वदामि ण भगवत तत्थगय इहगए,

७४ देख रह्या मुझनै प्रभु, तिहां रह्या थका स्वाम ।
यावत वांदै इम कही, नमस्कार शिर नाम ॥

७४ पासउ मे से भगव तत्थगए इहगय ति कट्टु वदइ नमसइ,

७५. नमस्कार वदणा करी, बोलै इह विध सच ।
पहिला म्हे वीर प्रभु कन्है, अणुव्रत धार्‌या पंच ॥

७५ वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—पुव्वि पि ण मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, एव जाव थूलए परिग्गहे पच्चक्खाए जावज्जीवाए

७६. हिवडा पिण महावीर पे, सर्वथा प्राणातिपात ।
जावजीव पचखाण छै, खधक जिम आख्यात ॥

७६. इयाणि पि ण अहं तस्सेव भगवओ महावीरस्स अतिए सव्व पाणाइवाय पच्चक्खामि जावज्जीवाए एव जहा खदओ

७७. यावत एह शरीर नें, छेहलै उस्सास-निसास ।
वोसिरावस्यूं इम कही, मूकै सन्नाहपट्ट तास ॥

७७ जाव (सं० पा०) एयं पि ण चरिमेहिं ऊसास-नीसासेहिं वोसिरिस्सामि त्ति कट्टु सण्णाहपट्ट मुयइ,

७८. द्रव्य भाव सल्ल उद्धरी, आलोई पडिकमी न्हाल ।
पवर समाधिज पामियो, अनुक्रम कीधो काल ॥

७८ सल्लुद्धरण करेइ, करेत्ता आलोइय-पडिक्कते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए । (श० ७।२०३)

७९. तिण अवसर ते वरुण नों, वल्लभ इक अभिराम ।
बाल-मित्र पिण जूझतो, रथमूसल सग्राम ॥

७९. तए णं तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स एगे पियबालवयसए रहमुसलं संगामं सगामेमाणे

८०. एक पुरुष वरुण-मित्र नें, दीधो गाढ प्रहार ।
जावत आतम धारिवा, समर्थ नहीं तिवार ॥

८० एगेण पुरिसेण गाढप्पहारीकए समाणे अत्थामे जाव (स० पा०) अधारणिज्जमिति कट्टु

८१. वरुण भणी संग्राम थी, पाछो निकलतो देख।
वरुण तणी पर अश्व नैं, सीख दीधी सुविशेख ॥

८१. वरुणं नागनत्तुयं रहमुसलाओ संगामाओ पडिनिक्खममाणं पासइ, पासित्ता तुरए निगिण्हइ, निगिण्हित्ता जहा वरुणे जाव तुरए विसज्जेति।

८२. वरुण कियो दर्भ-साथरो, तेहवो इण पिण कीध।
ते ऊपर बेसी करी, पूरव साहमो प्रसीध ॥

८२ पडसथारग दुरुहइ, दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे

८३. यावत बे कर जोडनैं, बोलै एहवी वाय।
मुझ वल्लभ बाल-मित्र नैं, वरुण तणे जे ताय ॥

८३ जाव (स० पा०) अजलि कट्टु एव वयासी—जाइ ण भते ! मम पियवालवयंसस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स

८४ शीलव्रत गुणव्रत जे, सामायक पच्चखाण।
पोसह उपवास छै तिके, ते म्हारै पिण जाण ॥

८४ सीलाइ वयाइ गुणाइ वेरमणाइ पच्चक्खाण-पोसहोववासाइ ताइ ण 'मम पि' भवतु।

८५. इम कहि सन्नाहपट्ट नैं, मूकै छोड़ै न्हाल।
सल्य वाणादिक काढनैं, अनुक्रम कीधो काल ॥

८५. इति कट्टु सण्णाहपट्ट मुयइ, मुइत्ता सल्लुद्धरणं करेइ, करेत्ता आणुपुव्वीए कालगए।
(श० ७।२०४)

८६. काल गयो जाणी वरुण नैं, व्यतर देव नजीक।
जेह हुंता ते तिण समै, महिमा कीधी सधीक ॥

८७ वृष्टि सुगंध उदक तणी, पच वर्ण पहिछाण।
फूल तणी वर्षा करी, ऊजम अधिको आण ॥

८६,८७ तए ण त वरुण नागनत्तुय कालगय जाणित्ता अहासन्निहिएहि वाणमतरेहि देवेहि दिव्वे सुरभिगंधोदगवासे वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे निवातिए,

८८. वलि ते देव सबधिया, गीत गायन मात्र संवाद।
गधर्व ते मादल तणी, ध्वनि सहित करै निनाद ॥

८८ दिव्वे य गीय-गधव्वनिनादे कए यावि होत्था।
(श० ७।२०५)

गीतं गानमात्रं गन्धर्वं—तदेव मुरजादिध्वनिसनाथ तल्लक्षणो निनादः—शब्दो गीतगन्धर्वनिनादः।
(वृ० प० ३२३)

८९. तिण अवसर ते वरुण नैं, प्रधान देव नी ऋद्धि।
दिव्य देव नी काति नैं, सुर अनुभाग समृद्धि ॥

९०. सुर कृत महिमा नैं कही, सुर अनुभाग प्रधान।
ते निसुणी देखी वदै, लोक मांहोमांहि वान ॥

८९,९० तए णं तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स तं दिव्वं देविड्ढि दिव्वं देवज्जुति दिव्वं देवाणुभाग सुणित्ता य पासित्ता य बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेइ—

९१. इम निश्चै देवानुप्रिया ! नर बहु जूंझै ताम।
ते सुरलोके ऊपजे, देव हुवै अभिराम ॥

९१ एव खलु देवाणुप्पिया ! बहवे मणुस्सा जाव (स० पा०) देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति।
(श० ७।२०६)

९२. वरुण प्रभुजी ! किहा गयो ? काल मास करि काल।
जिन कहै सुधर्म सुरपणै, ऊपनो ते सुविशाल ॥

९२ वरुणे ण भते ! नागनत्तुए कालमासे काल किच्चा कहिं गए ? कहिं उववन्ने ?
गोयमा ! सोहम्मे कप्पे....उववन्ने।

९३. अरुणाभ नाम विमान में, केइयक सुर नी सार।
च्यार पल्योपम स्थिति कही, वरुण तणी पल्य च्यार ॥

९३ तत्थ ण अत्थेगतियाण देवाण चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता। तत्थ ण वरुणस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता। (श० ७।२०७)

९४. वरुण देव चवनैं किहां उपजस्यै भगवंत !
जिन कहै महाविदेह मे, करस्यै सर्व दुख अत ॥

९४ से ण भते ! वरुणे देवे ताओ देवलोगाओ ....... चय चइत्ता .... कहिं उववज्जिहिति ?
गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव (सं० पा०) अत करेहिति। (श० ७।२०८)

९६. ते प्रभु ! तिहा थी नीकली, अतर-रहित विचार ।
किहा जास्यै किण स्थानके, उपजस्यै जगतार ?

९६. से ण भते ! तओहिंतो अणतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?

९७. जिन कहै महाविदेह मे, सीझस्यै करि चित शत ।
जाव करस्यै अत दुख तणो, सेव भते ! सेव भत ॥

९७ गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अत काहिति । (श० ७।२१०)

सेव भते ! सेव भते ! त्ति । (श० ७।२११)

९८. अर्थ अक गुण्यासी तणो, इकसौ छवीसमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋपराय थी, 'जय-जश' हरप विशाल ॥

सप्तमशते नवमोद्देशकार्थः ॥७।९॥

## ढाल : १२७

### दूहा

१. नवम उदेशक नै विपे, परमत निरास पेख ।
दशमे पिण तेहिज हिवै, वरणवियै सुविशेख ॥

१. अनन्तरोद्देशके परमतनिरास उक्तो दशमेऽपि स एवोच्यते— (वृ० प० ३२३)

२. तिण काले नै तिण समय, नगर राजगृह नाम ।
गुणशिल चैत्यज जाव त्यां, पृथ्वी सिलपट्ट ताम ॥

२ तेण कालेण तेणं समएण रायगिहे नाम नगरे होत्था—वण्णओ ।
गुणसिलए चेइए—वण्णओ जाव पुढविसिलापट्टओ ।

३. तिण गुणसिल वर चैत्य थी, नहिं अति दूर नजीक ।
वसै वहू अन्यतीर्थिका, हिव तसु नाम कथीक ॥

३ तस्स ण गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामते वहवे अण्णउत्थिया परिवसति, त जहा—

४. कालोदाई धुर कह्यो, सेलोदाई सोय ।
सेवालोदाई सही, उदक नाम अवलोय ॥

४. कालोदाई, सेलोदाई, सेवालोदाई, उदए,

५. नामुदक नमुदक वली, अर्णपाल अन्नयुत्थ ।
सेलपाल सखपाल फुन, गाथापती सुहत्थ ॥

५ नामुदए, नम्मुदए, अण्णवालए, सेलवालए, सखवालए, सुहत्थीगाहावई । (श० ७।२१२)

६. [1]एक दिवस अन्यतीर्थी ताय, सहिय कहितां एकत्र मिलाय ।
समुपागत जूजुवा स्थान थी आय, सन्निविट्ठ कहितां वैठा छै ताय ॥

६. तए ण तेसिं अण्णउत्थियाणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाण समुवागयाण सण्णिविट्ठाणं
'समुवागयाण' ति स्थानान्तरेभ्य एकत्र स्थाने समागतानाम् 'सन्निविट्ठाण त्ति' उपविष्टानाम्, (वृ० प० ३२४)

७. सन्निपण्ण ते सुखे स्थित जेह, तेह सहू नै परस्पर एह ।
उपनो कथा तणो आलाप, निसुणो चित एकत्रित स्थाप ॥

७ सण्णिसण्णाण अयमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—
'सन्निसन्नाण' ति सगततया निपण्णाना सुखासीनानामिति यावत् । (वृ० प० ३२४)

[1] लय : इण पुर कंवल कोय न लेसी

८. श्रमण ज्ञातसुत इह विध संच, अस्तिकाय परूपै पंच ।
प्रथम कहै धर्मास्तिकाय, जाव आगासत्थिकाय¹ कहाय ॥

८ एव खलु समणे नायपुत्ते पंच अत्थिकाए पण्णवेति, त जहा—धम्मत्थिकाय जाव पोग्गलत्थिकाय ।

**सोरठा**

९. अस्ति तेह प्रदेश, तास राशि जे काय प्रति ।
अस्तिकाय कहेस, शब्द तणूं ए अर्थ है ॥

९. 'अत्थिकाए' त्ति प्रदेशराशीन् । (वृ० प० ३२४)

१०. *ज्ञातपुत्र वली कहै वाय, च्यार अजीव हुवै ते माय ।
धर्मास्ति अधर्मास्तिकाय, आगासत्थि पुद्गलास्ति ताय ॥

१० तत्थ ण समणे नायपुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अजीवकाए पण्णवेति, त जहा—धम्मत्थिकाय, अधम्मत्थिकाय, आगासत्थिकाय, पोग्गलत्थिकाय ।

**सोरठा**

११ एह अजीव विमास, तेह अचेतन जाणवा ।
काय कही तसु राश, अजीवकाय अहीजियै ॥

११ 'अजीवकाए' त्ति अजीवाश्च—ते अचेतना· कायाश्च—राशयोऽजीवकायास्तान् ।
(वृ० प० ३२४)

१२. *श्रमण ज्ञातसुत वलि कहै वाय, पांचा मे एक जीवास्तिकाय ।
अरूपीकाय परूपै जोग, छै ज्ञानादिक तसु उपयोग ॥

वा०—जीवै ते जोव, ज्ञानादि उपयोगवत । ते प्रधान काय ते जीवकाय । कोइक जीवास्तिकाय नै जडपणै करी अगीकार करै । तेहनो मत दूर करवा नै अर्थे ए जीव नै ज्ञानादि उपयोगवत कह्यो ।

१२ एग च ण समणे नायपुत्ते जीवत्थिकाय अरूविकाय जीवकाय पण्णवेति ।

वा०—जीवन जीवो—ज्ञानाद्युपयोगस्तत्प्रधान कायो जीवकायोऽतस्त, कैश्चिज्जीवास्तिकायो जडतयाऽभ्युपगम्यतेऽतस्तन्मतव्युदासायेदमुक्तमिति ।
(वृ० प० ३२५)

१३. श्रमण ज्ञातसुत वलि कहै वाय, अस्तिकाय पंच रै मांय ।
च्यार अरूपी अस्तिकाय, करै परूपण परिषद मांय ॥

१३. तत्थ ण समणे नायपुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अरूविकाए पण्णवेति, त जहा—

१४ धुर धर्मास्तिकाय पिछाण, अधर्मास्ति दूजी जाण ।
आकाशास्ति जीवास्तिकाय, तास अरूपी आखै वाय ॥

१४. धम्मत्थिकाय, अधम्मत्थिकाय आगासत्थिकाय, जीवत्थिकायं ।

१५. ज्ञातपुत्र वलि इम कहै वाय, अस्तिकाय पंच रै मांय ।
पोग्गलत्थिकाय एक अजीव, रूपीकाय परूपै अतीव ॥

१५ एगं च णं समणे नायपुत्ते पोग्गलत्थिकाय रूविकाय अजीवकायं पण्णवेति ।

१६ से अथ किम ए अस्तिकाय, मन्ये वितर्क अर्थे वाय ।
आख्या एह अचेतन आद, विभाग करि किम हुवै सवाद ॥

१६ से कहमेयं मण्णे एव ? (श० ७।२१३)
अथ कथमेतदस्तिकायवस्तु मन्य इति वितर्कार्थे 'एवम्' अमुना चेतनादिविभागेन भवतीति ।
(प० ३२५)

---

* लय : इण पुर बल कंकोय न लेसी

1. भगवती के सातवे शतक (सू० २१३) मे पाच अस्तिकाय का निरूपण है। वहा 'धम्मत्थिकाए जाव पोग्गलत्थिकाए' पाठ है। और उसके पाठातर मे पोग्गलत्थिकाए के स्थान पर छह प्रतियो मे आगासत्थिकाय पाठ है। जयाचार्य को प्राप्त प्रति मे पाठान्तर वाला पाठ रहा होगा, इसलिए उन्होने इस गीत की आठवी गाथा मे 'जोड' की रचना उसी क्रम से की है। इससे आगे उनतीसवी गाथा मे भी जोड का यही क्रम है। इन दोनो ही गाथाओ के सामने अगसुत्ताणि (भाग-२) का पाठ उद्धृत किया गया है। इसलिए आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के क्रम का व्यत्यय है।

१८. तिण काले तिण समय विचार, भगवत वीर तणो गणधार ।
अतेवासी ज्येष्ठ उदार, इन्द्रभूति नामे अणगार ॥

१९. गोतम गोत्रे बीजो नाम, इम जिम बीजे शतके ताम ।
प्रवर निर्ग्रंथ उदेशो पेख, पचमुदेश विषे गुण देख ॥

२०. जाव भिक्षाचरी अटन करंता, भातपाणी सपूर्ण लहता ।
राजगृह नगर थकी नीकलिया, जाव उतावल रहित संचरिया ॥

२१. मन ना चपलपणा थी रहीतं, असंभ्रात जावत सुध रीत ।
ईर्या शोधनकर्ता आप, स्थिर चित तन मन जयणा स्थाप ॥

२२. अन्यतीर्थी बैठा छै तेह, नहिं अति दूर नजीक न जेह ।
गोतम गमन करता देख, आपस मे वतलावै विशेख ॥

२३. अहो देवानुप्रिया ! अम्हे एह, अस्तिकाय नी कथा सुजेह ।
अनुकूल भावे कीधी तेह, प्रगट नही छै विशेपपणेह ॥

२४. ए अर्थ अविप्पकडा नां दोय, अविउप्पकडा पाठातर होय ।
कथा विशेप अजाणपणेह, आपे पूर्वे कीधी एह ॥

२५. अथवा विशेप थकी पहिछाण, प्रवलपणे करिनै वलि जाण ।
एह अर्थ नहिं प्रगट सुजोय, पाठातर ना अर्थ ए दोय ॥

२६. आपा सू दूर नजीक न जेह, गोतम गमन करै छै एह ।
श्रेय देवानुप्रिया ! ए अम्हनै, पूछवू एह अर्थ गोयम नै ॥

२७. आपस में इम कही तिवार, कीधो एह अर्थ अगीकार ।
गोतम भगवंत पासे आय, गोतम प्रति बोल्या इम वाय ॥

२८. इम निश्चै गोतम ! अवलोय, थारा धर्माचारज जोय ।
धर्म तणा उपदेशक ताय, श्रमण ज्ञातसुत इम कहिवाय ॥

२९. अस्तिकाय परूपै पच, धुर धर्मास्तिकाय विरच ।
जाव आगासत्थिकाय तं चेव, यावत रूपी काय कहेव ॥



१८ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महा-
वीरस्स जेट्ठे अतेवासी इदभूई नाम अणगारे

१९ गोयमे गोत्तेण एव जहा विनियसते नियंठुद्देसए[1]
(अगसु० भाग २ पृ० ३१० पा० टि० २)

२०. जाव भिक्खायरियाए अडमाणे अहापज्जत्त भत्त-पाण
पडिग्गाहित्ता रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमइ,
अतुरिय

२१. अचवलमसभत जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रिय
सोहेमाणे सोहेमाणे

२२ तेसि अण्णउत्थियाण अदूरसामतेण वीईवयति ।
(श० ७।२१५)

तए ण ते अण्णउत्थिया भगव गोयम अदूरसामतेण
वीईवयमाण पासति, पासित्ता अण्णमण्ण सद्दावेंति,
सद्दावेत्ता एव वयासी—

२३. एव खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह इमा कहा अविप्पकडा
इय कथा—एषाऽस्तिकायवक्तव्यताऽप्यानुकूल्येन
प्रकृता—प्रक्रान्ता, अथवा न विशेषेण प्रकटा अवि-
प्रकटा । (वृ० प० ३२५)

२४. 'अविउप्पकड' त्ति पाठान्तर तत्र अविद्वत्प्रकृता
(वृ० प० ३२५)

२५. अथवा न विशेषत उत्—प्राबल्यतश्च प्रकटा अव्यु-
त्प्रकटा । (वृ० प० ३२५)

२६. अय च णं गोयमे अम्ह अदूरसामतेण वीईवयइ, तं
सेय खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह गोयमं एयमट्ठ
पुच्छित्तए—

२७. इति कट्टु अण्णमण्णस्स अतिए एयमट्ठ पडिसुणति,
पडिसुणित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छति,
उवागच्छित्ता भगव गोयमं एव वयासी—

२८. एव खलु गोयमा ! तव धम्मायरिए धम्मोवदेसए
समणे नायपुत्ते

२९ पच अत्थिकाए पण्णवेति, तं जहा—धम्मत्थिकाय
जाव पोग्गलत्थिकाय । त चेव जाव रूविकाय
अजीवकाय पण्णवेति ।

---

१ यहा श० २।१०६ का उल्लेख किया गया है । अग-
सुत्ताणि भाग २ मे इस संदर्भ का पाठ अधूरा है ।
वहा शतक १।९ की भोलावण दी गई है ।

३०. हे गोतम ! ते किम छै एह ? तब बोल्या गोतम गुणगेह ।
अहो देवानुप्रिया ! सुण वाणी, इम निश्चै करि नै पहिछाणो ॥
३१. छता भाव प्रतै म्है जोय, अछता भाव कहा नहि कोय ।
अछता भाव प्रतै पहिछाण, छता भाव नहि भाखां जाण ॥
३२ अहो देवानुप्रिया ! सुविमास, सगला छता भाव छै तास ।
छता भावपणै म्है भाखां, अछता भाव नै अछता आखा ॥
३३. अहो देवानुप्रिया ! तुम्ह जाणो, चेयसा—मन कर एह पिछाणो ।
तेह अर्थ स्वयमेव विचारो, तुम्हैज एह अर्थ अवधारो ॥

३०,३१ से कहमेय गोयमा ! एव ? (श० ७।२१६)
तए णं से भगव गोयमे ते अण्णउत्थिए एव वयासी—नो खलु वय देवाणुप्पिया ! अत्थिभाव नत्थि त्ति वदामो, नत्थिभाव अत्थि त्ति वदामो ।
३२ अम्हे ण देवाणुप्पिया ! सव्वं अत्थिभाव अत्थि त्ति वदामो, सव्व नत्थिभाव नत्थि त्ति वदामो ।
३३. त चेयसा खलु तुब्भे देवाणुप्पिया ! एयमट्ठ सयमेव पच्चुवेक्खह त्ति कट्टु ते अण्णउत्थिए एव वदासी—

## सोरठा

३४. पाठातरे कहेह, वेअसा—ज्ञान प्रमाण कर ।
अबाधित लक्षणेह, स्वयं विचारो ए तुमे ॥

३४ 'वेदस' त्ति पाठान्तरे ज्ञानेन प्रमाणाबाधितत्वलक्षणेन (वृ० प० ३२५)

३५. *इम कही गोतम चाल्या धीर, आव्या गुणशिल जिहा छै वीर ।
जिम निर्ग्रंथ उदेशे पिछाणी, जाव दिखाड़ै भात नें पाणी ॥

३५. वदित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ जाव (एव जहा नियंठुद्देसए जाव भ० २।११०) भत्त-पाण पडिदसेति ।

३६. वीर प्रतै वादे नमस्कार, नहिं अति दूर नजीक तिवार ।
जाव करै पर्युपासना सेव, अलगो करि नै निज अहमेव ॥

३६ समणं भगव महावीर वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता नच्चासण्णे जाव पज्जुवासति ।
(श० ७।२१७)

३७. तिण काले तिण समय विचार, भगवत श्री महावीर तिवार ।
महाकथा महाजन नै ताम, देशना देई प्रवर्त्या स्वाम ॥

३७ तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे महाकहापडिवण्णे या वि होत्था ।

३८. तिण अवसर ते कालोदाई, तेह भूमिका देश कहाई ।
शीघ्रपणै आव्यो छै ताम, बतलावै तसु त्रिभुवन-स्वाम ॥

३८ कालोदाई य त देसं हव्वमागए ।

३९. अहो कालोदाई ! इम बोलै, वीर प्रभू वच अमृत तोलै ।
इम निश्चै हे कालोदाई ! मिलिया तुम्हे एकदा आई ॥

३९ कालोदाईति ! समणे भगव महावीरे कालोदाइ एव वयासी—से नूण भे कालोदाई ! अण्णया कयाइ एगयओ सहियाण

४०. अन्य स्थानक थी बैठा इक स्थान, तिमहिज पूरव वात पिछान ।
यावत किम ए वात मनाय, इम ते बोल्या माहोमाय ॥
४१ इम निश्चै हे कालोदाई ! एह अर्थ समर्थ छै ताहि ?
हता अत्थि बोलै जाची, वीर प्रभू कहै सगली साची ॥
४२. हे कालोदाई ! शुभ सच, अस्तिकाय परूपू पंच ।
धर्मास्तिकाय कहू धुर ताय, यावत पुद्गल अस्तिकाय ॥

४० समुवागयाण सण्णिविट्ठाणं ....तहेव जाव से कहमेयं मण्णे एव ?
४१. से नूण कालोदाई ! अत्थे समत्थे ?
हंता अत्थि ।
४२. त सच्चे ण एसमट्ठे कालोदाई ! अह पचत्थिकाय पण्णवेमि, त जहा—धम्मत्थिकाय जाव पोग्गलत्थिकाय ।

४३. अस्तिकाय तिहा हू च्यार, अजीवकाय परूपू धार ।
यावत पुद्गलास्तिकाय, रूपीकाय कहू इक ताय ॥

४३ तत्थ ण अह चत्तारि अत्थिकाए अजीवकाए पण्णवेमि तहेव जाव (स० पा०) एग च ण अह पोग्गलत्थिकायं रूविकायं पण्णवेमि ।
(श० ७।२१८)

* लय : इण पुर कंबल कोय न लेसी

४५. आकाशास्तिकाय विषे सुअतीव, एह अरूपीकाय अजीव।
तेह विषे प्रभुजो ! अवलोय, बेसण सूवण समर्थ कोय?

४६ अथवा ऊभो रहिवा देख, वलि विशेष वेसवो पेख।
तुयट्टित्तए वा निद्रा करिवा, समर्थ छै कोई अनुसरिवा?

४७. जिन कहै अर्थ समर्थ ए नाय, हे कालोदाई ! सुण वाय।
पुद्गल अस्तिकायज रूपी, अजीवकाय विषे तद्रूपी॥

४८. वेसण नै समर्थ छै सोय, जावत निद्रा लेवा जोय।
इह विध भगवत उत्तर दीधो, कालोदाई प्रश्न हिव सीधो॥

४९. हे प्रभु ! पुद्गल अस्तिकाय, रूपी अजीवकाय विषे ताय।
जीव ना पाप कर्म छै तेह, अशुभ विपाक सयुक्त करेह॥

५० जिन कहै अर्थ समर्थ नहिं एह, जीव सबधी पाप छै जेह।
पुद्गल विषे कदे नहिं होय, तेह अचेतनपणे सुजोय॥

५१. कालोदाई ! ए जीवास्तिकाय, अरूपीकाय विषे इज ताय।
जीवा रै पाप कर्म बधेह, अघ फल विपाक युक्त करेह॥

वा०—इहा कालोदाई पूछ्यो—पुद्गलास्तिकाय रूप काय—अजीवकाय नै विषे जीवसबधी पाप कर्म पाप फल विपाक सयुक्त करे? एतलै पुद्गलास्तिकाय नै विषे जीव बेसै, सूबै जाव निद्रा लेवै तिवारे जीवा रै बध्या पाप कर्म तिके पाप फल सयुक्त पुद्गलास्तिकाय नै हुवै? जीवा रै बध्या तिके कर्म पुद्गल रै चैहटै—पाप फल संयुक्त पुद्गल हुवै। जद भगवत कहै—'णो इणट्ठे समट्ठे' ए अर्थ समर्थ नही। जीव पुद्गल ऊपर बैठा सूता जीवा रै पाप कर्म बध्या तेहना अशुभ फल सयुक्त पुद्गल हुवै नहीं।
इहा ए भावार्थ—जीव सबधी पाप कर्म अशुभ स्वरूप फल लक्षण विपाकदायक पुद्गलास्तिकाय नै विषे न हुवै अचेतनपणै करी अनुभव वर्जितपणा थकी तेहनै। जीवास्तिकाय नै विषेज पाप कर्म नो विपाक सयुक्त हुवै अनुभवयुक्तपणा थी जीव नै।

५२ *इहा कालोदाई प्रतिबूझ्यो, ततखिण तिणनै सवलो सूझ्यो।
वीर प्रतै वंदी तिण वार, नमण करी कहै वचन विचार॥

५३. हे प्रभु ! हूं वाछू तुझ पास, परम धरम सुणवो सुखरास।
इम जिम खंधक दीक्षा लीधी, तिमहिज कालोदाइ प्रसीधी॥

४५. आगासत्थिकायसि, अरूविकायसि अजीवकायसि चक्किया केइ आसइत्तए वा? सइत्तए वा?

४६ चिट्ठइत्तए वा? निसीइत्तए वा? तुयट्टित्तए वा?

४७. णो तिणट्ठे समट्ठे। कालोदाई ! एगसि ण पोग्गलत्थिकायसि रूविकायसि अजीवकायसि

४८. चक्किया केइ आसइत्तए वा, सइत्तए वा, चिट्ठइत्तए वा, निसीइत्तए वा, तुयट्टित्तए वा। (श० ७।२१९)

४९ एयसि ण भते ! पोग्गलत्थिकायसि रूविकायसि अजीवकायसि जीवाण पावाकम्मा पावफलविवागसजुत्ता कज्जति?

५० णो तिणट्ठे समट्ठे।
जीवसम्बन्धीनि पापकर्म्माण्यऽशुभस्वरूपफललक्षणविपाकदायीनि पुद्गलास्तिकाये न भवन्ति, 'अचेतनत्वेनानुभववर्जितत्वात्तस्य। (वृ० प० ३२५)

५१ कालोदाई ! एयसि ण जीवत्थिकायसि अरूविकायसि जीवाण पावा कम्मा पावफलविवागसजुत्ता कज्जति।

५२ एत्थ ण से कालोदाई संबुद्धे समण भगव महावीरं वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

५३ इच्छामि ण भते ! तुब्भ अतिय धम्म निसामेत्तए। एवं जहा खदए तहेव पव्वइए,

* लय : इण पुर कंबल कोय न लेसी

५४. तिमहिज अंग इग्यारै सार, यावत विचरतो गुणधार।
चरण करण सीख्यो अणगार, तीन गुप्त तसु अधिक उदार॥

५४. तहेव एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ जाव विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। (श० ७।२२०)

५५ राजगृह गुणशिल थी तिणवार, अन्यदा भगवंत कियो विहार।
बाहिर जनपद प्रभु विचरंता, जग-तारक जिनवर जयवंता॥
५६. देश सप्तम शत दशमो न्हाल, इकसौ सत्त वीसमी ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसाद, 'जय-जश' सुख संपति अहलाद॥

५५. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ। (श० ७।२२१)

## ढाल : १२८

### दूहा

१. तिण काले नैं तिण समय, नगर राजगृह नाम।
गुणसिल नामे बाग थो, ईशाणकूणे ताम॥
२. तिण काले नैं तिण समय, भगवंत श्री महावीर।
कदा अन्यदा जाव प्रभु, समवसर्‍या गुणहीर॥
३. परिषद वंदन परवरी, वीर तणी सुण वान।
नमस्कार वंदन करी, पोंहती अपणै स्थान॥

१ तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे गुणसिलए चेइए।
२ तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ जाव समोसढे,
३. परिसा जाव पडिगया। (श० ७।२२२)

*कालोदाई इम वीनवै रे। (ध्रुपद)

४. मुनिवर रे, एक दिवस तिण अवसरे रे,
कालोदाई मुनिराय हो लाल।
वीर प्रतै वादी करि रे,
नमण करी कहे वाय हो लाल॥
५. हे प्रभु! छै जीवां तणै, पाप कर्म नो बंध।
अघ फल विपाकयुक्त छै? जिन कहै हंता संध॥
६. हे प्रभु! किम जीवां तणै, पाप कर्म उपजंत।
विपाक फल जे पाप नों, तेह युक्त किम हुंत?
७. श्री जिन भाखै सांभलै, कालोदाई! संत!
दे दृष्टांत कहूं अछ, जिन-वच महाजयवंत॥
८. कोई एक पुरुषे कियो, अधिक मनोहर पेख।
थाली-पाक सुहामणो, मनगमतो सुविशेख॥
९. अन्य भाजन में पचाविया, नहिं तथाविध थाय।
तिण कारण करिनें इहां, थाली-पाक कहाय॥
१०. भक्त दोष वर्जित तिको, शुद्ध कह्यो इण न्याय।
अष्टादश व्यंजन करी, संकुल संकीर्ण कहाय॥

४. तए णं से कालोदाई अणगारे अण्णया कयाइ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—
५. अत्थि णं भंते! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति? हंता अत्थि। (श० ७।२२३)
६ कहण्णं भंते! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति?
७,८ कालोदाई! से जहानामए केइ पुरिसे मणुण्णं थालीपागसुद्धं

९ अन्यत्र हि पक्वमपक्वं वा न तथाविधं स्यादिति विशेषणं। (वृ० प० ३२६)
१०. अट्ठारसवंजणाकुलं
शुद्धं—भक्तदोषवर्जितं। (वृ० प० ३२६)

*लय : हेम ऋषी भजिये सदा रे

१२ जूप माडिया नें कह्यु, मूंग तदूल तणूंज।
वलि जीरा मिरचादि नु, रस नें जूप कह्यूंज॥
१३ भक्ष खड खाजा प्रमुख, गुलपापड़ी प्रसिद्ध।
अथवा गुलधाणी प्रतै, गुललावणी कहिद्ध॥

१४. वली मूल फल एक पद, हरित कह्यो जीरादि।
डाको ते वथुवा प्रमुख, भाजी तास संवादि॥

१५. वली रसालू चवदमो, बे पल प्रमाण घृत्त।
इक पल प्रमाण मधु कह्यो, अर्द्धाढक दहि मत्त॥
१६ मिरच वीस पल ह्वं वलि, दश पल गुल अरु खंड।
नृपति जोग ए तसु कह्यु, प्रवर रसालू मड॥

१७. सुरा पान नें जल वलि, पाणी फुन द्राक्षादि।
शाक तक्र स्यूं नीपनो, व्यजन अठ दश वादि॥

१८. दोय खोभलै पुसलि इक, बे पुसली सेई एक।
च्यार सेइ नो कुड़व इक, वीर वचन ए पेख॥
१९. च्यार कुडव पाथोज इक, चिहुं पथ आढक एक।
आढा च्यार तणी वलि, द्रोणी एक सुलेख॥
२०. साठ आढा नो जघन्य कुभ, असी आढै कुभ मद्ध।
सौ आढै उत्कृष्ट कुभ, अनुयोगद्वार सुलद्ध॥

२१. गुजा पंचक मास इक, सोल मास कर्ष एक।
च्यार कर्ष नों एक पल, पल-शत तुला सपेख॥
२२. वीस तुला नो भार इक, हेम तृतीय काड ताम।
तोल मान ए आखियो, कहिवूं जे जे ठाम॥

२३. *विप मिश्रित भोजन तिको, भोगवतां सुख पाय।
पहिला मधुरपणा थकी, अधिक मनोहर थाय॥
२४ ते भोजन जीम्या पछै, परिणम ते पहिछाण।
दुष्ट रूप हेतूपणै, दुर्गंध पिण इम जाण॥

तत्र मासत्रयं—जलजादिसत्क 'जूपो' मुद्गतन्दुल-
जीरककटुभाण्डादिरसः। (वृ० प० ३२६)

१३. भक्खा गुललावणिया
'भक्ष्याणि' खण्डखाद्यादीनि 'गुललावणिया' गुडपर्प्प-
टिका लोकप्रसिद्धा गुडधाना वा। (वृ० प० ३२६)

१४. मूलफला हरियग डागो
मूलफलान्येकमेवपदं 'हरितक' जीरकादि 'डाको'
वास्तुलकादिर्भजिका। (वृ० प० ३२६)

१५,१६. होइ रसालू य
'रसालू:' मज्जिका, तल्लक्षणं चेदम्—
दो घयपला महुपलं दहियस्सद्धाढयं मिरियवीसा।
दस खडगुलपलाइ एस रसालू निवइजोगो॥
(वृ० प० ३२६)

१७. तहा पाण पाणीय पाणग चेव अट्ठारसमो सागो
निरुवहओ लोइओ पिंडो।
'पान' सुरादि 'पानीय' जलं 'पानक' द्राक्षापानकादि
शाकः प्रसिद्ध इति। (वृ० प० ३२६)

१८. दो असतीओ पसती, दो पसतीओ सेतिया चत्तारि
सेतियाओ कुलओ, (अनु० सू० ३७४)

१९ चत्तारि कुलया पत्थो, चत्तारि पत्थया आढगं चत्तारि
आढगाइ दोणो। (अनु० सू० ३७४)

२०. सट्ठि आढगाइ जहण्णए कुंभे, असीइ आढगाइ
मज्झिमए कुंभे, आढगसतं उक्कोसए कुंभे।
(अनु० सू० ३७४)

२१,२२. स्यात् गुञ्जा. पञ्च मापकः।५४७।
ते तु षोडश कर्षोऽक्ष. पलं कर्षचतुष्टयम्।५४८।
तुला पलशत तासा विंशत्या भार आचितः।५४९।
(अभि० चिन्ता०, तृतीय काण्ड)

२३ विससमिस्सं भोयण भुंजेज्जा, तस्स णं भोयणस्स
आवाए भद्दए भवइ,

२४. तओ पच्छा परिणममाणे-परिणममाणे दुरूवत्ताए
दुवण्णत्ताए दुगंधत्ताए

*लय: हेम ऋषी भजिये सदा रे

२५. जिम छट्ठे शतके कह्यु, तृतीय उदेश मझार।
यावत तेहनै दुखपणै, परिणमै वारवार॥

२५ जाव दुक्खत्ताए—नो सुहत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति।
षष्ठशतस्य तृतीयोद्देशको (६।२०) महाश्रवकस्तत्र यथेद सूत्र तथेहाप्यध्येयम्। (वृ० प० ३२६)

२६. एणे दृष्टाते करी, कालोदाई अणगार।
जीव प्राणातिपाते करी, जाव मिच्छादसण अवधार॥

२६ एवामेव कालोदाई! जीवाण पाणाइवाए जाव मिच्छादसणसल्ले,

२७ पाप अठारै सेविया, सेवाया पिण जोय।
वलि तेहनै अनुमोदियां, प्रथम भद्र सुख होय॥

२७ तस्स णं आवाए भद्दए भवइ
तस्य प्राणातिपातादे (वृ० प० ३२६)

२८. पाप स्थानक सेव्या पछै, विपरिणममाणे जोय।
विपरिणामांतर पामतो, दुष्ट रूप तसु होय॥

२८ तओ पच्छा विपरिणममाणे-विपरिणममाणे दुरूवत्ताए

२९. यावत तेहनै दुखपणै, परिणमै बारंवार।
कालोदाई! इम जीव रै, पाप कर्म बंध धार॥

२९. जाव दुक्खत्ताए—नो सुहत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति। एव खलु कालोदाई! जीवाण पावा कम्मा पावफलविवागसजुत्ता कज्जति।
(श० ७।२२४)

सोरठा

३०. पाप कर्म बध एम, तसु विपक्ष पुन्य कर्म नो।
वध फल विपाक तेम, प्रश्न तास पूछै हिवै॥

३१. *छै प्रभुजी! जीवा तणै, कल्याण ते शुभ कर्म।
शुभ फलपणैज परिणमै? हता जिन वच पर्म॥

३१. अत्थि ण भते! जीवाणं कल्लाणा कम्मा कल्लाण-फलविवागसजुत्ता कज्जति?
हता अत्थि। (श० ७।२२५)

३२ किणविध प्रभु जीवा तणै, कल्याण कर्म उपजत।
विपाक फल कल्याण नो, तेह युक्त किम हुत?

३२ कहण्ण भते! जीवाण कल्लाणा कम्मा कल्लाणफल-विवागसजुत्ता कज्जति?

३३ कालोदाई! साभले, दाखू जे दृष्टत।
कोइक पुरुप मनोहरू, शुद्ध थालीपाक करंत॥

३३ कालोदाई! से जहानामए केइ पुरिसे मणुण्ण थाली-पागसुद्ध

३४. अष्टादश व्यजन करी, सकीरण सुखदाय।
तिक्त कटुक औपधि करी, मिश्रत कीधो ताय॥

३४ अट्ठारसवजणाकुल ओसहमिस्स
औपध—महातिक्तकघृतादि। (वृ० प० ३२६)

३५. ते भोजन नै जीमता, पहिला भद्र न होय।
मनगमतो होवै नही, कटुक तिक्त थी जोय॥

३५ भोयण भुजेज्जा तस्स ण भोयणस्स आवाए नो भद्दए भवइ।

३६. ते भोजन जीम्या पछै, परिणम ते पहिछाण।
भला रूपपणै परिणमैं, भला वर्ण पिण जाण॥

३६ तओ पच्छा परिणममाणे-परिणममाणे सुरूवत्ताए सुवण्णत्ताए

३७. यावत सौख्यपणै सही, दुक्खपणै नहिं होय।
वार वार इम परिणमै, इण दृष्टाते जोय॥

३७ जाव सुहत्ताए—नो दुक्खत्ताए भुज्जो भुज्जो परिण-मति। एवामेव

३८. हे कालोदाई! जीवा तणै, प्राणातिपात पिछाण।
ए हिसा थी निवर्तै, शुभ जोगे करि जाण॥

३८ कालोदाई! जीवाण पाणाइवायवेरमणे

३९ यावत वलि परिग्रह थकी, निवर्त्तवै करि तेह।
क्रोध तजै यावत वलि, मिथ्यादर्शण तजेह॥

३९ जाव परिग्गहवेरमणे कोहविवेगे जाव मिच्छादसण-सल्लविवेगे

*लय : हेम ऋषी भजिये सदा रे

सुवण्णत्ताए

४२. यावत सुखपणें सही, दुक्खपणें नहि होय।
वार-वार इम परिणमैं, सुकृत्य फल सुख होय।।

४२. जाव सुहत्ताए—नो दुक्खत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ।

४३. इम निश्चै जीवा तणें, कालोदाई अणगार!
कल्याण शुभ कर्म बंध हुवै, शुभ फल विपाक सार।।

४३. एव खलु कालोदाई! जीवाण कल्लाणा कम्मा कल्लाणफलविवागसजुत्ता कज्जति।।
(श० ७।२२६)

## सोरठा

४४. 'वृत्तिकार कहिवाय, विरमण पाप अठार थी।
पुन्य कर्म उपजाय, शुभ रूपादि तेहथी।।
४५. यंत्र धर्मसी कीध, पुन्य तणा फल नें विषे।
ओपधि मिश्र प्रसीध, दृष्टात छै एहवूं कह्युं।।
४६. ते माटे ए मर्म, पुन्य कर्म छै जेहनें।
आख्यो कल्याण कर्म, न्याय दृष्टि करि देखियै।।
४७. पाप-विरमण पाठ, तेह निर्जरा रूप पिण।
सवर पिण शिव वाट, करता पुन्य शुभ जोग स्यूं।।
४८. समवायंग सुसंच, पंचम समवाये कह्या।
निर्जर ठाणा पंच, हिंसादिक नो वेरमण।।

४८ पच निज्जरट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—पाणाइवायाओ वेरमण……
(समवाओ ५।६)

४९. पाप तणा पचखाण, तें सजम शुध पालता।
शुभ जोगे करि जाण, पुन्य कर्म वंधै अछै।।
५०. त्याग किया विण ताय, पाप अठारै निवर्त्ते।
तेहथी पुन्य वंधाय, करणी आज्ञा माहिली।।
५१. तिण सूं कह्यो सुरूप, सुदर वर्ण कह्यो वलि।
कल्याण कर्म तद्रूप, प्रत्यक्ष फल ए पुन्य नां।।
५२. सेवै पाप अठार, पाप कर्म वंधै तसु।
पाप सेवाया धार, पुन्य कर्म वंधै नही।।
५३. परिग्रह पंचम पाप, सेव्यां सेवाया वलि।
अनुमोद्या संताप, पाप कर्म वधै अछै।।
५४. परिग्रह नवविध पेख, खेत्त वत्थू आदि दे।
दिया गृहस्थ नें देख, पुन्य किहा थी तेहनै।।
५५. सेवै पाप अठार, करणी आज्ञा वारली।
जोवो हिये विचार, पुन्य किम वधै तेहनै?
५६. टालै पाप अठार, करणी आज्ञा माहिली।
ए शुभ जोग श्रीकार, तेहथी पुन्य वंधै अछै।।
५७ कालोदाई अणगार, पाप कर्म पुन्य कर्म नी।
पूछा कीधी सार, तसु जिन उत्तर आपियो।।

५८. पाप अठारै पेख, प्रवर्त्तै कोइ तेह में।
बंधै पाप विशेख, विष-मिश्र भोजन नी परै ॥
५९. पाप अठार पिछाण, निवर्त्तै कोइ तेहथी।
पुन्य कर्म बधाण, भोजन ओषधि-मिश्र तिम ॥' (ज० स०)

६०. *देश सप्तम शत दश तणो, सौ अठवीसमी ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मगल माल ॥

## ढाल : १२९

### दूहा

१. पूर्वे कह्या फल कर्म ना, हिव आगल अधिकार।
कर्मादिक अल्प बहु तणो, पूछै प्रश्न प्रकार ॥

१ अनन्तर कर्म्माणि फलतो निरूपितानि, अथ क्रिया-विशेषमाश्रित्य तत्कर्तृपुरुषद्वयद्वारेण कर्मादीनामल्प-बहुत्वे निरूपयति। (वृ० प० ३२६)

*कालोदाई पूछै भगवान नै। (ध्रुपद)

२. दोय पुरुष प्रभु! सारिखा, जाव सरीखा ताहि।
भड मात्र उपकरण छै, करै अग्नि आरम्भ माहोमाहि ॥ प्रभूजो!

२ दो भते! पुरिसा सरिसया जाव (स० पा०) सरिसभडमत्तोवगरणा अण्णमण्णेण सद्धि अगणिकाय समारभति।

३. इक नर अग्नि लगावतो, इक नर अग्नि बुझाय।
हे प्रभु! दोनूं इ पुरुष मे, महाकर्म किण रै बधाय?

३ तत्थ णं एगे पुरिसे अगणिकाय उज्जालेइ, एगे पुरिसे अगणिकाय निव्वावेइ।
एएसि ण भते! दोण्हं पुरिसाण कयरे पुरिसे महाकम्मतराए चेव?

४. महाक्रिया प्रभु! केहनै, वलि महाआश्रव जोय।
वलि बहुवेदन केहनै, तिण कर्म करीनै होय ॥

४ महाकिरियतराए चेव? महासवतराए चेव? महावेयणतराए चेव?

### सोरठा

५. ज्ञानावरणी आदि, महाकर्म कहियै तसु।
महाकिरिया सवादि, छै दाहरूपा तेहनै ॥

५ अतिशयेन महत्कर्म—ज्ञानावरणादिक यस्य स तथा, एव 'महाकिरियतराए चेव' त्ति नवर क्रिया—दाहरूपा। (वृ० प० ३२७)

६. महाआश्रव कहिवाय, महाकर्म बध-हेतुक:।
महावेदना थाय, जेह थकी जीवा तणै ॥

६ 'महासवतराए चेव' त्ति वृहत्कर्मबन्धहेतुक: 'महावेयणतराए चेव' त्ति महती वेदना जीवाना यस्मात् स तथा। (वृ० प० ३२७)

७. †अल्प कर्म बधै केहनै, अल्प क्रिया वलि जोय।
अल्प आश्रव अल्प वेदना, किसा पुरुष रै थोड़ा होय?

७ कयरे वा पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव? अप्पकिरियतराए चेव? अप्पासवतराए चेव? अप्पवेयणतराए चेव?

---

*लय : हेम ऋषी भजिये सदा रे
†लय : कोसंबी नगर पधारिया

महाकर्म महाक्रिया हुवै, महाआश्रव वेदन रास ॥ मुनीश्वर !
(वीर कहै कालोदाइ ! साभलै)

उज्जालेइ, से ण पुरिसे महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव, महासवतराए, चेव महावेयणतराए चेव ।

१०. अग्नि बुझावै तेहनैं, अल्प कर्म बधाय।
जाव अल्प वेदन कही, कालोदाइ पूछै किण न्याय ?

१० तत्थ ण जे से पुरिसे अगणिकाय निव्वावेइ, से ण पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव जाव (सं० पा०) अप्पवेयणतराए चेव । (श० ७।२२७)
से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—

११ जे नर अग्नि लगावतो, अति घणी पृथ्वीकाय।
आरभ वहु करै जेहनो, वले हणै घणी अपकाय ॥

११. कालोदाई ! तत्थ ण जे से पुरिसे अगणिकाय उज्जालेइ, से ण पुरिसे वहुतराग पुढविक्काय समारभति, वहुतराग आउक्काय समारभति,

१२. जीव थोड़ा तेउ ना हणैं, जीव वायु ना वहुत हणत।
वणस्सइ जीव वहु हणै, त्रस नी वहु घात करत ॥

१२ अप्पतराग तेउक्कायं समारभति, वहुतराग वाउकाय समारभति, वहुतराग वणस्सइकाय समारभति, वहुतराग तसकाय समारभति ।

१३. जे नर अग्नि बुझावतो, थोडा पृथ्वी ना जीव हणत।
वले जीव हणै थोडा अप तणा, घणी तेउ नी घात करत ॥

१३. तत्थ ण जे से पुरिसे अगणिकाय निव्वावेइ, से ण पुरिसे अप्पतराग पुढविकाय समारभति, अप्पतराग आउक्काय समारभति, वहुतराग तेउक्काय समारभति ।

१४. अल्प जीव वायु ना हणै, वनस्पती त्रसकाय।
त्यारा पिण जीव थोड़ा हणै, तिण अर्थ ए वचन कहाय।

१४ अप्पतराग वाउकाय समारभति, अप्पतराग वणस्सइकाय समारभति, अप्पतराग तसकाय समारभति। से तेणट्ठेणं कालोदाई ! एव वुच्चइ—

१५. अग्नि लगावै तेहनै, वहु पच काय आरंभ।
आरभ अल्प तेऊ तणो, तिण सूं महाकर्मादिक दभ ॥

१५. तत्थ ण जे से पुरिसे अगणिकाय उज्जालेइ, से ण पुरिसे महाकम्मतराए चेव, महाकिरियतराए चेव, महासवतराए चेव, महावेयणतराए चेव ।

१६. अग्नि बुझावे तेहनै, पाच काय नों थोडो आरंभ।
तेऊ नी वहुत विराधना, तिण सूं अल्पकर्मादि प्रारभ ॥

१६ तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकाय निव्वावेइ, से ण पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव, अप्पकिरियतराए चेव, अप्पासवतराए चेव, अप्पवेयणतराए चेव ।
(श० ७।२२८)

## सोरठा

१७. 'अग्नि लगावै ताय, आरभ वहु पच काय नो।
वली बुझावै लाय, अल्प आरभ पाचूं तणो ॥

१८. तेऊकाय नो ताय, अग्नि लगावै तसु अल्प।
वली बुझावै लाय, महा आरभ तेऊ तणो।

१९. पच काय नों पाप, अग्नि लगावै तसु घणो।
तेउ तणो संताप, तेहनै लागै अल्प ही ॥

२०. अग्नि बुझावै तास, पंच काय नों अल्प ही।
तेऊ तणो विमास, वहुत पाप क्रिया तसु ॥

२१. इण वचने करि ताय, अग्नि बुझावै तेहनै।
थोडो पाप बधाय, पिण धर्म नहीं छै तेह मे' ।। (ज० स०)

२२. अग्नि सचेतन तास, अधिक प्रकाश करै अछै।
तेहनी परै उजास, पुद्‌गल अचित्त हिव कहै।।

२२. अग्निश्च सचेतन: सन्नवभासते एवमचित्ता अपि पुद्‌गला: किमवभासन्ते? इति प्रश्नयन्नाह—
(वृ० प० ३२७)

२३. *अचित्त पुद्‌गल पिण छै प्रभु ! जे करै अधिक प्रकाश।
उजुयाले वस्तू भणी, उज्जोवेति पाठ विमास।।

२३ अत्थि ण भंते ! अच्चित्ता वि पोग्गला ओभासंति ? उज्जोवेंति ?
'उज्जोइति' त्ति वस्तूद्द्योतयन्ति। (वृ० प० ३२७)

२४. तवेति ताप करै तिके, पभासति पहिछाण ?
तथाविध वस्तू भणी कांइ, दाहकपणे करि जाण ?

२४. तवेंति ? पभासेंति ?
'तवति' त्ति तापं कुर्वन्ति 'पभासति' त्ति तथाविध-वस्तुदाहकत्वेन प्रभावं लभन्ते। (वृ० प० ३२७)

२५ हंता अत्थि जिन कहै, वलि कालोदाइ पूछत।
पुद्‌गल अचित्त किसा प्रभु ! ए तो प्रकाशादिक करत ?

२५ हंता अत्थि। (श० ७।२२९)
कयरे ण भंते ! ते अच्चित्ता वि पोग्गला ओभा-संति ? उज्जोवेंति ? तवेंति ? पभासेंति ?

२६. जिन कहै अणगार कोपियो, तेजूलेश्या तास।
शरीर थकी बारै नीकली, दूर गई जे विमास।।

२६ कालोदाई ! कुद्धस्स अणगारस्स तेयलेस्सा निसट्ठा समाणी दूर गता

२७. दूर वेगली जइ पडै, गइ छती भूमी-देश।
भूमि नै देश जइ पड़ै, कोप्या अणगार नी तेजुलेश।

२७ दूर निपतति, देस गता देसं निपतति।

## सोरठा

२८. दूर गई छती जाण, दूर तिका अलगी पडै।
देश गई छती माण, तेह देश माहै पड़ै।।

२८ 'दूर गता दूर निवयइ' त्ति दूरगामिनीति दूरे निपत-तीत्यर्थः, अथवा दूरे गत्वा दूरे निपततीत्यर्थः 'देस गता देस निवयइ' त्ति (वृ० प० ३२७)

२९. वाछित शतादि पाय[1], तास देश अर्द्धादिके।
गमन स्वभाव कराय, 'देश गता' नो अर्थ ए।।

३०. 'देश निपतति' जाण, वाछित छै तसु देश जे।
अर्द्धादिक में आण, पडवु ते तेजूलेश नुं।

२९, ३० अभिप्रेतस्य गन्तव्यस्य क्रमशतादेर्देशे—तदर्द्धादौ गमनस्वभावेऽपि देशे तदर्द्धादौ निपततीत्यर्थ.।
(वृ० प० ३२७)

३१ *जिहा जिहा दूर देश मे, अथवा निकट प्रदेश।
तिहा तिहा अचित्त पुद्‌गल पड़ै, यावत प्रभासे तेजुलेश।।

३१. जहिं जहिं च ण सा निपतति तहिं तहिं च णं ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, जाव (स० पा०) पभासेंति।

३२. अचित्त पुद्‌गल पिण इह विधे, हे कालोदाइ अणगार !
अधिक प्रकाश करै सही, वीर वचन ए सार।।

३२. एतेणं कालोदाई ! ते अचित्ता वि पोग्गला ओभा-संति, जाव (स० पा०) पभासेंति। (श० ७।२३०)

३३. कालोदाइ तव वीर नै, करि वदणा नमस्कार।
चोथ अठम बहु तप करी, जाव भावित आतम सार।।

३३. तए ण से कालोदाई ! अणगारे समण भगव महावीर वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता वहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम जाव (स० पा०) अप्पाण भावेमाणे विहरइ।
(श० ७।२३१)

---

*लय : कोसंबी नगर पधारिया

१. पग।

३५. शतक सातमा नों कह्यो, दशमों उदेशो देख।
अर्थ सातमां शतक नों, संपूर्ण हुवो अशेख ।।
३६. ढाल एक सौ गुणतीसमी, भिक्खु पाट भारीमाल।
तीजै पाट ऋषिराय जी, सुख 'जय-जश' हरष विशाल ।।
सुगण जन !
(बलिहारी भिक्षु ऋषिराज नी)

गीतक-छंद

१. जिम वृद्ध नर लाठी ग्रही मंद-मंद पद स्थापन करी।
इम चालतु जे पंथ मारग प्रति उल्लवै हित धरी ।।
२. तिम शिष्ट जन उपदेश आणा-रूप-यष्टि ग्रही करी।
वर सूत्र पद नी अर्थ रचना-न्यास शनै शनै धरी ।।
३. वर शतक सप्तम तास विस्तर तेहिज पथ मारग भलो।
उल्लघियो वर जोड़ करि, नर वृद्ध इव शत गुणनिलो ।।

१-३ शिष्टोपदिष्टयष्ट्या पदविन्यास शनैरहं कुर्वन् ।
सप्तमशतविवृतिपथ लङ्घितवान् वृद्धपुरुष इव ।।
(वृ० प० ३२७)

सप्तमशते दशमोद्देशकार्थः ।।७।१०।।

ढाल : १३०

सोरठा

१. सप्तम शतक मझार, पुद्गल आदिक भाव नी।
परूपणा वर सार, विविध प्रकारे वर्णवी ।।
२. इहां पिण तेहिज जाण, अन्य प्रकार करी प्रवर।
परूपियै पहिछाण, अष्टम शतक विषे हिवै ।।
३. दस है तास उद्देश, ते संग्रह नें अर्थ ए।
गाथा आदि कहेस, श्रोता चित दे साभलो ।।

१ पूर्वं पुद्गलादयो भावाः प्ररूपिता ।
(वृ० प० ३२८)
२. इहापि त एव प्रकारान्तरेण प्ररूप्यन्त इत्येवं सवद्ध-
मयाष्टमशतं विव्रियते । (वृ० प० ३२८)
३. तस्य चोद्देशसंग्रहार्थं 'पुग्गले' त्यादिगाथामाह—
(वृ० प० ३२८)

दूहा

४ पुद्गल नुं पहिलु कह्यु, आसीविष नों जाण।
वृक्ष तणो तीजो अख्यो, चउथो क्रिया वखाण ।।
५. आजीवका नों पाचमो, छट्ठो प्रासुक दान।
अदत्त-विचारण सप्तमो, प्रत्यनीक पहिछान ।।

४,६ पोग्गल आसीविस रुक्ख किरिय आजीव फासुकमदत्ते।
पडिणीय बंध आराहणा य दस अट्ठमम्मि सते ।।
(श० ८ संगहणी-गाहा)

*लय : कोसम्बी नगरी पधारिया

६. नवमों बंध तणों कह्यो, आराधना नों अर्थ।
उद्देशक दस आखिया, अष्टम शते तदर्थ ॥
७ नगर राजगृह नें विषे, यावत गोतम स्वाम।
वीर प्रतै वदन करी, इम बोलै शिर नाम ॥

७ रायगिहे जाव एव वदासी—

*देव जिनेंद्र कहै गोयम नैं ॥ (ध्रुपदं)

८. पुद्गल हे प्रभु! कितै प्रकारै, आप परूप्या स्वाम जी?
प्रभू प्रकाशै तीन प्रकारै, आख्या पुद्गल आम जी ॥
९ भेद प्रथम जे प्रयोग-परिणता, मीसा-परिणता नाम।
तीजो भेद वीससा-परिणता, कहियै अर्थ तमाम ॥

८ कतिविहा ण भते! पोग्गला पण्णत्ता?
गोयमा! तिविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—
९ पयोगपरिणया, मीसापरिणया, वीससापरिणया।
(श० ८।१)

१०. जीव व्यापारे शरीर आदिपणै, करि परिणम्या ताम।
ते पुद्गल नैं कहियै गोतम! प्रयोग-परिणता नाम ॥

१०. 'पओोगपरिणय' त्ति जीवव्यापारेण शरीरादितया परिणता (वृ० प० ३२८)

११. प्रयोग स्वभाव बिहु करि परिणता, मीसा-परिणता ताय।
बीजो भेद अछै पुद्गल नो, हिव कहियै तसु न्याय ॥

११ 'मीससा—परिणय' त्ति मिश्रकपरिणता प्रयोगविस्साम्या परिणता· (वृ० प० ३२८)

१२ प्रयोग-परिणाम भणी अणतजतो, स्वभाव करिकै दीस।
अन्य स्वभाव प्रते पहुचाड्या, जीव कलेवर मीस ॥

१२ प्रयोगपरिणाममत्यजन्तो विस्रसया स्वभावान्तरमापादिता मुक्तकडेवरादिरूपा। (वृ० प० ३२८)

१३. अथवा ऊदारिकादिक नी वर्गणा, पुद्गल छै ते रूप।
द्रव्य तिकेज स्वभाव करीनै, निपजाया छता तद्रूप ॥

१३ अथवौदारिकादिवर्गणारूपा विस्रसया निष्पादिता सत (वृ० प० ३२८)

१४. जीव प्रयोगे एकेंद्रियादिक तनु, प्रमुखपणै पहिछाण।
अन्य परिणाम प्रतै पहुंचाड्या, ते मीसा-परिणता जाण ॥

१४. जीवप्रयोगेणैकेन्द्रियादिशरीरप्रभृतिपरिणामान्तरमापादितास्ते मिश्रपरिणता.। (वृ० प० ३२८)

**सोरठा**

१५. जे प्रयोग-परिणाम, ते पिण पुद्गल इमज छै।
तो विशेप स्यूं ताम, मीसा-पुद्गल नैं विषे?

१५ ननुप्रयोगपरिणामोऽप्येवविध एव तत क एपा विशेष? (वृ० प० ३२८)

१६. सत्य वात छै एह, प्रयोग-परिणत नैं विपे।
वीससा छतेपि जेह, वाछा तेहनी नहिं करी ॥

१६ सत्य, किंतु प्रयोगपरिणतेपु विस्रसा सत्यपि न विवक्षिता इति। (वृ० प० ३२८)

१७. मीसा-परिणत माण, द्वितीय भेद पुद्गल तणो।
दाख्यो न्याय सुजाण, तृतीय भेद हिव वीससा ॥

१८ *वीससा-परिणता भेद तीसरो, स्वभाव करिनै सोय।
परिणमिया बादल प्रमुख ते, ए तीनू अवलोय ॥

१८. 'वीससापरिणय' त्ति स्वभावपरिणताः।
(वृ० प० ३२८)

वा०—इहा धर्मसी कह्यो ते लिखिये छै—अथ पओगसा ते जीवा ग्रह्या जे आठ कर्म, बारह पर्याप्ता-अपर्याप्ता, पाच शरीर, पाच इन्द्री, वर्णादिक पच्चीस—ए ५५ बोल तथा पन्द्रह योग एव—७० बोल जीवा ग्रह्या ते पयोगसा पुद्गल कहियै।

मीसा ते, ७० बोल जीवा मूक्या ते रूप नथी मूक्यो, अनेरे रूप नथी परिणम्या अनै विस्रसाइ स्वभावातर पहुचाड्या, एतावता जीव रहित कलेवर मीसा पुद्गल कहियै।

वीससा ते, ए ७० बोल जीवा मूक्या पछी अनेरे वर्णादिके २५ आभला प्रमुख

* लय: कनकमंजरी चतुर विलक्षण

परिणयाणं भते ! पोग्गला कतिविहा ? गोयमा ! १ सुहुमपुढवा, व प्रमुख दस एकेंद्री, २. त्रिण विकलेंद्री—१३, ३. सात नारकी—२०, ४. तिर्यंच-पंचेंद्रिय जलचरादि समूच्छिम पच अनै गर्भेज पच एव दश—३०, ५. समूच्छिम नै गर्भेज मनुष्य—३२, ६ दश भवनपति—४२, ७ आठ वाणव्यंतर—५०, ८. पाच जोतपी—५५, ९. बारै वैमानिक—६७, नव ग्रैवेयक—७६, पांच अणुत्तर विमान—८१, जीव ना ८१ भेद आठ कर्म ना पुद्गल ग्रह्या ते पओगसा कहियै, ए प्रथम दडक समचै। अथ ८१ विमणा करियै तिवारै—१६२ थावै। समुच्छिम मनुष्य पर्याप्ता नो नही ते एक ओछो करियै ते माटै—१६१ भेद। ए ९ दडक पुद्गल ग्रहै पओगसा नां ९ भेद जाणवा।

१९. प्रयोग-परिणता पुद्गल प्रभुजी ! दाख्या कितलै प्रकार ?
भगवंत भाखै पंच प्रकारे, साभल तसु विस्तार ॥
[प्रयोग-परिणत पुद्गल कहियै]

१९. पयोगपरिणया ण भते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पचविहा पण्णत्ता, तं जहा—

२०. एकेंद्रिय प्रयोग-परिणता, इम बेइंद्री जाण।
जाव पंचेंद्री प्रयोग-परिणता, ए पंच भेद पहिछाण ॥

२०. एगिंदियपयोगपरिणया, जाव (सं० पा०) पचिंदिय-पयोगपरिणया। (श० ८।२)

२१. प्रभु ! एकेंद्री प्रयोग-परिणता, पुद्गल कितै प्रकार ?
श्री जिन भाखै शिष्य अभिलापै, पच प्रकार विचार ॥

२१. एगिंदियपयोगपरिणया णं भते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—

२२. पुढवी एकेंद्री प्रयोग-परिणता, इम अप तेउ वाउकाय।
पचमी वणस्सइकाय एकेंद्रिय, प्रयोग-परिणता ताय ॥

२२. पुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया, आउकाइयएगिंदियपयोगपरिणया, तेउकाइयएगिंदियपयोगपरिणया, वाउकाइयएगिंदियपयोगपरिणया, वणस्सइकाइयएगिंदियपयोगपरिणया (श० ८।३)

२३. पृथ्वी एकेंद्री प्रयोग-परिणता, पुद्गल हे जिनराय ?
कितै प्रकारै आप परूप्या ? जिन कहै द्विविध ताय ॥

२३ पुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ण भते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

२४. सूक्षम पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, प्रयोग-परिणता पेख।
बादर पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, प्रयोग-परिणता देख ॥
२५. अप एकेंद्री प्रयोग-परिणता, इणहिज रीत कहाय।
बे-बे भेद इसीविध कहिवा, जाव वणस्सइकाय ॥
२६. बेइंद्रिय प्रयोग नी पूछा, जिन कहै अनेक प्रकार।
लट गीडोला अलसिया कृमिया, प्रमुख बहुविध धार ॥

२४. सुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया, बादरपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया य।
२५ आउकाइयएगिंदियपयोगपरिणया एव चेव। एव दुयओ भेदो जाव वणस्सइकाइया य। (श० ८।४)
२६ बेइंदियपयोगपरिणयाण पुच्छा।
गोयमा ! अणेगविहा पण्णत्ता।
पुलाककृमिकादिभेदत्वात् द्वीन्द्रियाणाम्। (वृ० प० ३३१)

२७. एव तेइंद्री प्रयोग-परिणता, कुथु कीड़्या आदि।
चउरिंद्री पिण बहु माखी, माछर प्रमुख सवादि ॥

२७ एवं तेइंदिय-चउरिंदियपयोगपरिणया वि। (श० ८।५)
त्रीन्द्रियप्रयोगपरिणता अप्यनेकविधा कुंथुपिपीलिकादिभेदत्वात्तेषां, चतुरिन्द्रियप्रयोगपरिणता अप्यनेकविधा एव मक्षिकामशकादिभेदत्वात्तेषाम्। (वृ० प० ३३१)

२८. पंचेंद्रिय प्रयोग नी पूछा, जिन कहै च्यार प्रकार।
नरक-पंचेद्रि प्रयोग-परिणता, इम तिरि मणु सुर धार॥

२८ पंचिंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—नेरइय-पंचिंदियपयोगपरिणया, तिरिक्खमणुस्स-देवपंचिंदियपयोगपरिणया। (श० ८।६)

२९. नरक-पंचेंद्री-प्रयोग नी पूछा, जिन कहै तसु विध सात।
रत्नप्रभा-नारक-पंचेद्री, जाव तमतमा ख्यात॥

२९ नेरइयपंचिंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा—रयणप्पभ-पुढवि-नेरइयपंचिंदियपयोगपरिणया वि जाव अहेसत्तमपुढविनेरइयपंचिंदियपयोगपरिणया वि। (श० ८।७)

३०. तिरिक्ख-पचेंद्री-प्रयोग नी पूछा, जिन कहै तीन प्रकार।
जलचर-पंचेंद्री-प्रयोग-परिणता, थलचर खेचर धार॥

३० तिरिक्खजोणियपंचिंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—जलचरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपयोगपरिणया, थलचरतिरिक्ख ....खहचरतिरिक्ख.... परिणया

३१. जलचर-पंचेंद्री-तिरि पूछा, जिन कहै तसु विध दोय।
संमूच्छिम-जलचर-पचेंद्री, गर्भेज जलचर जोय॥

३१ जलचरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मुच्छिमजलचरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपयोगपरिणया, गब्भवक्कंतियजलचरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपयोगपरिणया। (श० ८।९)

३२. थलचर-तिरि-पंचेंद्री पूछा, द्विविध कहै जिनराय।
चोपद थलचर परिसर्प थलचर, ए विहु भेद कहाय॥

३२ थलचरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—चउप्पयथलचरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपयोगपरिणया, परिसप्पथलचरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपयोगपरिणया। (श० ८।१०)

३३. चोपद थलचर केरी पूछा, द्विविध कहै जिन स्वाम।
संमूच्छिम चोपद थलचर धुर, गर्भेज थलचर नाम॥

३३ चउप्पयथलचरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मुच्छिमचउप्पयथलचरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपयोगपरिणया, गब्भवक्कंतियचउप्पयथलचरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपयोगपरिणया। (श० ८।११)

३४. इण आलावे करिनै कहिवा, द्विविध परिसर्प जेह।
उरपरिसर्प हिया सूं चालै, भुज परिसर्प भुजेह॥

३४ एवं एएणं अभिलावेणं परिसप्पा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—उरपरिसप्पा य भुयपरिसप्पा य।

३५. उरपरिसर्प द्विविध जिन आख्या, संमूच्छिम गर्भेज।
एवं भुजपरिसर्प द्विविध है, खेचर एम कहेज॥

३५ उरपरिसप्पा दुविहा पण्णत्ता तं जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य। एवं भुयपरिसप्पा वि। एवं खहयरा वि। (श० ८।१२)

३६. मनुष्य-पचेंद्री-प्रयोग नी पूछा, जिन कहै दोय प्रकार।
मनुष्य-संमूच्छिम चउद स्थानकिया, गर्भेज-मनुष्य विचार॥

३६ मणुस्सपंचिंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मुच्छिममणुस्सपंचिंदियपयोगपरिणया, गब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदियपयोगपरिणया। (श० ८।१३)

३८. देव-भवणवासी नी पूछा, जिन कहै दसविध देख।
असुरकुमारा जावत कहिवा, थणियकुमारा पेख॥

३८. भवणवासिदेवपंचिंदियपयोगपरिणयाण पुच्छा।
गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता, तं जहा—असुरकुमार-देवपंचिंदियपयोगपरिणया जाव थणियकुमारदेवपंचि-दियपयोगपरिणया। (श० ८।१५)

३९. इण आलावे करिनै कहिवा, व्यंतर आठ प्रकार।
बहु पिसाचा जाव गंधर्वा, ए मोटी ऋद्धि ना विचार॥

३९. एव एएण अभिलावेण अट्ठविहा वाणमंतरा—पिसाया जाव गधव्वा।

४०. पंच प्रकार परूप्या ज्योतिषी, वासी चंद्र-विमान।
जावत तार-विमाण ज्योतिषी, हिव वैमानिक जान॥

४०. जोतिसिया पचविहा पण्णत्ता, तं जहा—चदविमाण-जोतिसिया जाव ताराविमाणजोतिसियदेवपंचिंदिय-पयोगपरिणया।

४१ दोय प्रकार वैमानिक देवा, कल्प विषे उपपात।
कल्पातीत विषे जे ऊपना, महा ऋद्धिवंत विख्यात॥

४१. वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—कप्पोवगवेमा-णिया कप्पातीतगवेमाणिया।

४२. कल्प विषे उपना छै तेहना, दाख्या द्वादश भेद।
सुधर्म-कल्प विषे जे उपना, यावत अच्युत वेद॥

४२ कप्पोवगवेमाणिया दुवालसविहा पण्णत्ता, त जहा—सोहम्मकप्पोवगवेमाणिया जाव अच्चुयकप्पोवगवेमा-णिया।

४३. कल्पातीतक दोय प्रकारे, ग्रैवेयक पहिछान।
पवर अणुत्तर विषे ऊपनां, कल्पातीत सुजान॥

४३. कप्पातीतगवेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—गेवे-ज्जगकप्पातीतगवेमाणिया, अणुत्तरोववातियकप्पातीत-गवेमाणिया।

४४. ग्रैवेयक, नवविध जिन दाख्या, हेठिम-हेठिम होय।
यावत उवरिम-उवरिम ए नव ग्रैवेयक अवलोय॥

४४. गेवेज्जगकप्पातीतगवेमाणिया नवविहा पण्णत्ता, त जहा—हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जगकप्पातीतगवेमाणिया जाव उवरिमउवरिमगेवेज्जगकप्पातीतगवेमाणिया। (श० ८।१६)

४५. अणुत्तरोत्पन्न कल्पातीतक, सुर-पंचेंद्रिय-प्रयोग।
तेह परिणता पुद्गल प्रभुजी ! किते प्रकार सुजोग ?

४६. जिन कहै पच प्रकार परूप्या, विजय अणुत्तरोपपात।
जाव सव्वट्ठसिद्ध विषय ऊपना, जाव परिणता ख्यात॥

४५. अणुत्तरोववातियकप्पातीतगवेमाणियदेवपंचिंदियपयोग-परिणया ण भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

४६ गोयमा! पंचविहा पण्णत्ता, त जहा—विजयअणुत्तरो-ववातिय जाव सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववातियकप्पातीतग-वेमाणियदेवपंचिंदियपयोगपरिणया। (श० ८।१७)

**सोरठा**

४७. कह्यो धर्मसी एम, सूक्षम पृथ्वी आदि दे।
सव्वट्ठसिद्ध लग तेम, भेद इक्यासी जीव ना॥

४८. आठ कर्म छै तास, पुद्गल तेह प्रयोगसा।
धर दडक सुविमास, समचै इहविध आखियो॥

४९. *एकेंद्रियादि सव्वट्ठसिद्ध लग, जीव भेद विशेष थी।
पुद्गल एह प्रयोग-परिणत, प्रथम दंडक उक्त थी॥

४९. एकेन्द्रियादिसर्वार्थसिद्धदेवान्तजीवभेदविशेषितप्रयोग-परिणताना पुद्गलाना प्रथमो दण्डकः। (वृ० प० ३३१)

---

*लय : पूज मोटा भांजै टोटा

## दूहा

५०. सूक्षम पृथ्वी आदिदे, सव्वट्ठसिद्ध पर्यंत।
पज्जत्तापज्जत्त विशेष कर, द्वितियो दडक हुंत॥

५१. *सूक्षम पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, प्रयोग-परिणता जान।
ते पुद्गल प्रभु ! कितै प्रकारै ? जिन कहै द्विविध मान॥

५२. केइ प्रथम अपज्जत्तग भणै छै, पछै पज्जत्तगा जाण।
अपर्याप्त नैं पहिला भाखै, पाछै पर्याप्त आण॥

५३. पज्जत्तग सूक्षम पृथ्वी नां, जाव परिणता जोय।
अपर्याप्त सूक्षम पृथ्वी ना, जाव परिणता होय॥

५४. बादर पृथ्वीकाय एकेद्री, इमहिज करिवा भेद।
एवं जाव वनस्पति जीवा, भणवा आण उमेद॥

५५. इक-इक नां द्विविध करि कहिवा, सूक्षम बादर दोय।
तेहना वे वे भेदज कहिवा, पज्जत्त अपज्जत्त जोय॥

५६. हिव बेइंद्रिय प्रयोग नी पूछा, जिन कहै दोय प्रकार।
पज्जत्त-बेइंद्री-प्रयोग-परिणता, अपर्याप्त इम धार॥

५७. तेइद्री नां भेद वे इमहिज, चउरिंद्री पिण एम।
पचेद्री नां भेद कहै हिव, साभलज्यो धर प्रेम॥

५८. रत्नप्रभा नारकी नी पूछा, जिन कहै दोय प्रकार।
पर्याप्त-रत्नप्रभा जाव परिणत, अपर्याप्त इम धार॥

५९. एवं यावत नरक सातमी, करिवा बे बे भेद।
हिव तिर्यंच-पचेद्री केरा, सुणज्यो आण उमेद॥

६०. सर्मूच्छिम-जलचर-तिरि पूछा, जिन कहै दोय प्रकार।
पर्याप्त नैं अपर्याप्त नी, इम गर्भज विचार॥

६१. सर्मूच्छिम-चउपद-थलचर ना, इम वे भेद कहाय।
गर्भज-चउपद-थलचर नां पिण, दोय भेद इम थाय॥

६२. एवं जाव संमूर्च्छिम खेचर, इम गर्भज पिछाण।
इक इक नां वे भेदज भणवा, पज्जत्त अपज्जत्त जाण॥

६३. संमूर्च्छिम-मनुष्य-पचेंद्रिय, दोय प्रकार सुजोय।
पज्जत्त अपज्जत्त कह्या पाठ मे, न्याय हिये अवलोय॥

## सोरठा

६४. 'भेद ग्यारमो एह, दोय भेद किणविध तसु।
नय वचने करि जेह, बुद्धिवत न्याय मिलावियै॥

---

५० सुहुमपुढविकाइए' इत्यादि सर्वार्थसिद्धदेवान्त. पर्याप्त-कापर्याप्तकविशेपणो द्वितीयो दण्डकः।
(वृ० प० ३३१)

५१ सुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ण भते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—

५३ पज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया य, अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया य।

५४ बादरपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया एवं चेव। एव जाव वणस्सइकाइया।

५५ एक्केका दुविहा—सुहुमा य, बादरा य, पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य भाणियव्वा। (श० ८।१८)

५६ वेइदियपयोगपरिणयाण पुच्छा।
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगवेइदियपयोगपरिणया य, अपज्जत्तग जाव परिणया य।

५७ एव तेइदिया वि, एव चउरिंदिया वि।
(श० ८।१९)

५८. रयणप्पभपुढविनेरइयपयोगपरिणयाण पुच्छा।
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगरयणप्पभ जाव परिणया य अपज्जत्तग जाव परिणया य।

५९. एव जाव अहेसत्तमा। (श० ८।२०)

६० संमुच्छिमजलचरतिरिक्ख—पुच्छा।
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तग अपज्जत्तग। एव गब्भवक्कतिया वि।

६१ समुच्छिमचउप्पयथलचरा एव चेव। एव गब्भवक्कतिया वि।

६२. एव जाव समुच्छिमखहयरगब्भवक्कतिया य। एक्केके पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य भाणियव्वा। (श० ८।२१)

६३ समुच्छिममणुस्सपचिंदिय—पुच्छा।
गोयमा ! एगविहा पण्णत्ता—अपज्जत्तगा चेव।
(श० ८।२२)

---

*लय : कनकमंजरी चतुर विचक्षण

अपर्याप्तो विमास, न्याय इसो दीसै अछै ॥

६७ अथवा वाट वहत, पर्याप्ति तिण बाधी नथी ।
अपर्याप्तो कहंत, ए आथी पिण जाणियै ॥

६८. किणहिक परत मझार, संमूच्छिम जे मनुष्य ते ।
एक हि विध अवधार, अपर्याप्तोज पेखियो ॥

६९. संमूच्छिम मनु[1] बोल, जूनी परतज जेह छै ।
तालपत्र नी तोल, तेह मध्ये नथी दीसतु ॥

७०. किणहिक टवा मझार, एहवू म्है देख्यु अछै ।
आख्यो तिण अनुसार, सर्वज्ञ वदै तिकोज सत्य[2] ॥ (ज० स०)

७१. *गर्भेज-मनुष्य-पंचेंद्री पूछा, दोय भेद तसु देख ।
पज्जत्त अपज्जत्त मनुष्य-पंचेंद्री, प्रयोग-परिणत पेख ॥

७१. गब्भवक्कतियमणुस्सपचिदिय—पुच्छा ।
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगगब्भव-क्कतिया वि, अपज्जत्तगगब्भवक्कंतिया वि ।
(श० ८।२३)

७२. असुरकुमार भवनपति पूछा, जिन कहे दोय प्रकार ।
पज्जत्त अपज्जत्त इम बे भणवा, जावत थणियकुमार ॥

७२. असुरकुमारभवणवासिदेवाण पुच्छा ।
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगअसुर-कुमार अपज्जत्तगअसुरकुमार । एव जाव थणिय-कुमारा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । (श० ८।२४)

७३. इण आलावे करि इम भणवा, बे बे भेद विचार ।
पिसाच व्यंतर जाव गधर्वा, चदा यावत तार ॥

७३ एवं एतेण अभिलावेणं दुयएण भेदेण पिसाया जाव गधव्वा । चदा जाव ताराविमाणा ।

७४. सोधर्म यावत अच्युत सूधी, हेठिम-हेठिम एम ।
यावत उवरिम-उवरिम नवमों, विजय अणुत्तर तेम ॥

७४. सोहम्मकप्पोवगा जावच्चुतो । हेट्ठिमहेट्ठिम-गेवेज्ज-कप्पातीत जाव उवरिमउवरिमगेवेज्ज । विजयअणुत्त-रोववाइय

७५ यावत अपराजित पिण इमहिज, सर्वारथसिद्ध जाण ।
कल्पातीत पंचमो तेहनो, प्रश्न किये जिन वाण ॥

७५. जाव अपराजिय । (श० ८।२५)
सव्वट्ठसिद्धकप्पातीत—पुच्छा ।

१ मनुष्य

२ जयाचार्य ने जिस पाठ के आधार पर जोड़ की, उस प्राचीन प्रति मे समूच्छिम मनुष्य के दो भेद किए हुए हैं । पर उस पाठ की सगति नही बैठती इसलिए जयाचार्य को गाथा ६४ से ७० तक सात सोरठो मे इस विषय की समीक्षा कर न्याय मिलाना पडा । उन्हे एक आदर्श ऐसा भी मिला था जिसमे संमूच्छिम मनुष्य का एक ही भेद था, किन्तु वह प्रति प्राचीन नही थी । किसी टवा की प्रति मे उनको उक्त पाठ उपलब्ध हुआ था, जिसका उन्होने सकेत भी किया है । अंगसुत्ताणि भाग २ मे एक भेद वाला पाठ ही रखा गया है । वहा किसी पाठान्तर की सूचना भी नही है। सगति भी इसी पाठ से बैठती है। इसलिए ६३ वी गाथा मे दो भेदो का उल्लेख होने पर भी उसके सामने अगसुत्ताणि का एक भेद वाला पाठ उद्धृत किया गया है ।

*लय : कनकमंजरी चतुर विचक्षण

७६. दोय प्रकार परूप्या तेहना, पज्जत्त सव्वट्ठसिद्ध जाण।
अपर्याप्त सव्वट्ठसिद्ध यावत, परिणता पिण पहिछाण॥

७६. गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय, अपज्जत्तासव्वट्ठ जाव परिणया वि। (श० ८।२६)

**सोरठा**

७७. सूक्षम-पृथ्वी आदि, सर्वार्थसिद्ध लग कह्यं।
पज्जत्त अपज्जत्त साधि, द्वितियो दडक भाखियो॥

७८. *अपज्जत्त-सूक्ष्म-पृथ्वी-एकेंद्री, प्रयोग-परिणता जेह।
ओदारिक तेजस कार्मण तनु, प्रयोग-परिणता तेह॥

७८ जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया।

७६. जेह पर्याप्त सूक्षम जावत, परिणता ते कहिवाय।
ओदारिक तेजस नै कार्मण तनु, प्रयोग-परिणताय॥

७६ जे पज्जत्तासुहुम जाव परिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया।

८०. एव जाव चउरिंद्री पर्याप्त, णवरं वायू मांय।
पर्याप्ता में वैक्रिय अधिको, ते इहविध कहिवाय॥

८० एव जाव चउरिंदिया पज्जत्ता, नवर—

८१. पज्जत्त-बादर-वायु-एकेंद्रो, प्रयोग-परिणता जेह।
आहारक विण चिहु यावत परिणत, सेस त चेव कहेह॥

८१ जे पज्जत्ताबादरवाउकाइयएगिंदियप्पयोगपरिणया ते ओरालिय-वेउव्विय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया। सेसं तं चेव। (श० ८।२७)

८२. अपर्याप्त धुर नरक पंचेंद्री, प्रयोग-परिणता जेह।
ते वैक्रिय तैजस कार्मण तनु, प्रयोग-परिणतेह॥

८२ जे अपज्जत्तरयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियपयोग-परिणया ते वेउव्विय-तेया-कम्मासरीरापयोगपरिणया

८३. इमहिज पर्याप्त पिण तेहना, एवं यावत जाण।
सप्तम नरक पज्जत्त अपज्जत्त मे, तीन शरीर पिछाण॥

८३ एव पज्जत्तगा वि। एव जाव अहेसत्तमा। (श० ८।२८)

८४. अपज्जत्त सम्मूच्छिम जलचर ना, जाव परिणता जेह।
तेह ओदारिक तैजस कार्मण तनु, प्रयोग-परिणतेह॥

८४ जे अपज्जत्तासमुच्छिमजलचर जाव परिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मासरीर जाव परिणया।

८५. एव पर्याप्ता पिण तेहना, अपर्याप्ता गर्भेज।
संमूच्छिम जलचर जिम तेह मे, तीन शरीर कहेज॥

८५. एव पज्जत्तगा वि। गब्भवक्कतियअपज्जत्ता एव चेव।

८६. पर्याप्ता तसु इमहिज कहिवा, णवर च्यार शरीर।
बादर-वायु पज्जत्त जिम जाणो, जलचर-पज्जत्त समीर॥

८६ पज्जत्तगा ण एव चेव, नवर—सरीरगाणि चत्तारि जहा बादरवाउकाइयाण पज्जत्तगाण।

८७. जिम जलचर ना च्यार आलावा, सम्मूच्छिम ना दोय।
पर्याप्ता नैं अपर्याप्ता ए, बे गर्भेज नां होय॥

८७ एव जहा जलचरेसु चत्तारि आलावगा भणिया।

८८. एव चउपद उरपरिसर्प ना, भुजपरिसर्प ना च्यार।
खेचर ना पिण च्यार आलावा, भणवा न्याय उदार॥

८८ एव चउप्पया-उरपरिसप्प-भुयपरिसप्पखहयरेसु वि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा। (श० ८।२९)

८९. जे संमूच्छिम मनुष्य-पचेंद्री, प्रयोग-परिणता एह।
ते औदारिक तेजस कार्मण तनु, जावत परिणतेह॥

८९ जे समुच्छिममणुस्सपंचिंदियपयोगपरिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया।

**सोरठा**

९०. 'सम्मूच्छिम मणु[1]' माहि, समचै तीन तनू कह्या।
पजत्त अपज्जत्त ताहि, इहा बे भेद कह्या नथी॥

*लय : कनकमंजरी चतुर विचक्षण

1. मनुष्य

९२. *इम गर्भज मनुष्य अपर्याप्त, तीन शरीरज पाय।
पर्याप्ता पिण णवर इमहिज, पंच शरीर कहाय॥

९२ एवं गब्भवक्कंतिया वि। अपज्जत्तगा वि पज्जत्तगा वि एवं चेव, नवरं—सरीरगाणि पंच भाणियव्वाणि। (श० ८।३०)

९३. अपज्जत्त-असुर-भवनवासी ते, नारकी जेम विचार।
इम पर्याप्त इम द्वि भेदे, जावत थणियकुमार॥

९३ जे अपज्जत्ताअसुरकुमारभवणवासि जहा नेरइया तहेव। एवं पज्जत्तगा वि। एवं दुयएणं भेदेणं जाव थणियकुमारा।

९४. एवं पिसाचा जाव गंधर्वा, चंदा यावत तार।
सोधर्मकल्प यावत अच्चू लग, नव ग्रैवेयक सार॥

९४ एवं पिसाया जाव गंधव्वा। चंदा जाव ताराविमाणा। सोहम्मकप्पो जावच्चुओ। हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जग जाव उवरिमउवरिमगेवेज्जग।

९५. विजय अणुत्तर जाव सव्वट्ठसिद्ध, अपज्जत्त पज्जत्त सुचीन॥
भणवा ए बे भेद पाचू ना, चरम भेद इम लीन॥
९६. अपज्जत्त सव्वट्ठसिद्ध अणुत्तर नां, जाव परिणता तेह।
तेह वैक्रिय तेजस कार्मण तनु, प्रयोग-परिणतेह॥

९५,९६ विजयअणुत्तरोववाइय जाव सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय। एक्केक्के दुयओ भेदो भणियव्वो जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव (स० पा०) परिणया ते वेउव्विय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया। (श० ८।३१)

९७. पर्याप्ता पिण इमहिज कहिवा, तीजो दंडक एह।
ओदारिकादिक शरीर विशेषण, आख्यो जिन वचनेह॥

९७ 'जे अपज्जत्ता सुहुमपुढवी' त्यादिरौदारिकादिशरीरविशेषणस्तृतीयो दण्डकः। (वृ० प० ३३१)

## दूहा

९८. अपज्जत्त-सूक्ष्म-पृथ्वि ले, सव्वट्ठसिद्ध पर्यंत।
इंद्रिय विशेषण हिव कहूं, चतुर्थ दंडक तंत॥

९८ जे अपज्जत्तासुहुमपुढवी' त्यादिरिन्द्रियविशेषणश्चतुर्थो दण्डकः। (वृ० प० ३३२)

९९. *अपज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वी एकेंद्री-प्रयोग-परिणता जेह।
ते फर्शेंद्री-प्रयोग-परिणता, इम पर्याप्ता लेह॥

९९ जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ते फासिंदियपयोगपरिणया जे पज्जत्तासुहुमपुढविकाइय एवं चेव।

१००. अपज्जत्त-बादर-पृथ्वी-एकेन्द्री, इणहिज रीत कहाय।
पर्याप्ता पिण इमहिज कहिवा, फर्शेंद्री प्रयोग ताय॥

१००. जे अपज्जत्ताबादरपुढविकाइय एवं चेव। एवं पज्जत्तगा वि।

१०१. सूक्ष्म-बादर-अपज्जत्त पज्जत्ता, चिउ भेद करि ताय।
फर्शेंद्री प्रयोग-परिणता, जाव वणस्सइकाय॥

१०१. एवं चउक्कएणं भेदेणं जाव वणस्सतिकाइया। (श० ८।३२)

१०२. जे अपज्जत्त-बेंद्री-प्रयोग-परिणता, जीभ फर्शेंद्री तेह।
प्रयोग-परिणता पुद्गल कहियै, पर्याप्ता इम लेह॥

१०२ जे अपज्जत्ताबेइंदियपयोगपरिणया ते जिब्भिंदिय-फासिंदियपयोगपरिणया, जे पज्जत्ताबेइंदिय एवं चेव।

१०३. एवं जाव चउरिंद्रिया कहिया, णवरं इक-इक तास।
इंद्रिय अधिक वधावणी जेहनै, यावत हियै विमास॥

१०३ एवं जाव चउरिंदिया, नवरं—एक्केक्कं इंदियं वड्ढेयव्वं। (श० ८।३३)

१०४. अपज्जत्त प्रथम नरक पंचेंद्री, प्रयोग-परिणता जेह।
श्रोत्र चक्षु घ्राण जीभ फर्शेंद्रिय, प्रयोग-परिणता तेह॥

१०४. जे अपज्जत्तरयणप्पभपुढविनेरइयपंचिंदियपयोगपरिणया ते सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय फासिंदियपयोगपरिणया।

*लय : कनकमंजरी चतुर विचक्षण

१०५. पर्याप्ता पिण इमहिज कहिवा, प्रथम नरक जिम जाण।
सर्व नरक भणवी इण रीते, इंद्रिय पंच पिछाण॥

१०६ तिरि पंचेंद्री मनुष्य नें देवा, जाव पर्याप्त जेह।
सर्वार्थसिद्ध जाव परिणता, पंच इद्रिय परिणतेह॥

## दूहा

१०७. अपज्जत्त-सूक्ष्म-पृथ्वि ले, शरीर इंद्रिय जाण।
एह विशेषण विहुं तणु, पंचम दंडक आण॥

१०८. *जे अपज्जत्त-सूक्ष्म-पृथ्वि-एकेंद्री, ओदारिकादिक तत्थ।
तीन शरीर प्रयोग-परिणता, ते फर्शेंद्री परिणत्त॥

१०९. इमज पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वी, बादर अपज्जत्त एम।
बादर-पृथ्वी-पर्याप्त इमहिज, कहिवा पूरव जेम॥

११०. इण आलावे करिनें जेहनें, जेतली इंद्री होय।
जेता शरीर हुवै ते कहिवा, जाव सव्वट्ठसिद्ध जोय॥

१११. पर्याप्ता जे सव्वट्ठसिद्ध ना, वैक्रिय तेजस तत्थ।
कार्मण शरीर प्रयोग-परिणता, ते पच इद्रिय परिणत्त॥

## दूहा

११२. अपज्जत्त-सूक्ष्म-पृथ्वि ले, वर्ण गंध रस फास।
फुन संस्थान विशेपणे, छट्ठो दडक तास॥

११३. *जे अपज्जत्ता-सूक्ष्म-पृथ्वी, एकद्री प्रयोग-परिणत्त।
वर्ण थकी ते कृष्णे वर्णे, परिणता तास कथित्त॥

११४. नील रक्त पीला नें धवला, गध थकी अवलोय।
सुगध करि परिणत पुद्गल, दुर्गंध परिणत पिण होय॥

११५. रस थी तिक्त परिणता पिण छै, कटुक परिणत जेह।
कसाय रस करि परिणत पिण ते, खाटा मीठा तेह॥

११६. फर्श थकी कक्खड़ परिणत पिण, यावत लूखा तत्थ।
सठाण थी परिमडल वट्ट फुन, तस चउरस आयत्त॥

११७. जे पज्जत्तग सूक्षम पृथ्वी, एव चेव सुदिट्ठ।
इम जिम अनुक्रम कर नें जाणवु, जाव जे पज्जत्ता सव्वट्ठ॥

११८. जे पर्याप्ता सव्वट्ठसिद्ध ना, जाव परिणता जाण।
तेह वर्ण थी कृष्ण परिणता, जाव आयत सठाण॥

*लय : कनकमंजरी चतुर विलक्षण

१०५ एवं पज्जत्तगा वि। एव सव्वे भाणियव्या।

१०६. तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवा जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठ-सिद्धअणुत्तरोववाइय जाव (सं० पा०) परिणया ते सोइंदिय-चक्खिदिय-पयोगपरिणया। (श० ८।३४)

१०७ 'जे अपज्जत्ता सुहुमपुढवी' त्यादिरौदारिकादिसरीर-स्पर्शादीन्द्रियविशेपण पञ्चम। (वृ० प० ३३२)

१०८ जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियओरालिय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया ते फासिंदियपयोग-परिणया।

१०९ जे पज्जत्तासुहुम एव चेव। बादरअपज्जत्ता एव चेव। एव पज्जत्तगा वि।

११०,१११ एव एतेण अभिलावेण जस्स जति इदियाणि सरीराणि य तस्स ताणि भाणियव्वाणि जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव (स०पा०) देवपंचिदियवेउव्विय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया ते सोइदिय-चक्खिदिय जाव फासिंदियप्पयोगपरि-णया। (श० ८।३५)

११२ 'जे अपज्जत्ता सुहुमपुढवी' त्यादि वर्णगन्धरसस्पर्श-सस्थानविशेपण पष्ठ। (वृ० प० ३३२)

११३ जे अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि।

११४ नील-लोहिय-हालिद्द-सुक्किलवण्णपरिणया वि, गधओ सुब्भिगधपरिणया वि, दुब्भिगधपरिणया वि।

११५ रसओ तित्तरसपरिणया वि, कडुयरसपरिणया वि, कसायरसपरिणया वि अविलरसपरिणया वि, महुर-रसपरिणया वि।

११६ फासओ कक्खडफासपरिणया वि, जाव लुक्खफास-परिणया वि, सठाणओ परिमडलसठाणपरिणया वि, वट्ट-तस-चउरस-आयत-सठाणपरिणया वि।

११७,११८ जे पज्जत्तासुहुमपुढवि एव चेव। एव जहाणु-पुव्वीए नेयव्व जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरो-ववाइय जाव परिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसठाणपरिणया वि। (श० ८।३६)

१२०. *जे अपज्जत्ता सूक्षम-पृथ्वी, एकेंद्रिय छै तत्थ ।
ओदारिक तेजस नै कार्मण, तनु-प्रयोग-परिणत्त ।।
१२१. तेह वर्ण थी कृष्ण-परिणता, जाव आयत-परिणत्त ।
जे पर्याप्ता सूक्षम-पृथ्वी, एवंविध अवितत्थ ।।

१२२. इम जिम अनुक्रम करि नैं जाणवू, पूरव जेम सुदिट्ठ ।
जेहनै जेता तनु ते भणवा, जाव जे पज्जत्ता सव्वट्ठ ।।
१२३. जेह पर्याप्त सव्वट्ठसिद्ध ना, देव पचेंद्रिय देख ।
वैंक्रिय तेजस कार्मण तनु जे, जाव परिणता पेख ।।
१२४. तेह वर्ण थी कृष्ण वर्ण नैं, पुद्गल-परिणत होय ।
जाव आयत-सठाण-परिणता, सप्तम दंडक सोय ।।

१२० जे अपज्जत्ता सुहुमपुढविक्काइयएगिंदियओरालिय-तेया-कम्मासरीरपयोगपरिणया ।
१२१. ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयत-सठाणपरिणया वि । जे पज्जत्ता सुहुमपुढविक्काइय एव चेव ।
१२२, १२३. एव जहाणुपुव्वीए नेयव्व, जस्स जइ सरीराणि जाव जे पज्जत्ता-सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय-कप्पातीतगवेमाणियदेवपचिंदियवेउव्विय-तेया-कम्मा-सरीरपयोगपरिणया ।
१२४ ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसठाण-परिणया वि । (श० ८।३७)

## दूहा

१२५. अपज्जत्त-सूक्ष्म-पृथ्वि ले, इद्रिय नैं वर्णादि ।
तास विशेपण नो हिवै, अष्टम दडक आदि ।।

१२५. इन्द्रियवर्णादिविशेपणोऽष्टम । (वृ० प० ३३२)

१२६. *जे अपज्जत्ता-सूक्षम-पृथ्वी, एकेंद्रिय अवलोय ।
फर्शेंद्रिय प्रयोग-परिणता, तेह वर्ण थी जोय ।।
१२७. कृष्ण वर्ण यावत आयत हि, संठाण-परिणता देख ।
पर्याप्ता-सूक्षम-पृथ्वी पिण, एव चेव सपेख ।।
१२८. इम जिम अनुक्रम पूर्वे कह्यो तिम, जेहनै जेतली दिट्ठ ।
इंद्रिय छै तसु भणवी तेतली, जाव जे पज्जत्ता सव्वट्ठ ।।
१२९. पर्याप्ता जे सव्वट्ठसिद्ध वर, जाव पचेंद्री पेख ।
श्रोतेंद्रिय जावत फर्शेंद्रिय-परिणता पुद्गल शेप ।।
१३०. तेह वर्ण थी कृष्ण-परिणता, जाव आयत-संठाण ।
परिणता पिण पुद्गल आख्या छै, अष्टम दडक जाण ।।

१२६. जे अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयएगिंदियफासिंदिय-पयोगपरिणया ते वण्णओ ।
१२७ कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसठाणपरिणया वि । जे पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय एव चेव ।
१२८, १२९ एव जहाणपुव्वीए जस्स जति इदियाणि तस्स तति भाणियव्वाणि जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइयकप्पातीतगवेमाणियदेवपचिंदियसो-तिंदिय जाव फासिंदियपयोगपरिणया ।
१३० ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयत-सठाणपरिणया वि । (श० ८।३८)

## दूहा

१३१. अपज्जत्त-सूक्षम-पृथ्वि ले, तनु इद्रिय वर्णादि ।
तास विशेपण नों हिवै, नवमो दडक साधि ।।

१३१ शरीरेन्द्रियवर्णादिविशेपणो नवम ।
(वृ० प० ३३२)

१३२. *जे अपज्जत्ता-सूक्षम-पृथ्वी, एकेंद्रिय अवलोय ।
तीन शरीर अनै फर्शेंद्री, प्रयोग-परिणता सोय ।।
१३३. तेह वर्ण थी कृष्ण-परिणता, जाव आयत-सठाण ।
पर्याप्ता-सूक्षम-पृथ्वी नां, एव चेव पिछाण ।।

१३२. जे अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयएगिंदियओरालिय-तेया-कम्माफासिंदियपयोग-परिणया ।
१३३ ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसंठाण-परिणया वि । जे पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय एव चेव ।

---

*लय : कनकमंजरी चतुर विचक्षण

१३४. इम जिम अनुक्रम पूर्व कह्यो तिम, जेहनें जेतला जाण।
तनु इंद्री तसु कहियै तेतली, जावत इम पहिछाण॥

१३५. पर्याप्ता जे सव्वट्ठसिद्ध अणु, जाव सुर पंचेंद्री पिछाण।
वैक्रिय तेजस अनें कार्मण, इंद्रिय पंच सुजाण॥

१३६. तेह वर्ण थी कृष्ण-परिणता, जाव आयत-संठाण।
परिणता पिण पुद्गल आख्या छै, ए नवमो दंडक जाण॥

१३७. *एह प्रयोग-परिणता नां नव, आख्या दंडक ऐन।
श्री जिनराज तणा वच सरध्या, मुक्ति-वधू चित चैन॥

१३८. पुद्गल मीसा-परिणता प्रभुजी ! आख्या कितलै भेद ?
जिन कहै पंच प्रकार परूप्या, सांभल आण उमेद॥
(मीसा पुद्गल एह कह्या जिन।)

१३९. एकेंद्रिय-मीसा-परिणत पिण, जाव पंचेंद्रिय मीस।
प्रभु! एकेंद्री-मीसा-परिणता, पुद्गल कतिविध दीस ?

१४०. जिन कहै पच प्रकार परूप्या, प्रयोग-परिणत जेम।
नव दंडक आख्या तिमहिज नव, मीसा-परिणत एम॥

१४१. णवरं मीसा-परिणता भणवा, शेष तिमज कहिवाय।
पूर्व ठाम प्रयोग-परिणता, इहां मीसा-परिणताय॥

१४२. जाव पर्याप्त जेह सव्वट्ठसिद्ध, जाव आयत-संठाण।
तेह परिणता पिण होवै छै, ए नव दंडक जाण॥

१४३. ए नव दडक विषे जीव जे, मूक्या पुद्गल तेह।
ते मीसा-परिणता कहीजै, जीव-मुक्त तनु एह॥

१४४. हे भगवत ! वीससा-परिणता, पुद्गल कितै प्रकार ?
जिन कहै पच प्रकार परूप्या, ते कहियै अधिकार॥
(एह स्वभावे परिणम्या पुद्गल)

१४५. वर्ण-परिणता गध-परिणता, रस-परिणता रेख।
फास-परिणता भेद चतुर्थो, संठाण-परिणता शेष॥

१४६. वर्ण-परिणता पंच प्रकारे, कृष्ण-वर्ण-परिणत्त।
जाव शुक्ल वर्णे परिणत बहु, गंध द्विविध अवितत्थ॥

१४७. जेम पन्नवणा धुर पद दाख्या, तिमज सर्व कहिवाय।
यावत चरम सूत्र जिहा एहवूं, सामलज्यो चित ल्याय॥

१३४. एवं जहाणुपुव्वीए जस्स जति सरीराणि इंदियाणि य तस्स तति भाणियव्वाणि जाव।

१३५ जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पातीतगवेमाणियदेवपंचिंदियवेउव्विय-तेया-कम्मा-सोइंदिय जाव फासिंदियपयोगपरिणया।

१३६ ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसठाणपरिणया वि।

१३७. एते नव दंडगा। (श० ८।३९)

१३८ मीसापरिणया ण भते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ? गोयमा ! पचविहा पण्णत्ता, त जहा—

१३९ एगिंदियमीसापरिणया जाव पंचिंदियमीसापरिणया। (श० ८।४०)
एगिंदियमीसापरिणयाण भते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

१४० एव जहापयोगपरिणएहिं नव दंडगा भणिया, एव मीसा-परिणएहिं वि नव दडगा भाणियव्वा, तहेव सव्वं निरवसेस।

१४१ नवर—अभिलावो मीसापरिणया भाणियव्व, सेस त चेव।

१४२. जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव आयतसठाणपरिणया वि। (श० ८।४१)

१४४ वीससापरिणया ण भते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ? गोयमा ! पचविहा पण्णत्ता, त जहा—

१४५ वण्णपरिणया, गधपरिणया, रसपरिणया, फासपरिणया, सठाणपरिणया।

१४६ जे वण्णपरिणया ते पचविहा पण्णत्ता, त जहा—कालवण्णपरिणया जाव सुक्किलवण्णपरिणया।
जे गधपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सुब्भिगंधपरिणया, दुब्भिगंधपरिणया।

१४७ एव जहा पण्णवणाए (पद १।४) तहेव निरवसेस जाव।

*लय : कनकमंजरी चतुर विचक्षण

भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशाल ॥

## ढाल : १३१

### दूहा

१. हिव इक पुद्गल द्रव्य जे, ते आश्री परिणाम ।
चिंतवन करता छता, पूछै गोतम स्वाम ॥

१ अथैक पुद्गलद्रव्यमाश्रित्य परिणाम चिन्तयन्नाह—
(वृ० प० ३३२)

२. *एगे भंते ! द्रव्य-पुद्गल पहचाणिए,
तेह भणी स्यूं प्रयोग-परिणत माणियै ।
अथवा मीसा-परिणत तिण नैं दाखियै,
कै वीससा-परिणते वचन इक आखियै ?

२. एगे भते ! दव्वे किं पयोगपरिणए ? मीसापरिणए? वीससापरिणए ?

३. श्री जिन भाखै प्रयोग-परिणत भाखियै,
और मीससा-परिणत पिण ते आखियै ।
अनै वीससा-परिणत ते द्रव्य जाणियै,
यां तीनूं रै मांहि वचन इक आणियै ॥

३. गोयमा ! पयोगपरिणए वा मीसापरिणए वा वीससापरिणए वा । (श० ८।४३)

४. जो ते द्रव्य प्रयोग-परिणते ह्वै सही,
तो स्यूं मनज-प्रयोग-परिणत तसु कही ।
वचन-प्रयोग-परिणते तास वखाणियै,
काय-प्रयोग-परिणत तेहनैं जाणियै ?

४. जइ पयोगपरिणए किं मणपयोगपरिणए ? वइपयोग-परिणए ? कायपयोगपरिणए ?

५. जिन कहै मन-प्रयोग-परिणत छै जिको,
अथवा वचन-प्रयोग-परिणत ह्वै तिको ।
अथवा काय-प्रयोग-परिणत तसु कह्यो,
यां तीनूं नो अर्थ वृत्ति थी इम लह्यो ॥

५. गोयमा ! मणपयोगपरिणए वा, वइपयोगपरिणए वा, कायपयोगपरिणए वा । (श० ८।४४)

### यतनी

६. मनपणै करी परिणमै तेह, इक पुद्गल परिणम्यो जेह ।
मन-प्रयोग-परिणत तास, कहियै वर न्याय विमास ॥

६. 'मणपओगपरिणए' त्ति मनस्तया परिणतमित्यर्थ ।
(वृ० प० ३३४)

७. भाषा द्रव्य प्रतै जे आम, काय जोगे करी ग्रही ताम ।
वचन जोगे करी निकलतां, वच-प्रयोग-परिणत हुंतां ॥

७. भाषाद्रव्यं काययोगेन गृहीत्वा वाग्योगेन निसृज्यमानं वाक्प्रयोगपरिणतमित्युच्यते ।
(वृ० प० ३३४, ३३५)

८. ओदारिकादिक जे काय जोग, तिण करिनै ग्रह्या ते अमोघ ।
ओदारिकादिक नी अवलोय, वर्गणा नां द्रव्य प्रति जोय ॥

८,९ औदारिकादिकाययोगेन गृहीतमौदारिकादिवर्गणा-द्रव्यमौदारिकादिकायतयापरिणत कायप्रयोगपरिण-तमित्युच्यते । (वृ० प० ३३५)

*लय : नदी जमुना रै तीर उड़ै दोय पंखिया

९. ओदारिक प्रमुख जे काय, तिण करिनै जे परिणत ताय ।
काय-प्रयोग-परिणत जाण, इम कहियै तास पिछाण ।।

१०. *जो मन-प्रयोग-परिणत द्रव्य होवै अछै,
स्यू सत्य-मन-प्रयोग-परिणत जेह छै ।
असत्य-मन प्रयोग-परिणत दाखियै,
सत्य-मृषा—मिश्र-मन-प्रयोग ते आखियै ।।

११ असत्यामृषा-मन-प्रयोगज परिणते ?
साच झूठ बिहुं नां हिज मन व्यवहार ते ।
प्रश्न चिउ मन जोग तणो गोयम भणें,
एक द्रव्य जगनाथ ! परिणमै किणपणें ?

१२. श्री जिन कहै सत्य-मन-प्रयोगज-परिणते,
तथा असत्य-मन-प्रयोग-परिणत द्रव्य ते ।
तथा मिश्र-मन-प्रयोग-परिणत छै जिको,
अथवा मन-व्यवहार-प्रयोगे छै तिको ।।

१३. जो सत्य-मन-प्रयोग परिणत जेह छै,
स्यूं आरंभ-सत्य-मन-प्रयोगज तेह छै ।
अणारंभ-सत्य-मन-प्रयोग पिछाणियै ?
परिणते सगले ठाम विचारी आणियै ।।

१४. सारंभ-सत्य-मन-प्रयोग उवेखियै,
असारंभ-सत्य-मन-प्रयोग विशेखियै ।
समारभ-सत्य-मन-प्रयोग कहीजियै,
असमारंभ-सत्य-मन-प्रयोग लहीजियै ।।

**यतनी**

१५. आरंभ जीव-घात अवलोय, सारंभ हणवा नों मन होय ।
समारंभ कह्यो परिताप, अर्थ तीनू तणो इम स्थाप ।।

१६. *जिन कहै आरभ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणते,
यावत असमारंभ-सत्य-मन द्रव्य ते ।
इहा आरंभ अणारभ सत्य मन नै कह्यो,
सावद्य निरवद्य एह न्याय गुणिजन लह्यो ।।

१७. जो ए असत्य-मन-प्रयोग करी परिणत अछै,
स्यू आरभ-मृषा-मन-प्रयोगे जेह छै ?
जिम सत्य-मन तिम असत्य-मन पिण जाणियै,
इम मिश्र-मन व्यवहार-मन इम ठाणियै ।।

**यतनी**

१८. 'अणारभ असत्य मन जेह, तेह थी पिण पाप वधेह ।
मन स्यू जाणै दिन नै रात, इण मे जीव तणी नहिं घात ।।

---

*लय : नदी जमुना रै तीर उड़ै दोय पंखिया

१०. जइ मणपयोगपरिणए किं सच्चमणपयोगपरिणए ? मोसमणपयोगपरिणए ? सच्चामोसमणपयोगपरिणए ?

११. असच्चामोसमणपयोगपरिणए ?

१२ गोयमा ! सच्चमणपयोगपरिणए वा, मोसमणपयोग-परिणए वा, सच्चामोसमणपयोगपरिणए वा, असच्चामोसमणपयोगपरिणए वा । (श० ८।४५)

१३ जइ सच्चमणपयोगपरिणए किं आरभसच्चमणपयोग-परिणए ? अणारभसच्चमणपयोगपरिणए ?

१४ सारभसच्चमणपयोगपरिणए ? असारभसच्चमण-पयोगपरिणए ? समारभसच्चमणपयोगपरिणए ? असमारभसच्चमणपयोगपरिणए ?

१५. आरम्भो—जीवोपघात ' ''सरम्भो—वधसंकल्प समार-भस्तु परिताप इति । (वृ० प० ३३५)

१६. गोयमा ! आरभसच्चमणपयोगपरिणए वा जाव असमारभसच्चमणपयोगपरिणए वा ।
(श० ८।४६)

१७. जइ मोसमणपयोगपरिणए किं आरंभमोसमणपयोग-परिणए ? एव जहा सच्चेण तहा मोसेण वि । एवं सच्चामोसमणपयोगेण वि । एव असच्चामोसमण-पयोगेण वि । (श० ८।४७)

२०. *जो वचन-प्रयोग करी नें परिणत जेह छै,
स्यूं सत्य-वचन-प्रयोग करी परिणत अछै ?
मन-प्रयोग कह्यो तिम वच पिण जाणवो,
यावत असमारंभ-प्रयोग पिछाणवो ॥

२०. जइ वइपयोगपरिणए किं सच्चवइपयोगपरिणए ? मोसवइपयोगपरिणए ? एवं जहा मणपयोगपरिणए तहा वइपयोगपरिणए वि जाव असमारभवइपयोगपरिणए वा। (श० ८।४८)

२१. जो काय-प्रयोग करी परिणत इक द्रव्य छै,
स्यूं ओदारिक शरीर काय प्रयोग छै ?
ओदारिक मिश्र-शरीर काय-प्रयोगे करी ?
वेक्रिय तनु काय ते प्रयोग करी फिरी ?

२१. जइ कायपयोगपरिणए किं ओरालियसरीरकायपयोगपरिणए ? ओरालियमीसासरीरकायपयोगपरिणए ? वेउव्वियसरीरकायपयोगपरिणए ?

२२. वेक्रिय-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग ते ?
आहारक-तनु जे काय-प्रयोग-परिणते ?
आहारक-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग है ?
कार्मण-शरीर-काय-प्रयोगे जोग है ?

२२. वेउव्वियमीसासरीरकायपयोगपरिणए ? आहारगसरीरकायपयोगपरिणए ? आहारगमीसासरीरकायपयोगपरिणए ? कम्मासरीरकायपयोगपरिणए ?

२३. जिन कहै औदारिक शरीरज काय जे,
तास प्रयोग करी परिणत कहिवाय जे।
यावत अथवा कार्मण शरीर जाणियै,
तेहिज काय प्रयोग थी परिणत ठाणियै ॥

२३. गोयमा ! ओरालियसरीरकायपयोगपरिणए वा जाव कम्मासरीरकायपयोगपरिणए वा। (श० ८।४९)

वा०—औदारिक शरीर हीज पुद्गलखंधरूपपणै करी उपचीयमानपणा थकी काय कहियै, ते औदारिकशरीरकाय। तेहनो जे प्रयोग ते ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग अथवा ओदारिक शरीर नो जे काय-प्रयोग ते ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग। इहा वृत्तिकार कह्य —ए पर्याप्तक नैं हीज हुवै।

औदारिकशरीरमेव पुद्गलस्कन्धरूपत्वेनोपचीयमानत्वात् काय औदारिकशरीरकायस्तस्य य प्रयोग औदारिकशरीरस्य वा य. कायप्रयोग स तथा। अय च पर्याप्तकस्यैव वेदितव्यस्तेन यत् परिणत तत्तथा। (वृ० प० ३३५)

'इहा वृत्तिकार जे मत प्रकट कर्‌यू' ते विरुद्ध। पर्याप्तक अपर्याप्तक बिहु नैं विषे पावै ते माटै। इहा हीज एक द्रव्य नी सूत्रे पूछा कीधी। तिहा कह्यु—जे एक द्रव्य-प्रयोग-परिणत, मीसा-परिणत अथवा वीससा-परिणत। अनै जे प्रयोग-परिणत ते मन-प्रयोग वा वचन-प्रयोग वा काय-प्रयोग-परिणत। पछै मन, वचन रा भेद कही कह्यु—जे काय-प्रयोग-परिणत ते ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत जाव कार्मण-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत। जे ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग परिणत ते एकेंद्रिय-ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत जाव पचेन्द्रिय-ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत। जे एकेंद्रिय-ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत ते पृथ्वीकाय-एकेंद्रिय-ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत जाव वनस्पतिकाय-एकेंद्रिय-ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत। जे पृथ्वी-एकेंद्रिय-ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत ते सूक्ष्म-पृथ्वीकाय जाव परिणत अथवा बादर-पृथ्वीकाय जाव परिणत। जे सूक्ष्म-पृथ्वीकाय जाव परिणत ते पर्याप्ता-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय जाव परिणत अथवा अपर्याप्ता-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय जाव परिणत इम बादर पिण।

इहा सूत्रे पर्याप्तक, अपर्याप्तक बिहु नैं विषे ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग कह्यो 'ते माटै वृत्ति मे पर्याप्त मे हीज ए हुवै, इम कह्य ते विरुद्ध'। (ज० स०)

* लय : नदी जमुना रे तीर उड़ै दोय पंखिया

ओरालियमिस्सा-सरीरकायप्पओगपरिणए—ओदारिकज उत्पत्ति काल नैं विषे असंपूर्ण छतो मिश्र कार्मण करिकै ते ओदारिक मिश्र, तेहीज ओदारिक-मिश्रक, ते लक्षण शरीर ते ओदारिक मिश्रक-शरीर। तेहीज काय, तेहनो जे प्रयोग अथवा ओदारिक-मिश्रक-शरीर नो जे काय-प्रयोग ते ओदारिक-मिश्रक-शरीर-काय-प्रयोग। तिण करिकै परिणत जे ते ओदारिक-मिश्रक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत। ए वली ओदारिक-मिश्रक-शरीर-काय-प्रयोग उत्पत्ति काले हुवै ते अपर्याप्तक नैं हीज जाणवो।

जीव, अणतर कहिता च्यवन थी अनतर, ते अतर रहित एतलै चव्या पछै उत्पत्ति समय कार्मण जोगे करी आहार लियै तिण उपरंत मिश्र करिके आहार लियै ज्यां लगै शरीर नीपजै त्या लगै इति गाथार्थ।

इम प्रथम कार्मण करिकै ओदारिक शरीर नो मिश्र उत्पत्ति आश्री कह्यो, तेहना प्रधानपणा थकी। वली जिवारे ओदारिकशरीरी वैक्रिय-लब्धि सहित मनुष्य अनैं पचेंद्रिय तिर्यञ्च तथा पर्याप्त-बादर-वायुकायिक वैक्रिय करै, तिवारैं ओदारिक-काय-योग हीज वर्तमान प्रदेशा प्रते विक्षेपी नै वैक्रिय शरीर योग्य पुद्गल प्रतैं ग्रही नैं ज्यां लगैं वैक्रियशरीर सम्पूर्ण न थयो त्या लगैं वैक्रिय करिकै ओदारिक शरीर नो मिश्रपणो। प्रारम्भकपणैं करी ते ओदारिक नैं प्रधानपणा थकीज ओदारिक-मिश्र कहियै। इम आहारक करिकै पिण ओदारिक शरीर नो मिश्रपणो जाणवो।

वेउव्वियसरीरकायप्पओगपरिणए—वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत। इहा वृत्तिकार कह्यो—वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग वैक्रिय-पर्याप्तक नैं हुवै। ए पिण विरुद्ध। इण वैक्रिय नैं अधिकारे हीज वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग देवता ना पर्याप्तक, अपर्याप्तक बिहु मे कह्यु। तिहा छेहड़ै एहवूं पाठ छै—

जाव पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पातीतगवेमाणियदेवपंचिदिय-वेउव्वियसरीरकायपयोगपरिणए वा, अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध जाव कायपयोगपरिणते वा।

इहा कह्यु—सर्वार्थसिद्धि ना देवता पर्याप्ता, अपर्याप्ता बिहुं मे वैक्रिय शरीर काय प्रयोग हुवै। ते माटै वृत्ति मे वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग पर्याप्तक मे हीज कह्यु, ते विरुद्ध।

'वेउव्वियमीसासरीरकायपयोगप्परिणए।' ए वैक्रिय-मिश्रक-काय-प्रयोग देवता नारकी नैं विषे ऊपजता छता अपर्याप्ता नैं। तेहनो मिश्रपणो वैक्रिय शरीर नैं कार्मण करिकै हीज हुवै।

अनै देवता नारकी ना पर्याप्ता नै कार्मण करिकै वैकिय नो मिश्र न हुवै, ते माटे देवता नारकी ना पर्याप्ता नैं वैकिय नु मिश्र न कह्यु। अनै देवता नारकी भवधारणी उत्तर वैक्रिय करै, तिवारै पर्याप्ता नैं वैक्रिय नु मिश्र पन्नवणा सूत्रे कह्यु छै, पिण ते अप्रधानपणा थकी तेहनु कथन इहा कह्यु नथी।

औदारिकमुत्पत्तिकालेऽसम्पूर्णं सत् मिश्रं कार्म्मणेनेति औदारिकमिश्र तदेवौदारिकमिश्रक तल्लक्षण शरीर-मौदारिकमिश्रकशरीर तदेव कायस्तस्य य प्रयोगः औदारिकमिश्रकशरीरस्य वा य कायप्रयोग स औदारिकमिश्रकशरीरकायप्रयोगस्तेन परिणत यत्तत्तथा, अय पुनरौदारिकमिश्रकशरीरकायप्रयोगोऽपर्याप्तकस्यैव वेदितव्य।

जोएण कम्मएण आहारेई अणतर जीवो।
तेण पर मीसेण जाव सरीरस्स निप्फत्ती॥

उत्पत्त्यनन्तर जीव कार्मणेन योगेनाहारयति ततो यावच्छरीरस्य निष्पत्ति (शरीरपर्याप्ति) तावदौदारिकमिश्रेणाहारयति।

एव तावत् कार्म्मणेनौदारिकशरीरस्य मिश्रता उत्पत्तिमाश्रित्य तस्य प्रधानत्वात्, यदा पुनरौदारिकशरीरी वैक्रियलब्धिसपन्नो मनुष्य पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिक पर्याप्तबादरवायुकायिको वा वैक्रिय करोति तदा औदारिककाययोग एव वर्तमान प्रदेशान् विक्षिप्य वैक्रियशरीरयोग्यान् पुद्गलानुपादाय यावद् वैक्रियशरीरपर्याप्त्या न पर्याप्ति गच्छति तावद्वैक्रियेणौदारिकशरीरस्य मिश्रता, प्रारम्भकत्वेन तस्य प्रधानत्वात्, एवमाहारकेणाप्यौदारिकशरीरस्य मिश्रता वेदितव्येति।

इह वैक्रियशरीरकायप्रयोगो वैक्रियपर्याप्तकस्येति

इह वैक्रियमिश्रकशरीरकायप्रयोगो देवनारकेपूत्पद्यमानस्यापर्याप्तकस्य, मिश्रता चेह वैक्रियशरीरस्य कार्मणेनैव। (वृ० प० ३३५)

उत्तरवैक्रियारभे च भवधारणीयं वैक्रयमिश्र तद्बलेनोत्तरवैक्रियारम्भात्, भवधारणीयप्रवेशे चोत्तरवैक्रियमिश्र, उत्तरवैक्रियबलेन भवधारणीये प्रवेशात्।
(प्रज्ञा० वृ० प० ३२४)

'आहारगसरीरकायप्पयोगपरिणए।' आहारग-शरीर-काय-प्रयोग—आहारक-शरीर नीपनै छते ते वेला ते आहारक ना हीज प्रधानपणा थकी आहारक-शरीर-काय-प्रयोग कहियै।

इहाहारकशरीरकायप्रयोग ... सत्या तदानी तस्यैव प्रधानत्वात्।

'आहारगमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए' आहारक-मिश्रक-शरीर-काय-प्रयोग आहारक अनै ओदारिक नी मिश्रता थी हुवै, ते आहारक तजवै करि ओदारिक ग्रहण सन्मुख नै। एतलै जे आहारकशरीरी थई कार्य करी वली ओदारिक प्रति ग्रहै ते आहारक ना प्रधानपणा थकी ओदारिक प्रवेश प्रति व्यापार ना भाव थी, ज्या लगै सर्वथा आहारक न तजै त्या लगै ओदारिक करिकै आहारक नो मिश्रपणो हुवै।

इहाहारकमिश्रशरीरकायप्रयोग आहारकस्यौदारिकेण मिश्रताया, स चाहारकत्यागेनौदारिकग्रहणाभिमुखस्य, एतदुक्त भवति—यदाहारकशरीरी भूत्वा कृतकार्य पुनरप्यौदारिकं गृह्णाति तदाहारकस्य प्रधानत्वा-दौदारिकप्रवेशं प्रति व्यापारभावान्न परित्यजति यावत् सर्वथैवाहारकं तावदौदारिकेण सह मिश्रतेति।

इहा शिष्य पूछै—ते ओदारिक शरीर प्रतै तेणे जीवे सर्वथा नथी मूक्यो, पूर्वे ओदारिक शरीर नीपनो रहै छै हीज, ते ओदारिक प्रतै किम ग्रहै? गुरु कहै—सत्य रहै छै, तो पिण ते ओदारिक-शरीर ग्रहण करिवा नै अर्थे प्रवर्तै। इम ग्रहण करै हीज, इमु कहियै।

ननु तत्तेन सर्वथाऽमुक्त पूर्वनिर्वर्त्तित तिष्ठत्येव तत्कथं गृह्णाति? सत्यं तिष्ठति तत् तथाप्यौदारिक-शरीरोपादानार्थं प्रवृत्त इति गृह्णात्येवेत्युच्यत इति।

'कम्मासरीरकायप्पयोगपरिणए' कार्मण-शरीर-काय-प्रयोग विग्रह गति नै विषे वली केवली समुद्घात प्राप्त नै तीजे चोथै पचमे समय नै विषे हुवै।

इह कार्म्मणशरीरकायप्रयोगो विग्रहे समुद्घातगतस्य च केवलिनस्तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु भवति।

इम ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोगादिक नी व्याख्या कही। वलि मिश्र-काय-प्रयोगादिक नी व्याख्या पचम कर्म ग्रथ तेहनी शतक टीका मे कही तिम कहै छै—ओदारिक-मिश्र ते ओदारिक हीज अपरिपूर्ण औदारिक-मिश्र कहियै। जिम गुड-मिश्र दधि, गुडपणै न कहियै, दधिपणै पिण न कहियै। ते मिश्र 'दधि' 'गुड' करिकै अपरिपूर्णपणा थकी। इम ओदारिक-मिश्र कार्मण करिकै हीज ओदारिकपणै करी अनै कार्मणपणै करी पिण कहि सकियै नही। अपरिपूर्णपणा थकी तेहनै ओदारिक-मिश्र कहियै। इम वैक्रिय आहारक मिश्र पिण। इति ए शतक टीका नै अनुसारे कह्यो।

प्रज्ञापनाटीकानुसारेणौदारिकशरीरकायप्रयोगादीना व्याख्या, शतकटीकानुसारत पुनर्मिश्रकायप्रयोगा-णामेव—औदारिकमिश्र औदारिक एवापरिपूर्णो मिश्र उच्यते, यथा गुडमिश्र दधि, न गुडतया नापि दधितया व्यपदिश्यते तत् ताभ्यामपरिपूर्णत्वात्, एवमौदारिक मिश्र कार्मणेनैव नौदारिकतया नापि कार्म्मणतया व्यपदेष्टु शक्यमपरिपूर्णत्वादिति तस्यौ-दारिकमिश्रव्यपदेश, एवं वैक्रियाहारकमिश्रावपीति।
(वृ० प० ३३५, ३३६)

वैक्रिय करिकै ओदारिक मिश्र अनै आहारक करिकै ओदारिक मिश्र इम-हिज जाणवो तथा ओदारिक करिकै वैक्रिय मिश्र अनै ओदारिक करिकै आहारक मिश्र इमहीज विचारी कहिवो।

**सोरठा**

२४. जो ओदारिक जोय, तनु-काय-प्रयोग-परिणते।
स्यूं एकेंद्री होय, यावत पचेंद्री अछै?

२४. जइ ओरालियसरीरकायपयोगपरिणए किं एगिंदिय-ओरालियसरीरकायपयोगपरिणए? जाव पंचिंदिय-ओरालियसरीरकायपयोगपरिणए?

२५. तब भाखै जिनराय, एकेंद्री तनु काय पिण।
जाव पंचेंद्री-काय-प्रयोग-परिणत द्रव्य छै॥

२५. गोयमा! एगिंदियओरालियसरीरकायपयोगपरिणए वा जाव पंचिंदियओरालियसरीरकायपयोगपरिणए वा। (श० ८।५०)

२६. जो एकेंद्री होय, तो स्यू पृथ्वीकाय छै।
जाव वणस्सइ सोय? जिन कहै पांचूं परिणले॥

२६. जइ एगिंदियओरालियसरीरकायपयोगपरिणए किं पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरकायपयोगपरि-

णए ? जाव वणस्सइकाइयएगिंदियओरालियसरीर-कायपयोगपरिणए ?
गोयमा ! पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरकाय-पयोगपरिणए वा जाव वणस्सइकाइयएगिंदिय-ओरालियसरीरकायपयोगपरिणए वा ।
(श० ८।५१)

२७. जो छै पृथ्वीकाय, स्यूं सूक्षम बादर पृथ्वी ?
जिन कहै बिहु कहिवाय, यावत प्रयोग-परिणते।

२७. जइ पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरकायपयोग-परिणए किं सुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए ? बादरपुढविक्काइय जाव परिणए ?
गोयमा ! सुहुमपुढविकाइयएगिंदिय जाव परिणए वा बादरपुढविक्काइय जाव परिणए वा ।
(श० ८।५२)

२८. जो सूक्षम पृथ्वीकाय, तो पर्याप्ता कै अपज्जत्ता।
जिन कहै बिहु कहाय, बादर पृथ्वी पिण इमज ॥

२८. जइ सुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए किं पज्जत्ता सुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए ?
अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए ?
गोयमा ! पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए वा, अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए वा।
एव बादरा वि ।

२९. जाव वणस्सइ एम, सूक्षम बादर भेद वे ।
पज्जत्त अपज्जत्त तेम, भेद विहुं सगला तणां ॥

२९ एवं जाव वणस्सइकाइयाण चउक्कओ भेदो ।

३०. बें० तें० चउरिंद्री ताय, पज्जत्त अपज्जत्त भेद वे।
ओदारिक-तनु-काय, प्रयोग-परिणत द्रव्य ते ॥

३० बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाण दुयओ भेदो— पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । (श० ८।५३)

३१. जो पंचेंद्री होय, स्यूं तिरि-पंचेंद्री मनुष्य।
जिन भाखै विहुं जोय, यावत परिणत द्रव्य छै ॥

३१ जइ पंचिंदियओरालियसरीरकायपयोगपरिणए किं तिरिक्खजोणियपंचिंदियओरालियसरीरकायपयोग-परिणए ? मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए ?
गोयमा ! तिरिक्खजोणिय जाव परिणए वा मणुस्स-पंचिंदिय जाव परिणए वा । (श० ८।५४)

३२. जो तिरि-प०इम होय, स्यूं जलचर तिर्यंच ते।
थलचर खेचर जोय ? पूर्ववत चिउ भेद ए॥

३२. जइ तिरिक्खजोणिय जाव परिणए किं जलचरतिरिक्ख-जोणिय जाव परिणए ? थलचर-खहचर जाव परिणए ?

३३. संमूर्च्छिम बे भेद, पर्याप्त अपर्याप्तो।
इम गर्भज सवेद, च्यार भेद इम कीजियै ॥

३३. एव चउक्कओ भेदो जाव खहचराणं। (श० ८।५५)

३४. जो मनुष्य-पंचेंद्री जान, तो संमूर्च्छिम गर्भज मनु ?
जिन कहै दोनूं मान, हिव पूछा गर्भज, नी॥

३४. जइ मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए किं संमुच्छिम-मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए ? गब्भवक्कंतियमणुस्स जाव परिणए ?
गोयमा ! दोसु वि । (श० ८।५६)

३५. जो गर्भज-मनु ताय, तो स्यूं पज्जत्त अपज्जत्ता ?
जिन कहै विहु पाय, ओदारिक जाव परिणते॥

३५ जइ गब्भवक्कंतियमणुस्स जाव परिणए किं पज्जत्ता-गब्भवक्कंतिय जाव परिणए ? अपज्जत्तागब्भ-वक्कंतिय जाव परिणए ?

परिणत द्रव्य सधीक,कहूं ओदारक म हिव ॥

३८. जो ओदारिक-मीस, तनु-काय-प्रयोगे परिणते ।
स्यूं एकेंद्रिय दीस, कै यावत पंचेंद्रिय ॥

३८. जइ ओरालियमीसासरीरकायपयोगपरिणए किं एगिंदियओरालियमीसासरीरकायपयोगपरिणए ? ....जाव पचिंदियओरालिय जाव परिणए ?

३९. उत्तर जिन समभाव, जोग ओदारिक आखियो ।
तिमहिज एह आलाव, जोग ओदारिक-मिश्र नों ॥

३९. गोयमा ! एगिंदियओरालियमीसासरीरकायपयोग-परिणए एव जहा ओरालियसरीरकायपयोगपरिणएण आलावगो भणिओ तहा ओरालियमीसासरीरकायप-योगपरिणएण वि आलावगो भाणियव्वो ।

४०. णवरं बादर वाय, गर्भज-तिरि गर्भज-मनु ।
पज्जत्त अपज्जत्त मांय, ओदारिक नो मिश्र हुवै ॥

४०. नवर—बादरवाउक्काइय-गब्भवक्कतियपचिंदियति-रिक्खजोणिय-गब्भवक्कतियमणुस्साण—एएसि ण पज्जत्तापज्जत्तगाण ।

४१. शेष तणां सुजगीस, अपर्याप्ता विषेज ह्वै ।
ओदारिक नो मीस, पर्याप्ता में नहिं हुवै ॥

४१. सेसाण अपज्जत्तगाण । (श० ८।५८)

४२. जो वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग करी परिणत हुवै ।
तो एकेंद्री मांय, कै पंचेंद्री वैक्रिय ?

४२. जइ वेउव्वियसरीरकायपयोगपरिणए किं एगिंदिय-वेउव्वियसरीरकायपयोगपरिणए ? पचिंदियवेउव्विय-सरीर जाव परिणए ?

४३. उत्तर दे जगभाण, एकेंद्री जाव परिणते ।
तथा पंचेंद्री जाण, जाव परिणते ह्वै अछै ॥

४३. गोयमा ! एगिंदिय जाव परिणए वा, पंचिंदिय जाव परिणए वा । (श० ८।५९)

४४. जो एकेंद्री मांय, तो स्यूं वाऊकाय में ।
वलि अवाऊकाय, जाव एकेंद्री परिणते ?

४४. जइ एगिंदिय जाव परिणए किं वाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए ? अवाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए ?

४५. जिन कहै वाऊकाय, एकेंद्री जाव परिणते ।
नही अवाऊकाय, वाऊ विण वेक्रै नही ॥

४५. गोयमा ! वाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए, नो अवाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए ।

४६. इण आलावे करि जाण, पन्नवण पद इकवीस में ।
अवगाहन संठाण, वैक्रिय शरीर तिहां कह्यो ॥

४६. एवं एएण अभिलावेण जहा ओगाहणसठाणे (प० २१। ५०) वेउव्वियसरीर भणिय ।

४७. तिणहिज रीत पिछाण, सर्व पाठ भणवो इहां ।
जाव पर्याप्तक जाण, सर्वार्थसिद्ध लग अछै ॥

४८. पज्जत्त सव्वट्ठसिद्ध देव, पंचेंद्री वैक्रिय तनु ।
काय-प्रयोग कहेव, परिणत छै इक द्रव्य ते ॥

४७, ४८. तहा इह वि भाणियव्वं जाव पज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइयकप्पातीतावेमाणियदेवपचिंदियवेउ-व्वियसरीरकायपयोगपरिणए वा ।

४९. तथा अपज्जत्ता जाण, सर्वार्थसिद्ध प्रवर सुर ।
जाव काय पहिछाण, प्रयोग-परिणत द्रव्य ते ॥

४९. अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोव॰ य जाव परिणए वा । (श० ८।६०)

५०. जो वेक्रै मीस शरीर-काय प्रयोगज परिणते ।
स्यूं एकेंद्री समीर, कै यावत पंचेंद्रिय ॥

५० जइ वेउव्वियमीसासरीरकायप्रयोगपरिणए किं एगिंदियमीसाशरीरकायपयोगपरिणए ? जाव पचिंदिय-मीसासरीरकायपयोगपरिणए ?

५१ आख्यो वैक्रिय जेम, कहिवो वैक्रिय-मिश्र तिम।
णवरं विशेष एम, वैक्रिय-मिश्र केहनै ?
५२. सुर नारकी अपज्जत्त, मिश्र वैक्रिय तेह में।
शेष तणंज पज्जत्त, जोग वैक्रिय-मिश्र है॥
५३. 'इहा वैक्रिय-मीस, देव नारकी नै विषे।
अपर्याप्त कहीस, पर्याप्ता में नहि कह्यो॥
५४. अपज्जत्त उत्पत्ति ताहि, मिश्र कार्मण जोग करि।
पूर्ण वैक्रिय नाहि, वैक्रिय-मिश्र त्यां लगै॥
५५. नारक सुर पर्याप्त, वेक्रिय तनु भवधारणी।
उत्तर वैक्रिय व्याप्त, करतां नै वलि पेसता॥
५६. भवधारणी तद्रूप, करता उत्तर वैक्रिय।
पूर्ण न थयो रूप, त्या लग वैक्रिय नु मिश्र॥
५७. उत्तर-वैक्रिय धार, भवधारणी मे पेसतां।
कहियै छै तिणवार, उत्तर-वैक्रिय नु मिश्र॥
५८. भवधारणी विचार, करतां उत्तर-वैक्रिय।
वलि पेसता धार, कहियै वैक्रिय नु मिश्र॥
५९. नारक सुर सुजगीस, चिउ मन नै चिउ वचन रा।
वैक्रिय वैक्रियमीस, ए दस वहु वचनै सदा॥
६० उत्पत्ति विरह निहाल, तिण वेला पिण ए दसूं।
पन्नवण सूत्र विशाल, सोलम पद मे आखियो'[1]॥
६१. सुर नारकी इण न्याय, पर्याप्त वैक्रिय मिश्र है।
तास कथन इहा नाय, अप्रधानपणो ते भणी॥
६२. भवधारण वेक्रैह, उत्तर वैक्रिय तिण कियो।
वैक्रिय विहुं कहेह, तिण सूं प्रधानपणो नही॥
६३. कार्मण जोगे मीस, तास प्रधानपणें करी।
अपर्याप्त कहीस, पर्याप्ता में ए नही॥
६४. नारक सुर इण न्याय, कार्मण करि वैक्रिय मिश्र।
नही पर्याप्त माय, तिण आश्रयी ए पाठ है॥
६५. मनुष्य-तिर्यंच पर्याप्त, वैक्रिय शरीर करै तिको।
पूर्व ओदारिक व्याप्त, करिवा लागो वैक्रिय॥
६६. पूर्ण वैक्रिय नाहि, ओदारिक मिश्र ज्यां लगै।
ओदारिक नो ताहि, प्रधानपणु छै ते भणी।

*५१. एवं जहा वेउव्विय तहा वेउव्वियमीसग वि, नवर—*

५२. देवनेरइयाण अपज्जत्तगाण, सेसाण पज्जत्तगाण।

---

१ प्रयोग गति के पन्द्रह प्रकार वतलाए गए हैं। नारक और देवो मे उन पन्द्रह प्रकारो मे से ग्यारह प्रकार पाए जाते हैं। यह उल्लेख पण्णवणा १६।२० मे है। प्रस्तुत ढाल के ५९वें और ६० वें पद्यो मे जयाचार्य ने नारक और देवो के योग के दस प्रकार वतलाए हैं। यह विसगति नही, विवक्षा है। नारक और देवो मे कार्मण योग अपर्याप्तावस्था मे ही होता है, उसके वाद नही। उसकी विवक्षा न करने के कारण यहा उनमे दस योग वतलाए गए हैं।

जे मनुष्य तिर्यंच सुमेल, ओदारिक वैक्रिय मिश्र ॥
(ज० स०)

६९. जाव पर्याप्त जेह, सर्वार्थसिद्ध सुर प्रवर ।
जाव परिणत नहिं एह, वैक्रिय मिश्र प्रयोग प्रति ॥

६९. जाव नो पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव परिणए

७०. अपर्याप्त समीर, सव्वट्ठसिद्ध पचेंद्रिय ।
वैक्रिय मिश्र शरीर, काय प्रयोगे परिणते ॥

७० अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयदेवपंचिंदियवेउव्वियमीसासरीरकायपयोगपरिणए । (श० ८।६१)

७१. जो आहारक-तनु-काय-प्रयोग-परिणत द्रव्य ते ।
स्यू मनुष्य आहारक थाय, कै मनुष्य विना आहारक हुवै ?

७१ जइ आहारगसरीरकायपयोगपरिणए किं मणुस्साहारगसरीरकायपयोगपरिणए ? अमणुस्साहारग जाव परिणए ?

७२. जिम ओगाहण सठाण, पन्नवण पद इकवीस में ।
यावत ऋद्धिपत्त जाण, प्रमत्तसयत सम्यक्-दृष्टि ॥

७३. पर्याप्त सखेज्ज वास, आयू तणो धणी तिको ।
आहारक शरीर तास, काय प्रयोगे परिणते ॥

७२,७३. एव जहा ओगाहणसठाणे (प० २१।७२) जाव इड्ढिपत्तपमत्तसजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउय जाव परिणए

'जहा ओगाहणसठाणे' त्ति प्रज्ञापनायामेकविंशतितमपदे । (वृ० प० ३३६)

७४. रिद्ध पाम्या विण तास, प्रमत्त-सयत सम्यक्दृष्टि ।
पर्याप्त संखेज्ज वास, आहारक जाव परिणत नही ॥

७४ नो अणिड्ढिपत्तपमत्तसजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तसंखेज्जवासाउय जाव परिणए । (श० ८।६२)

७५. जो आहारक मिश्र तनु काय, प्रयोग करि परिणत हुइं ।
तो मनुष्य विषे कहिवाय, कै मनुष्य विना आहारक मिश्र ?

७५ जइ आहारगमीसासरीरकायपयोगपरिणए किं मणुस्साहारगमीसासरीरकायपयोगपरिणए ?

७६. आहारक आख्यो जेम, तिमहिज आहारक-मिश्र पिण ।
समस्त भणवो तेम, वृत्तिकार तिहा इम कह्यु ॥

७६ एव जहा आहारग तहेव मीसग पि निरवसेस भाणियव्व । (श० ८।६३)

७७. आहारक करत जगीस, पूर्ण न थये पूतलो ।
ओदारिक नों मीस, प्रधानपणो ओदारिक नो ॥

७८. आहारक तनु निपजाय, ते कार्य करि पुनरपि ।
ओदारिक ना ताय, ग्रहण करै पुद्गल प्रतै ॥

७९. प्रवेश मे व्यापार, प्रधानपणो आहारक तणो ।
आहारकमिश्र तिवार, ऊदारिक सह मिश्रता ॥

७८,७९. यदा आहारकशरीरी भूत्वा कृतकार्य पुनरप्यौदारिक गृह्णाति तदाऽऽहारकस्य प्रधानत्वादौदारिकप्रवेश प्रति व्यापारभावान्न परित्यजति यावत्सर्वथैवाहारक तावदौदारिकेण सह मिश्रतेति[1], (वृ० प० ३३५)

८०. जो कार्मण शरीर काय-प्रयोग करि परिणत हुइ ।
स्यू एकेंद्री थाय, कै यावत पंचेंद्रिय ?

८०. जइ कम्मासरीरकायपयोगपरिणए किं एगिंदियकम्मासरीरकायपयोगपरिणए ? जाव पंचिंदियकम्मासरीरकायपयोगपरिणए ?

८१. भाखै तव जगभाण, एकेंद्रिय कार्मण तनु ।
जिम ओगाहण संठाण, भेद कार्मण तिम इहा ॥

८१. गोयमा ! एगिंदियकम्मासरीरकायपयोगपरिणए, एव जहा ओगाहणसठाणे कम्मगस्स भेदो तहेव इह वि

१ पृ० ३१८ के दूसरे पेराग्राफ मे वृत्ति का यह अश उद्धृत है । किन्तु यहा जोड की गाथाओ मे वही प्रसग उल्लिखित है । इसलिए वृत्ति का वही अंश यहा उद्धृत किया गया है ।

८२. जाव पर्याप्त-सव्वट्ठ-अणुत्तर उत्पन्न जाव सुर।
पंचिदि-कम्म-तनु दिट्ठ, काय प्रयोगे परिणते॥
८३. अपर्याप्ता विचार, सव्वट्ठसिद्ध अणुत्तर तणा।
जाव परिणते धार, विकल्प करि इक द्रव्य ते॥

वा०—'इहां सर्वार्थसिद्ध ना देवता मे पर्याप्ता मे अथवा अपर्याप्ता मे कार्मण कह्य, ते कार्मण शरीर जाणवो। पिण कार्मण जोग नो इहा कथन नथी। जे भणी तेहना अपर्याप्ता मे कार्मण न हुवै, ते माटै इहा कार्मण जोग नो कथन न सभवै। पन्नवणा ना इक्कीसमा पद नै विषे पिण कार्मण शरीर कह्यो छै, तेहीज शरीर इहा लेखवणो।' (ज० स०)

८४. जो मीसा-परिणत होय, स्यूं मन-मीसा-परिणते ?
वच-मिश्र-परिणत जोय, काय-मिश्र-परिणत हुइ ?
८५. भाखै श्री जिनराय, मन-मीसा-परिणत हुइं।
तथा वचन-मिश्र थाय, काय-मिश्र-परिणत तथा॥
८६. जो मन-मिश्र जगीस, स्यू सत्य-मन-मीसा हुइ ?
कै असत्य-मन-मीस, कै मिश्र मनैपरिणत हुइ[1]॥
८७ प्रयोग-परिणत जेम, मीसा-परिणत पिण तिमज।
भणवो समस्त एम, जाव पज्जत्ता-सव्वट्ठसिद्ध॥
८८. अणुत्तर उत्पन्न जोय, जाव देव पंचेंद्रिय।
कर्मशरीरा सोय, मीसा-परिणत ह्वै तथा॥
८९. अपर्याप्ता विचार, सर्वार्थसिद्ध जाव ते।
कर्म मिश्र अवधार, परिणत छै इक द्रव्य तथा॥
९०. जदि वीससा जोय, परिणत ए स्वभाव करि।
तो वर्ण-परिणत होय, गंध रस फर्श सठाण ते ?
९१. आखै जिन अवितत्थ, वर्ण-परिणत द्रव्य इक।
तथा गध-परिणत्त, अथवा रस-परिणत हुइ॥
९२. अथवा परिणत फास, अथवा सठाणे करि।
परिणत होवै तास, एक द्रव्य पुद्‌गल तणो॥
९३. जो वर्ण-परिणत होय, तो स्यू परिणत कृष्ण वर्ण।
नील पीत अवलोय, रक्त शुक्ल परिणत हुइ[2] ?
९४. भाखै श्री जिनराय, कृष्ण वर्ण परिणत हुइं।
अथवा जाव कहाय, शुक्ल वर्ण परिणत अछै॥
९५. जो गध-परिणत होय, सुगंध दुर्गंध परिणत ?
जिन कहै सुगंध जोय, अथवा दुर्गंध परिणते॥

१ प्रस्तुत ढाल की गाथा ८६ मे मिश्र-परिणत मन के तीन भेद स्पष्ट रूप से उल्लिखित हैं। सामने उद्धृत पाठ मे समर्पण का पाठ है। इससे मूल प्रतिपाद्य मे कोई अन्तर नही आता।

२. यहा जोड मे पाठ पूरा है, किन्तु अगसुत्ताणि मे सक्षिप्त पाठ है, इसलिए सामने उसी को उद्धृत किया है। अगली गाथा मे जोड़ भी सक्षिप्त पाठ के आधार पर है।

८२ जाव पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय कप्पातीतग-वेमाणियदेवपंचिदियकम्मासरीरकायपयोगपरिणए वा।
८३ अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव परिणए वा। (श० ८।६४)

८४ जइ मीसापरिणए किं मणमीसापरिणए ? वइमीसापरिणए ? कायमीसापरिणए ?
८५ गोयमा ! मणमीसापरिणए वा, वइमीसापरिणए वा, कायमीसापरिणए वा। (श० ८।६५)
८६ जइ मणमीसापरिणए किं सच्चमणमीसापरिणए ? मोसमणमीसापरिणए ?
८७,८८ जहा पयोगपरिणए तहा मीसापरिणए वि भाणियव्व निरवसेस जाव पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव देवपंचिदियकम्मासरीरगमीसापरिणए वा
८९. अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव कम्मासरीरमीसापरिणए वा। (श० ८।६६)
९० जइ वीससापरिणए किं वण्णपरिणए ? गधपरिणए ? रसपरिणए ? फासपरिणए ? सठाणपरिणए ?
९१. गोयमा ! वण्णपरिणए वा, गधपरिणए वा, रसपरिणए वा,
९२. फासपरिणए वा, संठाणपरिणए वा। (श० ८।६७)
९३ जइ वण्णपरिणए किं कालवण्णपरिणए जाव सुक्किलवण्णपरिणए ?
९४. गोयमा ! कालवण्णपरिणए वा जाव सुक्किलवण्णपरिणए वा। (श० ८।६८)
९५ जइ गधपरिणए किं सुब्भिगधपरिणए ? दुब्भिगधपरिणए ?
गोयमा ! सुब्भिगधपरिणए वा दुब्भिगधपरिणए वा। (श० ८।६९)

अथवा यावत जाण, परिणत मधुर रसे करी ॥

वा। (श० ८।७०)

९८. जो परिणत हे फास, स्यूं कक्खड़ परिणत हुइ ?
यावत लुक्ख विमास, पूछा ए एक द्रव्य नी ॥

९८ जइ फासपरिणए किं कक्खडफासपरिणए जाव लुक्खफासपरिणए ?

९९. भाखै श्री जिन भेव, कक्खड फर्श परिणते ।
अथवा जाव कहेव, लुक्ख फर्श करि परिणते ॥

९९. गोयमा ! कक्खडफासपरिणए जाव लुक्खफासपरिणए। (श० ८।७१)

१००. जो परिणत सठाण, तो परिमडल वट्ट वलि ।
परिणत तस पिछाण, चउरस आयत परिणते[1] ?

१००. जइ सठाणपरिणए—पुच्छा ।

१०१. उत्तर दे जिनदेव, परिमडल परिणत हुइ ।
अथवा जाव कहेव, आयत परिणत द्रव्य इक ॥

१०१. गोयमा ! परिमडलसठाणपरिणए वा जाव आयतसठाणपरिणए वा । (श० ८।७२)

१०२. *इक द्रव्य आश्री एह त्रिविध करि आखिया,
प्रथम जीव प्रयोग परिणते भाखिया ।
मीसा दूजो भेद कै वीससा तीसरो,
झीणी चरचा एह चतुर दिल में धरो ॥

१०३. अष्टम शतके प्रथम उदेशक देश ही,
सौ इकतीसमी ढाल विशाल विशेष ही ।
भिक्षु भारीमाल ऋपराय पसाय सोभावियो,
'जय-जश' संपति हरप परम सुख पावियो ॥

## ढाल : १३२

### दूहा

१. पूछा हिव बे द्रव्य नी, श्री गोतम गुणखान ।
देव जिनेंद्र प्रतै करै, उत्तर दे भगवान ॥

१. अथ द्रव्यद्वय चिन्तयन्नाह— (वृ० प० ३३६)

२. हे भदंत ! बे द्रव्य, स्यूं प्रयोग-परिणता होय ?
मीस-परिणता छै प्रभु ! वलि वीससा जोय ?

२. दो भंते ! दव्वा किं पयोगपरिणया ? मीसापरिणया ? वीससापरिणया ?

३. जिन कहै बे द्रव्य प्रयोग करि, तथा मीस बे चग ।
तथा वीससा द्रव्य बे, एक संयोग त्रि भंग ॥

३. गोयमा ! पयोगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा ।

४. इक प्रयोग करि परिणते, मीस-परिणते एक ।
अथवा एक प्रयोग करि, एक वीससा देख ॥

४. अहवेगे पयोगपरिणए, एगे मीसापरिणए, अहवेगे पयोगपरिणए, एगे वीससापरिणए,

---

* लय : नदी जमुना रै तीर उड़ै दोय पखिया

1 यहा जोड मे पाठ पूरा है, पर अगसुत्ताणि मे सक्षिप्त पाठ है । इसलिए सामने वही पाठ उद्धृत किया गया है ।

५. अथवा इक मीसा-परिणत, एक वीससा जाण।
द्विकसंजोगिक भग त्रिण, आख्या एह पिछाण॥
६. जो प्रयोग करि परिणता, तो स्यूं मन-प्रयोग ?
वचन-प्रयोगे परिणता, काय-प्रयोगे जोग ?
७. जिन कहै मन-प्रयोग विहु, तथा वचन बिहु चग।
तथा काय-प्रयोग बिहुं, एक संजोग त्रि भंग॥
८ मन-प्रयोग करि इक द्रव्य, वचन-प्रयोगे एक।
अथवा इक मन द्रव्य करी, इक द्रव्य काय सपेख॥
९. अथवा इक द्रव्य वचन करि, काय प्रयोगे एक।
द्विकसजोगिक ए त्रिहु, आख्या भग विशेख॥

५. अहवेगे मीसापरिणए, एगे वीससापरिणए।
(श० ८।७३)

६. जइ पयोगपरिणया किं मणपयोगपरिणया ? वइपयोग-परिणया ? कायपयोगपरिणया ?

७. गोयमा ! मणपयोगपरिणया वा, वइपयोगपरिणया वा, कायपयोगपरिणया वा।

८ अहवेगे मणपयोगपरिणए, एगे वइपयोगपरिणए, अहवेगे मणपयोगपरिणए, एगे कायपयोगपरिणए।

९. अहवेगे वइपयोगपरिणए, एगे कायपयोगपरिणए।
(श० ८।७४)

१०. *जो मन-प्रयोगे परिणत होय, स्यू सत्य-मन-प्रयोगे जोय।
असत्य-मन मिश्र-मन जान, मन असत्यामृपा पिछान ?

११. जिन कहै सत्य-मन-प्रयोग दोइ, अथवा विहु असत्य-मन होइ।
जाव बिहुं द्रव्य मन व्यवहार, इक सयोगिक भंग ए च्यार।
१२. अथवा इक द्रव्य सत्य-मन देख, इक द्रव्य असत्य-मन सपेख।
अथवा इक सत्य-मन-प्रयोग, इक मिश्र-मन-प्रयोगे जोग॥

१३. अथवा इक द्रव्य सत्य-मन-प्रयोग, एक असत्यामृषा-मन-जोग।
अथवा इक द्रव्य असत्य-मन, एक मिश्र-मन-प्रयोग जन॥

१४. अथवा एक मृपा-मन जोय, एक व्यवहारज-मन अवलोय।
अथवा इक मिश्र-मन प्रयोग, एक असत्यामृषा-मन जोग॥

१० जइ मणपयोगपरिणया किं सच्चमणपयोगपरिणया ? असच्चमणपयोगपरिणया ? सच्चमोसमणपयोगपरिणया ? असच्चमोसमणपयोगपरिणया ?

११ गोयमा ! सच्चमणपयोगपरिणया वा जाव असच्चमोसमणपयोगपरिणया वा।

१२. अहवेगे सच्चमणपयोगपरिणए, एगे मोसमणपयोगपरिणए। अहवेगे सच्चमणपयोगपरिणए, एगे सच्चमोसमणपयोगपरिणए।

१३. अहवेगे सच्चमणपयोगपरिणए, एगे असच्चमोसमणपयोगपरिणए, अहवेगे मोसमणपयोगपरिणए, एगे सच्चमोसमणपयोगपरिणए

१४. अहवेगे मोसमणपयोगपरिणए, एगे असच्चमोसमणपयोगपरिणए, अहवेगे सच्चमोसमणपयोगपरिणए, एगे असच्चमोसमणपयोगपरिणए। (श० ८।७५)

१५. जो सत्य-मन-प्रयोग-परिणता, स्यू आरभ-सत्य-मन वर्त्तता ?
जावत असमारभ-सत्य-मन ? षट पद[1] आरभ प्रमुख कथन॥
१६. जिन कहै आरंभ-सत्य-मन दोइ, अथवा जावत इहविध होइ।
असमारंभ-सत्य-मन वेह, इक सयोगिक षट भग एह॥
१७ अथवा आरंभ-सत्य-मन एक, एक अणारंभ-सत्य-मन पेख।
दोय सजोगिया भागा एम, भणवा जे जिहां उठै तेम॥

१५ जइ सच्चमणपयोगपरिणया किं आरभसच्चमणपयोगपरिणया ? जाव असमारभसच्चमणपयोगपरिणया ?

१६ गोयमा ! आरभसच्चमणपयोगपरिणया वा, जाव असमारभसच्चमणपयोगपरिणया वा

१७ अहवेगे आरभसच्चमणपयोगपरिणए, एगे अणारभसच्चमणपयोगपरिणए। एव एएण गमेण दुयासजोएण नेयव्व, सव्वे सजोगा जत्थ जत्तिया उट्ठेति ते भाणियव्वा।

१८. वृत्तिकार कही एहवी वाय, एकत्वे षट विकल्प कहिवाय।
द्विकसंजोगिया पनरै जाणी, एव सहु इकवीस पिछाणी॥
१९. जाव सव्वट्ठसिद्ध गति सुखदानी, त्या लग कहिवा छै पहिछानी।
एह प्रयोग परिणता पेख, बे द्रव्य आश्री भागा देख॥

१८ तेष्वेकत्वे षड् द्विकयोगे तु पञ्चदश सर्वेऽप्येकविंशति।
(वृ० प० ३३७)

१९ जाव सव्वट्ठसिद्धगत्ति। (श० ८।७६)

---

***** लय : वनमाला ए निसुणी जाम**

[1] १ आरभ २ अनारभ ३ सारभ ४ असारभ ५ समारभ ६ असमारंभ।

गंध-परिणता आदि सुजोय, वीससा .९' पिण इम होय ॥

२२. जाव तथा समचउरस एक, एक आयत-संठाण संपेख।
द्विकसंयोगिक ए दस भंग, वीससा-परिणत एह प्रसंग ॥

२३. हे भगवंत ! तीन द्रव्य जेह, स्यू प्रयोग-परिणता कहेह।
मीसा-परिणता तास कहीजै ? वलि वीससा-परिणता लीजै ?

२४. जिन कहै प्रयोग-परिणता तीन, अथवा मीसा-परिणता चीन।
अथवा तीनु द्रव्य पिछांन, तेह वीससा-परिणता जान ॥

२५. अथवा इक द्रव्य प्रयोग जाण, दोय द्रव्य मीसा पहिछाण।
अथवा प्रयोग-परिणत एक, दोय वीससा-परिणता देख ॥

२६. तथा प्रयोग-परिणता दोय, इक द्रव्य मीसा-परिणत होय।
अथवा दोय प्रयोग विशेख, एक वीससा-परिणत देख ॥

२७. अथवा इक द्रव्य मीसा होय, अनै वीससा कहियै दोय।
अथवा दो मीसा कहिवाय, एक वीससा-परिणत पाय ॥

२८. तथा प्रयोगे परिणत एक, इक द्रव्य मीसा-परिणत पेख।
एक वीससा-परिणत जाण, त्रिकसजोगियो एक पिछाण ॥

२९. जदि प्रयोग-परिणता जोय, तो स्यू मन-प्रयोगे होय।
वचन-प्रयोग-परिणता कहियै ? काय-प्रयोग-परिणता लहियै ?

३०. जिन कहै मन-प्रयोग-परिणता, इहविध भागा तास वर्त्तता।
इकसयोगिक त्रिण भंग थाय, द्विकसंयोगिक षट कहिवाय ॥

३१. तीन द्रव्य त्रिण पद मे चीन, इकसयोगिक भागा तीन।
द्विक सयोगिक विकल्प दोय, भांगा तेहना षट अवलोय ॥

३२. त्रिकसयोगिक भागो एक, विकल्प पिण तसु एक सपेख।
तीन द्रव्य ना त्रिहु पद माय, ए दस भागा सगला थाय ॥

३३. जो मन-प्रयोग-परिणता होय, स्यू सत्य-मन-प्रयोगे जोय ?
इम चिउ मन नी पूछा जाण, हिव उत्तर देवै जगभाण ॥

३४. त्रिहु सत्य-मन-प्रयोग-परिणता, जावत त्रिहु व्यवहार वर्त्तता।
इकसयोगिक भागा च्यार, हिवै द्विकसयोगिक अधिकार ॥

३५. अथवा सत्य-मन-प्रयोग एक, दोय मृषा-मन-प्रयोग देख।
इम द्विकसयोगिक भंग बार, जूजुआ करिवा न्याय विचार ॥

**सोरठा**

३६. चिहु पद सत्य-मनादि, तीन द्रव्य द्विकयोगिका।
तसु विकल्प बे साधि, इक विकल्प ना भंग षट ॥

---

२२ जाव अहवेगे चउरंससंठाणपरिणए, एगे आयतसंठाण-परिणए। (श० ८।७८)

२३. तिण्णि भंते ! दव्वा किं पयोगपरिणया ? मीसा-परिणया ? वीससापरिणया ?

२४. गोयमा ! पयोगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा।

२५ अहवेगे पयोगपरिणए, दो मीसापरिणया, अहवेगे पयोगपरिणए, दो वीससापरिणया

२६. अहवा दो पयोगपरिणया एगे मीसापरिणए, अहवा दो पयोगपरिणया, एगे वीससापरिणए।

२७. अहवेगे मीसापरिणए, दो वीससापरिणया, अहवा दो मीसापरिणया एगे वीससापरिणए।

२८. अहवेगे पयोगपरिणए, एगे मीसापरिणए, एगे वीससा-परिणए। (श० ८।७९)

२९. जइ पयोगपरिणया किं मणपयोगपरिणया ? वइपयोग-परिणया ? कायपयोगपरिणया ?

३० गोयमा ! मणपयोगपरिणया वा, एवं एक्कासयोगो दुयासयोगो

३१. 'तिन्नीत्यादि, इह प्रयोगपरिणतादिपदत्रये एकत्वे त्रयो विकल्पा द्विकसयोगे तु षट्।

(वृ० प० ३३८)

३२ तियासयोगो य भाणियव्वो। (श० ८।८०)
त्रिकयोगे त्वेक एवेत्येवं सर्वे दश। (वृ० प० ३३८)

३३ जइ मणपयोगपरिणया किं सच्चमणपयोगपरिणया ? असच्चमणपयोगपरिणया ? सच्चमोसमणपयोगपरि-णया ? असच्चमोसमणपयोगपरिणया ?

३४. गोयमा ! सच्चमणपयोगपरिणया वा जाव असच्च-मोसमणपयोगपरिणया वा।

३५ अहवेगे सच्चमणपयोगपरिणए, दो मोसमणपयोग-परिणया एवं दुयासयोगो,

३६,३७. सत्यमन. प्रयोगादीनि तु चत्वारि पदानीत्यत एकत्वे चत्वारो द्विकसयोगे तु द्वादश।

(वृ० प० ३३८),

३७. एहनां विकल्प दोय, पट भांगा दुगुना कियां।
द्वादश भांगा होय, तेह विचारी कीजियै ॥

३८. *त्रिकसयोगिक भग है च्यार, विकल्प तास एक अवधार।
त्रिण द्रव्य चिहुं पद विषे उचार, ए सहु भांगा वीस विचार ॥

३९. पूर्वं मन वच काया ताम, भेद थको जे प्रयोग परिणाम।
वर्णादिक भेद करी तेह, कह्या वीससा पूर्वे जेह ॥

४०. तेह इहा पिण कहिवा जोय, अत सूत्र ए आगल होय।
जाव तथा इक तस सठाण, इक चउरस आयत इक जाण ॥

४१. परिमडलादिक पद है पच, इकसंयोगिक पंच विरच।
द्विकसयोगिक वीस विचार, त्रिकसयोगिक दस अवधार ॥

**सोरठा**

४२. परिमडलादिक सच, त्रिण द्रव्य पंच पद नै विपे।
इकसंयोगिक पच, इक विकल्प है तेहनों ॥
४३. द्विकसयोगिक वीस, विकल्प है बे तेहनां।
इक विकल्प ना दीस, भांगा दस ह्वै ते भणी ॥
४४. दस भागा नै देख, बे विकल्प माटै इहा।
दुगुणा कीधा पेख, वीस भग द्विकयोगिका ॥
४५. त्रिण द्रव्य पच पद स्थान, त्रिकयोगिक दस भग ह्वै।
विकल्प एक पिछाण, सर्व भग पैंतीस इम ॥
४६. इकसंयोगिक पच, वीस भग द्विकयोगिका।
त्रिकयोगिक दस सच, सर्व भग पैंतीस इम ॥

४७. *हे प्रभु ! च्यार द्रव्य स् होय, कह्या प्रयोग-परिणता सोय ॥
मीस-परिणता कहियै ताय, तथा वीससा ते कहिवाय ?
४८. जिन कहै च्यारूं प्रयोग-परिणता, अथवा च्यारूं मीस-वर्त्तता।
तथा वीससा च्यारूं होय, इकसयोगिक ए त्रिण जोय ॥
४९. अथवा इक प्रयोगे पेख, मीस-परिणता त्रिहुं द्रव्य देख।
अथवा इक द्रव्य प्रयोग जाण, तीन द्रव्य वीससा पिछाण ॥
५०. अथवा दोय प्रयोग-परिणता, बे द्रव्य मीसा विपे वर्त्तता।
तथा प्रयोग-परिणता दोय, दोय वीससा ते अवलोय ॥
५१ अथवा तीन प्रयोगे पेख, मीसा-परिणत इक द्रव्य देख।
अथवा तीन प्रयोगे पिछाण, एक वीससा-परिणत जाण ॥

३८. तियासयोगो भाणियव्वो,
त्रिकयोगे तु चत्वार इत्येव सर्वेऽपि विंशतिरिति।
(वृ० प० ३३८)

३९ तत्र च मनोवाक्कायप्रभेदतो य प्रयोगपरिणामो मिश्रतापरिणामो वर्णादिभेदतश्च विश्रसापरिणाम उक्त
(वृ० प० ३३८)

४०. स इहापि वाच्य इति भाव, किमन्त तत्सूत्र वाच्यम्?
(वृ० प० ३३८)
एत्थ वि तहेव जाव अहवेगे तसमठाणपरिणए, एगे चउरंससठाणपरिणए, एगे आयतसठाणपरिणए।
(श० ८।८१)

४१ इह च परिमण्डलादीनि पञ्चपदानि तेपु चैकत्वे पञ्च विकल्पा द्विकसयोगे तु विंशति त्रिकयोगे तु दश। (वृ० प० ३३८)

४७ चत्तारि भते ! दव्वा किं पयोगपरिणया ? मीसा-परिणया ? वीससापरिणया ?
४८ गोयमा ! पयोगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा।
४९ अहवेगे पयोगपरिणए, तिण्णि मीसापरिणया। अहवेगे पयोगपरिणए, तिण्णि वीससापरिणया
५० अहवा दो पयोगपरिणया, दो मीसापरिणया। अहवा दो पयोगपरिणया, दो वीससापरिणया।
५१ अहवा तिण्णि पयोगपरिणया, एगे मीसापरिणए। अहवा तिण्णि पयोगपरिणया एगे वीससापरिणए।

*लय : वनमाला ए निसुणी जाम

## सोरठा

५४. इक विकल्प भग तीन, त्रिण विकल्प माटै तसु ।
त्रिगुणा किया सुचीन, नव भागा द्विकयोगिका ।।

५४. द्विप्रयोगपरिणतादित्रये एकत्वे त्रयो द्विकसंयोगे तु नव । (वृ० प० ३३८)

५५. *अथवा प्रयोग-परिणत एक, इक द्रव्य मीसा-परिणत पेख ।
दोय द्रव्य वीससा वखाण, त्रिकसंयोगे धुर भग जाण ।।

५५ अहवेगे पयोगपरिणए, एगे मीसापरिणए, दो वीससा-परिणया

५६. अथवा प्रयोग-परिणत एक, मीस-परिणता वे द्रव्य देख ।
एक वीससा-परिणत होय, ए बीजो भागो अवलोय ।।

५६ अहवेगे पयोगपरिणए, दो मीमापरिणया, एगे वीससापरिणए

५७. तथा प्रयोग-परिणता दोय, इक द्रव्य मीसा-परिणत होय ।
एक द्रव्य वीससा वखाण, ए तीजो भागो पहिछाण ।।

५७. अहवा दो पयोगपरिणया, एगे मीमापरिणए एगे वीससापरिणए । (श० ८।८२)

५८. इकसंयोगिक भांगा तीन, द्विकसयोगिक नव भग चीन ।
त्रिकसंयोगिक त्रिहुं भंग होय, सर्व भंग पनरै अवलोय ।।

५८ अत्र एव भवन्तीत्येव सर्वेऽपि पञ्चदश । (वृ० प० ३३९)

५९. जदि प्रयोगे करिनै परिणता, तो स्यूं मन-प्रयोग वर्त्तता ।
वचन-प्रयोगे काय-प्रयोग, इम अनुक्रम करि कहिवा जोग ।।

५९ जइ पयोगपरिणया किं मणपयोगपरिणया ? वइपयोगपरिणया ? कायपयोगपरिणया ?

६०. च्यार द्रव्य नो प्रकरण कहिवो, पूरव अनुसारे करि लहिवो ।
सूत्र संठाण लगै पहिछाण, भांगा सगला भणवा जाण ।।

६० द्रव्यचतुष्कप्रकरणमुपलक्षित, तच्च पूर्वोक्तानुमारेण सस्थानसूत्रान्तमुचितभङ्गकोपेत समस्तमध्येयमिति । (वृ० प० ३३९)

६१. पंच द्रव्य पट द्रव्य पिछाण, यावत वली द्रव्य दस जाण ।
द्रव्य सख्यात अनै असख्यात, भणवा द्रव्य अनत विख्यात ।।

६१ एव एएण कमेण पच छ सत्त जाव दस सखेज्जा असखेज्जा अणता य दव्वा भाणियव्वा ।

६२. द्विकसंयोगिक भगा जेह, वलि त्रिकसंयोगिक पिण तेह ।
जावत दस संयोगि करेह, द्वादश सयोगे करि जेह ।।

६२. दुयासजोएण तियासजोएण जाव दससजोएण वारससजोएण ।

६३. वर उपयोग करी सुप्रयोग, जिहा जिता ऊठै सयोग ।
तेह सर्व भणवा धर प्यार, वारु बुद्धि सूं न्याय विचार ।।

६३ उवजुजिऊण जत्थ जत्तिया सजोगा उट्ठेंति ते सव्वे भाणियव्वा,

## सोरठा

६४. पच द्रव्य अवलोय, प्रयोग सादि त्रिहु पदे ।
इक-सयोग त्रिहुं होय, इक विकल्प है तेहनो ।।

६५. तीन पदे द्विक-योग, इक विकल्प नां भंग त्रिण ।
तसु विकल्प चिहु-योग, कियां चोगुणा वार भंग ।।

६४,६५. चत्वारो विकल्पा द्रव्यपञ्चकमाश्रित्यैकत्र द्विकसयोगे पदत्रयस्य त्रयो द्विकसयोगास्ते च चतुर्भिर्गुणिता द्वादश । (वृ० प० ३३९)

६६. तीन पदे त्रिक-योग, इक विकल्प नो भग इक ।
तसु विकल्प पट योग, त्रिकयोगिक इम भंग पट ।।

६६. त्रिकयोगे तु पट्, कथ ? त्रीण्येकमेकं च १ एक त्रीण्येक च २ एकमेक त्रीणि च ३ द्वे द्वे एक च ४ द्वे एक द्वे च ५ एक द्वे द्वे च ६ इत्येवं पट् । (वृ० प० ३३९)

---

* लय : वनमाला ए निसुणी जाम

६७. चिहुं पद सत्य-मनादि, इकसयोगिक भंग चिहुं।
द्विकयोगिक ना लाधि, चिहु विकल्प है तेहनां।।

६७. तत्र च द्रव्यपञ्चकापेक्षया सत्यमन-प्रयोगादिपु चतुर्पु पदेपु द्विकत्रिकचतुष्कसयोगा भवन्ति। (वृ० प० ३३६)

६८. इक विकल्प पट भंग, चिहुं विकल्प माटै तसु।
किया चोगुणा चंग, द्विकयोगिक चोबीस भग।।

६८ तत्र च द्विकसयोगाश्चतुर्विशति, कथम् ? चतुर्णा पदाना पट् द्विकसंयोगा, तत्र चैकैकस्मिन् पूर्वोक्त-क्रमेण चत्वारो विकल्पा पण्णा च चतुर्भिर्गुणने चतुर्विशतिरिति। (वृ० प० ३३६)

६९. त्रिकयोगिक भग च्यार, इक विकल्प नां ह्वै तसु।
षट विकल्प इहा धार, षट-गुण कियां चोबीस भंग।।

६९ त्रिकमयोगा अपि चतुर्विशति, कथम् ? चतुर्णा पदाना त्रिकसयोगाश्चत्वार एकैकस्मिश्च पूर्वोक्तक्रमेण पड् विकल्पा, चतुर्णां च पड्भिर्गुणने चतुर्विशतिरिति। (वृ० प० ३३६)

७०. चउयोगिक भंग च्यार, करिवा तेह विचार नें।
ए सगला अवधार, च्यार चोबीस चोबीस चिहु।।

७० चतुष्कसयोगे तु चत्वार। (वृ० प० ३३६)

७१. एकेंद्रियादिक जाण, तथा परिमंडल प्रमुख जे।
पच पदे पहिछाण, भग पच द्रव्य आश्रयी।।

७१ एकेन्द्रियादिपु तु पञ्चसु पदेसु द्विकचतुष्कपञ्चक-सयोगा भवन्ति। (वृ० प० ३३६)

७२. इकसंयोगिक पच, द्विकयोगिक चालीस भंग।
विकल्प च्यार सुसंच, इक विकल्प ना दस हुवै।।

७२ तत्र च द्विकसंयोगाश्चत्वारिंशत्, कथम् ? पञ्चाना पदाना दशद्विकसयोगा एकैकस्मिश्च द्विकसयोगे पूर्वोक्तक्रमेण चत्वारो विकल्पा दशाना च चतुर्भिर्गुणने चत्वारिंशदिति। (वृ० प० ३६६)

७३. त्रिकयोगिक ए अंग, पट विकल्प है तेहना।
इक विकल्प दस भंग, पटगुणा किया भंग साठ ह्वै।।

७३ त्रिकसयोगे तु पष्टि, कथम् ? पञ्चाना पदाना दश त्रिकसयोगा एकैकस्मिश्च त्रिकमयोगे पूर्वोक्तक्रमेण पड् विकल्पा दशाना च पड्भिर्गुणने पष्टिरिति। (वृ० प० ३३६)

७४. चिहुं संयोगिक चग, विकल्प च्यार हुवै तसु।
इक विकल्प पंच भंग, पंचगुणा किया भंग बीस ह्वै।।

७४. चतुष्कसयोगास्तु विंशति, कथम् ? पञ्चाना पदाना तु चतुष्कसयोगे पञ्च विकल्पा एकैकस्मिश्च पूर्वोक्त-क्रमेण चत्वारो भङ्गा पञ्चाना चतुर्भिर्गुणने विंशतिरिति। (वृ० प० ३३६)

७५. पंचयोगिक भग एक, एह पच पद नें विषे।
पंच द्रव्य आश्री पेख, भंग विकल्प नी आमना।।

७५ पञ्चकसयोगे त्वेक एवेति (वृ० प० ३३६)

७६. इम पट आदि सयोग, नवरं षट पद नाम ए।
आरंभ-सत्य-मन-योग, अणारभ-सत्य-मन वलि।।

७७. सारभ असारंभ, समारभ ए पंचमो।
असमारंभ मन लभ, मन पट पद इम वच प्रमुख।।

७६,७७ एव पट्कादिसयोगा अपि वाच्या, नवर पट्क-सयोग आरम्भसत्यमन प्रयोगादिपदान्याश्रित्य। (वृ० प० ३३६)

७८. भणवा सप्त सयोग, नाम सप्त पदनाज ए।
ओदारिकादि योग, सप्त द्रव्य नें आश्रयी।।

७८ सप्तकसयोगस्त्वौदारिकादिकायप्रयोगमाश्रित्य। (वृ० प० ३३६)

७९. अष्टसंयोगिक ख्यात, नाम अष्टपदनाज ए।
अठ व्यतर नी जात, अष्ट द्रव्य नें आश्रयी।।

७९ अष्टकसयोगस्तु व्यन्तरभेदान् (वृ० प० ३३६)

८०. नवसयोगिक न्हाल, तसु नव पद नां नाम ए।
नव ग्रैवेयक भाल, ते नव द्रव्य नें आश्रयी।।

८० नवकसयोगस्तु ग्रैवेयकभेदान् (वृ० प० ३३६)

पूर्व कह्या पद माहि, तास असंभव था इहा ॥

८३. बारसंयोगिक ताय, कल्पोत्पन्न सुर भेद नै ।
वा वैक्रिय तनु काय, प्रयोग तणी अपेक्षया ॥

वा०—इहा बारै सयोगी ना जघन्य बारै द्रव्य हुवै पिण ओछा द्रव्य न हुवै ।

८३. द्वादशसयोगस्तु कल्पोपन्नदेवभेदानाश्रित्य वैक्रिय-शरीरकायप्रयोगापेक्षया वेति । (वृ० प० ३३९)

८४ *नवमैं शतक बतीसमुदेश, गगेय नों विस्तार कहेस ।
गति नरकादि प्रवेश विचार, ते आगल कहिसू अधिकार ॥

८४. एए पुण जहा नवमसए पवेसणए (९।८६-१२०) भणिहामो ।
नवमशतकसत्कतृतीयोद्देशके गाङ्गेयाभिधानानगार-कृतनरकादिगतप्रवेशनविचारे । (वृ० प० ३३९)

८५. तिण अनुसारे इहा विचार, द्रव्य उपयोग करी नै धार ।
जाव असंख्याता कहिवाय, हिवै विशेष अनत द्रव्य माय ॥

८५ तहा उवजुजिऊण भाणियव्वा जाव असखेज्जा ।

८६ द्रव्य अनता इमहिज जान, नवर इक पद अधिको आन ।
गंगेय स्थान कह्या असखेज, इहा अनत पद अधिक कहेज ॥

८६ अणता एव चेव, णवर—एक्क पदं अब्भहियं ।

८७. जाव अनंत परिमंडल जाण, जाव अनन्त आयत सठाण ।
अल्पबहुत्व तास कहाय, पूछै गोतम महामुनिराय ॥

८७. जाव अहवा अणता परिमडलसठाणपरिणया जाव अणता आयतसठाणपरिणया । (श० ८।८३)
अथैतेषामेवाल्पबहुत्व चिन्तयन्नाह— (वृ० प० ३४०)

८८. पुद्गल प्रभुजी ! प्रयोग-परिणता, मीस वीससा विषे वर्त्तता ।
कुण-कुण थकी अल्प बहु होय, तुल्य विशेषाधिक अवलोय ?

८८ एएसि ण भते ! पोग्गलाणं पयोगपरिणयाणं, मीसा-परिणयाणं, वीससापरिणयाणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

८९. सर्व थोडा पोग्गला प्रयोग, मीसा अनन्तगुणा ए जोग ।
वीससा अनतगुणा वर्त्तंत, सेवं भते ! सेव भत ! ॥

८९ गोयमा ! सव्वत्थोवा पोग्गला पयोगपरिणया, मीसापरिणया अणतगुणा, वीससापरिणया अणतगुणा । (श० ८।८४)
सेव भते ! सेवं भते ! त्ति । (श० ८।८५)

वा०—सर्व थी थोडा पुद्गल प्रयोगसा कायादिरूपपणै करी, जीव पुद्गल संबध काल ना स्तोकपणा थकी । तेहथी मीसा-परिणता अनतगुणा । जे भणी जीव प्रयोगे करी कीधो आकार, ते प्रति अणछाडतो छतो स्वभावे करी जे अन्य परिणाम प्रति पाम्या मुक्त कलेवरादिक ना अवयव रूप अनतानत तेह थकी । विश्रसा-परिणता अनतगुणा परमाणु आदि नै जीव अग्रहण प्रयोग्य नै अनतपणा थकी ।

वा०—'सव्वत्थोवा पुग्गला पओगपरिणय' त्ति कायादिरूपतया, जीवपुद्गलसम्बन्धकालस्य स्तोकत्वात्, 'मीसापरिणया अणतगुण' त्ति कायादि-प्रयोगपरिणतेभ्य सकाशान्मिश्रकपरिणता अनन्तगुणा, यत प्रयोगकृतमाकारमपरित्यजन्तो विश्रसया ये परिणामान्तरमुपागता मुक्तकडेवराद्यवयवरूपास्तेऽन-न्तानन्ता, विश्रसापरिणतास्तु तेभ्योऽप्यनन्तगुणा, परमाण्वादीना जीवाग्रहणप्रायोग्याणामप्यनन्तत्वा-दिति । (वृ० प० ३४०)

९०. इक्यासी नो अंक विशाल, इक सौ बत्तीसमी ढाल ।
भिक्षु भारीमाल नै ऋषिराय प्रसाद,
'जय-जश' सुख सपति आह्लाद ॥

अष्टमशते प्रथमोद्देशकार्थः ॥८।१॥

*लय : वनमाला ए निसुणी जाम

## दूहा

१. प्रथम उदेशक नैं विषे, पुद्गल नूं परिणाम ।
द्वितिये तेहिज आसीविष-द्वारे करि कहूं ताम ॥

२. हे भदंत ! आसीविषा, आख्या किते प्रकार ? ।
जिन कहै आसीविष तणां, दोय प्रकार विचार ॥

३. प्रथम जाति-आसीविषा, कर्म-आसीविष ताय ।
न्याय कहूं हिव तेहनों, अर्थ सुगम कहिवाय ॥

४. जेहनी दाढादिक विषे, जन्म थकी विष होय ।
तास जाति-आसीविषा, कहियै छै अवलोय ॥

५ कर्म क्रिया तेणे करी, सराप प्रमुख सोय ।
तिण करि घात करै तिको, कर्म-आसीविष जोय ॥

६. कर्म-आसीविष केहनें ? पंचेंद्री तियँच ।
अथवा मनुष्य विहुं तणा, पर्याप्ता में संच ॥

७. ए निश्चै तपसा थकी, तथा अन्य गुण तास ।
तेह थी आसीविष हुवै, लब्धि स्वभाव विमास ॥

८. ते सराप देई हणै, उत्कृष्ट गति सहसार ।
एहवी लब्धिज फोड़व्यां, आगल गमन न कार ॥

९ देवपणै जे ऊपनो, अपजत भाव अवस्थ ।
अनुभूत भावपणै करी, कर्म-आसीविष तत्थ ॥

१०. अपर्याप्त ह्वै ज्यां लगै ते सुर नैं कहिवाय ।
कर्म-आसीविष लब्धिवत, पर्याप्ते न थाय ॥

११. शब्दार्थ ना भेद करि, भाष्यकार कह्यूं एह ।
आसी—दाढा तनु विषे, विष आसीविष तेह ॥

*देव जिनेन्द्र नी अमृत वाणी ॥ (ध्रुपदं)

१२. जाति-आसीविष कतिविध ? प्रभुजी !
जिन कहै च्यार प्रकारो रे ।
विच्छू मडुक्क सर्प नै मनुष्य, ए कह्या आसीविष च्यारो रे ॥

१३. विच्छू जाति-आसीविष नों प्रभु ! केतलो एक सुजाणी ।
विष नों गोचर विषय परूपी ? जिन कहै साभल वाणी ॥

---

१. प्रथमे पुद्गलपरिणाम उक्तो, द्वितीये तु स एवाशीविषद्वारेणोच्यते । (वृ० प० ३४०)

२ कतिविहा ण भंते ! आसीविसा पण्णत्ता ?
गोयमा ! दुविहा आसीविसा पण्णत्ता, तं जहा—

३. जातिआसीविसा य, कम्मआसीविसा य ।
(श० ८।८६)

४. 'आशीविषा' दंष्ट्राविषा. 'जाइआसीविस' त्ति जात्या—जन्मनाऽऽशीविषा जात्याशीविषा । (वृ० प० ३४१)

५ 'कम्मआसीविस' त्ति कर्म्मणा—क्रियया शापादिनोपघातकरणेनाशीविषा' कर्माशीविषा । (वृ० प० ३४१)

६. तत्र पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च कर्माशीविषा. पर्याप्तका एव (वृ० प० ३४१)

७ एते हि तपश्चरणानुष्ठानतोऽन्यतो वा गुणत खल्वाशीविषा भवन्ति (वृ० प० ३४१)

८ शापप्रदानेनैव व्यापादयन्तीत्यर्थ, एते चाशीविषलब्धिस्वभावात् सहस्रारान्तदेवेष्वेवोत्पद्यन्ते । (वृ० प० ३४१)

९ देवास्त्वेत एव ये देवत्वेनोत्पन्नास्तेऽपर्याप्तकावस्थायामनुभूतभावतया कर्माशीविषा इति । (वृ० प० ३४१)

११. उक्तञ्च शब्दार्थभेदसम्भवादि भाष्यकारेण—आसी—दाढा तग्गयमहाविसाऽऽसीविसा । (वृ० प० ३४१)

१२ जातिआसीविसा ण भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता, त जहा—विच्छुयजातिआसीविसे, मडुक्कजातिआसीविसे, उरगजातिआसीविसे मणुस्सजातिआसीविसे । (श० ८।८७)

१३. विच्छुयजातिआसीविसस्स ण भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?

---

*लय : एक दिवस रुकमण हरि बोलै

विपपणा प्रतै द्विधाभूत जे, करिवा समर्थ तेहो ॥

[illegible]
जनशतद्वयलक्षण तदेव मात्रा—प्रमाण यस्या सा तया ता 'वोदि' ति तनु 'विसेण' ति विपेण स्वकीयाशीप्रभवेण करणभूतेन 'विसपरिगय' ति विप भावप्रधानत्वान्निर्देशस्य विपता परिगना—प्राप्ता विपपरिगताऽतस्ताम्, अत एव "विसट्टमाणि" ति विकसन्ती—विदलन्ती । (वृ० प० ३४१,३४२)

१६. विच्छू विप इतरी भूमि व्याप्त, पिण निश्चय करि न्हालो ।
नहि कीधो न करै नहि करसी, इम ए तीनूं इ कालो ॥

१६. विसए से विसट्टयाए, नो चेव ण सपत्तीए करेंसु वा, करेंति वा, करिस्सति वा । (श० ८।८८)

१७. मडूक जाति-आसीविप पूछा, तव भाखै जिनरायो ।
भरत प्रमाण काया विप गोचर, शेपं त चेव कहायो ॥

१७, १८ मडुक्कजातिआसीविसस्स ण भते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?
गोयमा ! पभू ण मडुक्कजातिआसीविसे भरहप्पमाणमेत्त बोदि विसेण विसपरिगय सेस त चेव जाव (स० पा०) करिस्सति । (श० ८।८९)

## सोरठा

१८. जाव करिस्सतीह, तीनु काल विपे तिको ।
सप्राप्ती न करीह, विपय मात्र आख्यो अछै ॥

१६. *एव सर्प जाति-आसीविप, णवरं विशेप वदति ।
जबू प्रमाण तनू विप गोचर, त चेव जाव करिस्सति ॥

१६ एव उरगजातिआसीविसस्स वि, नवर—जबुद्दीवप्पमाणमेत्त बोदि विसेण विसपरिगय सेस त चेव जाव (स० पा०) करिस्सति । (श० ८।९०)

२०. मनुष्य जाति-आसीविप पिण इमहिज, णवर द्वीप अढाई ।
तनु ह्वै तो इतरो विप व्यापै, पिण त्रिहु काल न थाई ॥

२० मणुस्सजातिआसीविसस्स वि एव चेव, नवर—समयखेत्तप्पमाणमेत्त बोदि विसेण विसपरिगय, सेस त चेव जाव (स० पा०) करिस्सति । (श० ८।९१)

२१. वलि गोयम पूछै जिनवर नै, जो कर्म-आसीविप होयो ।
तो नारकी तिर्यंच मनुष्य सुर, कर्म-आसीविप जोयो ?

२१ जइ कम्मआसीविसे किं नेरइयकम्मआसीविसे ? तिरिक्खजोणियकम्मआसीविसे ? मणुस्सकम्मआसीविसे ? देवकम्मआसीविसे ?

२२. जिन कहै नारकी मे नहि पावै, तिर्यंच मनुष्य नै देवा ।
ए त्रिहुं गति माहे कर्म-आसीविप, लब्धि प्रभावज लेवा ॥

२२. गोयमा ! नो नेरइयकम्मासीविसे, तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे वि, मणुस्सकम्मासीविसे वि, देवकम्मासीविसे वि । (श० ८।९२)

२३. जो तिर्यंच ह्वै कर्म-आसीविप, स्यूं एकेंद्री तिर्यंचो ।
जाव पचेंद्री तिर्यंच विपे ए, कर्म-आसीविप संचो ॥

२३. जइ तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं एगिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे जाव पचिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ?

२४. जिन कहै एकेंद्री मे नहि पावै, जाव चउरिंद्री मे नाही ।
कर्म-आसीविप तो पावै छै, तिर्यंच पचेंद्री माही ॥

२४. गोयमा ! नो एगिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे जाव नो चउरिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, पचिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ।

*लय : एक दिवस रुकमण हरि बोलै

२५. जो तिर्यंच पंचेंद्री माहै, कर्म-आसीविष पायो।
तो स्यू समूर्च्छिम तिरि पचेद्री, कै गर्भज तिरि माह्यो ? ॥

२५. जइ पचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं समुच्छिमपचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ? गब्भवक्कतियपचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ?

२६. इम जिम वैक्रिय शरीर तणा जे, भेद कह्या तिम कहियै।
जाव पर्याप्त सख वर्षायु, गर्भज तिरि-पं० लहियै ॥

२६ एव जहा वेउव्वियसरीरस्स भेदो जाव ।

### सोरठा

२७. वैक्रिय शरीर भेद, जाव पज्जत्ता आखिया।
सुणज्यो आण उमेद, जाव शब्द मे अर्थ ए ॥

२८. *समूर्च्छिम तिर्यच पंचेंद्री, कर्म-आसीविष नाही।
कर्म-आसीविप तो लहियै छै, गर्भज तिर्यंच मांही ॥

२८ गोयमा ! नो समुच्छिमपचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे गब्भवक्कतियपचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे । (वृ० प० ३४२)

२९. जो गर्भज-तिरि कर्म-आसीविप, स्यूं आयु वर्ष सखेजो।
वर्ष असंख तणा जे तिर्यच, ए किण माही कहेजो ?

२९ जइ गब्भवक्कतियपचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं सखेज्जवासाउयगब्भवक्कतियपचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, असखेज्जवासाउय जाव कम्मासीविसे ? (वृ० प० ३४२)

३०. जिन कहै सख वर्प ना तिर्यंच, कर्म-आसीविष ताह्यो।
वर्प असंख आयु ना तिर्यंच, नहिं पावै तिण माह्यो ॥

३० गोयमा ! सखेज्जवासाउय जाव कम्मासीविसे नो असखेज्जवासाउय जाव कम्मासीविसे । (वृ० प० ३४२)

३१. जो सख वर्प ना आयु वाला मे, तो पर्याप्ता माह्यो।
कै अपज्जत्त संखेज्ज वर्प ना, जाव शब्द में ए आयो ?

३१ जइ सखेज्ज जाव कम्मासीविसे किं पज्जत्तसखेज्ज जाव कम्मासीविसे अपज्जत्तसखेज्ज जाव कम्मासीविसे ? (वृ० प० ३४२)

३२. जिन कहै पर्याप्त संख वर्ष तिरि, कर्मभूमि गर्भजो।
अपज्जत्ता सखेज्ज वर्प आयु मे, कर्मासीविष न लहेजो ॥

३२. पज्जत्तासखेज्जवासाउयगब्भवक्कतियपचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, नो अपज्जत्तासखेज्जवासाउय जाव कम्मासीविसे । (श० ८।९३)

३३. वलि गोयम पूछै जो मनुष्य मे, कर्म-आसीविष होयो।
स्यूं समूर्च्छिम मनुष्य मे पावै, कै गर्भज में जोयो ?

३३. जइ मणुस्सकम्मासीविसे किं समुच्छिममणुस्सकम्मासीविसे ? गब्भवक्कतियमणुस्सकम्मासीविसे ?

३४. जिन कहै समूर्च्छिम मे नहिं पावै, गर्भज मनुष्य में पायो।
इम जिम वैक्रिय शरीर भेद तिम, कहिवो इहां पिण ताह्यो ॥

३४ गोयमा ! नो समुच्छिममणुस्सकम्मासीविसे, गब्भवक्कतियमणुस्सकम्मासीविसे एव जहा वेउव्वियसरीर ।

३५ जाव पर्याप्त संख वर्षायु, कर्मभूमि गर्भजो।
तेह मनुष्य मे कर्म-आसीविप, अपर्याप्त न लहेजो ॥

३५ जाव पज्जत्तसखेज्जवासाउयकम्मभूमागब्भवक्कतियमणुस्सकम्मासीविसे, नो अपज्जत्ता जाव कम्मासीविसे । (श० ८।९४)

३६. जो सुर कर्म-आसीविप होवै, तो स्यूं भवनपति जोयो ?
जाव वैमानिक देव विषे ए, कर्म-आसीविप होयो ?

३६. जइ देवकम्मासीविसे किं भवणवासिदेवकम्मासीविसे जाव वेमाणियदेवकम्मासीविसे ?

३७. जिन कहै भवनपति मे पिण छै, वाणव्यतर पिण लहियै।
जोतिपी देव वैमानिक माहै, कर्म-आसीविष कहियै ॥

३७ गोयमा ! भवणवासिदेवकम्मासीविसे, वाणमतरजोतिसियवेमाणियदेवकम्मासीविसे वि ।

---

* लय : एक दिवस रुकमण हरि बोलै

३९. जिन कहै असुरकुमार विषे पिण, कर्म-आसीविष जाणी ।
एव यावत थणियकुमार मे, कर्म-आसीविष माणी ।।
४०. जो असुरकुमार में कर्म-आसीविष, ते स्यूं पज्जत्त अपज्जत्तो ?
जिन कहै अपर्याप्ता में होवै छै, पर्याप्ता में न पत्तो ।।

३९. गोयमा ! असुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे वि जाव थणियकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे वि ।

४०. जइ असुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे किं पज्जत्ताअसुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे ? अपज्जत्ताअसुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे ? गोयमा ! नो पज्जत्ताअसुरकुमारभवणवासिदेव-कम्मासीविसे, अपज्जत्ताअसुरकुमारभवणवासिदेव-कम्मासीविसे ।

४१. एवं यावत थणियकुमार मे, अपर्याप्ता रै माह्यो ।
पाछिल भव नो कर्म-आसीविष, ऊपजतां इहा पायो ।।

४१. एव जाव थणियकुमाराण ।

४२. जो वाणव्यंतर देव कर्म-आसीविष तो स्यूं पिसाच रै माही ।
एम सहु ना अपर्याप्ता मे, पर्याप्ता मे नाही ।।

४२. जइ वाणमतरदेवकम्मासीविसे किं पिसायवाणमतर-देवकम्मासीविसे ? एवं सव्वेसिं अपज्जत्तगाण ।

४३. जोतिषी सर्व ना अपर्याप्ता में, पर्याप्ता मे न होयो ।
जो छै वैमानिक तो स्यू कल्प में, कै कल्पातीत जोयो ?

४३. जोइसियाण सव्वेसिं अपज्जत्तगाण ।
जइ वेमाणियदेवकम्मासीविसे किं कप्पोवावेमाणिय-देवकम्मासीविसे ? कप्पातीयावेमाणियदेवकम्मा-सीविसे ?

४४. जिन कहै कल्प विषे जे ऊपना, कर्म-आसीविष त्याही ।
कल्पातीत देव छै ज्यां मे, कर्म-आसीविष नाही ।।

४४. गोयमा ! कप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे, नो कप्पातीयावेमाणियदेवकम्मासीविसे ।

४५. जो हुवै कल्प विषे उपना मे, तो स्यू सोधर्म मझारो ?
जाव अचू कल्प ऊपना ज्यांमे, कर्म-आसीविष धारो ?

४५. जइ कप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे किं सोहम्म-कप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे जाव अच्चुयकप्पोवा-वेमाणियदेवकम्मासीविसे ?

४६. जिन कहै सोधर्म-कल्प ऊपना, कर्म आसीविष पावै ।
यावत अष्टम स्वर्ग लगै छै, आगल ए नहिं थावै ।।

४६. गोयमा ! सोहम्मकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे वि जाव सहस्सारकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे वि, नो आणयकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे जाव नो अच्चुयकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे ।

४७. जो सोधर्म-स्वर्गे कर्म-आसीविष, तो पर्याप्ता लहियै ?
तथा अपर्याप्ता में पावै छै ? हिव जिन उत्तर दइयै ।।

४७. जइ सोहम्मकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे किं पज्जत्तासोहम्मकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे ? अपज्जत्तासोहम्मकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे ?

४८. सोधर्म-स्वर्गे पर्याप्ता में, कर्मासीविष नहिं थावै ।
अपर्याप्ता में ए पावै छै, पूर्व भव थी ले आवै ।।

४८. गोयमा ! नो पज्जत्तासोहम्मकप्पोवावेमाणियदेव-कम्मासीविसे, अपज्जत्तासोहम्मकप्पोवावेमाणियदेव-कम्मासीविसे ।

४९. इम जाव अष्टम कल्प ना देवा, पर्याप्ता अवलोयो ।
कर्म-आसीविष त्यामे नहिं छै, अपर्याप्ता मे होयो ।।

४९ एव जाव नो पज्जत्तासहस्सारकप्पोवावेमाणियदेव-कम्मासीविसे,

५०. अक वयासी नो देश अर्थ ए, इक सौ तेतीसमी ढालो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशालो ।।

अपज्जत्तासहस्सारकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे ।
(श० ८।९५)

## ढाल : १३४

### दूहा

१. पूर्वे एह कही तिके, वस्तु प्रति अवलोय।
ज्ञान रहित जे जीव छै, ते जाणै नहि कोय॥

१- एतच्चोक्तं वस्तु अज्ञानो न जानाति
(वृ० प० ३४२)

२. ज्ञानी पिण कोइ एक जे, दश वस्तु प्रति देख।
किणहि प्रकार जाणै नहि, ते कहियै सुविशेख॥

*देव जिनेंद्र नी हो भवियण! सरस सुधारस वाण॥ (ध्रुपदं)

२ ज्ञान्यपि कश्चिद्दश वस्तूनि कथञ्चिन्न जानातीति दर्शयन्नाह—
(वृ० प० ३४२)

३. छद्मस्थ दश स्थानक प्रतै, हो भवियण! सर्व भाव करि सोय।
जाणै नहि देखै नही हो, भवियण! तास नाम अवलोय कै॥

३ दस ठाणाइ छउमत्थे सव्वभावेण न जाणइ न पासइ, त जहा—

४. धुर धर्मास्तिकाय नै, वले अधर्मास्तिकाय।
वलि आकाशास्तिकाय नै, तृतीय बोल ए थाय॥

४ धम्मत्थिकाय अधम्मत्थिकाय आगासत्थिकाय

५. जीव शरीर-रहित जिको, ए सिद्ध जीव कहाय।
परमाणु पुद्गल प्रतै, शब्द गध नै वाय॥

५ जीव असरीरपडिवद्ध परमाणुपोग्गल, सद्द, गध, वात। 'जीव असरीरपडिवद्ध' ति देहविमुक्त सिद्धमित्यर्थ।
(वृ० प० ३४२)

वा०—परमाणु पुद्गल पचमे बोल कह्यो। तेहना उपलक्षण थकी द्विप्रदेशिकादिक खध पिण न जाणै।

वा०—परमाणुश्चासौ पुद्गलश्चेति उपलक्षणमेतत्तेन द्व्यणुकादिकमपि कश्चिन्न जानातीति।
(वृ० प० ३४२)

६. प्रत्यक्ष ए प्राणी तिको, थास्यै जिन वीतराग।
अथवा जिन होस्यै नही, नवमो बोल सुमाग॥

६ अय जिणे भविस्सइ वा न वा भविस्सइ
अयमिति—प्रत्यक्ष कोऽपि प्राणी जिनो—वीतरागो भविष्यति न वा भविष्यतीति नवमम्।
(वृ० प० ३४२)

७. प्रत्यक्ष ए प्राणी तिको, करिस्यै सर्व दुख अत।
अथवा ए करिस्यै नही, दशमो एह कहंत॥

७ अय सव्वदुक्खाणं अत करेस्सइ वा न वा करेस्सइ।

८. वृत्तिकार इहा इम कह्यो, अवधि प्रमुख अवलोय।
अतिसय ज्ञान रहीत ते, छद्मस्थ ग्रहिवो सोय॥

८ छद्मस्थ इहावध्याद्यतिशयविकलो गृह्यते।
(वृ० प० ३४२)

९. अवध्यादिके सहित फुन, अमूर्त्तपणै करि तेह।
धर्मास्तिकायादि प्रति, अजाणतो पिण जेह॥
१०. जाणै परमाणु प्रमुख, मूर्त्तपणा थी एह।
फुन सहु मूर्त्त विपय थकी, विशिष्ट अवधि करेह॥

९,१०. अन्यथाऽमूर्त्तत्वेन धर्मास्तिकायादीनजानन्नपि परमाण्वादि जानात्येवासौ, मूर्त्तत्वात्तस्य समस्तमूर्त्तविपयत्वाच्चावधिविशेपस्य (वृ० प० ३४२)

वा०—अथ ननु सर्व भावे करि न जाणै, इम कह्यु। वली तिण कारण थकी ते दश वस्तु किणहि प्रकार करिकै अवध्यादिक सहित जाणतो छतो पिण अनत पर्यायपणै करी न जाणै इति।

इम जो ए सत्य तो दश सख्या नो नियम ते निरर्थक हुवै। घटादिक अतिहि घणा पदार्थ नै अकेवली सर्व पर्यायपणै करी जाणवा असमर्थपणा थकी। एतले 'सव्वभावेण न जाणइ' एहनो अर्थ—सर्व भाव ते अनत पर्याय करिकै ए दश वस्तु न जाणै, इम अर्थ कीजै तो घटादिक अनेक वस्तु अवध्यादिक सहित

वा०—अथ सर्वभावेनेत्युक्त ततश्च तत् कथञ्चिज्जानन्नप्यनन्तपर्यायतया न जानातीति, सत्य, केवलमेव दशेति सख्यानियमो व्यर्थ स्यात्, घटादीना सुवहूनामर्थानामकेवलिना सर्वपर्यायतया ज्ञातुमशक्यत्वात्, सर्वभावेन च साक्षात्कारेण—चक्षु प्रत्यक्षेणेति हृदय, श्रुतज्ञानादिना त्वसाक्षात्कारेण जानात्यपि।
(वृ० प० ३४२)

*लय : सुण सुण साधुजी हो मुनिवर

ज्ञानादिक करिकै असाक्षातपणे करी जाणं पिण साक्षातपणे करी न जाणं ।

११. छद्मस्थ अतिशय-रहित ते, नहिं जाणै दस स्थान ।
अन्यथा अवधि सहित जे, परमाणु आदिक जान ॥
१२. सव्वभावेणं पाठ नों, सर्व प्रकारे सोय ।
स्पर्श रस गंध रूप नैं, जाणवै करी सुजोय ॥
१३. ए प्रत्यक्ष जिन केवली, होस्यै तथा न होय ।
दसमे ठाणें वृत्ति मे, अर्थ कियो इम जोय ॥

११-१३. नवर छद्मस्थ इह निरतिशय एव द्रष्टव्योऽन्यथाऽवधिज्ञानी परमाण्वादि जानात्येव, सव्वभावेणं ति सर्वप्रकारेण स्पर्शरसगन्धरूपज्ञानेन घटमिवेत्यर्थ. तत्रायमिति प्रत्यक्षज्ञानसाक्षात्कृतो जिन. केवली भविष्यति न वा भविष्यतीति ।
(ठाण वृ० प० ४८४)

## दूहा

१४. कह्यो तास व्यतिरेक हिव, प्रवर केवली पेख ।
तसु अधिकार कहै हिवै, साभलज्यो सुविशेख ॥

१४. उक्तव्यतिरेकमाह— (वृ० प० ३४२)

१५. *एह दसू निश्चै करी, उत्पन्न ज्ञान दर्शन ।
धरणहार छै तेहनो, अरहा केवली जिन ॥

१५. एयाणि चेव उप्पण्णनाणदसणधरे अरहा जिणे केवली

१६. सर्व भाव करिनै सही, वर साक्षात विशेख ।
जाणे केवलज्ञान स्यूं, केवलदर्शण करि देख ॥

१६. सव्वभावेण जाणइ-पासइ,
'सव्वभावेण जाणइ' त्ति सर्वभावेन साक्षात्कारेण जानातिकेवलज्ञानेनेति हृदयम् । (वृ० प० ३४२)

१७. धुर धर्मास्तिकाय नै, यावत ए दुख अंत ।
करिस्यै ए करिस्यै नही, ए दस बोल उदंत ॥

१७. धम्मत्थिकायं जाव (म० पा०) करेस्सइ वा न वा करेस्सइ । (श० ८।६६)

## सोरठा

१८. जाणे केवलधार, एहवो आख्यो ते भणी ।
ज्ञान-सूत्र हिव सार, कहियै छै गुण-आगलो ॥

१८. जानातीत्युक्तमतो ज्ञानसूत्रम् । (वृ० प० ३४२)

१९. *कतिविध ज्ञान परूपियो, जिन कहै पंच प्रकार ।
आभिनिवोधिक ज्ञान ते, हिव शब्दारथ सार ॥

१९. कतिविहे ण भंते ! नाणे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पचविहे नाणे पण्णत्ते, त जहा—आभिणिवोहियनाणे

२०. अभि समुख जे अर्थ नै हो गोयम!अविपरीत विचार।
नियत असंशय रूप ज हो गोयम!वोधि जाणवो सार।
(साभल गोयमा!हो मुनिवर!आभिनिवोधिक ज्ञान)॥

२०. अर्थाभिमुखोऽविपर्ययरूपत्वात् नियतोऽसंशयरूपत्वाद्वोध (वृ० प० ३४३)

वा०—आभिनिवोधिक ज्ञान ते पांच इद्रिय अनै नोइद्रिय-मन, ते निमित्त वोध ।

**वा**—आभिनिवोधिकज्ञानम्—इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तो वोध. । (वृ० प० ३४४)

२१. शब्द कारण श्रुत ज्ञान नो, अवधि मर्याद पिछान ।
मनपर्यव केवल तणो, अर्थ वृत्ति थी जान ॥

२१. सुयनाणे, ओहिनाणे, मणपज्जवनाणे, केवलनाणे ।
(श० ८।९७)
श्रूयते तदिति श्रुतं—शब्द. स एव ज्ञान भावश्रुतकारणत्वात् कारणे कार्योपचारात् श्रुतज्ञानम् ।
(वृ० प० ३४४)

---

*लय । सुण सुण साधूजी हो मुनिवर

## सोरठा

२२. सुणवा थकीज ज्ञान, इद्रिय मनो निमित्त जे।
ते श्रुत ज्ञान पिछान, श्रुत ग्रथ अनुसारी तिको॥

२२. श्रुताद् वा—शब्दात् ज्ञान श्रुतज्ञान—इन्द्रियमनोनिमित्त श्रुतग्रन्थानुसारी बोध इति। (वृ० प० ३४४)

२३. हेठु हेठु जेह, विस्तृत जे वस्तु प्रति।
जिण करिकै जाणेह, अवधि ज्ञान कहियै तसु॥

२३ 'ओहिणाणे' त्ति अवधीयते—अधोऽधो विस्तृतं वस्तु परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधि स एव ज्ञानम्। (वृ० प० ३४४)

२४. तथा मर्याद करेह, रूपी द्रव्यज जाणियै।
अन्य प्रति नहिं जाणेह, द्वितीय अर्थ ए अवधि नु॥

२४. अवधिना वा—मर्यादया मूर्त्तद्रव्याण्येव जानाति नेतराणीति व्यवस्थया ज्ञानमवधिज्ञानम्। (वृ० प० ३४४)

२५. मन चितवता जेह, मनोद्रव्य नां पर्यवा।
जिण करिकै जाणेह, ते मनपर्यव ज्ञान छै॥

२५. मनसो मन्यमानमनोद्रव्याणा पर्यव —परिच्छेदो मन-पर्यव स एव ज्ञान मन पर्यवज्ञानम्। (वृ प० ३४४)

२६. वा मन नां पर्याय, पर्याय तेह विचारणा।
ते प्रति जाणै ताय, मनपर्याय सुज्ञान छै॥

२६ मन पर्यायाणा वा—तदवस्थाविशेषाणा ज्ञान मन-पर्यायज्ञानम्। (वृ० प० ३४४)

२७. केवल एक कहाय, मतिज्ञानादिक रहित ए।
अथवा शुद्ध सुहाय, आवरण रूप कलक विन॥

२७ केवलमेक मत्यादिज्ञाननिरपेक्षत्वात् शुद्ध वा आवरणमलकलङ्करहितत्वात्। (वृ० प० ३४४)

२८. अथवा सकल उदार, प्रथमपणै करिनेज ते।
विशेप थकी विचार, सपूरण जे ऊपजै॥

२८ सकल वा—तत्प्रथमतयैवाशेपतदावरणाभावत सम्पूर्णोत्पत्ते। (वृ० प० ३४४)

२९. तथा साधारण नाय, अन्य नही एह सारखो।
तथा अनत कहाय, अनत वस्तु नै जाणवै॥

२९. असाधारण वाऽनन्यसदृशत्वात् अनन्त वा ज्ञेयानन्तत्वात्। (वृ० प० ३४४)

३०. यथा अवस्थित देख, तीन काल नी वस्तु नै।
शील प्रकाशन पेख, एहवूं केवलज्ञान छै॥

३०. यथावस्थिताशेपभूतभवद्भाविभावस्वभावावभासीति भावना तच्च तत् ज्ञान चेति केवलज्ञानम्।

३१. *हिव स्यूं आभिनिबोधि ते? जिन कहै च्यार प्रकार।
अवग्रह ईहा अवाय छै, वलि धारणा सार॥

३१. से किं तं आभिणिवोहियनाणे?
आभिणिवोहियनाणे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—
ओग्गहो, ईहा, अवाओ, धारणा।

३२ अवग्रह अर्थ ग्रहण करै, सामान्य थी कहिवाय।
अशेप विशेप तेहनी, विचारणा तसु नांय॥

३२ 'उग्गहो' त्ति सामान्यार्थस्य—अशेपविशेपनिरपेक्षस्यानिर्देश्यस्य रूपादे। (वृ० प० ३४४)

## सोरठा

३३. अव नो अर्थ कहाय, प्रथम थकी जे अर्थ प्रति।
ग्रहण जे करिवो ताय, अवग्रह शब्दार्थ वृत्तौ॥

३३ अव इति—प्रथमतो ग्रहण—परिच्छेदनमवग्रह। (वृ० प० ३४४)

३४. *ईहा छता अर्थ भणी, आलोचना विशेख।
अवाय कह्या जे अर्थ नो, निशेष निश्चय देख॥

३४ 'ईह' त्ति सदर्थविशेपालोचनमीहा, 'अवाओ' त्ति प्रक्रान्तार्थविनिश्चयोऽवाय। (वृ० प० ३४४)

३५. धारण जाण्या अर्थ नै, विशेष दिल मे धार।
एह अर्थ नहिं वीसरै, भेद कह्या ए चार॥

३५ 'धारणे' त्ति अवगतार्थविशेपधरण धारणा। (वृ० प० ३४४)

*लय : सुण सुण साधूजी हो मुनिवर

३७. कतिविध प्रभु ! अज्ञान छै ? न कह तान प्र० . ।
मति अरु श्रुत अज्ञान छै, विभगनाण अवधार ॥

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, त जहा—मइअण्णाणे, सुयअण्णाणे, विभंगनाणे । (श० ८/९६)

विरुद्धा भङ्गा—वस्तुविकल्पा यस्मिंस्तद्विभङ्गं तच्च तज्ज्ञान च अथवा विरूपो भङ्ग —अवधिभेदो विभङ्ग स चासौ ज्ञान चेति विभङ्गज्ञानम् । (वृ० प० ३४८)

वा०—विभग नाण ए पाठ नो अर्थ वृत्ति मे कह्यु—विरुद्धा भगा जेहनै विषे तथा विरूप अवधि नो भेद ते विभग । इम अकार विशेषित विभंग मे स्थापित करी विभग नैं ज्ञान कह्यु, ते अर्थ मिलतु नथी ।

'विभग तो अणुयोगदुवार (सू० २८५) मे क्षयोपशम भाव कह्यो छै, ते उज्जल जीव छै' तेहना विरुद्ध भागा नथी । वले अवधिज्ञान अनै विभग नु दर्शण एक छै, ते माटै ए विरुद्ध नथी । अनै विरूप पिण नथी । विभग विरुद्ध हुवै तो ए विभग नो दर्शन अवधि ते पिण विरुद्ध विरूप हुवै । अनै जो अवधि-दर्शन विरुद्ध विरूप हुवै तो अवधि-ज्ञान नो पिण एहिज दर्शन छै, ते भणी अवधि-ज्ञान पिण विरुद्ध विरूप हुवै अनै अवधि-ज्ञान विरुद्ध विरूप नही तो अवधि-दर्शन अनै विभग-अज्ञान ए विरुद्ध विरूप नहीं ।

जद कोई पूछै—ए विरुद्ध नही तो विभग नो अर्थ स्यू ? तेहनो उत्तर—इहाइज लद्धी मे कह्यु—विभग नाणे कतिविधे ? जद भगवान कहै—अनेकविध । ते भणी विविधा भगा जेहनै विषे ते विभग इम अर्थ संभवै, ते विरुद्ध भगा नो अर्थ न सभवै । जद कोइ पूछै—ठाम-ठाम विभगनाण सूत्र मे क्यू कह्यो ? तेहनो उत्तर—हेमाचार्य कृत प्राकृत व्याकरण मे सूत्र ना शब्द साध्या । तिहा एहवु सूत्र छै, ते कहै छै—'लुक्' 'स्वरस्य स्वरे परे बहुल लुग् भवति' एहनो अर्थ—स्वर परे हो तो पाछला स्वर नो बहुलपणै किहाइक लुक् हुवै, किहायक न हुवै । ते माटै बहुल शब्द कह्यो ।

विभग अनाण इसो शब्द हुतो । इहा 'लुक्' सूत्रे करी गकार माहिला अकार नु लुक् थयु अनै स्वर हीन गकार अनाण शब्द ना अकार मे मिल्या विभगनाण शब्द सिद्ध थयु ।

वली पच वर्णा फूल नैं सूत्रे 'दसद्धवण्णकुसुम' पाठ कह्यु छै । इहा पिण दस अद्ध शब्द हुतो 'लुक्' सूत्रे करी सकार माहिला अकार नो लुक् थयु । स्वर हीन सकार अद्ध शब्द नां अकार मे मिल्या दसद्ध शब्द सिद्ध थयु ।

तथा सर्वार्थसिद्ध नैं 'सव्वट्ठसिद्ध' पाठ कह्यं । इहा पिण सव्वअट्ठसिद्ध शब्द हुतो । 'लुक्' सूत्रे करी व्वकार माहिला अकार नु लुक् थयु । स्वरहीन व्वकार अट्ठ शब्द ना अकार मे मिल्या सव्वट्ठ शब्द सिद्ध थयु । इत्यादिक अनेक ठामे 'लुक्' सूत्र करी पाछला स्वर नो लुक् हुवै छै । तिम विभंग नाण शब्द पिण जाणवो ।

तिवारे कोई पूछै— विभंग अनाण इसो पाठ किहाइ कह्यो छै ? तेहनो उत्तर—भगवती शतक ९।३३ मे असोच्चा नैं अधिकारे कह्यो—निरंतर छठ-छठ तप, सूर्य स्हामी आतापना, प्रकृति भद्रक, स्वभावे उपशात, स्वभावे पतला क्रोध-मान माया-लोभ, तिणे करी मृदु—कोमल, मार्दवसंपन्न, अल्लीण- इन्द्रिया वश्य करी, भद्रिक,

वनीतपणै करी एकदा प्रस्तावे शुभ अध्यवसाये करी शुभ परिणामे करी विशुद्ध लेश्याइ करी तदावरणी कर्म ना क्षयोपशम करी 'ईहापोहमग्गणगवेसण करेमाणस्स'—ईहा कहिता अर्थ-चेष्टा—ज्ञान सन्मुख विचारवो । अपोह नो अर्थ वृत्तिकार तो विपक्ष कियो अनै वडा टवा मे कह्यो—धर्म ध्यान वीजा पक्ष रहित निर्णय करवो ।

मग्गण कहिता तेहिज धर्म नी आलोचना । गवेपण कहिता अधिक धर्म नी आलोचना करता छता विभगे णाम अण्णाणे समुप्पज्जति—विभग नामैं अज्ञान ऊपजै । जघन्य आगुल नो असख्यातमो भाग उत्कृष्ट असख्याता हजार जोजन जाणै, देखै ते विभंग ज्ञान करिकै जीव पिण जाणै, अजीव पिण जाणै । पाखड नै विपे रह्या ते महाआरभी नै सक्लिश्यमान जाणै । तेहनी अपेक्षाये अल्पआरभी नै विशुद्धमान जाणै । जद प्रथम समकत्व पामै, साधु धर्म प्रतै रोचवै, सद्दहै, वाछै, चारित्र परिवजै, लिंग परिवजै—

तस्स ण तेहिं मिच्छत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं परिहायमाणेहिं सम्मदसण-पज्जवेहिं परिवड्ढमाणेहिं परिवड्ढमाणेहिं से विब्भगे अण्णाणे सम्मत्तपरिग्गहिए खिप्पामेव ओही परावत्तइ—

तिणे मिथ्यात्व पर्याय करी परिहीयमान होवै करी, सम्यग् दर्शन ना पर्याय तिण करी परिवर्द्धमान होते थके, ते विभग नामा अज्ञान सम्यग्दर्शन परिगृहीत छतो उतावलो हीज अवधिज्ञान हुइ । इहा प्रत्यक्ष पाठ मे कह्यो—विभग नामे अज्ञान ऊपजै । वलि कह्यु सम्यक्त पाम्ये छते 'विभगे अण्णाणे' विभग अज्ञान शीघ्र अवधि हुवै । इहा 'लुक्' सूत्रे करी पाछला स्वर नो लुक् नथी थयु । वहुलपणै लुक् कह्यु छै ते माटै इहा लुक् न थयु ।

अनै विभग नाण शब्द हुवै तिहा गकार माहिला अकार नो लुक् हुवै पिण अनाण शब्द ना अकार नो लुक् न थयु ते माटै विभग नामैं अज्ञान कहीजै पिण ज्ञान न कहीजै । जो विभंग मे अकार नो अर्थ हुइ तो विभगे अनाणे एहवो सूत्रे क्यू कह्यो ? तथा इहा सूत्रे वाल तपस्वी नै विभग ऊपजै ते विभग ऊपजवा नो कारण सूत्रे कह्यु, निरतर छठ-छठ तप, सूर्य की आतापना, भद्रिक, विनीत, क्रोधादिक पातला, मृदु-मार्दव, आलीन एहवा गुण कह्या । वलि भला अध्यवसाय, शुभ परिणाम, विशुद्ध लेश्याइ करी तदावरणी कर्म ना क्षयोपशमे करी भली विचारणाइ करी (अर्थ मे कह्यो) धर्म ध्याने करी विभग अज्ञान ऊपजै । ए विभग उपजवा ना कारण कह्या । विभग विरुद्ध हुवै तो शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम, विशुद्ध-लेश्या तदावरणी नो क्षयोपशम ए अभितर शुद्ध ऊपजवा ना कारण क्यू कह्या ?

वली कह्यो विभग अज्ञान करी जीव पिण जाणै, अजीव पिण जाणै, पाखड्या नैं जाणै, सम्यक्त्व पामैं, जो ए विभग विरुद्ध थी जीव-अजीव किम जाणै ? पाख-ड्या नै किम ओलखै ? सम्यक्त्व किम पामै ? ते माटै ए विरुद्ध नथी । कर्म ना क्षयोपशम थी ए उपजे ते उज्जल जीव विरुद्ध नथी । अज्ञानी रा भाजन माटै विभग अज्ञान कह्यु अनै सम्यक्त्व पामे ज्ञान रा भाजन माटै तेहनै अवधिज्ञान कहियै ।

सम्यग् दृष्टि पूर्व भण्यो तेहनै ज्ञानी रा भाजन माटै ज्ञान कहियै अनै ते एक वोल ऊधो श्रद्धया छता ते पूर्व ना ज्ञान नै अज्ञानी रा भाजन माटै श्रुत अज्ञान कहियै । एक वोल ऊधो श्रद्ध्यो ते मिथ्यात आश्रव छै, पिण तेहनै अज्ञान न कहियै ।

केवलज्ञान नीपजै । ते भणी ए च्यार ज्ञान, तीन अज्ञान क्षयोपशम भाव छै । केवल-ज्ञान क्षायिक भाव छै । ऊजला लेखै निरवद्य छै । ते माटै अज्ञान विरुद्ध विरूप नथी

जिम टकसाल थकी एक रूपयो भंगी ले गयो, एक रूपयो ब्राह्मण ले गयो। भंगी कनै ते भंगी रो रूपयो बाजै, ब्राह्मण कनै ते ब्राह्मण रो रूपयो बाजै । इम भाजन लारै जुदो नाम बाजै, पिण रूपयो चादी रो छै, चोखो छै । इम ज्ञानावरणी रा क्षयो-पशम रूप टकसाल थी च्यारज्ञान, तीन अज्ञान नीपना, ते ऊजल जीव छै । कर्म अलगा थया जीव ऊजलो हुवै, तेहनै विरुद्ध विरूप किम कहियै । अज्ञानी केइ बोल ऊंधा श्रद्धै छै, ते तो मिथ्यात आश्रव छै । ते मोह कर्म ना उदय थी नीपनो छै, ते अज्ञान नथी । अनै अज्ञानी रै जेतलो शुद्ध जाणपणो छै ते ज्ञानावरणी रा क्षयोपशम थी नीपनो छै, तेहनै अज्ञान कहीजै । ते माटै ऊधी श्रद्धा नै अज्ञान जुदा-जुदा छै, तेहनै कर्म अलगा थया जीव ऊजलो हुवै छै, ज्ञान अज्ञान नीपजै ते ऊजल जीव नै विरुद्ध कहै ते महा अन्याय छै ।

वलि इहाइज लद्धी मे पाच ज्ञान, तीन अज्ञान रा पजवा कह्या, ते कहै छै— सर्व थी थोडा मनपर्याय ज्ञान रा पजवा । तेहथी विभंग अज्ञान ना पजवा अनत-गुणा । तेहथी अवधिज्ञान ना पजवा अनंतगुणा । तेहथी श्रुत अज्ञान ना पजवा अनत-गुणा । तेहथी श्रुत ज्ञान ना पजवा विसेसाहिया । तेहथी मति अज्ञान ना पजवा अनंतगुणा । तेहथी मतिज्ञान ना पजवा विसेसाहिया । तेहथी केवलज्ञान ना पजवा अनतगुणा । इहा मनःपर्याय ज्ञान थकी विभंग अज्ञान ना पजवा अनतगुणा कह्या अनै अवधि ज्ञान थकी श्रुत अज्ञान ना पजवा अनतगुणा तीर्थंकरे कह्या, ते माटै ए विभग अज्ञान विरुद्ध नथी । तीनू अज्ञान रो क्षयोपशम भाव ऊजल जीव छै, न्याय दृष्टि करी विचारी जोयज्यो ।' (ज० स०)

३८. हिव स्यूं मति अज्ञान ते ? जिन कहै च्यार प्रकार ।
अवग्रह ईहा अवाय छै, वले धारणा सार ॥

३९. हिव स्यूं ते अवग्रह कह्यो ? जिन कहै दोय प्रकार ।
अर्थ अवग्रह जाणियै, व्यंजन अवग्रह धार ॥

४०. जिम आभिनिवोधिक कह्यो, तिमहिज णवर एह ।
एकार्थ वर्जी करी, तास न्याय इम लेह ॥

४१. ज्ञान आभिनिवोधिक विषे, ओगिण्हणया जेह ।
अवधारणया सवणया, अवलंबणया मेह ॥

४२. इत्यादिक जे आखिया, पंच पंच जे भेद ।
एक अर्थ छै तेहनों, अवग्रहादिक ना वेद ॥

३८. से किं तं मइअण्णाणे ?
मइअण्णाणे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—ओग्गहो, ईहा, अवाओ, धारणा । (श० ८/१००)

३९. से किं तं ओग्गहे ?
ओग्गहे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—अत्योग्गहे य वजणो-ग्गहे य ।

४०. एव जहेव आभिणिवोहियनाण तहेव, नवर— एगट्ठियवज्जं ।

४१, ४२. इहाभिनिवोधिकज्ञाने 'उग्गिण्हणया अवधारणया सवणया अवलवणया मेहे, त्यादीनि पञ्च पञ्चैकार्थि-कान्यवग्रहादीनामधीतानि । (वृ० प० ३४५)

४३. मति अज्ञान विषे वली, ते नहिं कहिवा भेद ।
तिण कारण एकार्थिका, वर्ज्या आण उमेद ॥
४४. जाव नोइद्री धारणा, कही धारणा एह ।
मति अज्ञान ए आखियो, भाव क्षयोपशम जेह ॥
४५. हिव स्यूं श्रुत अज्ञान ते ? तव भाखै जिनराय ।
ए अज्ञानी नां रच्या, मिच्छदिट्ठी ना ताय ॥
४६. जिम नंदी सूत्रे कह्या, भारत रामायण आदि ।
यावत वेद चिउ वली, अंग उपंगज साधि ॥

४७. शिक्षादिक षट अंग छै, उपंग तसु व्याख्यान ।
श्रुत अज्ञान ए आखियो, हिव तसु न्याय पिछान ॥

४३. मत्यज्ञाने तु न तान्यध्येयानीति भाव ।
(वृ० प० ३४५)

४४ जाव नोइंदियधारणा । सेत्त धारणा, सेत्त मइअण्णाणे ।
(श० ८/१०१)

४५, ४६ से किं त सुयअण्णाणे ?
सुयअण्णाणे—जं इम अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं सच्छदबुद्धि-मइ-विगप्पिय, त जहा—भारह, रामायण जहा नंदीए (सू० ६७) जाव चत्तारि वेदा सगो-वगा ।

४७. इहाङ्गानि—शिक्षादीनि षट् उपाङ्गानि च—तद्-व्याख्यानरूपाणि । (वृ० प० ३४५)
सेत्तं सुयअण्णाणे । (श० ८/१०२)

## सोरठा

४८. मिथ्यादृष्टी जाण, स्वछद बुद्धि मति रच्या ।
भारतादि पहिछाण, श्रुत अज्ञान कह्यो तसु ॥

वा०—तिहा अवग्रह, ईहा बुद्धि अनै अवाय, धारणा मति स्वच्छद ते पोता ना अभिप्राय करिकै । तत्व थकी सर्वज्ञ प्रणीत अर्थ अनुसार विना बुद्धि अनै मति ए बिहु करिकै विकल्पित ते रच्या, ते स्वच्छद बुद्धि मति विकल्पित कहियै, ते भारतादिक ।

वा०—'सच्छदबुद्धिमइविगप्पिय त जहा—भारह रामायण' मित्यादि तत्रावग्रहेहे बुद्धि अवायधारणे च मति स्वच्छन्देन—स्वाभिप्रायेण तत्त्वत सर्वज्ञप्रणीतार्था-नुसारमन्तरेण बुद्धिमतिभ्या विकल्पित स्वच्छन्दबुद्धि-मतिविकल्पित । (वृ० प० ३४५)

४९ 'निज शास्त्र रै मांहि, जिन-मत मिलती वारता ।
तसु जाणपणो ताहि, कहियै श्रुत अज्ञान ते ॥
५०. पूरव भण्यो पिछाण, समदृष्टि रै ज्ञान श्रुत ।
मिथ्याती रै जाण, श्रुत अज्ञान कहीजियै ॥
५१. तिम निज रचित विचार, जिन मत मिलती वात जे ।
तसु जाणपणो सार, श्रुत अज्ञान कह्यो अछै ॥
५२. ज्ञानवरणी देख, क्षयोपशम थी नीपनो ।
ज्ञान अज्ञान सपेख, अनुयोगद्वार विषे कह्यो ॥

५२ से किं त खओवसमनिप्फण्णे ?
खओवसमनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते, त जहा—
खओवसमिया आभिणिवोहियनाणलद्धी······
खओवसमिया विभगनाणलद्धी (अणुओग सू० २८५)

५३. असोच्चा अधिकार, विभग मिथ्यादृष्टि तणै ।
सम्यक्त आया सार, अवधिज्ञान कहियै तसु ॥
५४. इहविध न्याय पिछाण, अवधिज्ञान समदृष्टि रै ।
आया धुर गुणठाण, विभंग अज्ञान कहीजियै ॥
५५. विभग अवधि जे ज्ञान, दर्शण एक बिहु तणो ।
अवधि नाम पहिछाण, भाव क्षयोपशम ते भणी ॥
५६. जिन आगम अवलोय, समदृष्टी रै ज्ञान ते ।
भणै मिथ्याती कोय, कहियै तास अज्ञान ते ॥
५७ भाजन लारै जान, ज्ञान अज्ञान कहीजियै ।
समदृष्टी रै ज्ञान, अज्ञान अज्ञानी तणै ॥

५३. तस्स ण छट्ठछट्ठेण·······से विभगे अण्णाणे सम्म-त्तपरिग्गहिए खिप्पामेव ओही परावत्तइ ।
(श० ९ उ० ३१ सू०३३)

५८. केइ अजाण कहत, ज ५८।
भणवो जितरो हुत, ऊधो जाणपणो सरव ॥

५९. चदपन्नती माय, पहिला पाहुड़ा तणा ।
सप्तम जे सुखदाय, पाहुड पाहुड मे कह्यो ॥

५९-६३. चदपण्णत्ती १।२५ (सूरपण्णत्ती)

६०. अट्ठ पडिवत्ती जाण, अन्यतीर्थि नी कहण ते ।
मंडल नो संठाण, जुओ-जुओ भाखै तिके ॥

६१. इक कहै समचउरस, मडल नो सठाण छै ।
एक विपम चउरस, संस्थाने मडल कहै ॥

६२. सम चउकोण संठाण, एक विपम चउकोण कहै ।
सम चक्रवाल पिछाण, एक विपम चक्रवाल कहै ॥

६३. चक्र अर्द्ध चक्रवाल, एक छत्र आकार कहै ।
ए तसु कहण निहाल, पडिवत्ती अठ तेहनी ॥

६४. जिन कहै छत्राकार, ए नय करिनै जाणवी ।
स्वमत ए अगीकार, सात पडिवत्ती नहिं मिलै ॥

६५. इम अन्यतीर्थक वात, जिन-मत सूं मिलती तिका ।
मानी श्री जगनाथ, अणमिलती मानी नथी ॥

६६. तिम तसु ग्रंथ मझार, जिन-मत मिलती वारता ।
ते शुद्ध जाणै सार, तिण रै ए अज्ञान है ॥

६७ तिण कारण अज्ञान, क्षय उपशम भावे कह्य ।
अज्ञान निसुणी कान, भरम कोई भूलो मती' ॥

(ज० स०)

६८. *अथ स्यू विभंग अनाण ते? जिन कहै विविध प्रकार ।
ग्राम तणै सठाण छै, नगर सठाण विचार ॥

६८. से किं त विभंगनाणे ?
विभगनाणे अणेगविहे पण्णत्ते, त जहा—गामसठिए, नगरसठिए,

६९. यावत सण्णिवेस नै, सठाणे पहिछाण ।
द्वीप तणै संस्थान ते, समुद्र तणै सठाण ॥

६९. जाव सण्णिवेससठिए, दीवसठिए, समुद्दसठिए,

७०. वास भरत प्रमुख कह्या, क्षेत्र तणै संठाण ।
वर्षधर हिमवत आदि दे गिरि संठाणे जाण ॥

७०. वाससठिए, वासहरसठिए,
'वाससठिए' त्ति भरतादिवर्षाकार 'वासहरसठिए' त्ति हिमवदादिवर्षधरपर्वताकार। (वृ० प० ३४५)

७१. पर्वत गिरि सामान्य ते, तास संठाण विचार ।
तरु थूभ हय गज वली, तेह तणै आकार ॥

७१ पव्वयसठिए, रुक्खसठिए, थूभसंठिए, हयसठिए, गयसठिए,

७२. नर किन्नर किंपुरुप नै, महोरग गंधर्व जाण ।
उसभ पशु आकार ते, कहियै विभग अनाण ॥

७२. नरसठिए, किन्नरसठिए, किंपुरिससठिए, महोरगसठिए, गधव्वसठिए, उसभसठिए, पसुसठिए,

७३. पसय द्विखुर अटवी तणा, चउपद तणा विशेप ।
पंखी नै वादर तणा, आकारेज कहेस ॥

७३. पसयसठिए, विहगसठिए, वानरसठिए—
तत्र पसय —आटव्यो द्विखुरश्चतुष्पदविशेप.। (वृ० प० ३४५)

७४. वलि नाना प्रकार ना, संठाणे करि सोय ।
विभग तणो आकार छै, एह विभंग अवलोय ॥

७४. नाणासठाणसठिए पण्णत्ते । (श० ८/१०३)

*लय : सुण सुण साधुजी हो मुनिवर

७५ देश बयांसी अक नुं, सौ चउतीसमी ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' गण गुणमाल॥

## ढाल १३५

### दूहा

१. आख्या ज्ञान अज्ञान ए, हिव आगल अधिकार।
ज्ञानी अज्ञानी तणो, करै निरूपण सार॥

२. जीव दडक चउवीस जे, वलि गत्यादिक द्वार।
ज्ञान अनै अज्ञान नी, नियमा भजना सार॥

*जय जश दायक सपति लायक, नायक नाथ निमल नाणी।
देव जिनेंद दिनेद अमद, सुधा-रस चंद सरस वाणी॥ (ध्रुपदं)

३. हे प्रभु! जीवा स्यूं नाणी छै, कै तसु कहियै अज्ञानी?
जिन कहै जीवा ज्ञानी पिण छै, अज्ञानी पिण पहिछानी॥

४. जे ज्ञानी ते केइ बे ज्ञानी, केइ एक छै त्रिण ज्ञानी।
केइ चउज्ञानी केइ इक ज्ञानी, हिव एहनों निर्णय जानी॥

५. बे ज्ञानी ते मति श्रुत ज्ञानी, त्रिण ज्ञानी इहविध जानी।
मति श्रुत अवधि तथा मति श्रुत मनपज्जव तीजो गुणखानी॥

६. चउज्ञानी ते मति श्रुत अवधि, अनै मनपज्जव पहिछानी।
इक ज्ञानी ते नियमा निश्चै, केवलज्ञानी सुध ध्यानी॥

७. जे अज्ञानी जीव अछै ते, कितरा इक बे अज्ञानी?
केइ एक छै तीन अज्ञानी, तसु निरणय आगल जानो॥

८. जे बे अज्ञानी छै तेहनै, कहियै मति श्रुत अज्ञानी।
तीन अज्ञानी जेह जीव ते, मति श्रुत विभग त्रिहुं जानी॥

९ प्रभु! नारक स्यू ज्ञानी छै? कै नारक छै अज्ञानी?
जिन कहै नारक ज्ञानी पिण छै, अज्ञानी पिण ते जानी॥

१०. ज्ञानी ते नियमा त्रिहुं ज्ञानी, मति श्रुत अवधि ज्ञान जानी।
समदृष्टी जे नरके जावै, ए त्रिहु सहित गमन ठानी॥

---

*लय : चेत चतुर नर कहै तनै सतगुरु

१ अनन्तर ज्ञानान्यज्ञानानि चोक्तानि, अथ ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्च निरूपयन्नाह— (वृ० प० ३४५)

२. गइइदिए य काए सुहुमे पज्जत्तए भवत्थे य।
भवसिद्धिए य सन्नी लद्धी उवओग जोगे य॥१॥
लेसा कसाय वेए आहारे नाणगोयरे काले।
अन्तर अप्पावहुय च पज्जवा चेह दाराइ॥२॥
(वृ० प० ३४६)

३ जीवा ण भते! कि नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! जीवा नाणी वि, अण्णाणी वि।

४. जे नाणी ते अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया तिण्णाणी, अत्थेगतिया चउनाणी, अत्थेगतिया एगनाणी।

५ जे दुण्णाणी ते आभिणिवोहियनाणी, सुयनाणी य। जे तिण्णाणी ते आभिणिवोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी, अहवा आभिणिवोहियनाणी सुयनाणी, मणपज्जवनाणी।

६ जे चउनाणी ते आभिणिवोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी, मणपज्जवनाणी। जे एगनाणी ते नियमा केवलनाणी।

७ जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, अत्थेगतिया तिअण्णाणी।

८ जे दुअण्णाणी ते मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी य। जे तिअण्णाणी ते मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी, विभगनाणी।
(श० ८/१०४)

९ नेरइया ण भते! किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि।

१०. जे नाणी ते नियमा तिण्णाणी, त जहा—आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी।
सम्यग्दृष्टिनारकाणा भवप्रत्ययमवधिज्ञानमस्तीतिकृत्वा ते नियमात् त्रिज्ञानिन.। (वृ० प० ३४५)

### सोरठा

१२. असन्नी नरके जाय, नरक अपर्याप्त विषे।
विभग न लाभे ताय, वे अज्ञान इण कारणे॥

१३. सन्नी मिथ्याती ताय, नरक विषे जे ऊपजै।
तिको विभग ले जाय, भवप्रत्यय छै ते भणी॥

१४. *असुरकुमार तणी पूछा, जिन कहै नरक जिम पहिछाणी।
नियमा तीनूं ज्ञान तणी छै, भजना तीन अनाणाणी॥

१५. एव यावत थणियकुमारा, हिव पुढवी पूछा जानी।
जिन कहै पुढवी ज्ञानी नहिं छै, नियमा दोय अनाणाणी॥

१६. एव जाव वणस्सइ कहियै, ज्ञानी नहिं ते अज्ञानी।
कर्म ग्रथ दूजो गुणठाणो, आख्यो तेह विरुध जानी॥

१७. बे इंद्री नी पूछा जिन कहै, ज्ञानी नै वलि अज्ञानी।
जे ज्ञानी ते नियमा बे छै, मति श्रुत ज्ञान तास जानी॥

१८. जे अज्ञानी ते नियमा थी, कहियै मति श्रुत अज्ञानी।
इमहिज ते इद्री ने कहिवू, इमहिज चउरिंद्री जानी॥

### सोरठा

१९. सम्यक्त वमतो जाण, विकलेंद्री में ऊपजै।
सास्वादन गुणठाण, अपर्याप्त विषे हुवै॥

२०. *पचेंद्री तिर्यंच नी पूछा, जिन भाखै सुण सुखदानी।
तिरि-पचेंद्री ज्ञानी पिण छै, अज्ञानी पिण ते जानी॥

२१. जे ज्ञानी ते केइक मे बे, केइक तिर्यंच त्रिण ज्ञानी।
इम त्रिण ज्ञान तणी छै भजना, भजना तीन अज्ञानानी॥

१२. असञ्ज्ञिन सन्तो ये नारकेषूत्पद्यन्ते तेषामपर्याप्तकावस्थाया विभङ्गाभावादाद्यमेवाज्ञानद्वयमिति ते द्व्यज्ञानिन'। (वृ० प० ३४५)

१३. ये तु मिथ्यादृष्टिसञ्ज्ञिभ्य उत्पद्यन्ते तेषा भवप्रत्ययो विभङ्गो भवतीति ते त्र्यज्ञानिन.। (वृ० प० ३४५)

१४. असुरकुमारा ण भते ! किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहेव नेरइया तहेव, तिण्णि नाणाणि नियमा, तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए।

१५ एव जाव थणियकुमारा। (श० ८/१०६)
पुढविक्काइया ण भते ! किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! नो नाणी, अण्णाणी। जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी—मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य।

१६. एव जाव वणस्सइकाइया। (श० ८/१०७)
सव्वजियठाणमिच्छे सग सासणि····
···'सग' ति सप्त जीवस्थानानि सासादने भवन्ति।
तद्यथा—'पञ्चापर्याप्ता.' बादरैकेन्द्रियोऽपर्याप्त.····
(देवेन्द्रसूरिविरचित चतुर्थ कर्मग्रन्थ पृ० १७९)

१७ बेइदियाण पुच्छा।
गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि।
जे नाणी ते नियमा दुण्णाणी त जहा—आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी य।

१८ जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी, त जहा—मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी य। एव तेइदिय-चउरिंदिया वि। (श० ८/१०८)

१९. द्वीन्द्रिया केचित् ज्ञानिनोऽपि सास्वादनसम्यग्दर्शनभावेनापर्याप्तकावस्थाया भवन्तीत्यत उच्यते।
(वृ० प० ३४५)

२०. पचिंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।
गोयमा ! नाणी वि अण्णाणी वि।

२१. जे नाणी ते अत्थेगतिया दुण्णाणी अत्थेगतिया तिण्णाणी। जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, अत्थेगतिया तिअण्णाणी, एव तिण्णि नाणाणि, तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए।

---

*लय : चेत चतुर नर कहै तनै सतगुरु

२२. मणुसा जीव कह्या जिम कहिवा, पच ज्ञान भजना ठानी।
तीन अज्ञान तणी छै भजना, अखिल न्याय दिल मे आनी ।।

२३. बाणव्यतरा जेम नारकी, जोतिपी वैमानिक ख्यानी।
तीन ज्ञान वलि तीन अज्ञान तणी, नियमा निश्चै मानी ।।

२४. सिद्धा नी पूछा जिन भाखै, ज्ञानी छै नहि अज्ञानी।
केवलज्ञान तणी छै नियमा, आतमीक सुख गुणखानी ।।

वा०—जीवादि छव्वीस पद नै विपे ज्ञानी अज्ञानी चितव्या, हिवै तेहिज गति, इद्रिय, कायादि द्वार नै विपे चितवन करता छता कहै छै—

२५. नारकगतिया जीवा प्रभुजी ! स्यू ज्ञानी कै अज्ञानी ?
श्री जिन भाखै ज्ञानी पिण छै, अज्ञानी पिण पहिछानी ।।

२६. तीनू ज्ञान तणी छै नियमा, भजना तीन अज्ञानानी।
नरक विपे नर तिरि ऊपजता, वाटे वहिता ए जानी ।।

**सोरठा**

२७. पचेंद्री तिर्यंच, वलि मनुष्य थी नरक मे।
उत्पत्तिकामी संच, एह विचालै बरतता ।।

२८. सम्यग्दृष्टी जेह, नियमा तीनू ज्ञान नीं।
मिथ्यादृष्टी तेह, भजना तीन अज्ञान नी ।।

२९. असन्नी नरके जाय, वाटे दोय अज्ञान तसु।
सन्नी मिथ्याती ताय, वाटे तीन अज्ञान ह्वै ।।

३०. तिण कारण अवलोय, नियमा तीनू ज्ञान री।
अज्ञान त्रिहु नी सोय, भजना छै इण कारणे ।।

३१. *तिर्यंचगतिया जीवा प्रभुजी ! स्यू ज्ञानी कै अज्ञानी ?
जिन कहै दोय ज्ञान नै दोय अज्ञान तणी नियमा जानी ।।

**सोरठा**

३२. तिर्यंच मे आवंत, वाटे ज्ञान अज्ञान वे।
अवधि विभग न हुत, तिण स्यं नियमा वे तणी ।।

*लय चेत चतुर नर कहै तनै सतगुरु

२२. मणुस्सा जहा जीवा, तहेव पच नाणाणि, तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए।

२३. वाणमतरा जहा नेरइया । जोइसिय-वेमाणियाण तिण्णि नाणाणि, तिण्णि अण्णाणि नियमा।
(श० ८/१०९)

२४. सिद्धाण भते ! पुच्छा।
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी, नियमा एगनाणी—केवलनाणी।
(श० ८/११०)

**वा०**—अनन्तर जीवादिपु पड्विंशतिपदेपु ज्ञान्यज्ञानिनश्चिन्तिता, अथ तान्येव गतीन्द्रियकायादिद्वारेपु चिन्तयन्नाह—
(वृ० प० ३४५)

२५ निरयगतिया ण भते ! जीवा कि नाणी ? अण्णाणी?
गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि।

२६ तिण्णि नाणाइ नियमा, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए।
(श० ८/१११)

२७. ये पचेन्द्रियतिर्यग्मनुष्येभ्यो नरके उत्पत्तुकामा अन्तरगतौ वर्त्तन्ते ते निरयगतिका विवक्षिता ।
(वृ० प० ३४६)

२९ असञ्ज्ञिना नरके गच्छता द्वे अज्ञाने अपर्याप्तकत्वे विभङ्गस्याभावात् सञ्ज्ञिना तु मिथ्यादृष्टीना त्रीण्यज्ञानानि भवप्रत्ययविभङ्गस्य सद्भावाद्।
(वृ० प० ३४६)

३० एतत्प्रयोजनत्वाद् गतिग्रहणस्येति 'तिन्नि नाणाइ नियम' त्ति अतस्त्रीण्यज्ञानानि भजनयेत्युच्यत इति।
(वृ० प० ३४६)

३१ तिरियगतिया ण भते ! जीवा कि नाणी ? अण्णाणी?
गोयमा ! दो नाणा, दो अण्णाणा नियमा।
(श० ८/११२)

३२. तिर्यक्षु गति—गमन येपा ते तिर्यग्गतिकास्तेपा तदपान्तरालवर्त्तिना 'दो नाण' त्ति सम्यग्दृष्टयो अवधिज्ञाने प्रपतिते एव तिर्यक्षु गच्छन्ति तेन तेपा द्वे एव ज्ञाने 'दो अन्नाणे' त्ति मिथ्यादृष्टयोऽपि हि विभङ्गज्ञाने प्रतिपतिते एव तिर्यक्षु गच्छन्ति तेन तेपा द्वे अज्ञाने इति।
(वृ० प० ३४६, ३४७)

### सोरठा

३४. मनु गति मे आवत, वाटे वहिता नें विपे।
अवधि सहित गच्छत, तीर्थंकरवत कोइक मे॥

३५. कोइक अवधि तजेह, आवै बे ज्ञाने करी।
तिण सूं एम कहेह, भजना ए त्रिण ज्ञान नी॥

३६. अज्ञानी आवत, मनुष्य विपे जे वाट मे।
विभग अनाण न हुत, नियमा दोय अज्ञान नी॥

३७. *सुरगतिया जिम नारकगतिया, सिद्धगतिया प्रभु! स्यूं ज्ञानी?
सिद्ध जेम सिद्धगतिया कहिवा, सुर सिद्ध न्याय हिवै जानी॥

### सोरठा

३८. जे ज्ञानी सुर हुत, अतराल तेहनें अवधि।
भव-प्रत्यय उपजत, देवायु धुर समय मे॥

३९. इण कारण तसु ख्यात, नारक जिम त्रिण ज्ञान नी।
नियमा निश्चै थात, इहविध आख्यो वृत्ति मे॥

४०. फुन अज्ञानी जेह, ऊपजता असन्नी थकी।
बे अज्ञान कहेह, अपर्याप्त मे विभग नही॥

४१. सन्नी थी उपजत, विभग ह्वै भवप्रत्यय।
तसु नारक जेम कहंत, भजना तीन अज्ञान नी॥

४२. प्रथम समय सिद्ध पेख, सिद्धि-गतिका तेहनें।
कह्या वाटे वहिता देख, सिद्धा ते सहु सिद्ध गिण्या॥

४३ सिद्धा सिद्धि-गतिकाज, अन्य विशेष न विहुं मझै।
वलि गति द्वार समाज, तिण सू देखाड्या इहां॥

४४. इम अन्य द्वार मझार, अकाइया प्रमुख कह्या।
द्वार वले अधिकार, पुनरुक्त दोप न जाणवू॥

४५. *हे भगवंत! सइंदिया जीवा, स्यूं ज्ञानी के अज्ञानी?
जिन कहै च्यार ज्ञान नें तीन अज्ञान तणी भजना जानी॥

### सोरठा

४६. सइंदिया मे जाण, गुणठाणा वारै अछै।
तिण कारण पहिछाण, केवल वर्जी चिउ कह्या॥

वा०—इद्रिय उपयोगवत ते सइंदिया ज्ञानी नै कदाचित् बे, कदाचित् तीन, कदाचित् च्यार ज्ञान हुवै। तेहनें केवलज्ञान नही, अतीन्द्रिय ज्ञानपणा थकी। दोय

३४. मनुष्यगतौ हि गच्छन्त केचिद्ज्ञानिनोऽवधिना सहैव गच्छन्ति तीर्थङ्करवत्। (वृ० प० ३४७)

३५. केचिच्च तद्विमुच्य तेषा त्रीणि वा द्वे वा ज्ञाने स्यातामिति। (वृ० प० ३४७)

३६. ये पुनरज्ञानिनो मनुष्यगतावुत्पत्तुकामास्तेषा प्रतिपतित एव विभङ्गे तत्रोत्पत्तिः स्यादित्यत उक्तं 'दो अन्नाणाइं नियमं' त्ति। (वृ० प० ३४७)

३७. देवगतिया जहा निरयगतिया। (श० ८/११३)
सिद्धगतिया ण भंते! जीवा किं नाणी?
जहा सिद्धा। (श० ८/११४)

३८. देवगतौ ये ज्ञानिनो यातुकामास्तेषामवधिर्भवप्रत्ययो देवायुः प्रथमसमय एवोत्पद्यते। (वृ० प० ३४७)

३९ अतस्तेषा नारकाणामिवोच्यते 'तिन्नि नाणाइं नियमं' त्ति। (वृ० प० ३४७)

४० ये त्वज्ञानिनस्तेऽसञ्ज्ञिभ्य उत्पद्यमाना द्व्यज्ञानिन, अपर्याप्तकत्वे विभङ्गस्याभावात्। (वृ० प० ३४७)

४१ सञ्ज्ञिभ्य उत्पद्यमानास्त्वज्ञानिनो भवप्रत्ययविभङ्गस्य सद्भावाद् अतस्तेषा नारकाणामिवोच्यते—'तिन्नि अन्नाणाइं भयणाए' त्ति। (वृ० प० ३४७)

४३ यद्यपि च सिद्धाना सिद्धिगतिकाना चान्तरगत्यभावान्न विशेषोऽस्ति तथाऽपीह गतिद्वारबलायातत्वात्ते दर्शिता। (वृ० प० ३४७)

४४. एव द्वारान्तरेष्वपि परस्परान्तर्भावेऽपि तद्विशेषापेक्षयाऽपौनरुक्त्य भावनीयमिति। (वृ० प० ३४७)

४५. सइंदिया ण भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी? गोयमा! चत्तारि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए। (श० ८/११५)

वा०—'सेन्द्रिया' इन्द्रियोपयोगवन्तस्ते च ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्च, तत्र ज्ञानिना चत्वारि ज्ञानानि भजनया स्यात् द्वे स्यात् त्रीणि स्याच्चत्वारि, केवलज्ञान तु नास्ति

*लय : चेत चतुर नर कहै तनै सतगुरु

आदि ज्ञान हुवै ते लब्धि अपेक्षया। उपयोग नी अपेक्षाय करिकैं सर्व नैं एक काल नैं विषे एकहीज ज्ञान हुइ।

४७. *हे प्रभु ! एगिंदिया जीवा ते, स्यूं ज्ञानी कै अज्ञानी ?
पृथ्वीकाय जेम नो नाणी, नियमा बे अज्ञानानि ॥

**वा०**—तिहा जे प्रथम द्वारे जीव पद, चउवीस दडक सिद्ध पद—ए छव्वीस पद नैं विषे पृथ्वीकाय नैं कह्यो नो नाणी अज्ञानी छै, तेहनैं बे अज्ञान नियमा इम कह्यो। तिम एकेन्द्रिय नैं पिण कहिवू।

४८. बेइंद्री नैं तेइंद्री, वलि चउरिंद्री पहिछानी।
दोय ज्ञान नैं दोय अज्ञान तणी नियमा निश्चै ठानी ॥

### सोरठा

४९. विकलेंद्री अपजत्ति, सास्वादन ज्ञानी विषे।
ज्ञान दोय निष्पत्ति, षट आवलिका मान तसु ॥

५०. *पंचिंदिया सइंदिया जिम छै, अणिंदिया पूछा ठानी।
सिद्ध जेम केवल नी नियमा, इंद्रिय द्वार समाप्तानी ॥

५१. सकाइया जीवा हे भगवंत ! स्यूं ज्ञानी कै अज्ञानी ?
पंच ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी भजना दिल पहिछानी ॥

### सोरठा

५२. काय ओदारिक आदि, तेणे करी सहित जे।
सकाइया सवादि, पृथ्वी प्रमुखज काय षट ॥

५३. *पृथ्वी जावत वनस्पती ते, ज्ञानी नहिं छै अज्ञानी।
बे अज्ञान तणी नियमा, मति श्रुत अनाण तणी जानी ॥

५४. तसकायिक ते सकाइया जिम, पंच तीन भजना ठानी।
अकाइया नी पूछा कीधा, जिन कहै सिद्धा जिम जानी ॥

५५. सूक्ष्म जीव प्रभु ! स्यूं ज्ञानी? जिम पृथ्वी तिम पहिछानो।
दोय अज्ञान तणी छै नियमा, नहिं कहियै तेहनैं ज्ञानी ॥

५६. बादर जीवा स्यूं प्रभु ! ज्ञानी ? सकाइया जिम ए जानी।
पंच ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी भजना तिण में मानी ॥

५७. नोसूक्षम नोबादर जीवा, सिद्ध जेम आख्यातानी।
केवल ज्ञान तणी छै नियमा, सूक्ष्म द्वार समाप्तानी ॥

५८. पर्याप्ता प्रभु ! स्यूं ज्ञानी छै ? सकाइया जिम ए जानी।
पंच ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी भजना सांभल ध्यानी ॥

*लय : चेत चतुर नर कहै तनैं सतगुरु

---

तेषाम् अतीन्द्रियज्ञानत्वात्तस्य, द्व्यादिभावश्च ज्ञानाना लब्ध्यपेक्षया, उपयोगापेक्षया तु सर्वेषामेकदैकमेव ज्ञानम् (वृ० प० ३४७)

४७. एगिंदिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा पुढविकाइया।

४८. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया ण दो नाणा, दो अण्णाणा नियमा।

४९. 'वेइंदिये' त्यादि, एषा द्वे ज्ञाने, सासादनस्तेषूत्पद्यत इति कृत्वा, सासादनश्चोत्कृष्टत. षडावलिकामानोऽतो द्वे ज्ञाने तेषु लभ्येत इति (वृ० प० ३४७)

५०. पंचिंदिया जहा सइंदिया। (श० ८।११६)
अणिंदिया णं भंते ! जीवा किं नाणी !
जहा सिद्धा। (श० ८।११७)

५१ सकाइया ण भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! पंच नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ—भयणाए।

५२ सह कायेन—औदारिकादिना शरीरेण पृथिव्यादिषट्कायान्यतरेण वा कायेन ये ते सकायास्त एव सकायिका'। (वृ० प० ३४७)

५३ पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया नो नाणी, अण्णाणी—नियमा दुअण्णाणी त जहा—मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य।

५४. तसकाइया जहा सकाइया (श० ८।११८)
अकाइया ण भंते जीवा किं नाणी ?
जहा सिद्धा। (श० ८।११९)

५५ सुहुमा ण भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा पुढविक्काइया। (श० ८। १२०)

५६ बादरा ण भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा सकाइया। (श० ८।१२१)

५७ नोसुहुमा-नोबादरा ण भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा सिद्धा। (श० ८।१२२)

५८ पज्जत्ता ण भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा सकाइया। (श० ८।१२३)

. . इति, पर्याप्तकावस्थाया तेपामज्ञानत्रयमेवेति ।

(वृ० प० ३४७)

, जन नारकी तिम जानी ।
ते जिम एगिंदिया, जाव चउरिंदिया इम ठानी ॥

६०. जहा नेरइया एव थणियकुमारा । पुढविकाइया जहा एगिंदिया । एव जाव चउरिंदिया । (श० ८।१२४)

६१. पर्याप्ता तिर्यंच पंचेंद्री, स्यूं ज्ञानी कै अज्ञानी ?
तीन ज्ञान नै तीन अज्ञान तणी भजना हे मुनि ! जानी ॥

६१. पज्जत्ता ण भंते ! पचिंदियतिरिक्खजोणिया कि नाणी ? अण्णाणी ? तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए ।

वा०—पर्याप्ता पचेंद्री तिर्यंच नै अवधि ज्ञान अथवा विभग अज्ञान किणहिक मे हुवै, किणहिक में न हुवै । तिण सू तीन ज्ञान, तीन अज्ञान नी भजना कही ।

वा०—पर्याप्तकपञ्चेन्द्रियतिरश्चामवधिविभङ्गौ वा केपाञ्चित्स्यात् केपाञ्चित् पुनर्नेति त्रीणि ज्ञानान्यज्ञानानि वा ।

६२. पज्जत्त मणुस्सा सकाइया जिम, पंच ज्ञान भजना जानी ।
तीन अज्ञान तणी छै भजना, अदल न्याय हृदये आनी ॥

६२. मणुस्सा जहा सकाइया ।

६३. पर्याप्त व्यंतर नै जोतिषी, वैमानिक सुर सुखदानी ।
नरक पज्जता जिम त्रिण ज्ञान, अज्ञान तणी नियमा ठानी ॥

६३. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया ।

(श० ८।१२५)

६४. अपर्याप्त जीवा हे भगवंत ! स्यूं ज्ञानी कै अन्नाणी ?
तीन ज्ञान नै तीन अज्ञान तणी भजना कहियै छाणी ॥

६४. अपज्जत्ता णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ? तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा—भयणाए ।

(श० ८।१२६)

६५. अपर्याप्ता नारक प्रभुजी ! स्यूं ज्ञानी कै अज्ञानी ?
तीन ज्ञान नी नियमा कहियै, भजना तीन अज्ञानानी ॥

६५ अपज्जत्ता ण भंते ! नेरइया किं नाणी ? अण्णाणी ? तिण्णि नाणा नियमा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए ।

६६. एवं जावत थणियकुमारा, अपज्जत्त पंच स्थावर जाणी ।
जेम एकेंद्री तिम नहिं ज्ञानी, नियमा मति श्रुत अन्नाणी ॥

६६. एव जाव थणियकुमारा । पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया जहा एगिंदिया । (श० ८।१२७)

६७. अपज्जत्त विकलेंद्री फुन तिर्यंच पंचेंद्री अपज्जत्त जानी ।
दोय ज्ञान नै दोय अज्ञान तणी नियमा निश्चै ठानी ॥

६७. बेइंदियाण पुच्छा ।
दो नाणा, दो अण्णाणा—नियमा । एव जाव पचिंदियतिरिक्खजोणियाणं । (श० ८।१२८)

वा०—विकलेन्द्री तिर्यंच पचेन्द्री ना अपर्याप्तक में कोइक मे सास्वाद हुवै ते ज्ञान नी नियमा, कोइक मे सास्वादन नहीं हुवै, तेह मे दोय अज्ञान नी ।

वा०—अपर्याप्तकद्वीन्द्रियादीना केपाञ्चित् सासादनसम्यग्दर्शनस्य सद्भावाद् द्वे ज्ञाने केपाञ्चित्पुनस्तस्यासद्भावाद् द्वे एवाज्ञाने । (वृ० प० ३४७)

. अपर्याप्ता मनुष्य हे भगवंत ! स्यू ज्ञानी कै अज्ञानी ?
तीन ज्ञान नीं भजना कहियै, नियमा दोय अज्ञानानी ॥

६८. अपज्जत्तगा ण भंते ! मणुस्सा किं नाणी ? अण्णाणी ? तिण्णि नाणाइ भयणाए, दो अण्णाणाइं नियमा ।

०—अपर्याप्तक मनुष्य सम्यग्दृष्टि नै अवधि हुवै तिवारे तीन ज्ञान जिम । जिण मे अवधि न हुवै तिण मे बे ज्ञान । मिथ्यादृष्टि मे बे अज्ञान हीज, विषे विभग न हुवै, ते माटे बे अज्ञान नी नियमा ।

वा०—अपर्याप्तकमनुष्याणा पुन. सम्यग्दृशामवधिभावे त्रीणि ज्ञानानि यथा तीर्थकराणा, तदभावे तु द्वे ज्ञाने, मिथ्यादृशा तु द्वे एवाज्ञाने, विभङ्गस्यापर्याप्तकत्वे तेपामभावात् (वृ० प० ३४७)

जे वाणव्यंतरा, अपज्जत्त नारका जिम जानी ।
न ज्ञान नी नियमा कहियै, भजना तीन अनाणानी ॥

६९. वाणमंतरा जहा नेरइया ।

त जोतिपि नैं वैमानिक, तत्र सन्नी ऊपजे आनी ।
ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी नियमा निश्चै जानी ॥

७०. अपज्जत्तगाण जोइसिय- वेमाणियाण तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा—नियमा (श० ८।१२९)

—ोढ़

७१. नोपर्याप्त-नोअपज्जता, स्यूं प्रभु ! ज्ञानी अज्ञानी ?
जेम सिद्ध तिम पाठज कहिवो, द्वार पर्याप्त ए जानी ॥

७१. नोपज्जत्तगा-नोअपज्जत्तगा ण भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा सिद्धा । (श० ८।१३०)

७२. नरक-भवस्था उत्पत्ति स्थानक, पाम्या ते प्रभु ! स्यूं नाणी ?
नारक-गतिया तिम ए कहिवा, बुद्धिवत लीजो पहिछाणी ॥

७२ निरयभवत्था ण भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहा निरयगतिया । (श० ८।१३१)
निरयभवे तिष्ठन्तीति निरयभवस्था —प्राप्तोत्पत्ति-स्थाना. । (वृ० प० ३४८)

७३. तिरिय-भवस्था तिर्यंच उत्पत्ति-स्थानक पाम्या ते जानी ।
तीन ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी भजना कहियै ध्यानी ॥

७३. तिरियभवत्था ण भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा—भयणाए । (श० ८।१३२)

७४. मनुष्य-भवस्था सकाइया जिम, उत्पत्ति-स्थानक प्राप्तानी ।
पंच ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी भजना मुनिवर जानी ॥

७४ मणुस्सभवत्था ?
जहा सकाइया । (श० ८।१३३)

७५. सुर-भवस्था जिम नरक-भवस्था, उत्पत्ति-स्थानक प्राप्तानि ।
ज्ञान तीन नी नियमा कहियै, भजना तीन अज्ञानानि ॥

७५ देवभवत्था ण भंते !
जहा निरयभवत्था

७६. अभवस्था भव विषे रह्या नहिं, सिद्ध जेम आख्यातानि ।
ज्ञान एक केवल नी नियमा, भवस्थद्वार समाप्तानि ॥

७६ अभवत्था जहा सिद्धा । (श० ८।१३४)

७७. भवसिद्धिया प्रभु ! स्यूं ज्ञानी छै ? सकाइया जिम पहिछानी ।
पांच ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी भजना ए कथियानी ॥

७७ भवसिद्धिया ण भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा सकाइया । (श० ८।१३५)

७८. अभवसिद्धिया पूछा जिन कहै, ज्ञानी नहिं छै अज्ञानी ।
तीन अज्ञान तणी छै भजना, ए तो प्रत्यक्ष ही जानी ॥

७८ अभवसिद्धियाण पुच्छा ।
गोयमा ! नो नाणी, अण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए (श० ८।१३६)

७९ नोभव नैं नोअभव-सिद्धिया, जीवा प्रभुजी ! स्यूं नाणी ?
सिद्ध जेम इक केवल नियमा, भवसिद्धिक ए द्वारानी ॥

७९ नो भवसिद्धिया-नो अभवसिद्धिया ण भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा सिद्धा । (श० ८।१३७)

८०. सन्नी पूछा जेम सइंदिया, च्यार तीन भजना जानी ।
असन्नी जेम बेइंदिया तिम छै, दोय-दोय नियमा ठानी ॥

८० सण्णीण पुच्छा । जहा सइंदिया । असण्णी जहा बेइंदिया ।

**सोरठा**

८१. असन्नी अपज्जत्त मांहि, सास्वादन में ज्ञान वे ।
जिहां सास्वादन नाहि, निश्चय तिहा अज्ञान वे ॥

८१ अपर्याप्तकावस्थाया ज्ञानद्वयमपि सासादनतया स्यात्, पर्याप्तकावस्थाया त्वज्ञानद्वयमेवेत्यर्थ । (वृ० प० ३४८)

८२. *नोसन्नी-नोअसन्नी केवलि, सिद्ध जेम कहियै ध्यानी ।
सन्नीद्वार कह्यो ए नवमो, जीव सहित आख्यातानी ॥

८२ नोसण्णी-नोअसण्णी जहा सिद्धा । (श० ८।१३८)

८३. अंक बयासी देश ढाल ए, सौ पेंतीसमी पहिछानी ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' संपति सुखदानी ॥

*लय : चेत चतुर नर कहै तनै सतगुरु

दस प्रकार लद्धी कही, इहां वृत्तिकार कहेव ॥
२. कर्म-क्षयादिक थी हुवै, ज्ञानादिक गुण जाण ।
तास लाभ लद्धी तिका, तसु दस भेद पिछाण ॥
३. ज्ञान-लद्धी दर्शन-लद्धी, चारित्र-लद्धी चाय ।
लद्धी चरित्ताचरित्त फुन, दान-लद्धि कहिवाय ॥
४. लाभ-लद्धी नै भोग-लद्धी, वलि लद्धी उपभोग ।
वीर्य नै इद्रिय-लद्धी, ए दस लद्धी अमोघ ॥
५. ज्ञानावरणी कर्म क्षय, तथा क्षयोपशम होय ।
तिण करिनैं जे लाभ ते, ज्ञान-लद्धि अवलोय ॥
६. दर्शण मोहनी कर्म ते, उपशम क्षायक होय ।
तथा क्षयोपशम थी हुवै, दर्शन-लद्धी सोय ॥

वा०—इहा दर्शन-लद्धी मे जे उदय भाव—ऊधी श्रद्धा ते लब्धि मे किम न लेखवी ? उत्तर—ए लब्धि उज्जल जीव छै, निरवद्य छै । अनै ऊंधी श्रद्धा मिथ्यात आश्रव विगड्यो जीव छै, सावद्य छै ते माटै । मिथ्यादृष्टि रै वा मिश्रदृष्टि रै जेतली शुद्ध श्रद्धा क्षयोपशम भावे छै अनै सम्यग्दृष्टि रै सर्व शुद्ध श्रद्धा छै, ते दर्शण लद्धी मे लेखवी ।

७. चारित्र मोहनी कर्म ते, उपशम क्षायक होय ।
तथा क्षयोपशम थी हुवै, चारित्र-लद्धी जोय ॥
८. चारित्र मोहनी कर्म ते, क्षयोपशम थी होय ।
लद्धी चरित्ताचरित्त ते, श्रावकपणो सुजोय ॥

९. दान अंतराय कर्म नां, क्षायक थी जे होय ।
अथवा क्षयोपशम थकी, दान-लद्धि अवलोय ॥
१०. लाभ अंतराय कर्म ना, क्षायक थी जे होय ।
अथवा क्षयोपशम थकी, लाभ-लद्धि अवलोय ॥
११. भोग अतराय कर्म ना, क्षायक थी जे होय ।
अथवा क्षयोपशम थकी, भोग-लद्धि अवलोय ॥
१२. उपभोग अतराय कर्म नां, क्षायक थी जे होय ।
अथवा क्षयोपशम थकी, उपभोग-लद्धि अवलोय ॥
१३. वीर्य अतराय कर्म नां, क्षायक थी जे होय ।
अथवा क्षयोपशम थकी, वीर्य-लद्धी जोय ॥
१४. दर्शणावरणी कर्म ना, क्षय उपशम थी जेह ।
इद्रिय-लद्धी ऊपजै, भावे इद्रिय एह ॥
१५. 'दानादिक पांचूं' लब्धि, उज्जल जीव पिछाण ।
देवै ते तो जोग छै, सावद्य निरवद्य जाण ॥

गोयमा ! दसविहा लद्धी पण्णत्ता, तं०
२. तत्र लब्धि :—आत्मनो ज्ञानादिगुणानां तत्तत्कर्मक्षयादितो लाभ । (वृ० प० ३५०)
३. नाणलद्धी दंसणलद्धी चरित्तलद्धी चरित्ताचरित्तलद्धी दाणलद्धी ।
४. लाभलद्धी भोगलद्धी उवभोगलद्धी वीरियलद्धी इंदियलद्धी । (श० ८।१३६)
५. तत्र ज्ञानस्य—विशेषबोधस्य पञ्चप्रकारस्य तथाविधज्ञानावरणक्षयक्षयोपशमाभ्यां लब्धिर्ज्ञानलब्धि: । (वृ० प० ३५०)
७ चारित्र—चारित्रमोहनीयक्षयक्षयोपशमोपशमजो जीवपरिणाम (वृ० प० ३५०)
८ चरित्रं च तदचरित्रं चेति चरित्राचरित्र—संयमासंयम, तच्चाप्रत्याख्यानकषायक्षयोपशमजो जीवपरिणाम. । (वृ० प० ३५०)
९-१३. दानादिलब्धयस्तु पञ्चप्रकारान्तरायक्षयक्षयोपशमसम्भवा । (वृ० प० ३५०)

१६. मोह कर्म नां उदय थी, दियै कुपात्र दान।
मोह नां क्षयोपशम थकी, दान सुपात्र जान।।
१७. दान अतराय कर्म नो, क्षयोपशम तो होय।
पिण मोह उदय बहुलो हुवै, जद दियै कुपात्र सोय।।
१८. दान अतराय कर्म नो, क्षयोपशम पिण होय।
वलि क्षयोपशम मोह नों, दियै सुपात्र सोय'।। (ज० स०)
१६. एक बार जे भोगवै, असणादिक ते भोग?
वस्त्रादिक बहु वार ते, जे उपभोग प्रयोग।।

१६ इह च सकृद्भोजनमशनादीना भोग, पौन पुन्येन चोपभोजनमुपभोग, स च वस्त्रभवनादे।
(वृ० प० ३५०)

*सो ही सयाणा जिन वच साधै, जिन वच साधै आण आराधै।। (ध्रुपदं)

२०. ज्ञान-लद्धी प्रभु! कितै प्रकार? जिन कहै पच प्रकार उदार।
आभिनिबोधिक ज्ञान-सुलद्धी, जावत केवलज्ञान प्रसिद्धी।।

२०. नाणलद्धी ण भते! कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! पचविहा पण्णत्ता, त जहा—आभिणिबोहियनाणलद्धी जाव केवलनाणलद्धी।
(श० ८।१४०)

२१. अज्ञान-लद्धि प्रभु! कितै प्रकार? ताम स्वाम कहै त्रिविध विचार।
मति अज्ञान श्रुत अनाण लद्धी, विभग अनाण नी लद्धी प्रसिद्धी।।

२१. अण्णाणलद्धी ण भते! कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, त जहा—मइअण्णाणलद्धी सुयअण्णाणलद्धी विभगणाणलद्धी।
(श० ८।१४१)

**सोरठा**

२२. 'ज्ञानावरणी जाण, क्षयोपशम सेती लहै।
ज्ञान अज्ञान पिछाण, अनुयोगद्वारे आखियो।।

२२ से किं त खओवसमनिप्फण्णे?
खओवसमनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते, त जहा—
खओवसमिया आभिणिबोहियनाणलद्धी… … खओवसमिया विभगनाणलद्धी (अणुओग० सू० २८५)

२३. अज्ञानी रै ताम, सम जाणपणो जेतलो।
अज्ञान तिण रो नाम, भाजन लारै वाजियो।।
२४. जाणै गाय नै गाय, दिवस भणी जाणै दिवस।
इत्यादी कहिवाय, जाणपणो सम छै तिको।।
२५. तिण सूं क्षयोपशम भाव, निरवद्य उज्जल लेख ए।
देख विचारो न्याव, इण कारण लद्धी कही।।
२६. ज्ञानावरणी कर्म, पंच प्रकृति है तेहनी।
जोवो एहनो मर्म, मति ज्ञानावरणी प्रमुख।।
२७. मति ज्ञानावरणी जेह, क्षयोपशम तेहनों थया।
वर मति ज्ञान लहेह, मति अज्ञान पामै वलि।।
२८. श्रुत ज्ञानावरणी जाण, क्षयोपशम तेहनों थया।
वर श्रुत ज्ञान प्रधान, श्रुत अज्ञान लहै वली।।
२९. अवधि ज्ञानावरणीह, क्षयोपशम तिण रो थयां।
अवधि ज्ञान लद्धीह, विभग अनाण लहै वली।।
३०. तदावरणी कर्म सोय, क्षय उपशम थी विभग ह्वै।
सूत्र भगवती जोय, इकतीसम नवमें अख्यु।।

३०. तस्स ण छट्ठछट्ठेण… …से विभगे अण्णाणे सम्मत्तपरिग्गहिए खिप्पामेव ओही परावत्तइ।
(श० ९, उ० ३१, सू० ३३)

३१. अवधि विभंग नु जान, आवरणी तो एक है।
तेहनु नाम पिछाण, अवधि ज्ञानावरणी अछै।।

*लय : सो ही सयाणा अवसर साधै

क्षय उपशम जे थाय, मति ज्ञानावरणी तणु ।।
३५. ज्ञाता गज भव ईह, जाती-समरण ऊपनो ।
मति ज्ञानावरणीह, क्षयोपशम थी वृत्ति में ।।
३६. समदृष्टी रै सोय, वर मतिज्ञान कह्यो तसु ।
मिच्छदिट्ठि रै जोय, मति अज्ञान कहीजियै ।।
३७. तिण सु धुर त्रिहुं ज्ञान, वलि तीनूं अज्ञान ते ।
क्षयोपशम ए जान, लद्धी उज्जल जीव ए' ।। (ज० स०)

३५. जातिस्मरणावरणीयानि कर्म्माणि—मतिज्ञानावरणीयभेदा ।
क्षयोपशम —उदिताना क्षयोऽनुदिताना विष्कम्भितोदयत्वम् । (ज्ञाता वृ० प० ७४)

३८. *दर्शन-लद्धि प्रभु! कितै प्रकार? जिन कहै तीन प्रकार विचार ।
समदर्शण नै मिथ्यादर्शन, समामिथ्या दर्शन सस्पर्शन ।।

३८ दसणलद्धी ण भते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मदसणलद्धी, मिच्छादसणलद्धी, समामिच्छादसणलद्धी ।
(श० ८।१४२)

## सोरठा

३९. दर्शन मोह उपाधि, उपशम क्षायक क्षयोपशम ।
सम्यक्त उपशम आदि, समदर्शण लद्धी तिको ।।
४०. दर्शण मोह पिछाण, क्षयोपशम थी नीपजै ।
मिथ्यादृष्टि सुजाण, दृष्टि समामिथ्या वली ।।

३९ इह च सम्यग्दर्शन मिथ्यात्वमोहनीयकर्माणुवेदनोपशमक्षयक्षयोपशमसमुत्थ आत्मपरिणाम. ।
(वृ० प० ३५०)

४१. मिथ्याती रै ताम, ऊंधी श्रद्धा जेतली ।
मिथ्यादृष्टिज नाम, एह उदय भावे कही ।।

४१ मिथ्यादर्शनमशुद्धमिथ्यात्वदलिकोदयसमुत्थो जीवपरिणाम. । (वृ० प० ३५०)

४२. 'मिथ्याती रै इष्ट, सूधी श्रद्धा जेतली ।
ए पिण मिथ्यादृष्ट, पिण क्षयोपशम भाव ए ।।
४३. अनुयोगद्वार मझार, उदय निष्पन्न रा बोल में ।
मिथ्यादृष्टि विचार, ए उदय भाव ऊंधी श्रद्धा ।।

४३. अणुओगदाराइ सू० २७५

४४. ए आश्रव मिथ्यात, दर्शण मोह उदय थकी ।
लद्धि मे न कहात, उदय भाव मिथ्यादृष्टि ।।
४५. अनुयोगद्वार मझार, क्षय उपशम निप्पन्न विषे ।
तीन दृष्टि सुविचार, भाव क्षयोपशम शुद्ध श्रद्धा ।।

४५. अणुओगदाराइ सू० २८५

४६. तिण सूं मिथ्यादृष्ट, क्षय उपशम भावे तिका ।
उज्जल जीव सुइष्ट, लद्धी में आखी इहां ।।
४७. समामिथ्यादृष्ट, भाव क्षयोपशम जिन कही ।
मिश्र गुणठाणे इष्ट, तसु शुद्ध श्रद्धा जेतली' ।।(ज० स०)

४८. *चरित्र लद्धि प्रभु! किते प्रकार? जिन कहै पंच प्रकार विचार ।
सामायक चारित्र प्रसिद्धी, वली छेदोपस्थापनिक लद्धी ।।

४८. चरित्तलद्धी णं भते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, त जहा—सामाइयचरित्तलद्धी, छेदोवट्ठावणियचरित्तलद्धी ।

---

*लय : सो ही सयाणा अवसर साधै

४६. परिहार-विशुद्धि सूक्ष्म-संपराय, चारित्र मोह क्षयोपशम थाय।
यथाख्यात पचम प्रसिद्धी, उपशम क्षायक चरित्त सुलद्धी ॥
५०. चरित्ताचरित्त लद्धी भगवान ! कितै प्रकार परूपी जान ?
जिन कहै एक आकार प्रकार, देशविरत क्षयोपशम सार ॥
५१. दान लद्धी जाव उपभोग लद्धी, इक इक तास प्रकार प्रसिद्धी ।
अतराय क्षय क्षयोपशम होय, तेहथी उज्जल जीव सुजोय ॥
५२. वीर्य लद्धि प्रभु ! कितै प्रकार ? जिन कहै तीन प्रकार विचार।
बाल वीर्य लद्धी अवधार, चिहु गुणठाणे शक्ति उदार ॥
५३. पंडित वीर्य लद्धी पिछाण, ए मुनिवर नी शक्ति सुजान ।
बाल पंडित वीर्य ए लद्धी, श्रावक नी ए शक्ति प्रसिद्धी ॥
५४. इंद्रिय लद्धि प्रभु! कितै प्रकार ?जिन कहै पंच प्रकार विचार ।
सोइंदि जाव फर्शेंद्री लद्धी, दर्शणावरणी क्षयोपशम सिद्धी ॥

५५. ज्ञानलद्धिया हे प्रभु ! जीवा, स्यूं ज्ञानी अज्ञानी कहीवा ?
जिन कहै ज्ञानी कहियै तास, अज्ञानी नहिं कहियै जास ॥
५६. केइक वे ज्ञानी अवलोय, केइक त्रिण चिउ ज्ञानी होय ।
केइक एक केवल शुद्ध खेम, पच ज्ञान नी भजना एम ॥
५७. तास अलद्धिया प्रभु!स्यू नाणी?जिन कहै नो ज्ञानी छै अन्नाणी ।
केइक वे अज्ञानी न्हाल, भजना तीन अज्ञान नी भाल ॥

५८. आभिनिवोधिक ज्ञानलद्धिया, स्यू ज्ञानी अज्ञानी कहिया ?
जिन कहै अज्ञानी नहिं जेह, च्यार ज्ञान नी भजना भणेह ॥

५६. तास अलद्धिया जे कहिवाय, मतिज्ञान न लहै जे माय ।
ते ज्ञानी कहियै भगवान ! कै अज्ञानी कहियै जान ?
६०. जिन कहै ज्ञानी पिण कहिवाय, अज्ञानी पिण छै वलि ताय ।
जे ज्ञानी ते नियमा एक, केवलज्ञानी कहियै विशेख ॥
६१. जे अज्ञानी ते इम जान, कितलाइक में दोय अज्ञान ।
तीन अज्ञान केइक मे तेम, भजना त्रिण अज्ञान नी एम ॥
६२. मतिज्ञानलद्धियो कह्यो सोय, श्रुतज्ञानलद्धियो इम जोय ।
मतिज्ञान नु अलद्धियो जान, तिम श्रुतज्ञान अलद्धियो मान ॥
६३. पूछा अवधिज्ञानलद्धिया नी, जिन कहै ज्ञानी छै न अज्ञानी ।
केइक तीन ज्ञानी कहिवाय, केइक चिउनाणी मुनिराय ॥

६४. जे त्रिणज्ञानी ते इम कहियै, मति श्रुत अवधिज्ञान त्रिहु लहियै।
जे चिउनाणी ते कहिवाय, मति श्रुत अवधि रु मनपर्याय ॥

४६ परिहारविसुद्धिचरित्तलद्धी सुहुमसपरायचरित्तलद्धी अहक्खायचरित्तलद्धी । (श० ८।१४३)
५० चरित्ताचरित्तलद्धी ण भते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! एगागारा पण्णत्ता ।
५१ एव जाव उवभोगलद्धी एगागारा पण्णत्ता । (श० ८।१४४)
५२ वीरियलद्धी ण भते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, त जहा—वालवीरियलद्धी,
५३ पडियवीरियलद्धी, वालपडियवीरियलद्धी । (श० ८।१४५)
५४. इदियलद्धी ण भते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पचविहा पण्णत्ता, त जहा—सोइदियलद्धी जाव फासिदियलद्धी । (श० ८।१४६)
५५ नाणलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ? नाणी, नो अण्णाणी ।
५६ अत्थेगतिया दुण्णाणी, एव पच नाणाइं भयणाए । (श० ८।१४७)
५७ तस्स अलद्धीया ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! नो नाणी, अण्णाणी । अत्थेगतिया दुअण्णाणी,तिण्णि अण्णाणा भयणाए । (श० ८।१४८)
५८ आभिणिवोहियनाणलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी । अत्थेगतिया दुण्णाणी चत्तारि नाणाइ भयणाए । (श० ८।१४९)
५९ तस्स अलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
६० गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि । जे नाणी ते नियमा एगनाणी—केवलनाणी ।
६१ जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए ।
६२ एव सुयनाणलद्धिया वि । तस्स अलद्धिया वि जहा आभिणिवोहियनाणस्स अलद्धीया । (श० ८।१५०)
६३ ओहिनाणलद्धियाण पुच्छा ।
गोयमा! नाणी, नो अण्णाणी । अत्थेगतिया तिण्णाणी, अत्थेगतिया चउनाणी ।
६४ जे तिण्णाणी ते आभिणिवोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी ।
जे चउनाणी ते आभिणिवोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी मणपज्जवनाणी । (श० ८।१५१)

६७. पूछा मनपज्जव लद्धिया नी, जिन कहै ज्ञानी छै न अज्ञानी ।
केइक त्रिण ज्ञानी मुनिराय, केइक चिउ ज्ञानी सुखदाय ॥

६७ मणपज्जवनाणलद्धियाण पुच्छा ।
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी । अत्थेगतिया, तिण्णाणी, अत्थेगतिया चउनाणी ।

६८. जे त्रिण ज्ञानी ते इम जाणी, मति श्रुत नें मनपज्जवनाणी ।
जे चउनाणी ते इम थाय, मति श्रुत अवधि रु मनपर्याय ॥

६८. जे तिण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, मणपज्जवनाणी ।
जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी, मणपज्जवनाणी ।

६९. ते मनपज्जव अलद्धिया नी, पूछा नो उत्तर इम जानी ।
मनपज्जव वर्जी चिहु ज्ञान, तीन अज्ञान नी भजना जान ॥

६९. तस्स अलद्धीयाण पुच्छा ।
गोयमा ! नाणी वि अण्णाणी वि । मणपज्जवनाणवज्जाइ चत्तारि नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ—भयणाए ।
(श० ८।१५४)

७०. केवलज्ञानलद्धियो भगवान ! स्यू ज्ञानी अज्ञानी जान ?
जिन कहै ज्ञानी छै न अज्ञानी, नियमा एक केवल नी मानी ॥

७० केवलनाणलद्धियाण भंते ! जीवा किं नाणी अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी । नियमा एगनाणी—केवलनाणी । (श० ८।१५५)

७१. पूछा केवल ना अलद्धिया नी, केवलज्ञान वर्ज पहिछानी ।
च्यार ज्ञान नें तीन अज्ञान, ए वेहु नी भजना जान ॥

७१. तस्स अलद्धियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! नाणी वि अण्णाणी वि । केवलनाणवज्जाइ चत्तारि नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ—भयणाए ।
(श० ८।१५६)

७२. पूछा अनाण नां लद्धिया नी, जिन कहै नो ज्ञानी छै अज्ञानी ।
भजना तीन अज्ञान नी भाल, तिण मे वे किहा तीन निहाल ॥

७२. अण्णाणलद्धियाण पुच्छा ।
गोयमा ! नो नाणी, अण्णाणी । तिण्णि अण्णाणाइ—भयणाए । (श० ८।१५७)

७३. पूछा अज्ञान ना अलद्धिया नी, जिन कहै ज्ञानी छै न अज्ञानी ।
पंच ज्ञान नी भजना पेख, वे त्रिण चिउ किहा एक विशेख ॥

७३. तस्स अलद्धियाण पुच्छा ।
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी । पच नाणाइ भयणाए ।

७४. अनाणलद्धिया अलद्धिया भणिया,
तिणहिज विध आगल ए थुणिया ।
मति अज्ञान नें श्रुत अज्ञान, तसु लद्धिया अलद्धिया जान ॥

७४. जहा अण्णाणस्स य लद्धिया अलद्धिया य भणिया, एव मइअण्णाणस्स सुयअण्णाणस्स य लद्धिया अलद्धिया य भाणियव्वा ।

७५. पूछा विभग तणा लद्धिया नी, तीन अज्ञान नी नियमा जानी ।
तास अलद्धिया मे पच नाण, भजना नियमा दोय अन्नाण ॥

७५. विभगनाणलद्धियाण तिण्णि अण्णाणाइ नियमा ।
तस्स अलद्धियाण पच नाणाइ भयणाए, दो अण्णाणाइ नियमा । (श० ८।१५८)

७६. दर्शणलद्धिया प्रभु ! स्यूं नाणी ? जिन कहै नाणी नें अन्नाणी ।
पच ज्ञान नें तीन अज्ञान, भजनाइ भणिवो बुद्धिवान ॥

७६. दसणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी वि अण्णाणी वि । पच नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए । (श० ८।१५९)

७७. दर्शण-अलद्धिया प्रभु ! जीवा, स्यूं ज्ञानी ए प्रश्न कहीवा ?
जिन कहै तास अलद्धियो नांही, तीन दृष्टि विण जीव न थाई ।।

७७ तस्स अलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! तस्स अलद्धिया नत्थि ।

७८. समदर्शण-लद्धिया पच ज्ञान, भजना बे त्रिण चिउ इक मान ।
तास अलद्धिया मे त्रिण अज्ञान, भजना किहा बे किहा त्रिण जान ।।

७८ सम्मदसणलद्धियाण पच नाणाइ भयणाए । तस्स अलद्धियाण तिण्णि अण्णाणाइ—भयणाए ।

७९. मिथ्यादर्शन-लद्धिया माय, तीन अज्ञान नी भजना पाय ।
तास अलद्धिया मे पच नाण, तीन अज्ञान नी भजना पिछाण ।।

७९ मिच्छादसणलद्धियाण तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए । तस्स अलद्धियाण पच नाणाइ, तिण्णि य अण्णाणाइ—भयणाए ।

वा०—मिथ्यादर्शन ना अलद्धिया ते सम्यग्दृष्टि अनै मिश्रदृष्टि नै अनुक्रम करिकै पच ज्ञान, तीन अज्ञान नी भजना ।

वा०—मिथ्यादर्शनस्यालब्धिमता सम्यग्दृष्टीना मिश्रदृष्टीना च क्रमेण पञ्च ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि च भजनयेति । (वृ० प० ३५३)

८०. समामिथ्यादर्शन-लद्धिया नी, तास अलद्धिया नी वलि जानी ।
मिथ्यादर्शन लद्धि अलद्धी, तेह कह्या तिम भणवूं प्रसिद्धी ।।

८० समामिच्छादसणलद्धिया, अलद्धिया य जहा मिच्छादसणलद्धिया अलद्धिया तहेव भाणियव्वा ।
(श० ८।१६०)

८१. चारित्र-लद्धिया स्यू प्रभु ! नाणी ? पंच ज्ञान नी भजना जानी ।
किहां बे ज्ञान किहा त्रिण जोय, किहां चिउं ज्ञान किहा इक होय ।।

८१ चरित्तलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! पच नाणाइ भयणाए ।

८२. तेह चरित्र ना अलद्धिया मे, मनपज्जव वर्जी ए ठामें ।
भजना च्यार ज्ञान नी भाल, तीन अज्ञान नी भजना न्हाल ।।

८२ तस्स अलद्धीयाण मणपज्जवनाणवज्जाइ चत्तारि नाणाइ, तिण्णि य अण्णाणाइ—भयणाए । (श. ८।१६१)

वा०—चारित्र-अलद्धिया दूजै, चोथै, पाचमै गुणठाणै बे ज्ञान वा तीन ज्ञान अनै सिद्धा मे एक केवलज्ञान । तेहनै विषे चारित्र लब्धि नथी ते माटै । अनै पहिलै, तीजै गुणठाणे दो अज्ञान वा तीन अज्ञान ।

वा०—चारित्रालब्धिकास्तु ये ज्ञानिनस्तेपा मन पर्यववर्जानि चत्वारि ज्ञानानि भजनया भवन्ति, कथम् ? असयतत्वे आद्य ज्ञानद्वय तत् त्रय वा, सिद्धत्वे च केवलज्ञान, सिद्धानामपि चरित्रलब्धिशून्यत्वाद्, यतस्ते नोचारित्रिणो नोअचारित्रिण इति, ये त्वज्ञानिनस्तेषा त्रीण्यज्ञानानि भजनया । (वृ० प० ३५३)

८३. सामायक-चारित्र-लद्धिया नी, पूछा जिन भाखै छै ज्ञानी ।
वर्जी केवलनाण उदार, च्यार ज्ञान नी भजना सार ।।

८३. सामाइयचरित्तलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी—केवलवज्जाइ चत्तारि नाणाइ भयणाए ।

८४ ते सामायक चारित्र सोय, तास अलद्धिया मे अवलोय ।
पाच ज्ञान नै तीन अज्ञान, भजनाइ करि भणिवा जान ।।

८४. तस्स अलद्धियाण पच नाणाइ, तिण्णि य अण्णाणाइ—भयणाए ।

वा०—सामायिक-चारित्र ना अलद्धियो ते छेदोपस्थापनी आदि पामवै करी अथवा सिद्ध भावे करी ए ज्ञानी मे पाच ज्ञान नी भजना । अनै प्रथम, तीजै गुणठाणे अज्ञानी । तिहा तीन अज्ञान नी भजना ।

वा०—सामायिकचरित्रालब्धिकास्तु ये ज्ञानिनस्तेपा पच ज्ञानानि भजनया, छेदोपस्थापनीयादिभावेन सिद्धभावेन वा, ये त्वज्ञानिनस्तेपा त्रीण्यज्ञानानि भजनया ।
(वृ० प० ३५३)

८५. सामायक-चारित्र ना जेम, लद्धि अलद्धी आख्या तेम ।
जाव यथाख्यात इम जोय, लद्धि अलद्धी मे अवलोय ।।

८५ एव जहा सामाइयचरित्तलद्धिया अलद्धीया य भणिया, एव जाव अहक्खाय-चरित्तलद्धीया अलद्धीया य भाणियव्वा ।

८६. णवरं यथाख्यात-लद्धिया मे, पच ज्ञान नी भजना पामै ।
बे त्रिण चिउ इक ज्ञान उदार, चरम परम गुणस्थानक च्यार ।।

८६. नवर—अहक्खायचरित्तलद्धीयाण पच नाणाइ भयणाए ।
(श० ८/१६२)

बे ज्ञानी ते मति श्रुत सार, त्रिण ते मति श्रुत अवधि विचार ॥

दुण्णाणी ते आभिणिवोहियनाणी य सुयनाणी य। जे तिण्णाणी ते आभिणिवोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी।

८९. तास अलद्धिय में पच ज्ञान, तीन अज्ञान नी भजना जान।
श्रावक विण ससारी सिद्ध, चरित्ताचरित्त अलद्धिया लिद्ध ॥

८९ तस्स अलद्धियाण पच नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ—भयणाए। (श० ८/१६३)

९०. दान-लद्धिया में पंच ज्ञान, तीन अज्ञान नी भजना जान।
चवदे गुणठाणे ए कहियै, सिद्धां माहे ए नहिं लहियै ॥

९० दाणलद्धियाण पच नाणाइ तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए। (श० ८/१६४)

९१ पूछा तेहनां अलद्धिया नी, ज्ञानी छै ते नहिं अज्ञानी।
नियमा निश्चै छै इक नाणी, केवलनाणी सिद्ध सुहाणी ॥

९१ तस्स अलद्धीयाण पुच्छा।
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। नियमा एगनाणी—केवलनाणी।

९२. एव यावत वीर्य लद्धी, वलि तसु अलद्धिया गुणवृद्धी।
वीर्य लद्धी वीर्य आतम, तास अलद्धी सिद्ध सुखातम ॥

९२. एव जाव वीरियस्स लद्धीया अलद्धीया य भाणियव्वा।

९३ पूछा बालवीर्य-लद्धिया नी, तीन ज्ञान नी भजना जानी।
भजना तीन अज्ञान नी कहियै, धुर ए चिहु गुणठाणे लहियै ॥

९३. बालवीरियलद्धियाण तिण्णि नाणाइ तिण्णि अण्णाणाइ—भयणाए।

९४. ते बालवीर्य ना अलद्धिया नी, पंच ज्ञान नी भजना ठानी।
श्रावक साधु नै सिद्ध लहियै, धुर चिहुं गुणठाणा विण कहियै ॥

९४ तस्स अलद्धियाण पच नाणाइ भयणाए।

९५ वलि पंडितवीर्य-लद्धिया नी, पच ज्ञान नी भजना जानी।
छट्ठा गुणठाणा थी कहियै, चउदसमे गुणठाणे लहियै ॥

९५ पडियवीरियलद्धियाण पच नाणाइ भयणाए।

९६. पडितवीर्य तणो अलद्धियो, मनपज्जव वर्जी नै कहियो।
च्यार ज्ञान नै तीन अज्ञान, भजना एह मुनी विण जान ॥

९६. तस्स अलद्धीयाणं मनपज्जवनाणवज्जाइ नाणाइ, अण्णाणाणि य भयणाए।

९७. बालपंडितवीर्य-लद्धिया नी, तीन ज्ञान नी भजना जानी।
तास अलद्धिया मे पंच ज्ञान, तीन अज्ञान नी भजना आन ॥

९७. बालपडियवीरियलद्धियाण तिण्णि नाणाइ भयणाए।
तस्स अलद्धीयाण पच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइ—भयणाए। (श० ८/१६५)

९८. वलि पूछा इद्री-लद्धिया नी, च्यार ज्ञान नी भजना जानी।
तीन अज्ञान तणी है भयणा, धुर द्वादश गुणठाणे वयणा ॥

९८ इंदियलद्धिया ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! चत्तारि नाणाइ, तिण्णि य अण्णाणाइ—भयणाए। (श० ८/१६६)

९९. पूछा इद्री-अलद्धिया नी, जिन कहै ज्ञानी छै न अज्ञानो।
नियमा एक केवल वर नाणी, इद्री भाव तिहा नहिं जाणी ॥

९९. तस्स अलद्धियाण पुच्छा।
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। नियमा एगनाणी—केवलनाणी। (श० ८/१६७)

१००. पूछा सोइदिय-लद्धिया नी, जिम इंद्री-लद्धिया तिम जानी।
च्यार ज्ञान नी भजना कहियै, भजना तीन अज्ञान नी लहियै ॥

१०० सोइदियलद्धिया ण जहा इदियलद्धिया। (श० ८/१६८)

१०१. पूछा सोइंदिय-अलद्धिया नी, जिन कहै ज्ञानी वलि अज्ञानी।
जे ज्ञानी ते के बे नाणी, कितलायक इक नाणी जाणी ॥

१०१ तस्स अलद्धियाण पुच्छा।
गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि। जे नाणी ते अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया एगनाणी।

१०२. जे बे नाणी ते पहिछाणी, आभिनिबोधिक नैं श्रुत नाणी।
बे ते चोरिद्री अपजत्त में, सास्वादन सम्यक्त ह्वै तिण मे ॥

१०२. जे दुण्णाणी ते आभिणिवोहियनाणी, सुयनाणी।
तेऽपर्याप्तिका सासादनसम्यग्दर्शनिनो विकलेन्द्रिया
(वृ० प० ३५४)

१०३. जे इक नाणी ते पहिछाणी, केवलज्ञानी सिद्ध वखाणी।
वलि तेरम चवदम गुणठाणे, भावे सोइद्री नहिं माणे ॥

१०३ जे एगनाणी ते केवलनाणी।

१०४ जे अन्नाणी ते वलि जाणी, नियमा वे मति श्रुत अन्नाणी।
कहियै छै ए मर्व एकेद्री, मिच्छदिट्ठी बे ते चउरिंद्री ॥

१०४ जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी, त जहा—मइ-
अण्णाणी य सुयअण्णाणी य।

१०५ जिम सोइंदी लद्धि अलद्धो, तेम चक्षु-इद्रिय प्रसीद्धी।
वलि घ्राणेद्री लद्धि अलद्धी, भणवा न्याय करी बुद्धि-वृद्धी ॥

१०५. चक्खिदियघाणिंदियाण लद्धीया अलद्धीया य जहेव
सोइदियस्स। (श० ८/१६९)

१०६. पूछा रसइद्रि-लद्धिया नी, च्यार ज्ञान नी भजना आनी।
वलि भजनाइ तीन अनाण, बे ते चउ पचेंद्री जाणं ॥

१०६ जिब्भिदियलद्धियाण चत्तारि नाणाइ, तिण्णि य
अण्णाणाइ—भयणाए।
(श० ८/१७०)

१०७ रसइंद्रि-अलद्धिया मांय, ज्ञानी अज्ञानी कहिवाय।
एकेंद्रिया केवली तास, रस-इद्रि लाधै नहिं जास ॥

१०७ तस्स अलद्धियाण पुच्छा।
गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि।

१०८. जे ज्ञानी ते नियमा एक, केवलज्ञानी कहियै विशेख।
अज्ञानी ते नियमा दोय, मति श्रुत अज्ञानो अवलोय ॥

१०८ जे नाणी ते नियमा एगनाणी—केवलनाणी। जे
अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी, त जहा—मइअण्णाणी
य सुयअण्णाणी य

१०९. फर्सेंद्री नों लद्धियो जाण, इद्रि-लद्धिया जेम पिछाण।
फर्सेंद्री-अलद्धियो जेह, इद्री-अलद्धिया जिम एह ॥

१०९ फासिंदियलद्धीया अलद्धीया य जहा इदियलद्धिया
अलद्धिया य। (श० ८/१७१)

११०. फर्सेंद्री-लद्धिया में जाण, पहिला थी बारम गुणठाण।
तास अलद्धिया केवलज्ञानी, लद्धि अलद्धी द्वार पिछानी ॥

११० स्पर्शनेन्द्रियालब्धिकास्तु केवलिन एव।
(वृ० प० ३५४)

१११. अक वयांसी देश निहाल, एकसौ नैं छत्तीसमी ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसाद,
'जय-जश' सुख संपति अहलाद ॥

## ढाल : १३७

### दूहा

१. लद्धि अलद्धि घमड[1] सूं, कह्यो अधिक विस्तार।
उपयोगादिक द्वार हिव, साभलज्यो धर प्यार ॥

२. *सागारोवउत्ता प्रभु! जीवा, स्यू ज्ञानी अज्ञानी कहीवा ?
जिन कहै पच ज्ञान नी पेख, भजना तीन अज्ञान नी देख ॥

२. सागारोवउत्ता ण भते! जीवा किं नाणी ?
अण्णाणी ?
पच नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ—भयणाए।
(श० ८।१७२)

१ स्वाभिमान

*लय : विना रा भाव सुण सुण गूंजे

३. पाच ज्ञान तीन अज्ञान, सागारोवउत्ता अठ जान ।
अणागार दर्शण है च्यार, बुद्धिवत हिये अवधार ॥
४. आभिनिबोधिक ज्ञान सागार, स्यू ज्ञानी अज्ञानी धार ?
जिन कहै भजना चिउं नाण, दोय तीन च्यार इम जाण ॥
५. इम श्रुतज्ञान सागार, अवधिज्ञान सागार विचार ।
अवधिज्ञान-लद्धिया ज्यू जाण, च्यार ज्ञान नी भजना आण ॥
६. मनपज्जवज्ञान सागार, मनपज्जवलद्धी जिम सार ।
च्यार ज्ञान नी भजना कहियै, किहा तीन किहा चिउं लहियै ॥
७. केवलज्ञान सागार सुखेम, केवलज्ञान-लद्धिया जेम ।
हिवै मति अज्ञान सागार, भजना तीन अज्ञान प्रकार ॥

८. इम श्रुत अज्ञान सागार, भजना तीन अज्ञान नी धार ।
वलि विभग अज्ञान सागार, नियमा तीन अनाण विचार ॥
९. अणागारोवउत्ता जीवा, भगवत ! स्यू ज्ञानी कहीवा ?
भजना पंच ज्ञान त्रि अज्ञान, सिद्ध नें चवदै गुणस्थान ॥

१०. इम चक्खु अचक्खु पिछाण, णवरं भजना करि चिउ नाण ।
केवलज्ञान चक्खु मे न पाय, भजना तीन अज्ञान कहाय ॥

११. पूछा अवधि दर्शण अणागार, ज्ञानी अज्ञानी बेहु विचार ।
जे ज्ञानी ते के त्रिण ज्ञानी, केइ च्यार ज्ञानी गुणखानी ॥

१२. जिके तीन ज्ञानी पहिछानी, तिके मति श्रुत अवधि सुज्ञानी ।
जिके च्यार ज्ञानी कहिवाय, तिके केवल - विण चिउ पाय ॥

१३. जे अज्ञानी ते अवलोय, नियमा तीन अज्ञान नी सोय ।
मति श्रुत विभग विचार, कह्यो अवधि दर्शण नो प्रकार ॥
१४. केवल दर्शण जे अणागार, केवलज्ञान-लद्धिया ज्यू सार ।
ए तो आख्यो उपयोग द्वार, हिवै जोग द्वार सुविचार ॥
१५. प्रभु ! जीवा सजोगी स्यू ज्ञानी ? जिम सकाइया तिम जानी ।
पंच तीन नी भजना पिछाण, इणमे पावै तेरै गुणठाण ॥
१६. इम मन वच नै काय जोगी, पंच तीन नी भजना प्रयोगी ।
अजोगी केवली सिद्ध जेम, कह्यो जोगद्वार धर प्रेम ॥
१७ सलेसी जीवा स्यूं प्रभु ! ज्ञानी ? ए पिण सकाइया जिम जानी ।
भजना पंच ज्ञान त्रि अज्ञान, इणमे पावै तेरै गुणस्थान ॥

४. आभिणिबोहियनाणसागारोवउत्ता ण भते ?
चत्तारि नाणाइ भयणाए ।
५. एव सुयनाणसागारोवउत्ता वि । ओहिनाणसागारोवउत्ता जहा ओहिनाणलद्धिया ।
६ मणपज्जवनाणसागारोवउत्ता जहा मणपज्जवनाणलद्धीया ।
७. केवलनाणसागारोवउत्ता जहा केवलनाणलद्धीया । मइअण्णाणसागारोवउत्ताण तिण्णि अण्णाणाइ भयणाए ।
८ एव सुयअण्णाणसागारोवउत्ता वि । विभगनाणसागारोवउत्ताण तिण्णि अण्णाणाइ नियमा । (श० ८।१७३)
९. अणागारोवउत्ता ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
पच नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ—भयणाए ।
१० एव चक्खुदसण-अचक्खुदंसणअणागारोवउत्ता वि, नवर—चत्तारि नाणाइ, तिण्णि अण्णाणाइ—भयणाए । (श० ८।१७४)
११. ओहिदसणअणागारोवउत्ताण पुच्छा ।
गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि । जे नाणी ते अत्थेगतिया तिण्णाणी, अत्थेगतिया चउनाणी ।
१२ जे तिण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी ओहीनाणी । जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी जाव मणपज्जवनाणी ।
१३ जे अण्णाणी ते नियमा ति अण्णाणी, त जहा—मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी, विभगनाणी ।
१४ केवलदसणअणागारोवउत्ता जहा केवलनाणलद्धिया । (श० ८।१७५)
१५ सजोगी ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहा सकाइया ।
१६ एव मणजोगी वइजोगी कायजोगी वि । अजोगी जहा सिद्धा । (श० ८।१७६)
१७. सलेस्सा ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहा सकाइया । (श० ८।१७७)

१८. कृष्णलेसी प्रभु ! स्यूं ज्ञानी ? ए तो सइंदिया जिम जानी ।
भजना च्यार ज्ञान त्रि अज्ञान, कहियै धुर षट गुणस्थान ॥
१९. इम नील कापोत विचार, च्यार तीन नी भजना धार ।
तेजु पदम सप्त गुणस्थान, भजना च्यार ज्ञान त्रि अज्ञान ॥
२०. शुक्ललेसी सलेसी ज्यूं जान, भजना पंच ज्ञान त्रि अज्ञान ।
इण मे पावै तेरै गुणठाण, अलेसी सिद्ध जेम वखाण ॥
२१. प्रभु ! सकषाई स्यूं नाणी ? ए तो सइंदिया जिम जाणी ।
भजना च्यार तीन कहिवाई, इम यावत लोभ-कषाई ॥
२२. अकषाई प्रभु ! स्यूं नाणी ? पंच ज्ञान नी भजना जाणी ।
दोय तीन च्यार इक ज्ञान, लहै चरम च्यार गुणस्थान ॥
२३. सवेदी जीवा स्यूं प्रभु ! नाणी ? ए तो सइंदिया जिम जाणी ।
भजना च्यार ज्ञान त्रि अज्ञान, धुर नव गुणठाणे जान ॥
२४. इम स्त्री पु नपुसक जोय, अवेदी अकषाई जिम होय ।
पंच ज्ञान नी भजना पिछाण, ऊपरला पट गुणठाण ॥
२५. आहारगा जीवा स्यूं प्रभु! ज्ञानी? ए तो सकषाई जिम वानी ।
णवर केवलज्ञान पिण जान, भजना पच ज्ञान त्रि अज्ञान ॥
२६. अणाहारका जीवा स्यू ज्ञानी ? मनपज्जव वर्जी पिछानी ।
भजना च्यार ज्ञान त्रि अज्ञान, सिद्ध अपज्जत्त जिन-गुणस्थान[1] ॥
२७. अंक बंयासी देश निहाल, एक सौ सैंतीसमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय, सुख सपति 'जय-जश' पाय ॥

१८. कण्हलेस्सा ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहा सइंदिया ।
१९. २० एव जाव पम्हलेस्सा ।
सुक्कलेस्सा जहा सलेस्सा । अलेस्सा जहा सिद्धा ।
(श० ८।१७८)

२१. सकसाई ण भते । किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहा सइंदिया । एव जाव लोभकसाई ।
(श० ८।१७९)

२२ अकसाई ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
पच नाणाइ भयणाए । (श० ८।१८०)

२३ सवेदगा ण भते ? जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहा सइंदिया ।
२४ इत्थिवेदगा वि, एव पुरिसवेदगा वि, एव नपुसगवेदगा वि । अवेदगा जहा अकसाई । (श० ८।१८१)

२५. आहारगा ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहा सकसाई, नवर—केवलनाण पि ।
(श० ८।१८२)

२६. अणाहारगा ण भते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
मणपज्जवनाणवज्जाइ नाणाइ, अण्णाणाइ तिण्णि— भयणाए । (श० ८।१८३)

## ढाल १३८

### दूहा

१. हिवै ज्ञान-गोचर कहूं, द्वार सतरमों सार ।
अधिक उदार विचार थी, वारू करि विस्तार ॥

२. *आभिनिबोधिक ज्ञान नी, विषै किती जगतार ?
श्री जिन भाखै संक्षेप थी, दाखी च्यार प्रकार ॥

वा०—अनेरा भेद ते द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप भेद नै विषे अतर्भावे करि कहियै ते सक्षेप करि ॥

१ अथ ज्ञानगोचरद्वारे— (वृ० प० ३५६)

२ आभिणिवोहियनाणस्स ण भते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?
गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—
वा०—'समासत' सड्क्षेपेण प्रभेदाना भेदेष्वन्तर्भावनेत्यर्थ । (वृ० प० ३५७)

---

१. तेरहवें गुणस्थान मे केवलसमुद्घात के समय
*लय : प्रभवो मन माहै

थकी—ते जे द्रव्य नैं आधारे जेतलो क्षेत्र अथवा आकाशमात्र क्षेत्र आश्रयी नैं। काल थकी—तीन काल प्रतै अथवा द्रव्य पर्याय अवस्थिति प्रतै आश्रयी नैं। भाव थकी—औदयिकादिक भाव प्रतै अथवा द्रव्य ना पर्याय प्रतै आश्रयी नैं।

४. आभिनिवोधिक ज्ञानी द्रव्य थी, पाठ आएसेण तंत।
अर्थ सामान्य विशेष थी, सहु द्रव्य जाणै देखंत॥

५. वृत्तिकार इहा इम कह्यु, आएसेण रो अर्थ।
आएस तेह प्रकार छै, सामान्य विशेष तदर्थ॥

६. ते सामान्य विशेष विहु विषे, ओघ सामान्य थी जेह।
जे द्रव्य मात्रपणै करि, जाणै देखै तेह॥

७. पिण जे द्रव्य विषे रह्या, सर्व विशेष विचार।
तेह अपेक्षा ए नही, वारू न्याय उदार॥

८. अथवा आएसेण तणो, अर्थ दूजो एह।
श्रुत-अभ्यासपणै करी, जाणै देखै जेह॥

९. सर्व द्रव्य षट द्रव्य नै, जाणै देखै केम ?
एहनों न्याय टीका मझै, आख्यो छै एम॥

१०. अवाय धारणा पेक्षया, जाणै छै सोय।
अवाय धारणा रूप ए, ज्ञान छै अवलोय॥

११. अवग्रह ईहा अपेक्षया, जाणै जेह सुजन्न।
तेह पासइ कहीजियै, अवग्रह ईहा दर्शन्न॥

१२. भाष्यकार पिण इम कह्यो, अवाय धारणा ज्ञान।
अवग्रह नै ईहा भणी, दर्शण वाछयो पिछान॥

१३. तथा तत्व नी रुचि तिका, सम्यक्त्व शोभाय।
जेणे करी तत्व रोचवै, तास ज्ञान कहिवाय॥

१४ सामान्यग्राही दर्शन अछै, विशेषग्राही ज्ञान।
तिण सूं अवग्रहादिक चिहु, दर्शन ज्ञान पिछाण॥

१५ सामान्य अर्थ ग्रहण विषे, अवग्रह ईहा थाय।
विशेष ग्रहण स्वभाव मे, धारणा नै अवाय॥

वा०—इहा शिष्य पूछै—हे भगवन ! अठाईस भेदमान आभिनिवोधिक ज्ञान कहियै। जे नदी सूत्रे (सू० ५१) कह्य छै मति ज्ञान ना अठाईस भेद। अनै इह व्याख्याने पाच इद्रिय अनै मन—ए पट ना अवाय अनै धारणा इम द्वादशविध मतिज्ञान हुवै। अनै पच इद्रिय अनै मन ए पट ना अर्थावग्रह अनै ईहा, एव बारह भेद अनै च्यार व्यजनावग्रह एव सोलह चक्षु आदि दर्शन हुवै। एतलै नदी मे तो मतिज्ञान ना अठाईस भेद कह्या अनै इण व्याख्याने अवाय धारणा ए द्वादशविध नै ज्ञान कह्या, शेष सोलह नै चक्षु अचक्षु दर्शण कह्यो। ए आपस

क्षेत्रतो—द्रव्याधारमाकाशमात्र वा क्षेत्रमाश्रित्य, कालत—अद्धा द्रव्यपर्यायावस्थितिं वा समाश्रित्य, भावत—औदयिकादिभावान् द्रव्याणा वा पर्यायान् समाश्रित्य। (वृ० प० ३५७)

४. दव्वओ ण आभिणिवोहियनाणी आएसेणं सव्वदव्वाइ जाणइ-पासइ।

५. आदेश—प्रकार सामान्यविशेषरूप:। (वृ० प० ३५७)

६,७ तत्र चादेशेन—ओघतो द्रव्यमात्रतया न तु तद्गत-सर्वविशेषापेक्षयेति भाव, (वृ० प० ३५७)

८. अथवा आदेशेन श्रुतपरिकर्म्मिततया (वृ० प० ३५७)

९ सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि जानाति। (वृ० प० ३५७)

१०. अवायधारणापेक्षयाऽवबुध्यते, ज्ञानस्यावायधारणारूपत्वात्, (वृ० प० ३५७)

११. 'पासइ' त्ति पश्यति अवग्रहेहापेक्षयाऽवबुध्यते, अवग्रहेहयोर्दर्शनत्वात्, (वृ० प० ३५८)

१२, १३. आह च भाष्यकार—
नाणमवायधिईओ दसणमिट्ठं जहोग्गहेहाओ।
तह तत्तरुई सम्म रोइज्जइ जेण तं णाण॥ (वृ० प० ३५८)

१४ ज सामन्नग्गहण दसणमेय विसेसियं नाण (वृ० प० ३५८)

१५ अवग्रहेहे च सामान्यार्थग्रहणरूपे अवायधारणे च विशेषग्रहणस्वभावे इति। (वृ० प० ३५८)

वा०—नन्वष्टाविंशतिभेदमानमाभिनिवोधिकज्ञानमुच्यते, यदाह—'आभिणिवोहियनाणे अट्ठावीस हवति पयडीओ' त्ति इह च व्याख्याने श्रोत्रादिभेदेन पड्भेदतयाऽवायधारणयोर्द्वादशविध मतिज्ञानं प्राप्त, तथा श्रोत्रादिभेदेनैव पड्भेदतयाऽर्थावग्रहईहयोर्व्यञ्जनावग्रहस्य च चतुर्विधतया पोडशविध चक्षुरादिदर्शनमिति प्राप्तमिति कथं न विरोध ?

माही विरोध किम नथी ? गुरु कहै—सत्य, किंतु मतिज्ञान अनैं चक्षु आदि दर्शण ए बिहुं नो भेद ते जुदापणो अणवाछी नैं मतिज्ञान अठावीसविध कहियैं । इति पूज्य परम गुरु कहै ।

सत्यमेतत् किन्त्वविवक्षयित्वा मतिज्ञानचक्षुरादिदर्शन-योर्भेद मतिज्ञानमष्टाविंशतिधोच्यते इति पूज्या व्याचक्षत इति । (वृ० प० ३५८)

१६. आभिनिबोधिक ज्ञानी, तिको खेत्र थी सर्व खेत ।
आदेसेणं ते ओघ थी, जाणै देखै तेथ ॥
१७ अथवा श्रुत अभ्यास थी, श्रुत भणवै करि सार ।
जाणै देखै सर्व खेत्र नै, लोकालोक विचार ॥
१८. काल थकी पिण इमज छै, भाव थकी पिण एम ।
भाष्यकार इहा इम कह्यो, ते सुणज्यो धर प्रेम ॥

१६. खेत्तओ ण आभिणिवोहियनाणी आएसेण सव्व खेत्त जाणइ-पासइ ।
१७. 'आदेसेण' ति ओघतः श्रुतपरिकर्मिततया वा 'सव्वं खेत्त' ति लोकालोकरूप । (वृ० प० ३५८)
१८ कालओ ण आभिणिवोहियनाणी आएसेण सव्वं काल जाणइ-पासइ ।
भावओ ण आभिणिवोहियनाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ-पासइ । (श० ८/१८४)

१६. आदेसेण ते प्रकार थी, तें ओघादेसेण ।
सामान्य प्रकारे करी, पट द्रव्य जाणै तेण ॥
२०. पिण सर्व पर्याय जाणै नही मतिज्ञानी ताय ।
केवलज्ञानी अछै तिके, जाणै सर्व पर्याय ॥
२१. खेत्र थकी लोकालोक नै, काल थकी त्रिहु काल ।
भाव थकी पच भाव नै, जाणै देखै विशाल ॥

१६, २० आएसोत्ति पगारो ओघादेसेण सव्वदव्वाइ ।
धम्मत्थिकाइयाइ जाणइ न उ सव्वभावेण ॥
(वृ० प० ३५८)

२१ खेत्त लोगालोग काल सव्वद्धमहव तिविहंपि ।
पचोदइयाईए भावे जन्नेयमेवइय ।
(वृ० प० ३५८)

२२ अथवा आदेश ते सूत्र छै, सूत्र विषै जे अर्थ ।
भणवै करिनै पदार्थ जे, जाण्ये छते तदर्थ ॥
२३. सूत्र भावना विना अपि, सूत्र नै अनुसार ।
पसरै ज्ञान-मति तेहनो, एम कह्यो भाष्यकार ॥
२४. वाचनातरे न पासइ कह्यो पाठातरेण ।
नदी टीका कृत आखियो, एहिज पाठ नी श्रेण ॥

२२,२३. आएसोत्ति व सुत्त सुओवलद्धेसु तस्स मइनाण ।
पसरइ तब्भावणया विणावि सुत्ताणुसारेण ॥
(वृ० प० ३५८)

२४. इद च सूत्र नन्द्यामिहैव वाचनान्तरे 'न पासइ' त्ति पाठान्तरेणाधीतम्, एव च नन्दिटीकाकृता (नन्दी वृ० प० १८५) *व्याख्यातम्* । (वृ० प० ३५८)

२५ पाठ आदेश प्रकार ते, सामान्य विशेख ।
तेणे करी जाणै अछै, तास न्याय इम देख ॥
२६. तिहा द्रव्य जाति सामान्य थी, जाणै सहु द्रव्य ख्यात ।
एह धर्मास्तिकायादि छै, द्रव्य रूप ए जात ॥
२७. विशेप थी पिण इह विधे, ए धर्मास्ति कहेस ।
धर्मास्ति नो देश ए, इत्यादिक जाणेस ॥
२८. न पासइ नो न्याय ए, सर्व धर्मास्तिकायादि ।
वलि शब्दादि पुद्गल सहु, नहिं देखै सवादि ॥
२६. योग्य देश अवस्थित प्रतै, देखै पिण तेह ।
देखवा जोग पुद्गल तणा, देश प्रतै देखेह ॥
३०. श्रुत ज्ञान नी केतलो, विषय कही भगवान ?
जिन भाखै सक्षेप थी, च्यार प्रकारे जान ॥
३१. द्रव्य थकी नै क्षेत्र थी, काल थकी कहिवाय ।
भाव थकी कहियै वली, हिवै एहनो न्याय ॥

२५ आदेश —प्रकार स च सामान्यतो विशेपतश्च ।
(वृ० प० ३५८)
२६ तत्र द्रव्यजातिसामान्यादेशेन सर्वद्रव्याणि धर्मास्ति-कायादीनि जानाति । (वृ० प० ३५८)
२७ विशेपतोऽपि यथा धर्मास्तिकायो धर्मास्तिकायस्य देश इत्यादि (वृ० प० ३५८)
२८,२६ न पश्यति सर्वान् धर्मास्तिकायादीन् शब्दादीस्तु योग्यदेशावस्थितान् पश्यत्यपीति । (वृ० प० ३५८)

३० सुयनाणस्स ण भते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?
गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—
३१ दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ ।

जाणै देखै सर्व भाव ते, इहां वृत्तिकार कहेह ॥

३४. उवउत्ते उपयोग-सहित ते, भावश्रुत उपयुक्त ।
पिण उपयोग रहित न, एह विशेषण उक्त ॥

३५ धर्मास्तिकाय आदि दे, सर्व द्रव्य छै जेह ।
श्रुत ज्ञान नी विषय ना, विशेष थी जाणै तेह ॥

३६. देखै ते श्रुत अनुर्वात्ति करी, मन अचक्षु दर्शन्न ।
तेणे करी सर्व द्रव्य नें, श्रुत विषे जे प्रपन्न ॥

३७ तदा पूर्ण दस पूर्व थी, चवद पूर्वधर जाण ।
श्रुतकेवलि ते बाहुल्यपणे, जाणै देखै पिछाण ॥

३८ ऊणा दस पूरवधरा, भजना करि तेह ।
ते वलि मति विशेष थी, जाणवा जोग्य जेह ॥

३९. वृद्ध कहै देखै वलो, ते किण रीत देखाय ?
दर्शण जोग्य न सकल हि, कहियै एहनूं न्याय ॥

४०. पन्नवणा तीसमा पद विषे, पासणया श्रुत ज्ञान ।
ते अंगीकारपणा थकी, पेखै कहिवू पिछाण ॥

४१. अनुत्तर विमान आदि दे, आलकी देखाय ।
बहुलपणे केइ वस्तु नें, देखवो इम थाय ॥

४२. वलि सर्व प्रकार अदृष्ट नु, नही थाय आलेख ।
द्रव्य थकी ए आखियो, इम क्षेत्रादिक देख ॥

४३. अन्य आचार्य इम कहै, जाणइ पाठ जोय ।
ण पासइ इहविध पठै, ते कहै देखै न कोय ॥

४४. भाव थी श्रुतज्ञानी, तिको उपयोग-सहीत ।
सर्व भाव जाणै अछै, एहवो आख्यो वदीत ॥

४५. पिण छद्मस्थ जाणै नही, सर्व पजवा पिछाण ।
इहा सर्व भाव जाणै कह्या, तास न्याय इक जाण ॥

४६. सूत्र विषे इहा सर्व ते, पच संख्या कहिवाय ।
भाव ते उदय प्रमुख भणी, ग्रहण करेवा ताय ॥

४७. ते पंच भाव सर्व प्रतै, जाति थकी जाणेह ।
भाव विषय जे सर्व रह्या, ते नहिं जाणै तेह ॥

४८. अथवा कहिवा जोग भाव नो, अनतमे भागहीज ।
गणधरे सूत्रपणें रच्या, द्वादश अंग कहीज ॥

४९. तो पिण प्रसग अनुप्रसग थी, सहु कहिवा जोग जेह ।
श्रुत विषय कहियै तसु, ते सहु भाव जाणेह ॥

---

पासइ । (श० ८/१८५)

३४. 'उवउत्ते' त्ति भावश्रुतोपयुक्तो नानुपयुक्त । (वृ० प० ३५८)

३५ 'सर्वद्रव्याणि' धर्मास्तिकायादीनि 'जानाति' विशेषतोऽवगच्छति, श्रुतज्ञानस्य तत्स्वरूपत्वात् (वृ० प० ३५८)

३६. पश्यति च श्रुतानुवर्त्तिना मानसेन अचक्षुर्दर्शनेन, सर्वद्रव्याणि चाभिलाप्यान्येव जानाति । (वृ० प० ३५८)

३७. पश्यति चाभिन्नदशपूर्वधरादि श्रुतकेवली । (वृ० प० ३५८)

३८. तदारतस्तु भजना, सा पुनर्मतिविशेषतो ज्ञातव्येति । (वृ० प० ३५८)

३९. वृद्धै पुन पश्यतीत्यत्रेदमुक्त—ननु पश्यतीति कथं ? कथ च न सकलगोचरदर्शनायोगात् ? अत्रोच्यते (वृ० प० ३५८)

४० प्रज्ञापनाया (३०/२) श्रुतज्ञानपश्यत्ताया प्रतिपादितत्वात् । (वृ० प० ३५८)

४१ अनुत्तरविमानादीना चालेख्यकरणात् । (वृ० प० ३५८)

४२. सर्वथा चादृष्टस्यालेख्यकरणानुपपत्ते, एव क्षेत्रादिष्वपि भावनीयमिति (वृ० प० ३५८)

४३. अन्ये तु न 'पासइ' त्ति पठन्तीति । (वृ० प० ३५८)

४४,४५. 'ननु भावओ ण सुयनाणी उवउत्ते सव्वभावे जाणइ' इति यदुक्तमिह तत् 'सुए चरित्ते न पज्जवा सव्वे' त्ति अनेन च सह कथ न विरुध्यते ? (वृ० प० ३५८)

४६ इह सूत्रे सर्वग्रहणेन पञ्चौदयिकादयो भावा गृह्यन्ते । (वृ० प० ३५८)

४७. ताश्च सर्वान् जातितो जानाति । (वृ० प० ३५८)

४८ अथवा यद्यप्यभिलाप्याना भावानामनन्तभाग एव श्रुतनिबद्ध । (वृ० प० ३५८)

४९,५०. तथापि प्रसङ्गानुप्रसङ्गत सर्वेऽप्यभिलाप्या श्रुतविषया उच्यन्ते अतस्तदपेक्षया सर्वभावान्

५०. कहिवा जोग भाव अपेक्षया, जाणै सहु भाव सोय।
भाव कहिवा जोग जे नही, तास अपेक्षा न होय ।।

जानातीत्युक्तम् । (वृ० प० ३५८, ३५६)

५१. अभिलाप्य भाव जिके नही, श्रुत विषय नही जेह।
ते सहु पजवा जाणै नही, इति विरोध न एह ।।

५१. अनभिलाप्यभावापेक्षया तु 'सुए चरित्ते न पज्जवा सव्वे' इत्युक्तमिति न विरोध । (वृ० प० ३५६)

५२. अवधि ज्ञान नी केतली, विषय कही भगवान् ?
जिन भाखै सक्षेप थी, च्यार प्रकारे आख्यान।

५२. ओहिनाणस्स ण भते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?
गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—

५३. द्रव्य थकी वलि क्षेत्र थी, काल थकी कहिवाय।
भाव थकी भणियै वली, आगल तेहनों न्याय ।।

५३ दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ ।

५४. द्रव्य थी अवधि ज्ञानी तिको, रूपी द्रव्य जाणै देखै।
जेम नदी सूत्रे कह्या, जाव भाव थी अवेखै ।।

५४. दव्वओ ण ओहिनाणी रूविदव्वाइ जाणइ-पासइ जहा—नदीए (सू० २२)जाव (स० पा०) भावओ ।

५५. वृत्तिकार कह्यो द्रव्य थी, तेजस भाषा जेह।
विहु विच द्रव्य रह्या तिके, जघन्य थकी जाणेह ।।

५५. 'दव्वओ ण' 'मित्यादि अवधिज्ञानी रूपिद्रव्याणि पुद्गलद्रव्याणीत्यर्थ, तानि च जघन्येनानन्तानि तैजसभाषाद्रव्याणामपान्तरालवर्त्तीनि । (वृ० प० ३५६)

५६. अवधिज्ञानी उत्कृष्ट थी, सहु द्रव्य पिछाण।
सूक्ष्म बादर भेद जुजूआ, जाणै देखै सुजाण ।।

५६ उक्कोसेण सव्वाइ रूविदव्वाइ जाणइ-पासइ ।
उत्कृष्टतस्तु सर्वबादरसूक्ष्मभेदभिन्नानि जानाति । (वृ० प० ३५६)

## दूहा

५७. जाणै विशेषपणै करी, तेह ज्ञान सागार।
देखै सामान्यपणै करी, ते दर्शन अणागार ।।

५८. अवधिज्ञानी रै अवश्य हुवै, अवधि दर्शन सपेखै।
जाणै ए अवधि ज्ञाने करी, अवधि दर्शन करि देखै ।।

५७,५८. जानाति विशेषाकारेण, ज्ञानत्वात्तस्य, पश्यति सामान्याकारेणावधिज्ञानिनोऽवधिदर्शनस्यावश्यम्भावात् । (वृ० प० ३५६)

## सोरठा

५६. इहा कोइ प्रश्न करेह, धुर देखण थी ज्ञान ह्वै ।
ते अनुक्रम तजेह, जाणै इम धुर किम कह्यो ।।

५६. नन्वादौ दर्शन ततो ज्ञानमिति क्रमस्तत्किमर्थमेन परित्यज्य प्रथम जानातीत्युक्तम् ? (वृ० प० ३५६)

६०. इहा अवधिज्ञान अधिकार, प्रधान कहिवा नै अर्थ।
आदि ज्ञान अवधार, कह्यु पाठ धुर जाणइ ।।

६०. इहावधिज्ञानाधिकारात् प्राधान्यख्यापनार्थमादौ जानातीत्युक्तम् । (वृ० प० ३५६)

६१. अवधि-दर्शन नो जेह, अवधि विभग साधारण करि।
तसु अप्रधानपणेह, पछै पाठ है पासइ ।।

६१. अवधिदर्शनस्य त्ववधिविभङ्गसाधारणत्वेनाप्रधानत्वात् पश्चात्पश्यतीति । (वृ० प० ३५६)

६२. तथा साकारोपयुक्त, तेहनै लब्धिज ऊपजै।
अवधि ज्ञान लब्धि उक्त, ते उपजै साकार में ।।

६२ अथवा सर्वा एव लब्धय. साकारोपयोगोपयुक्तस्योत्पद्यन्ते लब्धिश्चावधिज्ञानमितिसाकारोपयोगोपयुक्तस्यावधिज्ञानलब्धिर्जायते । (वृ० प० ३५६)

६३. ते अर्थ जाणवा ताय, धुर साकारज जाणइ।
पाछै अनुक्रम आय, उपयोग प्रवृत्ति पासइ ।।

६३ इत्येतस्यार्थस्य ज्ञापनार्थं साकारोपयोगाभिधायक जानातीति प्रथममुक्त तत क्रमेणोपयोगप्रवृत्ते पश्यतीति । (वृ० प० ३५६)

## दूहा

६४. अवधिज्ञानी जे क्षेत्र थी, जघन्य आगुल नै तेथ।
असख्यातमै भाग जे, जाणै देखै खेत ।।

६४ खेत्तओ ण ओहिनाणी जहण्णेण अगुलस्स असखेज्जइभाग जाणइ-पासइ ।

असंख्यातमा भाग नी, जाणै जघन्य थी वात ॥
६७. उत्कृष्ट असंख्याती कही, अव-उत्सर्प्पिणी लेख ।
अतीत अनागत विषे रह्या, रूपी द्रव्य जाणै देख ॥
६८. भाव थी जघन्यपणै करी, अनंता जे भाव ।
आधार द्रव्य अनंत थी, जाणैं देखै कहाव ॥

**सोरठा**

६९. जे पर्याय आधार, द्रव्य नां अनंतपणा थकी ।
पर्याय पिण सुविचार, अनतपणो इम आखियो ॥
७० पिण इक द्रव्य माहि, पर्याय अनत-अनत छै ।
ते सहु जाणै नाहि, जाणै अनत पर्याय अनंत द्रव्य नी ॥
७१. *उत्कृष्ट पिण जे भाव नै, जाणै देखै अनंत ।
उत्कृष्ट पद सहु पज्जव थी, भाग अननमे हुंत ॥

**सोरठा**

७२. इक-इक द्रव्य रै माहि, असख असख पर्याय प्रति ।
जाणैं देखै ताहि, अवधिनाणी उत्कृष्ट थी ॥
७३. *प्रवर ज्ञान मनपज्जव नी, विपै किलो भगवान ?
जिन भाखै सक्षेप थी, च्यार प्रकारे जान ॥
७४. द्रव्य थकी नै क्षेत्र थी, काल थकी कहिवाय ।
भाव थकी भणियै वली, हिव जूजुओ ताय ॥
७५. द्रव्य थकी ते ऋजुमती, द्रव्य अनंता जेह ।
अनंतप्रदेशिया खंध नै, जाणै देखै तेह ॥
७६. द्रव्य थकी जे ऋजुमती, अनंत ही अवलोय ।
अनंतप्रदेशिक खध नै, जाणैं देखै सोय ॥
७७. जिम नदी सूत्रे कह्यु, कहिवु छै तेम ।
ज्या लग भाव थी त्या लगैं, सुणज्यो धर प्रेम ॥

**सोरठा**

७८. ऋजु कहिता पहछाण, जे सामान्यज ग्राहिणी ।
मति ते कहियै ज्ञान, ऋजुमती कहियै तमु ॥
७९. घट चिंतवियो एण, ए अध्यवसाय निमित्त जे ।
मनोद्रव्य जाणेण, ते सामान्यजग्राहिणी ॥
८०. तथा उजुमती जास, ऋज्वी मति कहियै तिका ।
ऋजुमतिमान विमास, तेहिज ग्रहियै छै इहा ॥

*लय : प्रभवो मन माहे

असखेज्जइ भाग जाणइ-पासइ ।

६७ उक्कोसेण असखेज्जाओ ओसप्पिणीओ उस्सप्पिणीओ अईयमणागय च काल जाणइ-पासइ ।

६८ भावओ ण ओहिनाणी जहण्णेण अणते भावे जाणइ-पासइ ।

भावतोऽवधिज्ञानी जघन्येनानन्तान् भावानाधारद्रव्यानन्तत्वाज्जानाति, पश्यति । (वृ० प० ३५९)

७०. न तु प्रतिद्रव्यमिति (वृ० प० ३५९)

७१. उक्कोसेण वि अणंते भावे जाणइ-पासइ, सव्वभावाणमणतभाग जाणइ-पासइ । (श० ८।१८६)

तेऽपि चोत्कृष्टपदिन सर्वपर्यायाणामनन्तभाग इति । (वृ० प० ३५९)

७३. मणपज्जवनाणस्स ण भते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ? गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—

७४ दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ ।

७५. दव्वओ णं उज्जुमती अणते अणतपदेसिए खधे जाणइ-पासइ ।

७६ 'अणते' त्ति 'अनन्तान्' अपरिमितान् 'अणंतपएसिए' त्ति अनन्तपरमाण्वात्मकान् (वृ० प० ३५९)

७७ जहा नदीए (सू० २५) जाव (स० पा०) भावओ ।

७८ ऋज्वी—सामान्यग्राहिणी मति ऋजुमति । (वृ० प० ३५९)

७९ घटोऽनेन चिन्तित इत्यध्यवसायनिवन्धना मनोद्रव्यपरिच्छित्तिरित्यर्थ (वृ० प० ३५९)

८० अथवा ऋज्वी मतिर्यस्यासावृजुमतिस्तद्वानेव गृह्यत । (वृ० प० ३५९)

८१. अनंत प्रदेशिक खंध, विशिष्ट इक परिणाम करि ।
परिणत प्रतै प्रबंध, जाणै देखै अनत प्रति ॥
८२. अढी अंगुल जे हीन, अढी द्वीप बे समुद्र नां ।
सन्नी पर्याप्ति चीन, मन द्रव्य जाणै ऋजुमती ॥

८३. मनपर्याय ज्ञानावरण, क्षयोपशम नै पटुपणै ।
साक्षात करि उच्चरण, जाणै ए मन द्रव्य नै ॥
८४. विशेष नो जे जाण, भूयिष्ठ प्रचुरता तणो ।
पृथक्करण थी माण, घट चिंतव्यो पिण पट न तु ॥
८५. जाणै इम कहिवाय, पूर्व न्यायज दाखियो ।
वलि देखै ते ताय, तेहनो न्याय कहीजियै ॥
८६. मन करि आलोचित्त, पुन घटादिक अर्थ प्रति ।
तुर्य ज्ञान सुपवित्त, प्रत्यक्ष थी जाणै नही ॥
८७. किंतु तसु परिणाम-अन्यथा-अनुपपत्ति करी ।
जाणै घट नै ताम, देखै कहियै तेहनै ॥
८८. भाष्यकार इम ख्यात, जाणै जे अनुमान थी ।
बाह्य वस्तु अवदात, ए अगीकार करिवु इहा ॥
८९. जे मनपज्जव ज्ञान, रूपी द्रव्य आलवनै ।
करतो थको सुजान, अमूर्त्त पिण वलि चिंतवै ॥
९०. धर्मास्तिकायादि, चिंतवतो पिण इण करी ।
साक्षात थकी सवादि, समर्थ नही ते जाणवा ॥
९१. तथा चतुर्विध जेह, चक्षु आदि दर्शन कह्यो ।
भिन्न आलंवन एह, विशेष आलबन तिको ॥
९२. तेह विषे फुन धार, दर्शन ना सभव थकी ।
पेखै इम वच सार, कहिता पिण नहिं दुष्ट ते ॥

८१ तत्र स्कन्धान् विशिष्टैकपरिणामपरिणतान् ।
(वृ० प० ३५९)
८२ सञ्ज्ञिभि पर्याप्तकै प्राणिभिरर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रान्तर्वर्त्तिभिर्मनस्त्वेन परिणामितानित्यर्थ ।
(वृ० प० ३५९)
८३ 'जाणइ' त्ति मन पर्यायज्ञानावरणक्षयोपशमस्य पटुत्वात्साक्षात्कारेण । (वृ० प० ३५९)
८४ विशेपभूयिष्ठपरिच्छेदात् जानातीत्युच्यते
(वृ० प० ३५९)

८६,८७ तदालोचित पुनरर्थं घटादिलक्षण मन पर्यायज्ञान स्वरूपाध्यक्षतो न जानाति किन्तु तत्परिणामान्यथाऽनुपपत्त्याऽत पश्यतीत्युच्यते । (वृ० प० ३५९)

८८ उक्तञ्च भाष्यकारेण—'जाणइ बज्झेऽणुमाणाओ' त्ति इत्थ चैतदङ्गीकर्त्तव्यम् । (वृ० प० ३५९)
८९,९० यतो मूर्त्तद्रव्यालम्बनमेवेद, मन्तारश्चामूर्त्तमपि धर्मास्तिकायादिक मन्येरन् । न च तदनेन साक्षात् कर्त्तुं शक्यते ।
(वृ० प० ३५९)
९१ तथा चतुर्विध च चक्षुर्दर्शनादि दर्शनमुक्तमतो भिन्नालम्बनमेवेदमवसेयम् (वृ० प० ३५९)
९२ तत्र च दर्शनसम्भवात्पश्यतीत्यपि न दुष्टम् ।
(वृ० प० ३५९)

**वा०**—भिन्न आलवन ते विशेप आलवनईज ए मनपर्याय ज्ञान छै, पिण दर्शण आलवन नथी ते विशेप आलवन नै विपे मनपर्याय ज्ञान दर्शन सभव थकी । पासइ कहिता देखै एहवु कहिवै पिण दुष्ट नथी । एक प्रमाता नी अपेक्षा करी तदनतर भाविपणा थकी ।

इहा ए हार्द—घटादिक अर्थ प्रति चिंतवतो परोक्ष साक्षातईज मनपर्याय ज्ञान नो धणी मनोद्रव्य प्रतै प्रथम जाणै वलि तेहिज मन अचक्षु दर्शन करकै चिंतवै । तेहनी अपेक्षया पासइ कहिता देखै इम कहियै ।

तिवार पछै एकईज मनपर्याय ज्ञानी जाणतो मन-पर्याय ज्ञान थकी अनतरईज मन अचक्षु दर्शन ऊपजे । इम एहवा एकईज प्रमाता मनपर्याय ज्ञाने करी मनोद्रव्य जाणै अनें तेहिज अचक्षु दर्शने करी देखै एहवु कहियै, इत्यल विस्तरेण ।

**वा०**—एकप्रमात्रपेक्षया तदनन्तरभावित्वाच्चोपन्यस्तमित्यलमतिविस्तरेण । (वृ० प० ३५९)

एतलै मनपर्याय ज्ञानी ऋजुमती द्रव्य थकी अनता अपरिमित अनतप्रदेशिक खध प्रतै जाणै देखै । हिवै विपुलमति द्रव्य थकी जाणै तेहनो अधिकार कहै छै—

मति सवदन हाय, । काहय त ।

९५. इण घट चित्यो ताहि, छै ते घट सोना तणो ।
पाडलिपुर रै माहि, तेह घड़ो निष्पन्न छै ॥

९६. वली नीपनो आज, वलि ते घट मोटो इतो ।
इत्यादिक तसु साज, जाणै एह विशेष थी ॥

९७. चिंतित अध्यवसाय, हेतुभूत अछै जिके ।
मनोद्रव्य पर्याय, जाणैं विपुलमति प्रवर ॥

९८. अथवा विपुला जान, मति जेहनी ते विपुलमति ।
अछै विपुलमतिवान, तेहिज विपुलमति कह्यु ॥

९९. *तेहिज विपुलमति तिको, अब्भहियतराणि ।
अधिक द्रव्यार्थपणै करी, जाणै एह सुनाणी ॥

९५ घटोऽनेन चिन्तित स च सौवर्णः पाटलिपुत्रकः
(वृ० प० ३५९)

९६,९७ अद्यतनो महानित्याद्यध्यवसायहेतुभूता मनोद्रव्य-विज्ञप्तिः (वृ० प० ३५९)

९८ अथवा विपुला मतिर्यस्यासौ विपुलमतिस्तद्वानेव ।
(वृ० प० ३५९)

९९ ते चेव विउलमई अब्भहियतराए ।

## सोरठा

१००. ऋजुमति देख्या खंध, तेह अपेक्षा अति बहु ।
द्रव्यपणै करि संध, वर्णादिक करिकै वलि ॥

१०१. *विउलतराए पाठ ए, विस्तीर्णपणै देख ।
विसुद्धतराए विशेष थी, निर्मलपणै सपेख ॥

१०२. वितिमिरतराए कहिता वलि, अतिसय करि तेह ।
गया अंधकार तणी परै, ते प्रति जाणै देखेह ॥

१०३. क्षेत्र थकी जे ऋजुमति, हेठे जावत जाण ।
ए प्रत्यक्ष रत्नप्रभा पृथ्वी, तेह तणो पहिछाण ॥

१०४. उवरिम हेट्ठिल क्षुल्लक जे, प्रतर प्रतै माणै ।
नीचो देखै एतलो, मनोगत भाव जाणै ॥

१००. ऋजुमतिदृष्टस्कन्धापेक्षया बहुतरान् द्रव्यार्थतया वर्णादिभिश्च । (वृ० प० ३५९)

१०१. विउलतराए विसुद्धतराए ।

१०२. वितिमिरतराए जाणइ-पासइ ।
वितिमिरतरा इव—अतिशयेन विगतान्धकारा इव ये ते वितिमिरतरास्त एव वितिमिरतरका अतस्तान् ।
(वृ० प० ३५९, ३६०)

१०३. खेत्तओ ण उज्जुमई अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए

१०४. उवरिमहेट्ठिल्ले खुड्डागपयरे
मनोगतान् भावान् जानाति पश्यतीति योग ।
(वृ० प० ३६०)

## सोरठा

१०५ तिरिछा लोक नें मध्य, रुचक अछै तेहथी अधो ।
नव सय जोजन बुद्ध, त्या ए रत्नप्रभा तणों ॥

१०६. उवरिम क्षुल्लकज ताय, प्रतर तिहां कहीजियै ।
क्षुल्लकपणो तसु पाय, अधोलोक प्रतर नीं पेक्षया ॥

१०७. तेह थकी पिण हेठ, सौ जोजन जइये तिहां ।
विजय ऊडी वे नेठ, हेट्ठिल क्षुल्लक प्रतर जिहां ॥

१०८. रुचक थकी इम धार, नीचो जोजन सहस्र जे ।
जाणै देखै सार, भाव मनोगत छै तिके ॥

१०५,१०६. तत्र रुचकाभिधानात्तिर्यग्लोकमध्यादधो यावन्नवयोजनशतानि तावदमुष्या रत्नप्रभाया उपरिमाः क्षुल्लकप्रतराः क्षुल्लकत्वं च तेषामधोलोकप्रतरापेक्षया ।
(वृ० प० ३६०)

१०७. तेभ्योऽपि येऽधस्तादधोलोकग्रामान् यावत्तेऽधस्तना क्षुल्लकप्रतरा (वृ० प० ३६०)

*लय : प्रभवो मन मांहे

१०९. *ते ऊंचो जिहा लग जाणवो, जोतिष चक्र नो जेह ।
उवरिम तल मन द्रव्य नैं, जाणैं देखैं तेह ।।

१०९. उड्ढं जाव जोइसस्स उवरिमतले ।

**सोरठा**

११०. रुचक थकी अवधार, नव सय जोजन ऊर्द्ध जे ।
जोतिष चक्र नों सार, तेहनों ऊपर तल लगैं ।।

११०. ऊर्द्ध्वं यावज्ज्योतिषश्च—ज्योतिश्चक्रस्योपरितल । (वृ० प० ३६०)

१११ *तिरिछो जावत एतलू, मनुष्य क्षेत्र नें अत ।
एहिज विभाग थकी हिवै, कहियै धर खंत ।।

१११. तिरियं जाव अतोमणुस्सखेत्ते ।

११२ अढी द्विप बे समुद्र में, पनर कर्मभूमि खेत ।
तीस अकर्म भूमि विषे, छप्पन अतरद्वीप तेथ ।।

११२. अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पण्णरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णए अतरदीवगेसु ।

११३ सन्नी पचेंद्री पर्याप्त ना, मनोगत भाव तास ।
जाणें देखैं ऋजुमति, पाठ विषे ए विमास ।।

११३. सण्णीण पचिंदियाण पज्जत्तयाण मणोगए भावे जाणइ-पासइ ।

११४. तं चेव तेहिज विपुलमति, अधिको आगुल अढाइ ।
आठूइ जे दिशि विषे, जाणैं देखैं ताहि ।।

११४. त चेव विउलमई अड्ढाइज्जेहिमगुलेहिं अब्भहियतर विउलतर विसुद्धतर वितिमिरतर खेत्त जाणइ-पासइ ।

**सोरठा**

११५. त चेव अर्थ कथित, इहा क्षेत्र प्रधानपणा थकी ।
तेहिज मन द्रव्य सहित, जीवाधार क्षेत्र संग्रह्यु ।।

११५ इह क्षेत्राधिकारस्य प्राधान्यात्तदेव मनोलब्धिसमन्वित-जीवाधार क्षेत्रमभिगृह्यते । (वृ० प० ३६०)

११६ *अब्भहियतराग पाठ ए, लाब विखभ आश्रित्त ।
विपुलतराग पाठ ए, बाहुल्य आश्री कथित्त ।।

११६ तत्राभ्यधिकतरकमायामविष्कम्भावाश्रित्य विपुलतरक वाहल्यमाश्रित्य । (वृ० प० ३६०)

**सोरठा**

११७. मनोद्रव्य जिह खेत, तसु लाव चोड़ जाडापणु ।
क्षेत्राधिकार एथ, तिण सु बिहु पद अर्थ इम ।।

११८. *विसुद्धतराग निर्मल अति, वितिमिरतराग जेह ।
तदावरणी जे कर्म ना, विशिष्ट क्षयोपशम लेह ।।

११८ 'विसुद्धतरक' निर्मलतरक वितिमिरतरक तु तिमिर-कल्पतदावरणस्य विशिष्टतरक्षयोपशमसद्भावादिति । (वृ० प० ३६०)

११९. ए पूर्वे कह्या ते क्षेत्र ना, सन्नी पर्याप्ता ना भाव ।
जाणें देखैं निर्मलपणें, विपुलमति नो ए न्याव ।।

१२०. काल थकी जे ऋजुमति, जघन्य थकी ए माग ।
पल्योपम छै तेहनो, असख्यातमो भाग ।।

१२० कालओ ण उज्जुमई जहण्णेण पलिओवमस्स असखि-ज्जयभागं

१२१. उत्कृष्ट पिण पल्योपम तणो, असख्यातमो भाग ।
अतीत अनागत काल नां, जाणैं देखैं सुमाग ।।

१२१ उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असखिज्जयभाग अतीय-मणागय वा काल जाणइ-पासइ ।

**सोरठा**

१२२. अतीत अनागत जेह, मनोद्रव्य बिहु काल ना ।
जाणैं देखैं तेह, पल्य नु असंख भाग जे ।।

---

*लय : प्रभवो मन मांहे

अतिहि विपुल न . ॥ वणु, आत २।१

१२५. भाव थकी जे ऋजुमति, अनंत भाव अवलोय।
द्रव्य तणां पर्याय नैं, जाणैं देखै सोय॥

१२५. भावओ णं उज्जुमई अणते भावे जाणइ-पासइ।

१२६. सर्व भाव वर्णादिक तणां, पर्याय कहाय।
तेहनो भाग अनंतमो, जाणैं देखै ताय॥

१२६. सव्वभावाणं अणतभागं जाणइ-पासइ।

१२७. तेहिज भाव विपुलमति, अतिहि अधिक अवेखै।
विपुल विशुद्ध नैं वितिमिर हि, अतिसय करि जाणैं देखै॥

१२७. त चेव विउलमई अब्भहियतराग विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ-पासइ।
(श० ८।१८७)

## सोरठा

१२८. मनोद्रव्य छै जेह, वर्णादिक पर्याय तसु।
जाणैं देखे तेह, मनपज्जव धर भाव थी॥

१२९. जहा नंदीए जाण, एह पाठ अनुसार थी।
नंदी थकी वखाण, भाव लगै इम आखियो॥

१२९ (नदीसुत्तं सू० २५)

१३०. *हे प्रभु! केवल ज्ञान नी, विषय किती कहिवाव?
च्यार प्रकार संक्षेप थी, द्रव्य क्षेत्र काल भाव॥

१३०. केवलनाणस्स ण भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते?
गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ

१३१. केवलज्ञानी द्रव्य थी, सहु द्रव्य जाणैं देखै।
एवं जावत भाव थी, नंदी माहि विशेखै॥

१३१. दव्वओ ण केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणइ-पासइ। एव जाव (सं० पा०) भावओ।
तावत्केवलविषयाभिधायि नन्दीसूत्रं (सू० ३३) इहाध्येयमित्यर्थः (वृ० प० ३६०)

१३२. खेत्र थकी सर्व खेत्र नैं, काल थकी सर्व काल।
भाव थकी सर्वभाव नैं, केवलज्ञाने न्हाल॥

१३२. खेत्तओ ण केवलनाणी सव्वं खेत्तं जाणइ-पासइ।
कालओ ण केवलनाणी सव्वं काल जाणइ-पासइ।
भावओ णं केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ-पासइ।
(श० ८।१८८)

१३३. इहां सर्व द्रव्य कहिवै करी, धर्मास्तिकायादि।
आकाश द्रव्य ग्रहण थयो, स्यूं वलि क्षेत्र संवादि॥

१३४. क्षेत्रपणे करि रूढ छै, ग्रहण कियो आकाश।
तिण कारण वलि क्षेत्र थी, अंगीकार कियो तास॥

१३३,१३४. इह च धर्मास्तिकायादिसर्वद्रव्यग्रहणेनाकाशद्रव्यस्य ग्रहणेऽपि यत्पुनरुपादान तत्तस्य क्षेत्रत्वेन रूढत्वादिति। (वृ० प० ३६०)

१३५. हे प्रभु! मति अज्ञान नीं, विषय किती कहिवाव?
च्यार प्रकार संक्षेप थी, द्रव्य क्षेत्र काल भाव॥

१३५. मइअण्णाणस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते?
गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ।

१३६. मति अज्ञानी द्रव्य थी, मति अज्ञान रै जेह।
विषय आया जे द्रव्य नैं, जाणैं देखै तेह॥

१३६. दव्वओ णं मइअण्णाणपरिगयाइ दव्वाइ जाणइ-पासइ।

१३७. अपाय नैं धारणा करी, द्रव्य तेह जाणंत।
देखै अवग्रह ईहा करी, इम वृत्तिकार कहंत॥

१३७. जानात्यपायादिना पश्यत्यवग्रहादिना।
(वृ० प० ३६०)

*लय : प्रभवो मन माहे

१३८. एवं जावत भाव थी, मति अज्ञानी मपेखै।
मति अज्ञान विषय जे, द्रव्य आया जाणै देखै॥

१३८ जाव (स०, पा०) भावओ ण मइअण्णाणी मइअण्णाण-परिगए भावे जाणइ-पासइ।

**सोरठा**

१३९. जाव शब्द में जाण, क्षेत्र थकी नैं काल थी।
जाणै देखै माण, ते कहियै छै इह विधे॥

१४०. *मति अज्ञानी क्षेत्र थी, मति अज्ञान रै जोय।
विषय आया जे क्षेत्र नैं, जाणै देखै सोय॥

१४१. मति अज्ञानी काल थी, मति अज्ञान रै जेह।
विषय आया जे काल नैं, जाणै देखै तेह॥

१४२. हे प्रभु! श्रुत अज्ञान नी, विषय किती कहिवाव?
च्यार प्रकार सक्षेप थी, द्रव्य क्षेत्र काल भाव।

१४० खेत्तओ ण मइअण्णाणी मइअण्णाणपरिगय खेत्त जाणइ-पासइ।

१४१ कालओ ण मइअण्णाणी मइअण्णाणपरिगय काल जाणइ-पासइ। (श० ८।१८९)

१४२ सुयअण्णाणस्स ण भते! केवतिए विसए पण्णत्ते? गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ।

१४३. श्रुत-अज्ञानी द्रव्य थी, श्रुत अज्ञान रै जेह।
विषय आया जे द्रव्य नैं, आघवेइ कहेह॥

१४४. पण्णवेइ भेद थकी कहै, परूपै ए विशेष।
वाचनातरे ए वली, कहियै पाठ विशेष॥

१४३ दव्वओ ण सुयअण्णाणी सुयअण्णाणपरिगयाइ दव्वाइ आघवेइ,

१४४. पण्णवेइ, परूवेइ।
'प्रज्ञापयति' भेदत कथयति 'प्ररूपयति' उपपत्तित कथयतीति वाचनान्तरे पुनरिदमधिकमवलोक्यते।
(वृ० प० ३६०)

१४५. दसेइ ओपमा मात्र थी, यथा गौ तथा रोझ।
निदसेइ थापै तिको, हेतु दृष्टात सोझ॥

१४६. उवदसेइ उपनय करी, फुन निगमन करि आखै।
वा अन्य मत नैं देखाड़वै, वाचनातरे दाखै॥

१४७. इमहिज क्षेत्र थी काल थी, श्रुत अज्ञान नैं जेह।
विषय क्षेत्र अरु काल नैं, आघवेइ प्रमुखेह॥

१४५,१४६. 'दसेति निदसेति उवदसेति' त्ति तत्र च दर्शयति उपमामात्रतस्तच्च यथा गौस्तथा गवय इत्यादि, निदर्शयति हेतुदृष्टान्तोपन्यासेन उपदर्शयति उपनयनिगमनाभ्या मतान्तरदर्शनेन वेत्ति। (वृ० प० ३६०)

१४७ खेत्तओ ण सुयअण्णाणी सुयअण्णाणपरिगय खेत्त आघवेइ, पण्णवेइ, परूवेइ।
कालओ ण सुयअण्णाणी सुयअण्णाणपरिगय काल आघवेइ, पण्णवेइ, परूवेइ।

१४८. श्रुत अज्ञानी भाव थी, श्रुत अज्ञान नै वादि।
विषय आया जे भाव नैं, आघवेइ इत्यादि॥

१४९. हे प्रभु! विभग अज्ञान नी, विषय किती कहिवाव।
च्यार प्रकार संक्षेप थी, द्रव्य क्षेत्र काल भाव॥

१५० विभंग अज्ञानी द्रव्य थी, विभग अज्ञान रै जेह।
विषय आया जे द्रव्य नैं, जाणै देखै तेह॥

१४८ भावओ ण सुयअण्णाणी सुयअण्णाणपरिगए भावे आघवेइ, पण्णवेइ, परूवेइ। (श० ८।१९०)

१४९ विभगनाणस्स ण भते! केवतिए विसए पण्णत्ते? गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ।

१५० दव्वओ ण विभगनाणी विभगनाणपरिगयाइ दव्वाइ जाणइ-पासइ।

**सोरठा**

१५१ विभंग अज्ञान करेह, जाणै द्रव्य तसु विषय जे।
अवधि दर्शन करि तेह, देखै तेहिज द्रव्य प्रति॥

१५१. 'जाणइ' त्ति विभङ्गज्ञानेन 'पासइ' त्ति अवधिदर्शनेनेति
(वृ० प० ३६०)

*लय : प्रभवो मन मांहै

## ढाल : १३९

### दूहा

१. जीव सहित अष्टादशम, कालद्वार कहिवाय।
ज्ञानी को ज्ञानी प्रभु ! काल कितो रहिवाय ?

२. जिन कहै ज्ञानी द्विविधे, आदि-सहित अवधार।
पिण ते अंत-रहित कह्यो, एह केवली सार ॥

३. अथवा आदि-सहित जे, अंत-सहित अवधार।
आभिनिबोधिक प्रमुख जे, चउ नाणीसुविचार ॥

४. तत्र आदि करि सहित जे, अंत-सहित अवलोय।
जघन्य स्थिति है जेहनी, अंतर्मुहूर्त्त जोय ॥

५. धुर बे ज्ञानी आश्रयी, जघन्य थकी इम जाण।
अंतर्मुहूर्त्त मात्र है, वारू न्याय विनाण ॥

६. स्थिति उत्कृष्टी एतली, छासठ सागर तास।
जाझेरी जिनवर कही, तसु इम न्याय विमास ॥

७. विजयादिक में वार बे, तथा अचू त्रिण वार।
नर भव अधिक कहीजियै, एक जीव अधिकार ॥

वा०—पन्नवणा पद १८ मे पर्याप्ता रो पर्याप्तो उत्कृष्ट पृथक सौ सागर रहै इम कह्यु। तेहनु न्याय—वीच अपर्याप्तो हुवै, पिण ते अपर्याप्तपणे मरै नही। तिम इहा पिण ६६ सागर जाझेरो कह्यो, ते वीच नर भव मे कदाचित ज्ञान न हुवै तो पिण अज्ञानीपणै मरै नही, एहवू न्याय जणाय छै।

८. जीव अनेकज आश्रयी, सर्वकाल सुखकार।
ज्ञान त्रिहु लाधे सदा, वारू न्याय विचार ॥

९. ज्ञानी मतिज्ञानी वलि, यावत केवल न्हाल।
अज्ञानी मति श्रुत विभग, ए दस नों जे काल ॥

१०. ए दस नी सचिट्ठणा, अवस्थित जे काल।
यथा कायस्थिति पन्नवणा, अठारमें पद न्हाल ॥

१. अथ कालद्वारे—'साइए' इत्यादि। (वृ० प० ३६०)
नाणी ण भंते ! नाणी त्ति कालओ केवच्चिर होइ ?

२. गोयमा ! नाणी दुविहे पण्णत्ते त जहा—सादीए वा अपज्जवसिए
इहाद्य. केवली। (वृ० प० ३६०)

३. सादीए वा सपज्जवसिए।
द्वितीयस्तु मत्यादिमान्। (वृ० प० ३६०)

४. तत्थ ण जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेण अतोमुहुत्त।

५. आद्य ज्ञानद्वयमाश्रित्योक्तं, तस्यैव जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रत्वात्। (वृ० प० ३६१)

६. उक्कोसेण छावट्ठि सागरोवमाइ सातिरेगाइ।
(श० ८।१९२)

७. दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्नच्चुए अहव ताइं।
अइरेगं नरभविय। (वृ० प० ३६१)
वा०—पज्जत्तए ण भंते ! पज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?
गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण सागरोवमसयपुहत्त सातिरेग। (पण्णवणा पद १८।११३)

८. णाणाजीवाण सव्वद्ध। (वृ० प० ३६१)

९,१० ज्ञान्याभिनिबोधिकज्ञानिश्रुतज्ञान्यवधिज्ञानिमनःपर्यवज्ञानिकेवलज्ञान्यज्ञानिमत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिविभङ्गज्ञानिना 'संचिट्ठणे' ति अवस्थितिकालो यथा कायस्थितौ प्रज्ञापनाया अष्टादशे पदे (७९-८४) ऽभिहितस्तथा वाच्य.। (वृ० प० ३६१)

*लय : प्रभवो मन मांहै

*जय जशकारी हो ज्ञान जिनेन्द्र नो (ध्रुपदं) ॥

११. आभिनिवोधिक श्रुतज्ञानी धुरे,
अतर्मुहूर्त्त काल हो, भविकजन !
छासठ सागर जाझेरो कह्यो,
उत्कृष्ट काल निहाल हो, भविकजन !

११, आभिणिवोहियनाणी णं भते ! आभिणिवोहियनाणी ति कालओ केवच्चिर होइ ?
गोयमा एव चेव । (श० ८।१९३)
एव सुय नाणी वि । (श० ८।१९४)
आभिनिवोधिकज्ञानादिद्वयस्य तु जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कृष्टतस्तु सातिरेकाणि पट्षप्टि सागरोपमाणि ।
(वृ० प० ३६१)

१२. अवधिज्ञानी इक समय जघन्यपणें,
विभग तणो अवधि होय ।
समय एक रही ते पाछो पड़ै,
इम इक समय सुजोय ॥

१२. ओहिनाणी वि एव चेव, नवर—जहण्णेण एक्क समय । (श० ८।१९५)
यदा विभगज्ञानी सम्यक्त्व प्रतिपद्यते तत् प्रथमसमय एव विभङ्गमवधिज्ञान भवति तदनन्तरमेव च तत् प्रतिपतति तदा एक समयमवधिर्भवतीत्युच्यते ।
(वृ० प० ३६१)

**सोरठा**

१३. अवधिज्ञान विलाय, पिण समकित जाती नथी ।
जघन्य स्थिति पिण ताय, अंतर्मुहूर्त्त नी तेहथी ॥
१४. अवधिज्ञान जसु होय, मति श्रुत नियमा ह्वै तसु ।
इक समय अवधि रहि जोय, मति श्रुत ज्ञान विषे रहै ॥

**वा०**—विभंग अज्ञानी नो अवधिज्ञानी किम हुवै ? अनै तेहनी एक समय नी थिति किम ? देवता, नारक, मनुष्य, तिर्यंच-पचेंद्रिय मिथ्यादृष्टि तेहनै तीन अज्ञान हुवै । हिवै मिथ्यादृष्टि नो समदृष्टि थयो, तिवारे तीन अज्ञान नां ज्ञान थया, विभग नो अवधि थयो । तिवारै एक समय पछैज तेहनो आयु पूर्ण थयो अथवा अनेरे प्रकारे एक समय ते अवधि रही पाछो पड्यो, पिण सम्यक्त नही गई । कारण मति, श्रुत ज्ञान नी जघन्य स्थिति अतर्मुहूर्त्त नी छै, सम्यक्त नी पिण एतलीज छै । इण न्याय अवधिज्ञान नी स्थिति जघन्य एक समय नी ।

१५. *अवधिज्ञान उत्कृष्टपणें रहै, छासठ सागर देख ।
जाझो काल कह्यो ते ऊपरे, न्याय पूर्ववत पेख ॥
१६. मनपज्जव इक समय जघन्य रहै, अप्रमत्त नें उपजंत ।
समय एक रही तेह विनष्ट ह्वै, इम वृत्तिकार कहंत ॥

१५ अवधिज्ञानिनामप्येव नवरं जघन्यतो विशेष ।
(वृ० प० ३६१)

१६. मणपज्जवनाणी ण भंते ! मणपज्जवनाणी ति कालओ केवच्चिर होइ ?
गोयमा ! जहण्णेण एक्कं समय ।
सयतस्याप्रमत्ताद्धाया वर्त्तमानस्य मन पर्यवज्ञानमुत्पन्न तत उत्पत्तिसमयसमनन्तरमेव विनष्ट चेत्येवमेक समय ।
(वृ० प० ३६१)

१७. मनपर्यवज्ञानी उत्कृष्ट थी, देसूण पूर्व कोड़ ।
चरण लिया मनपर्यव ऊपजै, जावजीव लग जोड़ ॥

१७. उक्कोसेण देसूण पुव्वकोडिं । (श० ८।१९६)
तथा चरणकाल उत्कृष्टो देशोना पूर्वकोटी, तत्प्रतिपत्तिसमनन्तरमेव च यदा मन पर्यवज्ञानमुत्पन्नमाजन्म चानुवृत्तं तदा भवति मन.पर्यवस्योत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटीति । (वृ० प० ३६१)

---

* लय : पूजजी पधारो हो नगरी

१९. अज्ञानी मति श्रुत अनाण ना, तीन भेद सुप्रयोग्य।
आदि-रहित नैं अंत-रहित जे, अभव्य सिद्ध-अयोग्य ॥

१९ अण्णा[illegible] , [illegible] । ण , सुय[illegible] [illegible] ।
गोयमा ! अण्णाणी, मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी य तिविहे पण्णत्ते, त जहा—अणादीए वा अपज्जवसिए।
अभव्यानाम्। (वृ० प० ३६१)

२०. आदि-रहित नैं अंत-सहित जे, मुक्तियोग्य भव्य इष्ट।
आदि-सहित नैं अंत-सहित ते, पडिवाई समदृष्ट ॥

२०. अणादीए वा सपज्जवसिए, सादीए वा सपज्जवसिए।
भव्यानाम्····प्रतिपतितसम्यग्दर्शनानाम्। (वृ० प० ३६१)

२१. आदि-सहित नैं अंत-सहित जे, अंतर्मुहूर्त्त जघन्न।
सम्यक्त भ्रष्ट अंतर्मुहूर्त्त रही, वलि सम्यक्त उप्पन्न ॥

२१. तत्थ ण जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेण अंतोमुहुत्त।
सम्यक्त्वप्रतिपतितस्यान्तर्मूहूर्त्तोपरि सम्यक्त्वप्रतिपत्तौ। (वृ० प० ३६१)

२२. उत्कृष्टो ए काल अनंत है, अव-उत्सर्पिणी अनंत।
काल थकी ए श्री जिन आखियो, हिव क्षेत्र थकी वृतंत ॥

२२. उक्कोसेण अणत कालं—अणंता ओसप्पिणी उस्सप्पिणीओ कालओ।

२३. पुद्गलपरावर्त्त आधो कह्यो, देश ऊण अवलोय।
उत्कृष्ट पडिवाई इतरो रुलै, क्षेत्र थकी ए जोय ॥

वा०—द्रव्यादिक भेदे करिकै च्यार प्रकार नो पुद्गलपरावर्त्त। ते मध्य ए क्षेत्र थकी पुद्गलपरावर्त्त जाणवो।

२३. खेत्तओ अवड्ढ पोग्गलपरियट्ट देसूण। (श० ८।१९८)

२४. विभंग अनाणी जघन्य पदे रहै, एक समय तसु रीत।
विभंग ऊपना समय रही पड़ै, श्री जिन वचन प्रतीत ॥

वा०—जेहनैं अवधिज्ञान होय ते मिथ्याती थये छते तेहनैं विभंग अज्ञान थयो। पछै एक समय रही पाछो गयो। तिवारै मति श्रुति अज्ञान मे रह्यो। इण न्याय विभंग अज्ञान नी जघन्य स्थिति एक समय नी।

२४. विभंगनाणी ण भंते ! पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेण एक्क समय।
उत्पत्तिसमयानन्तरमेव प्रतिपातं। (वृ० प० ३६१)

२५ उत्कृष्ट सागर तेतीस अधिक ए, देसूण पूर्व कोड।
मनुष्य विषे जे विभंगपणैं रही, नरक सातमी जोड ॥

२५ उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियाइ। (श० ८।१९९)
देशोना पूर्वकोटिं विभङ्गितया मनुष्येषु जीवित्वाऽप्रतिष्ठानादावुत्पन्नस्येति। (वृ० प० ३६१)

२६. ज्ञान पंच नैं तीन अज्ञान नो, अंतर सर्व विचार।
जीवाभिगम विषे जिम भाखियो, कहिवू तिम अधिकार ॥

२६, पञ्चाना ज्ञानाना त्रयाणा चाज्ञानानामन्तर सर्वं यथा जीवाभिगमे (पडिवत्ती ८ सू० १६०-१६५) तथा वाच्य। (वृ० प० ३६१)

२७. आभिनिवोधिक अंतर काल थी, अंतर्मुहूर्त्त जघन्न।
उत्कृष्ट पुद्गल अर्द्ध देसूण नो, काल अनंत उप्पन्न ॥

२७. आभिणिवोहियनाणिस्स ण भंते ! अंतर कालओ केवच्चिर होइ ?
गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त उक्कोसेण अणत कालं जाव अवड्ढ पोग्गलपरियट्ट देसूण। (श० ८।२००)

२८. इमहिज श्रुत अवधि मनपज्जव नो, अंतर कहियै तास।
केवलज्ञान तणो नहिं आंतरो, पूरण नाण प्रकाश ॥

२८ सुयनाणि-ओहिनाणि-मणपज्जवनाणीण एव चेव। (श० ८।२०१)
केवलनाणिस्स पुच्छा।
गोयमा ! नत्थि अंतर। (श० ८।२०२)

२९. मति श्रुत अज्ञान नां त्रिण भेद छै, आदि-रहित'अवलोय।
अंत-रहित ते अभव्य आसरी, तसु अंतर नहिं होय॥
३०. आदि-रहित नैं अंत-सहित ते, भव्य आश्री पहिछाण।
शिव गति जावा जोग तिके कह्या, अंतर तास म जाण॥
३१. आदि-सहित नैं अंत-सहित ते, ए पडिवाई पेख।
जघन्य अंतर्मुहूर्त्त नो आंतरो, विमल नेत्र करि देख॥
३२ उत्कृष्टो छासठ सागर तणो, जाझेरो कहिवाय।
सम्यक्त नी स्थिति इतरी भोगवी, फेर अनाणी थाय॥
३३. विभंग अनाण रो अंतर जघन्य थी, अंतर्मुहूर्त्त न्हाल।
उत्कृष्टो तसु अंतर एतलो, वनस्पति नो काल॥

वा०—असंख्याता पुद्गलपरावर्त्त वनस्पति मे रहै—आवलिका रै असंख्यातमे भाग जेतला समा, तेतला पुद्गलपरावर्त्तन रहै।

३४. अल्पबहुत्व त्रिण तीजा पद विषे, धुर पंच ज्ञान नी जाण।
दूजी अल्पबहुत्व तीन अज्ञान नी, तीजी उभय नी माण॥
३५. आभिनिबोधिक ज्ञानी हे प्रभु! जाव केवली देख।
अल्पबहु कुण-कुण थी ते अछै, तुल्य अधिक सुविशेख?
३६. सर्व थी थोड़ा मनपज्जवधरा, मुनिवर मे ए होय।
अवधिज्ञानी ए असंखगुणा अछै, गति च्यारू मे जोय॥
३७. मति श्रुत ज्ञानी माहोमा तुल्ला, विसेसाहिया अवलोय।
केवलज्ञानी अनंतगुणा अछै, अल्पबहुत्व धुर जोय॥
३८. तीन अनाणी मे सर्व थोड़ा अछै, विभंग-अनाणी जोय।
एह सन्नी पंचेंद्री मे अछै, ते भणी थोड़ा होय॥
३९. मति श्रुत अनाणी ए बिहु कह्या, तुल्ला माहोमाय।
विभंग थकी ए अनंतगुणा अछै, अनंतकाय रै न्याय॥
४०. हिवै आठा मे सर्व थोडा अछै, मनपज्जव मुनिराय।
अवधिज्ञानी ते असंखगुणा अछै, तेहनो छै इम न्याय॥

२९,३० मइअण्णाणिस्स सुयअण्णाणिस्स य पुच्छा।

३१. गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

३२. उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं। (श० ८।२०३)

३३ विभंगनाणिस्स पुच्छा।
गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। (श० ८।२०४)

३४ अल्पबहुत्वानि त्रीणि ज्ञानिनां परस्परेणाज्ञानिनां च ज्ञान्यज्ञानिनां च (वृ० प० ३६२)

३५ एतेसि णं भंते! जीवाणं आभिणिबोहियनाणीणं ···केवलनाणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

३६ गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवनाणी, ओहिनाणी असंखेज्जगुणा
तत्र ज्ञानिसूत्रे स्तोका मनःपर्यायज्ञानिनो, यस्माद् ऋद्धिप्राप्तादिसंयतस्यैव तद्भवति, अवधिज्ञानिनस्तु चतसृष्वपि गतिषु सन्तीति तेभ्योऽसंख्येयगुणा (वृ० प० ३६२)

३७ आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी दो वि तुल्ला विसेसाहिया,
केवलनाणी अणंतगुणा। (श० ८।२०५)

३८ एतेसि णं भंते! जीवाणं···
गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा विभंगनाणी,
अज्ञानिसूत्रे तु विभङ्गज्ञानिनः स्तोका, यस्मात् पंचेन्द्रिया एव ते भवंति। (वृ० प० ३६२)

३९ मइअण्णाणी सुयअण्णाणी दो वि तुल्ला अणंतगुणा। (श० ८।२०६)
यतो मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्चैकेन्द्रिया अपीति तेन तेभ्यस्तेऽनन्तगुणा। (वृ० प० ३६२)

४० एतेसि णं भंते! जीवाणं आभिणिबोहियनाणीणं···
गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवनाणी ओहिनाणी असंखेज्जगुणा

४१. सुर ... 
तिरि मनु सन्नी इष्ट, समदृष्टि कोइक विषे ॥

४२. *मति श्रुत ज्ञानी परस्परे तुल्ला, अवधि ज्ञान थी एह।
विसेसाहिया अधिक विशेष ते, सहु समदृष्टी लेह ॥

४३. विभंग अनाणी असंखगुणा कह्या, सुर नारक सुविचार।
अवधिज्ञानी छै तेह थकी घणा, विभंग असंखगुणा धार ॥

४४. केवलज्ञानी अनंतगुणा अख्या, सिद्ध भगवत रै न्याय।
उभय अनाणी तुल्य अनतगुणा, वनस्पति मे पाय ॥

४५. आभिनिबोधिक नां पजव किता ? अनत कहै जिनराय।
पंच ज्ञान नै तीन अज्ञान नां, इमज अनंत कहाय[1] ॥

### सोरठा

४६. वृत्ति विषे छै ताय, पज्जव तणोज न्याय जे।
बहु विस्तारज आय, कहियै तिण अनुसार थी ॥

### दूहा

४७. आभिबोनधिक ज्ञान नां, पर्यव विशेष धर्म।
स्व पर पज्जव भेद थी, द्विविध इम तसु मर्म ॥

४८. मति-विशेष अवग्रह-प्रमुख, क्षयोपशम थी हुत।
तास विचित्रपणां थकी, स्व पर्याय अनन्त ॥

४२. आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी य दो वि तुल्ला विसेसाहिया।

४३. विभगनाणी असखेज्जगुणा
आभिनिबोधिकज्ञानिश्रुतज्ञानिभ्यो विभगज्ञानिनोऽसख्येयगुणा कथम् ? उच्यते, यत. सम्यग्दृष्टिभ्य सुरनारकेभ्यो मिथ्यादृष्टयस्तेऽसंख्येयगुणा उक्तास्तेन विभङ्गज्ञानिन आभिनिबोधिकज्ञानिश्रुतज्ञानिभ्योऽसंख्येयगुणाः। (वृ० प० ३६२)

४४. केवलनाणी अणतगुणा, मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य दो वि तुल्ला अणतगुणा। (श० ८।२०७)
केवलज्ञानिनस्तु विभङ्गज्ञानिभ्योऽनन्तगुणा, सिद्धानामेकेन्द्रियवर्जसर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणत्वात्, मत्यज्ञानिन श्रुताज्ञानिनश्चान्योन्य तुल्या केवलज्ञानिभ्यस्त्वनन्तगुणा, वनस्पतिष्वपि तेषा भावात्, तेषा च सिद्धेभ्योऽप्यनन्तगुणत्वादिति। (वृ० प० ३६२)

४५. केवतिया ण भते ! आभिणिबोहियनाणपज्जवा पण्णत्ता ?
गोयमा ! अणता आभिणिबोहियनाणपज्जवा पण्णत्ता। (श० ८।२०८)
केवतिया ण भते ! सुयनाणपज्जवा पण्णत्ता ?
एव चेव। (श० ८।२०९)
एव जाव केवलनाणस्स। एव मइअण्णाणस्स सुयअण्णाणस्स। (श० ८।२१०)
केवतिया ण भते ! विभगनाणपज्जवा पण्णत्ता ?
गोयमा ! अणता विभगनाणपज्जवा पण्णत्ता। (श० ८।२११)

४७ आभिनिबोधिकज्ञानस्य पर्यवा—विशेषधर्मा आभिनिबोधिकज्ञानपर्यवा, ते च द्विविधा स्वपरपर्यायभेदात्। (वृ० प० ३६२)

४८. तत्र येऽवग्रहादयो मतिविशेषा क्षयोपशमवैचित्र्यात्ते स्वपर्यायास्ते चानतगुणा., कथम् ? (वृ० प० ३६२)

*लय : पूजजी पधारो हो नगरी

1 जोड की प्रस्तुत गाथा बहुत सक्षिप्त है। भगवती मे किसी सक्षिप्त पाठ की सूचना नही है। इसलिए इस पद्य के सामने भगवती का पूरा पाठ रखा गया है।

४९. एक अवग्रहादिक थकी, आदि अनंत ही भाग।
वृद्धि करिनै विशुद्ध है, उज्जल गुणे अथाग ॥
५०. अन्य असखिज्ज भाग ही, वृद्धि करि गुण रिद्ध।
अपर भाग सखेज्ज वृद्धि, अन्य सखगुण वृद्ध ॥
५१. तेहथी अन्य असखगुण, वृद्धि करि पहिछान।
अपर अनत ही गुण वृद्धि, ऊजल गुण सुविधान ॥
५२. इम सख्याता ना अछै, प्रवर भेद सख्यात।
तथा असख्याता तणा, भेद असंख विख्यात ॥
५३. तथा अनता ना वलि, अनत भेद थी जोय।
हुवै अनता पजव इम, प्रथम न्याय ए होय ॥
५४ तथा ज्ञेय जे वस्तु छै, घटादि जाणण जोग।
एक-एक वस्तु नैं विषे, छै मति नूं उपयोग ॥
५५. ज्ञेय ना भिन्नपणा थकी, जुदो-जुदो उपयोग।
इम अनत द्रव्य जाणवै, पज्जव अनत प्रयोग ॥

वा०—अथवा मति ज्ञान नैं जाणवा जोग पदार्थ ना अनतपणा थकी। अनै एक-एक ज्ञेय ते जाणवा जोग पदार्थ प्रति ते मतिज्ञान नैं भिद्यमानपणा थकी भिद्यमान ते भिन्नपणा थकी।

५६ अथवा जे मति ज्ञान ना, केवल बुद्धि कर ताय।
भेद्यां खड अनंत ह्वै, इम अनत पर्याय ॥

वा०—अथवा मति ज्ञान प्रति अविभाग-परिच्छेद ते खड तेणे करी केवलज्ञान-रूपणी बुद्धि करिकै भिन्न ते जूजुआ किया थका अनत खड हुवै इण प्रकार करी अनता ते मति ज्ञान ना पर्याय हुवै।

५७. ए स्व-पज्जव पेक्षया, कह्या अनत उदार।
हिव पर-पज्जव आश्रयी, आख्या वृत्ति मझार ॥

वा०—तथा जेह पदार्थ मतिज्ञान परिच्छित्त घटादिक वस्तु थकी व्यतिरिक्त जे अनेरा पदार्थ तेहना पर्याय ते मतिज्ञान ना पर-पर्याय। ते स्व पर्याय थकी अनतगुण, पर नैं अनत गुणपणा थकी। हिवै शिष्य प्रेरणा करै छै—

५८. जो ते पर पर्याय छै, तो इहां ग्रहण न युक्त।
पर सबधीपणा थकी, ते मति ना किम उक्त ?
५९. जो मतिज्ञान तणां गिणो, तो नहिं पर पर्याय ?
इम शिष्य तर्क किया थका, कहियै छै तसु न्याय ॥
६०. जेह थकी मति नै विषे, असबद्ध ते थाय।
तेह थकी जे तेहना, कहियै पर पर्याय ॥
६१. वा श्रुतज्ञानादिक तणा, छै पज्जव जे सार।
ते मतिज्ञान तणा नही, परित्यज्यमान विचार ॥
६२. जेह भणी मतिज्ञान तसु, परित्यज्यमानपणेह।
तिण प्रकार करि एहनैं, स्व पर्याय कहेह।

४९ एकस्मादवग्रहादेरन्योऽवग्रहादिरनन्तभागवृद्ध्या विशुद्धः (वृ० प० ३६२)
५० अन्यस्त्वसख्येयभागवृद्ध्या अपर सख्येयभागवृद्ध्या अन्यतर सख्येयगुणवृद्ध्या (वृ० प० ३६२)
५१ तदन्योऽसख्येयगुणवृद्ध्या अपरस्त्वनन्तगुणवृद्ध्या। (वृ० प० ३६२)
५२ एव च सख्यातस्य सख्यातभेदत्वादसख्यातस्य चासख्यातभेदत्वात् (वृ० प० ३६२)
५३. अनन्तस्य चानन्तभेदत्वादनन्ता विशेषा भवंति। (वृ० प० ३६२)
५४,५५. अथवा तज्ज्ञेयस्यानन्तत्वात् प्रतिज्ञेय च तस्यभिद्यमानत्वात्। (वृ० प० ३६२)
५६ अथवा मतिज्ञानमविभागपरिच्छेदैर्बुद्ध्या छिद्यमानमनन्तखण्ड भवतीत्येवमनन्तास्तत्पर्यवा। (वृ० प० ३६२)
वा०—तथा ये पदार्थान्तरपर्यायास्ते तस्य परपर्यायास्ते च स्वपर्यायेभ्योऽनन्तगुणा, परेषामनन्तगुणत्वादिति। (वृ० प० ३६२)

वा०—तथा ये पदार्थान्तरपर्यायास्ते तस्य परपर्यायास्ते च स्वपर्यायेभ्योऽनन्तगुणा, परेषामनन्तगुणत्वादिति।

५८ ननु यदि ते परपर्यायास्तदा तस्येति न व्यपदेष्टु युक्त, परसबधित्वात्। (वृ० प० ३६२, ३६३)
५९. अथ तस्य ते तदा न परपर्यायास्ते व्यपदेष्टव्या, स्वसबधित्वादिति, अत्रोच्यते, (वृ० प० ३६३)
६०. यस्मात्तत्रासबद्धास्ते तस्मात्तेषा परपर्यायव्यपदेश। (वृ० प० ३६३)
६१,६२. यस्माच्च ते परित्यज्यमानत्वेन तथा स्वपर्यायाणा स्वपर्याया एते इत्येव विशेषणहेतुत्वेन च तस्मिन्नुपयुज्यन्ते तस्मात्तस्य पर्यवा इति व्यपदिश्यन्ते। (वृ० प० ३६३)

ना न कहिवा, परसवधिपणा थकी। अथ ते पर्याय मतिज्ञान ना छै तो ते पर-पर्याय न कहिवा, स्वसवधीपणा थकी ?

**हिवै आचार्य कहे छै**—जेह थकी ते मतिज्ञान कै विपे असवद्ध छै ते कारण थकी तेहनै पर पर्याय कहियै। अथवा जेह थकी ते परित्यज्यमानपणै करी जे श्रुतज्ञानादिक पजवा ते मतिज्ञान ना पर्यवा नही इण प्रकार करिकै परित्यज्यमान-पणु—त्यज्यवापणु मतिज्ञान मे छै, तिण प्रकार करिकै ए स्व पर्याय ना विशेपण हेतुपणै करि ते मतिज्ञान के विपे जुडै। जिम असवद्ध पिण धन स्वधन कहियै, उप-युज्यमानपणा थकी।

६४. अनत पज्जव श्रुतज्ञान ना, ते द्विविध कहिवाय।
स्व पज्जव पर पज्जव फुन, निसुणो तेहनो न्याय॥

६५. तिहा स्व पज्जव रह्या अछै, जे श्रुत ज्ञानज माय।
अक्षरश्रुतादि भेद तसु, चतुर अनै दस पाय॥

६६. पजवा तास अनत इम, क्षयोपशम विचित्त।
वलि श्रुत ज्ञाने ग्राह्य द्रव्य, ए विहु कर अवितत्थ॥

६७. श्रुत अनुसारी वोध नु, अनतपणा थी अनत।
वलि बुद्धि कर श्रुतज्ञान ना, खंड अनता हुत॥

६८. पर पर्याय अनत ही, सर्व भाव ना सोय।
तेह प्रसिद्धज जाणवा, मति नी पर अवलोय॥

६९. अथवा श्रुत जे ग्रंथ नैं, अनुसारे ह्वै ज्ञान।
श्रुत ग्रंथपणुज वर्ण ही, अकरादि पहिछान॥

७०. इक-इक अक्षर नै विपे, जथाजोग अवलोय।
उदात्त नै अनुदात्त फुन, स्वरित भेद थी सोय॥

७१. वलि सानुनासिक कह्य, निरनुनासिक भेद।
अल्पप्रयत्न महाप्रयत्न ना, भेदादिक करि वेद॥

७२. फुन सयुक्त सयोग ही, असयुक्त सयोग।
द्व्यादि सयोग भेद थी, नाम अनत ही जोग॥

७३ भिद्यमान करिकै तिके, भेद अनत ही थाय।
तेहना जे पर्याय नै, कहियै स्व पर्याय॥

७४. फुन तेहथी अन्य पजव नै, कहियै पर पर्याय।
तेह अनतज जाणवा, निमल विचारो न्याय॥

वा०—इहा जाव शब्द मे अवध्यादिक जाणवो।

७५. अनंत पज्जव है अवधि ना, स्व पर्याय कहाव।
नारक सुर भव प्रत्यय, नर तिरि क्षयोपशम भाव॥

वा०—च्यार गति मे अवधि हुवै ते स्वामी ना भेद थकी असख्याता भेद। ते अवधिज्ञान नी विपयभूत द्रव्य अनै पर्याय ना भेद थकी अनता पज्जवा। वलि

(आचार्य आह)—ज तमि असवद्धा तो परपज्जाय-ववएसो॥
चायसपज्जायविसेसणाइणा तस्स जमुवजुज्जति।
सधणमिवासवद्ध हवति तो पज्जवा तस्स॥
(वृ० प० ३६३)

६४. अनन्ता श्रुतज्ञानपर्याया प्रज्ञप्ता इत्यर्थ, ते च स्वपर्याया परपर्यायाश्च। (वृ० प० ३६३)

६५, तत्र स्वपर्याया ये श्रुतज्ञानस्य स्वतोऽक्षरश्रुतादयो भेदा। (वृ० प० ३६३)

६६ ते चानन्ता क्षयोपशमवैचित्र्यविपयानन्त्याभ्याम्। (वृ० प० ३६३)

६७ श्रुतानुसारिणा वोधानामनन्तत्वात् अविभागपलिच्छेदानन्त्याच्च। (वृ० प० ३६३)

६८. परपर्यायास्त्वनन्ता सर्वभावाना प्रतीता एव। (वृ० प० ३६३)

६९. अथवा श्रुत—ग्रन्थानुसारि ज्ञानं श्रुतज्ञान, श्रुतग्रन्थश्चाक्षरात्मक, अक्षराणि चाकारादीनि। (वृ० प० ३६३)

७० तेपा चैकैकमक्षर यथायोगमुदात्तानुदात्तस्वरितभेदात्। (वृ० प० ३६३)

७१ सानुनासिकनिरनुनासिकभेदात् अल्पप्रयत्नमहाप्रयत्नभेदादिभिश्च। (वृ० प० ३६३)

७२ सयुक्तसयोगासयुक्तसयोगभेदाद् द्व्यादिसयोगभेदादभिधेयानन्त्याच्च। (वृ० प० ३६३)

७३ भिद्यमानमनन्तभेद भवति, ते च तस्य स्वपर्याया। (वृ० प० ३६३)

७४ परपर्यायाश्चान्येऽनन्ता एव, एव चानन्तपर्याय तत्। (वृ० प० ३६३)

७५ तत्रावधिज्ञानस्य स्वपर्याया येऽवधिज्ञानभेदा भवप्रत्ययक्षायोपशमिकभेदात् नारकतिर्यग्मनुष्यदेवरूप- (वृ० प० ३६३)

वा०—स्वामिभेदाद् असंख्यातभेदतद्विपयभूतक्षेत्रकाल-भेदाद् अनन्तभेदतद्विपयद्रव्यपर्यायभेदादविभागप

अविभाग पलिच्छेद ते पिण अनंता।

मन पर्याय ज्ञान स्वामी ना भेद थकी सख्याता भेद। ते मनपर्याय ज्ञान नी विषयभूत द्रव्य अनै पर्याय ना भेद थकी अनता स्व पर्याय। वली अविभाग पलिच्छेद ते पिण अनता।

हिवै केवलज्ञान ना स्वामी ना भेद थकी अनता भेद। अनता द्रव्य अनै पर्याय नी अपेक्षा करिकै अनता स्व पर्याय अनै अविभाग पलिच्छेद अपेक्षा करिकै पिण अनता। इम मति अज्ञानादिक तीनु नै विषे पिण अनत पर्यायपणु विचारी कहिवो।

स्व पर पर्याय नी अपेक्षा करिकै तो सर्व नै सरीखापणा छै तें, माटे स्व पर्याय नी अपेक्षा करिकै अल्पवहुत्व कहै छै।

लिच्छेदाच्च ते चैवमनन्ता इति,
मन पर्यायज्ञानस्य, केवलज्ञानस्य च स्वपर्याया ये स्वाम्यादिभेदेन स्वगता विशेष्यास्ते चानन्ता अनन्त-द्रव्यपर्यायपरिच्छेदापेक्षयाऽविभागपलिच्छेदापेक्षया वेति, एव मत्यज्ञानादित्रयेऽप्यनन्तपर्यायत्वमूह्यमिति।

इह च स्वपर्यायापेक्षयैवैपामल्पवहुत्वमवसेय, स्वपर-पर्यायापेक्षया तु सर्वेपा तुल्यपर्यायत्वादिति।
(वृ० प० ३६३)

७६. *पच ज्ञान ना पज्जवा नै विषे, कुण-कुण थी अवलोय।
अल्प वहुत्व तुल्य अधिक विशेप छै ? हिव जिन उत्तर जोय ॥

७६ एतेसि ण भते ! आभिणिवोहियनाणपज्जवाण,....
य कयरे कयरेहितो अप्पा वा ? वहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

७७. सर्व थकी थोड़ा पज्जव कह्या, मनपज्जव ना माण।
मनो मात्र द्रव्य क्षेत्र समय विपे, तास विषय पहिछाण ॥

७७. गोयमा ! सव्वत्थोवा मणपज्जवनाणपज्जवा।
तत्र सर्वस्तोका मन पर्यायज्ञानपर्यायास्तस्य मनोमात्र-विपयत्वात्। (वृ० प० ३६३)

७८. मनपज्जव ना पज्जव थी वलि, अवधि ज्ञान ना एम।
अनतगुणा पजवा वर आखिया, तसु न्याय सुणो धर प्रेम ॥

७८. ओहिनाणपज्जवा अणतगुणा।

**सोरठा**

७९. मनपज्जव थी पाय, द्रव्य अनै पर्याय थी।
अवधिज्ञान नें ताय, विपय अनतगुण भाव थी ॥

७९. मन पर्यायज्ञानापेक्षयाऽवधिज्ञानस्य द्रव्यपर्यायतोऽनन्त-गुणविपयत्वात्। (वृ० प० ३६३)

८०. *अवधिज्ञान ना जे पजवा थकी, वर श्रुत ज्ञान तणाज।
अनंतगुणा पजवा अधिका अछै, हिवै तसु न्याय समाज ॥

८०. सुयनाणपज्जवा अणतगुणा।

**सोरठा**

८१. रूपी अरूपी जेह, द्रव्य विपय भावे करी।
विपय अनत गुण एह, कहियै इम श्रुत ज्ञान नें ॥

८१ ततस्तस्य रूप्यरूपिद्रव्यविपयत्वेनानन्तगुणविपयत्वात्।
(वृ० प० ३६३)

८२. *जे श्रुत ज्ञान तणा पजवा थकी, वर मतिज्ञान ना जाण।
पजवा परम अनतगुणा तसु, अदल न्याय हिव आण ॥

८२ आभिणिवोहियनाणपज्जवा अणतगुणा।

**सोरठा**

८३. अभिलाप्य अनभिलाप्य, द्रव्यादि विपयपणें करी।
विपय अनत गुण प्राप्य, आभिनिवोधिक अनतगुण ॥

८३ ततस्तस्याभिलाप्यानभिलाप्यद्रव्यादिविपयत्वेनानन्तगु-णविपयत्वात्। (वृ० प० ३६३, ३६४)

---

*लयः पूजजी पधारो हो नगरी

८५. मति श्रुत विभग त्रिहु अज्ञान ना, पजवा [illegible] पख।
कुण-कुण थी यावत विसेसाहिया ? हिव जिन उत्तर देख ॥

पज्जवाणं विभंगनाणपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो जाव (सं० पा०) विसेसाहिया वा ?

८६. सर्व थी थोड़ा पज्जव विभग ना, अनंतगुणा श्रुत साव।
मति अज्ञान ना अनतगुणा वली, त्रिहुं क्षयोपशम भाव ॥

८६. गोयमा ! सव्वत्थोवा विभंगनाणपज्जवा, सुयअन्नाणपज्जवा अणंतगुणा, मइअन्नाणपज्जवा अणंतगुणा। (श० ८।२१३)

## सोरठा

८७. अज्ञान नो अवधार, अल्पबहुत्व नों न्याय जे।
सूत्र तणे अनुसार, इहा भाव ना इमज ए ॥

८७. एवमज्ञानसूत्रेऽप्यल्पबहुत्वकारणं सूत्रानुसारेणोहनीयं। (वृ० प० ३६८)

८८ *ए प्रभु ! आभिनिवोधिक ज्ञान ने, यावत केवल पेख।
मति श्रुत विभग ना पजवा वली, कुण-कुण जाव विशेष ?

८८. एएसि णं भंते ! आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं जाव केवलनाणपज्जवाणं, मइअन्नाणपज्जवाणं, सुयअन्नाणपज्जवाणं, विभंगनाणपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा।

८९. श्री जिन भाखै थोडा सर्व थी, मनपज्जव ना ताहि।
मनो मात्र द्रव्य विपयपणे करी, समयक्षेत्र रै माहि ॥

८९. गोयमा ! सव्वत्थोवा मणपज्जवनाणपज्जवा।

९०. मनपज्जव ना पज्जव थकी वली, अनतगुणा अधिकाय।
विभग अज्ञान तणा पजवा अछै, क्षयोपशम थी थाय ॥

९०. विभंगनाणपज्जवा अणंतगुणा।

## सोरठा

९१. मनपज्जव थी जाण, पजवा विभग अनाण ना।
अनतगुणा पहिछाण, अतिसय करि बहु विपय तसु ॥

९१. तेभ्यो विभङ्गज्ञानपर्यवा अनन्तगुणाः मनःपर्यायज्ञानापेक्षया विभङ्गस्य बहुतरविषयत्वात्। (वृ० प० ४६८)

९२. ऊर्द्ध अधो इम हुत, नवमी ग्रैवेयक थकी।
सप्तम पृथ्वी अंत, इतरो देखै विभंगधर ॥

९२ विभङ्गज्ञानमूर्ध्वमधि उपरिमग्रैवेयकादारभ्य सप्तमपृथिव्यन्ते। (वृ० प० ३६४)

९३. तिरछै लोके जोय, असंख्यात द्वीपोदधि।
तेह विपे अवलोय, रूपी द्रव्यज माहिला ॥

९३. क्षेत्रे तिर्यक् चासंख्यातद्वीपसमुद्ररूपे क्षेत्रे यानि रूपिद्रव्याणि। (वृ० प० ३६४)

९४. केइक द्रव्य जाणेह, केइक तसु पर्याय प्रति।
जाणे विभंग करेह, अनतगुणा इण कारणे ॥

९४. तानि कानिचिज्जानाति कांश्चित्तत्पर्यायांश्च, तानि च मनःपर्यायज्ञानविषयापेक्षयाऽनन्तगुणानीति। (वृ० प० ३६४)

९५. *विभग अनाण तणा पजवा थकी, अवधिज्ञान ना ताय।
अनतगुणा पजवा अधिका अछै, तास न्याय कहिवाय ॥

९५. ओहिनाणपज्जवा अणंतगुणा।

## सोरठा

९६. सहु रूपी द्रव्य ताय, एक-एक जे द्रव्य नी।
असख-असख पर्याय, जाणै अवधि ज्ञाने करी ॥

९६, ९७ अवधेः सकलरूपिद्रव्यप्रतिद्रव्यासंख्यातपर्यायविषयत्वेन विभङ्गापेक्षया अनन्तगुणविषयत्वात्। (वृ० प० ३६४)

*लय : पूजजी पधारो हो नगरी

९७ इम विभग पेक्षाय, प्रवर अनंतगुण विषय थी।
अवधि ज्ञान अधिकाय, पज्जव अनंतगुणा कह्या ॥

९८ *अवधिज्ञान ना जे पज्जव थकी, अनंतगुणा अधिकाय।
कहियै पज्जव श्रुत अज्ञान ना, ए जिन वच हिव न्याय ॥

९८. सुयअण्णाणपज्जवा अणतगुणा।

**सोरठा**

९९. श्रुत अज्ञान करेह, जे श्रुत ज्ञान तणी परै।
सामान्य करि जाणेह, मूर्त्त अमूर्त्त समस्त द्रव्य ॥
१००. ते द्रव्य नी पर्याय, जाणै सामान्य विधि करी।
अवधिज्ञान पेक्षाय, विषय अनंतगुण अधिक इम ॥

९९,१०० श्रुताज्ञानस्य श्रुतज्ञानवदोघादेशेन समस्तमूर्त्तामूर्त्तद्रव्यसर्वपर्यायविपयत्वेनावधिज्ञानापेक्षयाऽनन्तगुणविपयत्वात्। (वृ० प० ३६४)

१०१. *जे श्रुत अज्ञान ना पजवा थकी, विशेषाधिक कहिवाय।
वर श्रुत ज्ञान तणा पजवा अछै, हिव कहियै तसु न्याय ॥

१०१ सुयनाणपज्जवा विसेसाहिया।

**सोरठा**

१०२. विशेषाधिक श्रुत ज्ञान, श्रुत अज्ञान नी विषय में।
कै पर्याय पिछान, नहिं आया छै तेहनैं ॥
१०३. विपयीकरण थी जेह, जे माटै श्रुत ज्ञान करि।
प्रगटपणै जाणेह, तिण सूं ए विसेसाहिया ॥

वा०—जिम ऋजुमति थकी विपुलमति निर्मलपणै जाणै, पिण ते ऋजुमति मेलो नथी। तिम श्रुत-अज्ञान थकी श्रुत ज्ञानवत स्पष्ट—प्रगटपणै जाणै, पिण ते श्रुत-अज्ञान मेलो नथी, क्षयोपशम भाव छै ते माटे।

१०२,१०३ तेभ्य श्रुतज्ञानपर्यवा विशेपाधिका, केपाञ्चित् श्रुताज्ञानाविपयीकृतपर्यायाणा विपयीकरणाद्, यतो ज्ञानत्वेनस्पष्टावभास तत्। (वृ० प० ३६४)

१०४. *जे श्रुत-ज्ञान ना पजवा थकी, अनतगुणा अधिकाय।
कहियै पजवा मति-अज्ञान नां, तास न्याय हिव आय ॥

१०४ मइअण्णाणपज्जवा अणतगुणा।

**सोरठा**

१०५. जे माटे श्रुत ज्ञान, जे अभिलाप्यज वस्तु नों।
विषय तास पहिचान, न कह्य अनभिलाप्य नो ॥
१०६. जाणै मति अज्ञानेह, जे वस्तु अभिलाप्य प्रति।
प्रवर अनतगुण जेह, अनभिलाप्य नु विपय पिण ॥

१०५ यत श्रुतज्ञानमभिलाप्यवस्तुविपयमेव। (वृ० प० ३६४)
१०६ मत्यज्ञान तु तदनन्तगुणानभिलाप्यवस्तुविपयमपीति। (वृ० प० ३६४)

१०७. *जे मति अज्ञान ना पजवा थकी, विशेपाधिक कहिवाय।
उज्जल पजवा छै मति ज्ञान ना, ए केवल ऊतरतो ताय ॥

१०७ आभिणिवोहियनाणपज्जवा विसेसाहिया।

**सोरठा**

१०८. विशेषाधिक मति ज्ञान, मति अज्ञान नी विषय में।
के पर्याय पिछान, नहिं आया छै तेहनैं ॥

१०८,१०९. केपाञ्चिदपि मत्यज्ञानाविपयीकृतभावाना विपयीकरणात्, तद्धि मत्यज्ञानापेक्षया स्फुटतरमिति। (वृ० प० ३६४)

---

*लय : पूजजी पधारो हो नगरी

११०. *फुन मति ज्ञान तणां पजवा थकी, अनंतगुणा अधिकाय।
केवलज्ञान तणां पजवा कह्या, ए पूर्ण ज्ञान शोभाय ।।

११० केवलनाणपज्जवा अणतगुणा। (श० ८।२१४)
सेव भते ! सेव भते ! त्ति (श० ८।२१५)

सोरठा

१११. सर्व काल भाविन्य, जाणै द्रव्य पर्याय सहु।
एह सरीख न अन्य, सहु ज्ञान समाया इह विषे ।।

१११. सर्वाद्धाभाविना समस्तद्रव्यपर्यायाणामनन्यसाधारणावभासनादिति। (वृ० प० ३६४)

११२. *अष्टम शतक उदेशो दूसरो, सौ नवतीसमी ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल ।।

अष्टमशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।।८।२।।

ढाल १४०

दूहा

१. पजवा कह्याज ज्ञान ना, ज्ञाने करि तरु आदि।
अर्थज जाणै ते भणी, तृतीय वृक्ष सवादि ।।

†जय-जय ज्ञान जिनेन्द्र नो ।। (ध्रुपदं)

१ अनन्तरमाभिनिवोधिकादिकं ज्ञान पर्यवत. प्ररूपित, तेन च वृक्षादयोऽर्था ज्ञायन्तेऽतस्तृतीयोद्देशके वृक्षविशेषानाह— (वृ० प० ३६४)

२. तरु प्रभु ! किता प्रकार ना ? जिन कहै त्रिविधा वृक्षो रे।
सखजीविया जे विषे, जीव सखेज्ज प्रत्यक्षो रे ।।

२. कतिविहा ण भते ! रुक्खा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तिविहा रुक्खा पण्णत्ता, त जहा—सखेज्जजीविया
'सखेज्जजीविय' त्ति सख्याता जीवा येषु सन्ति ते सख्यातजीविका। (वृ० प० ३६४)

३. असंखजीविया नैं विषे, जीव असख्या जाणो।
अनंतजीविया नैं विषे, अनत जीव पहिछाणो ।।

३. असखेज्जजीविया, अणतजीविया (श० ८।२१६)

४. संखेज्जजीविया कवण ते! जिन कहै अनेक प्रकारो।
ताल तमाल रु तक्कलि, वली तेतली धारो ।।

४ से किं त सखेज्जजीविया ?
सखेज्जजीविया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—
ताल तमाले तक्कलि, तेयलि।

५. जेम पन्नवणा धुर पदं, जाव खजूर नालेरो।
अन्य वलि तथा प्रकार ना,. सखेज्जजीविया हेरो ।।

५ जहा पण्णवणाए [१।४३] जाव (स० पा०) नालिएरी जे यावण्णे तहप्पगारा। सेत्तं सखेज्जजीविया।
(श० ८।२१७)

६. असखजीविया कवण ते ? जिन कहै द्विविध देखो।
एकअस्थिका फल विषे, कुलियो बीज सुएको ।।

६ से किं त असखेज्जजीविया ?
असखेज्जजीविया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—एगट्ठिया य बहुबीयगा य।
'एगट्ठिया' य त्ति एकमस्थिकं—फलमध्ये बीज येषा ते एकास्थिका.।

*लय : पूजजी पधारो हो नगरी
†लय : सल कोई मत राखजो

७. वहुवीजा जे फल विषे, वीज घणा कहिवायो।
तेह अनेकज अस्थिका, द्वितीय भेद ए थायो।
८. एकअस्थिका कवण ते ? जिन कहै अनेक प्रकारो।
नीव अव जंबू तरू, इत्यादिक सुविचारो॥
९. इम जिम पन्नवण धुर पदे, जाव फले वहुवीजो।
एह असंखिज्जजीविया, उभय प्रकार अहीजो॥

१०. अनतजीविका कवण ते ? जिन कहै अनेक प्रकारो।
आलू मूलो आद्रक, इत्यादिक सुविचारो॥

११ इम जिम सप्तम शतक में, जाव मुसडी जेहो।
अन्य वलि तथा प्रकार ना, अनतजीविया एहो॥

१२. अथ हिव भगवत काछवो, पुन कूर्म-पक्ति लेणी।
गोह अनै गोह-पक्ति जे, सर्प अनै अहि-श्रेणी॥

१३. मनुष्य नै पक्ति मनुष्य नी, महिष महिष नी पति।
दोय खड करि तेहना, अथवा त्रिखडे हति॥
१४. तथा सख्याता खण्ड करै, छेद्या विच अतरालो।
जीव प्रदेशे फर्शिया ? हता फर्श्या न्हालो॥
१५. हे प्रभु ! कोई पुरुष जे, विचला प्रदेशा नै सोयो।
हस्ते करी तथा पग करी, आगुलिये करि कोयो॥
१६. अथवा सिलाकाइ करी, काष्ठ करी अवलोयो।
अथवा लघु काष्ठे करी, तेह प्रदेश नै कोयो॥

१७. अल्प थोड़ो सो फर्शतो, फर्शै समस्त प्रकारो।
लिगारैक लिखतो थको, तथा खाचै एक वारो॥

१८. विशेष थी लिखतो थको, तथा खाचै वहु वारो।
अनेरे तीखे शस्त्रे करी, छेदै प्रदेश अपारो॥
१९. लिगारेक छेदतो थको, तथा छेदै एक वारो।
विशेष अत्यंत छेदतो, तथा वार-वार धारो॥

२०. अगनी करिनै वालतो, जीव प्रदेशां रै ताह्यो।
ईषत पीडा ऊपजै, वलि वहु पीड़ा थायो॥

७ 'वहुवीयगा य' त्ति वहूनि वीजानि फलमध्ये येषा ते वहुवीजका —अनेकास्थिका । (वृ० प० ३६४)
८ से किं त एगट्ठिया ?
एगट्ठिया अणेगविहा पण्णत्ता, त जहा—निंवव जवु ।
९ जहा पण्णवणापदे (१।३५) जाव [स० पा०] फला वहुवीयगा । सेत्त वहुवीयगा । सेत्त असखेज्जजीविया ।
(श० ८।२१९, २२०)

१०. से किं त अणतजीविया ?
अणतजीविया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—आलुए मूलए सिंगवेरे—

११ एव जहा—सत्तमसए (७।६६) जाव सिउढी मुसुढी । जेयावण्णे तहप्पगारा । सेत्त अणतजीविया ।
(श० ८।२२१)

१२ अह भते ! कुम्मे, कुम्मावलिया, गोहा, गोहावलिया, गोणा गोणावलिया, 'कूर्मावलिका' कच्छपपक्ति 'गोहे' त्ति गोधा सरीसृपविशेष । (वृ० प० ३६५)

१३ मणुस्से, मणुस्सावलिया. महिसे, महिसावलिया—एएसि ण दुहा वा तिहा वा ।
१४ सखेज्जहा वा छिन्नाण जे अतरा ते वि ण तेहिं जीवपएसेहिं फुडा ? हता फुडा । (श० ८।२२२)
१५ पुरिसे ण भते ! अतरे हत्थेण वा पादेण वा अंगुलियाए वा
१६ सलागाए वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा
'कलिंचेण व' त्ति क्षुद्रकाष्ठरूपेण ।
(वृ० प० ३६५)

१७ आमुसमाणे वा समुसमाणे वा आलिहमाणे वा
आमृशन् ईषत् स्पृशन्नित्यर्थ... ...समृशन् सामस्त्येन स्पृशन्नित्यर्थ .......आलिखन् ईषत् सकृद्वाऽऽकर्षन् ।
(वृ० प० ३६५)

१८,१९. विलिहमाणे वा अण्णयरेण वा तिक्खेणं सत्थजाएण आछिंदमाणे वा विछिंदमाणे वा,
विलिखन् नितरामनेकशो वा कर्षन् ।...........ईषत् सकृद्वा छिन्दन्...........नितरामसकृद्वा छिन्दन्
(वृ० प० ३६५)

२०. अगणिकाएण वा समोडहमाणे तेसिं जीवपएसाण किंचि आवाह वा विवाह वा उप्पाएइ ?
'आवाह व' त्ति ईषद्वाधा.......व्यावाधा—प्रकृष्टपीडाम् ।' (वृ० प० ३६५)

## सोरठा

२३. कच्छप प्रमुख जीव, तेह तणो अधिकार जे।
पूर्वे कह्य अतीव, प्रदेश नी श्रेणी करी ॥
२४. जंतु उत्पत्ति खेत, रत्नप्रभादिक नैं हिवै।
चरिमाचरिम कहेत, विभाग देखाड़ण अरथ ॥

२५. *पृथ्वी कही प्रभु ! केतली, जिन कहै पृथ्वी आठो।
रत्नप्रभा जाव सातमी, इसिपब्भारा सुघाटो ॥

२६. रत्नप्रभा पृथ्वी प्रभु ! स्यूं चरिमा कै अचरिमा ?
चरम पद दशमो कह्यो, सर्व विस्तारज वरिमा ॥

वा०—पृथ्वी स्यू एक वचने चरिम छै—पर्यंतवर्त्ति छै—चरमशरीरवत छै ? कै एक वचने अचरिम छै—मध्यवर्ती छै ? कै ते पृथ्वी नां तथाविध एकत्व परिणाम रूप द्रव्य चरिम—पर्यंतवर्ति सर्व छै कै अचरिम सर्व मध्यवर्ती छै ? ए वे प्रश्न वहुवचनात जाणिवा। कै चरिमांत-प्रदेश छै ? कै अचरिमात-प्रदेश छै ? ए वे प्रश्न पृथ्वी प्रदेशाश्रयी वहुवचनात जाणवा।

हे गोतम ! ए रत्नप्रभा पृथ्वी चरिम—अंत्यवर्ती नथी। कोइक वस्तु नी अपेक्षाइं चरिम, अचरिम कहिवाइ। पिण अपेक्षा विना काइ कहिवाइ नही। अनै इहा तो अपेक्षा रहित केवल रत्नप्रभा पृथ्वी नु प्रश्न पूछ्यू छै, ते माटै चरिमा नही। तिम इणज युक्ते अचरिम—मध्यवर्ती पिण नही। तिम रत्नप्रभा पृथ्वी नै विषे तथाविध एकत्व परिणाम रूप वहु वचने घणा द्रव्य छै, ते पिण सर्व चरिम—अंत्यवर्ती नथी, अपेक्षा रहित माटै। तिम अचरिम—मध्यवर्ती पिण नथी, अपेक्षा रहित माटै। तिम ते पृथ्वी ना प्रदेश असख्याता छै, ते प्रदेश पिण चरिम—अत्यवर्त्ति नथी, पृथ्वी अपेक्षा रहित माटै। तेहना प्रदेश नु प्रश्न पिण अपेक्षा रहित केवल पूछ्यू छै, ते माटै। तिम इणिज युक्ते ए पृथ्वी अचरिमात प्रदेशे पिण नथी, कल्पना ना असभव माटै।

तो हिवै ए रत्नप्रभा पृथ्वी कैहवी छै ? ते कहै छै—निश्चैज एक वचने अचरिम अनै वहु वचने चरिम—अत्यवर्त्ति छै। ते किम तेहनो स्थापना यंत्र ए आकारे छै—
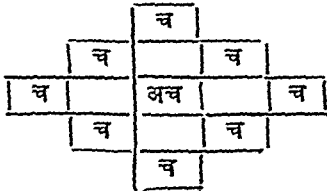
*लय : सल कोई मत राखजो

२३,२४. [illegible]
चरमाचरमविभागदर्शनायाह— (वृ० प० ३६५)

२५ कइ ण भते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, त जहा—रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा ईसीपब्भारा।
(श० ८।२२४)

२६. इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी किं चरिमा ? अचरिमा ?
चरिमपद निरवसेस भाणियव्व,

वा०—····इमा ण भते ! रयणप्पभा पुढवी किं चरिमा अचरिमा ? ····चरिमाइ अचरिमाइ ? चरिमंतपएसा अचरिमतपएसा ?

तत्र किं चरिमा अचरिमा ? इत्येकवचनात प्रश्न 'चरिमाइ अचरिमाइ' इति वहुवचनात प्रश्न।

'गोयमा ! नो चरिमा नो अचरिमा' चरमत्व ह्येतदापेक्षिक, अपेक्षणीयस्याभावा च कथ चरिमा भविष्यति ? अचरमत्वमप्यपेक्षयैव भवति तत कथमन्यस्यापेक्षणीयस्याभावेऽचरमत्व भवति ? यदि हि रत्नप्रभाया मध्येऽन्या पृथिवी स्यात्तदा तस्याश्चरमत्वं युज्यते, न चास्ति सा, तस्मान्न चरमासौ, तथा यदि तस्या वाह्यतोऽन्या पृथिवी स्यात्तदा तस्या अचरमत्वं युज्यते न चास्ति सा तस्मान्नाचरमाऽसाविति····

किं तर्हि नियमात् नियमेनाचरमं च चरमाणि च।

प्रदेश आश्री चरिमात-प्रदेश अचरिमात-प्रदेश छै, एहनो परमार्थ कहियै छै— एहवी अखड रूप चितवी नैं पूछीइ तो पूर्वोक्त छ भागा माहिलै एके भागे कहिवावै नही। अनै जो असख्यात प्रदेशावगाढ अनेकावयव विभाग रूप चितवीइं तो यथोक्त— 'णियमा अचरिम चरिमाणि य चरिमतपएसा अचरिमतपएसा य' एह एक भागो कहिवाइ ते किम ? रत्नप्रभा पृथ्वी ए आकारै छै, एह पृथ्वी ना प्रत्येक तथाविध-एकत्व परिणत छेहला जे खडुक ते चरिम कहिइ। अनै जे वलि विचलु जे मोटू एक रत्नप्रभा नु खडुक तथाविध एकत्व परिणाम युक्त माटै एकपणै चितव्यु ते अचरिम—मध्यवर्त्ति कहीइ—एतलै अचरिम-चरिमाणि य। ए वे मिली नैं एक भागो जाणवो। अखड एक पृथ्वी माहै ए वे नी समुदाय चितवणी माटै। एतलै एह अवयवावयवीरूप चितवणी नो भागो कह्यो।

हिवै जो प्रदेशपणै चितवीइ तो 'चरिमतपएसा य अचरिमतपएसा य', एह भागो कह्यो। ते किम ? जे बाह्य खडगत प्रदेश ते चरिमात-प्रदेश अनै जे मध्य एक खडगत प्रदेशे ते अचरिमात-प्रदेशे कहीइ। तथा यथोक्त रूप रत्नप्रभा प्राते एकप्रदेशिक श्रेणि पटलगत प्रदेशे ते चरिमात-प्रदेश कहीइ अनै मध्य भाग गत प्रदेश ते अचरिमात-प्रदेश कहीइ। इम सर्वत्र भावना जाणवी। एव जाव अहे-सत्तमा पुढवी। सोहम्माइ जाव अणुत्तरविमाणाण एव चेव ईसिप्प-ब्भाराविं लोगे वि एव चेव एव अलोगे वि इत्यादि।

एतदुक्त भवति—अवश्यतयेय केवलभङ्गवाच्या न भवति, अवयवावयविरूपत्वादसङ्ख्येयप्रदेशावगाढत्वाद्य-थोक्तनिर्वचनविषयैवेति।

एवमवस्थिताया यानि प्रान्तेषु व्यवस्थितानि तदध्यासितक्षेत्रखण्डानि तानि तथाविधविशिष्टैक-परिणामयुक्तत्वाच्चरमाणि, यत्पुनर्मध्ये महद् रत्नप्रभा. क्रान्त क्षेत्रखण्ड तदपि तथाविधपरिणामयुक्तत्वादचरमं तदुभयसमुदायरूपा चेयमन्यथा तदभावप्रसङ्गात्।

प्रदेशपरिकल्पनाया तु चरमातप्रदेशाश्चाचरमात प्रदेशाश्च, कथ ? ये बाह्यखण्डप्रदेशास्तेचरमातप्रदेशा ये च मध्यखण्डप्रदेशास्तेऽचरमानप्रदेशा इति, ····एव शर्करादिष्वपि। (वृ० प० ३६५,३६६)

२७. यावत प्रभु ! वेमाणिया, फर्श चरिम करि जोयो।
स्यु चरिमा कै अचरिमा ? जिन कहै दोनू होयो॥

२७ जाव (श० ८।२२५)
वेमाणिया ण भते ! फासचरिमेण किं चरिमा ? अचरिमा ?
गोयमा चरिमा वि अचरिमा वि। (श० ८।२२६)

**सोरठा**

२८. जे वेमानिक देव, न लहै भव सभव फरस।
तत्र अनुत्पति हेव, मुक्तिगमन थी फरस चरम॥

२८ ये वैमानिकभवसम्भव स्पर्शं न लप्स्यन्ते पुनस्तत्रानु-त्पादेन मुक्तिगमनात्ते वैमानिका स्पर्शचरमेण चरमा। (वृ० प० ३६६)

२९. जे वेमानिक देव, फुन लहिस्यै भव सभव फरस।
अचरिम फर्श कहेव, तिण सू फर्श चरिमाचरिम॥

२९ ये तु त पूनर्लप्स्यन्ते ते त्वचरमा। (वृ० प० ३६५,३६६,)

३०. *सेव भते ! सेव भते ! इम कहै गोतम स्वामी।
अष्टम शतक नों आखियो, तृतीय उद्देशक धामी॥

३० सेव भते ! सेव भते ! त्ति। (श० ८।२२७)

अष्टमशते तृतीयोद्देशकार्थः ॥८।३॥

**सोरठा**

३१. तृतीय उदेशक अंत, वेमानिक सुर आखिया।
ते छै किरियावत, तुर्य उदेशे हिव क्रिया॥

३१ अनतरोद्देशके वैमानिका उक्तास्ते च क्रियावंत इति चतुर्थोद्देशके ता उच्यते। (वृ० प० ३६६)

३२. *गोतम राजगृह नैं विषे, जाव बोल्या इम वायो।
क्रिया कही प्रभु ! केतली ? जिन कहै पच कहायो॥

३२ रायगिहे जाव एव वयासी—कति ण भते ! किरि-याओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! पच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

*लय : सल कोई मत राखजो

३४. जाव क्रिया मायावत्तिया, व ... अतो।
सेव भते ! सेव भते त्ति, अक चोरासी शोभतो।।

३४. ।व। ...
(श० ८।२२८)
सेव भते ! सेव भते ! त्ति। (श० ८/२२९)

अष्टमशते चतुर्थोद्देशकार्थः ।।८।४।।

**सोरठा**

३५. पाउसिया फुन जाण, पारितावणिया चतुर्थी।
प्राणातिपातकी माण, इत्यादि पन्नवणा मझे।।

३५ (पण्णवणा पद २२/१)

३६. अल्पबहुत्व है अत, सर्व थकी थोड़ा अछै।
मिथ्यातकी धुर हुंत, प्रथम तृतीय गुणठाण ए।।

३६. 'सव्वत्थोवा मिच्छादसणवत्तियाओ किरियाओ' मिथ्यादृशामेव तद्‌भावात्। (वृ० प० ३६७)

३७. अपच्चखाणिया जाण, तेह थकी विसेसाहिया।
धुर च्यारू गुणठाण, सर्व अविरति आश्रयी।।

३७ 'अप्पच्चक्खाणकिरियाओ विसेसाहियाओ' मिथ्यादृशामविरतिसम्यग्दृशां च तासा भावात्। (वृ० प० ३६७)

३८. परिग्रहिया पहिछाण, तेह थकी विसेसाहिया।
देशविरति गुणठाण, तेह विषे सभव थकी।।

३८ परिग्गहियाओ विसेसाहियाओ पूर्वोक्तानां देशविरताना च तासा भावात्। (वृ० प० ३६७)

३९. आरंभिया पहिछाण, तेह थकी विसेसाहिया।
पूर्व पंच गुणठाण, प्रमत्त-सजति मे वली।।

३९ 'आरभियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ' पूर्वोक्तानां प्रमत्तसयताना च तासा भावात्। (वृ० प० ३६७)

४०. मायावत्तिया माण, तेह थकी विसेसाहिया।
पूर्वोक्त गुणठाण, फुन अप्रमत्त दसवा लगै।।

४० 'मायावत्तियाओ विसेसाहियाओ' पूर्वोक्तानामप्रमत्तसयताना च तद्‌भावादिति। (वृ० प० ३६७)

वा०—सर्व-अविरत तथा देश-अविरत सहित रै मूर्च्छा ते परिग्रह की क्रिया कहियै। अनै अविरत विना मूर्च्छा छठे गुणठाणे, ते अशुभ-योग रूप आरभकी क्रिया कहियै, पिण परिग्रहकी क्रिया न कहियै। आरभकी क्रिया मे जीव हणवा रो नियम नथी। छठे गुणठाणे जीव हणै, झूठ बोलै, चोरी करै, मिथुन रा परिणाम—अतिचारादिक लगावै, वस्त्र पात्रादिक विषे ममत्व भाव करै, ते सर्व अशुभजोग छै। तेहनै आरभकी क्रिया कहीजै। अनै सातमा थी दसमा ताई मायावत्तिया कहियै। मायावत्तिया मे माया रो नियम नही। क्रोधादिक माहिला एक कषाय नो उदय सूक्ष्म हुवै, तेहनै पिण मायावत्तिया क्रिया कहियै।

४१. *एक सौ नै चालीसमी, ढाल रसाल विशालो।
भिक्खू भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मगल मालो।।

*लय : सल कोई मत राखजो

## ढाल १४१

### दूहा

१. तुर्य उद्देश कही क्रिया, हिव पचम उद्देश।
परिग्रहादि क्रिया विषय, विचार इहा कहेस॥

१ क्रियाधिकारात्पञ्चमोद्देशके परिग्रहादिक्रियाविषय विचार दर्शयन्नाह— (वृ० प० ३६७)

२. राजगृह यावत वदै, गोसालक शिष्य स्वाम।
स्थविर भगवंत प्रतै इसी, वाण वदै छै ताम॥

२ रायगिहे जाव एव वयासी—आजीविया ण भते! थेरे भगवने एव वयासी—
'आजीविका' गोशालकशिष्या। (वृ० प० ३६८)

३. गोसालक शिष्य स्थविर नें, श्रावक नी अपेक्षाय।
प्रश्न पूछ्या छै जिके, गोतम पूछै ताय॥

३ यच्च ते तान् प्रत्यवादिपुस्तद्गौतम स्वयमेव पृच्छन्नाह- (वृ० प० ३६७)

*हो म्हारा देव जिनेन्द्र दयाल, प्रभु नी वाण सुधा रस वारू॥ (ध्रुपद)

४. समणोपासक करि सामायक, बेठो साधु रै स्थानो।
कोइक पुरुष वस्त्रादिक वस्तु, ते भंड अपहरै जानो॥

वा०—घर के विषे रही तथा साधु नैं उपाश्रय रही ते वस्तु अपहरै।

४. समणोवासगस्स ण भते! सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स केइ भड अवहरेज्जा।
'भड' ति वस्त्रादिक वस्तु। (वृ० प० ३६८)
वा०—गृहवर्त्ति साधूपाश्रयवर्त्ति वा 'अवहरेज्ज' त्ति अपहरेत्। (वृ० प० ३६८)

५. हे प्रभु! सामायक पार्या पछै, भड गवेष जोवंत।
पोता ना भड भणी जे गवेषै, कै पर-भंड गवेषंत?

५. से ण भते! त भड अणुगवेसमाणे किं सभड अणुगवेसइ? परायग भड अणुगवेसइ?

### सोरठा

६. इहा जे पूछणहार, तेहनों ए अभिप्राय छै।
भंड जे वस्तु उदार, कहियै छै पोता तणो॥

६. पृच्छतोऽयमभिप्राय—स्वसम्बन्धित्वात्तत्स्वकीयम्। (वृ० प० ३६८)

७. पिण सामायक जाण, पडिवजता जे परहर्‍या।
किया तास पचखाण, ते पोता नो किम हुवै॥

७. सामायिकप्रतिपत्तौ च परिग्रहस्य प्रत्याख्यातत्वादस्वकीयम्। (वृ० प० ३६८)

८ ते माटै पूछत, गवेषणा निज भड तणी।
कै पर भंड नी हुंत? ताम स्वाम उत्तर दियै॥

८ अत प्रश्न, अत्रोत्तर— (वृ० प० ३६८)

९. *जिन कहै सामायक पार्यां पछै, निज भड ते गवेषत।
पारको भंड गवेषे नही ते, वलि गोयम पूछंत॥

९ गोयमा! सभड अणुगवेसइ, नो परायग भड अणुगवेसइ। (श० ८।२३०)

१० ते प्रभु! अणुव्रत गुणधारक, जे वेरमण ते सामाय।
पचखाण ते नवकारसी प्रमुख, वसवु पर्व दिनै पोषध माय॥

१० तस्स ण भते! तेहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाणपोसहोववासेहिं,
तत्र शीलव्रतानि—अणुव्रतानि गुणा—गुणव्रतानि विरमणानि—रागादिविरतय प्रत्याख्यान—नमस्कारसहितादि पौषधोपवास—पर्वदिनोपवसनम्। (वृ० प० ३६८)

### सोरठा

११. इहा शीलव्रतादि, ग्रहण किये पिण जाणवो।
सामायक पोसादि, अछै प्रयोजन एहनों॥

११ १२ इह च शीलव्रतादीना ग्रहणेऽपि सावद्ययोगविरत्या विरमणशब्दोपात्तया प्रयोजन। (वृ० प० ३६८)

*लय: हो म्हांरा राजा रा गुरुदेव बाबाजी

१३. *हे भगवत ! सामायक माहे, भंड ...
अपरिग्रह नै निमित्तपणे करि ? जिन कहै हंता जोय ॥

हंता भवइ । (श० ८।२३१)
तस्या एव परिग्रहस्यापरिग्रहतानिमित्तत्वेन ।
(वृ० प० ३६८)

१४. तो किण अर्थे प्रभु ! इम कहियै, स्व भंड ते गवेषंत ।
पारका भंड प्रतै न गवेषै ? हिव जिन उत्तर तंत ॥

१४ से केण खाइ ण अट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ—सभंडं अणुगवेसइ नो परायगं भंडं अणुगवेसइ ?

१५. हे गोतम ! जे सामायक मांहे, एहवा हुवै परिणाम ।
नहिं मुझ रूपो नहिं मुझ सुवरण, नहिं मुझ कांसी ताम ॥

१५. गोयमा ! तस्स णं एवं भवइ—नो मे हिरण्णे, नो मे सुव्वण्णे नो मे कंसे ।

१६. नहिं मुझ वस्त्र नहिं म्हारो धन, विस्तीर्ण गणिमादि ।
अथवा गवादिक धन नहिं म्हारो, कनक प्रसिद्ध सवादि ॥

१६ नो मे दूसे, नो मे विपुलधणकणग,
धन—गणिमादि गवादि वा कनकं—प्रतीत ।
(वृ० प० ३६८)

१७ रत्न कर्केतनादिक नहिं म्हारा, मणी चंद्रकांतादि ।
मोती नै संख वेहुं ए प्रसिद्ध, सिल प्रवाल विद्रुम वादि ॥

१७. रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-
रत्नानि—कर्केतनादीनि मणयः—चंद्रकांतादयः मौक्तिकानि शङ्खाश्च प्रतीताः शिलाप्रवालानि—विद्रुमाणि ।

१८. अथवा शिला ते स्फटिक शिला छै, विद्रुम मूंग प्रवाल ।
रक्त-रत्न ते पद्मरागादिक प्रमुख न म्हारा न्हाल ॥

१८. रत्तरयणमादीए
अथवा शिला—मुक्ताशिलाद्या प्रवालानि—विद्रुमाणि रक्तरत्नानि—पद्मरागादीनि ।

१९. सत विद्यमान सार द्रव्य ते, ए पिण म्हारा नांहि ।
एहवी भावना भाय रह्यो छै, श्रावक सामायक मांहि ॥

१९ संतसारसावदेज्जे
'सत' त्ति विद्यमान 'सार' त्ति प्रधान 'सावएज्ज' त्ति स्वापतेय द्रव्यम् । (वृ० प० ३६८)

२०. भंड अभंड सामायक मांहै, किम निज भंड गवेख ।
एहवी आशंका टालण काजै, आगल जिन वच पेख ॥

२० अथ यदि तद्भाण्डमभाण्डं भवति तदा कथं स्वकीयं तद् गवेषयति ? इत्याशंक्याह— (वृ० प० ३६८)

२१. ममत्व भाव तिणै नहिं पचख्यो, सामायक में ताम ।
हिरण्यादिक परिग्रह विषय छै, जे ममता परिणाम ॥

२१. ममत्तभावे पुण से अपरिण्णाए भवइ ।
ममत्वभावः पुनः—हिरण्यादिविषये ।
(वृ० प० ३६८)

## सोरठा

२२. परिग्रह आदि विषेह, करण करावण नै विषे ।
मन वंच काया जेह, तिण करिनै पचख्यो तिणै ॥

२२ परिग्रहादिविषये मनोवाक्कायानां करणकारणे तेन प्रत्याख्याते । (वृ० प० ३६८)

२३. फुन ममता परिणाम, जे हिरण्यादिक नै विषे ।
ते नहिं पचख्यो ताम, अनुमति न अणत्यागवै ॥

२३ ममतापरिणामः पुनः 'अपरिज्ञात' ? अप्रत्याख्यातो भवति, अनुमतेरप्रत्याख्यातत्वात् । (वृ० प० ३६८)

२४. ममत्व भाव फुन ताय, अनुमतिरूपपणा थको ।
वृत्ति विषे ए न्याय, इमज टवा में आखियो ॥

२४ ममत्वभावस्य चानुमतिरूपत्वादिति ।
(वृ० प० ३५८)

२५. कह्यो धर्मसी एम, ममता तेणे सर्वथा ।
उतारी नहि तेम, श्रावक सामायक मझै ॥

२६. 'आख्यो भिक्षु स्वाम, श्रावक पट अठ नव भंगे ।
सामायक मे ताम, न तजी ममता सर्वथा ॥

*लय : हो म्हारा राजा रा गुरुदेव बाबाजी

२७. भांगा गुणपच्चास, श्रावक तणा कह्या अछै।
ते माटै सुविमास, नव भांगे उत्कृष्ट थी॥
२८. बाह्यपणैं ते त्याग, नव भंगे पिण जाणज्यो।
अभ्यतर अनुराग, ममत्वभाव त्याग्यो नथी॥
२९. सामायक रै मांहि, अधिकरण तसु आतमा।
शतक सातमै ताहि, प्रथम उदेशे भगवती॥
३०. अधिकरण कहिवाय, शस्त्र छै छ काय नों।
तीखो यत्न कराय, ए पिण सावज जोग छै॥
३१. पोसह जे नव भग, मास-मास षट-षट करै।
ब्याज तास धन सग, ममत्व भाव इत्यादिके॥

२९ से केणट्ठेणं······गोयमा! समणोवासगस्स ण सामाइयकडस्स समणोवासए अच्छमाणस्स आया अहिगरणी भवइ। (श० ७।५)

३२. तिण अर्थे कहिवाय, निज भड तणी गवेषणा।
पर-भड कहियै नाय, बुद्धिवत न्याय विचारज्यो॥

३२ से तेणट्ठेण· गोयमा! एव वुच्चइ—सभड अणुगवेसइ नो परायग भड अणुगवेसइ। (श० ८।२३२)

३३. *श्रावक प्रभु! सामायक करिनै, बैठो छै मुनि-स्थान।
कोइ एक नर ते श्रावक नी, स्त्री प्रति सेवै जान॥
३४. हे भगवत! स्यूं ते श्रावक नी स्त्री भार्य्या प्रति सेवै।
कै सेवै छै तास अभार्य्या? हिव जिन उत्तर देवै॥
३५. श्री जिन भाखै ते श्रावक नी भार्य्या प्रति सेवत।
तास अभार्य्या प्रति नहिं सेवै, वलि गोयम पूछंत॥
३६. हे प्रभु! तास शील-गुण-व्रत मे, वेरमण ते सामाय।
पच्चक्खाण ते दशमा व्रत नो, वलि पोसह मे ताय॥
३७. भार्य्या जेह अभार्य्या होवै? जिन कहै हंता हुत।
तो किण अर्थे प्रभु! इम कहियै, तसु भार्य्या सेवंत॥

३३. समणोवासगस्स ण भते! सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स केइ जाय चरेज्जा।
३४. से ण भते! किं जाय चरइ? अजाय चरइ?
'जाया' भार्या 'चरेत्' सेवेत। (वृ० प० ३६८)
३५ गोयमा! जाय चरइ, नो अजाय चरइ।
(श० ८।२३३)
३६. तस्स ण भते! तेहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं।
३७ सा जाया अजाया भवइ?
हता भवइ। (श० ८।२३४)
से केणं खाइ ण अट्ठेण भते! एव वुच्चइ—जाय चरइ? नो अजाय चरइ?

३८. जिन कहै तेहनै सामायक मे, छै एहवा परिणाम।
नहिं मुझ माता नहिं मुझ तातज, नहिं मुझ बधव नाम॥
३९. ए भगनी पिण म्हारा नहिं छै, नहिं म्हारी ए नारी।
नहिं मुझ बेटा नहिं मुझ बेटी, पुत्र बहू नहिं म्हारी॥
४० पिण प्रेमरागरूप बध्रण ते, छेद्यो नहिं तिणवार।
तिण अर्थे तिण री स्त्री सेवै, तास अभार्य्या म धार॥

३८ गोयमा! तस्स ण एव भवइ—नो मे माता, नो मे पिता, नो मे भाया,
३९ नो मे भगिणी, नो मे भज्जा, नो मे पुत्ता, नो मे धूया, नो मे सुण्हा।
४० पेज्जवधणे पुण से अव्वोच्छिन्ने भवइ। से तेणट्ठेण गोयमा! एव वुच्चइ—जाय चरइ, नो अजाय चरइ। (श० ८।२३५)

**सोरठा**

४१. अनुमति अपचखाण, अनुमतिरूपज प्रेम बध।
वृत्ति विषे ए वाण, ते माटे तेहनीज स्त्री॥
४२. 'दशाश्रुतखध देख, पडिमा जे श्रावक तणी।
एकादशमी पेख, करै ज्ञात नी गोचरी।

४१ अनुमतेरप्रत्याख्यातत्वात् प्रेमानुवधस्य चानुमतिरूपत्वादिति। (वृ० प० ३६८)
४२ अहावरा एक्कारसमा उवासगपडिमा······
(दशाश्रुतस्कन्ध ६।१८)

*लय : हो म्हारा राजा रा गुरुदेव बावाजी

निमल विचारो न्याय, जिन आज्ञा नहिं दै तसु ॥
४५. आणंद अणसण माय, आख्यो हूं ग्रहस्थ अछू ।
गृहस्थावास वसाय, तो पड़िमा तें किहा रही ॥

४६. गृहस्थ नें दे दान, देतां नें अनुमोदिया ।
दड चोमासी जान, नशीत उदेशे पनरमें ॥

४७. गृहि व्यावच मुनिराय, कृत कार्य अनुमोदवे ।
दशवैकालिक माय, अणाचार अठावीसमों ॥
४८. तिण कारण इम जाण, श्रावक सामायक मझे ।
ममत्वभाव पचखाण, सर्व थकी कीधा नथी' ॥ (ज०स०)

४९. *देश पच्यासी नो ढाल कही ए, एक सौ नें इकताल ।
भिक्खू भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' हरप विशाल ॥

४५ तए ण से……जइ ण भंते ! गिहिणो गिहमज्झावसतस्स ओहिणाणे समुप्पज्जइ, एवं खलु मम वि गिहिणो……। (उवासग० १।७६)

४६ जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा असणं वा (४) देति, देंतं वा सातिज्जति ।
(निसीहज्झयण १५।७६)

४७ गिहिणो वेयावडियं……। (दसवे० ३।६)

## ढाल १४२

### दूहा

१. श्रमणोपासक हे प्रभु ! पूर्व काले पेख ।
सुध श्रद्धा दिल मे धरी, सम्यक्त्व पवर विशेख ॥

२. स्थूल प्राणातिपात ना, धुर न किया पचखाण ।
तेह पचखतो हे प्रभु ! किसु करै ते जाण ?
३. वाचनांतरे वृत्ति में, अपच्चक्खाए ताम ।
एह पाठ नें स्थानके, पच्चक्खाए छै आम ॥
४. पच्चाइक्खमाणे इसै, पाठ तणें जे स्थान ।
पच्चक्खावेमाणे इसो, दीसै पाठ सुजान ॥
५. पच्चक्खाए नो अर्थ ए, स्वयमेव किया पचखाण ।
पच्चक्खाएमाणे तिको, सुगुरु करायो जाण ॥
६. इम पोतें पचखाण करि, अथवा सुगुरू पास ।
वर पचखाणज धारतो, प्रभु ! स्यूं करै विमास ?

१. समणोवासगस्स ण भंते ! पुव्वामेव
प्राक्कालमेव सम्यक्त्वप्रतिपत्तिसमनन्तरमेवेत्यर्थं ।
(वृ० प० ३७०)

२. थूलए पाणाइवाए अपच्चक्खाए भवइ, से ण भंते ! पच्छा पच्चाइक्खमाणे किं करेइ ?

३. वाचनांतरे तु 'अपच्चक्खाए' इत्यस्य स्थाने 'पच्चक्खाए' त्ति दृश्यते । (वृ० प० ३७०)

४ 'पच्चाइक्खमाणे' इत्यस्य च स्थाने 'पच्चक्खावेमाणे' त्ति दृश्यते । (वृ० प० ३७०)

५. तत्र च प्रत्याख्याता स्वयमेव प्रत्याख्यापयश्च गुरुणा ।
(वृ० प० ३७०)

---

*लय : हो म्हारा राजा रा गुरुदेव

७ जिन कहै काल अतीत जे, कोधो प्राणातिपात ।
तास पडिकमै निवर्त्ते, निंदा करि पिछतात ॥

७. गोयमा ! तीय पडिक्कमति
अतीतकालकृत प्राणातिपात 'प्रतिक्रामति' ततो निंदाद्वारेण निवर्त्तत इत्यर्थ' । (वृ० प० ३७०)

८ वर्त्तमान मे सवरै, वर्त्तमान जे काल ।
हिंसा पाप करै नही सवर अर्थ निहाल ॥

८ पडुप्पन्न सवरेति
प्रत्युत्पन्न—वर्त्तमानकालीन प्राणातिपात 'सवृणोति' न करोतीत्यर्थ. । (वृ० प० ३७०)

९ अनागत पचखै वलि, काल अनागत माहि ।
हिंसा हूं करसू नही, त्याग प्रतिज्ञा ताहि ॥

९ अणागय पच्चक्खाति । (श० ८।२३६)
अनागत—भविष्यत्कालविषय 'प्रत्याख्याति' न करिष्या-मीत्यादि प्रतिजानीते । (वृ० प० ३७०)

*जय जय जय जय ज्ञान जिनेंद्र नो रे ॥ (ध्रुपदं)

१० गया काल ना प्राणातिपात नैं रे, पडिकमतो स्यूं प्रयोग ।
स्यू त्रिविध त्रिविधे करि पडिकमै रे, तीन करण तीन जोग ?

१० तीय पडिक्कममाणे किं तिविहं तिविहेण पडिक्कमति ?

११ करण करावण नैं अनुमोदवै, कह्या करण ए तीन ।
मन वच काया त्रिहुं जोगे करो, अक तेतीस नो लीन[1] ॥

११ 'त्रिविध' त्रिप्रकार करणकारणानुमतिभेदात् प्राणातिपातयोगमिति गम्यते, त्रिविधेन मनोवचनकायलक्षणेन करणेन प्रतिक्रामति । (वृ० प० ३७०)

१२ त्रिविध-दुविध करनैं जे पडिकमै, तीन करण बे जोग ।
अक बत्तीस तणु ए आखियो, प्रगटपणे प्रयोग ॥

१२ तिविह दुविहेण पडिक्कमति ?

१३. त्रिविध-एकविध करिनैं पडिकमै, तीन करण इक जोग ।
अक कह्यो छे ए इकतीस नो, ओलख दे उपयोग ॥

१३. तिविह एगविहेण पडिक्कमति ?

१४. दुविध-त्रिविध करिनैं जे पडिकमै, करण दोय जोग तीन ।
अक तेवीस नै काल अतीत नैं, निंदै जेह दुचीन ॥

१४. दुविह तिविहेण पडिक्कमति ?

१५. दुविध-दुविध करिनैं जे पडिकमै, दोय करण जोग दोय ।
अक बावीसे काल अतीत नो, अघ कृत निंदै जोय ॥

१५ दुविह दुविहेण पडिक्कमति ?

१६. दुविध-एकविध करिनैं पडिकमै, दोय करण जोग एक ।
एकवीस नैं ए अके करी, निंदै आण विवेक ॥

१६. दुविह एगविहेण पडिक्कमति ?

१७ इकविध-त्रिविध करीनैं पडिकमै, एक करण त्रिण जोग ।
तेरम अके काल अतीत नी, निंदै हिंस प्रयोग ॥

१७ एगविह तिविहेण पडिक्कमति ?

१८. इकविध-दुविध करीनैं पडिकमै, एक करण बे जोग ।
ए द्वादश नैं अक करी इहा, निंदै टाली सोग ॥

१८ एगविह दुविहेण पडिक्कमति ?

१९ इकविध-एकविधे करि पडिकमै, एक करण इक जोग ।
अक इग्यार करी हिंसा प्रतै, निंदै एह प्रयोग ॥

१९ एगविह एगविहेण पडिक्कमति ?

२० तेतीस बत्तीस नैं इकतीस नो, तेवीस नैं बावीस ।
इकवीस तेर बार इग्यार ना, विकल्प नव पूछीस ॥

---

*लय : साधुजी नगरी मे आया सवा भला रे

१ टीकाकार ने मन, वचन और काय को करण कहा है तथा कृत, कारित और अनुमत को योग कहा है । जयाचार्य ने जोड मे इसका व्यत्यय करते हुए मन, वचन और काय को योग तथा कृत, कारित और अनुमत को करण कहा है । यह सापेक्ष चिन्तन है ।

२२. त्रिविध त्रिविध करि पडिकमतो छतो, न करै नहीं कराय।
करता प्रति पिण अनुमोदन नहीं, मन वच काया ताय ॥

२२ तिविहं तिविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ, न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा कायसा।

### सोरठा

२३. अतीत वध कृतवत, तेहनैं निंदववै करी।
न करै ते सम हुत, तिण सु न करेइ कह्यु ॥

२३. 'न करोति' न स्वयं विदधाति अतीतकाले प्राणातिपातं। (वृ० प० ३७०)

२४. *न करै प्राणातिपात मनै करी, हा मुझ हणियो एण।
तिण दिन म्हैं इणनैं हणियो नहीं, इसा ध्यान थी तेण ॥

२४. मनसा हा हतोऽयं येन मया तदाऽसौ न हत इत्येवमनुध्यानात्। (वृ० प० ३७०,३७१)

२५. न करावै मन करि हिंसा प्रतै, हा ! तिण हणियो मोय।
अन्य पास म्हैं न हणावियो, इम चिंतन थी सोय ॥

२५. 'न' नैव कारयति मनसैव यथा हा न युक्तं कृतं यदसौ परेण न घातित इति चिंतनात्। (वृ० प० ३७१)

२६. करता प्रति जे अनुमोदै नहीं, उपलक्षण थी आम।
करावता प्रति अनुमोदै नहीं, अनुमोदता प्रति ताम ॥

२७. वध पर-कृत अथवा आतम कियो, अनुमोदै नहिं जेह।
मन कर वध चिंतववै करि तसु, अनुमोदन थी तेह ॥

२६,२७ 'कुर्वन्तं' विदधानमुपलक्षणत्वात् कारयन्तं वा समनुजानन्तं वा परमात्मानं प्राणातिपातं 'नानुजानाति' नानुमोदयति, मनसैव वधानुस्मरणेन तदनुमोदनात्। (वृ० प० ३७१)

२८. काल अतीत तणी हिंसा प्रतै, न करै मन करि एम।
न करावै अनुमोदै न मन करो, त्रिहु निवर्त्ते तेम ॥

२९. इम न करै हिंसा वचनै करी, हा मुझ हणियो एण।
तिण दिन मैं इणनैं हणियो नहीं, इम बोल्या थी तेण ॥

३०. करावै वच करि हिंसा प्रतै, हा तिण हणियो मोय।
अन्य पास तसु म्हैं न हणावियो, इम बोल्या थी सोय ॥

३१. वध प्रति अनुमोदै नहिं वच थकी, अतीत हिंसा प्रतेह।
अनुमोदै ते सरावै वच करो, रूड़ो हणियो एह ॥

२९-३१. एवं न करोति न कारयति कुर्वन्तं नानुजानाति वचसा, तथाविधवचनप्रवर्त्तनात् (वृ० प० ३७१)

३२. काय करी न करै नहिं कारवै, अनुमोदै नहिं काय।
अंग विशेष तथाविध करण थी, अतीत काल कृत ताय ॥

३२ एवं न करोति न कारयति कुर्वन्तं नानुजानाति कायेन तथाविधाङ्गविकारकरणादिति। (वृ० प० ३७१)

३३. काल अतीत विषे जे वध प्रतै, मन प्रमुख सू ताय।
न करै न करावै नहिं अनुमोदै, निंदवै करि निवर्त्ताय ॥

३३ अथवैवमेषाऽतीतकाले मनःप्रभृतीनां कृतं कारितमनुज्ञातं वा वधं क्रमेण न करोति, न कारयति, न चानुजानाति तन्निन्दनेन तदनुमोदननिषेधतस्ततो निवर्त्तत इत्यर्थः (वृ० प० ३७१)

३४. तेह अनिंदवै करिनैं वध तणो, अनुमोदन अनिवृत्ति।
काल अतीत नो वध निंदवै करी, निवृत्ति ह्वै सुप्रवृत्ति ॥

३४ तन्निन्दनस्याभावे हि तदनुमोदनानिवृत्तेः (वृ० प० ३७१)

३५. गये काल हिंसा कीधी तिका, अनिंदवै ते सोय।
वर्त्तमान काले हिंसा करै, तेह सरीखी होय ॥

३५-३७. कृतादिरसौ क्रियमाणादिरिव स्यादिति। (वृ० प० ३७१)

---
*लय : साधूजी नगरी आया सदा भला रे

३६ काल अतीत कराइ जे हिंसा, अनिंदवै करि जाण ।
वर्त्तमान करावै ते हिंसा, तेह सरीखी माण ॥
३७. गये काल अनुमोदी जे हिंसा, अनिंदवै करी जेह ।
वर्त्तमान अनुमोदै ते जिसी, न्याय विचारी लेह ॥

वा०—इहा यथासख्य ते अनुक्रम न्याय नथी । न करै मन करिकै, न करावै वचन करिकै, नही अनुमोदै काया करिकै, इण प्रकार करिकै न कह्यु । सर्व न्याय वक्ता नै वछा आधीनपणा थकी । वली आगल कहिस्यै ते विकल्प ना अयोग्यपणा थकी ।

वा०—न चेह यथासख्यन्यायो न करोति मनसा न कारयति वचसा नानुजानाति कायेनेत्येवलक्षणोऽनुसरणीयो, वक्तृविवक्षाऽधीनत्वात् सर्वन्यायाना वक्ष्यमाणविकल्पायोगाच्चेति । (वृ० प० ३७१)

३८ अक तेतीस तणो इहविधे, आख्यो भागो एक ।
अंक बतीस तणा कहियै हिवै, भागा तीन विशेख ॥
३९. त्रिविध-दुविध करि पडिकमतो थको, न करै करावै नांहि ।
करतां प्रति जे अनुमोदन नही, मन कर वच कर ताहि ॥
४०. अथवा न करै नैं नही कारवै, करता प्रति वलि जाण ।
अनुमोदै नहिं मन काया करी, द्वितीय भग पहिछाण ॥
४१. अथवा न करै नें नही कारवै, करता प्रति अवलोय ।
अनुमोदै नही वच काया करी, तृतीय भग ए होय ॥
४२. अंक बतीस तणा ए आखिया, भागा तीनू एम ।
इकत्रिस अक तणा भग त्रिण हुवै, साभलज्यो धर प्रेम ॥
४३. त्रिविध-एकविध पडिकमते छते, न करै नही कराय ।
करता प्रति वलि अनुमोदै नही, मन कर धुर भग थाय ॥
४४. अथवा न करै नें नहि कारवै, करता प्रति वलि तेह ।
अनुमोदै नहि वच जोगे करी, द्वितीय भग छै एह ॥
४५. अथवा न करै नैं नहि कारवै, करता प्रति वलि तेम ।
अनुमोदै नहि कायाइ करी, तृतीय भग छै तेम ॥
४६. भागा तीन कह्या इकतीस ना, हिवै तेवीस नो अक ।
तास भग हिव तीन कहूं अछू, साभलज्यो तज सक ॥
४७. दुविध-त्रिविध करि पडिकमते छते, न करै नाहि कराय ।
मन वच काया ए त्रिहु जोग थी, प्रवर भग धुर पाय ॥
४८ अथवा न करै नैं करता प्रतै, अनुमोदै नहि ताय ।
मन वच कायाइ भग दूसरै, काल अतीत पेक्षाय ॥
४९. अथवा न करावै करता प्रतै, अनुमोदै नहि ताम ।
मन वच कायाइ भग तीसरै, निंदवै करनै आम ॥
५०. अक तेवीस तणा ए आखिया, तत भग ए तीन ।
नव भग अक बावीस तणा हिवै, सुणज्यो धर आकीन[1] ॥
५१. दुविध-दुविध करि पडिकमते छते, न करै नही कराय ।
मणसा वयसा बे जोगे करी, ए धुर भागो थाय ॥

३९. तिविह दुविहेण पडिक्कममाणे न करेइ, न कारवेइ, करेंत नाणुजाणइ मणसा वयसा ।
४० अहवा न करेइ न कारवेइ करेंत नाणुजाणइ मणसा कायसा,
४१ अहवा न करेइ न कारवेइ करेंत नाणुजाणइ वयसा कायसा
४३. तिविह एगविहेण पडिक्कममाणे न करेइ न कारवेइ करेंत नाणुजाणइ मणसा ।
४४ अहवा न करेइ, न कारवेइ, करेंत नाणुजाणइ वयसा
४५ अहवा न करेइ, न कारवेइ, करेंत नाणुजाणइ कायसा
४७ दुविह तिविहेण पडिक्कममाणे न करेइ, न कारवेइ, मणसा, वयसा, कायसा ।
४८ अहवा न करेइ, करेंत नाणुजाणइ मणसा, वयसा, कायसा
४९ अहवा न कारवेइ, करेंत नाणुजाणइ मणसा, वयसा, कायसा
५१. दुविह दुविहेण पडिक्कममाणे न करेइ न कारवेइ मणसा वयसा

१. यकीन, विश्वास

अथवा न करै अनुमोदै नही, मणसा कायसा तेह ॥
५४. अथवा न करै अनुमोदै नहीं, वयसा कायसा जाण ।
अथवा न करावै अनुमोदै नही, मणसा वयसा आण ॥
५५. अथवा न करावै अनुमोदै नही, मणसा कायसा देख ।
अथवा न करावै अनुमोदै नही, वयसा कायसा पेख ॥
५६ अक बावीस नां नव भागा कह्या, हिव इकवीस नों अक ।
नव भागे हिंसा जे अतीत नीं, निंदै छांडे वंक ॥
५७. दुविध एकविध पडिकमते छते, न करै नाहि कराय ।
मणसा मनजोगे करिनैं तिको, पढम भंग ए थाय ॥
५८. अथवा न करै नैं नही कारवै, वयसा दूजो भंग ।
अथवा न करै नैं नही कारवै, कायसा तृतीय प्रसग ॥
५९. अथवा न करै नैं करता प्रतै अनुमोदै नहि मनेह ।
अथवा न करै नैं करता प्रतै अनुमोदै न वचेह ॥
६०. अथवा न करै नैं करतां प्रतै अनुमोदै न कायेण ।
अथवा न करावै करता प्रतै अनुमोदै न मणेण ॥
६१. अथवा न करावै करतां प्रतै अनुमोदै न वचेह ।
अथवा न करावै नैं करता प्रतै अनुमोदै न कायेह ॥
६२. अंक कह्यो छै ए इकवीस नो, हिवै तेर नु अंक ।
त्रिण भांगे करी हिंसा अतीत नीं, निंदै छांडी वंक ॥
६३. इकविध-त्रिविधे पडिकमते छते, न करै पोतै जेह ।
मणसा वयसा नैं वलि कायसा, प्रथम भंग छै एह ॥
६४. वलि न करावै मन वच काय थी, दूजो भांगो देख ।
वलि करतां प्रति अनुमोदै नही, मन वच काया पेख ॥
६५. अंक कह्यो छै ए तेरै तणो, हिवै बारै नो जाण ।
नव भंगे कर हिंसा अतीत नी, निंदै चतुर सुजाण ॥
६६. इकविध दुविधे पड़िकमते छते, न करै मणसा वाय ।
अथवा न करै मणसा कायसा, न करै वयसा काय ॥
६७. अथवा न करावै मन वच करी, चोथो भांगो न्हाल ।
अथवा न करावै मन काय थी, पंचम भंग संभाल ॥
६८. अथवा न करावै वच कायसा, छठो भांगो एह ।
अथवा करता प्रति अनुमोदै नहीं, मनसा वयसा तेह ॥
६९. अथवा करतां प्रति अनुमोदै नहीं, मणसा कायसा जाण ।
अथवा करतां प्रति अनुमोदै नहीं, वयसा कायसा पिछाण ॥
७०. अंक बारै नो एहिज आखियो, हिवै इग्यार नों हुत ।
नव भंगे करि हिंसा अतीत नी, निंदवै करि निवर्त्तत ॥

अहवा न करेइ करेंतं नाणुजाणइ मणसा कायसा

५४ अहवा न करेइ करेंतं नाणुजाणइ वयसा कायसा
अहवा न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा

५५. अहवा न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ मणसा कायसा,
अहवा न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ वयसा कायसा

५७ दुविहं एक्कविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ न कारवेइ मणसा

५८. अहवा न करेइ न कारवेइ वयसा अहवा न करेइ न कारवेइ कायसा

५९. अहवा न करेइ करेंतं नाणुजाणइ मणसा अहवा न करेइ करेंतं नाणुजाणइ वयसा

६० अहवा न करेइ करेंतं नाणुजाणइ कायसा अहवा न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ मणसा

६१ अहवा न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ वयसा, अहवा न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ कायसा

६३ एगविहं तिविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ मणसा वयसा कायसा

६४ अहवा न कारवेइ मणसा वयसा कायसा, अहवा करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा कायसा

६६ एक्कविहं दुविहेणं पडिक्कमाणे न करेइ मणसा वयसा, अहवा न करेइ मणसा कायसा अहवा न करेइ वयसा कायसा

६७ अहवा न कारवेइ मणसा वयसा, अहवा न कारवेइ मणसा कायसा

६८ अहवा न कारवेइ वयसा कायसा अहवा करेंतं नाण-जाणइ मणसा वयसा

६९ अहवा करेंतं नाणुजाणइ मणसा कायसा अहवा करेंतं नाणुजाणइ वयसा कायसा

७१. पडिकमतो इकविध-इकविध करी, न करै मणसा ताय।
अथवा न करै वयसा वचन थी, अथवा न करै काय॥
७२. अथवा न करावै जे मन करी, वलि न करावै वाय।
अथवा न करावै काया करी, छठा भांगा माय॥
७३. अथवा अनुमोदै नही मन करी, अनुमोदै नहि वाय।
अथवा अनुमोदै नही कायसा, करता प्रति ए ताय॥
७४. पडिकमवो ते निवर्त्तवो अछै, गये काल कृत पाप।
ते निंदन द्वारे करि पडिकमै, करण जोग चित स्थाप॥
७५. गये काल हा अरि म्है नहि हण्यो, इम चिंता न करत।
तिण कारण न करेइ पाठ छै, मन वच काये हुत॥
७६. गये काल हा अरि न हणावियो, इम चिंता न करंत।
तिण सू न करावेइ पाठ छै, मन वच काये हुत॥
७७. गये काल किणहि अरि मारियो, ते नहि अनुमोदत।
अनुमोदै नहि ते माटे कह्यो, मन वच काया हुत॥
७८. अंक तेतीस नों भागो एक छै, वत्तीस ना त्रिण भग।
इकतीस तेवीस नै तेरै तणा, त्रिण-त्रिण भग प्रसग॥
७९. वावीस इकवीस वार इग्यार ना, नव-नव भगा तास।
काल अतीतज आश्री आखिया, भागा गुणपच्चास॥
८०. वर्त्तमान काले हिंसा प्रतै, सवरतो स्यू हुत?
त्रिविध-त्रिविध करिनै जे सवरै, इत्यादि प्रश्न पूछत॥
८१. इम जिम पडिकमवा साथे कह्या, भागा गुणपच्चास।
भणवा इमहिज संवरते छते, चालीस नव भग तास॥
८२. अनागत काल आश्री हिसा प्रतै, पचखाण करतो जेह।
जीव घात नहि करसू एहवी, प्रतिज्ञा चित धारेह॥
८३. स्यू पचखै त्रिविधे त्रिविधे करी, एव तिमहिज तास।
भणवा इम भांगा पूर्व विधे, वारू गुणपच्चास॥
८४. काल अनागत आश्री एम छै, न करै मन करि जेह।
ते प्रति हणसूं काल आगामिके, इम चितन थी तेह॥
८५. न करावै मन करिनै इह विधे, काल आगमिया माहि।
एह तणी हूं घात करावसू, इम चितन थी ताहि॥
८६. अनुमोदै नहि मन करि इह विधे, काल अनागत माहि।
ए वध करसी इम निसुणी करी, हर्प करण थी ताहि॥
८७. जिम मन चिंतवियो तिम वचन थी, वोल्या वयसा थाय।
अग विकार करण थी कायसा, लीज्यो न्याय मिलाय॥
८८. ए गुणपन्न भग काल अतीत ना, वर्त्तमान पिण न्हाल।
काल अनागत ना पिण एतला, एक सौ नै सैताल॥

७१ एगविहं एगविहेण पडिक्कममाणे न करेइ मणसा अहवा न करेइ वयसा, अहवा न करेइ कायसा
७२ अहवा न कारवेइ मणसा, अहवा न कारवेइ वयसा अहवा न कारवेइ कायसा
७३ अहवा करेंत नाणुजाणइ मणसा अहवा करेत नाणुजाणइ वयसा अहवा करेत नाणुजाणइ कायसा
(श० ८/२३७)

७८, ७९ एव त्रिविध त्रिवेधेनेत्यत्र विकल्पे एक एव विकल्प तदन्येपु पुनर्द्वितीयतृतीयचतुर्थेपु त्रय त्रय पञ्चमपष्ठयो र्नव नव सप्तमे त्रय अष्टमनवमयो र्नव नवेति, एव सर्वेप्येकोनपञ्चाशत् (वृ० प० ३७१)
८० पडुप्पन्न सवरेमाणे किं तिविह तिविहेण सवरेइ?

८१ एव जहा पडिक्कममाणेण एगूणपन्न भगा भणिया एव सवरमाणेण वि एगूणपन्न भगा भाणियव्वा।
(श० ८/२३८)
८२, ८३ अणागय पच्चक्खमाणे किं तिविह तिविहेण पच्चक्खाइ? एव एते चेव भगा एगूणपन्न भाणियव्वा जाव अहवा करेत नाणुजाणइ कायसा।
(श० ८/२३९)
८४ भविष्यत्कालापेक्षया त्वेवमसौ—न करोति मनसा त हनिष्यामीत्यस्य (चिन्तनात्) (वृ० प० ३७१)
८५ न कारयति मनसैव तमह घातयिष्यामीत्यस्य चिन्तनात् (वृ० प० ३७१)
८६ नानुजानाति मनसा भाविन वधमनुश्रुत्य हर्पकरणात् (वृ० प० ३७१)
८७ एव वाचा कायेन च तयोस्तथाविधयो करणादिति (वृ० प० ३७१)
८८ सर्वेपा चैपा मीलने सप्तचत्वारिंशदधिक भङ्गकशत भवति (वृ० प० ३७१)

९०. भंग एकसा ..
तिमहिज मृषावाद तणां इता, काल त्रिहुं करि तेह ॥

मुन .

९१. स्थूल अदत्तादान तणां इता, स्थूल मिथुन इम न्हाल ।
स्थूल परिग्रह नां पिण एतला, एकसौ ने सैंताल ॥

९१. एवं अदिन्नादाणस्स वि एवं थूलगस्स वि मेहुणस्स, थूलगस्स वि परिग्गहस्स जाव अहवा करेंतं नाणुजाणइ कायसा

९२. भांगा पाचूं इ अणुव्रत ना, काल त्रिहुं ना जाण ।
सर्व सातसौ नै पैंतीस छै, एहवा श्रावक माण ॥

९२. एते खलु एरिसगा समणोवासगा भवंति ।

## दूहा

९३. मन कर करण करावणो, अनुमोदन किम होय ?
उत्तर जिम वच काय नुं, तिमहिज मन नो जोय ॥
९४. जिम वच तनु जोगे करी, करण करावण होय ।
अनुमोदन पिण ह्वै अछै, तिम मन करि पिण जोय ॥

९३,९४ अथ कथं मनसा करणादि ? उच्यते, यथा वाक्काययोरिति
आह च—आह कहं पुण मणसा करणं कारावणं अणुमई य ?
जह वइतणुजोगेहिं करणाई तह भवे मणसा ॥
(वृ० प० ३७१)

९५. वच काया ना जोग त्रिहुं, तेह तणोज कथीन ।
मन आधीनपणा थकी, मन ना करणज तीन ॥
९६. अथवा सावज-जोग नो, चितवणा चित मांय ।
वीतराग देवै तसु, मन ना करण कहाय ॥

९५,९६ तयहीणत्ता वइतणुकरणाईणं च अहव मणकरणं ।
सावज्जजोगमणणं, पन्नत्तं वीयरागेहिं ॥
(वृ० प० ३७१)

९७. ए सावज करिवु मुझै, इम चितवन करेह ।
सावज एह कराविवुं, द्वितीय करण चितेह ॥
९८. फुन सावज कीधे छते, रूडु कीधु एण ।
इम मन करनें चितवै, मन करि अनुमत तेण ॥

९७,९८. कारावण पुण मणसा चितेइ करेउ एस सावज्जं ।
चितेई य कए उण सुट्ठु कयं अणुमई होइ ॥
(वृ० प० ३७१)

९९. ए सगलो अधिकार छै, वृत्ति विषे विस्तार ।
ते अनुसारे आखियो, लीज्यो न्याय विचार ॥

वा०—इहा त्रिविध-त्रिविधे करी ए विकल्प आश्रयी आक्षेप-परिहार । आक्षेप ते प्रश्न, परिहार ते उत्तर । वृद्ध कह्यु ते इम—न करै, न करावै, करता प्रतै अनुमोदै नहीं मन, वचन, काया करी नै, इति एवरूप त्रिक देशविरति गृहस्थ रै किम हुवै ? स्व विषय थी बाहर अनुमति नो पिण निषेध हुवै, इण कारण थकी त्रिविध-त्रिविधे करी ए विकल्प हुवै ।

केयक इम कहै—गृहस्थ नै त्रिविध-त्रिविधे करी संवरवू नहीं, ते सम्यक् नहीं । जे कारण थकी इणहिज सूत्र नै विषे ते संवरण कह्युं ।

तो पूर्वोक्त निर्युक्ति नी गाथा मे अनुमोदन ना प्रत्याख्यान नो निषेध किम कीधो ? ऐहनों उत्तर—ते स्वविषय अनै सामान्य प्रत्याख्यान नै विषे निषेध छै । अन्यत्र—स्वविषय थी बाह्य विशेष पचखाण मे एहनो निषेध नथी । जेम स्वयंभूरमण समुद्र ना मत्स्यादिक नै हणवाना त्रिविध-त्रिविधे त्याग कीधे स्यू दोष ?

वा०—इह च त्रिविधं त्रिविधेनेति विकल्पमाश्रित्याक्षेपपरिहारौ वृद्धोक्तावेवम्—
न करेइच्चाइतियं गिहिणो कह होइ देसविरयस्स ?
भन्नइ विसयस्स बहिं पडिसेहो अणुमईए वि ॥
(वृ० प० ३७१)
केई भणंति—गिहिणो तिविहं तिविहेण नत्थि संवरणं ।
तं न जओ निद्दिट्ठं इहेव सुत्ते विसेसेउं ॥
तो कह निज्जुत्तीए ऽणुमइनिसेहोत्ति ?
सो सविसयंमि ।
सामन्ने वऽन्नत्थ उ तिविहं तिविहेण को दोसो ॥

केइक कहै—दीक्षाभिमुख कोई गृहस्थ पुत्रादिक सन्तति मात्र निमित्त थी एकादसवी प्रतिमा प्रतिपन्न छै, ते गृहस्थ नै त्रिविध-त्रिविध त्याग थइ सकै।

जिम त्रिविध-त्रिविध इहा प्रश्न उत्तर कह्यो, तिम और ठिकाणे पिण करवो। ए वृद्ध उक्त वार्त्ता वृत्ति मे कही, तिम इहा लिखी छै। बुद्धिवत न्याय सू विचारी लेईज्यो तथा वली त्रिविध-त्रिविध पचखाण नो हीज न्याय कहै छै—

१००. त्रिविध-त्रिविध श्रावक तणे, त्याग बाह्य थी जोय।
देशव्रती रै सर्व थी, भितरपणे न होय॥

१०१. इग्यारमी पडिमा मझै, समण सरीखो जेह।
पेज्जवधण जे ज्ञाति नु, छूटो नही कहेह॥

वा०—'कोइ कहे—इग्यारमी पडिमा मे 'समणभूए' कह्यो छै ते माटै ए त्रिविधे-त्रिविधे त्याग छै, इणरै अविरत किसी रही? सावज्ज-जोग किसो रह्यो? तेहनो उत्तर—प्रथम तो ए देशविरती छै ते माटै देश अविरती बाकी रही। वलि इग्यारमी पडिमा वहै जिता काल ताईज त्याग छै, आगमिया काल मे पच आश्रव सेवा रो आगार तथा आसा यू की यू छै।

कोइ कहै—जावजीव कुशील का त्याग करो। जद पडिमाधारी कहे—जावजीव त्याग करवा रा भाव नही। इण लेखै आगमिया काल नी आसा मिटी नही। इग्यारमी पडिमा मे कोइ पूछै—थारै पाच आश्रव का त्याग जावजीव छै के नथी? जद कहै—इग्यारै मास ताइ छै, तठा पछै पच आश्रव द्वार नो आगार छै। इण लेखै आगमिया काल नी अविरती यू की यू छै, मिटी नथी।

हिवै वर्त्तमान काल नो लेखो कहै छै—दशाश्रुतखध सूत्रे कह्यो—न्यातीला नो पेज्जवधण तूटो नथी, ते भणी न्यातीला नी गोचरी करै। इग्यारमी पडिमा मे 'नायपेज्जवधणे अव्वोच्छिन्ने भवइ एव से कप्पइ नायविह एत्तए'। इहा कह्यो—न्यातीला रो पेज्जवधण विच्छेद हुवो नथी, इम तेहनै कल्पै न्यात विधे गोचरी करै आहार नै जाये। इहा न्यातीला रा पेज्जवधण कै खाते तेहनी गोचरी कही ते माटै पेज्जवधण पिण जिन आज्ञा बाहिर सावज्ज छै अनै गोचरी पिण आज्ञा बाहिर सावज्ज छै।

जद कोइ कहै—ए सावज्ज छै तो कल्पै न्यातीला रै घरे जायवू, इम क्यू कह्यु? तेहनो उत्तर सूत्रे करी कहै छै। उववाइ सूत्रे कह्यो—

अम्मड परिव्राजक नै कल्पै मगध देश सबधी अर्द्ध आढो मान विशेष पाणी नो ग्रहिवु। ते पिण वहितो नही अवहितो, इम थिमिए ते पाणी नीचै कादो नथी, पसण्णे ते अतिहि निर्मल परिपूए ते छाण्यो पिण अछाण्यो नथी, ते पिण ए सावज्ज—पापसहित इम कहीनै लेवो, पिण निरवद्य कही न लेवो। ते पिण जीव कहीनै लेवो पिण अजीव कही न लेवो। ते पिण दीधो लेवो कल्पै पिण अणदीधो न लेवो। ते पिण हाथ, पग, चरू, हाडली, चरम, चाटुडा—प्रमुख उपगरण नै पखालवा-धोवा भणी अनै पीवा निमित्त पिण कल्पै, स्नान निमित्त नही कल्पै।

इहा अम्मड नै कल्पै काचो पाणी लेवो इम कह्यु, तेहनो जे कल्प—आचार हूतो ते बतायो पिण ते सावज्ज कल्प मे केवली की आज्ञा नथी। तिम पडिमाधारी नै पिण कल्प—आचार जे हूतो ते कह्यु, पिण ते सावज्ज कल्प जिन-आज्ञा बारै छै। तिण सू न्यातीला नी गोचरी सावज्ज छै।

इह च 'सविसयमि' त्ति स्वविषये यथानुमतिरस्ति
'सामन्ने व' त्ति सामान्ये वाऽविशेषे प्रत्याख्याने सति
'अण्णत्थ उ' त्ति विशेषे स्वयभूरमणजलधिमत्स्यादौ।
पुत्ताइसतइनिमित्तमेत्तमेगारसि पवण्णस्स।
जपति केइ गिहिणो दिक्खाभिमुहस्स तिविहपि॥
यथा च त्रिविध त्रिविधेनेत्यत्राक्षेपपरिहारौ कृतौ तथाऽन्यत्रापि कार्यौ।

(वृ० प० ३७१)

अम्मडस्स कप्पइ मागहए अद्धाढए जलस्स पडिग्गाहित्तए से वि य वहमाणे णो चेव ण अवहमाणए, से वि य थिमिओदए णो चेव ण कद्दमोदए, से वि य बहुप्पसण्णे णो चेव ण अबहुप्पसण्णे, से वि य परिपूए णो चेव णं अपरिपूए, से वि य सावज्जे त्ति काउं णो चेव ण अणवज्जे, से वि य जीवा त्ति काउ णो चेव ण अजीवा, से वि य दिण्णे णो चेव ण अदिण्णे, से वि य हत्थ-पाय-चरू-चमस-पक्खालणट्ठयाए पिवित्तए वा णो चेव ण सिणाइत्तए

(ओवाइय सू० १३७)

लाख रूपइया नों धन हूंतो ते मित्री नें भलाय इग्यारवीं पडिमा वहै तो ते धन किण रा परिग्रहा में ? मित्री रैं तो हजार रूपइया उपरात राखवा रा त्याग छै अनैं ते लाख रुपइया नी सार-संभाल मित्री करैं, पिण मन में जाणें ए धन म्हारो नथी, ते भणी लाख रुपइया पाडिमाधारी रा परिग्रहा में छै ।

वलि दशाश्रुतखंध सूत्रे कह्यो—इग्यारमी पडिमा में सर्व धर्म नी रुचि जाव उद्दिष्ट भक्त ना त्याग । इहां पहिली पडिमा में तो सर्व धर्म नी रुचि अनैं दशमी पडिमा में उद्दिष्ट-भक्त ते तिण रैं अर्थे कीधो ते भोगविवा रा त्याग अनैं जाव शब्द में व्रत सामायक, देशावगासी, पोसह आदि विचली पडिमा में त्याग हुता ते सर्व इग्यारमी पडिमा में कह्या, ते माटैं इग्यारमी पडिमा में सामायिक-पोसह पिण करैं ते सामायक-पोसहा में सावज्ज जोग रा त्याग छै । ते सामायक-पोसहा में खाणो-पीणो ए सावज्ज, तेहना त्याग करैं ते माटैं ए खाणो-पीणो सावज्ज छै । अनैं ते अविरत में छै ।

वलि इग्यारमी पडिमा में तपसा री केवली आज्ञा देवैं अनैं पारणा री केवली आज्ञा न देवैं । गोतम नैं पारणैं गोचरी री आज्ञा दीधी । तिम एहनैं गोचरी नी आज्ञा न देवैं । ते माटैं ए गोचरी सावज्ज छै । पडिमा विचैं तो सथारो वडो, ते सथारे में आणदे गोतम नैं कह्यो—हूं गृहस्थ गृहस्थावास वसता नें एतलो अवधि ऊपनो, ते माटैं इग्यारमी पडिमाधारी नैं पिण गृहस्थ कहियै । अनैं नशीत उदेशै पन्द्रह में गृहस्थ नैं असणादिक देवैं, देता प्रतैं अनुमोदैं तो साधु नैं चोमासी प्रायश्चित कह्यो । त्रीजे करण अनुमोद्या प्रायश्चित, तो पहिले करण देणवाला नैं धर्म किहा थकी ? अनैं जो देण वाला नैं धर्म हुवैं तो धर्म नी अनुमोदना किया प्रायश्चित किम आवैं ?

दशवैकालिक अध्ययन तीन में गृहस्थ नी वेयावच्च करैं, करावै, करता नैं अनुमोदैं तो साधु नैं अठाईसमो अणाचार कह्यो । अनैं गृहस्थ नीं साता पूछै तो सोलमो अणाचार कह्यो । तथा भगवती शतक सात उदेशैं एक में सामायक में श्रावक री आत्मा अधिकरण कही । अधिकरण छै ते छ काय रो शस्त्र छै । तिमहीज इग्यारमी पडिमा में आत्मा अधिकरण जाणवी । ते माटैं अभितरपणां में पेज्जवधण—ममत्वभाव छूटो नथी ।

अनैं द्वारिका नगरी प्रत्यक्ष देवलोकभूत कही । तथा चक्रवर्ती ना घोड़ा नैं ऋषि नी परैं क्षमावत कह्यां, तिम इग्यारमी पडिमा में समणभूए कह्यो, ए ओपमावाची शब्द छै । उत्तराध्ययन अध्येन पाच में एकेक भिक्षु थकी गृहस्थ संजम करिकैं प्रधान अनैं सर्व गृहस्थ थकी साधु संजम करी प्रधान । गृहस्थ में श्रावक पिण सगला आया, ते पडिमाधारी साधु सरीखो किम हुवैं । पिण ओपम दीधा दोष नथी' ।

(ज० स०)

१०२. 'अम्मड' ना शिष्य सातसय, पाप अठारैं ताहि ।
सर्व थकी त्याग न किया, कह्यो उववाई माहि ॥

१०३. देशविरति गुणठाण ए, सर्व थकी किम होय ?
तिण सूं त्यागज वाह्य ए, विमल न्याय अवलोय ॥

(दशाश्रुतस्कन्ध ६।१८)

तए ण से आणंदे........मम वि गिहिणो गिहमज्झावसतस्स ओहिणाणे समुप्पण्णे ।

(उवासगदसाओ १।७६)

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा असण वा (४) देति देंत वा सातिज्जति ।

(निसीहज्झयण १५।७६)

गिहिणो वेयावडियं..... .... .

(दसवे० ३।६)

............संपुच्छणा............

(दसवे० ३।६)

से केणट्ठेणं.. ........गोयमा ! समणोवासयस्स णं सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स आया अहिगरणी (श० ७।५)

एवं खलु जंबू.. .. ..बारवती नाम नयरी होत्था... पच्चक्खं देवलोगभूया ।

(नाया० १।५।२)

इसिमिव खंतिसमाए । (जम्बू० ३।१०६)

संति एगेहिं भिक्खूहिं गारत्था संजमुत्तरा ।
गारत्थेहिं य सव्वेहिं साहवो संजमुत्तरा ॥

(उत्तरा० ५।२०)

१०२,१०३ तेणं कालेणं तेणं समएणं अम्मडस्स परिव्वायगस्स सत्त अंतेवासिसया... ....

(ओवाइय सू० ११५)

तए णं ते परिव्वाया........पुव्विं णं अम्हेहिं अम्मडस्स

परिव्वायगस्स अतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए ......इयाणिं अम्हे समणस्स भगवओ........सव्व परिग्गह पच्चक्खामो जावज्जीवाए........
(ओवाइय सू० ११७)

१०४. उववाई वृत्ति मे कह्यो, देशविरति फल जन्न ।
आराधक परलोक ना, नहिं ब्रह्मलोक गमन्न ॥
१०५ परिव्राजक-क्रिया तणो, फल ब्रह्मलोकज ख्यात ।
अन्य पिण मिथ्याती कपिल-प्रमुख ब्रह्म उपपात ॥
१०६ इण वचने करि एहनै, मत नी टेक जणाय ।
तिण सु ब्रह्म कल्पे गया, बाह्य त्याग इण न्याय ॥

१०४,१०५ एते च यद्यपि देशविरतिमन्तस्तथापि परिव्राजकक्रियया ब्रह्मलोक गता इत्यवसेयम् अन्यथैतद्भणन वृथैव स्याद्, देशविरतिफल त्वेपा परलोकाराधकत्वमेवेति, न च ब्रह्मलोकगमन परिव्राजकक्रियाफलमेपामेवोच्यते, अन्येपामपि मिथ्यादृशा कपिलप्रभृतीना तस्योक्तत्वादिति । (औपपातिक वृ० प० १८२)

१०७. आश्रव पचज सर्व ही, त्याग्या मीडक ख्यात ।
ज्ञाता तेरह मे कह्यो, न्याय बाह्य थी थात ॥

१०७ तए ण से दद्दुरे अथामे ‘त इयाणिं पि तस्सेव अतिए सव्व पाणाइवाय पच्चक्खामि जाव सव्व परिग्गह पच्चक्खामि···· । (नाया० १३।४२)

१०८. पन्नवण पद बावीसमें, सर्व हिंसा पचखाण ।
मनुष्य विनाज हुवै नही, तिण सु मुनि रै जाण ॥
१०९. षट पोसह इक मास में, त्रिविध त्रिविध कृत कोय ।
हुवै बोहित्तर वर्ष मे, अष्ट पोहरिया जोय ॥
११०. गुमासता तसु सइकड़ां, लाभ खरच नों जाण ।
मालक तो एहीज छै, भितर अनुमति माण ॥
१११. पोसह नां दिवसा तणो, ब्याज आवै घर मांय ।
वलि लाखा रुपयां तिके, तसु परिग्रह में थाय ॥
११२. तिमहिज पडिमा ग्यारमी, तेह विषे पहिछाण ।
तिण सु त्रिविधे बाह्य छै, भितरपणे म जाण' ॥
(ज० स०)

१०८. एव पाणाइवायविरयस्स मणूसस्स वि ।
(पण्ण० २२।६६)

११३. *देश पच्यासी ढाल कही भली, एक सौ नै बयांलीस ।
भिक्षु भारीमाल राय 'जय-जश' तणी, सपति विस्वावीस ॥

## ढाल १४३

### दूहा

१. पूर्वे भाख्या तेहवा, निग्रंथ तणाज न्हाल ।
श्रावक ह्वै गुणसुदरू, प्रवर शीलव्रत पाल ॥
२. निश्चै करिनै नहि हुवै, आजीविक गोसाल ।
तास उपासक एहवा, ए जिन वचन निहाल ॥

१ अथानतरोक्तशीला श्रमणोपासका एव भवन्ति ।
(वृ० प० ३७२)
२ नो खलु एरिसगा आजीविओवासगा भवति ।
(श० ८।२४०)

*लय : साधूजी नगरी मे आया सदा भला रे

ते प्रति भोगविवा तणो, तास शील है हीण ॥

५. सर्व सत्व प्राणी-वरग, असजती ते जीव ।
हता—हणि लकुटादिके, आहार करत अतीव ॥

६. खड्गादिक करिनै वली, छेदी द्विधा भाव ।
भेदी सूलादिक करी, भिन्न करी अधिकाव ॥

७. पक्षादिक नै खोसवै, लुपित्ता कहिवाय ।
त्वचा विलोपन छोलि करि, एह विलुप्तिाय ॥

८ उपद्रव ताम विनाश करि, आहार प्रतै आहारत ।
आजीविक श्रावक इसा, भाखै इम भगवत ॥

९ कह्यो धर्मसी अचित करि, आहार प्रतै आहारत ।
इतलै ते छेद्या विना, फलादि नहि खावत ॥

१०. हननादिक दोषे निपुण, वर्ग असजत सत्त ।
तिण मे ए वारै प्रमुख, निज मत मे उन्मत ॥

११. आधारभूत अथवा जिको, आजीवक मत जाण ।
श्रावक गोशाला तणां, वारै तिहा पिछाण ॥

१२. श्रावक आणदादि जे, वीर तणे दश ख्यात ।
तिम एहनै ए वार है, अन्य बहु नाम धरात ॥

१३. ताल इसै नामै प्रथम, द्वितियो तालप्रलब ।
उव्विध सव्विध अवविधे, उदक नामुदक दंभ ॥

१४. नमुदक अनुपालक नवम, संखपाल अभिधान ।
वलि अयपुल कातरक, ए वारै ही जान ॥

१५. आजीविक ना मुख्य ए, उपासक कहिवाय ।
जाणै गोसालक भणी, अरिहत देव इच्छाय ॥

१६. मात पिता नी सुश्रुषा, करणहार अविकार ।
छांड्या छै फल पच जिण, ऊंवर धुर अवधार ॥

१७. वड फल पीपर बोर ते, सतर अंजीर पिछाण ।
पिलक्खु पीपल जात है, किया तास पचखाण ॥

अक्षीणायुष्कमप्रासुकं परिभुञ्जन इत्येवमात्मा अक्षीण-परिभोगिनः । (वृ० प० ३७२)

५. सव्वे सत्ता, ते हंता
'सर्वे सत्त्वाः' असंयताः सर्वे प्राणिनः एवेति तत किम्? इत्याह—'ते हंता' इत्यादि 'ते' त्ति ततः 'हंत' त्ति हत्वा लकुटादिना अभ्यवहार्यं प्राणिजातं । (वृ० प० ३७२)

६. छेत्ता, भेत्ता
'छित्त्वा' असिपुत्रिकादिना द्विधा कृत्वा 'भित्त्वा' शूलादिना भिन्नं कृत्वा । (वृ० प० ३७२)

७ लुंपित्ता विलुंपित्ता
'लुप्त्वा' पक्षादिलोपनेन 'विलुप्य' त्वचो विलोपनेन । (वृ० प० ३७२)

८ उद्दवइत्ता आहारमाहारेंति । (भ० ८।२४१)
'अपद्राव्य' विनाश्याहारमाहारयन्ति । (वृ० प० ३७२)

१० तत्थ खलु
'तत्थ' त्ति 'तत्र' एवं स्थितेऽसंयतलोकवर्गे हननादि-दोषपरायणे इत्यर्थः । (वृ० प० ३७२)

११. इमे दुवालस आजीवियोवासगा भवंति, तं जहा—
आजीविकसमये वाऽधिकरणभूते द्वादशैते विशेषा-नुष्ठानत्वात् परिगणिताः । (वृ० प० ३७२)

१२. आनन्दादिश्रमणोपासकवदन्यथा बहवस्ते । (वृ० प० ३७२)

१३. ताले, तालपलंबे, उव्विहे, संविहे, अवविहे, उदए, नामुदए ।

१४. णम्मुदए, अणुवालए, संखवालए, अयपुले, कायरए—इच्चेते दुवालस ।

१५. आजीवियोवासगा अरहंतदेवतागा
'अरिहंतदेवयाग' त्ति गोशालकस्य तत्कल्पनयाऽर्हत्त्वात् । (वृ० प० ३७२)

१६ अम्मापिउसुस्सूसगा पंचफलपडिक्कंता (तं जहा— उंबरेहिं

१७ वडेहिं, बोरेहिं, सतरेहिं, पिलक्खूहिं)

१८. अपर पिलंडु लसण वलि, कद मूल वर्जेह ।
कर्मनिलछण नाक भिन्न, वृषभ-प्रमुख न करेह ।।

१९. वृपभादिक त्रस प्राण नै, तनु अति पीड वर्जंत ।
तेणे करि आजीविका करता ते विचरंत ।।

२०. विशिष्ट योग्यता स्यू विकल, ए पिण बछै एम ।
करिवूं धर्माचरण वर, निज मत मे दृढ नेम ।।

२१. स्यूं कहिवो वलि आर्य ए, श्रमणोपासक होय ।
अति विशिष्ट गुरु देव नो, स्वीकृत प्रवचन सोय ।।

२२. नहिं कल्पै छै जेहनै, ए आगल कहिवाय ।
कर्म तणा हेतू पनर, कर्मादानज ताय ।।

२३. ते पोतै करिवा वलि, करायवा अन्य पाय ।
करता प्रति अनुमोदवा, नहि कल्पै अधिकाय ।।

२४ *ईंट-लीहालादि अग्नि आरभ करि, आजीवका करि विणज व्यापार ।
सोनार लोहार ठठारा भठारा, भडभूंजादिक कर्म अगार ।
अंगालकर्म कहीजै तेहनै ।।

२५. आजीवका करै वणस्सइ वेची, बेंचै साग पत्र कद मूल ।
फूल तृणादि वेचै वनराई, फल बीजादिक धान तदूल ।
ए वणकर्म कहीजै दूजो ।।

२६. पल्यक पाट वाजोट गाडा रथ, किवाड नै थभादिक जाण ।
एह बणावी बणावी बेंचै, तथा मोल लेइ वेचै पिछाण ।
ते साडीकर्म कहीजै तीजो ।।

२७. भाड़ो करै ऊट वलदादिक नो, हाट हवेली भाड़ै आपै ।
गाडादिक नै भाड़ै देवै, रोकड नाणो व्याजे थापै ।
भाडीकर्म कहीजै चोथो ।।

२८. हल कुदालादिक करि महि फोडै, करै आजीवका नालेर फोड़ी ।
धान पीसै दलै पत्थर फोड़ै, वलि अखरोट सोपारी तोडी ।
ते फोडीकर्म पंचमो कहियै ।।

२९. शंख मोती जवारातादिक बेंचै, कस्तूरी कवडा गजदता ।
हाड चर्म सीग त्रस तणा वलि, तास व्यापार करै मतिभ्रता ।
दतविणज छठो कर्मादान ए ।।

३०. मैंण आल केसर नै कसूंवो, वेचै लाख गुली हरियाल ।
करै व्यापार साजी साबू नो, धाहरियादिक रंग नो न्हाल ।
ते लक्खविणज कहीजै सातमो ।।

*लय : आ अनुकम्पा जिन आज्ञा मे

१८ पलडुल्हसुणकदमूलविवज्जगा अणिल्लछिएहिं अणक्क-भिन्नेहिं गोणेहिं ।

१९ तसपाणविवज्जिएहिं छेत्तेहिं वित्ति कप्पेमाणा विहरति ।

२० एए वि ताव एव इच्छति
एतेऽपि तावद्‌विशिष्टयोग्यताविकला इत्यर्थ
(वृ० प० ३७२)

२१ किमग ! पुण जे इमे समणोवासगा भवति,
विशिष्टतरदेवगुरुप्रवचनसमाश्रितत्वात्तेपाम् ।
(वृ० प० ३७२)

२२ जेसिं नो कप्पति इमाइ पन्नरस कम्मादाणाइ ।

२३ सय करेत्तए वा, कारवेत्तए वा करेंत वा अन्न समणुजाणेत्तए त जहा—

२४. इगालकम्मे
एवमग्निव्यापाररूप यदन्यदपीष्टकापाकादिक कर्म तदङ्गारकर्मोच्यते अङ्गारशब्दस्य तदन्योपलक्षणत्वात् ।
(वृ० प० ३७२)

२५ वणकम्मे
वनकर्म—वनच्छेदनविक्रयरूप, एव बीजपेपणाद्यपि ।
(वृ० प० ३७२)

२६ साडीकम्मे
शकटाना वाहनघटनविक्रयादि । (वृ० प० ३७२)

२७ भाडीकम्मे
भाट्या—भाटकेन कर्म अन्यदीयद्रव्याणा शकटादिभि-र्देशातनयरन गोगृहादिसमर्प्पण वा भाटीकर्म्म ।
(वृ० प० ३७२)

२८ फोडीकम्मे
स्फोटि—भूमे स्फोटन हलकुद्दालादिभि सैव कर्म्म स्फोटीकर्म्म । (वृ० प० ३७२)

२९ दतवाणिज्जे
दताना—हस्तिविपाणानाम् उपलक्षणत्वादेपा चर्म-चामरपूतिकेशादीना वाणिज्य—क्रयविक्रयो दत-वाणिज्य । (वृ० प० ३७२)

३० लक्खवाणिज्जे

३२. तेल घृत दही दूध नें मीठो, मधु मास माखण नें दारू।
करै व्यापार इत्यादिक रस नो, नवमो ते रसविणज प्रकारू।
ए कर्मादान कहीजै नवमों॥

३२. रसवाणिज्ज
मद्यादिरसविक्रय'। (वृ० प० ३७३)

३३. सोमल-खार नें सीधीमोहरो, नीलोथूथो वछनाग विचार।
हरवसी निरवसी विणजै, आफु हरताल प्रमुख व्यापार।
ए विषविणज कहीजै दसमों॥

३३ विसवाणिज्जे

३४. घरटी घाणी चरखी नो फेरवो, अरट फेरवो कह्यो टवा माय।
यंत्र करी तिल इक्षु आदि नें, पीलै ते वृत्ति विषे कहिवाय।
जतपीलण कर्म इग्यारमो ए॥

३४. जतपीलणकम्मे
यन्त्रेण तिलेक्ष्वादीनां यत्पीडनं तदेव कर्म्म यन्त्रपीडन-कर्म्म। (वृ० प० ३७३)

३५. दोपद चोपद नें आंक देवै, नाक वींधै कान फाड़ै ताय।
बलदादिक नें तणी न्हखावै, चाम छेदी करै आजीवकाय।
कर्मनिलछन बारमो कहियै॥

३५ निल्लछणकम्मे
वर्द्धितककरणमेव कर्म निर्लाञ्छनकर्म्म।
(वृ० प० ३७३)

३६. दाम साटै बालै ग्राम नगर पुर, अटव्यादिक नें देवै लगाय।
आजीवका अर्थे दव देवै, बालै वलि मुरड़ादिक ताय।
दवग्गिदावणया कर्म तेरमों॥

३६ दवग्गिदावणया
दवस्य दापनं—दाने प्रयोजकत्वमुपलक्षणत्वाद्दानं च दवाग्निदापनं। (वृ० प० ३७३)

३७. आजीवका अर्थ दाम साटै, सर द्रह तलाव कुओ नें वावी।
तसु जल सोखवै बाहिर काढै, गोधूमादिक मे घालै जल पावी।
सरद्रह तलाव सोसणिया चवदमो॥

३७. सर-दह-तलागपरिसोसणया।

३८. साधु विना सघला पोखीजै, असइपोसणया तसु केहवै।
रोजगार लेइ त्या ऊपर रहवै, खाणो पीणो असंजती नें देवै॥
पनरमों ए कर्मादान कहीजै॥

३८. असतीपोसणया।

३९. दानशाला ऊपर रहे पशु चरावै, हय गय बलद कुर्कट ऊंट मोर।
प्रमुख पशु पखी पोषण ऊपर रहै, पोखी नें करै आजीविका घोर।
असइपोसणिया पनरमो कह्यो ए॥

## सोरठा

४०. 'वृत्ति विषे इम वाय, असइ-पोसणिया तणो।
दासी-पोषण ताय, ते भाड़ो ग्रहिवा अरथ॥

४०. दास्या' पोषणं तद्भाटीग्रहणाय। (वृ० प० ३७३)

४१. वलि कुर्कट मजार, आदि क्षुद्र जे जीव नें।
पोखै ते पिण धार, एहवु अर्थ कियो तिणै॥

४१ अनेन च कुर्क्कुटमार्जारादिक्षुद्रजीवपोषणमप्याक्षिप्तं दृश्यमिति। (वृ० प० ३७३)

४२. आदि माहि अवलोय, हिंसक अन्य पिण आविया।
त्यानै पोख्या सोय, धर्म नही तसु लेख पिण॥

४३. सप्तम अग प्रपन्न, अर्थ वृत्ति माहै इसु।
पोखै दासी जन्न, भाडे आजीविका अरथ॥

४३. 'असतीजनपोषणता' असतीजनस्य—दासीजनस्य पोषणं तद्भाटिकोपजीवनार्थं यत्तत् तथा,
(उपासकदशा वृ० प० ४३)

४४. एव अन्य पिण जंत, कूड़ कर्मकारक जिके।
प्राणी प्रति पोपत, असतीजन-पोषण कह्य॥

४४ एवमत्यदपिक्रूरकर्मकारिण प्राणिन पोपणमसतीजन-पोपणमेवेति। (उपासकदशा वृ० प० ४३)

४५. ए वृत्ति तणै पिण न्याय, कूड़ कर्म माहै सहु।
हिंसक जीव गिणाय, तसु पोख्या नहिं धर्म पुन्य॥

४६. पनरै कर्मादान, आजीविका नै अरथ ए।
किया करायां जान, अनुमोद्या पिण धर्म नही॥

४७. विण आजीविक सोय, चवदै सेव्यां पाप बध।
तिमज पनरमो जोय, हिंसक पोख्यां पाप हुवै'॥
(ज० स०)

४८. *एहवा निग्रंथ तणा छै श्रावक, शुक्ल ते उज्जल मच्छर-रहीत।
कृतज्ञ भला व्रत ना पालक, हित अनुबंधी वली शुद्ध रीत॥

४८. इच्चेते समणोवासगा सुक्का
'सुक्क' त्ति शुक्ला अभिन्नवृत्ता अमत्सरिण कृतज्ञा सदारम्भिणो हितानुबन्धाश्च। (वृ० प० ३७३)

४९. शुक्ल अभिजात ते शुक्ल ही प्रधान, शुद्ध ववहार ना धणी थइ नै।
इक देवलोक में सुरपणै ऊपजै, काल नै अवसर काल करी नैं॥

४९ सुक्काभिजातीया भवित्ता कालमासे काल किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति। (श० ८।२४२)
'शुक्लाभिजात्या' शुक्लप्रधाना। (वृ० प० ३७३)

**सोरठा**

५०. देवलोक अवतार, श्रावक नै पूर्वे कह्यो।
देव प्रतै इज सार, भेद थकी कहियै हिवै॥

५० अनतर देवतयोपपत्तारो भवतीत्युक्तमथ देवानेव भेदत आह— (वृ० प० ३७३)

५१. *देवलोक प्रभु! किते प्रकारै? जिन कहै चउविहा छै देवलोगा।
भवणपति जाव वेमाणिया ए, सेवं भंते! सेव भंते! सुजोगा॥

५१ कतिविहा ण भते! देवलोगा पण्णत्ता?
गोयमा! चउव्विहा देवलोगा पण्णत्ता, त जहा— भवणवासी वाणमतरा, जोइसिया, वेमाणिया। (श० ८।२४३)

५२. अष्टम शतक नैं पंचमुदेशो, एक सौं नै तयालीसमी ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' सपति हरष विशाल॥

५२. सेव भते! सेव भते! त्ति। (श० ८।२४४)

अष्टमशते पचमोद्देशकार्थः॥८।५॥

*लय : आ अनुकम्पा जिन आज्ञा मे

१. पंचमुदेशक नें विषे, श्रावक नों अधिकार।
आख्यो छै तेहिज हिवै, छठै उदेशै सार ॥

*रूड़े विविध प्रकारे रे, प्रश्न गोयम पूछंता ॥ (ध्रुपदं)

२. हे प्रभुजी ! श्रमणोपासक ते, तथारूप श्रमण प्रति धारो।
माहण मूल गुणे करि कहियै, विहु नामे अणगारो ॥
३. एहवा मुनि नें श्रमणोपासक, फासु—जीव-रहीतो।
एपणीक निर्दोष आहार चिउं, प्रतिलाभै धर प्रीतो ॥
४ स्यूं फल होवै ते श्रावक नें ? तव भाखै जिनरायो।
एकंत तेहनें हुवै निर्जरा, पाप कर्म नहि थायो ॥

५. हे प्रभु ! श्रमणोपासक ते तथारूप श्रमण प्रति धारो।
माहण मूल गुणे करि कहियै, विहु नामै अणगारो ॥
६. आहार अफासु सचित्त कह्यो इहां, वलि ते अनेपणीको।
असण पाण खादिम नैं स्वादिम, च्यारूं आहार सधीको ॥
७. प्रतिलाभ्या फल स्यूं श्रावक नें ? तव भाखै जिनरायो।
तास निर्जरा हुवै वहुतर, पाप अल्पतर थायो ॥
८. पाठ मांहै ए वात परूपी, समचै श्री जिनरायो।
जाण अजाण भेद नहि खोल्यो, भिक्षु न्याय वतायो ॥

**सोरठा**

९. कह्यो वृत्ति में ताय, कारण पड़ियां ए अछै।
अन्य आचार्य वाय, अकारणे पिण ते कहै ॥

१०. विरुद्ध विहुं ए अर्थ, छैहड़े वलि आख्यो इहा।
केवलिगम्य तदर्थ, जे फुन तत्व तिकोज छै ॥
११. भिक्षू गुणभंडार, अर्थ कियो छै एहनो।
साभलज्यो सुखकार, ढाल कहूं हिव तास कृत[1] ॥

१ पञ्चम [illegible]
च्यते। (वृ० प० ३७३)

२ समणोवासगस्स ण भंते ! तहारूव समण वा माहण वा।
३. फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेण पडिलाभेमाणस्स।
४. किं कज्जइ ?
गोयमा ! एगतसो से निज्जरा कज्जइ, नत्थि य से पावे कम्मे कज्जइ। (श० ८।२४५)
५. समणोवासगस्स णं भंते ! तहारूवं समणं वा माहण वा।
६. अफासुएण अणेसणिज्जेण असण-पाण-खाइम-साइमेण।
७. पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ?
गोयमा ! वहुतरिया से निज्जरा कज्जइ, अप्पतराए से पावे कम्मे कज्जइ। (श० ८।२४६)

९. इह च विवेचका मन्यन्ते—असंस्तरणादिकारणत एवाप्रासुकादिदाने वहुतरा निर्जरा भवति नाकारणे.... अन्ये त्वाहु.—अकारणेऽपि गुणवत्पात्रायाप्रासुकादिदाने परिणामवशाद्वहुतरा निर्जरा भवत्यल्पतर च पापं कर्मेति। (वृ० प० ३७३)
१०. यत्पुनरिह तत्त्व तत्केवलिगम्यमिति।
(वृ० प० ३७४)

*लय : गरव न कीजे रे सतगुरु सीखड़ली

१. भगवती सूत्र श० ८ सूत्र २४६ के पाठ की व्याख्या कई आचार्यो ने अपने-अपने ढग से की है। इससे वह पाठ विवादास्पद वन गया। कुछ आचार्यो ने साधु को अप्रासुक और अनेपणीय आहार देने मे अल्प पाप, वहुत निर्जरा का सिद्धान्त स्वीकृत किया है, पर उनमें भी कुछ आचार्य इसे आपवादिक मानते है और कुछ

दूहा

'भिष्ट भागल विकल हुआ तके, करै असुध वेहरण री थाप ।
चोर ज्यूं अशुद्ध अर्थ हेरता, थोथा करै अज्ञानी विलाप ॥१॥

किहाइक पाठ छै सूतर मे, तिण रो न्याय मेलै नहिं मूढ ।
साधां नै असुध वेहराया धर्म कहै, एहवी करै अज्ञानी रूढ ॥२॥

साधा नै असुध वेहराविया, तिणमें धर्म नहिं असमात ।
धर्म कहै असुध वहिराविया, तिण रा घट में घोर मिथ्यात ॥३॥

च्यार आहार सचित नै असूझता, श्रावक वेहरावै जाण-जाण ।
तिण मे पाप अलप वहोत निर्जरा, एहवी करै अज्ञानी ताण ॥४॥

ए पाठ भगोती सूतर मझै, शतक आठमा माय ।
तिण रो अर्थ करणवालो पिण डरपियो, तिण केवलिया नै दियो भलाय ॥५॥

५ भगवती ८।२४६

छद्मस्थ अर्थ करै इहा, तिणरो केवली जाणै न्याय ।
कदा कोइ बुधवंत वुध थकी, उनमान थी देवै बताय ॥६॥

जाण अफासु थापियां, वीर वचन विगटाय ।
सूतर सूं पिण मिलै नही, ते प्रतष दीसै अन्याय ॥७॥

साध नै सचित नै असुध दियां, कहै बोहत निरजरा अलप पाप ।
तिण ऊंधी श्रद्धा रो निरणो कहूं, ते सुणजो चुपचाप ॥८॥

*असुध वहरण री थाप करै ते अज्ञानी । (ध्रुपदं)
(असुध वहरण री थाप करो मति कोई)

अफासु आहार नै सचित कह्यो जिण,
अणेसणिज्जेण ते असूझतो थावै ।
ते साधा नै श्रावक जाणे वेहरावै,
तिण रै अल्प पाप नै बोहत निरजरा बतावै ॥९॥

---

* लय : आ अनुकम्पा जिन आज्ञा मे

सामान्य । जयाचार्य ने उक्त दोनो मतव्यो को विरुद्ध वताते हुए टीकाकार के उस अभिमत का उल्लेख किया है, जिसमे वृत्तिकार ने इस प्रसग को केवलिगम्य कहकर छोड दिया है ।

आचार्य भिक्षु ने अपनी कृति 'श्रद्धा निर्णय की चौपई' मे इस सवध मे सागोपाग विवेचन किया है । उन्होने कारण या अकारण—किसी भी स्थिति मे साधु को अप्रासुक और अनेपणीय आहार देने मे अल्प पाप, वहुत निर्जरा के सिद्धान्त का खण्डन कर अपनी प्रज्ञा से भगवती के उक्त पाठ की व्याख्या की है । जयाचार्य ने 'श्रद्धा-निर्णय की चौपई की २१ वी ढाल, जिसकी दोहो सहित ७० गाथाए हे, अविकल रूप से इस प्रसग मे उद्धृत की है । उस ढाल की अलग पहचान के लिए गाथाओ के अक उनसे पहले न देकर वाद मे दिए गए है ।

तिण में जिणमारग रा अजाण अज्ञाना,
अलप पाप नें बोहत निरजरा बतावै ॥१०॥
काचो पाणी सचित नें असूझतो छै,
ते साधा नें श्रावक जाण वेहरावै ।
तिण में जिण मारग रा अजाण अज्ञानी,
अलप पाप नें वोहत निरजरा बतावै ॥११॥
काचा फल दाड़मादिक असूझता छै,
ते साधा नै श्रावक जाण वेहरावै ।
तिण दीधा मे मूढ मिथ्याती जीवडा,
अल्प तो पाप नें वहोत निरजरा बतावै ॥१२॥
सचित पान डोडादिक असूझता छै,
ते साधा नें श्रावक जाण वेहरावै ।
तिण दीधा में मूढ मिथ्याती जीवा,
अल्प तो पाप नें वोहत निरजरा बतावै ॥१३॥
च्यारूं आहार सचित नें असूझता छै,
ते साधा नै श्रावक जाण वेहरावै ।
तिण दीधां में मूढ मिथ्याती जीव,
तिण नें अल्प पाप नें वोहत निरजरा बतावै ॥१४॥
साधा नै आहार सचित नें असुध वेहरावै,
तिण श्रावक रो वारमो व्रत भागो ।
साधु जाणे नें सचित असूझतो लेवै तो,
ओ पिण व्रत भांगे नें होय गयो नागो ॥१५॥
साधा रै आहार सचित नें असुध लेवण रा,
जीवै ज्या लग छै पचखाण ।
रोगादिक पीड़्या साधु रा प्राण जाये तो ही,
सचित नें असूझतो नहिं लेवै जाण ॥१६॥
असल श्रावक ते साधा नें असुध न देवैं,
सुध साधा रा जाता देखै तो ही प्राणो ।
असुध देई नें साधा रो साधपणो न लूटै,
पोता रा लीधा चोखा पालै पचखाणो ॥१७॥
कदा राग रो घाल्यो असुध वेहरावै,
तिण मे सवर निर्जरा रो अस न जाणै ।
व्रत भागो नें पाप लागो छै तिण रो,
प्राछित ले व्रत राखै ठिकाणै ॥१८॥
च्यारूं आहार सचित नें असूझता छै,
ते साधा नै श्रावक जाणे केम वेहरावै ।

शुद्ध साधु तो जाणे नें असुध न वेहरै,
अल्प पाप नें बोहत निर्जरा किम थावै ॥१९॥
अफासु नें अणेसणिज्जे पाठ सूतर मे,
तिण पाठ रो अर्थ सूधो कहणी नावै ।
जथातथ तिण रो अर्थ करै तो,
घणां लोकां में सेखी उड़ जावै ॥२०॥
तिण रा झूठा-झूठा अर्थ अनेक बतावै,
कदे कारण पड़िया रो नाम बतावै ।
वले विविध प्रकारे घुचलाइ घाले नें,
भारीकर्मा भोला लोका नै भरमावै ॥२१॥
ओ तो पाठ भगोती सूतर में छै पिण,
आधा रै अतरंग नही छै पिछाणो ।
च्यारूं आहार सचित नै असूझता दीधा मे,
बोहत निरजरा किहा थी होसी रे अयाणो ॥२२॥
फासु एषणीक साधु नें देवै श्रावक,
ठाम-ठाम बहु सूतरा रै माहि ।
ते सचित असुध जाणे किम देवै श्रावक,
वले बहुत निरजरा जाणै किम त्यांहि ॥२३॥
इण पाठ नें मूंहढे आणै वारूंवार,
त्यारा सचित नै असुध खावा रा परिणाम ।
जो असुध वेहरण रा परिणाम नही छै,
तो यूं ही क्यानै बकसी वेकाम ॥२४॥
च्यारू आहार सचित नै असुध वेहरावै,
तिण रै तो अल्प आउखो बधाय ।
भगोती पाचमे शतक छठै उदेशे,
वलै तीजे ठाणे ठाणाअग माय ॥२५॥
साधु नें आहार सचित नै असुध वेहरावै,
अल्प पाप नै बोहत निरजरा थाय ।
जब तो ठाणाअग नै भगोती सूतर रो,
पाठ नें अर्थ दोनूंई ऊथप जाय ॥२६॥
साधु नें जाण नें आधाकर्मी वेहरावै,
ते तो चारित्र धर्म रो लूटणहार ।
ते पिण नरक निगोद मे भोषा खावै,
उत्कष्टो रुलै तो अनंतो काल ॥२७॥
आधाकर्मी वेहराया छै एकंत पाप,
सचित नै असुध वेहराया ओ पिण पाप ।
च्यारू आहार सचित नें असुध वेहरायां,
तिण मे मूढ करै बोहत निरजरा रो थाप ॥२८॥

२५ कहण्ण भते ! अप्पाउयत्ताए कम्म पकरेंति ?
गोयमा !....तहारूव समण वा ...पडिलाभेत्ता—
(भ० श० ५।१२४)
तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउयत्ताए कम्म पगरेंति, तजहा—
.....तहारूव समण वा माहण वा अफासुएण अणेसणिज्जेण असण-पाण-खाइम-साइमेण पडिलाभेत्ता भवति.....
(ठाण ३।१७)

भूल गया मूढ विना विचारो ॥२६॥
साधा नें असुध आहार तो अभष कह्यो जिण,
निरावलिका भगोती गिनाता माय ।
तो अभष आहार साधा नें श्रावक वेहराया,
अल्प पाप नें वोहत निरजरा किम थाय ?३०॥
कुसीलिया ते हीण-आचारी, विना विचारिया वोलसी वेणो ।
रोगीयादिक गिलाण नें अर्थे, आधाकर्मियादिक जाणे नें लेणो ॥३१॥
ए तो आचारंग रै छठे अधेने,
ते जोयलो चोथा उद्देशा माय ।
तो सचित नें असूझतो साधा नें दीधा,
अल्प पाप नें वोहत निरजरा किम थाय ?३२॥
नही कल्पै ते वस्तु साधु वेहरै तो,
तिण नें तो चोर कह्यो जिनराय ।
कह्यो छै आचारंग पहिले सतखधे,
आठमाधेन पहिला उद्देशा माय ॥३३॥
ठाम-ठाम सूतर मे नषेध्यो, साधा नैं असुध लेणो नहिं काई ।
श्रावक नें पिण असुध न देणो, असुध दिया मे धर्म छै नाहीं ॥३४॥
च्यार आहार सचित नें असूझता छै,
त्या नै श्रावक तो निसक सू जाणै सुध मान ।
आपरी तरफ सूं सुध व्यवहार करै नें,
साधा नै हरष सूं दियो छै दान ॥३५॥
तिण री पाग मे सचित पंखीयादिक न्हाख्यो,
अथवा सचित रजादिक लागी छै आय ।
तिण री श्रावक नें काइं खवर नही छै,
पिण व्यवहार सूं सुध जाण दियो वेहराय ॥३६॥
इण रीते आहार सचित नें असूझतो छैं,
पिण श्रावक तो सुध जाणे नें वेहरावै ।
अल्प पाप ते पाप तणो छै नकारो,
चोखा परिणाम सू वोहत निरजरा थावै ॥३७॥
कै तो अजाणपणै साधु नें वेहरावै,
तिणरी तरफ सूं फासू नें सूझतो जाण ।
इण रीते ए पाठ नो अर्थ हुवै तो,
ते पिण केवलज्ञानी वदै ते प्रमाण ॥३८॥
ऊनो पाणी निसक सू श्रावक जाणे छै,
तिण पाणी नें घर रा वावर दियो ताय ।

३०. निरयावलिया (३।३।२७)
……तत्थ णं जे ते अणेसणिज्जा ते समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया । (भ० श० १८।२१४)
नायाधम्मकहाओ (५।७३)

३१,३२ वसित्ता बंभचेरंसि आणं 'तं णो' त्ति मण्णमाणा । (आयारो प्रथम श्रु० ६।७८)

३३. इहमेगेसिं आयार-गोयरे णो सुणिसंते भवति,……अदुवा अदिन्नमाइयंति । (आयारो ८।३,४)

तिण ठाम में काचो पाणो घर रा घाल्यो,
तिणरी तो श्रावक नें खबर न काय ॥३६॥
तिण पाणी नै श्रावक ऊनो जाणे नैं,
निसंक सूं साधां नै दियो वेहराय।
तिण रै अल्प पाप नै बोहत निरजरा हुवै तो,
ते पिण केवलज्ञानी नै देणो भलाय ॥४०॥
कोरा चिणा पड्या छै भूंगड़ादिक मे,
सचित गोहू पड़्या छै धाणी रै माय।
तिणरी श्रावक नै खबर न कांइ,
सूझता जाणी साधां नै दिया वेहराय ॥४१॥
अचित दाखा मे सचित दाखां पडी छै,
अचित खादम मे सचित खादम छै ताय।
तिणरी श्रावक नै तो खबर न काइ,
ते सूझतो जाण नै दियो वेहराय ॥४२॥
इत्यादिक अनेक सचित वस्त छै,
ते श्रावक निसक सू अचित जाण।
ते पिण आपरो तरफ सूं चोकस करनै,
साधा नै वेहरावै घणो हरष आण ॥४३॥
इण रीते श्रावक रै बोहत निरजरा होवै,
तो पिण केवलज्ञानी जाणै।
म्हैं तो अटकल सू उनमान कर्‌यो छै,
वले सूतर रा अनुसारा प्रमाणै ॥४४॥
आधाकर्मी साधु जाणे नैं भोगवै तो, नरक निगोद मे भीषा खावै।
असुध देवै ते संजम रो लूटणहारो, चिउ गति मे घणो दुख पावै ॥४५॥
आधाकर्मी साधु अजाणे भोगवै तो,
पाप रो अस न लागो लिगार।
तिण दातार नै पूछे निरणो करि लीधो,
संका सहित पिण नही लियो तिणवार ॥४६॥
आधाकर्मी आहार कियो तिण रै घर,
उण रै तो घरे साधु वेहरण गयो नाही।
ते आहार अनेक घरां रैं आतरे,
निरणो करे वेहर्‌यो पातरा माही ॥४७॥
तिण आहार भोगवता सुध साधु रै, पाप रो लेप न लागो काइ।
सूयगडाग इकवीसमे अधेनै, जोय करो निरणो घट माही ॥४८॥
च्यार आहार सचित नै असूझता छै,
तिणरी श्रावक नै खबर नही छै लिगार।
ते सूझता जाणे साधा नैं वेहरावै,
तिणरा छै निरवद जोग व्यापार ॥४६॥

४७,४८ अहाकम्माणि भुजति अण्णमण्णे सकम्मुणा।
उवलित्तेत्ति जाणिज्जा अणुवलित्तेत्ति वा पुणो ॥
एएहिं दोहिं ठाणेहिं ववहारो ण विज्जई।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं अणायार विजाणए ॥
(सूयगडो २।५।८,६)

तिण रा सावज्ज जोग व्यापार ॥५०॥
सावज्ज जोग सूं एकत पाप लागै छै,
निरवद जोग सूं निरजरा नै पुन थाय।
थोड़ो पाप नैं बोहत निरजरा बतावै,
तिण नै पूछीजे किसा जोगा सू हुवै ताय ॥५१॥
सका सहित आहार साधा नैं वेहरायो,
तिण घर रो माल खोय नै पाप लगायो।
तो सचित नैं असूझतो जाण नैं देसी,
तिण रै बोहत निरजरा किण विध थायो ॥५२॥
सुध साधा भेलो तो अभवी रहै छै,
तिण रो साधु देखै छै सुध ववहार।
तिण अभवी नै साध वादै पूजै छै,
तिणरो साधा नै दोष न लागै लिगार ॥५३॥
साधा भेलो रहै चोथा व्रत रो भागल,
ते तो छानो छै तिण रो न पड्यो उघाडो।
तिणनै वादै पूजै आहार पाणी देवै छै,
तिणरो साधा नै दोष न लागो लिगारो ॥५४॥
अभवी भागल नै जाणे माहे राखै,
जव सर्व साधा रो साधुपणो भागै।
ज्यूं सचित नै असूझतो जाणे वेहराया,
तिणरै निश्चैइ एकंत पापज लागै ॥५५॥
सचित नै असूझतो आहार दियां में,
अल्प पाप नै निरजरा सरधै किण लेखै।
दोय वाना सरध्या मिश्र दान थपै छै,
मिश्र उथाप्यो तिण साहमो क्यूं नहिं देखै ॥५६॥
मिश्र वाला री श्रद्धा नै खोटी कहै छै,
पोतै पिण मिश्र थापै छै मूढ़ मिथ्याती।
आपरा बोल्या री आपनै समझ न काइ,
ते तो हीयाफूट गधा रा साथी ॥५७॥
मिश्र थापण वाला री तो सरधा खोटी छै,
ते कहे मिश्र मे मून राखा छा ताय।
मिश्र दान रा सूस न करावा म्है किणनै,
त्यानै पिण त्यारा झूठ री खवर न काय ॥५८॥
साधा नै आहार असुध देवण रो,
ए त्याग करावै छै किण न्याय?

अल्प दोप नैं बोहत निरजरा जाणै छै,
तिण रै निरजरा री कांय देवै अतराय ॥५९॥
वले साधां रै अंतराय आहार री पाडी,
दातार नै अंतराय दीधी विशेषै।
अल्प दोष थकी बोहत निरजरा हुंती थी,
तिणनै सूस करायो छै किण लेखै ॥६०॥
श्रावक साधा नैं असुध जाण नैं वेहरावै,
तिणनै धर्म नै पाप दोनूंइ जाणो।
तिणनैं असूझतो दान देवण रा,
किसै लेखै करावो पचखाणो ॥६१॥
मुख सूं कहै मिश्र दान तणा म्हे,
किणनैइ सूस करावा नाही।
इण मिश्र दान रा सूंस कराया,
थांरी श्रद्धा री वरग वूहा नहिं काई ॥६२॥
मूला गाजर जमीकंद दान देवै छै,
तिणमे धर्म थोडो नै घणो कहै पाप।
तिण दान रा सूस करावो नाही,
मिश्रदान जाणी रहो चुपचाप ॥६३॥
अल्प पाप नै बोहत निरजरा जाणो छो,
तिण दान तणा पचखाण करावो।
वोहत पाप नै निरजरा अल्प जाणो थे,
तिण दान रा सूंस करावो छो किण न्यावो ?६४॥
कोइ कहै यां तो सूतर रो पाठ उथाप्यो,
पिण पोतै उथाप्यो ते खबर न काय।
मोह मतवाला ज्यू बोलै अज्ञानी,
ते साभलजो भवियण चित ल्याय ॥६५॥
च्यारूं आहार सचित नै असूझता छै,
त्यारा श्रावक त्यानै क्य न वेहरावै।
अल्प पाप नै बोहत निरजरा कहै छै,
त्यांनै वेहरावता सका क्यू ल्यावै ॥६६॥
च्यार आहार सचित नै असूझता वेहरै,
जब तो यां पाठ साचो करि थाप्यो।
च्यार आहार सचित नैं असुध न लेवै,
जब पोतैईज थाप्यो नै पोतै उथाप्यो ॥६७॥
च्यार आहार सचित साधा नै वेहरावै,
जब श्रावकाइ पाठ साचो करि थाप्यो।
च्यारूं आहार सचित नै असुध न देवै,
जब त्याइज थाप्यो नै त्याहीज उथाप्यो ॥६८॥

ऊट रै लारे ऊटा बांधी कतारो ॥६९॥
अल्प पाप नैं बोहत निरजरा ऊपर, जोड़ कीधी गगापुर ग्राम मझार ।
समत अठारै वर्ष सतावनै, पोह सुद आठम मगलवार ॥७०॥

**सोरठा**

१२. 'फासु सूझतो जाण, दियै अफासू मुनि भणी ।
सुध व्यवहार पिछाण, अल्प पाप ते पाप नही ॥
१३ अल्प अभाव सुजान, उत्तराज्झयणे धुर झयण ।
अल्प-अडादिक स्थान, आहार करै मुनिवर तिहा ॥

१३ अप्पपाणेऽप्पवीयम्मि, पडिच्छन्नमि सवुडे ।
समय मंजए भुजे, जय अपरिसाडियं ॥
(उत्तर० १।३५)

१४. अल्प वर्षा मे विहार, प्रभु कियो पनरम शतक में ।
अर्थ वृत्ति मे सार, अल्प वर्षा ते नहिं वर्षा ॥

१४. तए ण अह गोयमा ! ····अप्पवुट्ठिकायंसि····
(भ० श० १५।५७)
'अप्पवुट्ठिकायसि' त्ति अल्पशब्दस्याभाववचनत्वाद-विद्यमानवर्ष इत्यर्थ. । (वृ० प० ६६५)

१५. अल्प-अडादि स्थान, आहार परिठवै महामुनि ।
द्वितीय आचारंग जान, प्रथम झयण उदेश धुर ॥

१५. से य आहच्च पडिग्गाहिए सिया· ··अप्पंडे, अप्पपाणे···
(आयारचूला १।२)

१६. आधाकर्मी स्थान, सेव्या महासावज क्रिया ।
सुध स्थानक पहिछाण, सेव्यां अल्पसावज क्रिया ॥
१७. अल्प अभाव कहाय, पिण महासावज पेक्षया ।
अल्पसावज क्रिया थाय, ते सावज थोड़ी नही ॥
१८. द्वितीय आचारंग मांहि, द्वितीय अध्येन विषे अछै ।
द्वितीय उदेशै ताहि, महासावज अल्पसावज क्रिया ॥

१६-१८ इह खलु पाईण वा ···दुपक्खं ते कम्म सेवति, अयमाउसो ! महासावज्जकिरिया वि भवइ ॥
(आयारचूला २।४१)
इह खलु····अप्पसावज्जकिरिया वि भवइ ।
(आयारचूला २।४२)

१९. तिम बहु निर्जर पेक्षाय, पाप अल्प थोड़ो नथी ।
अल्प अभाव कहाय, अल्प क्रिया तिम अल्प अघ ॥
२०. अल्प आतक पिछाण, ठाम ठाम सूत्रे कह्यो ।
अल्प अभावज जाण, आतक ते रोगे करी ॥
२१ इम बहु सूत्रा मांय, अल्प अभाववाची कह्यो ।
इहा पिण तेम जणाय, अल्प पाप ते पाप नही' ॥ (ज० स०)

२२. *हे प्रभुजी! श्रमणोपासक ते, तथारूप असंजती जाणो ।
विरतरहित तिण पाप कर्म ना, न क्रिया छै पचखाणो ॥
२३. फासु अचित्त अफासु सचित्तज, एषणीक निर्दोष ।
तथा अनेषणीक जे कहियै, असूझतो अवलोक ॥
२४. असण पाण यावत स्यूं फल ह्वै ? तव प्रभु भाखै त्याही ।
एकात पाप कर्म ह्वै तेहनै, नथी निर्जरा काई ॥

२२. समणोवासगस्स ण भते ! तहारूव अस्सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्म
२३ फासुएण वा, अफासुएण वा, एसणिज्जेण वा अणेसणिज्जेण वा
२४ असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ?
गोयमा ! एगतसो से पावे कम्मे कज्जइ, नत्थि से काइ निज्जरा कज्जइ । (श० ८।२४७)

*लय : गरव न कीजे रे सतगुरु सीखड़ली

**सोरठा**

२५. वृत्ति विषे सुविचार, प्रथम अर्थ तो सुध कियो ।
असंजती अवधार, अगुणवान ए पात्र है ।।

२६. फासु अफासू आदि, दिया पाप कर्म फलपणें ।
निर्जरा अभाव वादि, आख्यो तेहनो न्याय इम ।।

२७. फासु अफासू दान, दिया असंजम नो इहा ।
उपष्टंभ तुल्य मान, एकंत पाप कह्यो अछै ।।

२८. फुन प्रासुकादि माहि, जतु-घात अभाव करि ।
अप्रासुक में ताहि, जीव-घात सद्भाव करि ।।

२९. पाप तणोज विशेख, तिको अत्र नहि वछियो ।
निर्जर-अभाव पेख, पाप कर्म फुन वछियो ।।

३०. प्रथम अर्थ ए शुद्ध, टीकाकार कियो अछै ।
आगल एम विरुद्ध, विस्तार्यो ते हिव कहूं ।।

३१ मोक्ष अर्थ पहिछान, तेह दान इहा चिंतव्यो ।
वलि अनुकपा दान, उचित दान नहि चिंतव्यो ।।

३२. तेह निषेध्यो नाहिं, विरुद्ध एम विस्तारियो ।
धुर थाप्यो वृत्ति मांहि, तिण कर विरुधज ऊथप्यो ।।

३३. असंजती नै दान, अनुकपा आणी दियै ।
उपष्टंभ ते जान, अछै असजम नो तिको ।।

३४. ते माटै ए दान, कारण कहियै पाप नो ।
वहु सूत्रे जिन वान, संक्षेपे ते हिव कहू ।।

३५. 'आख्यो आद्रकुमार, द्वितीय सूगडांग नै छठै ।
जावै नरक मझार, वे सहस्र द्विज जीमावियां ।।

३६. चवदम उत्तराझयण, द्विज जीमाया तमतमा ।
तसु धुर-गाथा वयण, कुवर विमासी नै वदै ।।

३७. अन्यतीर्थी तसु देव, श्रद्धा भ्रष्ट मुनी भणी ।
असणादिक चिउं भेव, नहि द्यू देवावू नही ।।

३८. सप्तम अंग मझार, आणद ए अभिग्रह लियो ।
'छ छडी आगार', समायक में ते तजै ।।

३९. प्रससै सावज दान, हिंसा कही छ काय नी ।
प्रथम सूगडाग जान, एकादशम अझयण मे ।।

४०. तीजै करण प्रसस, घाती ते षट-काय नो ।
तो दै दान निध्वंस, स्यू कहिवो धुर करण नो ।।

२५ 'अस्सजयअविरये' त्यादिनाऽगुणवान् पात्रविशेष उक्त । (वृ० प० ३७४)

२६ प्रासुकाप्रासुकादेर्दानस्य पापकर्मफलता निर्जराया अभावश्चोक्त (वृ० प० ३७४)

२७ असयमोपष्टम्भस्योभयत्रापि तुल्यत्वात् । (वृ० प० ३७४)

२८ यश्च प्रासुकादौ जीवघाताभावेन अप्रासुकादौ च जीवघातसद्भावेन विशेष । (वृ० प० ३७४)

२९ सोऽत्र न विवक्षित, पापकर्म्मणो निर्जराया अभाव-स्यैव च विवक्षितत्वादिति । (वृ० प० ३७४)

३१ सूत्रत्रयेणापि चानेन मोक्षार्थमेव यद्दान तच्चिन्तित, यत् पुनरनुकम्पादानमौचित्यदान वा तन्न चिन्तितम् ।। (वृ० प० ३७४)

३५ सिणायगाण तु दुवे सहस्से, जे भोयए णितिए माहणाण ।
ते पुण्णखध सुमहज्जणित्ता, भवति देवा इइवेयवाओ ।। (सूयगडो २।६।४४)

३६ वेया अहीया न भवन्ति ताण, भुत्ता दिया निन्ति तम तमेण ।
जाया य पुत्ता न हवन्ति ताण, को णाम ते अणु-मन्नेज्ज एय ।। (उत्तर० १४।१२)

३७,३८ तए ण से आणदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए····नन्नत्थ रायाभिओगेण गणाभिओगेण, वलाभिओगेण, देवयाभिओगेण गुरुनिग्गहेण, वित्तिकतारेण । (उवा० १।४५)

३९-४१ जे य दाण पससति, वधमिच्छति पाणिण ।
जे य ण पडिसेहति, वित्तिच्छेद करेंति ते ।। (सूयगडो १।११।२०)

दंड चोमासी आय, नशीत उदेशे पनरमे ॥

४३. परिभ्रमण संसार, हेतू सावज दान नें ।
जाण तज्यो अणगार, सूयगडांग नवमें कह्यो ॥

४४. वीर तणां गुण सार, कीधा तिण कारण तुझै ।
पीढ फलग पाडिहार, देऊं सेज्या सांथरो ॥
४५. पिण धर्म तप नहिं कोय, इम कहिनें सकडालसुत ।
दिया कुशिष्य नें सोय, सप्तम अंग रै सातमें ॥
४६. मृगालोढो देख, गोतम पूछ्यो वीर नें ।
किं दच्चा सुविशेख, तेहना फल ए भोगवै ॥
४७. चोथै ठाण पडूर, कह्या कुक्षेत्र कुपात्र नें ।
पुन्य रूप अंकूर, त्यां वायो ऊगै नहीं ॥

४८. पापकारिया क्षेत्र ब्राह्मण उत्तराध्ययण में ।
बारम अध्ययण सुनेत्र, हरकेसी मुख जख कह्या ॥
४९. क्रोधी कपटी मान, मुनि मुख जग्य द्विज नें कह्यो ।
ए स्थापै सत्यवान, तो तें पिण सत्य जाणजो ॥
५०. दान धर्म शौच-मूल, चोखी सिन्यासण कह्यो ।
तास केडायत स्थूल, सावज दानें पुन्य कहै ॥
५१. इत्यादिक बहु ठाम, असंजती नें दान रा ।
कह्या कटुक फल स्वाम, न्याय दृष्टि निर्णय करो ॥
५२. कोइ कहै तथारूप, मत-धोरी[1] ए असंजती ।
प्रतिलाभै तद्रूप, गुरु बुद्धि दीधा पाप है ॥
५३. इम करै अर्थ विरुद्ध, पिण ए तो जाणें नहीं ।
श्रमणोपासक शुद्ध, दायक श्री जिनवर कह्यो ॥
५४. असंजती नें तेह, श्रावक गुरु किम जाणस्यै ?
वलि गुरु जाणी जेह, किम दै सचित्त असूझतो ?
५५. तथारूप श्रमण माहन्न, अचित्त सूझतो तसु दिया ।
एकांत निर्जर जन्न, तिण में सहु मुनि आविया ॥
५६. तथारूप असंजत माहि, सर्व असंजत आविया ।
पाप न पचख्या ताहि, एहवा लछ[2] तिहां कह्या ॥

वा (४) देंतं, देंतं वा सातिज्जति ।
(निसीहज्झयणं १५।७६)

४३. उद्देसियं कीयगडं पामिच्चं चेव आहडं ।
पूतिं अणेसणिज्जं च तं विज्जं ! परिजाणिया ॥
(सूयगडो १।६।१४)

४४,४५. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—
(उवासगदसाओ ७।५१)

४६. से णं भंते ! पुरिसे पुव्वभवे के आसि ?......किं वा दच्चा किं वा भोच्चा... (विवागसुयं १।८८)
४७. चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—खेत्तवासी णाममेगे णो अखेत्तवासी, अखेत्तवासी णाममेगे णो खेत्तवासी...
(ठाणं ४।५३७)
क्षेत्रवर्षी—पात्रे दान-श्रुतादीनां निक्षेपकः, अन्यो विपरीतो......(ठाणं वृ० प० २६०)
४८,४९. कोहो य माणो य वहो य जेसिं, मोसं अदत्तं परिग्गहं च ।
ते माहणा जाइविज्जाविहूणा, ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं ॥ (उत्तर० १२।१४)
५०. तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मिहिलाए बहूणं राईसर जाव सत्थवाहपभिईणं पुरओ दाणधम्मं च सोयधम्मं च ...उवदंसेमाणी विहरइ ।
(नायाधम्मकहाओ ८।१४०)

---

१. सम्प्रदाय का प्रमुख २. लक्षण

धर्मद्वेषी दे कोय, त्या पिण पडिलभ पाठ हे ॥
७८. साधु नै दे सोय, त्या पिण पडिलभ पाठ है ।
दै अन्यतीर्थक नै कोय, त्या पिण पडिलभ पाठ है ॥
७९. अन्य असंजति देह, त्या पिण पडिलभ पाठ हे ।
तिण कारण वच एह, गुरु बुद्धि रो कारण नही ॥
८०. केइक निपट अजान, श्रमण कहै साधू भणी ।
माहण श्रावक दान, एकात निर्जर तसु कहे ॥
८१. प्रथम पाठ नो अर्थ, विरुद्ध करै इण रीत सू ।
पिण पडिलाभ तदर्थ, इहा पिण पाठ अछै इसो ॥
८२. पडिलभ गुरु बुद्धि होय, तो माहण श्रावक भणी ।
गुरु बुद्धि किम दे सोय, तसु लेखै पिण ऊथप्यो ॥
८३. पडिलभ गुरु बुद्धि होय, तो माहण श्रावक नही ।
माहण श्रावक सोय, तो पडिलभ गुरु बुद्धि नही ॥
८४. तसु लेखे पिण एम, विरुद्ध परस्पर अर्थ इम ।
परम दृष्टि धर प्रेम, निमल न्याय चित मे धरो ॥
८५. माहण श्रावक अर्थ, पडिलभ नो गुरु बुद्धि कहै ।
ए दोनूंइ तदर्थ, विरुद्ध अर्थ पहिछाणज्यो ॥
८६. श्रावक भणीज ताहि, माहण तसु कहियै नही ।
पडिलभ गुरु बुद्धि नाहि, पडिलभ नाम देवा तणो ॥
८७. ते माटै पहिछाण, श्रावक असजती भणी ।
प्रतिलाभै दै दान, तेहनै एकात पाप ह्वै ॥' (ज०स०)

### दूहा

८८. दान तणा अधिकार थी, दान तणोज विचार ।
कहियै छै ते साभलो, वीर वचन हितकार ॥

८८. दानाधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० ३७४)

८९. *निर्ग्रंथ गृहस्थ घरे गोचरी, पिंड नु पड़वू जाणी ।
मुझ पात्रा मे होइस एहवी, बुद्धि कर गयो पिछाणी ॥

८९ निग्गथ च ण गाहावइकुल पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठ
पिण्डस्य पातो मम पात्रे भवत्वितिबुद्धयेत्यर्थ. (वृ० प० ३७४)

९०. दोय पिंड कोइ गृहस्थ निमन्त्रे, हे आउखावतो !
एक पिंड तो तुम्है जीमजो, एक स्थविरा नै दिंतो ॥

९० केइ दोहिं पिंडेहिं उवनिमतेज्जा—एग आउसो !
अप्पणा भुजाहि, एग थेराणं दलयाहि ।

९१. निर्ग्रंथ ते पिंड प्रति लेइनै, स्थविर तणी पहिछाणी ।
गवेषणा करवी मन साचै, ऊजम अधिको आणी ॥

९१ से य त पडिग्गाहेज्जा, थेरा य से अणुगवेसियव्वा सिया

*लय : गरब न कीजै रे सतगुरु सीखड़ली

९२. गवेषणा करताज कदाचित, जे स्थानक में तासो ।
स्थविर प्रतै देखै छै त्याहिज, देणो पिंड हुलासो ॥
९३. गवेषणा करता निश्चै करि, कदा स्थविर नहिं देखै ।
ते पिंड प्रति पोतै न भोगवै, ए जिन आण अवेखै ॥
९४. स्थविर विना अन्य मुनि नै न दियै, अदत्त प्रसंग कहीजै ।
गृही कह्यो स्थविर प्रतैज दीजियै, अन्य भणी नहिं दीजै ॥

९५. ताम जायवो एकात स्थानक, गृही नावै नवि देखै ।
तेह अचित्त बहुप्रासुक जे, स्थडिल प्रतै अवेखै ॥

**सोरठा**

९६. बहु विध फासू जोय, बहु प्रासुक कहियै तसु ।
अचित्त भूमि अवलोय, अल्पकाल तेहनै थयो ॥
९७. विस्तीरण पहिछाण, वली दूर अवगाढ ते ।
नही बीज त्रस प्राण, बहु प्रासुक कहियै तसु ॥

९८. *दृष्टि करि पडिलेही स्थडिल, जतू पूजी सोयो ।
ते पिंड परिठविवो विध सेती, ए जिन आज्ञा होयो ॥
९९. गृही घर आहार लेवा नै साधु, कियो प्रवेश पिछाणी ।
तीन पिंड कोइ गृहस्थ धामै, बोलै इह विध वाणी ॥
१००. एक पिंड पोतै भोगवजो, दोय स्थविर नै दीजै ।
तेह पिंड ले स्थविर गवेषै, शेष तिमज विध कीजै ॥

१०१. यावत प्रासुक स्थान परिठवै, इम यावत अवलोयो ।
दस पिंड कोइ गृहस्थ निमत्रै, णवरं विशेषज होयो ॥
१०२. एक पिंड पौतै भोगविजै, नव स्थविरा नै दीजै ।
शेप तिमज यावत परिठविवो, आज्ञा ले जीमीजै ॥

१०३. निग्रंथ गृही घर यावत कोई, दोय पात्र धामीजै ।
एक पात्र पोतै भोगवजो, एक स्थविर नै दीजै ॥

१०४. तेह पात्र ग्रही तिमहिज यावत, स्थविर न लाधां तेहो ।
पोतै पात्र विषे नहिं जीमै, अन्य भणी नहि देहो ॥
१०५. शेष जाव तिमहिज परिठवियै, इम यावत पहिछाणी ।
पात्र दसूं तांइ ए कहिवो, पिंड तणी पर जाणी ॥

*लय : गरब न कीजै रे सतगुरु सीखड़ली

९२ जत्थेव अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तत्थेव अणुप्प-दायव्वे सिया ।

९३ नो चेव ण अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा त नो अप्पणा भुजेज्जा

९४ नो अण्णेसिं दावए
अदत्तादानप्रसगात्, गृहपतिना हि पिण्डोऽसौ विवक्षित-स्थविरेभ्य एव दत्तो नान्यस्मै इति ।
(वृ० प० ३७५)

९५. एगते अणावाए अचित्ते बहुफासुए थडिल्ले
'एगते' त्ति जनालोकवर्जिते 'अणावाए' त्ति जनसपात-वर्जिते (वृ० प० ३७५)

९६,९७ बहुधा प्रासुक बहुप्रासुक तत्र, अनेन चाचिरकालकृते विकृते विस्तीर्णे दूरावगाढे त्रसप्राणवीजरहिते चेति सगृहीत द्रष्टव्यमिति । (वृ० प० ३७५)

९८. पडिलेहेत्ता पमज्जित्ता परिट्ठावेयव्वे सिया ।
(श० ८।२४८)

९९ निग्गथ च ण गाहावइकुल पिंडवायपडियाए अणुप्प-विट्ठ केइ तिहिं पिंडेहिं उवनिमतेज्जा—

१०० एग आउसो ! अप्पणा भुजाहि, दो थेराण दलयाहि से य ते पडिग्गाहेज्जा, थेरा य से अणुगवेसियव्वा सेस त चेव

१०१. जाव (स० पा०) परिट्ठावेयव्वा सिया । एव जाव दसहि पिंडेहिं उवनिमतेज्जा नवर—

१०२ एग आउसो ! अप्पणा भुजाहि, नव थेराण दल-याहि ।
सेस त चेव जाव परिट्ठावेयव्वा सिया ।
(श० ८।२४९)

१०३ निग्गथ च ण गाहावइ जाव (स० पा०) केइ दोहिं पडिग्गहेहिं उवनिमतेज्जा—एग आउसो ! अप्पणा पडिभुजाहि, एग थेराणं दलयाहि ।

१०४ से य त पडिग्गाहेज्जा तहेव जाव (स० पा०) त नो अप्पणा परिभुजेज्जा, नो अण्णेसिं दावए ।

१०५ सेस त चेव जाव (स० पा०) परिट्ठावेयव्वे सिया ।
एव जाव दसहिं पडिग्गहेहिं ।

यावत दस सथारा धामै, जाव पारठव प्रात ॥

(श० ८।२५०)

१०८. अक छ्यासी देश ढाल ए, एक सौ चोमालीस ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय' सुख विस्वावीस ॥

## ढाल : १४५

### दूहा

१. निर्ग्रंथ नां प्रस्ताव थी, निर्ग्रंथ तणो विचार ।
पद आराधक पामियै, तेह तणो अधिकार ॥

१. निर्ग्रन्थप्रस्तावादिदमाह— (वृ० प० ३७५)

*साहिब ! परम पियारा हो । परम पियारा,
परम पियारा, परम पियारा हो ।
जगत-प्रभु ! तुझ वचनामृत पान,
लागै परम पियारा हो ॥(ध्रुपद)

२. निर्ग्रन्थ गृहस्थ नैं घरे कोड, गयो आहार नै ताहि ।
अकृत्य-स्थान अकारण सेव्यो, मूल गुणादिक माहि ॥

२. निग्गथेण य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविट्ठेण अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए,
मूलगुणादिप्रतिसेवारूपोऽकार्यविशेष । (वृ० प० ३७६)

३. पश्चाताप ऊपनो पाछै, जद मन एहवी धार ।
इहांईज हिवडा ए स्थानक हूं, आलोवूं सुविचार ॥

३. तस्स णं एवं भवति—इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि
तस्य निर्ग्रन्थस्य सञ्जातानुतापस्य । (वृ० प० ३७६)

### सोरठा

४. आचार्य नें जान, चित्त विषे स्थापन करी ।
आलोविवु गुणखान, एहवी मन में चिंतवी ॥

४. 'आलोचयामि' स्थापनाचार्यनिवेदनेन । (वृ० प० ३७६)

५. आचार्य अवधार, दोय प्रकारे दाखिया ।
गणाचार्य सुविचार, तथा वाचनाचार्य फुन ॥

६. आसातना अधिकार, तुर्य अध्येनै आवश्यक ।
आचार्य कही सार, कह्या वाचनाचार्य फुन ॥

५,६. तेत्तीसाए आसायणाहिं—........आयरियाण आसायणाए........वायणारियस्स आसायणाए........ (आवस्सय ४।८)

७. *पडिकमु मिच्छामिदुक्कडं द्यूं, निंदूं हूं निज साख ।
गर्हां गुरु नी साख करीनैं, इम चित में अभिलाख ॥

७. पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि
'प्रतिक्रमामि' मिथ्यादुष्कृतदानेन, 'निंदामि' स्वसमक्षं स्वस्याकृत्यस्थानस्य वा कुत्सनेन 'गर्हे' गुरुसमक्षं कुत्सनेन । (वृ० प० ३७६)

---

*लय : कांइ न मागा जी

## सोरठा

८. 'गुरु साखे सुखकार, गणपति ते आचार्य गुरु।
फुन दीक्षा-दातार, ते दीक्षा-गुरु दीपता॥
९. इहा गुरु साखे जाण, निंदै दुकृत कर्म नैं।
ते गुरु दिल में आण, ते आश्री ए वचन हे॥
१०. अणसण अवसर जाण, रायप्रश्रेणी मे कह्यो।
प्रदेशी पहिछाण, आख्यो छै इण रीत सूं॥
११. पूर्वे केशी पास, अणुव्रत म्है आदर्या।
सर्व थकी हिव तास, तेह समीपै हिव करूं॥
१२. तिम इहा पिण अवलोय, आपणपै गुरु साख थी।
दुकृत निंदै सोय, ते गुरु याद करी इहा॥' (ज० स०)

१०,११ तए ण से पएसी राया सूरियकंताए देवीए अप्प-दुस्समाणे जेणेव पोसहसाला....पुव्वि पि मए केसिस्स कुमारसमणस्स अतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए ....सव्व असण पाण खाइम साइम चउव्विहं पि आहार जावज्जीवाए पच्चक्खामि।
(रायपसेणइय सू० ७९६)

१३. *विउट्टामि तेहना बंधन नें, तोड़ूं छेदूं ताम।
विसोहेमि कहिता दड लेवू, पक पखालूं आम॥

१३ विउट्टामि विसोहेमि
वित्रोटयामि—तदनुबन्ध छिनद्मि 'विशोधयामि' प्रायश्चित्तपङ्क, प्रायश्चित्ताभ्युपगमेन।
(वृ० प० ३७६)

१४. अणकरिवै करिनें हूं ऊठू, थई अधिक उजमाल।
यथायोग्य जे प्रायश्चित्त, पडिवजु तपसा न्हाल॥
१५. ए गीतार्थपणा थकी ह्वै, अन्य भणी ए नाय।
गीतार्थ नहीं ते पिण मन में, पश्चाताप कराय॥
१६. ते मन चिंतै मिच्छामिदुक्कडं, पोतै देसूं ताय।
तठा पछै हूं स्थविर समीपे, लेसूं आलोयण जाय॥
१७ यावत तपोकर्म पडिवजसूं, इम चिंतव मन मांहि।
स्थविर समीपे आलोयणादिक, करिवा चाल्यो ताहि॥
१८. स्थविरा पासे ते नहिं पूगो, सुणियो मारग माय।
स्थविर निर्वाच थया वायादिके, मुख बोल्यो नहिं जाय॥

१४. अकरणयाए अब्भुट्ठेमि अहारिय पायच्छित्त तवोकम्म पडिवज्जामि।
१५ एतच्च गीतार्थतायामेव भवति नान्यथा
(वृ० प० ३७६)
१६. तओ पच्छा थेराण अतिय आलोएस्सामि
१७. जाव तवोकम्म पडिवज्जिस्सामि।
१८. से य संपट्ठिए असंपत्ते, थेरा य पुव्वामेव अमुहा सिया
अमुखा निर्वाचि स्युर्वातादिदोपात्
(वृ० प० ३७६)

## सोरठा

१९. आलोचनादिक हेत, तसु परिणाम छते अपि।
स्थविरा स्वस्थ सचेत, नवि आलोचन करि सकै॥

१९ ततश्च तस्यालोचनादिपरिणामे सत्यपि नालोचनादि सपद्यते।
(वृ० प० ३७६)

२०. *तिण कारण ए प्रश्न पूछ्यो, आराधक ए स्वाम।
अथवा तास विराधक कहियै? इम पूछे अभिराम॥
२१. जिन कहै मोक्ष मार्ग नो आराधक, नही विराधक जेह।
आलोयण नें सन्मुख माटै, भाव शुद्ध थी एह॥

२०. इत्यत. प्रश्नयति। (वृ० प० ३७६)
से ण भंते! किं आराहए? विराहए?
२१ गोयमा! आराहए, नो विराहए।
'आराहए' त्ति मोक्षमार्गस्याराधक शुद्ध इत्ययं. भावस्य शुद्धत्वात्। (वृ० प० ३७६)

२२. द्वितीय आलावे ते मुनि चाल्यो, पूगो नहिं स्थविरा पाय।
आप निर्वाच थयो वायादिक थी, मुख बोल्यो नहिं जाय॥

२२. से य सपट्ठिए असपत्ते, अप्पणा य पुव्वामेव अमुहे सिया

*लय : काइ न मांगा जो

२४. वलि आलोयणादिक न चाल्या, ... न ... ...।
मार्ग माहि सुण्यो काल कीधो, स्थविर वडा गुण-रास ॥

२५. आराधक प्रभु ! तेह विराधक ? तब भाखै भगवान ।
छै आराधक नही विराधक, तृतीय आलावो जान ॥

२५. से णं भंते ! किं आराहए ? विराहए ?
गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।

२६. वलि आलोयणादिक नैं चाल्यो, पूगो नहिं स्थविरा पास ।
विच मे पोतै काल कियो प्रभु ! ते मुनिवर गुणरास ॥

२६ से य सपट्ठिए असपत्ते, अप्पणा य पुव्वामेव काल करेज्जा ।

२७. आराधक प्रभु ! तेह विराधक ? तब भाखै भगवान ।
छै आराधक नही विराधक, तुर्य आलावो जान ॥

२७ से णं भंते ! किं आराहए ? विराहए ?
गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।

## सोरठा

२८. चाल्यो पहुतो नाय, च्यार आलावा तसु कह्या ।
पहुतो स्थविरा पाय, तसु चिहुं आलावा कहूं ॥

२९ *आलोयणादिक लेवा चाल्यो, पहुंतो स्थविरा पास ।
स्थविर निर्वाच थया वायादिक थी, बोलणी नांवै तास ॥

२९. से य संपट्ठिए संपत्ते, थेरा य अमुहा सिया ।

३०. हे प्रभु ! ते मुनि स्यूं आराधक, तथा विराधक जेह ?
जिन कहै कहियै तास आराधक, नही विराधक तेह ॥

३० से णं भंते ! किं आराहए ? विराहए ?
गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।

३१ आलोयणादिक लेवा चाल्यो, पहुतो स्थविरा पाय ।
आप निर्वाच थया आराधक, नही विराधक ताय ॥

३१ से य संपट्ठिए संपत्ते, अप्पणा य अमुहे सिया । से णं भंते ! किं आराहए ? विराहए ?
गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।

३२ आलोयणादिक लेवा चाल्यो, पहुंतो स्थविरा पाय ।
स्थविर काल कीधा आराधक, मुनी विराधक नांय ॥

३२. से य संपट्ठिए संपत्ते, थेरा य काल करेज्जा । से णं भंते ! किं आराहए ? विराहए ?
गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।

३३. आलोयणादिक लेवा चाल्यो, पहुंतो स्थविरा पाय ।
पोते काल किया आराधक, तेह विराधक नाय ॥

३३ से य संपट्ठिए संपत्ते, अप्पणा य काल करेज्जा । से णं भंते ! किं आराहए ? विराहए ?
गोयमा ! आराहए नो विराहए । (श० ८।२५१)

३४. स्थविर कनैं अणपूगां ना धुर, चिहु आलावै भाव ।
तिमज स्थविर पासे पहुंता ना, ए सहु अठ आलाव ॥

३४ इत्येवं चत्वारि असंप्राप्तसूत्राणि संप्राप्तसूत्राण्यप्येव चत्वार्येव एवमेतान्यष्टौ । (वृ० प० ३७६)

३५. निर्ग्रंथ स्थानक बाहिरे काइ, स्थंडिल भूमी जाय ।
तथा सज्झाय करण नीकलियो, त्यां कोइ दोष लगाय ॥

३५. निग्गंथेण य बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खतेण अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए

३६. दोष निवर्त्ती इम मन चिंतै, पोतै हूं आलोय ।
एम इहां पिण तिमहिज भणवा, आठ आलावा जोय ॥

३६. तस्स णं एवं भवति—इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि—एवं एत्थ वि ते चेव अट्ठ आलावगा भाणियव्वा जाव नो विराहए । (श० ८।२५२)

३७. मुनि ग्रामानुग्राम विचरता, विहार करंता जोय ।
करिवा जोग नही ते स्थानक, दोषण सेव्यो कोय ॥

३७. निग्गंथेण य गामाणुगामं दूइज्जमाणेणं अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए

३८. ते मन चिंतै प्रथम आलोइस, पछै स्थविर रै पाय ।
इहां पिण तिमहिज आठ आलावा, जाव विराधक नाय ॥

३८ तस्स णं एवं भवइ—इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि—एवं एत्थ वि ते चेव अट्ठ आलावगा भाणियव्वा जाव नो विराहए । (श० ८।२५३)

---

*लय : काई न मागा जो

३९. गृहपति-घर पिड-अर्थ साधवी, पैठां दोप लगाय ।
तसु मन इम ह्वै इहा इज पहिला, हूं आलोविस ताय ॥

४०. यावत तप मन सू पडिवजसू, पछै पवित्रणी पाय ।
आलोवणादिक करिसूं यावत, पडिवजसू तप ताय ॥

४१. आलोयणादिक लेवा चाली, पिण पहुंती नहिं ताय ।
पवित्रणी निर्वाच हुई तब, मुख बोल्यो नहिं जाय ॥

४२. तिका साधवी आराधक प्रभु ! है क विराधक तेह ?
श्री जिन भाखै तिका आराधक, नही विराधक जेह ॥

४३. निर्ग्रंथ ना त्रिण गमा कह्या जिम, निर्ग्रंथी ना तीन ।
गोचरी दिशा सज्झाय-भूमिका, वलि विहार ना चीन ॥

४४. जाव आराधक तिका साधवी, नथी विराधक जेह ।
किण अर्थे प्रभुजी ! इम भाख्यो ? हिव जिन उत्तर देह ॥

४५. यथा दृष्टाते कोयक नर इक, मोटो ऊर्णालोम[1] ।
सण ना लोम प्रतै अथवा वलि, कपास ना जे रोम ॥

४६. अथवा तृण ना अग्र प्रतै वलि, बे त्रिण सख प्रकार ।
छेदीनै जे अग्निकाय मे, प्रक्षेपै तिणवार ॥

४७ ते निश्चै करिनै हे गोतम ! छेदवा मांड्यो जान ।
छेद्यो तास कहीजै छै ते, इम पूछै भगवान ॥

४८. प्रक्षेपवा माड्यो तेहनै, प्रक्षेप्यो कहिजै ताय ।
दह्यमान बालवा माड्यूं, बाल्यू दग्ध कहाय ?

४९. गोतम भाखै हता भगवन ! छिद्यमान ते छिण्ण ।
जाव बालिवा मांड्यो तेहनै, बाल्यू कहियै जन्न ॥

**सोरठा**

५०. क्रिया-काल नै जाण, निष्ठा-काल तणै वली ।
अभेद करि पहिछाण, खिण-खिण निष्पत्ति कार्य नी ॥

५१. वर्त्तमान जे काल, क्रिया-काल कहियै तसु ।
निष्ठा-काल निहाल, अद्धा-समाप्ति भणी कह्यु ॥

५२ ए बेहूं नो तेथ, अभेद करि खिण-खिण प्रतै ।
कार्यं निष्पत्ति समेत, छिज्जमाण छिन्न ते भणी ॥

५३. इम मुनि भाव उचित्त, आलोचना परिणत छतै ।
आराधना प्रवृत्त, ते आराधक ईज छै ॥

१ अंगसुत्ताणि मे 'उण्णालोम' के बाद 'गयलोम' पाठ है। जयाचार्य को उपलब्ध प्रति मे शायद यह पाठ नही होगा, इसलिए इसकी जोड नही है।

३९ निग्गथीए य गाहावइकुल पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठाए अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तीसे ण एव भवइ—इहेव ताव अह एयस्स ठाणस्स आलोएमि

४० जाव तवोकम्म पडिवज्जामि, तओ पच्छा पवत्तिणीए अतिय आलोएस्सामि जाव तवोकम्म पडिवज्जिस्सामि ।

४१. सा य सपट्ठिया असपत्ता, पवत्तिणी य अमुहा सिया ।

४२. सा ण भते ! किं आराहिया ? विराहिया ?
गोयमा ! आराहिया, नो विराहिया ।

४३. सा य सपट्ठिया जहा निग्गथस्स तिण्णि गमा भणिया एव निग्गथीए वि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा ।

४४ जाव आराहिया नो विराहिया । (श० ८।२५४)
से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—आराहए ? नो विराहए ?

४५ गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे एग मह उण्णालोम वा, ....सणलोम वा, कप्पासलोम वा

४६ तणसूय वा दुहा वा तिहा वा सखेज्जहा वा छिंदित्ता अगणिकायसि पक्खिवेज्जा
'तणसूय व' त्ति तृणाग्र वा (वृ० प० ३७६)

४७. से नूण गोयमा ! छिज्जमाणे छिण्णे

४८. पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते दज्झमाणे दड्ढे त्ति वत्तव्व सिया ?

४९ हता भगव ! छिज्जमाणे छिण्णे, पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते, दज्झमाणे दड्ढे त्ति वत्तव्व सिया

५० क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदेन प्रतिक्षण कार्यस्य निष्पत्ते (वृ० प० ३७६)

५२. छिद्यमान छिन्नमित्युच्यते (वृ० प० ३७६)

५३. एवमसावालोचनापरिणतौ सत्यामाराधनाप्रवृत्त आराधक एवेति । (वृ० प० ३७६)

५५. तुरा वेमादक थका , ९ , ।ण। ण ।
तेहनी द्रोणि भाजन में घाले, रगवा नें पहिछाण ।।

तन्त्रोद्गत तूरिवेमादिरुत्तीर्णमात्र भाजन ...
त्ति मञ्जिष्ठारागभाजने (वृ० प० ३७६)

५६. ते निश्चै करिनें हे गोतम ! वस्त्र प्रतें जे ताय ।
उखेलवा मांड्यो छै तिण नें, उखेलियो कहिवाय ।।

५६ से नूण गोयमा ! उक्खिप्पमाणे उक्खित्ते ?

५७. प्रक्षेपवा माड्यो भाजन मे, प्रक्षेप्यूं कहिवाय ।
रगवा माड्यू छै वस्त्र नें, रंग्यो कहीजै ताय ?

५७. पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते रज्जमाणे रत्ते त्ति वत्तव्व सिया ?

५८. गोतम भाखै हता भगवं ! जेह वस्त्र नें ताय ।
उखेलवा माड्यो छै तेहनें, उखेल्यो कहिवाय ।।

५८. हंता भगव ! उक्खिप्पमाणे उक्खित्ते

५९. यावत रगवा माड्यो तिण नें, रंग्यो कहीजै स्वाम ।
तिण अर्थे गोतम ! इम भाख्यो, तेह आराधक ताम ।।

५९. जाव (स० पा०) रत्ते त्ति वत्तव्व सिया । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एव वुच्चइ—आराहए, नो विराहए ।
(श० ८।२५५)

६०. अंक छयासी देश ढाल ए, एक सौ पेंतालीस ।
भिक्षू भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय' सुख विस्वावीस ।।

## ढाल : १४६

### दूहा

१. प्रवर आराधक महामुनि, दीपक जिम दीपंत ।
दीप तणोज स्वरूप हिव, ए अधिकार कहंत ।।

१. आराधकश्च दीपवद्दीप्यत इति दीपस्वरूप निरूपयन्नाह—
(वृ० प० ३७६)

२. दीवो बलै ते स्यू प्रभु ! दीवो बलैज ताय ?
लट्ठी शिखा प्रमुख जे, दीवा नों समुदाय ।।

२. पदीवस्स णं भंते ! झियायमाणस्स किं पदीवे झियाइ ?
प्रदीपो दीपयष्ट्यादिसमुदाय । (वृ० प० ३७७)

३. लट्ठी दीप-शिखा बलै, अथवा वाट वलत ।
तेल बलै कै ढाकणो, दीवा तणो जलत ?

३. लट्ठी झियाइ ? वत्ती झियाइ ? तेल्ले झियाइ ? दीवचंपए झियाइ ?
'लट्ठि' त्ति दीपयष्टि 'वत्ति' त्ति दशा 'दीवचंपए' त्ति दीपस्थगनक । (वृ० प० ३७७)

४. अथवा अग्नि बलै अछै ? तव भाखै जिनराय ।
दीवो न जलै जाव तसु, बलै ढाकणो नाय ।।

४. जोती झियाइ ?
गोयमा ! नो पदीवे झियाइ जाव (स० पा०) नो दीवचंपए झियाइ (श० ८।२५६)
'जोइ' त्ति अग्नि. (वृ० प० ३७७)

*लय : कांइ न मागा जो

५. तेऊ—अग्नि बलै अछै, ए निश्चय-नय वाय।
अग्नि तणां प्रस्ताव थी, वलि तेहिज कहिवाय॥

५ जोती झियाइ।
ज्वलनप्रस्तावादिदमाह— (वृ० प० ३७७)

६. गृह आगार ते खरकुटी, हे प्रभु! जलते जेह।
स्यू आगार कुटीगृह बलै? कुड्डा भीति बलेह?

६ अगारस्स ण भंते! झियायमाणस्स किं अगारे झियाइ? कुड्डा झियाइ?
इह चागार—कुटीगृह 'कुड्ड' त्ति भित्तय (वृ० प० ३७७)

७. कै कडणा—त्राटी जलै, वली धारणा ताय?
वलहरण—आधार जे थूणी बलै कहाय?

७. कडणा झियाइ? धारणा झियाइ?
'कडण' त्ति त्रट्टिका 'धारण' त्ति वलहरणाधारभूते स्थूणे। (वृ० प० ३७७)

८ अथवा वलहरणा जलै? धारण ऊपर ताम।
तिरछो लांबो लाकडो, मोभ प्रसिद्धज नाम॥

८ वलहरणे झियाइ?
'वलहरणे' त्ति धारणयोरुपरिवर्त्ति तिर्यगायतकाष्ठ 'मोभ' इति यत्प्रसिद्धम् (वृ० प० ३७७)

९. जलै वंश छजावटी, छित्वर आधारभूत।
कै मल्ला—थांभा बलै? कुड्या अवष्टभ सूत॥

९. वसा झियाइ? मल्ला झियाइ?
'वस' त्ति वशाश्छित्वराधारभूता 'मल्ल' त्ति मल्ला.—कुड्यावष्टम्भनस्थाणव वलहरणा (वृ० प० ३७७)

१०. बाग—मूज वंशादि नां, बधनभूत बलेह।
छित्वर ते वशादिमय, छादन आधार जेह॥

१०. वागा झियाइ? छित्तरा झियाइ?
'वाग' त्ति वल्का—वशादिवन्धनभूता वटादित्वच 'छित्तर' त्ति छित्वराणि—वशादिमयानि छादनाधारभूतानि किलिञ्जानि। (वृ० प० ३७७)

११. छान—दर्भादिमय पटल? कै प्रभु! अग्नि बलेह?
इम गोयम पूछै छते, हिव जिन उत्तर देह॥

११. छाणे झियाइ? जोती झियाइ?
'छाणे' ति छादन दर्भादिमय पटलमिति। (वृ० प० ३७७)

१२. आगार कुटीगृह नहिं जलै, न वलै भीति तिवार।
यावत छान जलै नही, बलै अग्नि अवधार॥

१२. गोयमा! नो अगारे झियाइ, नो कुड्डा झियाइ जाव नो छाणे झियाइ, जोति झियाइ। (श० ८।२५७)

१३. आखी ज्वलन-क्रिया इहा, परतनु-आश्री तेह।
परतनु-आश्रित हिव क्रिया, जीव नारकादेह॥

१३. इत्य च तेजसा ज्वलनक्रिया परशरीराश्रयेति परशरीरमौदारिकाद्याश्रित्य जीवस्य नारकादेश्च क्रिया अभिधातुमाह— (वृ० प० ३७७)

*रे भवियण! जिन-वच महा जयकारो।

स्वाम-वयण री आसथा राख्यां पामै भवदधि पारी। (ध्रुपद)

१४. एक जीव नै हे भगवंत जी! अन्य पृथिव्यादि जाण।
तेहना जे एक ओदारिक आश्रयी, केतली क्रिया पिछाण?

१४ जीवे ण भंते! ओरालियसरीराओ कतिकिरिए?
औदारिकशरीरात्—परकीयमौदारिकशरीरमाश्रित्य कतिक्रियो जीव? (वृ० प० ३७७)

१५. जिन कहै कदा क्रिया त्रिण थावै, कदा क्रिया हुवै च्यार।
कदाचित पच क्रिया होई, कदा अकिरिया उदार॥

१५ गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए सिय पचकिरिए। सियअकिरिए। (श० ८।२५८)

**सोरठा**

१६. एक जीव नै जोय, पृथव्यादिक इक जीव तनु।
ते आश्री अवलोय, कदा तीन क्रिया कही॥

१६. यदैको जीवोऽन्यपृथिव्यादे सम्बन्ध्यौदारिकशरीरमाश्रित्य काय व्यापारयति तदा त्रिक्रिय। (वृ० प० ३७७)

*लय: रे भवियण! सेवो रे साधु सयाणा

१८. पन्नवण सूत्रे पेख, वावीसमा पद नें विप ।
जेह जीव नें देख, क्रिया होवै इह विधे ॥

१९ क्रिया काइया तास, नियमा तसु अधिकरणकी ।
अहिगरणिया जास, नियमा तसु काइया तणी ॥

२०. इत्यादिक सुविचार, माहोमाहि त्रिहु क्रिया ।
नियमा कहि जगतार, ते माटै इक वे न ह्वै ॥

१९, २० जस्स ण जीवस्स काइया किरिया कज्जति तस्स अहिगरणिया किरिया नियमा कज्जति, जस्स अहिगरणिया किरिया कज्जइ तस्स वि काइया किरिया नियमा कज्जइ ? गोयमा ! जस्स ण जीवस्स काइया किरिया कज्जति तस्स अहिगरणी नियमा कज्जति, जस्स अहिगरणी किरिया कज्जति तस्स वि काइया किरिया णियमा कज्जति ।
जस्स ण भते ! जीवस्स काइया किरिया कज्जति तस्स पाओसिया किरिया कज्जति ? जस्स पाओसिया किरिया कज्जति तस्स काइयाकिरिया कज्जति ?
गोयमा ! एव चेव । (पन्नवणा २२।४८,४९)

२१. वली काइया ताय, भजना परितावणिया तणो ।
इमज पाणाइवाय, दोय तणी भजना कही ॥

२१. जस्स ण जीवस्स काइया किरिया कज्जइ तस्स पारियावणिया सिय कज्जइ, सिय नो कज्जइ इत्यादि ।
(वृ० प० ३७८)

२२. ते माटै धुर तीन, तनु व्यापार करी हुवै ।
जो परितापन कीन, तो चउथी परितापकी ॥

२२. ततश्च यदा कायव्यापारद्वारेणाद्यक्रियात्रय एव वर्त्तते न तु परितापयति न चातिपातयति तदा त्रिक्रिय एवेत्यतोऽपि स्यात्त्रिक्रिय इत्युक्त, यदा तु परितापयति तदा चतुष्क्रिय । (वृ० प० ३७८)

२३. जीव काया ह्वै न्यार, तो पाणाइवाय पिण ।
तास पंच सुविचार, तेहनो न्याय वली कहूं ॥

२३ यदा त्वतिपातयति तदा पञ्चक्रिय ।
(वृ० प० ३७८)

२४. परितावयणा जास, नियमा तसु काइया तणी ।
इत्यादिक सुविमास, पाठ पन्नवणा मे कह्या ॥

२४. जस्स पुण पारियावणिया किरिया कज्जइ तस्स काइया नियमा कज्जति । (पन्नवणा २२।५०)

२५. 'अप्रमत्त इक जीव, तसु अन्य ओदारीक इक ।
ते आश्रयी कहीव, पाठ अकिरिया न्याय इम ॥

२६ काइया ना वे भेद, अशुभ जोग अविरति नी ।
वावीसम पद वेद, द्वितीय ठाण उदेश धुर ॥

२६ काइया ण भते ! किरिया कतिविहा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—अणुवरयकाइया य दुप्पउत्तकाइया य । (पन्नवणा २२।२)

२७. अविरति चिउ गुणठाण, पचम अविरति देश थी ।
अशुभ जोग नी जाण, छठा लग आगै नहीं ॥

२८. ते माटै ए वाय, क्रिया काइया धुर तिका ।
अप्रमत्त मे नांय, अशुभ जोग ह्वै जद छठै ॥

२९. जिहां काइया जाण, अहिगरणी पाउसिया तणी ।
नियमा कहि जगभाण, पद वावीसम पन्नवणा ॥

(२९ पन्नवणा २२ । ४८, ४९)

३० अहिगरणिया जाण, वलि पाउसिया छै तिहा ।
काइया नी पहिछाण, तिण ठामे नियमा कही ॥

३१. तिण कारण अवधार, काइयादि पाचूं क्रिया ।
प्रमत्त लगै विचार, पिण अप्रमत्त मांहे नही ।।
३२. मायावत्तिया एक, सप्तम थी दसमा लगै ।
कषाय आश्री पेख, काइयादिक थी ए जुदी ।।
३३. आत्मादि आरभ, अशुभ जोग आश्री कह्या ।
पेखो पाठ अदभ, छट्ठै गुणठाणै प्रगट ।।
३४. अणारभी अप्रमत्त, शुभ जोगा आश्रयी प्रमत्त ।
अणारभी अवितत्थ, धुर शतके उद्देश धुर ।।
३५. अणारभी अप्रमत्त, आत्मादि आरभ रहित ।
तिण कारण ए वत्त, अप्रमत्त मे पच नहि ।।

३४, ३५ तत्थ ण जे ते सजया ते दुविहा, त जहा—पमत्तमजया य अप्पमत्तसजया य ।
तत्थ ण जे ते अप्पमत्तसजया, ते ण नो आयारभा, नो परारभा, नो तदुभयारभा, अणारभा ।
तत्थ णं जे ते पमत्तसजया, ते सुह जोग पडुच्च नो आयारभा, नो परारभा, नो तदुभयारभा, अणारभा ।
(भ० श० १।३४)

३६ लब्धि फोडवै तास, प्रमाद आश्री अधिकरण ।
शतक सोलमे जास, प्रथम उदेशा नै विषे ।।
३७ ते माटै ए न्याय, काइयादि पाचू क्रिया ।
अप्रमत्त मे नांय, ते शुभ जोगी जिन कह्या ।।'
(ज० स०)

३६. से केणट्ठेण जाव अधिकरण पि ?
गोयमा ! पमाय पडुच्च····  (भ० श० १६।२४)

३८. *हे भगवंत ! एक नेरइया नै, पृथिव्यादिक जे जाण ।
एक ओदारिक शरीर आश्रयी, केतली क्रिया पिछाण ?
३९. जिन कहै कदाचित तीन क्रिया, ते फर्र्या भय पाय ।
कदा च्यार परिताप पमाया, जीव हण्या पच थाय ।।
४० हे प्रभु ! जे इक असुरकुमार नै, पृथव्यादिक जे ताय ।
एक ओदारिक शरीर आश्रयी, केतली क्रिया कहाय ?
४१. कदा तीन कदा च्यार कदा पंच जाव वैमानिक एम ।
णवर मनुष्य जीव जिम कहिवो, अक्रिया अप्रमत्त तेम ।।
४२. हे भगवंतजी ! एक जीव नै, अन्य वहु पृथव्यादि जीव ।
तास ओदारिक वहु तनु आश्रयी, केतली क्रिया कहीव ?
४३. जिन कहै कदा तीन वहु फर्र्या, कदा चिहु वहु ताप ।
कदा पच वहु जीव हण्यां थी, कदा अक्रिया स्थाप ।।
४४. हे भगवत ! एक नेरइया नै, अन्य पृथव्यादि वहु जीव ।
तास ओदारिक वहु तनु आश्रयी, केतली क्रिया कहीव ?
४५. कदा तीन कदा च्यार कदा पच, प्रथम दडक जिम जाण ।
एक वचन नों भाख्यो छै तिम, वहु वचने पिण आण ।।
४६. एव जाव वैमानिक कहिवा, णवर एतो विशेख ।
मनुष्य विषे कहिवो जीव तणी पर, अक्रिया अधिक सपेख ।।

३८ नेरइए ण भते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिए ?
३९ गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पचकिरिए ।  (श० ८।२५९)
४० असुरकुमारे ण भते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिए ?
४१ एव चेव । एव जाव वेमाणिए, नवर—मणुस्से जहा जीवे ।  (श० ८।२६०)
४२ जीवे ण भते ! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिए ?
औदारिकशरीरेभ्य इत्येव वहुत्वापेक्षोऽयमपरो दण्डक ।  (वृ० प० ३७८)
४३ गोयमा ! सिय तिकिरिए जाव सिय अकिरिए ।
(श० ८।२६१)
४४ नेरइए ण भते ! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिए ?
४५ एव एसो वि जहा पढमो दडओ तहा भाणियव्वो ।
४६ जाव वेमाणिए, नवर—मणुस्से जहा जीवे ।
(श० ८।२६२)

*लय : रे भवियण सेवो ! रे साधु सयाणा

तास ओदारिक इक तनु आश्रयी, केतली क्रिया कहीव ?

५०. कदा तीन कदा च्यार कदा पच, प्रथम दडक कह्यो ज्यांही ।
तिणहिज रीते ए सहु भणवो, जाव वेमाणिया[1] तांई ॥

५० एव एसो वि जहा पढमो दडओ तहा भाणियव्वो जाव वेमाणिया, नवर—मणुस्सा जहा जीवा । (श० ८/२६४)

५१. हे भगवतजी ! वहु जीवा नैं, अन्य पृथव्यादि जीव ।
तास ओदारिक वहु तनु आश्री, केतली क्रिया कहीव ?

५१. जीवा ण भते ! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिया ?

५२. जिन कहै तीन कदा वहु फश्यां, कदा चिहुं वहु ताप ।
कदा पंच वहु जीव हण्या थी, कदा अकिरिया स्थाप ॥

५२ गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पच-किरिया वि, अकिरिया वि । (श० ८।२६५)

५३ हे भगवत ! वहु नेरइया नै, अन्य पृथव्यादि जीव ।
तास ओदारिक वहु तनु आश्रयी, केतली क्रिया कहीव ?

५३ नेरइया ण भते! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिया ?

५४. त्रिण पिण चिउं पिण पच क्रिया पिण, एव जाव वेमाणिया ।
णवरं मनुष्या जोव तणी पर, अधिक अकिरिया भणिया ॥

५४ गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पच-किरिया वि ।
एव जाव वेमाणिया, नवर—मणुस्सा जहा जीवा । (श० ८।२६६)

५५. हे भगवंतजी ! एक जीव नै, जे अन्य वैक्रिय एक ।
ते आश्री केतली क्रिया छै ? हिव जिन उत्तर देख ॥

५५ जीवे ण भते ! वेउव्वियसरीराओ कतिकिरिए ?
जीव परकीय वैक्रियशरीरमाश्रित्य कतिक्रिय ? (वृ० प० ३७८)

५६. कदा तीन क्रिया भय उपजाया, परितापना थी च्यार ।
कदा अकिरियावंत हुवै छै, अप्रमत्त नै अवधार ॥

५६. गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय अकिरिए । (श० ८।२६७)

**सोरठा**

५७. वेक्रै वाला जीव, मार्‌या न मरै तेह थी ।
प्राणातिपात अतीव, क्रिया न कही पचमी ॥

५७, पञ्चक्रियश्चेह नोच्यते, प्राणातिपातस्य वैक्रियशरी-रिण कर्त्तुमशक्यत्वाद् । (वृ० प० ३७८)

५८. अव्रत आश्री तास, ते नहिं वांछी इम वृत्तौ ।
हणवो कार्य विमास, ते आश्री नहिं पचमी ॥

५८ अविरतिमात्रस्य चेहाविवक्षितत्वाद् । (वृ० प० ३७८)

५९. *हे भगवत एक नेरइयो, एक वेक्रिय तनु साथ ।
ते आश्री केतली क्रियावंत छै ? हिव भाखै जगनाथ ॥

५९. नेरइए ण भते ! वेउव्वियसरीराओ कतिकिरिए ?

६० कदा तीन क्रिया भय उपजाया, कदा चिउ परिताप ।
इम जाव वैमानिक पिण णवरं, मनुष्य जीव जिम स्थाप ॥

६० गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए । एव जाव वेमाणिए, नवरं—मणुस्से जहा जीवे ।

---

*लय : रे भवियण ! सेवो रे साधु सयाणा

१ अगसुत्ताणि भाग २ मे 'वेमाणिया' के वाद 'नवर—मणुस्सा जहा जीवा' पाठ है । जयाचार्य ने इसकी जोड नही की है । सभवत जयाचार्य को उपलब्ध प्रति मे यह पाठ नही होगा ।

६१. इम जिम ओदारिक शरीर नां, च्यार दंडक कह्या तेम ।
वेक्रै शरीर तणा पिण कहिवा, दंडक च्यारूं एम ॥
६२. णवरं पंचमी क्रिया न भणवी, वेक्रै मार्‍या मरै नांहि ।
शेष विस्तार ते तिमहिज कहिवो, च्यारूइं दडक मांहि ॥

६१. एवं जहा ओरालियसरीरेण चत्तारि दंडगा भणिया तहा वेउव्वियसरीरेण वि चत्तारि दडगा भाणियव्वा ।
६२. नवरं—पंचमकिरिया न भण्णइ, सेस त चेव ।

### सोरठा

६३. एक जीव नै जाण, इक वेक्रै तनु आश्रयी ।
एक जीव नै माण, वेक्रै बहु तनु आश्रयी ॥
६४. घणां जीव नै जोय, इक वेक्रै तनु आश्रयी ।
बहु जंतू नैं सोय, बहु वेक्रै तनु आश्रयी ॥
६५. नारकादिक चउवीस, इक-इक नां दंडक चिउं ।
कहिवा सर्व जगीस, वारू न्याय विचारियै ॥

६६. *जेम वैक्रिय तिम आहारक पिण, तेजस कार्मण एम ।
एक-एक ना दडक च्यारू, भणवा छै धर प्रेम ॥

६६ एव जहा वेउव्विय तहा आहारग पि, तेयग पि कम्मग पि भाणियव्व—एक्केक्के चत्तारि दडगा भाणियव्वा

### सोरठा

६७. अधोलोक रै माहि, नरक जीव वर्त्तै अछै ।
आहारक शरीर ताहि, मनुष्य लोकवर्त्तीपणै ॥
६८. ते नारक नै जास, आहारक नी क्रिया तणो ।
विषय नही छै तास, स्थान जूजुआ ते भणी ॥
६९. आहारक आश्रयी केम, नारक नै त्रिण चउ क्रिया ?
तेहनो उत्तर एम, न्याय वृत्ति थी सांभलो ॥
७०. नरक पूर्वभव मांय, शरीर वोसिरायो नही ।
तेणे तनु निपजाय, ते परिणाम तज्यो नथी ॥
७१ प्रथम पूर्व जे भाव, प्रज्ञापन नय मत करी ।
शरीर तास कहाव, नरक जीव नो ईज इम ॥
७२. घृत काढ्यो पिण तास, कहियै घृत नो ते घडो ।
वारू न्याय विमास, धुर नैगम नय नै मतै ॥
७३. तिम नारक नो जीव, पूर्व भव नी देह तसु ।
नारक-देह कहीव, घृत-घट नैं न्याये करी ॥
७४. मनुष्य लोक मे तेह, तास हाड प्रमुख करी ।
आहारक तनु फर्शेह, तथा हुवै परितापना ॥
७५ आहारक आश्रयी एम, नारक नै त्रिण चउ क्रिया ।
धुर त्रिहु क्रिया तेम, तै नो अवश्य हुवै तदा ॥
७६. इम इहा अवलोय, अन्य विषय पिण जाणवी ।
तेजस कार्मण दोय, तास न्याय निसुणो हिवै ॥

६७,६८. अथ नारकस्याधोलोकवर्त्तित्वादाहारकशरीरस्य च मनुष्यलोकवर्तित्वेन तत्क्रियाणामविषयत्वात् ।
(वृ० प० ३७८)

६९ कथमाहारकशरीरमाश्रित्य नारक स्यात्त्रिक्रिय स्याच्चतुष्क्रिय इति ? अत्रोच्यते । (वृ० प० ३७८)
७०. यावत् पूर्वशरीरमव्युत्सृष्ट जीवनिर्वर्तितपरिणाम न त्यजति । (वृ० प० ३७८)
७१ तावत्पूर्वभावप्रज्ञापनानयमतेन निर्वर्त्तकजीवस्यैवेति व्यपदिश्यते । (वृ० प० ३७८)
७२,७३ घृतघटन्यायेनेत्यतो नारकपूर्वभवदेहो नारकस्यैव।
(वृ० प० ३७८)

७४ तद्देशेन च मनुष्यलोकवर्त्तिनाऽस्थ्यादिरूपेण यदाहारकशरीर स्पृश्यते परिताप्यते वा ।
(वृ० प० ३७८)
७५ तदाहारकदेहान्नारकस्त्रिक्रियश्चतुष्क्रियो वा भवति, कायिकीभावे इतरयोरवश्यभावात् परितापनिकीभावे चाद्यत्रयस्यावश्यभावादिति । (वृ० प० ३७८)
७६. एवमिहान्यदपि विषयमवगन्तव्यम् ।
(वृ० प० ३७८)

*लय : रे भवियण सेवो रे साधु सयाणा

४९. हे भगवत ! बहु नेरइया नें, अन्य पृथव्यादि जीव ।
तास ओदारिक इक तनु आश्रयी, केतली क्रिया कहीव ?

४९ नेरइया ण भंते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिया ?

५०. कदा तीन कदा च्यार कदा पंच, प्रथम दडक कह्यो ज्याही ।
तिणहिज रीते ए सहु भणवो, जाव वेमाणिया[1] ताई ॥

५०. एवं एसो वि जहा पढमो दंडओ तहा भाणियव्वो जाव वेमाणिया, नवर—मणुस्सा जहा जीवा ।
(श० ८/२६४)

५१. हे भगवतजी ! बहु जीवा नें, अन्य पृथव्यादि जीव ।
तास ओदारिक बहु तनु आश्री, केतली क्रिया कहीव ?

५१. जीवा ण भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिया ?

५२. जिन कहै तीन कदा बहु फर्श्यां, कदा चिहुं बहु ताप ।
कदा पच बहु जीव हण्या थी, कदा अकिरिया स्थाप ॥

५२. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पच-किरिया वि, अकिरिया वि । (श० ८।२६५)

५३ हे भगवत ! बहु नेरइया नें, अन्य पृथव्यादि जीव ।
तास ओदारिक बहु तनु आश्रयी, केतली क्रिया कहीव ?

५३ नेरउया ण भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिया ?

५४. त्रिण पिण चिउं पिण पच क्रिया पिण, एव जाव वेमाणिया ।
णवरं मनुष्या जोव तणी पर, अधिक अकिरिया भणिया ॥

५४ गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पच-किरिया वि ।
एवं जाव वेमाणिया, नवर—मणुस्सा जहा जीवा ।
(श० ८।२६६)

५५. हे भगवंतजी ! एक जीव नें, जे अन्य वैक्रिय एक ।
ते आश्री केतली क्रिया छै ? हिव जिन उत्तर देख ॥

५५ जीवे ण भंते ! वेउव्वियसरीराओ कतिकिरिए ?
जीव परकीय वैक्रियशरीरमाश्रित्य कतिक्रिय ?
(वृ० प० ३७८)

५६. कदा तीन क्रिया भय उपजायां, परितापना थी च्यार ।
कदा अकिरियावंत हुवै छै, अप्रमत्त नें अवधार ॥

५६. गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय अकिरिए । (श० ८।२६७)

## सोरठा

५७. वेक्रै वाला जीव, मार्‌या न मरै तेह थी ।
प्राणातिपात अतीव, क्रिया न कही पंचमी ॥

५७. पञ्चक्रियश्चेह नोच्यते, प्राणातिपातस्य वैक्रियशरी-रिण. कर्त्तुमशक्यत्वाद् । (वृ० प० ३७८)

५८. अव्रत आश्री तास, ते नहिं वांछी इम वृत्तौ ।
हणवो कार्य विमास, ते आश्री नहिं पंचमी ॥

५८ अविरतिमात्रस्य चेहाविवक्षितत्वाद् ।
(वृ० प० ३७८)

५९. *हे भगवत एक नेरइयो, एक वेक्रिय तनु साथ ।
ते आश्री केतली क्रियावत छै ? हिव भाखै जगनाथ ॥

५९ नेरइए ण भंते ! वेउव्वियसरीराओ कतिकिरिए ?

६०. कदा तीन क्रिया भय उपजाया, कदा चिउ परिताप ।
इम जाव वैमानिक पिण णवर, मनुष्य जीव जिम स्थाप ॥

६० गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए । एव जाव वेमाणिए, नवर—मणुस्से जहा जीवे ।

---

*लय : रे भवियण ! सेवो रे साधु सयाणा

१. अगसुत्ताणि भाग २ मे 'वेमाणिया' के बाद 'नवर—मणुस्सा जहा जीवा' पाठ है । जयाचार्य ने इसकी जोड नही की है । सभवत जयाचार्य को उप-लब्ध प्रति मे यह पाठ नही होगा ।

६१. इम जिम ओदारिक शरीर नां, च्यार दंडक कह्या तेम ।
वेक्रै शरीर तणा पिण कहिवा, दंडक च्यारूं एम ।।
६२. णवर पंचमी क्रिया न भणवी, वेक्रै मार्‌या मरै नाहि ।
शेष विस्तार ते तिमहिज कहिवो, च्यारूइं दडक मांहि ।।

**सोरठा**

६३. एक जोव नै जाण, इक वेक्रै तनु आश्रयी ।
एक जीव नै माण, वेक्रै बहु तनु आश्रयी ।।
६४. घणा जीव नै जोय, इक वेक्रै तनु आश्रयी ।
बहु जंतू नै सोय, बहु वेक्रै तनु आश्रयी ।।
६५. नारकादिक चउवीस, इक-इक ना दंडक चिउं ।
कहिवा सर्व जगीस, वारू न्याय विचारियै ।।

६६. *जेम वैक्रिय तिम आहारक पिण, तेजस कार्मण एम ।
एक-एक ना दंडक च्यारूं, भणवा छै धर प्रेम ।।

**सोरठा**

६७. अधोलोक रै माहि, नरक जीव वर्त्तै अछै ।
आहारक शरीर ताहि, मनुष्य लोकवर्त्तीपणै ।।
६८. ते नारक नैं जास, आहारक नी क्रिया तणो ।
विषय नही छै तास, स्थान जूजुआ ते भणी ।।
६९. आहारक आश्रयी केम, नारक नैं त्रिण चउ क्रिया ?
तेहनो उत्तर एम, न्याय वृत्ति थी सांभलो ।।
७०. नरक पूर्वभव मांय, शरीर वोसिरायो नही ।
तेणे तनु निपजाय, ते परिणाम तज्यो नथी ।।
७१ प्रथम पूर्व जे भाव, प्रज्ञापन नय मत करी ।
शरीर तास कहाव, नरक जीव नो ईज इम ।।
७२. घृत काढ्यो पिण तास, कहियै घृत नो ते घड़ो ।
वारू न्याय विमास, धुर नैगम नय नैं मतै ।।
७३. तिम नारक नो जीव, पूर्व भव नी देह तसु ।
नारक-देह कहीव, घृत-घट नैं न्याये करी ।।
७४. मनुष्य लोक मे तेह, तास हाड प्रमुख करी ।
आहारक तनु फर्शेह, तथा हुवै परितापना ।।

७५ आहारक आश्रयी एम, नारक नैं त्रिण चउ क्रिया ।
धुर त्रिहु क्रिया तेम, ते नो अवश्य हुवै तदा ।।

७६. इम इहा अवलोय, अन्य विषय पिण जाणवी ।
तेजस कार्मण दोय, तास न्याय निसुणो हिवै ।।

*लय : रे भवियण सेवो रे साधु सयाणा

६१. एवं जहा ओरालियसरीरेण चत्तारि दडगा भणिया तहा वेउव्वियसरीरेण वि चत्तारि दडगा भाणियव्वा ।
६२. नवर—पंचमकिरिया न भण्णइ, सेस त चेव ।

६६ एव जहा वेउव्विय तहा आहारग पि, तेयग पि कम्मग पि भाणियव्व—एक्केक्के चत्तारि दडगा भाणियव्वा

६७,६८. अथ नारकस्याधोलोकवर्त्तित्वादाहारकशरीरस्य च मनुष्यलोकवर्त्तित्वेन तत्क्रियाणामविषयत्वात् ।
(वृ० प० ३७८)

६९ कथमाहारकशरीरमाश्रित्य नारक स्यात्त्रिक्रिय स्याच्चतुष्क्रिय इति ? अत्रोच्यते । (वृ० प० ३७८)
७०. यावत् पूर्वशरीरमव्युत्सृष्ट जीवनिर्वर्तितपरिणाम न त्यजति । (वृ० प० ३७८)
७१ तावत्पूर्वभावप्रज्ञापनानयमतेन निर्वर्त्तकजीवस्यैवेति व्यपदिश्यते । (वृ० प० ३७८)
७२,७३ घृतघटन्यायेनेत्यतो नारकपूर्वभवदेहो नारकस्यैव । (वृ० प० ३७८)

७४ तद्देशेन च मनुष्यलोकवर्त्तिनाऽस्थ्यादिरूपेण यदाहारकशरीर स्पृश्यते परिताप्यते वा ।
(वृ० प० ३७८)
७५ तदाहारकदेहान्नारकस्त्रिक्रियश्चतुष्क्रियो वा भवति, कायिकीभावे इतरयोरवश्यभावात् परितापनिकीभावे चाद्यत्रयस्यावश्यभावादिति । (वृ० प० ३७८)
७६. एवमिहान्यदपि विपयमवगन्तव्यम् ।
(वृ० प० ३७८)

८०. *जाव प्रभु ! बहु वैमानिक नैं, बहु कार्मण शरीर ।
ते आश्री केतली क्रिया छै? हिव जिन उत्तर हीर ॥

८१. तीन क्रिया पिण होवे तेहनें, च्यार क्रिया पिण हुंत ।
जाव शब्द कही चरम प्रश्न ए, सेव भंते ! सेव भंत ॥

८२. अष्टम शतक नों छठो उदेशो, इकसौ छयालीसमों ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' मंगलमाल ॥

अष्टमशते षष्ठोद्देशकार्थः ॥८।६॥

([illegible])

८०. जाव [illegible] (श० ८।२५८)
[illegible]

८१. गोयमा! [illegible]
(श० ८।२५९)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श० ८।२६०)

## ढाल १४७

### दूहा

१. छट्ठा उद्देशक विषे, आख्यो क्रिया स्वरूप ।
क्रिया ना प्रस्ताव थी, सप्तमुद्देश तद्रूप ॥

२. प्रद्वेष क्रिया नु हिवं, कारण जे कहिवाय ।
विवाद अन्यतीर्थिक तणु, तसु विस्तार हिव आय ॥

†अंतेवासी वीर ना जी, प्रवर स्थविर भगवंत (ध्रुपद)

३. तिण काले नें तिण समे जी, नगर राजगृह नाम ।
गुणसिल बाग सुहामणो जी, ईसाणकूण रे ठाम ॥

४. जाव पृथ्वी सिलपट्ट तिहां, ते गुणसिल थी हुंत ।
नहिं अति दूर नजीक ना, बहु अन्यतीर्थिका वसंत ॥

५. तिण काले ने तिण समे, भगवंत श्री महावीर ।
निज तीर्थ में धर्म नी, आदि करण गुणधीर ॥

६. यावत गुणसिल बाग में, समवसर्या भगवान ।
जाव परषदा वीर ना, वच सुण गई निज स्थान ॥

१. [illegible]
[illegible] ([illegible])

२. [illegible]
([illegible])

३. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे [illegible] गुणसिलए चेइए—वण्णओ

४. जाव पुढविसिलापट्टओ। तस्स णं गुणसिलस्स चेइयस्स अदूरसामंते बहवे अण्णउत्थिया परिवसंति।

५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आदिगरे

६. जाव समोसढे जाव परिसा पडिगया।
(श० ८।२६१)

*लय : रे भवियण सेवो रे साधु सयाणा
†लय : शिव गतिगामी जोवड़ा जी

७. तिण कालै नै तिण समै, वीर तणां बहु शीस ।
भगवंत स्थविर सुहामणा, जाति-सपण्णा जगीस ॥

८. पितृ पक्ष कुल-संपण्णा, बीजे शतके जेम ।
पचम उद्देशे कह्या, अखिल स्थविर गुण एम ॥

९ जाव आस जीवण तणी, मरण तणो भय नाहि ।
वीर थकी अति दूर ना, अतिहि नजीक न ताहि ॥

१०. जानु उर्द्ध अधो सिरा, ध्यान-कोठा रै मांय ।
संजम तप कर आतमा, भावत विचरै प्राय ॥

११. अन्यतीर्थिका ते तदा, जिहां स्थविर भगवत ।
तिहा आवी स्थविरा प्रतै, इहविध वाण वदंत ॥

१२. हे आर्यो ! तुम्है अछो, त्रिविध त्रिविध करि जाण ।
असंजती नै अविरती, न किया पाप पचखाण ॥

१३. जिम सप्तम शतके कह्यो, द्वितीय उदेशे न्हाल ।
सर्व पाठ भणवा इहां, यावत एकात बाल ॥

१४. ते थेरा तिण अवसरे, महिमागर मतिवत ।
ते अन्यतीर्थिया प्रतै, इहविध वाण वदंत ॥

१५. किण कारण आर्यो ! अम्है, त्रिविध-त्रिविध करि न्हाल ।
असजती नै अविरती, यावत एकात बाल ॥

१६. तिण अवसर अन्यतीर्थिका, स्थविरां प्रति कहै एम ।
अणदीधो ग्रहो छो तुम्है, अणदियो भोगवो तेम ॥

१७. वले अनुमोदो अणदियो, अणदियो ग्रहता आम ।
अदत्त भोगवता छता, अदत्त अनुमोदता ताम ॥

१८. त्रिविध-त्रिविध करिनै तुम्हे, असजती इम न्हाल ।
त्रिविध-त्रिविध वलि अव्रती, यावत एकात बाल ॥

१९. ते थेरा तिण अवसरे, अन्ययुथिका नै कहै एम ।
किण कारण आर्यो ! अम्है, अदत्त ग्रहा धर प्रेम ?

२०. अणदीधो किम भोगवा ? अदत्त अनुमोदा केम ?
अणदीधो ग्रहता अम्है, जाव अनुमोदता तेम ॥

२१. त्रिविध-त्रिविध करिनै अम्हे, असंजती कहिवाय ।
यावत एकात बाल छा ? इम पूछै मुनिराय ॥

२२. तिण अवसर अन्ययूथिया, स्थविर भगवत नै ताय ।
वयण इसी विध बोलता, साभलज्यो चित ल्याय ॥

२३. हे आर्य ! कोई तुम्ह भणी, देवा माड्यो तास ।
अणदीधूं कहियै तसु, काल भिन्न थी विमास ॥

७. तेणं कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अन्तेवासी थेरा भगवतो जाति-सपन्ना

८. कुलसपन्ना जहा बितियसए

९. जाव (स० पा०) जीवियास-मरणभयविप्पमुक्का समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामते ।

१० उड्ढजाणू अहोसिरा झाणकोट्ठोवगया सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणा विहरति । (श० ८।२७२)

११. तए ण ते अण्णउत्थिया जेणेव थेरा भगवतो तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता ते थेरे भगवते एव वयासी—

१२ तुब्भे ण अज्जो तिविह तिविहेण अस्संजय-विरय-पडिहय

१३. जहा सत्तमसए बितिए उद्देसए जाव (स० पा०) एगतबाला या वि भवह । (श० ८।२७३)

१४. तए ण ते थेरा भगवतो ते अण्णउत्थिए एव वयासी—

१५. केण कारणेण अज्जो ! अम्हे तिविह तिविहेण अस्सजय-विरय जाव एगतबाला (स० पा०) या वि भवामो ? (श० ८।२७४)

१६. तए ण ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—
तुब्भे ण अज्जो ! अदिन्न गेण्हह, अदिन्न भुजह,

१७. अदिन्न सातिज्जह । तए ण ते तुब्भे अदिन्न गेण्हमाणा, अदिन्न भुजमाणा, अदिन्न सातिज्जमाणा

१८ तिविह तिविहेण अस्सजय-विरय जाव एगतबाला या वि भवह (श० ८।२७५)

१९ तए ण ते थेरा भगवतो ते अण्णउत्थिए एव वयासी—
केण कारणेण अज्जो ! अम्हे अदिन्न गेण्हामो,

२० अदिन्न भुजामो, अदिन्न सातिज्जामो, जए ण अम्हे अदिन्न गेण्हमाणा जाव (स० पा०) अदिन्न सातिज्जमाणा

२१ तिविह तिविहेण अस्सजय-विरय-पडिहय पच्चक्खाय-पावकम्मा जाव एगतबाला या वि भवामो ? (श० ८।२७६)

२२ तए ण ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—

२३. तुब्भण्ण अज्जो ! दिज्जमाणे अदिन्ने,

२६. दीधो अतीत काल में, तेहिज दीधो ताय।
देवा माड्यु तेहनें, अणदीधो कहिवाय॥

२७. ग्रहिवा लेवा माडियो, अणलीधु कहिवाय।
पात्रे माड्यु घालवा, ते अणघाल्यु थाय॥

२८. देवा माड्यु शब्द ए, दायक नीं अपेक्षाय।
ग्रहिवा माड्यु शब्द ए, ग्राहक अपेक्षा थाय॥

२९. णिसिरिज्जमाणे शब्द ए, पात्र तणी अपेक्षाय।
पड्यु लीनूं नहुंआ, इण कारण कहिवाय॥

३०. हे आर्या ! कोइ तुम भणी, देवा माड्यु जेह।
तुझ पात्रे पडियो नथी, विच में वर्त्ते जेह॥

३१. अंतराल कोइ अपहरे, गाथापति नं ते आहार।
निश्चै करि नहिं तुम भणो, पात्रे न पडियो लिगार॥

३२. अणदीधो इण कारणे, तुम्हे ग्रहो छो तोय।
यावत अणदीधो तुम्हे, अनुमोदो छो जोय॥

३३. अणदीधो ग्रहता तुम्हे, यावत एकांत बाल।
ए वच अन्यतीर्थिक तणो, अति विपरीत निहाल॥

३४. ते थेरा भगवंत तदा, अन्यतीर्थिक ने कहे वाय।
हे आर्यो ! निश्चै अम्हे, अणदीधो ग्रहां नाय॥

३५. अणदीधो नहिं भोगवां, अनुमोदां न अदत्त।
हे आर्यो ! दीधो अम्हे, आहार ग्रहां धर मत॥

३६. वलि म्हे दीधो भोगवां, दीधो अनुमोदंत।
म्हे दीधो ग्रहता थका, दीधो भोगवता संत॥

३७. वलि दीधो अनुमोदता, त्रिविध-त्रिविध करि जाण।
संजती व्रतधारी अम्हे, पाप तणा पचखाण॥

३८. जिम सप्तम शतके कह्यो, जाव पंडित एकंत।
द्वितिय उद्देशा ने विषे, ते इहां पाठ कहंत॥

३९. तिण अवसर अनउत्थिया, स्थविरां प्रति कहे एम।
किण कारण आर्यो ! तुम्हे, दीधो ग्रहो धर प्रेम॥

४०. यावत अनुमोदो दियो, दीधो ग्रहता विचार।
जाव एकांत पंडित तुम्हे, आर्यो छो अधिक उदार॥

४१. ते थेरा भगवंत तदा, अनउत्थिया ने कहे एम।
देवा लागा अम्ह भणी, ते दीधो कह्यो तेम॥

४२. ग्रहिवा माड्यो ते ग्रह्यो, वलि पात्रा रै मांय।
प्रक्षेपवा माड्यो तिको, प्रक्षेप्यो कहिवाय॥

२६. [illegible] (१० [illegible])

२७. [illegible]

२८. [illegible] (१० [illegible])

२९. [illegible] (१० [illegible])

३०. [illegible]

३१. [illegible]

३२. [illegible]

३३. [illegible] ([illegible])

३४. [illegible]

३५. [illegible]

३६. [illegible]

३७. [illegible]

३८. [illegible] ([illegible])

३९. [illegible]

४०. [illegible] ([illegible])

४१. [illegible]

४२. पडिग्गाहिज्जमाणे पडिग्गाहिए, निसिरिज्जमाणे निसिट्ठे।

४३. देवा मांड्यो अम्ह भणी, पात्र विषे पड्यो नांय ।
अतराल विच वर्त्तंतां, अपहरै कोइ ले जाय ॥
४४. आहार तिको छै अम्ह तणो, गाथापति नो नांय ।
इम दीधो ग्रहा छां अम्है, वलि दीधो भोगवाय ॥
४५. वलि अनुमोदा छां दियो, दीधो ग्रहतां ताम ।
दीधो भोगवतां थका, दियो अनुमोदता आम ॥
४६. त्रिविध-त्रिविध करिनै अम्है, सजती विरती सोय ।
जावत एकात छा अम्है, पडित पिण अवलोय ॥
४७ देवा माड्यो अणदियो, तुझ मत लेखे न्हाल ।
त्रिविध-त्रिविध थे असंजती, यावत एकांत बाल ॥

४८. अन्ययूथिया कहै स्थविर नैं, किण कारण म्हैं न्हाल ।
त्रिविध-त्रिविध छां असंजती, यावत एकात बाल ?

४९. ते थेरा भगवत तदा, अन्ययुथिया नै कहै एम ।
तुझ लेखे आर्यो ! तुम्है, अणदीधू ग्रहो तेम ॥
५०. इम अणदीधू भोगवो, अदत्त अनुमोदो न्हाल ।
अणदीधू ग्रहता थकां, यावत एकात बाल ॥

५१. अन्ययूथिका कहै स्थविर नै, किण कारण म्हे न्हाल ।
अणदीधू ग्रहा भोगवां, जाव एकात बाल ॥

५२. ते थेरा भगवत तदा, अणउत्थिया नै कहै वाय ।
हे आर्यो ! अवलोकियै, तुझ श्रद्धा रै न्याय ॥
५३. देवा लागो तुझ भणी, अणदीधो कहो धार ।
तिमज जाव गृहस्थ तणो, नहिं ते थारो आहार ॥
५४ इम तुझ लेखै इज तुम्है, अणदीधू ग्रहो न्हाल ।
तिमहिज पाठ सहु इहां, यावत एकात बाल ॥
५५. अन्ययूथिया कहै स्थविर नै, आर्यो ! तुम्ह वलि भाल ।
त्रिविध-त्रिविध करि असजती, यावत एकात बाल ॥

५६. स्थविर कहै किण कारणे, हे आर्यो ! म्हे न्हाल ।
त्रिविध-त्रिविध करि असजती, यावत एकांत बाल ?

५७. अन्ययुथिया कहै स्थविर नै, हे आर्यो ! तुम्ह देख ।
रीय रीयमाणा छता, गमन करंता विशेख ॥

४३. अम्हण्ण अज्जो ! दिज्जमाण पडिग्गहग असपत्त, एत्थ ण अतरा केइ अवहरेज्जा,
४४ अम्हण्ण त, नो खलु त गाहावइस्स, तए ण अम्हे दिन्न गेण्हामो, दिन्न भुजामो,
४५. दिन्न सातिज्जामो तए ण अम्हे दिन्न गेण्हमाणा, दिन्न भुजमाणा, दिन्न सातिज्जमाणा
४६ तिविहं तिविहेण सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगतपडिया या वि भवामो ।
४७ तुब्भे ण अज्जो ! अप्पणा चेव तिविह तिविहेण अस्सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगतवाला या वि भवह । (श० ८।२८०)
४८ तए ण ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी— केण कारणेण अज्जो ! अम्हे तिविह तिविहेण अस्सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगतवाला या वि भवामो ? (श० ८।२८१)
४९. तए ण ते थेरा भगवतो ते अण्णउत्थिए एव वयासी— तुब्भे ण अज्जो अदिन्न गेण्हह
५० अदिन्न भुजह, अदिन्न सातिज्जह, तए ण तुब्भे अदिन्न गेण्हमाणा जाव एगतवाला या वि भवह । (श० ८।२८२)
५१ तए ण ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी— केण कारणेण अज्जो ! अम्हे अदिन्न गेण्हामो जाव एगतवाला या वि भवामो ? (श०८।२८३)
५२. तए ण ते थेरा भगवतो ते अण्णउत्थिए एव वयासी— तुब्भण्ण अज्जो !
५३. दिज्जमाणे अदिन्ने त चेव जाव गाहावइस्स (स० पा०) ण त, नो खलु त तुब्भ ।
५४ तए ण तुब्भे अदिन्न गेण्हह जाव एगतवाला या वि भवह । (श० ८।२८४)
५५ तए ण ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी— तुब्भे ण अज्जो ! तिविह तिविहेण अस्सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगतवाला या वि भवह । (श० ८।२८५)
५६. तए ण ते थेरा भगवतो ते अण्णउत्थिए एव वयासी— केण कारणेण अज्जो ! अम्हे तिविह तिविहेण जाव एगतवाला या वि भवामो ? (श० ८।२८६)
५७. तए ण ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी— तुब्भे ण अज्जो ! रीय रीयमाणा

'रीय रीयमाण' त्ति 'रीत' गमनं रीयमाणा ' गच्छन्तो गमनं कुर्वाणा इत्यर्थ. (वृ० प० ३८१)

५९. वत्तेह पग करि जीवता, लेसेह भूमि लेसंत।
संघातेह जीव नें, संघात एकत्र करंत॥

६०. संघट्टेह फरसो अछो, परितावेह पीड़ात।
किलामेह ते किलामना, मारणांतिक समुद्घात॥

६१. उद्दवेह उपद्रव करो, जीव काया करी न्यार।
पृथ्वी ऊपर चालता, हणो छो जीव अपार॥

६२. इम पृथ्वी आक्रमता, जाय उपद्रवता भाल।
त्रिविध-त्रिविध ये अजती, यावत एकांत बाल॥

६३. स्थविर भगवंत तिण अवसरे, अणउत्थिया नें कहै वाय।
हे आर्यो! म्हे चालता, पृथ्वी आक्रमा नाय॥

६४. सन्मुख पद हणां नहीं, यावत जीव काया न्यार।
न करां पृथ्वी जंतु नें, एहवो नहीं आगार॥

६५. आर्यो! म्हे मग चालता, काय आश्री सुविचार।
कार्य छै जे काय ना, उच्चारादिक अवधार॥

६६ वली जोग आश्री कह्यो, ग्लानादिक मुनिराय।
वेयावच्च प्रमुख तसु, व्यापार आश्री ताय॥

६७. ऋतं सत्य आश्री वलि, अपकायादिक जीव।
संरक्षण लक्षण तसु, संयम आश्री अतीव॥

६८ देसंदेसेण वयामो, घणी भूमिका ताम।
जे वांछित देशे करी, गमन करां सुविमाम॥

६९. विशेष ईर्य्या-समित थी, छाड़ी सचित्त पृथ्वी देश।
अचित्त पृथ्वी देशे अम्हे, गमन करां सुविशेष॥

७०. वलि प्रदेश प्रदेशे करी, इम सचित्त पृथ्वी-प्रदेश।
ते छाड़ी चाला अम्हे, अचित्त प्रदेशे विशेष॥

७१. देश तिको जे भूमि नों, मोटो खंड विचार।
प्रदेश अति लघु खंड कह्यो, विमल न्याय अवधार॥

५९. [illegible]
[illegible]
[illegible]
(वृ० प० ३८१)

६०. संघट्टेह, [illegible]
[illegible]
[illegible]
(वृ० प० ३८१)

६१. उद्दवेह, [illegible]
[illegible] (वृ० प० ३८१)

६२. अभिहणमाणा [illegible]
[illegible]
[illegible] (भ० [illegible])

६३. [illegible]
[illegible]

६४. अभिहणमाणा जाव उद्दवेमो।

६५. [illegible]
[illegible]
(वृ० प० ३८१)

६६. जोगं च
[illegible]
(वृ० प० ३८१)

६७. रियं वा पडुच्च
[illegible]
[illegible] (वृ० प० ३८१)

६८,६९. देसं देसेणं वयामो,
[illegible]
[illegible]
[illegible] (वृ० प० ३८१)

७०. पएसं पएसेणं वयामो,

७१. देशः—भूमेर्महत्खण्डं प्रदेशस्तु—लघुतरमिति
(वृ० प० ३८१)

७२ देश प्रतै देशे करी म्है, गमन करता जाण।
प्रदेश प्रति प्रदेशे करी, चालंता सुविहाण।।

७२ तेण अम्हे देस देसेण वयमाणा, पदेस पदेसेण वयमाणा

७३ पृथ्वी ना जतु प्रतै, नही आक्रमा ताहि।
पगा करी म्है नही हणा, जाव उपद्रव द्या नाहि।।

७३. नो पुढविं पेच्चेमो अभिहणामो जाव उद्द्वेमो

७४ पृथ्वी अणआक्रमता, पगां न हणता जाव।
उपद्रव अणदेता थका, नही हणवा रा भाव।।

७४, तए ण अम्हे पुढविं अपेच्चेमाणा अणभिहणमाणा जाव अणोद्द्वेमाणा

७५. वलि एहनै हणवा तणो, नही आगार अत्यंत।
त्रिविध त्रिविध करिनै अम्है, जाव पंडित एकंत।।

७५ तिविह तिविहेण सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगतपडिया या वि भवामो

## सोरठा

७६. जयणा गुण जोगेण, अम्ह जिम तुम्ह नहिं चालता।
एहवा अभिप्रायेण, स्थविर कहै अन्ययुथिक प्रति।।

७७ पृथ्वी आक्रम आदि, असजत भावादि गुण।
तेह तुम्हा मे लाधि, इह विध स्थविर कहै हिवै।।

७६,७७ अथोक्तगुणयोगेन नास्माकमिवैषा गमनमस्तीत्यभिप्रायत स्थविरा यूयमेव पृथिव्याक्रमणादितोऽमयतत्वादिगुणा इति प्रतिपादनायान्ययूथिकान् प्रत्याहु (वृ० प० ३८१)

७८. *आर्यो ! पोतै इज तुम्है, त्रिविध-त्रिविध करि न्हाल।
असजती नै अविरती, यावत एकात बाल।।

७८. तुब्भे ण अज्जो ! अप्पणा चेव तिविह तिविहेण अस्सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगतवाला या वि भवह। (श० ८।२८८)

७९. तिण अवसर अन्ययूथिया, स्थविर प्रतै भाखंत।
किण अर्थे आर्यो ! अम्है, यावत वाल एकंत ?

७९ तए ण ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—केण कारणेण अज्जो ! अम्हे तिविह तिविहेण जाव एगतवाला या वि भवामो ? (श० ८।२८९)

८०. ते थेरा तव इम कहै, आर्यो ! तुम्ह चालत।
आक्रमो पुढ़वी प्रतै, जाव उपद्रव हणंत।।

८० तए ण ते थेरा भगवतो ते अण्णउत्थिए एव वयासी—तुब्भे ण अज्जो ! रीय रीयमाणा पुढविं पेच्चेह जाव उद्द्वेह

८१. इम पुढ़वी नै आक्रमता, जावत हणता जंत।
त्रिविध-त्रिविध थे असंजती, जावत बाल एकत।।

८१ तए ण तुब्भे पुढविं पेच्चेमाणा जाव उद्द्वेमाणा तिविह तिविहेण जाव एगतवाला या वि भवह। (श० ८।२९०)

८२. तिण अवसर अन्ययूथिया, स्थविरा प्रति कहै वाय।
हे आर्यो ! जे ताहरी, श्रद्धा ए कहिवाय।।

८२. तए ण ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवते एव वयासी—तुब्भण्ण अज्जो !

८३ गम्यमान जाता थका, अणगया कहो छो ताम।
व्यतिक्रमता नै पिण कहो, अव्यतिक्रम्या आम।।

८३ गम्ममाणे अगते, वीतिक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कते

८४. नगर राजगृह पामवा नी इच्छा मारग माहि।
असंपत्ते अणपामिया, एम कहो छो ताहि।।

८४, रायगिह नगर सपाविउकामे असपत्ते। (श० ८।२९१)

८५ स्थविर कहै आर्यो ! अम्है, जाता थका मग मांय।
निश्चै न कहां अणगया, विमल विचारी न्याय।।

८५ तए ण ते थेरा भगवतो ते अण्णउत्थिए एव वयासी—नो खलु अज्जो ! अम्ह गम्ममाणे अगते

८६. वलि व्यतिक्रमता थका, अव्यतिक्रम्या कहा नाय।
इच्छा राजगृह पामवा नी, अणपाम्या न कहाय।।

८६ वीतिक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कते रायगिह नगर सपाविउकामे असपत्ते

८७. हे आर्यो ! गमन करण म्है माड्यो, गमन कियोज कहत।
व्यतिक्रमवा माड्यो तिण नै, व्यतिक्रम्योज वदत।।

८७ अम्हृण्ण अज्जो ! गम्ममाणे गए वीतिक्कमिज्जमाणे वीतिक्कते,

*लय : शिवगतिगामी जीवड़ा रे

१०१. नरकादिक चिउं भव गति, भव नें विषे उपपात ।
सिद्ध गति नें वरजी करी, क्षेत्र गति जिम ख्यात ।।
१०२. नोभव गति द्विविध कही, सिद्ध पुद्गल नी विख्यात ।
गमन मात्र ए गति कही, ते नोभव उपपात ।।
१०३. विहाय ए गति पंचमी, तेहनां सतरै प्रकार ।
फुसमाणे आदे करि, जाव शब्द में धार ।।

१०४ सेवं भते ! सेवं भते ! शतक आठमें सार ।
सखर उदेशो सातमों, आख्या अर्थ उदार ।।
१०५. इकसौ सैतालीसमी, ढाल रसाल निहाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' गल माल ।।

अष्टमशते सप्तमोद्देशकार्थः ।।८।७।।

१०१ या च नारकादीनामेव स्वभवे उपपातरूपा गति सा भवोपपातगति । (वृ० प० ३८२)
१०२ यच्च सिद्धपुद्गलयोर्गमनमात्र सा नोभवोपपातगति । (वृ० प० ३८२)
१०३. विहायगई
विहायोगतिस्तु स्पृशद्गत्यादिकाऽनेकविधेति (वृ० प० ३८२)
१०४ सेव भते ! सेवं भते ! त्ति । (श० ८।२९४)

## ढाल : १४८

### दूहा

१. सप्तमुदेशक स्थविर नां, प्रत्यनीक आख्यात ।
अष्टम गुरवादिक तणां, प्रत्यनीक दुख पात ।।

२. नगर राजगृह नें विषे, यावत गोतम स्वाम ।
भक्ति विनय करि वीर नों, इम बोलै सिर नाम ।।

*श्री वीर जिनेश्वर भाखै वारता ।(ध्रुपद)

३. हे प्रभु ! गुरु आश्री केता कह्या, काइ प्रत्यनीक पहिछाण ?
जिन कहै तीन प्रकार परूपिया, काइ प्रतिकूल एह अयाण ।
४. अर्थदाता आचार्य तेहनों, काइ श्रुतदाय उवझाय ।
स्थविर ते जाति पर्याय श्रुते करि, ए त्रिविध कहियै ताय ।।

### सोरठा

५. साठ वर्ष नों जात, तास कहीजै वय-स्थविर ।
पर्याय स्थविरज ख्यात, चरण लिया वर्ष वीस तसु ।।
६. तृतीय स्थविर श्रुत जाण, ठाण अनैं समवाय अंग ।
तसु धारक पहिछाण, स्थविर त्रिहु ए दाखिया ।।

१. अनन्तरोद्देशके स्थविरान् प्रत्यन्ययूथिकाः प्रत्यनीका उक्ता अष्टमे तु गुर्वादिप्रत्यनीका उच्यन्ते । (वृ० प० ३८२)
२. रायगिहे जाव एवं वयासी—

३. गुरू ण भते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?
गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—
४ आयरियपडिणीए, उवज्झायपडिणीए, थेरपडिणीए । (श० ८।२९५)
तत्राचार्य —अर्थव्याख्याता उपाध्याय —सूत्रदाता स्थविरस्तु जातिश्रुतपर्यायैः । (वृ० प० ३८२)
५,६ तत्र जात्या षष्टिवर्षजात श्रुतस्थविर —समवाय-धर पर्यायस्थविरो—विंशतिवर्षपर्याय । (वृ० प० ३८२)

*लय : श्री वीर जिनेश्वर सुणजो मोरी वीनती

८ 'दशाश्रुत-खध मे श्री जिन आखियो, कांइ आचाय उवज्भाय ।
विंयावच पूजा न करै मान थी, महामोहणी कर्म वंधाय ॥

९. अध्येन सतरमैं हो उत्तराध्येन मे, काइ आचार्य उवज्भाय ।
हेलै निंदै श्रुत विनय दायक भणी, काइ ते पापी साधु कहाय ॥

१० तीजै ठाणै उदेशै तीसरै, कांइ गुरु-भक्ता ऊपर द्वेप ।
राग अप्रीतिवत अभक्त थी, काइ ते अविनीत विशेप ॥

११. दशवैकालिक नवमा अध्येन मे, काइ आचार्य नो जोय ।
प्रतिकूल आसातनाकारी तिको, काइ अवोह-हेतु होय ॥

१२. पंचम ठाणै उदेशै दूसरे, काइ आचार्य उवभाय ।
तेहनों अवर्णवादी अति दुख लहै, कांइ दुर्लभवोधी थाय ॥

१३ आचार्य उवज्भाय नें स्थविर नों, काइ अवर्णवादी एह ।
तेहनें प्रत्यनीक प्रभुजी ! इहा कह्यो, ते नरकादिक दुख लेह ॥'
(ज० स०)

१४. हे प्रभु ! गति आश्री केता कह्या, कांइ प्रत्यनीक पहिछाण ?
जिन कहे तीन प्रकार परूपिया,
काइ गति मनुष्य गत्यादि जाण ॥

१५. इह लोक प्रत्यक्ष नर पर्याय नों, कांइ प्रत्यनीक ए एम ।
प्रतिकूलकारी इंद्रिय अर्थ नो, काइ पचाग्नि तपस्वी जेम ॥

**सोरठा**

१६. 'पंचाग्नि साधंत, अग्नि आरभ ते कर्म-वध ।
अशुभ जोग वर्त्तंत, ते जिण आज्ञा मे नही ॥

१७. पिण रवि तप्त तपत, वलि शीलादिक गुण भला ।
छठ अठमादिक तत, ते करणी थी सुर हुवै ॥

१८. ते माटै सुविमास, काम भोग इह भव तणा ।
प्रत्यनीक है तास, फल परभव अल्प ते भणी ॥' (ज० स०)

१९. *परलोक देवादिक ना सुख तणो, कांइ प्रत्यनीक अवलोय ।
वेश्यादिक काम भोग तत्पर थकी, परलोके सुख नहि होय ॥

२०. दोनूइ लोक तणो प्रत्यनीक ते, काइ चोरादिक कहिवाय ।
इह भव मे पिण वध वधन लहै, कांइ परभव दुरगति पाय ॥

---

८. आयारि[illegible]
पूयए थद्धे, महामोह पकुव्वति । (दशाश्रुत० ९।२५)

९ आयरियउवज्भाएहि, सुय विणय च गाहिए ।
ते चेव खिसई वाले, पावसमणि त्ति वुच्चई ॥
(उ० १७।४)

१० आराध्यतत्समतेतरलक्षण·········
(ठाण वृ० प० १४८)

११ आयरियपाया पुण अप्पसन्ना,
अवोहि आसायण नत्थि मोक्खो ।
(दसवेआलिय ९।१।१०)

१२ पचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभवोधियत्ताए कम्म पकरेति·······
आयरिय-उवज्भायाणं अवण्ण वदमाणे··· ····।
(ठाण ५।१३३)

१४. गति ण भते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?
गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता,
'गतिं' मानुष्यत्वादिका प्रतीत्य । (वृ० प० ३८२)

१५ त जहा—इहलोगपडिणीए
तत्रेहलोकस्य—प्रत्यक्षस्य मानुपत्वलक्षणपर्यायस्य प्रत्यनीक इन्द्रियार्थप्रतिकूलकारित्वात् पञ्चाग्नितपस्विवद् इहलोकप्रत्यनीक । (वृ० प० ३८२)

१९ परलोगपडिणीए
परलोको—जन्मान्तर तत्प्रत्यनीक —इन्द्रियार्थतत्पर. ।
(वृ० प० ३८२)

२० दुहओलोगपडिणीए । (श० ८।२९६)
द्विधालोकप्रत्यनीकश्च चौर्यादिभिरिन्द्रियार्थसाधनपर
(वृ० प० ३८२)

---

*लय : श्री वीर जिनेश्वर सुणजो मोरी वीनती

२१ समूह आश्री प्रभुजी ! केतला, काइ प्रत्यनीक कहिवाय ?
जिन कहै तीन प्रकार परूपिया, कांइ समूह साधु-समुदाय ॥

२२. कुल गण सघ त्रिहु नो जे अरी, कांइ कुल ते गच्छ-समुदाय ।
कुल नां समुदाय भणी जे गण कह्यो,काइ सघ ते गण-समुदाय॥

२१ समूहण्ण भते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?
गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—
'समूह' साधुसमुदाय प्रतीत्य (वृ० प० ३८२)
२२ कुलपडिणीए, गणपडिणीए, सघपडिणीए।
(श० ८।२९७)

**सोरठा**

२३ समूह साधु-समुदाय, एहवो आख्यो वृत्ति मे ।
अवर्णवादी ताय, इत्यादिक प्रतिकूलपणो ॥
२४. कुल चान्द्रादिक जाण, तत्समूह गण आखियो ।
कोटिकादि पहिछाण, गण-समूह सघ वृत्ति मे ॥
२५ कुलादि नो फुन तेथ, लक्षण आख्यु छै अपर ।
सांभलज्यो धर चेत, ते पिण भगवइ वृत्ति में ॥
२६. इक आचार्य नाज, सतति थी जे ऊपनां
तसु कुल कह्यो समाज, ते त्रिणकुल नों एक गण ॥

२७. ज्ञान दर्शन चारित्त, गुणे विभूषित समण नो ।
सहु समुदाय पवित्त, संघ कहीजै तेहनै ॥

२८. 'समूह साधु-समुदाय, कुल गण संघ ए त्रिहुं कह्या।
पिण तीनू रै माय, नहिं छै श्रावक-श्राविका ॥
२९. ठाणाग तीजे ठाण, तुर्य उदेशक नै विषे ।
समूह आश्री जाण, कुल गण सघ ना अरि कह्या ॥
३०. चाद्रादिक संवाद, कुल-समूह नैं गण कह्यु ।
गण ते कोटिक आद, बे त्रिण गणपति नांज शिष्य ॥
३१. घणा आचार्य नांज, सीस भणी संघ आखियो ।
प्रत्यनीक तज लाज, बोलै अवर्णवाद तसु ॥' (ज० स०)

२३ (भ० वृ० प० ३८२)

२४ तत्र कुल—चान्द्रादिक तत्समूहो गण —कोटिकादि-स्तत्समूह सघ (वृ० प० ३८२)
२५. कुलादिलक्षण चेदम्— (वृ० प० ३८२)

२६. एत्थ कुल विन्नेयं एगायरियस्स सतई जा उ ।
तिण्ह कुलाण मिहो पुणसावेक्खाण गणो होइ ॥
(वृ० प० ३८२)
२७ सव्वोवि नाणदसणचरणगुणविहूसियाणसमणाण ।
समुदाओ पुण सघो गणसमुदाओत्ति काऊण ॥
(वृ० प० ३८२)

२९ समूह पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—कुल-पडिणीए, गणपडिणीए, सघपडिणीए ।
(ठाण ३।४९०)

वा०—तथा ठाणाग ठाणे पाच उदेशे एक वृत्ति मे कह्यु ते कहै छै—कुल ते चाद्रादिक साधु-समुदाय विशेप रूप प्रसिद्ध, गण ते कुल नु समुदाय, सघ ते गण नु समुदाय । तथा उववाई नी वृत्ति मे कह्यु—कुल ते गच्छ नु समुदाय, गण ते कुल नु समुदाय, सघ ते गण नु समुदाय । तथा प्रश्नव्याकरण अ० १० वृत्ति मे कह्यु—कुल ते गच्छ नु समुदाय चद्रादिक, गण ते कुल नु समुदाय कोटिकादिक, सघ ते गण नु समुदाय रूप । इम अनेक ठामे कुल गण सघ ए तीन शब्द आवै । तिहा सघ नाम घणा साधा ना समुदाय नै कह्यु, पिण श्रावक नै न कह्यु ।

(ठाण वृ० प० २८९)
(औपपातिक वृ० प० ८१)
(प्रश्नव्याकरण वृ० प० १२६)

३२ *अनुकपा आश्री प्रभुजी ! केतला, प्रत्यनीक जे दीस ?
जिन कहै तीन प्रकार परूपिया, तपस्वी गिलाण सीस ॥

३२ अणुकप पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?
गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, त जहा—तवस्सि-पडिणीए, गिलाणपडिणीए, सेहपडिणीए ।
(श० ८।२९८)

*लय : श्री वीर जिनेश्वर सुणजो मोरी वीनती

३४ न करै तेहनी सार, अन्य पास ू कारव ।
ते प्रत्यनीक विचार, उपष्टंभ न दियै तसु ॥

३५. *हे प्रभु ! श्रुत आश्री केतला, काइ प्रत्यनीक पहिछाण ?
जिन कहै तीन प्रकार परूपिया, काइ सूत्र अर्थ बिहुं जाण ॥

३५. सुयण्ण भंते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?
गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—सुत्त-पडिणीए, अत्थपडिणीए, तदुभयपडिणीए ।
(श० ८।२९९)

**सोरठा**

३६. सूत्र पाठ सुविचार, अर्थ पाठ नों अर्थ ते ।
उभय बिहुं अवधार, ए त्रिहुं में दूषण कहै ॥
३७. पृथव्यादिक षट काय, षट व्रत अहिंसा प्रमुख ।
जुदा कह्या किण न्याय ? छहुं काय धुर व्रत में ॥
३८. फुन प्रमाद नां स्थान, कूर्मादिक जे योनि छै ।
ज्योतिषि-चक्र पिछान, सूत्रे स्यू अर्थे कह्यु ॥
३९. शिव मग साधक ताय, ज्योतिषि चक्ररु योनि नु ।
स्यू प्रयोजने कहाय ? इत्यादिक दूषण कहै ॥

३७-३९ काया वया य ते च्चिय, ते चेव पमाय अप्प-माया य ।
मोक्खाहिगारियाण, जोइस जोणीहिं किं कज्जं ॥
इत्यादि दूषणोद्भावनं (वृ० प० ३८३)

४०. *हे प्रभु ! भाव पडुच्च केता कह्या, काइ प्रत्यनीक प्रस्ताव ?
जिन कहै तीन प्रकार परूपिया, कांइ शुद्ध जीव पर्याय सुभाव ॥
४१. प्रत्यनीक ज्ञान दर्शन चारित्र तणो, कांइ करै परूपणा विपरीत ।
अथवा ज्ञानादिक मे दूषण कहै, काइ बोलै वचन अनीत ॥

४० भावण्ण भंते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?
गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—
४१ नाणपडिणीए, दंसणपडिणीए, चरित्तपडिणीए ।
(श० ८।३००)
भावान् ज्ञानादीन् प्रति प्रत्यनीक तेषा वितथप्ररूपणतो दूषणतो वा (वृ० प० ३८३)

**सोरठा**

४२. प्राकृत भाषा मांहि, मंद-बुद्धि सूतर रच्या ।
अवगुण बोलै ताहि, ज्ञान तणो प्रत्यनीक ते ॥
४३. दान विना स्यू होय, सम्यक्त नैं चारित्र थकी ?
प्रत्यनीक ते जोय, दर्शन चरण तणां तिके ॥

४२. पाययसुत्तनिबद्धं को वा जाणइ पणीय केणेयं ।
(वृ० प० ३८३)
४३. किं वा चरणेणं तु दाणेण विणा उ हवइ त्ति ।
(वृ० प० ३८३)

४४. *आख्यो ए देश अठ्यासी अंक नो,
काइ इक सौ अड़ताली ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, कांइ 'जय-जश' मंगलमाल ॥

*लय : श्री वीर जिनेश्वर सुणजो मोरी वीनती

## ढाल : १४९

### दूहा

१. ते प्रत्यनीकपणां प्रतै, अणकरिवै करि तेह।
उद्यमवत थया तिके, शुद्ध योग्य छै जेह॥

१ एते च प्रत्यनीका अपुन करणेनाभ्युत्थिता शुद्धिमर्हन्ति। (वृ० प० ३८३)

२. ते ह्वै शुद्ध व्यवहार थी, ते माटै व्यवहार।
परूवणा नै काज हिव, कहियै अर्थ उदार॥

२. शुद्धिश्च व्यवहारादिति व्यवहारप्ररूपणायाह— (वृ० प० ३८३)

३. जो व्यवहरण मुमुक्षु नो, प्रवृत्ति-निवृत्ति-रूप।
तेहनों नाम कह्यो इहा, वर व्यवहार अनूप॥

३. व्यवहरण व्यवहारो—मुमुक्षुप्रवृत्तिनिवृत्तिरूप.। (वृ० प० ३८४)

४. तेहनो कारण ज्ञान जे, ते पिण छै व्यवहार।
गोयम गणहर तेहनी, पूछा करै उदार॥

४ इह तु तन्निबन्धनत्वात् ज्ञानविशेपोऽपि व्यवहार। (वृ० प० ३८४)

*श्री जिनराज तणा वच सरध्या, जीव आराधक थावै।
जीव आराधक थावै म्है वारी जाऊं।
जन्म मरण मिट जावै, सम्यक्त दृढ़ चित्त भावै॥
हलुकर्मी चित्त ल्यावै।(ध्रुपदं)

५. हे भगवत ! व्यवहार केतला ? जिन कहै पंच प्रकार।
आगम श्रुत नै आण धारणा, पचम जीत उदारं॥

५. कतिविहे ण भते ! ववहारे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पचविहे ववहारे पण्णत्ते, त जहा—आगमे, सुतं, आणा, धारणा, जीए।

६. केवल मनपज्जव नै अवधिधर, चउद पूर्व दस सार।
नव पूर्वधर ए षट-विध है, धुर आगम व्यवहार॥

६ केवलमन पर्यायावधिपूर्वचतुर्दशकदशकनवकरूप। (वृ० प० ३८४)

७. आचार कल्प ते नशीत जघन्य, तास जाण सुविचारं।
आठ पूर्वधर उत्कृष्ट कहियै, बीजो श्रुत व्यवहारं॥

७. श्रुतं—शेषमाचारप्रकल्पादि। (वृ० प० ३८४)

८. नव दश प्रमुख पूर्व श्रुत मे छै, पिण अर्थ अतीद्रिय जेहो।
तेहनै विषे विशिष्ट ज्ञान नो, हेतुपणे करि एहो॥

८. नवादिपूर्वाणा च श्रुतत्वेऽप्यतीन्द्रियार्थेपु विशिष्टज्ञानहेतुत्वेन। (वृ० प० ३८४)

९. अतिशय सहितपणे करि तेहनै, आगम माहै आण्यो।
केवलवत ए भेद आगम नां, इम वृत्तिकार वखाण्यो॥

९ सातिशयत्वादागमव्यपदेश केवलवदिति। (वृ० प० ३८४)

१०. देशातर जे रह्या गीतार्थ, तेहनै पासे तामो।
जेह अगीतार्थ साधु नै, मूकी नै तिण ठामो॥

११. गूढ अर्थ पद करि दोषण नों, प्रायश्चित पूछावै।
तास कहण थी दियै प्रायश्चित, आज्ञा तृतीय कहावै॥

१०,११. तथाऽज्ञा—यदगीतार्थस्य पुरतो गूढार्थपदैर्देशान्तरस्थगीतार्थनिवेदनायातीचारालोचन इतरस्यापि तथैव शुद्धिदान। (वृ० प० ३८४)

१२. चोथो जे व्यवहार धारणा, गीतारथ वैरागी।
द्रव्यादिक अपेक्षा किण नै, दियो प्रायश्चित सागी॥

१२ धारणा—गीतार्थसविग्नेन द्रव्याद्यपेक्षया यत्रापराधे यथा या विशुद्धि कृता। (वृ० प० ३८४)

१३. ते दडधारी नै कोइ मुनिवर, तिणहिज विध पहिछाणी।
अन्य सत नै प्रायश्चित देवै, तेह धारणा जाणी॥

१३ तामवधार्य यदगुप्तमेवालोचनदानतस्तत्रैव तथैव तामेव प्रयुङ्क्ते इति। (वृ० प० ३८४)

१४ अथवा वैयावच नो कारक, प्रायश्चित नहिं जाणै।
तसु गुण देखी नै आचारज, प्रसन्न हरष अति आणै॥

१४ वैयावृत्यकरादेर्वा गच्छोपग्रहकारिणोऽशेपानुचितस्य। (वृ० प० ३८४)

*लय : पारस देव तुम्हारा दरसण

दोपण सेवणहार तणु ...

१७. द्रव्य क्षेत्र काल भाव सघयण, धीरज हाणि अवधारं ।
तास निर्भ तेहवो दड देवै, तेह जीत व्यवहार ॥

१८. अथवा जे किणहि गच्छ मांहै, कारण विपयज भाव्यु ।
सूत्र थकी अधिको प्रायश्चित, आचार्ये प्रवर्त्ताव्यु ॥

१९. वलतु ते गच्छ माहि परंपर, तेहिज दंड देवाइ ।
ते पिण जीत व्यवहार वखाण्यो, वृत्ती एम कहाइ ॥

१८,१९ यो वा यत्र गच्छे सूत्रातिरिक्त कारणत प्रायश्चित्तव्यवहार प्रवर्त्तितो बहुभिरन्यैश्चानुवर्त्तित इति । (वृ० प० ३८४)

## सोरठा

२०. ठाणांग पचम ठाण, द्वितीय उद्देशक ने विषे ।
पच व्यवहार पिछाण, तास वृत्ति मे इम कह्यु ॥

२०. पचविहे ववहारे पण्णत्ते, त जहा—आगमे, सुते, आणा, धारणा, जीते । (ठाण ५।१२४)

२१. जे बहुश्रुत बहु वार, प्रवर्त्यो वर्ज्यो नथी ।
वर्त्ते वर्त्या जार, कार्य हुवै ए जीत करि ॥

२१ बहुसो बहुस्सुएहिं जो वत्तो नो निवारिओ होइ ।
वत्तणुवत्तपमाणं जीएण कयं हवइ एयं ॥
(ठाण वृ० प० ३०७)

२२. तथा आचार्य शुद्ध, परपराए करि तिको ।
दियै दंड अविरुद्ध, जीत कल्प ए छै वली ॥

२२ ज जस्स उ पच्छित्तं आयरियपरपराए अविरुद्धं ।
जोगा य बहुविहीया एसो खलु जीयकप्पो उ ॥
(ठाण वृ० प० ३०७)

२३. आचरियो सुविचार, सावज्ज रहित किणे किहां ।
अन्य गणपति अनिवार, बहु अणुमत ए आचरित ॥

२४. *केवल अवधि अनें मनपर्यव, प्रत्यक्ष आगम जाणी ।
चउद पूर्व दश नव पूरवधर, परोक्ष आगम माणी ॥

२५. प्रत्यक्ष आगम सरिसो कहियै, परोक्ष आगम सोय ।
चद्रमुखी ते चंद्र जिमो मुख, तिम ए पिण अवलोय ॥

२६. यथा प्रकार करीनें तेहनें, पाचू मे पहिछाण ।
आगम जे व्यवहार हुवै जद, तेहिज स्थापै जाण ॥

२६,२७ जहा से तत्थ आगमे सिया आगमेण ववहारं पट्ठवेज्जा ।

२७. आगम व्यवहारे आगम करि, तास प्रवृत्ति मुचीनं ।
अन्य श्रुतादि चिउ न प्रवर्त्ते, तेहथी ए अतिहीन ॥

२८. रवि प्रकाश थकी नहिं अधिको, दीप तणो सुप्रकाशं ।
रवि थी दीप प्रकाश हीन छै, तिम इहा पिण सुविमासं ॥

२९. जो आगम व्यवहार न लाभै, हुवै श्रुत सुखकार ।
तो श्रुत करि व्यवहार प्रवर्त्ते, तेहिज थापवु सार ॥

२९ णो य से तत्थ आगमे सिया, जहा से तत्थ सुए सिया, सुएण ववहारं पट्ठवेज्जा ।

३०. जो व्यवहार श्रुत नहिं लाभै, हुवै त्या आण उदारं ।
तो आज्ञा करि व्यवहार प्रवर्त्ते, तेहिज स्थापवू सार ॥

३० णो य से तत्थ सुए सिया, जहा से तत्थ आणा सिया, आणाए ववहारं पट्ठवेज्जा ।

३१. जो आज्ञा व्यवहार न लाभै, हुवै धारणा जेह ।
तो व्यवहार धारणा करिनें, प्रवर्त्तवु गुणगेह ॥

३१. णो य से तत्थ आणा सिया, जहा से तत्थ धारणा सिया, धारणाए ववहारं पट्ठवेज्जा ।

---

*लय : पारस देव तुम्हारा दरसण

३२. जो व्यवहार धारणा न हुवै, हुवै जीत सुखकारं।
तो जीत करी व्यवहार प्रवर्त्तै, अतीत वा नवो उदार ॥

३२ णो य से तत्थ धारणा सिया, जहा से तत्थ जीए सिया, जीएण ववहारं पट्ठवेज्जा।

३३. ए पाच प्रकार करिनै, स्थापै ए व्यवहार।
आगम श्रुत आज्ञा नै धारणा, जीत गणिकृत सार ॥

३३ इच्चेएहिं पचहिं ववहार पट्ठवेज्जा, त जहा—आगमेण सुएण, आणाए, धारणाए, जीएण।

**सोरठा**

३४. सामान्य करिकै एह, निगमन पूर्वे आखियो।
जिम-जिम इत्यादेह, विशेष करि निगमन हिवै ॥

३४ 'इच्चेएहिं' इत्यादि निगमन सामान्येन 'जहा जहा से' इत्यादि तु विशेषनिगमनमिति। (वृ० प० ३८५)

३५. *जिम-जिम ते आगम श्रुत आज्ञा, वलि धारणा जीत।
तिम तिम ते व्यवहार प्रतै मुनि, स्थापै अधिक पुनीतं ॥

३५ जहा जहा से आगमे सुए आणा धारणा जीए तहा तहा ववहार पट्ठवेज्जा।

**सोरठा**

३६ ए पाचू करि पेख, प्रवर्त्तै ते पुरुष नै।
प्रश्न द्वार करि देख, फल कहियै ते साभलो ॥

३६ एतैर्व्यवहर्त्तु फल प्रश्नद्वारेणाह— (वृ० प० ३८५)

३७. *अथ हे प्रभु ! आगमवलिया, केवली प्रमुखज सोई।
ए आगम व्यवहारवंत ते, स्यू आखं अवलोई ?

३७ से किमाहु भते ! आगमवलिया समणा निग्गथा ?

३८. ए व्यवहार पचविध ते मुनि, जे जे काले जान।
जहिं जहिं जे जे क्षेत्रे फुन, वलि प्रयोजनै पिछान ॥

३८. इच्चेत पचविह ववहार जदा जदा जहिं जहिं।

**सोरठा**

३९. जे जे काले जोग, प्रयोजनै क्षेत्रे वलि।
जे जे उचित प्रयोग, ए रह्यो शेप वच इम वृत्तो ॥

३९ यदा यदा यस्मिन् यस्मिन् अवसरे यत्र यत्र प्रयोजने वा क्षेत्रे वा यो-य उचितस्त तमिति शेप। (वृ० प० ३८५)

४०. *तदा तदा ते ते काले मुनि, अवसर विपे उदार।
तहिं तहिं ते ते क्षेत्रे फुन, वलि प्रयोजने विचार ॥

४० तदा तदा तहिं तहिं
तदा तदा काले तस्मिन् तस्मिन् प्रयोजनादौ। (वृ० प० ३८५)

**सोरठा**

४१. अद्धा क्षेत्र विषेह, तेह जोग व्यवहार प्रति।
प्रवर्त्तै गुणगेह, ते व्यवहार छै केहवू ?

४२. अनिश्रितोपासृत्य, सर्वाशसारहित जे।
ते मुनि अगीकृत्य, प्रायश्चित्तादिक तिको ॥

४२ अणिस्सिओवस्सित
अनिश्रितै —सर्वाशमारहितैरुपाश्रित —अङ्गीकृतोऽनिश्रितोऽपाश्रितस्तम्। (वृ० प० ३८५)

४३ अथवा निश्रित सीस, उपाश्रित तेहिज मुनि।
व्यावच करै जगीस, तसु पक्षपात रहितपणै ॥

४३ अथवा निश्रितश्च—शिष्यत्वादि प्रतिपन्न उपाश्रितश्च—स एव वैयावृत्यकरत्वादिना प्रत्यासन्नतरस्तौ। (वृ० प० ३८५)

४४. अथवा निश्रित राग, उपाश्रित ते द्वेप फुन।
ए बिहु रहित सुमाग, प्रायश्चित्तादिक प्रवृत्ति ॥

४४ अथवा निश्रित—राग उपाश्रित च—द्वेपस्ते। (वृ० प० ३८५)

*लय : पारस देव तुम्हारा दरसण

४७. इहविध प्रश्न सुजोय, प्रश्न द्वार फल पूछियां ।
गुरु कहै हंता होय, गम्यमान गुरु वच इहां ॥

वा०—हे भगवंत ! जे आगमवलिया श्रमण निर्ग्रंथ केवली आदि ते इम कहे छै के ए पाच व्यवहार सम्यक् व्यवहरवा थकी आज्ञा ना आराधक थाय ? पाठ मे तो इम प्रश्न रूपज छै। तिवारे गुरु—हंता हा इम कहे छै। ए उत्तर गम्यमान छै।

सर्वथा पक्षपातरहितत्वेन यथावदित्यर्थ (वृ० प० ३८५)

वा०—आनाया—जिनोपदेशस्याराधको भवतीति, हंत ! आहुरेवेति गुरुवचन गम्यमिति । (वृ० प० ३८५)

४८ अन्य आचार्य ख्यात, आगमवलिया जिन प्रमुख ।
श्रमण निर्ग्रंथ विख्यात, हे भदंत ! फल स्यू कहै ॥
४९. कह्या पंच व्यवहार, स्यूं फल तसु ए शेष वच ।
इम पूछै सुविचार, आगल गुरु उत्तर दियै ॥
५०. इच्चेयं इत्यादि, प्रवर पंच व्यवहार प्रति ।
जे जे अवसर लाधि, जे जे क्षेत्र प्रयोजने ॥
५१ ते ते काल उचित्त, ते ते क्षेत्र प्रयोजने ।
अनिश्रित उपाश्रित्त, सम्यक् प्रवर्त्ततो अछै ॥
५२. श्रमण तपी निर्ग्रंथ, आण-आराधक ते हुवै ।
ए गुरु उत्तर तत, अन्य आचार्य इम कहै ॥

४८. अन्ये तु से किमाहु भंते ! इत्यादेव व्याख्यान्ति अथ किमाहुर्भदन्त ! आगमवलिका. श्रमणा निर्ग्रन्था. ! पञ्चविधव्यवहारस्य फलमिति शेष. अत्रोत्तरमाह—'इच्चेयं' मित्यादि (वृ० प० ३८५)

५३. *वलि व्यवहार तणी टीका में, धुर च्यारूं व्यवहारं ।
तीर्थ अंत ताई नहि रहिसी, जीत तीर्थ लग सारं ॥
५४. अंक अठ्यासी देश ढाल ए, एक सौ नवचालीस ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय' सुख विस्वावीसं ॥

५३. सुत्तमणागयविसयं……होहिंति न आइल्ला जा तित्थं ताव जीतो उ ॥
आद्याश्चत्वारो व्यवहारा न यावत्तीर्थं च भविष्यन्ति जीतस्तु व्यवहारो यावत्तीर्थं तावद् भवितेति । (व्यव० भाष्य भाग १० प० १०)

## ढाल : १५०

### दूहा

१. आण आराधकनांज फल, अशुभ क्षयै शुभ बंध ।
ते माटै हिव बंध नों, कहू निरूपण संध ॥
२. द्रव्य बंध निगडादि नो, इहा न ते अधिकार ।
कर्म बंध जे भाव थी, कहियै ते विस्तार ॥
३. कतिविध बंध कह्यो प्रभु ! जिन कहे द्विविध ताय ।
इरियावहि शुभ वेदनी, शुभाशुभ संपराय ॥

१ आज्ञाराधकश्च कर्म्म क्षपयति शुभं वा तद् बध्नातीति बन्धं निरूपयन्नाह— (वृ० प० ३८५)
२. द्रव्यतो निगडादिबन्धो भावत. कर्मबन्धः, इह च प्रक्रमात् कर्मबन्धोऽधिकृत । (वृ० प० ३८५)
३. कतिविहे ण भंते ! बंधे पण्णत्ते ?
गोयमा ! दुविहे बंधे पण्णत्ते, त जहा—इरियावहियबंधे य, संपराइयबंधे य । (श० ८।३०२)

*लय : पारस देव तुम्हारा दरसण

४. 'ग्यारस बारस तेरमे, केवल जोग निमित्त ।
इरियावहि नों बंध त्या, एह कषाय रहित्त ॥
५. संपराय नो बंध जे, दशमां गुण लग होय ।
एह कषाय सहित नें, शुभाशुभ अवलोय ॥
६. द्विविध सातावेदनी, इरियावहि संपराय ।
पन्नवणा पद तेवीसमे, प्रगट पाठ रै माय ॥

७. अनायुक्त गमनादिके, सपराय बंधाय ।
सप्तम शतक उदेश धुर, एह पाप-संपराय ॥
८. संपराय सकषाय नें, इरियावहि अकषाय ।
सप्तम शतक उदेश धुर, सप्तमुद्देशक माय ॥

९. संपराय सकषाय नें, इरियावहि अकषाय ।
दशम शतक वलि भगवती, द्वितीय उदेशक माय ॥

१०. इरियावहिइं वर्त्तता, सीज्झ्या सीज्झै ताय ।
काल अनागत सीज्झस्यै, द्वितीय सूयगडाग मांय ॥

११. शुध उपयोगे चालतां, कुकुड पोत चपाय ।
शतक अठारम आठमे, इरियावहि बंधाय ॥

१२ तिहा सातमा शतक नो, सप्तमुदेश भलाय ।
वीतराग ए बे भणी, उपशम-क्षीण कषाय ॥

१३. इरियावहि नो शुभ फरस, स्थिति बे समय सुसंध ।
उत्तराध्येन गुणतीसमे, वीतराग रै बंध ॥
१४. ते माटै इरियावहि, सातावेदनी जाण ।
संपराय शुभ अशुभ है, समय न्याय पहिछाण ॥' (ज० स०)

*वारी जाऊ रे जिन वचना तणी ।(ध्रुपद)

१५. इरियावहि कर्म हे प्रभु ! नरक तिर्यंच तिर्यंचणी बांधै जी ?
के मनुष्य मनुष्यणी नै बंधै, कै देवता देवी साधै जी ?

१६. जिन भाखै न बाधै नेरइयो, तिर्यंच बांधै नांही ।
तिर्यंचणी बाधै नही, देव देवी न बाधै ज्याही ॥

*लय : राम सोही लेवै सीता तणी

४. ऐर्यापथिक—केवलयोगप्रत्यय कर्म तस्य यो बन्धः स तथा । (वृ० प० ३८५)

५ साम्परायिकबन्ध कषायप्रत्यय इत्यर्थ । (वृ० प० ३८५)

६ सातावेदणिज्जस्स जहा ओहिया ठिती भणिया तहेव भाणियव्वा इरियावहियवधय पडुच्च सपराइयवधय च । (पण्णवणा २३।१७९)

७ अणगारस्स भते ! अणाउत्त गच्छमाणस्स वा.... गोयमा ! नो रियावहिया किरिया कज्जइ, सपराइया किरिया कज्जइ । (भ० ७।२०)
....जस्स ण कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा भवति....तस्स ण सपराइया किरिया कज्जइ । (भ० ७।२१)

९ ....जस्स ण कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा भवति तस्स ण इरियावहिया-किरिया कज्जइ, जस्स ण कोह-माण-माया-लोभा अवोच्छिण्णा भवति तस्स ण सपराइया किरिया कज्जइ । (भ० १०।१४)

१० ....एयसि चेव तेरसमे किरियाठाणे वट्टमाणा जीवा सिज्झिसु बुज्झिसु मुच्चिसु परिणिव्वाइसु सव्व-दुक्खाण अत करेंसु वा, करेति वा, करिस्सति वा । (सूयगडो २।८०)

११. ....अणगारस्स ण भते ! भावियप्पणो.... तस्स ण इरियावहिया किरिया कज्जइ, नो सपराइया किरिया कज्जइ ॥ (भ० १८।१५९)

१२. जस्स ण कोह- माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा भवति, तस्स ण इरियावहिया किरिया कज्जइ । (भ० ७।१२६)

१३. पेज्जदोसमिच्छादंसणविजएण भते ! जीवे किं जणयइ ?
....जाव सजोगी भवइ ताव य इरियावहिय कम्म वधइ सुहफरिस दुसमयठिइय.... (उत्तर० २९।७१)

१५ इरियावहिय ण भते ! कम्म किं नेरइओ वधइ ? तिरिक्खजोणिओ वधइ ? तिरिक्खजोणिणी वधइ ? मणुस्सो वधइ ? मणुस्सी वधइ ? देवो वधइ देवी वधइ ?

१६. गोयमा ! नो नेरइओ वधइ, नो तिरिक्खजोणिओ वधइ, नो तिरिक्खजोणिणी वधइ, नो देवो वधइ, नो देवी वधइ

## सोरठा

१८. पूर्व प्रतिपन्न जेह, ते आश्री ए वचन है ।
सदा केवली तेह, इरियावहि वधक घणा ॥

१९. घणा केवली माहि, वहु मनुष्य वहु मनुष्यणी ।
ए वेहु पद ताहि, वहु वचने करिनें कह्या ॥

२०. *पडिवजणहार आसरी, वर्त्तमान ए कालो ।
इरियावहि कर्म वंध नो, पढम समयवर्त्ती न्हालो ॥

२१. तास विरह संभव थको, किणहि वेला नर एको ।
किणहि वेला इक स्त्री हुवै, किणहि वेला वहु पेखो ॥

## सोरठा

२२. कदा मनुष्य इक होय, तथा कदा इक मनुष्यणी ।
तथा मनुष्य वहु जोय, तथा कदा वहु मनुष्यणी ॥

२३. इक सयोग सधीक, ए चिउ भागा आखिया ।
हिव द्विक सयोगीक, चिउं भागा कहियै अछै ॥

२४. इक वचने नर एक, वलि इक वचने मनुष्यणी ।
प्रथम भग ए पेख, द्विकसंयोगिक आखियो ॥

२५ अथवा नर इक जान, वहु वचने करि मनुष्यणी ।
द्वितीय भग पहिछाण, इरियावहि वधक हुवै ॥

२६. अथवा वहु नर जोय, इक वचने इक मनुष्यणी ।
तृतीय भग ए होय, इरियावहि वधकपणें ॥

२७. तथा मनुष्य वहु होय, वहु वचने वहु मनुष्यणी ।
तुर्य भग अवलोय, द्विकसंयोगिक नो कह्यो ॥

२८. इकसयोगिक च्यार, द्विकसयोगिक पिण चिउं ।
इरियावहि वंध धार, पडिवजमाण पडुच्च ए ॥

२९. लिंग अपेक्षा एह, कह्या मनुष्य नें मनुष्यणी ।
वेद अपेक्षा जेह, हिव स्त्री पुरुप प्रमुख कहै ॥

३०. *इरियावहि वधक प्रभु ! स्यूं, इक स्त्री वेद वाधै ?
इक पु वेद वाधै अछै, एक नपुसक साधै ?

३१ ए त्रिहुं पद इक वच कह्या, वहु स्त्री वेद वाधै ?
वहु पु वेद वांधै अछै, कै वहु नपुसक साधै ?

*लय : राम सोही लेवै सीता तणी

---

वर्त्तिन इत्यर्थः । (वृ० प० ३८५)

१८,१९. ते च सदैव वहव. पुरुषा. स्त्रियश्च सन्ति उभयेषा केवलिना सदैव भावात् (वृ० प० ३८५)

२० पडिवज्जमाणए पडुच्च
प्रतिपद्यमानकान् ऐर्यापथिककर्म्मबन्धनप्रथमसमय-वर्त्तिन इत्यर्थ । (वृ० प० ३८५)

२१ एषा च विरहसम्भवाद् (वृ० प० ३८५)
मणुस्सो वा वधइ, मणुस्सी वा वधइ, मणुस्सा वा वधंति, मणुस्सीओ वा वधति

२२,२३. एकदा मनुष्यस्य स्त्रियाश्चैकैकयोगे एकत्व-बहुत्वाभ्या चत्वारो विकल्पा, द्विकयोगे तथैव चत्वार. (वृ० प० ३८५)

२४. अहवा मणुस्सो य मणुस्सी य वधइ

२५ अहवा मणुस्सो य मणुस्सीओ य वधति

२६. अहवा मणुस्सा य मणुस्सी य वधति

२७. अहवा मणुस्सा य मणुस्सीओ य वधति । (श० ८।३०२)

२९. एषा च पुस्त्वादि तल्लिङ्गापेक्षया न तु वेदापेक्षया अथ वेदापेक्ष स्त्रीत्वाद्यधिकृत्याह— (वृ० प० ३८६)

३० त भते ! किं इत्थी वधइ ? पुरिसो वधइ ? नपुसगो वधइ ?

३१. इत्थीओ वधति ? पुरिसा वधति ? नपुसगा वधति ?

३२. ए त्रिहु पद बहु वच कह्या, कै तीनूं इ वेद-रहीतो।
तेह अवेदी बांधै अछै, इरियावहि सुवदीतो ?
३३. जिन कहै स्त्री बाधै नही, इक पु वेद न बाधै।
जाव नो बहु नपुसगा, ए पट पद बंध न साधै॥

३४. पूर्वकाल विषे रह्या, इरियावहि बधकपणो जाणी।
द्वितीयादि समयवर्त्ती तिके, बहु अपगतवेदा पिछाणी॥

३५. †इरियावहि कर्म बंधकपणा नै जाणियै,
वे त्रिण प्रमुख समय थया तेह पिछाणियै।
पूर्व प्रतिपन्न होय सदा बहु केवली,
वेद रहित इहा वीतराग मुनि रगरली॥

३६. वेद रहित नवमें दशमे गुणठाण ही,
पिण इरियावहि बध तास नवि जाण ही।
इरियावहि बध क्षीण-कपाई नै कह्यो,
तिण सूं वेद रहित ए अकपाई ग्रह्यो॥

३७. *पडिवजणहार आसरी, वर्त्तमान ए कालो।
इरियावहि कर्म बध नो, पढम समयवर्त्ती न्हालो॥
३८. तास विरह सभव थकी, वेद रहित एक बांधै।
तथा अवेदी वाधै बहु, ए वे विकल्प साधै॥

३९. जो एक अवेदी वाधै प्रभु ! तथा घणां अवेदी वाधै।
एक बहु वचने करी, ए बे विकल्प साधै॥
४०. जो एक अवेदी वाधै प्रभु ! तथा घणा अवेदी वाधै।
तो स्यू प्रभु ! इक स्त्री पच्छाकडो, इरियावहि बध साधै ?

**सोरठा**

४१. स्त्री वेदे वर्त्तेह, थयो अवेदो श्रेणि चढ।
स्त्री-पच्छाकड जेह, इमज अनेरा वेद पिण॥

४२ *कै इक पुरुप-पच्छाकडो, इरियावहि बाधंतो ?
एक नपुसक-पच्छाकडो, ए त्रिहु इक वच हुंतो ?
४३ कै बहु स्त्री-पच्छाकडा, बहु पु-पच्छाकडा बाधै ?
बहु नपुसक-पच्छाकडा, इरियावहि बंध साधै ?

**सोरठा**

४४. इकसंयोगिक एह, इक वच बहु वच भग पट।
हिव द्विकसयोगेह, कहियै द्वादश भगका॥

---

†लय . नदी जमुना रै तीर उड़ै
*लय : राम सोहो लेवं सीता तणी

---

३२ नोइत्थी नोपुरिसो नो नपुसगो वधइ ?

३३ गोयमा ! नो इत्थी बधइ, नो पुरिसो बधइ, जाव (स० पा०) नो नपुसगा बंधति।
उत्तरे तु पण्णा पदाना निपेध। (वृ० प० ३८६)

३४. पुव्वपडिवन्नए पडुच्च अवगयवेदा वधति—

३७,३८. पडिवज्जमाणए पडुच्च अवगयवेदो वा वधइ, अवगयवेदा वा वधति (श० ८।३०४)
प्रतिपद्यमानकाना तु सामयिकत्वाद् विरहभावेनैकादिसम्भवाद्, विकल्पद्वयमत एवाह—
(वृ० प० ३८६)

३९, ४०. जइ भते ! अवगयवेदो वा वधइ अवगयवेदा वा वधति त भते ! किं इत्थीपच्छाकडो वधइ ?

४१ स्त्रीत्व पश्चात्कृत—भूतता नीत येनावेदकेनासौ स्त्रीपश्चात्कृत, एवमन्यान्यपि। (वृ० प० ३८६)

४२ पुरिसपच्छाकडो वधइ ? नपुसकपच्छाकडो वधइ ?

४३ इत्थीपच्छाकडा वधति ? पुरिसपच्छाकडा वधति ? नपुसगपच्छाकडा वधति ?

४४ इहैककयोगे एकत्ववहुत्वाभ्या पड्विकल्पा. द्विकयोगे तु तथैव द्वादश। (वृ०प० ३८६)

इरियावहि वाधै अछै, द्वितीय भग ए ठाणी ॥

४७. अथवा वहु स्त्री-पच्छाकडा, पुरुप-पच्छाकडो एको ।
इरियावहि वाधै अछै, तृतीय भंग सुविशेखो ॥

४७ अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडो य वधइ

४८. तथा वहु स्त्री-पच्छाकडा, वहु पुरुप-पच्छाकडा जेहो ।
इरियावहि वाधै अछै, तुर्य भंग छै एहो ॥

४८. अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य वधति

४९ अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, एक नपुसक ताह्यो ।
पच्छाकडो वाधै अछै, ए पंचम भंग कहायो ॥

४९. अहवा इत्थीपच्छाकडो य नपुसगपच्छाकडो य वधइ

५०. अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, वहु नपुसक वेदो ।
पच्छाकडो वांधै अछै? ए भंग छट्ठो भेदो ॥

५०. अहवा इत्थीपच्छाकडो य नपुसगपच्छाकडा य वंधति

५१. तथा वहु स्त्री-पच्छाकडा, एक नपुसक जोयो ।
पच्छाकडो वाधै अछै? सप्तम भंगे सोयो ॥

५१. अहवा इत्थीपच्छाकडा य नपुसगपच्छाकडो य वधइ

५२. तथा वहु स्त्री-पच्छाकडा, वहु नपुसक जाणी ।
पच्छाकडा वाधै अछै? अप्टम भगे पिछाणी ॥

५२. अहवा इत्थीपच्छाकडा य नपुसगपच्छाकडा य वधति

५३. अथवा इक पुं-पच्छाकडो, एक नपुसक भालो ।
पच्छाकडो वांधै अछै? नवमे भंगे न्हालो ॥

५३ अहवा पुरिसपच्छाकडो य नपुसगपच्छाकडो य वधइ

५४. अथवा इक पु-पच्छाकडो, वहु नपुंसक मंतो ।
पच्छाकडा वाधै अछै? दसमो भग दीपंतो ॥

५४. अहवा पुरिसपच्छाकडो य नपुसगपच्छाकडा य वधति

५५. तथा वहु पु-पच्छाकडा, एक नपुसक सगो ।
पच्छाकडो वाधै अछै? एकादसमों भंगो ॥

५५ अहवा पुरिसपच्छाकडा य, नपुसगपच्छाकडो य वधइ

५६. तथा वहु पु-पच्छाकडा, वहु नपुसक जेही ।
पच्छाकडा वाधै अछै, द्वादसमो भग एही ॥

५६ अहवा पुरिसपच्छाकडा य, नपुसगपच्छाकडा य वधति

### सोरठा

५७. द्विक-सयोग सुघाट, द्वादश भगा आखिया ।
त्रिक-सयोगिक आठ, प्रवर भग कहियै हिवै ॥

५७ त्रिकयोगे पुनस्तथैवाष्टौ (वृ० प० ३८६)

---

*लय : राम सोही लेवै सीता तणी

ढाल १५० गाथा ४६ मे ६६ तक की जोड़ जिस पाठ के आधार पर की गई है, उसमे प्रत्येक विकल्प को स्वतन्त्र रूप से दिखाया गया है। अगसुत्ताणि भाग दो, शतक ८।३०५ मे पाठ सक्षिप्त है। वहा इस पाठ के छब्वीस भगों मे प्रथम छह भगो को स्वतत्र रूप से रखकर आगे के भगो मे चार-चार भग एक साथ लिए गए हैं। इसके लिए प्रत्येक भग के आगे ४ का अक लगा दिया गया है। भगवती की जोड़ मे सव भग अलग-अलग हैं। इसलिए इन भगो से सम्बन्धित गाथाओ के सामने पाद-टिप्पण मे दिए गए पाठ को उद्धृत किया गया है। मूल पाठ मे भग के प्रारभ मे 'उदाहु' पाठ है, किन्तु पाद टिप्पण मे 'अहवा' है। अर्थ की दृष्टि से दोनो शब्दो मे कोई अन्तर नही है। अत जोड के सामने पाद-टिप्पण का पाठ यथावत् रख दिया गया है।

५८. *अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, पुरुष-पच्छाकडो एको ।
इक नपुसक-पच्छाकडो, बांधै धुर भग देखो ।।

### सोरठा

५९. एवं एते जाण, छब्वीसं भंगा प्रवर ।
यावत अथवा माण, चरम भंग सूत्रे कह्यु ।।

६०. *अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, पुरुष-पच्छाकड एको ।
बहु नपुसक-पच्छाकडा, द्वितीय भंग सुविशेखो ।।

६१. अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, पुरुष-पच्छाकडा बहु होई ।
एक नपुंसक-पच्छाकडो, तृतीय भग अवलोई ।।

६२. अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, पुरिस-पच्छाकडा बहु जाणी ।
बहु नपुसक-पच्छाकडा, तुर्य भंग पहिछाणी ।।

६३. तथा बहु स्त्री-पच्छाकडा, पुरिस-पच्छाकडो एको ।
एक नपुसक-पच्छाकडो, पंचम भग सपेखो ।।

६४. तथा बहु स्त्री-पच्छाकडा, पुरिस-पच्छाकडो एको ।
बहु नपुसक-पच्छाकडा, छठो भागो देखो ।।

६५. तथा बहु स्त्री-पच्छाकडा, पुरिस-पच्छाकडा बहु धारी ।
इक नपुसक-पच्छाकडो, सप्तम भग विचारी ।।

६६. तथा बहु स्त्री-पच्छाकडा, पुरिस-पच्छाकडा बहु कहियै ।
बहु नपुसक-पच्छाकडा, अष्टम भंग सलहियै ।।

६७ इरियावहि बाधै अछै, एह छब्बीस प्रकारो ।
पडिवज्जमाण पडुच्च ए, पूछचा गोयम गणधारो ।।

६८. जिन कहै इत्थि-पच्छाकडो, इक वचने पिण बांधै ।
वलि इक पुरिस-पच्छाकडो, ते पिण ए बंध सांधै ।।

६९. एक नपुसक-पच्छाकडो, ते पिण बाधै एहो ।
वलि बहु इत्थि-पच्छाकडा, ते पिण ए बाधे हो ।।

७०. वलि बहु पुरिस-पच्छाकडा, ते पिण ए बांधता ।
बहु नपुसक-पच्छाकडा, ते पिण ए सांधंता ।।

७१. अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, पुरिस-पच्छाकडो एको ।
द्विकसयोगिक भग ए, इम भग छब्बीस सपेखो ।।

७२. जाव तथा भग चरिम ए, बहु इत्थि-पच्छाकडा बाधै ।
बहु पुरिस-पच्छाकडा, बहु नपुसग-पच्छाकडा साधै ।।

### सोरठा

७३. इरियावहि बांधंत, पडिवज्जमाण पडुच्च ए ।
भंग छबीसे हुत, वर्त्तमान इक समय में ।।

*लय : राम सोही लेवै सीता तणी

५८. अहवा इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य नपुंसगपच्छाकडो य वधइ ?

५९. एव एते छब्वीस भगा जाव[1]

६० अहवा इत्थीपच्छाकडो य, पुरिसपच्छाकडो य नपुसगपच्छाकडा य वंधति ?

६१ अहवा इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडा य नपुसगपच्छाकडो य वधइ ?

६२. अहवा इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडा य नपुसगपच्छाकडा य वधति ?

६३ अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडो य नपुसगपच्छाकडो य वधइ ?

६४ अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडो य नपुसगपच्छाकडा य वधति ?

६५ अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य नपुसगपच्छाकडो य वधइ ?

६६ उदाहु इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य नपुसगपच्छाकडा य वधति[2] ?

६८. गोयमा ! इत्थीपच्छाकडो वि वधइ, पुरिसपच्छाकडो वि वधइ,

६९ नपुसगपच्छाकडो वि वधइ, इत्थीपच्छाकडा वि वधति,

७० पुरिसपच्छाकडा वि वधति, नपुसगपच्छाकडा वि वधति,

७१. अहवा इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य वधइ, एव एए चेव छब्वीस भगा भाणियव्वा

७२ जाव अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य नपुसगपच्छाकडा य वधति । (श० ८।३०५)

१,२. गाथा ५९ और ६६ के सामने उद्धृत पाठ पाद-टिप्पण का नही, मूल का है ।

७६. गये काले बाधै अछै, वर्त्तमान बाधतो ।
अनागत नही बाधस्यै ? दूजो भंग दीपतो ।।

७७. गये काले बाध्यो अछै, बाध्यो नहिं वर्त्तमानो ।
काल अनागत बाधस्यै ? तृतीय भंग सुजानो ।।

७८. गये काले बाध्यो अछै, बांधै नहिं वर्त्तमानो ।
अनागत नही बाधस्यै ? तुर्य भंग पहिचानो ।।

७९. गये काले बाध्यो नहीं, वर्त्तमान बाधतो ।
काल अनागत बाधस्यै ? पचम भंग कहतो ।।

८०. गये काले बाध्यो नही, बाधै छै वर्त्तमानो ।
अनागत नहि बाधसी ? छट्ठो भंग पिछानो ।।

८१. गये काले बाध्यो नही, नहि बाधै वर्त्तमानो ।
काल अनागत बाधस्यै ? सप्तम भंग सुजानो ।।

८२. गये काले बाध्यो नही, बाधै नहि वर्त्तमानो ।
अनागत नही बाधस्यै ? अष्टम भंग पिछानो ।।

८३. जिन कहे बहु भव नै विषे, इरियावहि अपेक्षायो ।
बाध्या बाधै बाधस्यै, केयक जीव कहायो ।।

८४. केइ अतीतज बाधियो, बाधै छै वर्त्तमानो ।
आगमिक नहि बाधस्यै, इम तिमहिज सहु जानो ।।

८५ जाव केयक नहिं बाधियो, साप्रत बाधै नाही ।
आगमिक नही बाधस्यै, ए अष्टम भंग त्याही ।।

### सोरठा

८६. भवाकर्ष कहिवाय, जे अनेक भव नै विषे ।
उपशम आदिज ताय, श्रेणि पामवै करि तिको ।।

८७. इरियावहि जे कर्म, तेहना अणु नो जे ग्रहण ।
भवाकर्ष ए मर्म, ते आश्री भंग अठ हुवै ।।

८८. †भव पूर्व में उपशातमोहे, बध जे इरियावही ।
फुन वर्त्तमान भव माहि बाधै, मोह उपशम मे रही ।।

८९. वलि अनागत भव बाधस्यै जे, क्षपकश्रेण विषे सही ।
बाध्यो रु बाधै बाधस्यै, इम प्रथम भंग पिछाणही ।।

वा०—इहा वृत्ति मे कह्यो—पूर्व भवे ग्यारमे गुणठाणे बाध्यो, वर्तमान भव मे पिण ग्यारमें गुणठाणे बांधै, वलि अनागत पिण ग्यारमे गुणठाणे बाधसी ।

७६. बधी बधइ न बधिस्सइ

७७. बधी न बधइ बधिस्सइ ?

७८ बधी न बधइ न बधिस्सइ ?

७९ न बधी बधइ बधिस्सइ ?

८० न बधी बधइ न बधिस्सइ ?

८१. न बधी न बधइ बधिस्सइ ?

८२. न बधी न बधइ न बधिस्सइ ?

८३ गोयमा ! भवागरिस पडुच्च अत्थेगतिए बधी बधइ बधिस्सइ

८४ अत्थेगतिए बधी बधइ न बधिस्सइ, एवं तं चेव सव्वं

८५ जाव अत्थेगतिए न बधी न बधइ न बधिस्सइ

८६,८७ अनेकत्रोपशमादिश्रेणिप्राप्त्या आकर्ष.—ऐर्यापथिककर्माणुग्रहण भवाकर्षस्त प्रतीत्य । (वृ० प० ३८६)

८८. पूर्वभवे उपशान्तमोहत्वे सत्यैर्यापथिक कर्म्म बद्धवान् वर्त्तमानभवे चोपशान्तमोहत्वे बध्नाति ।
(वृ० प० ३८६)

८९ अनागते चोपशातमोहावस्थाया भन्त्स्यतीति
(वृ० प० ३८६)

*लय : राम सोही लेवै सीता तणी
†लय : पूज मोटा भांजे तोटा

इहा अनागत शब्द मे अनागत काल लेवै जद तो कोई अटकाव नही। जिम तिण भव मे उपशमश्रेणी लेई वलि तिणहिजभव मे अनागत काले उपशमश्रेणी लहीनै इरियावहि बाधै। पर अनागतशब्दे अनागतभव लेवै तो बात मिलै नही। कारण उपशमश्रेणी तीन भव मे आवै नही। जिम भगवती शतक २५ उद्देशक ७ मे इम कह्यो—सूक्ष्म सम्पराय चारित्र उत्कृष्ट नौ वार आवै, ते पिण उत्कृष्टो तीन भव मे आवै। बे भव मे तो उपशमश्रेणी थी आठ वार अनै तीजे भव मे खपकश्रेणी थी एक वार। इण न्याय उपशमश्रेणी तीन भव मे आवै नही।

९०. वलि पूर्व भव गुण ग्यारमै, बाध्यो करम इरियावही।
फुन वर्तमान भव माहि वाधै, क्षीण मोह विषे रही॥
९१. अरु अनागत नहिं बाधस्यै ते, चवदमां गुण मे सही।
वाध्यो रु वाधै बाधस्यै नहिं, द्वितीये भगे वृत्ति ही॥

९०,९१ द्वितीयस्तु य पूर्वस्मिन् भवे उपशान्तमोहत्व लब्धवान् वर्त्तमाने च क्षीणमोहत्व प्राप्त. स पूर्वं बद्धवान् वर्त्तमाने च बध्नाति शैलेश्यवस्थाया पुन र्न भन्त्स्यतीति। (वृ० प० ३८६)

**सोरठा**

९२. बाध्यो ग्यारम माहि, बाधै तेरम गुण विषे।
चवदम वाधस्यै नाहि, फुन सिद्धे इम 'धर्मसी'॥

९३. *जे पूर्व भव गुण ग्यारमे, बाध्यो करम इरियावही।
फुन वर्त्तमान भव मे न वाधै, हेठलै गुणठाण ही॥
९४. वलि अनागत भव बाधस्यै, गुण ग्यारमे इम वृत्ति ही।
बाध्यो न बाधै वाधस्यै, इम तृतीय भंग विशेष ही॥

९३,९४ तृतीय पूर्वजन्मनि उपशान्तमोहत्वे बद्धवान् तत्प्रतिपतितो न बध्नाति अनागते चोपशान्तमोहत्व प्रतिपत्स्यते तदा भन्त्स्यतीति। (वृ० प० ३८६)

**सोरठा**

९५. बध्यो ग्यारम ठाण[1], बांधै नहि दशमे गुणे।
पूर्व भव पहिछाण, पडतो उपशमश्रेणि जे॥
९६. आगल भव बाधेस, ग्यारम बारम तेरमे।
त्रिहु गुणठाण विशेष, तृतीय भग कृत 'धर्मसी'॥

९७ *जे पूर्व भव गुण[2] ग्यारमे, बाध्यो करम इरियावही।
फुन वर्त्तमान भव नाहि वाधै, चवदमे गुण ए सही॥
९८. वलि अनागत नहि बाधस्यै ते, सिद्ध मे पहिछाणियै।
वाध्या न वाधै वाधस्यै नहिं, तुर्य भग ए जाणियै॥
९९. जे पूर्वभव नवि वाधियो, गुण ग्यारमो पायो नही।
फुन वर्त्तमान भव माहि वाधै, ग्यारमे गुण ए सही॥
१००. ते अनागत भव बाधस्यै वलि, ग्यारमा गुण में रही।
नहि बध्यो वाधै वाधस्यै, ए भग पचम वृत्ति ही॥

९७,९८ चतुर्थस्तु शैलेशीपूर्वकाले बद्धवान् शैलेश्या च न बध्नाति न च पुनर्भन्त्स्यतीति। (वृ० प० ३८६)

९९,१००. पञ्चमस्तु पूर्वजन्मनि नोपशान्तमोहत्व लब्धवानिति न बद्धवान् अधुना लब्धमिति बध्नाति पुनरप्येष्यत्काले उपशान्तमोहाद्यवस्थाया भन्त्स्यतीति पञ्चम (वृ० प० ३८६)

**सोरठा**

१०१. पूर्व भवे अवध, बधै छै गुण ग्यारमें।
बंधस्यै त्रिहुं गुण सध, पंचम भगे 'धर्मसी'॥

---

*लय : पूज मोटा भाजै तोटा

१, २. गुणस्थान

नहिं बंध्यो बांधै बांधस्यै नहिं, भंग षष्टम ए सही ॥

(वृ० प० ३८६)

१०४. जे भव्य अनादि अद्धा विषे, नहिं बांधियो पूर्वे सही।
भव वर्त्तमाने जीव कोइक, न बांधै इरियावही ॥

१०५. फुन अनागत कालांतरे, ए बांधस्यै आगामिही।
नहिं बंध्यो न बंधै बांधस्यै, भव्य रास सप्तम धाम ही ॥

१०४,१०५ सप्तमः पुनर्भव्यस्य, स ह्यनादौ काले न बद्धवान् अधुनाऽपि कश्चिन्न बध्नाति कालान्तरे तु भन्त्स्यतीति। (वृ० प० ३८६)

### सोरठा

१०६. न बंध्यो न बंधै तेण, सप्तम भागे बांधस्यै।
उपशम क्षायक श्रेण, होणहार शिव 'धर्मसी' ॥

### गीतक-छंद

१०७. वलि अष्टमज अभव्य पूर्वे, न बांध्यो इरियावही।
फुन वर्त्तमान भव में न बांधै, सदा धुर ठाणे रही ॥

१०८. जे अनागत नहिं बांधस्यै, शिव गमन योग्य जिको नही।
नहिं बांधियो अरु नांहि बांधै, बांधस्यै नहिं इम कही ॥

१०७,१०८. अष्टमस्त्वभव्यस्य (वृ० प० ३८६)

### सोरठा

१०९. भवाकर्ष रै माय, काल त्रिहु नै पद विषे।
विचलै पद जे पाय, कहियै छै भंग अष्ट ही ॥

१०९. इह च भवाकर्षविशेषेष्वष्टसु भङ्गकेषु (वृ० प० ३८७)

११०. विचलै पद धुर भंग, उपशम श्रेणिज ग्यारमें।
द्वितीय भंग सुचंग, क्षीणमोह बांधै अछै ॥

११०. 'बन्धी बन्धइ बन्धिस्सइ' इत्यत्र प्रथमे भङ्गे उपशान्तमोहः 'बन्धी बन्धइ न बन्धिस्सइ' इत्यत्र द्वितीये क्षीणमोहः : (वृ० प० ३८७)

१११. न बंधै तीजै भंग, दशमे गुणठाणे कह्यु।
उपशम श्रेणि सुचंग, पूर्व भव पड़तो छतो ॥

१११. 'बन्धी न बन्धइ बन्धिस्सइ' इत्यत्र तृतीये उपशान्तमोहः। (वृ० प० ३८७)

११२. न बंधै चउथै भंग, ए चवदमें गुणठाण में।
पंचम भंग प्रसंग, बंधै उपशांत ग्यारमें ॥

११२ 'बन्धी न बन्धइ न बन्धिस्सइ' इत्यत्र चतुर्थे शैलेशीगत,
'न बन्धी बन्धइ बन्धिस्सइ' इत्यत्र पञ्चमे उपशान्तमोह (वृ० प० ३८७)

११३. बंधै षष्टम भंग, क्षीणमोह तेरम गुणे।
सप्तम भव्य शिव अंग, शिव अयोग्य अष्टम अभव्य ॥

११३. न बन्धी बन्धइ न बन्धिस्सइ इत्यत्र षष्ठे क्षीणमोह. 'न बन्धी न बन्धइ बन्धिस्सइ' इत्यत्र सप्तमे भव्यः, 'न बन्धी न बन्धइ न बन्धिस्सइ' इत्यत्राष्टमेऽभव्य.[1]। (वृ० प० ३८७)

---

१. प्रस्तुत ढाल की गाथा ११० से ११३ तक की जोड़ का आधार मूल पाठ है। उसके साथ थोड़ा अंश वृत्ति का है। वृत्ति में मूल पाठ ज्यों का त्यों है। इसलिए यहां जोड़ का आधार वृत्ति को मान उसे ही उद्धृत किया गया है।

भवाकर्ष रै सन्दर्भ में ईरियावहि कर्म-बन्ध नों यन्त्र

| बधी | बधइ | बधिस्सइ | | |
|---|---|---|---|---|
| ११ मे बाध्यो | ११ मे बाधै | ११ मे बाधस्यै | उपशात मोह प्रथम भगो | १ |
| ,, | १३ मे बाधै | १४ मे, सिद्ध न बाधस्यै | क्षीण मोह | २ |
| ,, | १० मे न बाधै | ११,१२,१३ मे बाधस्यै | उपशम थी पड्या १० मे गुणठाणे | ३ |
| ,, | १४ मे न बाधै | सिद्ध न बाधस्यै | क्षीण मोह अजोगी | ४ |
| न बाध्यो | ११ मे बाधै | ११,१२,१३ मे बाधस्यै | उपशात मोह | ५ |
| ,, | १३ मे बाधै | सिद्ध न बाधस्यै | क्षीण मोह | ६ |
| ,, | न बाधै | ११,१२,१३ बाधस्यै | भव्य | ७ |
| ,, | ,, | न बाधस्यै | अभव्य | ८ |

### गीतक-छंद

११४. बहु भवां आश्री कर्म जे, इरियावही बध आखियो ।
इम भग आठ उदार सार, विचारवे इहां दाखियो ॥
११५. जे भवाकर्षज पाठ ए, बहु भवा आश्री जाणियै ।
ग्रहणाकर्षज पाठ ते, भव एक नो हिव आणियै ॥

११६. *ग्रहणाकर्ष एक भव विषे, कोइक जीव पिछाणी ।
बांध्या बांधै बाधस्यै, प्रथम भग ए जाणी ॥
११७ इम यावत कोइ जीवड़ो, नहि बाध्यो काल अतीतो ।
बाधै नै वलि बाधस्यै, ए पंचम भंग वदीतो ॥
११८. गये काले बाध्या नही, वर्त्तमान बाधतो ।
अनागत नहिं बाधस्यै, ए छठो भागो नहिं हुतो ॥
११९. कोइ एक जे जीवड़ो, न बांध्यो अवलोयो ।
नहिं बाधै नै बाधस्यै, ए सप्तम भंगो होयो ॥
१२० कोइ एक जे जीवड़ो, न बांध्यो गयें कालो ।
न बाधै नहिं बाधस्यै, ए अष्टम भंग न्हालो ॥

११६. गहणागरिस पडुच्च अत्थेगतिए बधी बधइ बधिस्सइ

११७ एवं जाव अत्थेगतिए न बधी बधइ बधिस्सइ

११८ नो चेव ण न बधी बधइ न बधिस्सइ

११९ अत्थेगतिए न बधी न बधइ बधिस्सइ

१२० अत्थेगतिए न बधी न बधइ न बधिस्सइ
(श० ८/३०६)

### सोरठा

१२१. ग्रहणाकर्षज ताय, जेह एक भव नै विषे ।
उपशम आदि कहाय, श्रेणि पामवै करि तिको ॥
१२२. इरियावहि जे कर्म, तेहनु आकर्ष बाधवो ।
वर्त्तमान भव मर्म, ते आश्री भग सप्त ह्वै ॥
१२३. छठो भागो नहिं होय, वक्तव्यता भंग सात नी ।
कहियै छै अवलोय, इक भव बध इरियावही ॥

१२१, १२२ एकस्मिन्नेव भवे ऐर्यापथिककर्मपुद्गलाना ग्रहणरूपो य आकर्षोऽसौ ग्रहणाकर्ष (वृ० प० ३८६)

*लय : राम सोही लेवै सीता तणी

वाध्यो रु वाध वाधस्य, ए प्रथम भाग वृ।. ९

भन्त्स्यतीति (वृ० प० ३८६)

### सोरठा

१२६. वाध्यो ग्यारम ठाण, फुन बंधै गुण ग्यारमे ।
आगल वधस्यै जाण, उपशांतमोहो 'धर्मसी' ।।

१२७. तथा बारम गुणठाण, फुन गुणठाणे तेरमे ।
वाध्यो वाधै जाण, वलि बांधस्यै 'धर्मसी' ।।

### गीतक-छंद

१२८. द्वितीयेज भागे केवली, वांध्योज काल अतीत ही ।
वलि वर्त्तमान वांधैज तिण भव, तेरमा गुण मे रही ।।

१२९ फुन अनागत नहि बाधस्यै, जे चवदमे गुणठाण ही ।
वाध्यो रु वाधै वांधस्यै नहि, द्वितीय भगे वृत्ति ही ।।

१२८,१२९. द्वितीयस्तु केवली, स त्वतीतकाले बद्धवान् वर्त्तमाने च बध्नाति शैलेश्यवस्थायां पुनर्न भन्त्स्यतीति । (वृ० प० ३८६)

### सोरठा

१३०. वध्यो बारम ताहि, वंधै छै गुण तेरमें ।
चवदम बधस्यै नाहि, क्षीणमोह ए 'धर्मसी' ।।

### गीतक-छंद

१३१. उपशात मोहपणैज वाध्यो, पडी फुन वाधै नही ।
तिणहीज भव वलि वाधस्यै, जे श्रेणि-उपशम फुन लही ।।

१३२. इक भवे उपशम श्रेणि इम, बे वार प्राप्त ह्वै सही ।
वाध्यो न वाधै वाधस्यै, इम भग तृतीयो वृत्ति ही ।।

१३१,१३२ तृतीयस्तूपशान्तमोहत्वे बद्धवान् तत्प्रतिपतितस्तु न बध्नाति पुनस्तत्रैव भवे उपशमश्रेणी प्रतिपन्नो भन्त्स्यतीति, एकभवे चोपशमश्रेणी द्विर्वार प्राप्यत एवेति (वृ० प० ३८६)

### सोरठा

१३३. ग्यारम वंध्यो कहेस, पड़ी नहि वाधै दशम गुण।
फुन ग्यारम वाधेस, इक भव उपशम वार द्वय ।।

### गीतक-छंद

१३४. भग तुर्य बाध्यो तेरमें, ते चवदमे वाधै नही ।
फुन चवदमे नहि वाधस्यै जे, एम आख्यो वृत्ति ही ।।

१३४. चतुर्थ. पुन. सयोगित्वे बद्धवान् शैलेश्यवस्थायां न बध्नाति न च भन्त्स्यतीति । (वृ० प० ३८६)

### सोरठा

१३५. वाध्यो तेरम माहि, नहि वाधै गुण चवदमें ।
सिद्ध वाधस्यै नाहि, क्षीणमोह ए 'धर्मसी' ।।

---

*लय : पूज मोटा भांजे तोटा

## गीतक छन्द

१३६. फुन भग पचम आउखा नै, पूर्व भाग विषे रही ।
उपशात मोहादिक न लाधू, ते भणी बंध्यो नही ॥

१३७. जे वर्त्तमान कालेज लाधू, ते भणी बांधै सही ।
तिण अद्धा नै आगले समयै, वाधस्यै इरियावहीं॥

१३८. बाध्यो नही बाधै अछै, वलि बांधस्यै ए जाणियै ।
इम भंग पचम तणो न्यायज, वृत्ति मांहि पिछाणियै ॥

१३६,१३७ पञ्चम: पुनरायुप पूर्वभागे उपशान्तमोहत्वादि न लब्धमिति न बद्धवान् अधुना तु लब्धमिति बध्नाति तद् अद्धाया एव चैष्यत्समयेपु पुनर्भन्त्स्यतीति (वृ० प० ३८६)

## सोरठा

१३९. पूर्वे बाध्यो नाहि, बाधै छै गुण ग्यारमें ।
बधस्यै ग्यारम मांहि, उपशम-श्रेणे 'धर्मसी' ॥

१४०. अथवा बांध्यो नाहि, बांधै बारसमें गुणे ।
वलि बाधस्यै ताहि, बारम तेरम क्षपक ते ॥

## गीतक छन्द

१४१. नहिं बाधियो बांधै अछै, नहिं बांधस्यै इक भव महो ।
ए भंग छट्ठो शून्य छै, इह रीत कोई ह्वै नहीं ॥

१४१ पष्ठस्तु नास्त्येव (वृ० प० ३८६)

१४२ नहिं बांधियो बाधै अछै ए, दोय ऊपजता छता ।
नहिं वाधस्यै ए बोल तीजो, तिणज भव नहिं सर्वथा ॥

१४२ तत्र न बद्धवान् बध्नातीत्यनयोरुपपद्यमानत्वेऽपि न भन्त्स्यतीति इत्यस्यानुपपद्यमानत्वात् । (वृ० प० ३८७)

१४३ तसु न्याय कहियै आउखा नै, पूर्व भाग विषे रही ।
उपशात-मोहादिक न लाधू, ते भणी बाध्यो नही ॥

१४३. तथाहि—आयुप पूर्वभागे उपशान्तमोहत्वादि न लब्धमिति न बद्धवान् (वृ० प० ३८७)

१४४. ते वीतराग धुर समय मे, वाधै अछै इरियावही ।
तसु समय वीजै वाधस्यै इज, वीतराग गुणे रही ॥

१४४ तल्लाभसमये च बध्नाति ततोऽनन्तरसमयेषु च भन्त्स्यत्येव (वृ० प० ३८७)

१४५. पिण बाधस्यै नहिं इम न होवै, समय मात्र इरियावही ।
तसु बंधनोज अभाव छै, ते भणी बध हुस्यै सही ॥

१४५ न तु न भन्त्स्यति, समयमात्रस्य बन्धस्येहाभावात् । (वृ० प० ३८७)

वा०—न वाध्यो, वाधै, न बाधसी ए छठो भागो शून्य छै, ते किम ? छठे भागे कोइ एक जीव नही । ते छठा भागा नै विपे न वाध्यू, वाधै छै—ए दोई उपजता थका पिण 'न वाधस्यै' ए तीजै वोल न ऊपजै, ते देखाडे छै—आउखा ना पूर्व भाग नै विपे उपशम-मोहत्वादि न लाधू, एतला माटै न वाध्यू । ते लाभ समय नै विषे वाधस्यैज पिण इम नही जे न वाधस्यै, समय मात्र ना वध नो इहा अभाव छै ते माटै ।

१४६. जे ग्यारमें गुणठाण मे, इक समय रहि मरणे करी ।
सुर भवे इरियावहि न बधै, समय बध इम उच्चरी ॥

१४६ यस्तु मोहोपशमनिर्ग्रन्थस्य समयानन्तरमरणेनैर्यापथिककर्मबन्ध समयमात्रो भवति नासौ पष्ठविकल्पहेतु (वृ० प० ३८७)

१४७. इम कहै तेहनो एह उत्तर, वे भवे ए आखियो ।
पिण ग्रहण आकर्ष भवे इक, भग ए नहि भाखियो ॥

१४७ तदनन्तरैर्यापथिककर्म्मबन्धाभावस्य भवान्तरवर्त्तित्वाद् ग्रहणाकर्पस्य चेह प्रक्रान्तत्वात् (वृ० प० ३८७)

१५०. नहि बांधियो बाधै अछै, ए बोल बे नर भव मही ।
मरि सुर भवे नहिं बाधस्यै, ए ग्रहण आकर्ष नही ।।

१५१. ते भणी ग्रहणाकर्ष ते भव, एक आश्री जाणियै ।
ए भग छठा तणी शून्यता, प्रवर न्याय पिछाणियै ।।

१५२. जो तेरमा नै चरम समय, बधै अछै इरियावही ।
फुन समय बीजै बाधस्यै नहिं, तास वाछा जो हुई ।।

१५२ यदि पुन: सयोगिचरमसमये बध्नाति ततोऽनन्तरं न भन्त्स्यतीति विवक्ष्येत. । (वृ० प० ३८७)

१५३. इम तदा जे गुण तेरमा नै, चरम समये बध ही ।
तेह थी जे पूर्व समये, बाधियो इम सध ही ।।

१५३. तदा यत्सयोगिचरमसमये बध्नातीति तद्बन्धपूर्वकमेव स्यान्नाबन्धपूर्वकं, तत्पूर्वसमये तस्य बन्धकत्वात् । (वृ० प० ३८७)

१५४. ते भणी ए भग द्वितीय ह्वै, पिण भग छट्ठो ह्वै नही ।
इम भंग पष्ठम शून्यता ए, ग्रहण आकर्ष कही ।।

१५४ एवं च द्वितीय एव भङ्गः स्यान्न पुन षष्ठ इति । (वृ० प० ३८७)

वा०—कोई कहै—अतीतकाले इरियावहि सकषाइपणे न बाध्यो अनै तेरमा गुणठाणा रै छेहलै समये बाधै छै अनै अजोगीपणे न बाधस्यै, इम छट्ठो भांगो किम न हुवै ? तेहनो उत्तर—इम दूजो हुवै, पिण छट्ठो न हुवै, ते किम ? जिवारे सयोगी चरम समये बाधै, ते चरिम समय थकी पूर्व समये इरियावहि नो बध कहीजै, पिण पूर्व समये अबंधक नही । इम दूजो भांगो हीज हुइं पिण छट्ठो नहीं ।

१५५. नहि बांधियो फुन नथी बाधै, बाधस्यै इरियावही ।
शिवगमन योग्यज भाव छै, ते आश्रयी सप्तम सही ।।

१५५. सप्तम पुनर्भव्यविशेषस्य (वृ० प० ३८७)

१५६. नहि बाधियो फुन नथी बांधै, बाधस्यै पिण ए नही ।
शिव गति अयोग्य अभव्य छै, ते आश्रयी अष्टम मही ।।

१५६ अष्टमस्त्वभव्यस्येति (वृ० प० ३८७)

१५७. जे ग्रहण आकर्ष एक भव में, बोल तीनूं इ लहै ।
ते आश्रयी भग सप्त लाधै, भग पष्टम शन्य हे ।।

## सोरठा

१५८ ग्रहणाकर्ष रै माय, काल त्रिहुं नें पद विषे ।
विचलै पद जे पाय, अठ भगे कहियै हिवै ।।

१५८ ग्रहणाकर्षापेक्षेपु पुनरेतेष्वेव (वृ० प० ३८७)

१५९ बाधै तेरम माण, क्षीण-मोह ए द्वितीय भग ।
धुर भंग ग्यारम ठाण, अथवा बारम तेरमे ।।

१५९ प्रथमे उपशान्तमोह क्षीणमोहो वा, द्वितीये तु केवली । (वृ० प० ३८७)

१६० न बधै दशमें ठाण, उपशम थी पड़ तृतीय भंग ।
न बधै चउदम जाण, क्षीण-मोह ए तुर्य भग ।।

१६०. तृतीये तूपशान्तमोह, चतुर्थे शैलेशीगत । (वृ० प० ३८७)

१६१ बधै पंचम भग, ग्यारम अथवा बिहु गुणे ।
पष्ठम शून्य प्रसंग, भव्य सप्तम अष्टम अभव्य ।।

१६१ पञ्चमे उपशान्तमोह क्षीणमोहो वा, षष्ठ शून्य., सप्तमे भव्यो भाविमोहोपशमो भाविमोहक्षयो वा, अष्टमे त्वभव्य इति । (वृ० प० ३८७)

ग्रहणाकर्ष रै सन्दर्भ में ईरियावहि कर्मबन्ध नों यन्त्र—

| वधी | वधइ | वधिस्सइ | | |
|---|---|---|---|---|
| ११ मे वाध्यो | ११ मे बाधै | ११ मे वाधस्यै | ए उपशात-मोह तथा १२, १३ मे वाध्यो, वाधै, वाधस्यै। | १ |
| १२ मे वाध्यो | १३ मे वाधै | १४ मे न वाधस्यै | ए क्षीण मोह। | २ |
| ११ मे वाध्यो | १० मे न वाधै | ११ मे वाधस्यै | उपशात-मोह एक भव मे दोय वार आवै। | ३ |
| १३ मे वाध्यो | १४ मे न वाधै | सिद्ध न वाधस्यै | ए क्षीण-मोह शैलेणी अवस्था। | ४ |
| न वाध्यो | ११ मे वाधै | ११ मे वाधस्यै | ए उपशात-मोह तथा १२, १३ मे बाधै, वाधस्यै। | ५ |
| न वाध्यो | बाधै | न वाधस्यै | ए शून्य। | ६ |
| न वाध्यो | न वाधै | वाधस्यै | ए भव्य उपशम-मोह होणहार तथा क्षीण-मोह होणहार। | ७ |
| न वाध्यो | न वाधै | न वाधस्यै | ए अभव्य। | ८ |

१६२. इरियावहि कर्म जाण, बध आश्री कहियै हिवै।
आदि अंत करि माण, चिउ भगे करि प्रश्न ते॥

१६२ अथैर्यापथिकबन्धमेव निरूपयन्नाह—
(वृ० प० ३८७)

१६३. *हे प्रभु ! ते इरियावहि, कर्म नो बध वदीतो।
स्यू आदि सहित अत सहित छै ?
कै आदि सहित अत रहीतो॥

१६३ त भते ! कि सादीय सपज्जवसिय वधइ ? सादीय अपज्जवसिय वधइ ?

१६४ कै आदि-रहित अत-सहित ते ?
कै आदि-रहित अत रहीतो ?
इरियावहि वाधै प्रभु ! जिन कहै सुण धर प्रीतो॥

१६४ अणादीय सपज्जवसिय वधइ ? अणादीय अपज्जवसिय वधइ ?

१६५. आदि-सहित अत-सहित छै, इरियावहि कर्म वाधै।
शेप तीन भागे करी, तास वध नहि साधै॥

१६५ गोयमा ! सादीय सपज्जवसिय वधइ, नो सादीय अपज्जवसिय वधइ, नो अणादीय सपज्जवसिय वधइ, नो अणादीय अपज्जवसिय वधइ।
(श० ८/३०७)

१६६. ते प्रभु ! स्यू इरियावहि, जीव देशे करि जोयो ?
कर्म ना देश प्रतै तदा, बाधै छै अवलोयो ?

१६६ त भते ! कि देसेण देस वधइ ?
'देशेन' जीवदेशेन 'देश' कर्म्मदेश।
(वृ० प० ३८७)

१६७ कै जीव तणै देशे करी, कर्म सर्व प्रतिवाधै।
तथा सर्व जीवे करी, कर्म ना देश नै साधै ?

१६७ देसेण सव्व वधइ ? सव्वेण देस वधइ ?

१६८. तथा सर्व जीवे करी, सर्व कर्म बध होयो ?
ए चोभगी पूछिया, हिव जिन उत्तर जोयो ?

१६८ सव्वेण सव्व वधइ ?

१६९. जीव तणै देशे करी, कर्म नु देश न वाधै।
जीव तणै देशे करी, सर्व कर्म नहि साधै॥

१६९ गोयमा ! नो देसेण देस वधइ, नो देसेण सव्व वधइ

*लय : राम सोही लेवै सीता तणी

अष्टम शतक तणा क , ं - ु ५र ना ा ॥
१७२. एक सौ नै पचासमी, रूड़ी ढाल रसालो।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मगलमालो ॥

## ढाल १५१

### दूहा

१. सपराय हिव कर्म नों, वंध निरूपण काज।
पूछै गोयम गणहरू, उत्तर दै जिनराज ॥

१ अथ साम्परायिकबन्धनिरूपणायाह—
(वृ० प० ३८७)

*संपराय नो रे निर्णय साभलो। (ध्रुपद)

२. संपराय ए कर्म कहो प्रभु! नारक स्यू बाधत?
तिरिखजोणियो जाव देवी वलि, संपराय साधत?

२ सपराइय ण भते! कम्म किं नेरउओ वधइ?
तिरिक्खजोणिओ वधइ? जाव देवी वधइ?

३. श्री जिन भाखै वाधै नेरइयो, वलि वाधै तिर्यंच।
तिरिक्खजोणिणी पिण वाधै अछै, संपराय कर्म सच ॥

३ गोयमा! नेरउओ वि वधइ, तिरिक्खजोणिओ वि वधइ, तिरिक्खजोणिणी वि वधइ

४. मनुष्य मनुष्यणी पिण वाधै अछै, वलि वाधै छै देव।
वलि देवी पिण ए वाधै अछै, ए सातू स्वयमेव ॥

४. मणुस्सो वि वधइ, मणुस्सी वि वधइ, देवो वि वधइ, देवी वि वधइ (श० ८/३०६)

### सोरठा

५. मनुष्य मनुष्यणी टाल, संपराय कर्म-वंधका।
निश्चै पच निहाल, सकपाई छै ते भणी ॥

५. एतेपु च मनुष्यमनुपीवर्जा पञ्च साम्परायिकवन्धका एव सकपायत्वात् (वृ० प० ३८८)

६. मनुष्य मनुष्यणी माय, सकपाई छै तेहनें।
निश्चै वध सपराय, अकपाई रै वंधै नहि ॥

६ मनुष्यमनुष्यो तु सकपायित्वे सति साम्परायिकं बध्नीतो न पुनरन्यदेति। (वृ० प० ३८८)

७. *ते संपराय कर्म हे भगवंत! स्यूं वांधै इक स्त्री वेद?
एक पुरुप वेद एक नपुसक, वलि त्रिहु वहु वच भेद?

७ त भते! किं इत्थी वधइ? पुरिसो वंधइ? तहेव जाव

८. तथा अवेदो ते वाधै अछै? तव भाखै जिनराय।
एक इत्थि पिण ए वाधै अछै, इक पु वेद वधाय ॥

८ नोइत्थी नोपुरिसो नोनपुसगो वधइ?
गोयमा! इत्थी वि वधइ, पुरिसो वि वधइ।

९. एक नपुसक पिण वाधै अछै, वहु स्त्री वेद वाधत।
वहु पुरुप वेद वहु नपुसका, या रै पिण वंध हुत ॥

९ जाव नपुसगा वि बधति।

१०. इहा स्त्रियादिक त्रिण इक वचन थी, वहु वचने पिण तीन।
सपराय कर्म वाधै छै सदा, ए अर्थ वृत्ति मे चीन ॥

१० इह स्त्र्यादयो विवक्षितैकत्ववहुत्वा पट् सर्वदा साम्परायिक वध्नन्ति। (वृ० प० ३८८)

---

*लय : सुमति जिनेश्वर साहिब

११. तथा स्त्रियादिक वेद-रहित ते, कदा एक बांधंत।
तथा अवेदी बहु बांधै कदा, गुण नवमे दशमत॥

११. अहवा एते य अवगयवेदो य बंधइ, अहवा एते य अवगयवेदा य बंधति। (श० ८।३१०)

### सोरठा

१२. पूर्व प्रतिपन्न जोय, इक वचने बंध ह्वै कदा।
बहु वचने पिण होय, इमहिज प्रतिपद्यमान बंध॥
१३. वेद रहित संपराय, अल्पकाल छै तेहनो।
ते माटै कहिवाय, इक वच बहु वच पिण बिहुं॥

१२,१३ अपगतवेदत्वे साम्परायिकबन्धोऽल्पकालीन एव, तत्र च योऽपगतवेदत्वं प्रतिपन्नपूर्वं साम्परायिक बध्नात्यसावेकोऽनेको वा स्यात् एवं प्रतिपद्यमानकोऽपीति। (वृ० प० ३८८)

१४. *एक अवेदी प्रभु! बांधै अछै, बहु अवेदी बांधत।
ते स्यूं बांधै स्त्री-पच्छाकडो, पुरुष-पच्छाकडो हुंत?

१४. जइ भंते! अवगयवेदो य बंधइ, अवगयवेदा य बंधति। तं भंते! किं इत्थीपच्छाकडो बन्धइ? पुरिसपच्छाकडो बंधइ?

१५. इम जिम इरियावहि-बंधक तणा, भाख्या भागा छब्बीस।
भणवा भागा तिम संपराय ना, बीस अनै षट दीस॥

१५ एवं जहेव इरियावहियबंधगस्स तहेव निरवसेसं।

१६. जावत भागो ए छब्बीसमो, स्त्री-पच्छाकडा जोय।
पुरिस-पच्छाकडा नपुंसक-पच्छाकडा, बहु वचने त्रिहुं होय॥

१६ जाव अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य नपुंसगपच्छाकडा य बंधति। (श० ८।३११)

### सोरठा

१७. हिवै कर्म संपराय, बंधन तणूंज जाणवूं।
काल त्रिहुं करि ताय, विकल्प करतो पूछियै॥
१८. पूर्वे भाख्या सोय, विकल्प आठ विशेज ते।
प्रथम चिहुं भंग होय, च्यारूं चरम हुवै नहीं॥
१९. जीवा तणें पिछाण, संपराय कर्म बंध नो।
अनादिपणें करि जाण, बांध्यो काल अतीत मे॥
२० पिण नहिं बांध्यो जेह, भंग चरम चिहुं नहि हुवै।
प्रथम चिहुं भंग लेह, तास प्रश्न गोयम करै॥

१७. अथ साम्परायिककर्म्मबन्धमेव कालत्रयेण विकल्पयन्नाह— (वृ० प० ३८८)
१८. इह च पूर्वोक्तेष्वष्टासु विकल्पेष्वाद्याश्चत्वार एव संभवति नेतरे। (वृ० प० ३८८)
१९ जीवानां साम्परायिककर्मबन्धस्यानादित्वेन। (वृ० प० ३८८)
२० 'न बन्धी' त्यस्यानुपपद्यमानत्वात्। (वृ० प० ३८८)

२१. [1]संपराय कर्म हे भगवंत! स्यूं, बांध्यु काल अतीत?
वर्त्तमान काले बांधै अछै? वलि बंध होस्यै वदीत?

२१ तं भंते! किं बन्धी बन्धइ बन्धिस्सइ?

२२. बांध्यो बांधै नै नहि बांधस्यै, दूजो भंग ए देख।
बांध्यो नहि बांधै वलि बांधस्यै, तृतीय भंग संपेख॥

२२. बंधी, बंधइ न बंधिस्सइ? बंधी न बंधइ बंधिस्सइ?

२३ बांध्यो नहिं बांधै नहिं बांधस्यै, तुर्य भंग ए ताम।
ए च्यारूंइ भंग करि पूछिया, उत्तर दे जिन स्वाम॥

२३. बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ?

२४. जीव किताइक पूर्वे बांधियो, बांधै छै वर्त्तमान।
काल अनागत मे वलि बांधस्यै, प्रथम भंग ए जान॥

२४ गोयमा! अत्थेगतिए बंधी बंधइ बंधिस्सइ।

२५. †जे प्रथम भागो जीव सगला, संसारिक ते जाणियै।
जथाख्यात पाम्यो नथी, ते काल लग पहिछाणियै॥

२५ तत्र प्रथमः सर्व एव संसारी यथाख्यातासंप्राप्तोपशमकक्षपकावसानः। (वृ० प० ३८८)

---

*लय : सुमति जिनेश्वर साहिब
†लय : पूज मोटा भांजै तोटा

२८. जे मोह-क्षय थी पूर्व काले, वाधियोज अतीत ही ।
वलि वर्त्तमान कालेज वाधै, एह कपाय सहीत ही ।।
२९. फुन मोह कर्म क्षय पेक्षया, नहिं वाधस्यै संपराय ही ।
वाध्यो रु वाधै वाधस्यै नहि, द्वितीय भग कहाय ही ।।

२८,२९. द्वितीयस्तु मोहक्षयात्पूर्वमतीतकालापेक्षया वद्धवान् वर्त्तमानकाले तु वध्नाति भाविमोहक्षयापेक्षया तु न भन्त्स्यति । (वृ० प० ३८८)
अत्थेगतिए वधी न वधइ वधिस्सइ ।

३०. *वाध्यो नहिं वाधै नै वाधस्यै, संपराय कर्म जाण ।
जीव किताइक एहवा जिन कह्या, तेहनु न्याय पिछाण ।।

३१ †उपशत मोह थकीज पूरव, सपराय वाध्यो सही ।
वर्त्तमान काले न वाधै, ग्यारमां गुण में रही ।।
३२ ग्यारमा गुण थी पडीनै, वाधस्यै वलि ते सही ।
वाध्यो न वाधै वाधस्यै वलि, भग तीजो इम लही ।।

३१,३२. तृतीय पुनरुपशान्तमोहत्वात् पूर्वं वद्धवान् उपशान्तमोहत्वे न वध्नाति तस्माच्च्युत पुनर्भन्स्यतीति । (वृ० प० ३८८)

३३. *वाध्यो नहिं वाधै नहिं वाधस्यै, जीव किताइक देख ।
चोथो भागो ए जिनवर कह्यो, तेहनो न्याय सपेख ।।

३३ अत्थेगतिए वधी न वधइ न वधिस्सइ ।
(श० ८।३१२)

३४. †जे मोह-क्षय थी पूर्व काले, संपराय वाध्यो सही ।
अथ मोह-कर्म ना क्षय विषे, जे वर्त्तमान वाधै नही ।।
३५. वलि अनागत नहिं वाधस्यै ते, श्रेणि पाय पडै नही ।
वाध्यो न वाधै वाधस्यै नहि, तुर्य भागो ए सही ।।

३४,३५ चतुर्थस्तु मोहक्षयात्पूर्व साम्परायिक कर्म वद्धवान् मोहक्षये न वध्नाति न च भन्त्स्यतीति ।
(वृ० प० ३८८)

## सोरठा

३६. सपराय कर्म जाण, वध आश्री कहियै हिवै ।
आद अत करि माण, चिउ भगे करि प्रश्न ते ।।

३६ साम्परायिककर्मवन्धमेवाश्रित्याह— (वृ० प० ३८८)

३७. *सपराय कर्म हे भगवत ! स्यू, तास वंध पहिछाण ।
आदि-सहित छै कै अत-सहित छै ? प्रथम भग ए जाण ।।
३८. आदि-सहित छै कै अत-रहित छै ? तथा अनादि सह अंत ।
आदि-रहित छै कै अत-रहित छै, ए चिहुं भग पूछंत ।।

३७,३८ त भते ! किं सादीय सपज्जवसिय वधइ ? पुच्छा तहेव ।

३९. श्री जिन भाखै आदि-सहित छै, अत-सहित पिण हुंत ।
उपशम-श्रेणि थकी पडनै वलि, उपशम क्षपक लहत ।।

३९ गोयमा ! सादीय वा सपज्जवसिय वधइ
उपशान्तमोहतायाश्च्युत पुनरुपशान्तमोहता क्षीणमोहता वा प्रतिपत्स्यमान ।

४०. †ग्यारमा गुण थी पड़ीनै, संपराय वाधै सही ।
पामियै वलि ग्यारमो, अथवाज द्वादशमो लही ।।

---

*लय : सुमति जिनेश्वर
†लय : पूज मोटा भांजे तोटा

४१. *आदि-रहित वलि अंत-सहित छै, क्षपक श्रेणि पेक्षाय।
दशमां गुणठाणां थी बारमे, ए भागो इण न्याय॥

४२. आदि-रहित वलि अंत-रहित छै, अभव्य नी अपेक्षाय।
ए त्रिहु भागा जिनजी आखिया, वारू निर्मल न्याय॥

४३. आदि-सहित नें अंत-रहित जे, निश्चै करि न बंधाय।
ग्यारम थी पड आदि-सहित हुवै, तसु निश्चै अंत थाय॥

४४ †ग्यारमा थी पड्या ए संपराय, आदि-सहित अछै।
अवश्य शिवगामी तिको, ते भणी अंत-रहित न छै॥

४५ *ते प्रभुजी ! स्यू जीव देशे करी, कर्म न देश बांधंत?
इम जिम इरियावहि बंध कह्यो, तिम त्रिहु भंग न हुंत॥

४६ जाव जीव ना सर्व प्रदेश थी, सर्व कर्म बंध होय।
संपराय कर्म इहविध जीवडो, बांधै छै अवलोय॥

४७. देश अठ्यासी नो इकसौ ऊपरे, एकावनमी ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगलमाल॥

४१. अणादीय वा सपज्जवसिय बंधइ,
आदित. क्षपकापेक्षमिदम्। (वृ० प० ३८८)

४२ अणादीय वा अपज्जवसिय बंधइ,
एतच्चाभव्यापेक्ष। (वृ० प० ३८८)

४३. नो चेव ण सादीय अपज्जवसिय बंधइ।
(श० ८।३१३)

४४ सादिसाम्परायिकबन्धो हि मोहोपशमाच्च्युतस्यैव भवति, तस्य चावश्य मोक्षयायित्वात्साम्परायिकबन्धस्य व्यवच्छेदसम्भव ततश्च न सादिरपर्यवसान साम्परायिकबन्धोऽस्तीति। (वृ० प० ३८८)

४५ त भंते ! किं देसेण देस बंधइ? एव जहेव इरियावहियबंधगस्स।

४६ जाव सव्वेण सव्व बंधइ। (श० ८।३१४)

## ढाल : १५२

### दूहा

१. कही कर्म नी वारता, कर्म विषे इज जाण।
अवतरवो परिसह तणो, यथायोग्य पहिछाण॥

२. करता तास परूपणा, कर्म-प्रकृति कहिवाय।
वली परीसह प्रति प्रथम, कहियै छै वर न्याय॥

३. कर्म-प्रकृति प्रभु ! केतली? आठ कहै जिनराय।
ज्ञानावरणी आदि दे, जावत वलि अंतराय॥

४. ज्ञानावरणी कर्म धुर, दर्शणावरणी ताय।
वेदनी मोहणी आउखो, नाम गोत्र अंतराय॥

५. प्रभु ! परीसह केतला? जिन भाखै बावीस।
भूख तृषा जावत चरम, दर्शण परिसह दीस॥

६. भूख तृषा सी उष्ण वलि, डसमस चटकाय।
अचेल अरति स्त्री तणो, चरिया गमन कराय॥

१,२ अनन्तर कर्म्मवक्तव्यतोक्ता, अथ कर्म्मस्वेव यथायोग परीपहावतार निरूपयितुमिच्छु कर्मप्रकृती परीपहाश्च तावदाह— (वृ० प० ३८८)

३,४. कइ ण भंते ! कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ?
गोयमा ! अट्ठकम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ, त जहा— नाणावरणिज्ज दसणावरणिज्ज वेदणिज्ज मोहणिज्ज आउग नाम गोय अतराइय। (श० ८।३१५)

५. कइ ण भंते ! परीसहा पण्णत्ता?
गोयमा ! बावीस परीसहा पण्णत्ता, त जहा—

६ दिगिच्छापरीसहे, पिवासापरीसहे, सीतपरीसहे, उसिणपरीसहे, दसमसगपरीसहे, अचेलपरीसहे, अरइपरीसहे, इत्थिपरीसहे, चरियापरीसहे
चर्या—ग्रामनगरादिपु सचरण। (वृ० प० ३९०)

---

*लय : सुमति जिनेश्वर
†लय : पूज मोटा भांजे तोटा

८. रोग अनें तृण फर्श नु, जल मल नें सतकार ।
प्रज्ञा ते मति बुद्धि नो, हरष सोग परिहार ॥

८. रोगपरीसहे, तणफासपरीसहे, जल्लपरीसहे, सक्कार-पुरक्कारपरीसहे पण्णापरीसहे
प्रज्ञा—मतिज्ञानविशेषस्तत्परिषहण च प्रज्ञाया अभावे उद्वेगाकरणं तद्भावे च मदाकरण ।
(वृ० प० ३९०)

९. ज्ञान मत्यादि विशिष्ट लही, नहिं करिवूं तसु मान ।
तास अभावे दीन नहिं, ग्रंथांतरे अज्ञान ॥

९. नाणपरीसहे
ज्ञान—मत्यादि तत्परिषहण च तस्य विशिष्टस्य सद्भावे मदवर्जनमभावे च दैन्यपरिवर्जन, ग्रन्थान्तरे त्वज्ञानपरीषह इति पठ्यते । (वृ० प० ३९०)

१०. दर्शण ते सम्यक्त्व विषे, शक कख परिहार ।
ए बावीस परीसहा, सहिवा हरष अपार ॥

*जय जय ज्ञान जिनेन्द्र नों ॥ (ध्रुपद)

१० दसणपरीषहे (श० ८।३१६)
दर्शन—तत्त्वश्रद्धान तत्परिषहण च जिनाना जिनोक्तसूक्ष्मभावाना चाश्रद्धानवर्जनमिति ।
(वृ० प० ३९०)

११. ए बावीस ¹परीसहा, किती कर्म प्रकृति माय, प्रभुजी !
समवतरै वर्ते अछै ? तव भाखै जिनराय, प्रभुजी !
१२. च्यार कर्म प्रकृति नें विषै, समवतार ते आय, हो गोयम !
ग्यानावरणी वेदनी विषे, मोह अतराय रै माय, हो गोयम !

११. एए ण भते ! बावीस परीसहा कतिसु कम्मपगडीसु समोयरंति ?
१२ गोयमा ! चउसु कम्मपगडीसु समोयरति, त जहा—नाणावरणिज्जे, वेदणिज्जे, मोहणिज्जे, अतराइए ।
(श० ८।३१७)

१३. ज्ञानावरणी कर्म नें विषे, किता परिसह वर्त्तंत ? ।
जिन कहै दोय परीसहा, प्रज्ञा अनाण¹ पामत ॥

१३ नाणावरणिज्जे ण भते ! कम्मे कति परीसहा समोयरति ?
गोयमा ! दो परीसहा समोयरति, त जहा—पण्णा-परीसहे नाणपरीसहे य । (श० ८।३१८)

### सोरठा

१४. प्रज्ञा परिसह जाण, मति ज्ञानावरणी विषे ।
समवतरै छै आण, तास न्याय इम वृत्ति में ॥
१५. प्रज्ञा बुद्धि अभाव, ज्ञानावरणी उदय थी ।
दैन्य मान नहिं साव, ते चरित्र मोह क्षयोपशमादि थी ॥

१४. प्रज्ञापरीषहो ज्ञानावरणे—मतिज्ञानावरणरूपे समवतरति । (वृ० प० ३९०)
१५ प्रज्ञाया अभावमाश्रित्य, तदभावस्य ज्ञानावरणोदय-सम्भवत्वात्, यत्तु तदभावे दैन्यपरिवर्जनं तत्सद्भावे च मानवर्जन तच्चारित्रमोहनीयक्षयोपशमादेरिति ।
(वृ० प० ३९०)

वा०—बुद्धि नही पामी तेह नो ज्ञानावरणी कर्म नो उदय अनै बुद्धि नही पामवा थी दीनपणो नही करवो, बुद्धि पामवा थी मान नही करवो, ते चारित्र मोहणी कर्म नो क्षयोपशम उपशम क्षायक छै ।

---

*लय : शिवपुर नगर सुहामणो

१ यहा अज्ञान परीषह ज्ञान परीषह के स्थान मे है । भगवती मे मूल पाठ मे ज्ञान परीषह ही रखा गया है । उत्तराध्ययन मे अज्ञान परीषह का उल्लेख है । सभव है जयाचार्य ने उसी सस्कार से यहा अज्ञान परीषह लिख दिया । अन्यथा इससे पहले गाथा ९ और आगे गाथा १६ मे ज्ञानपरीषह का ही ग्रहण किया है ।

१६. इमज परीसह ज्ञान, नवरं इतो विशेप छै।
मत्यादि पहिछान, ज्ञानावरणी अवतरै॥

१६ एवं ज्ञानपरीपहोऽपि नवरं मत्यादिज्ञानावरणेऽवतरति। (वृ० प० ३९०)

१७. *वेदनी कर्म विषे प्रभु! किता परिसहा वर्त्तत।
जिन कहै ग्यारै परिसहा, समवतरंत पामत॥
१८. क्षुधा तृपा सी उष्ण नो, दंसमस चरिया सेज।
वध रोग तृण फर्श जल तणो, ग्यारै वेदनी विषेज॥

१७. वेदणिज्जे ण भते! कम्मे कति परीसहा समोयरति?
गोयमा! एक्कारस परीसहा समोयरति, त जहा—
१८. पचेव आणुपुव्वी, चरिया सेज्जा वहे य रोगे य।
तणफास जल्लमेव य, एक्कारस वेदणिज्जम्मि॥ (श० ८।३१९)

## सोरठा

१९. क्षुधा पिपासा आद, तेह विषे पोडा जिका।
कर्म वेदनी वाद, तेह थकी जे ऊपनी॥
२०. क्षुधादि पीड़ा जेह, तेह तणो सहिवु तिको।
चारित्रमोहणी तेह, क्षयोपशमादिक थी वृत्ती॥
२१. सहितां जे शुभ जोग, नाम कर्म ना उदय थी।
बधै पुन्य प्रयोग, कर्म तणी हुवै निर्जरा॥

१९ क्षुत्पिपासाशीतोष्णदशमशकपरीपहा इत्यर्थः. एतेपु च पीडैव वेदनीयोत्था। (वृ० प० ३९०)
२०. तदधिसहन तु चारित्रमोहनीयक्षयोपशमादिसम्भव, अधिसहनस्य चारित्ररूपत्वादिति। (वृ० प० ३९०)

२२. *दर्शण मोह कर्म विषे, किता परिसह वर्त्तत।
जिन कहै एक परिसह, दर्शण समवतरंत॥

२२. दसणमोहणिज्जे ण भते! कम्मे कति परीसहा समोयरति?
गोयमा! एगे दसणपरीसहे समोयरइ। (श० ८।३२०)

## सोरठा

२३. दर्शण तत्व श्रद्धेह, दर्शण मोहणी कर्म ना।
क्षयोपशमादि विषेह, तेह थकी सम्यक्त हुवै॥
२४. दर्शण मोह उदयेह, शुद्ध सम्यक्त पामै नही।
इण कारण थी एह, दर्शण मोह मे अवतरै॥
२५. शुद्ध श्रद्धा मे शक, दर्शण मोह थी ऊपजै।
तिण कारण ए अक, दर्शण मोह मे अवतरै॥

२३. दर्शन तत्त्वश्रद्धानरूप दर्शनमोहनीयस्य क्षयोपशमादौ भवति। (वृ० प० ३९०)
२४ उदये तु न भवतीत्यतस्तत्र दर्शनपरीपह समवतरतीति। (वृ० प० ३९०)

२६. *चारित्र-मोह कर्म विषे, किता परिसह वर्त्तत?
जिन कहै सात परिसहा, समवतरंत पामत॥
२७. अरति अचेल स्त्री निसीहिया, जाचना आक्रोश ख्यात।
सक्कार पुरक्कार सप्त ए, चारित्र मोह उदयात॥

२६ चरित्तमोहणिज्जे ण भते! कम्मे कति परीसहा समोयरति?
गोयमा! सत्तपरीसहा समोयरति, त जहा—
२७ अरती अचेल इत्थी निसीहिया जायणा य अक्कोसे।
सक्कार-पुरक्कारे, चरित्तमोहम्मि सत्ते ते॥ (श० ८।३२१)

## सोरठा

२८. अरति परीसह जाण, अरति मोहनी नै विषे।
समवतरै पहिछाण, अरति मोह थी ऊपनों॥
२९. वलि अचेल पिछान, मोह दुगछा नै विषे।
समवतरै छै जान, ए छै लज्जा अपेक्षया॥
३०. स्त्री परीसह जेह, पुरुप वेद मोह नै विषे।
स्त्री अपेक्षया तेह, पुरुप परीसह जाणवु॥

२८ तत्र चारतिपरीपहोऽरतिमोहनीये तज्जन्यत्वात्। (वृ० प० ३९०)
२९ अचेलपरीपहो जुगुप्सामोहनीये लज्जापेक्षया। (वृ० प० ३९०)
३० स्त्रीपरीपह पुरुपवेदमोहे स्त्र्यपेक्षया तु पुरुपपरीपह स्त्रीवेदमोहे। (वृ० प० ३९०)

*लय : शिवपुर नगर सुहामणो

उपसग ना भय धार, ...

३३. वलि जाचना जाण, मान मोहनी नैं विषे ।
समवतरै पहिछाण, जाचण दुक्कर पेक्षया ॥

३३. याञ्चापरीसहो मानमोहे तद्दुष्करत्वापेक्षया । (वृ० प० ३६०)

३४. फुन आक्रोश कहेह, क्रोध मोहनी नैं विषे ।
समवतरै छै जेह, क्रोधोत्पत्ति अपेक्षया ॥

३४ आक्रोशपरीषह क्रोधमोहे क्रोधोत्पत्त्यपेक्षया । (वृ० प० ३६०)

३५. सत्कार पुरक्कार, मान मोहनी नैं विषे ।
समवतरै सुविचार, मद उत्पत्ति अपेक्षया ॥

३५ सत्कारपुरस्कारपरीषहो मानमोहे मदोत्पत्त्यपेक्षया समवतरति । (वृ० प० ३६०)

३६. सामान्य थी सहु एह, चारित्र मोहनी नैं विषे ।
समवतरै छै तेह, वृत्तिकार इम आखियो ॥

३६ सामान्यतस्तु सर्वेऽप्येते चारित्रमोहनीये समवतरन्तीति । (वृ० प० ३६०)

३७. *अतराय कर्म विषे प्रभु ! किता परिसह वर्त्तंत ।
जिन कहै एक परिसह, अलाभ समवतरत ॥

३७ अतराइए णं भते ! कम्मे कति परीसहा समोयरति ? गोयमा ! एगे अलाभपरीसहे समोयरइ । (श० ८।३२२)

## सोरठा

३८. लाभांतराय उदेह, लाभ अभाव थकीज फुन ।
तेहनु सहिवु तेह, चारित्र मोह क्षयोपशम वृत्ती ॥

३८ अन्तराय चेह लाभान्तराय, तदुदय एव लाभाभावात् तदधिसहन च चारित्रमोहनीयक्षयोपशम इति । (वृ० प० ३६०)

३९. *सप्त कर्म वधै तेहनें, किता परिसह कहत ?
जिन कहै बावीस परिसहा, बीस वलि वेदंत ॥

३९ सत्तविहबधगस्स णं भते ! कति परीसहा पण्णत्ता ? गोयमा ! बावीस परीसहा पण्णत्ता । वीस पुण वेदेइ—

४० सीत वेदै जे समय मे, उष्ण न वेदै वदीत ।
उष्ण वेदै जे समय मे, वेदै नही ते सीत ॥

४०. ज समय सीयपरीसह वेदेइ नो त समय उसिणपरीसह वेदेइ, ज समय उसिणपरीसह वेदेइ नो त समय सीयपरीसह वेदेइ ।

## सोरठा

४१ सीतोष्ण माहोमाहि, अत्यत ही विरोधे करी ।
एक काल मे ताहि, नही ऊपजै एकठा ॥

४१ शीतोष्णयो परस्परमत्यन्तविरोधेनैकदैकत्रासम्भवात् । (वृ० प० ३६०)

४२. जदपि विहु नु जोय, एक वेलाइ एकठो ।
सभव छै अवलोय, अत्यत शीत थकाज ते ॥

४२ अथ यद्यपि शीतोष्णयोरेकदैकत्रासम्भवस्तथाऽप्यात्यन्तिके । (वृ० प० ३६०, ३६१)

४३. अग्नि समीपे जेह, समकाले इक पुरुष नें ।
इक दिश सीत पडेह, बीजी दिशेज उष्ण छै ॥

४४. इण रीते कहिवाय, सीत उष्ण परिसह तणो ।
सभव छै इण न्याय, ए इहविध कहिवु नथी ॥

४३,४४. तथाविधाग्निसन्निधौ युगपदेवैकस्य पुस एकस्या दिशि शीतमन्यस्या चोष्णमित्येव द्वयोरपि शीतोष्णपरीषहयोरस्ति सम्भव नैतदेव । (वृ० प० ३६१)

४५. इहा काल कृत हीज, शीत अनें वलि उष्ण ना ।
आश्रय भाव थकीज, अधिकृत सूत्र विषे तिको ॥

४६. तथा वहुलपणें सोय, जे इहविध व्यतिकर भण्यो ।
तपस्वी नै नहि होय, ए सहु आख्यो वृत्ति में ॥

४५,४६. कालकृतशीतोष्णाश्रयत्वादधिकृतसूत्रस्यैवविधव्यतिकरस्य वा प्रायेण तपस्विनामभावादिति । (वृ० प० ३६१)

*लय : शिवपुर नगर सुहामणो

४७. *चरिया वेदै ते समय मे, निसीहिया वेदै नाहि ।
निसीहिया वेदै ते समय, चरिया न वेदै ताहि ॥

४७ ज समय चरियापरीसह वेदेइ, नो त समय निसीहियापरीसह वेदेइ, ज समय निसीहियापरीसह वेदेइ नो त समय चरियापरीसह वेदेइ । (श० ८।३२३)

**सोरठा**

४८. चरिया कह्यु विहार, निसीहिया मास कल्पादि युत ।
विवक्त-उपाश्रय सार, बेसै सज्झायादि हित ॥

४८. तत्र चर्या—ग्रामादिपु सचरण नैपेधिकी च—ग्रामादिपु प्रतिपन्नमासकल्पादे स्वाध्यायादिनिमित्त शय्यातो विविक्ततरोपाश्रये गत्वा निपदनम् । (वृ० प० ३९१)

४९. विहार अनै अवस्थान, परस्परै ए विहुं तणु ।
विरोध थी पहिछान, एक काल नहिं सभवै ॥

४९ एव चानयोर्विहारावस्थानरूपत्वेन परस्परविरोधान्नैकदा सम्भव । (वृ० प० ३९१)

५०. अथ सेज्या पिण ख्यात, निसीहिया परिसह नी परै ।
चरिया रै सघात, ए पिण विरोध हुवै अछै ॥

५० अथ नैपेधिकीवच्छय्याऽपि चर्यया सह विरुद्धेति (वृ० प० ३९१)

५१. तो चरिया हुवै तिवार, सेज्जा निसीहिया नहिं हुवै ।
तो उत्कृष्ट विचार, वेदै एगुणवीस इम ॥

५१ न तयोरेकदा सम्भवस्ततश्चैकोनविंशतेरेव परीपहाणामुत्कर्पेणैकदा वेदन प्राप्तमिति । (वृ० प० ३९१)

५२. उत्तर तसु अवलोय जे ग्रामादि गमन प्रति ।
प्रवृत्त छतेज जोय, जावा माड्यु पिण तदा ॥
५३. कोयक उत्सुकथीज, चर्या थी नहिं निवर्त्यो ।
तसु परिणामेहीज, वीसामो रास्ते लिये ॥
५४. भोजनादिक नै अर्थ, अल्प काल सेज्या विषे ।
वसवु तास तदर्थ, तदा विरोध न विहु तणो ॥
५५. गमन विषे सुविचार, अल्प काल सेज्जा रहै ।
वेदै चरिया सार, सेज्जा पिण वेदै तदा ॥

५२-५४. नैव यतो ग्रामादिगमनप्रवृत्तौ यदा कश्चिदौत्सुक्यादनिवृत्ततत्परिणाम एव विश्रामभोजनाद्यर्थमित्वरशय्याया वर्त्तते तदोभयमप्यविरुद्धमेव । (वृ० प० ३९१)

५६. तत्व थकी सुविचार, चर्या परिसह नै विषे ।
असमाप्त थी धार, सेज्या ना आश्रयण थी ॥

५६ तत्त्वतश्चर्याया असमाप्तत्वाद् आश्रयस्य चाश्रयणादिति (वृ० प० ३९१)

५७. जो इह विध ए हुंत, तो षड् विध बधक किम कह्यो ।
जे समय चरिया वेदत, सेज्या नहि वेदै तदा ॥

५७ यद्येव तर्हि कथ षड्विधवन्धकमाश्रित्य वक्ष्यति—'ज समय चरियापरीसह वेएति नो तं समय सेज्जापरीसह वेएइ' इत्यादीति । (वृ० प० ३९१)

५८. तसु उत्तर छै एम, पड विध बधक नै कह्यु ।
मोह अंश अल्प तेम, प्रबल मोह नु उदय नहिं ॥

५८. अत्रोच्यते, षड्विधवन्धको मोहनीयस्याविद्यमानकल्पत्वात् (वृ० प० ३९१)

५९ सर्व कार्य रै माहि, उत्सुक भाव अभाव करि ।
सेज्जा काले ताहि, वर्त्तै सेज्या नै विषे ॥

५९ सर्वत्रौत्सुक्याभावेन शय्याकाले शय्यायामेव वर्त्तते । (वृ० प० ३९१)

६०. नवमा गुण जिम जेह, सेज्या वेदै तिण समय ।
उत्सुक भाव करेह, चरिया प्रति वेदै नथी ॥
६१. चर्या जव वेदत, सेज्या नहिं वेदै तदा ।
विहु समकाल नहिं हुत, ए विहु तणो विरोध इम ॥

६०,६१ न तु वादररागवदौत्सुक्येन विहारपरिणामाविच्छेदाच्चर्यायामपि, अतस्तदपेक्षया तयो परस्परविरोधाद्युगपदसम्भव (वृ० प० ३९१)

६२. ते माटै इम जोय, जे सप्त कर्म बंधक तणै ।
चरिया निसीहिया दोय, एक समय वेदै न विहु ॥

६२. ततश्च साध्वेव 'ज समय चरिए' त्यादीति (वृ० प० ३९१)

*लय : शिवपुराण नगर सुहामणो

६४. साय ७. ' दस । , ५ `
इम अठ विध वधक अपि, सप्त वधक जिम माण ॥

अलाभपरीसहे एव अट्ठविहबंधगस्स वि ।
(भ० ८।३२४ का पा० टि०)

**सोरठा**

६५. पूर्वे समचै ताहि, कह्या बावीस परीसहा ।
च्यार कर्म रै माहि, समवतरै ते पिण कह्या ॥
६६. छेहड़ै पाठ पिछाण, अतराय कर्म नै विषे ।
समवतरै ए जाण, एक अलाभ परीसह ॥
६७. इम अलाभ लग ख्यात, सप्त कर्म बंधक तणें ।
ते सहु पाठ विख्यात, कहिवु अठ बंधक तणें ॥
६८. अठ बधक रै एम, कह्या बावीस परीसहा ।
च्यार कर्म में तेम, कहिवु पाठ अलाभ लग ॥

वा०—इहा गोतम पूछ्यो—केतला परिसहा परूप्या ? भगवंत कह्यो—बावीस परिसहा परूप्या—भूख तृषा रो नाम लेइ जाव दर्शन परिसह कह्यो। वलि पूछ्यो—केतला कर्मप्रकृति नै विषे ए बावीस परिसहा समवतरै ? जद भगवत कह्यो—च्यार कर्म प्रकृति नै विषे समवतरै—ज्ञानावरणी नै विषे दोय, वेदनी नै विषे इग्यारे, दर्शण मोहणी रै विषे एक, चारित्र मोहणी रै विषे सात, अतराय कर्म नै विषे एक अलाभ परिसह, ए छेहडै कह्यो। तिम इहा पिण गोतम पूछ्यो—आठ-विध बधग रै किता परिसहा परूप्या ? भगवत कहै—बावीस परिसहा परूप्या। भूख, तृखा आदि पच परिसहा ना नाम लेइ जाव अलाभ परीसह कह्यो। ए अतराय कर्म नैं विषे एक अलाभ परिसह समवतरै ते पाठ पूर्वे छेहडै कह्यु छै, ते पाठ इहा पिण आठ बंधगा नै विषे पिण छेहडै कहिवू। ते भणी जाव अलाभ परिसहे कह्यो इति तत्व।[1]

६९. *मोह आउखो वर्ज नै, पड् विध बंधक ताय ।
सूक्ष्म संपराय नै विषे, किता परिसह कहिवाय ॥

६९. छव्विहबंधगस्स णं भंते ! सरागछउमत्थस्स कति परीसहा पण्णत्ता ?
पड्विधबन्धकस्यायुर्मोहवर्जाना बन्धकस्य सूक्ष्मसम्परायस्येत्यर्थः। (वृ० प० ३९१)

७०. जिन कहै षट-बंधक तणे, चउदै परिसहा जोय ।
द्वादश पिण वेदै अछै, तास न्याय इम होय ॥

७०. गोयमा ! चोद्दस परीसहा पण्णत्ता। बारस पुण वेदेइ

*लय : शिवपुर नगर सुहामणो

१ इस वार्तिक मे जिस पाठ के आधार पर परीषहो की चर्चा की गई है, वह भगवती के आठवें शतक (सूत्र ३१६-३२२) का पाठ है। उस पाठ को इसी ढाल की गाथा ५ से ३७ तक की जोड के सामने उद्धृत किया जा चुका है। वहा जो प्रसग चर्चित हुआ है, उसी को उपसहार रूप मे यहा स्पष्ट किया गया है। इसलिए इस वार्तिक के सामने उक्त पाठ नही लिया गया।

७१. सीत वेदै जे समय में, ते समय उष्ण वेदै नाय।
उष्ण वेदै जे समय में, ते समय सीत न वेदाय॥

७२ चरिया वेदै जे समय मे, ते समय सेज्या वेदै नांय।
सेज्या वेदै जे समय मे, ते समय चरिया न वेदाय॥

**सोरठा**

७३. आठ परिसहा जेह, मोह कर्म थी ऊपजै।
षट-बधक नै तेह, ते आठूई नहि कह्या॥

७४. इहां कोइ पूछै सोय, दशमा गुणठाणा मझै।
चउद परीसह होय, मोह तणां आठू टल्यां॥

७५. ते सामर्थ थी जाण, नवमा गुणठाणा मझै।
मोह तणा पहिछाण, आठ परीसह सभवै॥

७६. मिलै तास किम न्याय, दर्शण सप्तक तेहनो।
चिहु अतान[1] कपाय, त्रिहु दर्शण मोह उपशम्या॥

७७ तास अभावे जाण, जे दर्शण परिसह तणो।
हुवै अभाव पिछाण, सप्त परीसह सभवै॥

७८. पिण आठू नो नाय, तथाजु दर्शण मोह नो।
सत्ता नी अपेक्षाय, वछचा आठू जो हुवै॥

७९. तो दशमे गुणठाण, मोह कर्म नी छै सत्ता।
तेहथि ऊपना जाण, सर्व परीसह किम न ह्वै॥

८०. तेहनो उत्तर एह, दर्शण-सप्तक उपशम्ये।
ऊपरहीज कहेह, छेहड़ा ना अद्धा विषे॥

८१. तेह नपुसक-वेय, उपशम काल विषेज तब।
नवमें गुण पामेय, त्या दर्शण-परिसह ऊपजै॥

८२. अन्य ग्रथ रै मांहि, दर्शन त्रय नु बृहत खड।
उपशमाया छै ताहि, सूक्षम खड न उपशम्यु॥

८३ तथा नपुसक-वेय, तिण साथे उपशमाविवा।
उपक्रम जे अधिकेय, करिवा नै मांड्यो जिणे॥

८४. ते वेद नपुसक जाण, उपशम अवसर नें विषे।
ह्वै नवमो गुणठाण, उदै बादर संपराय नों॥

८५. दर्शण मोहणी तास, किंचित उदय प्रदेश थी।
दर्शण परिसह जास, ते प्रत्यय अन्य ग्रथ इम॥

[1] अनन्तानुबन्धी

७१ जं समय सीयपरीसह वेदेइ नो तं समय उसिणपरीसह वेदेइ, ज समय उसिणपरीसह वेदेइ नो त समय सीयपरीसह वेदेइ।

७२ जं समय चरियापरीसह वेदेइ नो तं समय सेज्जापरीसह वेदेइ, ज समयं सेज्जापरीसह वेदेइ नो त समय चरियापरीसहं वेदेइ। (श० ८।३२५)

७३ अष्टाना मोहनीयसम्भवाना तस्य मोहाभावेनाभावाद्-द्वाविंशते शेपाश्चतुर्दशपरीपहा इति। (वृ० प० ३९१)

७४ ननु सूक्ष्मसपरायस्य चतुर्दशानामेवाभिधानान्मोह-नीयसम्भवानामष्टानामसम्भव इत्युक्त। (वृ० प० ३९१)

७५ ततश्च सामर्थ्यादनिवृत्तिवादरसपरायस्य मोहनीय-सम्भवानामष्टानामपि सम्भव प्राप्त। (वृ० प० ३९१)

७६,७७ कथ चैतद् युज्यते ? यतो दर्शनसप्तकोपशमे वादर-कपायस्य दर्शनमोहनीयोदयाभावेन दर्शनपरीपहा-भावात्सप्तानामेव सम्भव (वृ० प० ३९१)

७८. नाष्टाना, अथ दर्शनमोहनीयसत्तापेक्षयाऽसावपीष्यत इत्यष्टावेव। (वृ० प० ३९१)

७९ तर्हि उपशमकत्वे सूक्ष्मसम्परायस्यापि मोहनीयसत्ता-सद्भावात्कथ तदुत्था सर्वेऽपि परीपहा न भवन्ति ? (वृ० प० ३९१)

८०,८१. अत्रोच्यते, यस्माद्दर्शनसप्तकोपशमस्योपर्येव नपुसक-वेदाद्युपशमकालेऽनिवृत्तिवादरसम्परायो भवति (वृ० प० ३९१)

८२. स चावश्यकादिव्यतिरिक्तग्रथान्तरमतेन दर्शनत्रयस्य वृहति भागे उपशान्ते शेपे चानुपशान्ते एव स्यात्। (वृ० प० ३९१)

८३ नपुसकवेद चासौ तेन सहोपशमयितुमुपक्रमते (वृ० प० ३९१)

८४ ततश्च नपुसकवेदोपशमावसरेऽनिवृत्तिवादरसम्परायस्य सतो (वृ० प० ३९१)

८५ दर्शनमोहस्य प्रदेशत उदयोऽस्ति न तु सत्तैव, ततस्त-त्प्रत्ययो दर्शनपरीपहस्तस्यास्तीति। (वृ० प० ३९१)

८८. सूक्षम मात्र कहाय, [illegible]
मोह थकी उपजाय, ते परिसह संभव नहीं ॥
८९. ए सगलो विस्तार, टीका मांहे आखियो ।
बुद्धिवंत न्याय विचार, मिलतो हुवै ते मानियै ॥

वा०—इहा कह्यो—मोह आउखो वर्जी छ कर्म बंधै ते सूक्ष्मसंपराय दशमें गुणाठाणे सूक्ष्म लोभ ना जे अणु तेहना वेदवा थकी सरागी कहियै अनें केवलज्ञान नथी ऊपनो ते माटै छद्मस्थ कहियै, तेहनें चवदै परिसह कह्या—आठ परिसह मोहणी थकी जे ऊपना छै ते नथी। तेहनें मोहनीं ना बंध नो अभाव छै। अनें उदय पिण सूक्ष्म मात्र छै, ते भणी मोहनी थी ऊपना आठ परिसह छै ते दशमे गुणठाणे नथी। ते बावीस माहि थी आठ दूर कीजै, तिवारे शेष चउदै रहै, इम कह्यु।

वलि ते वचन ना सामर्थपणा थकी नवमें गुणाठाणें मोहनी ना उदय थकी ऊपना आठू परिसह नों संभव पामियै, ते किम मिलै? जे भणी नवमें गुणठाणें अनुतानबंधी क्रोध मान माया लोभ अनें मिथ्यात मोहणी, मिश्र मोहणी, सम्यक्त्व मोहणी ए सातू प्रकृति नै दर्शण-सप्तक कहियै। तेहनो उपशम हुइ। बादर-संपराय ना धणी नैं दर्शन-मोहणी नो उदय नथी, तिवारै दर्शण-परिसह पिण नथी। अनें चारित्र-मोहणी ना उदय थी सात परिसह छै, ते हुवै पिण आठ किम हुवै? अनें जो नवमें गुणठाणें दर्शन-मोहणी नी सत्ता छै ते सत्ता नी अपेक्षाय एव छीए तो आठ पिण हुवै। इम जो नवमें मोह-सत्ता नी अपेक्षाय आठ परिसहा कहिइं तो दशमें गुणठाणें पिण मोहणी नी सत्ता छै तिहा ए आठ किम न हुइ। न्याय ना समानपणा थकी। अनैं दशमें गुणठाणें तो मोहणी ना उदय ना आठू परिसह वर्ज्या छै। अत्र उत्तर—जे भणी दर्शण-सप्तक उपशम ना ऊपरला छेहड़ा ना काल नै विषेहीज नपुंसक वेद उपशमावा ना आदि नां काल नै विषे अनिवृत्ति बादरसंपराय नवमो गुणठाणो हुवै ते माटै नवमें गुणठाणें दर्शण परिसह हुवै।

तथा आवश्यकादिक व्यतिरिक्त ग्रंथांतर नैं मते इम कह्यु छै ते कहे छै—मिथ्यात-मोहणी, मिश्र-मोहणी, सम्यक्त्व-मोहणी—ए दर्शण-त्रय ना वृहत भाग ते मोटा स्थूल भाग उपशांत कीधे छते अनें शेष भाग ते लघु अत्यंत सूक्ष्म भाग उपशांत नहीज थया हुइ नपुंसक वेद प्रतें ते दर्शण मोह ना अत्यंत सूक्ष्म खंड साथै उपशमायवा नैं उपक्रम करैं ते भणी ते नपुंसक वेद उपशम ना अवसर नैं विषे अनिवृत्ति-बादर सूक्ष्मसंपराय नवमो गुणठाणो हुवै। ते वेला दर्शण-मोह नैं प्रदेश थकी उदय छै पिण निकेवल सत्ता मे ईज नथी ते प्रत्यय निमित्त कारण दर्शण परिसह नवमें गुणठाणें छै, ते भणी आठुइ परिसह हुइं, इति।

अनें सूक्ष्मसंपराय नैं मोह-सत्ता नैं विषे पिण ते परिसह हेतुभूत नथी अनें सूक्ष्म मात्र पिण मोहनीय नो उदय छै ते भणी ते सूक्ष्म मात्र मोह ना उदय थी परिसह नो संभव न हुइ। जे सूक्ष्म लोभ कीट्टिका नो उदय छै ते परिसह नो हेतुभूत

। लोभ-हेतुक नैं परिसह ना अणकहिवा थकीज तिहा मोह ना उदय ना परिसह
।

अथवा कोइ पिण कथंचित किणहि प्रकार करए जो हुइ तो तेहनैं इहा
त अल्पपणैं करी वछ्यो नथी, एहवु टीका मध्ये कह्यु । ते वहुश्रुत विचारी न्याय
ते प्रमाण करियै, वलि केवली वदै ते सत्य । अनैं आठमैं गुणठाणैं उपशम-
क्त्व हुइ, ए दर्शण मोह ना वडा खड उपशमाया अनैं लघु खड उपशमावा लागो
कडेमाणे कडे' ए वीतराग री सरधा रै लेखै उपशम सम्यक्त्व कहियै । उपशमावा
ो तेहनैं उपशमायो कहियै । इण न्याय आठमैं गुणाठाणैं उपशम-सम्यक्त्व वर्त्तमान
े आवे । अनैं जो चोथा सू लेइ सातमा गुणठाणा ताइ पिण उपशम-सम्यक्त्व
ते जो आगली उपशम-सम्यक्त्व हुइ । पछै श्रेणि चढै तो वात न्यारी, एहवू पिण
ाय छै । वलि केवली वदै ते सत्य ।

९०. *वीतराग छद्मस्थ जे, इकविध वधक जाण ।
किता परीसह परूपिया, ग्यारम बारम ठाण ?
९१. जिन भाखै इमहीज छै, षट विध-वंधक जेम ।
चउद परीसह परूपिया, द्वादश वेदै तेम ।।

९२. सीत वेदै जे समय मे, उष्ण न वेदै वदीत ।
उष्ण वेदै जे समय में, वेदै नहि ते सीत ।।
९३. चरिया वेदै जे समय मे, वेदै नहि ते सेज ।
सेज्या वेदै जे समय मे, चरिया अवेद कहेज ।।
९४. एक कर्म बधै तेहनैं, सजोगी केवली जाण ।
किता परीसह तेहनै, तेरसमे गुणठाण ।।
९५. जिन कहै ग्यार परीसहा, नव पुण वेदै तेम ।
शेष सहु विस्तार ते, षटविध-बधक जेम ।।

९६. कर्म न वधै तेहनैं, अजोगी केवली एह ।
किता परीसह परूपिया, चोदशमैं गुण जेह ।।
९७. जिन भाखै सुण गोयमा ! तास परिसहा ग्यार ।
नव पुण ते वेदै अछै, ए जिन वयण उदार ।।
९८. सीत वेदै जे समय मे, उष्ण न वेदै वदीत ।
उष्ण वेदै जे समय मे, वेदै नहि ते सीत ।।

९९ चरिया वेदै जे समय मे, वेदै नहि ते सेज ।
सेज्ज वेदै ते समय मे, चरिया अवेद कहेज[1] ।।

९० एक्कविहवन्धगस्स ण भते ! वीयरायछउमत्थस्स कति
परीसहा पण्णत्ता ?
९१ गोयमा ! एव चेव जहेव छव्विहवन्धगस्स ।
(श० ८।३२६)
'एव चेवे' त्यादि चतुर्दश प्रज्ञप्ता द्वादश पुनर्वेदयती-
त्यर्थ (वृ० प० ३९२)
९२,९३. शीतोष्णयोश्चर्याशय्ययोश्च पर्यायेण वेदनादिति
(वृ० प० ३९२)

९४. एगविहवन्धगस्स ण भते ! सजोगीभवत्थकेवलिस्स
कति परीसहा पण्णत्ता ?
९५ गोयमा ! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता । नव पुण
वेदेइ । सेस जहा छव्विहवन्धगस्स ।
(श० ८।३२७)
९६ अवन्धगस्स ण भते ! अयोगिभवत्थकेवलिस्स कति
परीसहा पण्णत्ता ?
९७ गोयमा ! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता । नव पुण
वेदेइ—
९८ ज समय सीयपरीसह वेदेइ नो त समय उसिणपरी-
सह वेदेइ, ज समय उसिणपरीसह वेदेइ नो त समय
सीयपरीसहं वेदेइ,
९९ ज समय चरियापरीसह वेदेइ नो त समय सेज्जापरी-
सह वेदेइ, ज समय सेज्जापरीसह वेदेइ नो त समय
चरियापरीसह वेदेइ । (श० ८।३२८)

*लय : शिवपुर नगर सुहामणो
१ कहा कितने परीपह होते है और जघन्यत तथा उत्कर्षत एक साथ कितने
ीपह हो सकते है ? कौन-कौन से परीपह एक साथ नही होते ? इन प्रश्नो

## ढाल : १५३

**दूहा**

१ कह्या परिसहा तेह विषे, उष्ण परीसह जाण ।
तसु हेतू रवि तास हिव, वक्तव्यता पहिछाण ॥

*प्रभु ! अरज करूं छूं वीनती । (ध्रुपद)

२. हो प्रभु ! जंबूद्वीप नामा द्वीप में, ए तो सूरज दोय सुजाण हो ।
हो प्रभु ! ऊगवाना जे काल नां, मुहूर्त्त विषे पहिछाण हो ॥

३ देखणहार जे मनुष्य छै, तेहनां स्थान तणी अपेक्षाय ।
दूर ते अलग रह्यो रवि, मूल ते निकट देखाय ॥

४. मध्यांत मध्य विभाग में, ओ तो गगन तणो मध्य धार ।
अथवा दिवस ना मध्य नां, तिण मुहूर्त्त विषे विचार ॥

५. देखणहार नां स्थान अपेक्षया, मूल कहिता नजीक छै एह ।
द्रष्टा-प्रतीति अपेक्षया, दूर कहितां ते अलग दीसेह ॥

६. आथमता मुहूर्त्त नें विषे, रवि दूर रह्यो पिण जेह ।
अनेक सहस्र जोजन रह्यो, मूल कहितां ते निकट दीसेह ॥

७. †जे ऊगतो आथमत भानु, इहां थी अति दूर ही ।
अनेक सहस्र जोजन पिण, भू थकी दीसै निकट ही ॥

८. मध्यान ही शत अष्ट जोजन, भू थकी तो निकट ही ।
रवि उदय अस्तम पेक्षया, ते दूर दीसै छै सही ॥

१. अनन्तरं परीषहा उक्तास्तेषु चोष्णपरीषहस्तद्धेतवश्च सूर्या इत्यत सूर्यवक्तव्यताया निरूपयन्नाह—
(वृ० प० ३९२)

२. जंबुद्दीवे ण भंते ! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि

३. दूरे य मूले य दीसंति ?
'दूरे च', द्रष्टृस्थानापेक्षया व्यवहिते देशे 'मूले च' आसन्ने (वृ० प० ३९३)

४. मज्झंतियमुहुत्तंसि
मध्यो—मध्यमोऽन्तो विभागो गगनस्य दिवसस्य वा मध्यान्तः (वृ० प० ३९३)

५. मूले य दूरे य दीसंति ?
'मूले च' आसन्ने देशे द्रष्टृस्थानापेक्षया 'दूरे च' व्यवहिते देशे द्रष्टृप्रतीत्यपेक्षया (वृ० प० ३९३)

६. अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति ?

८. द्रष्टा हि मध्याह्ने उदयास्तमनदर्शनापेक्षयाऽऽसन्नं रविं पश्यति योजनशताष्टकेनैव तदा तस्य व्यवहितत्त्वात् ।
(वृ० प० ३९३)

---

के उत्तर प्रवचन सारोद्धार गाथा ६९० एवं ६९१ में उपलब्ध हैं। वे गाथाएं अविकल रूप से उद्धृत की जा रही हैं—

वावीसं बायरसंपराय चउदस य सुहुम (संप) रायम्मि ।
छउमत्थ वीयरागे चउदस इक्कारस जिणम्मि ॥१॥
वीसं उक्कोसपए वट्टंति जहन्नओ य एक्को य ।
सीओसिणचरिय निसीहिया य जुगवं न वट्टंति ॥२॥

*लय : अहो प्रभु चन्द जिनेश्वर
†लय : पूज मोटा भांजै तोटा

९. *अहो मुनि जिन कहै हंता गोयमा ! जंबूद्वीप विषे रवि दोय ।
गोयम ! अलग छता उदय काल में,
मनुष्य नै निकट दीसै सोय ॥

१०. तं चेव जाव कहीजियै, आथमै तेह मुहूर्त्त मांय ।
दूर ते अलगा रह्यां रवि, इहा मनुष्य नैं निकट देखाय ॥

९,१०. हता गोयमा ! जंबुद्दीवे ण दीवे सूरिया उग्गमण-मुहुत्तसि दूरे य त चेव जाव (स० पा०) अत्थमण-मुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति । (श० ८।३२९)

११ जबूद्वीप नामा द्वीप में, रवि उदय मुहूर्त्त विषे ताहि ।
मध्य मुहूर्त्त दोपहर में, वलि आथमै ते मुहूर्त्त माहि ॥

११. जबुद्दीवे ण भते ! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तसि मज्झतियमुहुत्तसि य अत्थमणमुहुत्तसि य

१२ समभूतला नी अपेक्षया, ऊंचो आठसै योजन जोय ।
सर्व ठाम सरिखा हुवै ? काइ जिन कहै हता होय ॥

१२ सव्वत्थ समा उच्चत्तेण ?
हता गोयमा ! .... (श० ८।३३०)
समभूतलापेक्षया सर्वत्रोच्चत्वमष्टौ योजनशतानीति-कृत्वा (वृ० प० ३९३)

१३. जबूद्वीप में जो रवि, उदय मध्य आथमतै काल ।
भू थकी सगलै सारिखो, काइ ऊचपणै करि न्हाल ॥

१३ जइ ण भते ! जबुद्दीवे दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तसि मज्झतियमुहुत्तसि य अत्थमणमुहुत्तसि य सव्वत्थ समा उच्चत्तेण,

१४ किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यो, उदय आथमतो रवि एह ।
दूर रह्यो दीसै निकट ही, मध्य निकट पिण दूर दीसेह ?

१४ से केण खाइ अट्ठे ण भते ! एव वुच्चइ—जबुद्दीवे ण दीवे सूरिया
उग्गमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति ? जाव अत्थमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति ?

१५. वीर कहै लेश्या तणा, प्रतिघात करिनै एह ।
रवि ऊगवा नां मुहूर्त्त विषे, दूर रह्यो पिण निकट दीसेह ॥

१५. गोयमा ! लेसापडिघाएण उग्गमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति

## सोरठा

१६. रवि दूरपणां थी जाण, तेज तणा प्रतिघात कर ।
तेह देस नैं माण, प्रसरण न हुवै तेज नों ॥

१६. तेजस. प्रतिघातेन दूरतरत्वात् तद्देशस्य तदप्रसरणेने-त्यर्थः । (वृ० प० ३९३)

१७. थयो लेश प्रतिघात, दूर रह्यो पिण एह रवि ।
सुखे दीसवो थात, नजीक दीसै ते भणी ॥

१७. लेश्याप्रतिघाते हि सुखदृश्यत्वेन दूरस्थोऽपि स्वरूपेण सूर्य आसन्नप्रतीतिं जनयति । (वृ० प० ३९३)

१८. *तेज नै प्रबलपणै करी, मध्य दिवस मुहूर्त्त ते काल ।
रवि ढूकड़ो निकट रह्यो थको, दूर अलग दीसतो न्हाल ॥

१८. लेसाभितावेण मज्झतियमुहुत्तसि मूले य दूरे य दीसति

## सोरठा

१९. प्रबल तेज करि ताय, सूर्य निकट रह्यो छतो ।
दुखे दीसवो थाय, अलगो दीसै ते भणी ॥

१९ तेज प्रतापे च दुर्दृश्यत्वेन प्रत्यासन्नोऽप्यसौ दूरप्रतीतिं जनयतीति । (वृ० प० ३९३)

२०. *लेश्या ते रवि ना तेज नां, प्रतिघात करीनै हुंत ।
आथमता मुहूर्त्त नैं विषे, दूर रह्यो पिण निकट दीसंत ॥

२० लेसापडिघाएण अत्थमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति ।

२१. तिण अर्थे करि गोयमा ! रवि ऊगता मुहूर्त्त माय ।
दूर थकी दीसै ढूकड़ा, जाव अस्तम जाव देखाय ॥

२१ से तेणट्ठे ण गोयमा ! एव वुच्चइ—जबुद्दीवे ण दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति जाव अत्थमणमुहुत्तसि दूरे य मूले य दीसति ।
(श० ८।३३१)

*लय : अहो प्रभु चन्द जिनेश्वर

### सोरठा

२४. जेह खंड आकाश, तेह खंड प्रति जे रवि।
निज तेजे करि तास, व्यापै ते खेत्रज कह्युं॥

२४. इह च यदाकाशखण्डमादित्यः स्वतेजसा व्याप्नोति तत् क्षेत्रमुच्यते (वृ० प० ३९३)

२५. 'गयो खेत्र नहिं जाय, अतीत खेत्र उलंघियो।
जाय वर्त्तमान माय, जावा लागो ते भणी॥

२६ अनागत जे खेत, ते प्रति पिण जावै नही।
उद्योत न करै तेथ, ए पिण वर्ज्यो ते भणी॥

२७. जावै छै ए जान, वर्त्तमान वाची शवद।
ते माटै वर्त्तमान, खेत्र प्रतै जावै रवि॥

२८. गयो ए शब्द अतीत, जास्यै काल अनागते।
ए विहु प्रश्न सगीत, पूछा न करी छै इहां'॥
(ज० स०)

वा०—इहा पाठ मे पूछा इम करी—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं गच्छंति ? पडुप्पन्नं खेत्तं गच्छंति ? अणागयं खेत्तं गच्छंति ?

इहा गच्छति ए शब्द वर्त्तमान काल वाची छै। वर्त्तमान काल मे सूर्य जे खेत्रे जाय तेहनी पूछा करी ते माटै गच्छति पाठ कह्यो। गये काल नी पूछा हुवै तो गच्छसु पाठ हुवै, ते इहा नही। आगमिया काल नी पूछा मे गच्छिस्सति पाठ हुवै, ते पिण इहा नही। ते माटै गच्छति ए वर्त्तमान काल मे सूर्य जाय, तेहनीज पूछा करी, जद भगवान वर्त्तमान नो ज जाब दियो।

२९. *जंबूद्वीप में वे रवि, काइ गया खेत्र प्रति ताय।
अवभासै छै ते सही, काई थोड़ो उद्योत कराय?

२९ जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं ओभासंति ?
अवभासयतः ईषदुद्योतयतः (वृ० प० ३९३)

३०. तथा वर्त्तमान जे खेत्र नैं, अवभासै करै अल्प उद्योत।
अथवा खेत्र अनागत प्रतै, अवभासै करै अल्प जोत?

३० पडुप्पन्नं खेत्तं ओभासंति ? अणागयं खेत्तं ओभासंति ?

३१ जिन भाखै गया खेत्र में, नहिं अवभासै छै ताहि।
अवभासै खेत्र वर्त्तमान में, अनागत अवभासै नाहि॥

३१. गोयमा ? नो तीयं खेत्तं ओभासंति, पडुप्पन्नं खेत्तं ओभासंति नो अणागयं खेत्तं ओभासंति। (श० ८।३३३)

३२. स्यूं फर्श्यो तेजे करी, अवभासै अल्प उद्योत?
कै तेजे अणफर्शियो, अवभासै अल्पज जोत?

३२ तं भंते ! किं पुट्ठं ओभासंति ? अपुट्ठं ओभासंति ?

३३. जिन भाखै फर्श्यो थको, अवभासै अल्प उद्योत।
अणफर्श्यो अवभासै नही, जाव नियमा छ दिशि अल्प जोत॥

३३. गोयमा ! पुट्ठं ओभासंति, नो अपुट्ठं ओभासंति जाव नियमा छद्दिसिं (श० ८।३३४)

---

*लय : अहो प्रभु चन्द जिनेश्वर

३४. जंबूद्वीप में बे रवि, गये खेत्रें अधिक उद्योत।
इम जावत नियमा छ दिशे, काइ अतिशय करि अति जोत ॥

३५. इम तपै छै उष्ण किरण थकी, इम भासति शोभै जेह।
यावत नियमा छ दिशे, विहुं सूर्य नी बात एह ॥

३६. कह्यो तेहिज अर्थ जेह, शिष्य नै हित अर्थे वलि।
प्रकारातरे कहेह, वक्तव्यता सूरज तणी ॥

३७. *जंबूद्वीप मे बे रवि, स्यूं खेत्र अतीत रै माय।
अवभासनादि क्रिया हुवै, कज्जइ ते भवति कहाय ॥

३८. तथा वर्त्तमान खेत्र नै विषे, अवभासनादि क्रिया होय?
तथा खेत्र अनागत नै विषे, क्रिया अवभासनादिक जोय?

३९. जिन भाखै गया खेत्र में, अवभासनादि क्रिया नाय।
क्रिया वर्त्तमान खेत्रे हुवै, खेत्र अनागत नहि थाय ॥

४०. अवभासनादि तिका क्रिया, स्यू तेजे करि फर्श्या होय।
अथवा क्रिया तेजे करी, अणफर्श्या थी हुवै सोय?

४१. जिन भाखै तेजे फर्शी हुवै, पिण अणफर्शी नहिं होय।
जावत नियमा छ दिशे, पाठ इहा लग कहिवो जोय ॥

४२. जंबूद्वीप मे बे रवि, खेत्र केतलो ऊर्द्ध तपंत?
केतलो खेत्र हेठो तपै, तिरछो खेत्र कितो तपै भंत!

४३. सूर्य तणा विमाण थी, इकसौ जोजन ऊर्द्ध तपत।
ऊचो ताप खेत्र एतलोज छै, नीचो जोजन अठारसौ हुत ॥

**सोरठा**

४४. रवि-मंडल थी हेठ, अठसौ जोजन समभूतलो।
तेहथी नीचो नेठ, सहस्र जोजन ऊडी विजय ॥

४५. अधोलोक छै तेह, त्या ग्रामादिक जे हुइ।
जिहा उद्योत करेह, अठदश सौ तल इम कह्या ॥

४६. *तिरछो सैंताली सहस्र जोजन तपै,
वलि दोय सौ तेसठ जाण।
जोजन ना साठिया भाग माहिला, एकवीस भाग पहिछाण ॥

**सोरठा**

४७. सर्वोत्कृष्ट दिन एह, चक्षु फर्श अपेक्षया।
पूनम आसाढी जेह, सूर्य भितर मंडले ॥

*लय : अहो प्रभु चंद जिनेश्वर

३४. जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं उज्जोवेंति?
एवं चेव जाव नियमा छद्दिसिं। (श० ८।३३५)

३५. एवं तवेंति, एवं भासंति जाव नियमा छद्दिसिं। (श० ८।३३६)

३६. उक्तमेवार्थं शिष्यहिताय प्रकारान्तरेणाह— (वृ० प० ३९३)

३७. जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरियाणं किं तीए खेत्ते किरिया कज्जइ?
'किरिया कज्जइ' त्ति अवभासनादिका क्रिया भवतीत्यर्थः. (वृ० प० ३९३)

३८. पडुप्पन्ने खेत्ते किरिया कज्जइ? अणागए खेत्ते किरिया कज्जइ?

३९. गोयमा! नो तीए खेत्ते किरिया कज्जइ, पडुप्पन्ने खेत्ते किरिया कज्जइ, नो अणागए खेत्ते किरिया कज्जइ। (श० ८।३३७)

४०. सा भंते! किं पुट्ठा कज्जइ? अपुट्ठा कज्जइ?
'पुट्ठ' त्ति तेजसा स्पृष्टात् (वृ० प० ३९३)

४१. गोयमा! पुट्ठा कज्जइ, नो अपुट्ठा कज्जइ जाव नियमा छद्दिसिं (श० ८।३३८)

४२. जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरिया केवतियं खेत्तं उड्ढं तवंति? केवतियं खेत्तं अहे तवंति? केवतियं खेत्तं तिरियं तवंति?

४३. गोयमा? एगं जोयणसयं उड्ढं तवंति, अट्ठारस जोयणसयाइं अहे तवंति।

४४,४५. सूर्यादष्टासु योजनशतेषु भूतलं भूतलाच्च योजनसहस्रेऽधोलोकग्रामा भवन्ति तांश्च यावदुद्द्योतनादिति। (वृ० प० ३९३)

४६. सीयालीसं जोयणसहस्साइं दोण्णि य तेवट्ठे जोयणसए एक्कवीसं च सट्ठिभाए जोयणस्स तिरियं तवंति। (श० ८।३३९)

४७. एतच्च सर्वोत्कृष्टदिवसे चक्षुः स्पर्शापेक्षयाऽवसेयमिति। (वृ० प० ३९३)

चद्र सूय ग्रह ॥,

५०. ते सुर स्यूं ऊद्धं ऊपना ? जिम जीवाभिगम विमास ।
तिमहिज कहिवूं सर्व ही, जाव उत्कृष्ट विरह छ मास ॥

५०. त भ . . .
जहा जीवाभिगमे (३) तहेव निरवसेस जाव—
(श० ८।३४०)
.......उक्कोसेण छम्मासा । (श० ८।३४१)

५१. मानुपोत्तर वाहिरे, जिम जीवाभिगमे जोय ।
जाव इद्र स्थान ऊपजवा तणो, प्रभु ! विरह केतलो होय ?
५२. जिन कहै धुर इक समय नुं, उत्कृष्ट छ मास कहेस ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! कह्यु, अष्टम शतक नों अष्टमुदेश ॥

५१,५२. वहिया ण भंते ! माणुसुत्तरपव्वयस्स...... जहा
जीवाभिगमे (३) जाव— (श० ८।३४२)
इदट्ठाणे ण भंते ! केवतिय काल उववाएण विरहिए
पण्णत्ते ?
गोयमा ! जहण्णेण एक्कं समय, उक्कोसेण
छम्मासा । (श० ८।३४३)
सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति । (श० ८।३४४)

५३. एक सो तेपनमी कही, आ तो ढाल रसाल उदार ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' सुख संपति सार ॥

अष्टमशते अष्टमोद्देशकार्थ ॥८।८॥

## ढाल : १५४

### दूहा

१. अष्टम उद्देशक विषे, देव जोतिपी जोय ।
वक्तव्यता तेहनी कही, तिका स्वभाविक होय ॥
२. ते माटै हिवै वीससा, तथा प्रयोगिक वध ।
कहियै छै वर्णन तसु, जिन वच अमल अमंद ॥

१,२. अष्टमोद्देशके ज्योतिषां वक्तव्यतोक्ता, सा च
वैश्रसिकीति वैश्रमिक प्रायोगिक च वन्ध प्रतिपिपाद-
यिपुर्नवमोद्देशकमाह— (वृ० प० ३९४)

३. कतिविध वध कह्यो प्रभु ! जिन कहै दोय प्रकार ।
प्रयोग-वध प्रथम कह्यो, द्वितीय वीससा धार ॥

३. कतिविहे ण भंते ! वन्धे पण्णत्ते ?
गोयमा ! दुविहे वधे पण्णत्ते, त जहा—पयोगवधे
य वीससावधे य । (श० ८।३४५)

४. जीव प्रयोगे वध करचूं, प्रयोग-वंध ते पेख ।
वंध स्वभाव थकी थयो, तेह वीससा देख ॥

४ 'पओगवधे य' त्ति जीवप्रयोगकृत 'वीससावधे य'
त्ति स्वभावसम्पन्न । (वृ० प० ३९४)

†जय-जय वाणी जिन तणी ॥ (ध्रुपद)

५. वीससा-वध प्रभु ! कतिविधे ? जिन कहै द्विविध रीत ।
आदि-सहित वध वीससा, दूजो आदि-रहीत ॥

५ वीससावधे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सादीयवीससा-
वधे य अणादीयवीससावधे य । (श० ८।३४६)

*लय : अहो प्रभु चन्द जिनेश्वर
†लय : वीरमती कहै चंद नैं

वा० —जिम आसन्न ते नजीक वीससा-बंध छै, ते माटै प्रथम वीससा-बंध कहै छै—

६. आदि-रहित बंध वीससा, कतिविध भगवान ?
जिन कहै त्रिविध परूपिया, सुणै सूरत दे कान ॥

७ धुर धर्मास्तिकाय नां, प्रदेशां नो कहाव ।
मांहोमांहि बंध छै तिको, आदि-रहित स्वभाव ॥

८. फुन अधर्मास्तिकाय ना, प्रदेशां नो कहाव ।
मांहोमांहि बंध छै तिको, आदि-रहित स्वभाव ॥

९. वलि आगासत्थिकाय नों, प्रदेशां नो कहाव ।
माहोमाहि बंध छै तिको, आदि-रहित स्वभाव ॥

१०. प्रभु ! धर्मास्तिकाय नो, बंध प्रदेशा नो संध ।
आदि-रहित वीससा तिको, देश-बंध सर्व-बंध ॥

## सोरठा

११. देश थकी जे होय, देश तणीज अपेक्षया ।
बंध तिको अवलोय, सांकल कटका नी परे ॥

१२. सर्व थकी जे थाय, सर्वात्माइ बंध ते ।
सर्व-बंध कहिवाय, क्षीर नीर जिम जाणज्यो ॥

१३. *जिन भाखै देश बंध है, सर्व बंध न होय ।
न्याय कहूं छूं एहनों, सुणजो सहु कोय ॥

## सोरठा

१४. जे धर्मास्तिकाय, तेहना प्रदेशां तणो ।
कहियै मांहोमाय, संफर्शे करि देश बंध ॥

१५. सर्व बंध नहिं थात, तिहा जे एक प्रदेश नों ।
अन्य सहु प्रदेश साथ, अन्योऽन्य मिलिया नही ॥

१६. एक प्रदेश मे जोय, सर्व प्रदेश मिल्या छता ।
धर्मास्ति नों सोय, एक प्रदेशपणुज ह्वै ॥

१७. असंखेज्ज जे ताय, प्रदेशपणे हुवै नही ।
ते भणी देश बंध थाय, पिण नहिं छै ते सर्व बंध ॥

१८. *इम अधर्मास्तिकाय नों, इम आकास्तिकाय ।
आदि-रहित बंध वीससा, देश-बंध कहाय ॥

१९. प्रभु ! धर्मास्तिकाय नो, अन्योऽन्य अनाद ।
वीससा बंध अद्धा कितो, रहै काल थी वाद ?

---

लय : वीरमती कहै चंद नै

वा०—यथासत्तिन्यायमाश्रित्याह— (वृ० प० ३९४)

६. अणादीयवीससाबंधे ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, त जहा—

७ धम्मत्थिकायअण्णमण्णअणादीयवीससाबंधे,

८. अधम्मत्थिकायअण्णमण्णअणादीयवीससाबंधे,

९. आगासत्थिकायअण्णमण्णअणादीयवीससाबंधे ।
(श० ८।३४७)

१०. धम्मत्थिकायअण्णमण्णअणादीयवीससाबन्धे ण भंते ! किं देसबन्धे ? सव्वबन्धे ?

११. देशतो—देशापेक्षया बन्धो देशबन्धो यथा सङ्कलिकाकटिकाना, (वृ० प० ३९५)

१२. सर्वत सर्वात्मना बन्ध सर्वबन्धो यथा क्षीरनीरयो ।
(वृ० प० ३९५)

१३. गोयमा ! देसबन्धे, नो सव्वबन्धे

१४. धर्मास्तिकायस्य प्रदेशाना परस्परसस्पर्शेन व्यवस्थितत्वाद्देशबन्ध एव । (वृ० प० ३९५)

१५-१७ न पुन. सर्वबन्ध तत्र हि एकस्य प्रदेशस्य प्रदेशान्तरै सर्वथा बन्धेऽन्योऽन्यान्तर्भावेनैकप्रदेशत्वमेव स्यात् नासख्येयप्रदेशत्वमिति । (वृ० प० ३९५)

१८. एव अधम्मत्थिकायअण्णमण्णअणादीयवीससाबन्धे वि, एव आगासत्थिकायअण्णमण्णअणादीयवीससाबन्धे वि ।
(श० ८।३४८)

१९ धम्मत्थिकायअण्णमण्णअणादीयवीससाबन्धे ण भंते ! कालओ केवच्चिर होइ ?

जिन कहै त्रिविध परूपिया, सुणजो आण उमेद ॥
२२. बधन-प्रत्यय धुर कह्यो, भाजन-प्रत्यय बीजो ।
परिणाम-प्रत्यय तीसरो, तसु अर्थ सुणीजो ॥

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, त जहा—
२२. बन्धणपच्चइए, भायणपच्चइए, परिणामपच्चइए ।
(श० ८।३५०)

## दूहा

२३. बाधियै जे एणे करी, बंधन तेह कहेह ।
वांछित स्निग्ध आदि गुण, प्रत्यय हेतू तेह ॥
२४. भाजन आधारभूत जे, तेहिज प्रत्यय हेतु ।
जेहनै विषे अछै तसु, भाजन-प्रत्यय वेतु ॥
२५. परिणाम ते अन्य रूप मे, गमन जायवो जाण ।
तेहिज प्रत्यय हेतु ज्या, परिणाम-प्रत्यय माण ॥

२३ बध्यतेऽनेनेति बन्धन—विवक्षितस्निग्धतादिको गुण स एव प्रत्ययो हेतुर्यत्र स । (वृ० प० ३६५)
२४,२५. एव भाजनप्रत्यय परिणामप्रत्ययश्च, नवर भाजन—आधार परिणामो—रूपान्तरगमन ।
(वृ० प० ३६५)

२६. *बंधन-प्रत्यय स्यू प्रभु ! तव भाखै जिनचद ।
जे परमाणु-पोग्गला, दुप्रदेशिया खध ॥
२७. तीन प्रदेशिया जाव ते, दश प्रदेशिया देख ।
सख-असख प्रदेशिया, अनत प्रदेशिया पेख ॥
२८. विपम मात्रा जेहनै विषे, ते वेमात्रा कहीजै ।
तेहिज छै चीगटापणु, वेमायणिद्ध लीजै ॥

२९. विपम मात्रा जेहनै विषे, ते वेमात्रा कहीजै ।
तेहिज छै लूखापणु, वेमाय लुक्ख लीजै ॥
३०. विपम मात्रा जेहनै विषे, ते वेमात्रा प्रत्यक्ख ।
तेहिज निद्ध लुक्खापणु, वेमायणिद्धलुक्ख ॥
३१. सम गुण निद्ध वधै नही, सम गुण निद्ध साथ ।
सम गुण लुक्ख वधै नही, सम गुण लुक्ख सघात ॥
३२. विपम मात्रा निद्ध ते, निद्ध साथ वंधात ।
विपम मात्रा लुक्ख ते, वधै लुक्ख विपमात ॥
३३. वे गुण निद्ध जे चीगटो, अन्य वे गुण निद्ध ।
ते साथे वध हुवै नही, सम गुण माटै प्रसिद्ध ॥
३४. वे गुण लुक्खो जेह छै, वली अनेरो जेह ।
वे गुण लुक्खो तेह थी, ए पिण नहि वधेह ॥
३५. इणविध वध हुवै नही, तो हिव किणविध होय ?
चित्त लगाई साभलो, वारू जिन वच जोय ॥

२६. से कि त बन्धणपच्चइए ?
बन्धणपच्चइए—जण्ण परमाणुपोग्गलदुप्पदेसिय-
२७. तिप्पदेसिय जाव दसपदेसिय-सखेज्जपदेसिय-असखेज्ज-पदेसिय-अणतपदेसियाण खधाण
२८ वेमायनिद्धयाए
विषमा मात्रा यस्या सा विमात्रा सा चासौ स्निग्धता चेति विमात्रस्निग्धता । (वृ० प० ३६५)
२९ वेमायलुक्खयाए
३० वेमायनिद्धलुक्खयाए
३१,३२ समनिद्धयाए बन्धो न होइ समलुक्खयाए वि न होइ ।
वेमायनिद्धलुक्खत्तणेण बन्धो उ खधाण ॥
(वृ० प० ३६५)
३३ समगुणस्निग्धस्य समगुणस्निग्धेन परमाणुद्व्यणुकादिना बन्धो न भवति । (वृ० प० ३६५)
३४. समगुणरूक्षस्यापि समगुणरूक्षेण (वृ० प० ३६५)

---

*लय : वीरमती कहै चंद नै

३६. विपम मात्रा चीगटो, चीगटा थी वंधै ।
इमज लुक्ख लुक्ख थी बधै, खध नो वध सधै ॥
३७. निद्ध गुण परमाणु आदि जे, अन्य निद्ध गुण साथ ।
वध हुवै तो निश्चै करि, गुण वे आदि अधिकात ॥
३८. एक परमाणु आदि जे, इक गुण निद्ध जोय ।
वे गुण निद्ध वीजो अणु, ते साथै वध होय ॥
३९ लुक्ख गुण परमाणु आदि जे, अन्य लुक्ख गुण साथ ।
वंध हुवै तो निश्चै करि, गुण वे आदि अधिकात ॥
४०. एक परमाणु आदि जे, इक गुण लुक्ख जोय ।
वे गुण लुक्ख वीजो अणु, ते साथै वध होय ॥
४१. इम विपम मात्रा करि, निद्ध निद्ध साथ बंधात ।
वलि विपम मात्रा करि, लुक्ख वधै लुक्ख साथ ॥
४२. हिव निद्ध लुक्ख विहु तणो, बध हुवै मांहोमाय ।
ते आश्री कहियै अछै, सुणज्यो चित्त ल्याय ॥
४३. वधै लुक्खो नै चीगटो, एक जघन्य गुण वरजी ।
विपम तथा सम नै विपे, वध कह्यो इम जिणजी ॥
४४. इक गुण निद्ध ते चीगटो, इक गुण लुक्ख संघात ।
एह जघन्य गुण नहिं वंधै, अन्य विषे बंध थात ॥
४५. इक पुद्‌गल निद्ध इक गुणे, दूजो पुद्‌गल ताय ।
लुक्ख वे त्रिण गुण आदि दे, विपम गुण इम वधाय ॥
४६. इक पुद्‌गल निद्ध वे गुणे, अन्य पुद्‌गल जोय ।
वे गुण लुक्ख साथे वधै, ए सम गुण वध होय ॥
४७. इक पुद्‌गल निद्ध त्रिण गुणे, तीन गुण लुक्ख साथ ।
इत्यादिक सम गुण नै विषे, बंध कह्यो जगनाथ ॥
४८. इम निद्ध लुक्ख बधै अछै, सम विपम सघात ।
निद्ध लुक्ख पिण गुण जघन्य ते, एक गुण न वंधात ॥
४९ वधन नो पूरव कह्यो, प्रत्यय कहिता हेतु ।
विमात्र स्निग्ध आदि थी, वध ऊपजै वेतु ॥
५०. एक समय रहै जघन्य थी, उत्कृष्ट थी जेह ।
काल असख्यातो रहै, असख कालचक्र एह ॥
(वंधन-प्रत्यय ए कह्यो)
५१. भाजन-प्रत्यय कवण ते ? भाजन कहियै आधार ।
प्रत्यय हेतू जेह छै, भाजन-प्रत्यय विचार ॥
५२. जे जीर्ण जूनी सुरा तणो, जाडी थावा नों जेह ।
तेहिज लक्षण रूप नें, बध भाख्यो एह ॥

३६ यदा पुनर्विपमा मात्रा तदा भवति बन्ध । (वृ० प० ३६५)

३७,३८ निद्धस्स निद्धेण दुयाहिएण, (वृ० प० ३६५)

३९,४०. लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिएण । (वृ० प० ३६५)

४३,४४. निद्धस्स लुक्खेण उवेइ बन्धो,
जहन्नवज्जो विसमो समो वा ॥ (वृ० प० ३६५)

४९ बन्धणपच्चएण बन्धे समुप्पज्जइ,
बन्धनस्य—बन्धस्य प्रत्ययो—हेतुरुक्तरूपविमात्रस्निग्ध-तादिलक्षणो बन्धनमेव वा··· (वृ० प० ३६५)

५० जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेण असखेज्ज कालं । से त्तं बन्धणपच्चइए । (श० ८।३५१)
असख्येयोत्सर्पिण्यवसर्प्पिणीरूप (वृ० प० ३६५)

५१. से किं त भायणपच्चइए ?
भायणपच्चइए—

५२ जण्ण जुण्णसुर
तत्र जीर्णसुराया स्त्यानीभवनलक्षणो बन्ध· । (वृ० प० ३६५)

५४ ते भाजन-प्रत्यय तिण करि, बंध ऊपजै तेज ।
अन्तर्मुहूर्त्त जघन्य थी, उत्कृष्ट काल संखेज ॥
(भाजन-प्रत्यय ए कह्यो)

५४. भायणपच्चइए णं बंधे समुप्पज्जइ, जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं भायणपच्चइए।
(श० ८।३५२)

५५. परिणाम-प्रत्यय कवण ते ? अभ्र संध्याकाल ।
अभ्ररूंख यावत कह्यो, तीजा शतक विचाल ॥

५५. से किं तं परिणामपच्चइए?
परिणामपच्चइए—जण्णं अब्भाणं, अब्भरुक्खाणं जहा तइयसए (सू० ३।२५३)

५६. जाव अमोघा जाणियै, दिशि-दाह जणाय ।
ए परिणाम-प्रत्यय करि, बंध ऊपजै ताय ॥

५६. जाव अमोहाणं परिणामपच्चइए णं बंधे समुप्पज्जइ,

५७. एक समय रहै जघन्य थी, उत्कृष्ट छ मास ।
परिणाम-प्रत्यय ए कह्यो, तीजो भेद विमास ॥

५७. जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा। सेत्तं परिणामपच्चइए

५८. एतलै आदि-सहित ए, वीससा-बंध आख्यो ।
एतलै वीससा-बंध ए, देश नव्यासी नों दाख्यो ॥

५८. सेत्तं सादीयवीससाबंधे। सेत्तं वीससाबंधे।
(श० ८।३५३)

५९. एक सौ चोपनमी कही, वारू ढाल विशाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगलमाल ॥

## ढाल : १५५

### दूहा

१. प्रयोग-बंध ते कवण है ? जिन कहै त्रिण विध संध ।
प्रयोग जीव व्यापार करि, जीव-प्रदेश नो बंध ॥
२. अथवा जीव-व्यापार करि, औदारिक जे आद ।
बहु पुद्गल नो बंध ते, प्रयोग-बंध संवाद ॥

१,२ से किं तं पओगबंधे ?
पओगबंधे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
'प्रयोगबन्धे' त्ति जीवव्यापारबन्धः स च जीवप्रदेशाना-
मौदारिकादिपुद्गलानां वा। (वृ० प० ३९८)

३. आदि-रहित अंत-रहित धुर, आदि-सहित अंत-रहित ।
आदि-सहित अंत-सहित ए, तृतीय भंग कथित ॥

३. अणादीए वा अपज्जवसिए, सादीए वा अपज्जवसिए
सादीए वा सपज्जवसिए।

*गोयम सांभलै रे।(ध्रुपद)

४. तिहां जे आदि-रहित छै रे, अंत-रहित है जेह ।
अठ मध्य जीव प्रदेश नो रे, बंध कह्यो छै तेह के ॥

४. तत्थ णं जे से अणादीए अपज्जवसिए से णं अट्ठण्हं
जीवमज्झपएसाणं

५. असंख प्रदेशिक जीव ना, अष्ट जे मध्य प्रदेश ।
तेहनों बंध अनादि है, अंत-रहित सुविशेष ॥

५ अस्य किल जीवस्यासंख्येयप्रदेशिकत्वाद्योऽष्टौ ये मध्य-
प्रदेशास्तेषामनादिरपर्यवसितो बन्धः (वृ० प० ३९८)

*लय : सीता सुन्दरी रे

६. जीव जिवारै लोक नै, व्यापी नै तिष्ठंत ।
तिण काले पिण बध ए, तिणहिज रीत रहंत ॥
७. अठ प्रदेश विण अन्य जे, जीव-प्रदेश नो बंध ।
विपरिवर्त्तमानपणा थकी, अनादि-अनंत न संध ॥

८. तेहनी छै ए स्थापना, तल सम च्यार प्रदेश ।
तेहनै ऊपर पुण वलि, च्यार प्रदेश कहेस ॥

९. इम ए अष्ट प्रदेश है, इम समुदाय थकीज ।
आख्यु बध आठू तणु, सखर न्याय सलहीज ॥
१०. तास विषे एक एक जे, आत्म-प्रदेश सघात ।
बंध परस्पर जिता तणो, हुवै तास अवदात ॥
११. ते अठ जीव प्रदेश मे, तीन-तीन नै ताम ।
इक इक साथै बध ते, अनादि अनत पांम ॥

## दूहा

१२. तल परतर प्रदेश चिउ, ऊपर चिहु प्रदेश ।
इम अठ मध्य प्रदेश-बध, विहु परतर सुविशेष ॥

१३. *ऊपरला परतर तणो, वाछित प्रदेश एक ।
बे प्रदेश पासे तसु, एक हेठलो देख ॥
१४ शेप ऊपरला तीन जे, इम त्रिण त्रिण बंधात ।
बे-बे पसवाड़ा तणां, इक-इक हेठलु ख्यात ॥
१५. उपरला परतर तणो, इक प्रदेश न बंधाय ।
तल परतर ना तीन जे, प्रदेश वंध्या नांय ॥
१६ तल ना जे परतर तणो, इक प्रदेश न बंधाय ।
ऊपर परतर ना तीन जे, प्रदेश बध्या नाय ॥
१७. परतर वलि जे हेठलो, तिण ना च्यार प्रदेश ।
इक-इक प्रदेश तेहनो, त्रिण-त्रिण साथ वधेस ॥
१८. तल परतर ना जे विहुं, पार्श्ववर्त्ति बे प्रदेश ।
इक ऊपरलो इम त्रिहुं, बध्या छै सुविशेष ॥

## दूहा

१९. चूर्णिकार व्याख्यान ए, वृत्तिकार व्याख्यान ।
दुरवगम थी परहर्‌यो, इम टीका में वान ॥

वा०—ते आठ जीव ना मध्य प्रदेश नै विषे पिण तीन-तीन प्रदेश नो एक-एक प्रदेश सघाते बध छै, ते आदि-रहित अत-रहित बध जाणवू ।

हिवै जे जीव ना आठ मध्य प्रदेश नै एक-एक प्रदेश संघाते अनेरा तीन-तीन

---

*लय : सीता सुन्दरी रे

६. यदाऽपि लोकं व्याप्य तिष्ठति जीवस्तदाऽप्यसौ तथैवेति । (वृ० प० ३९८)

७ अन्येषा पुनर्जीवप्रदेशाना विपरिवर्त्तमानत्वान्नास्त्यनादिरपर्यवसितो बन्ध (वृ० प० ३९८)

८ तत्स्थापना— एतेषामुपर्यन्ये चत्वार (वृ० प० ३९८)

९ एवमेतेष्टौ । एव तावत्समुदायतोऽष्टाना बन्ध उक्त । (वृ० प० ३९८)

१० अथ तेष्वेकैकेनात्मप्रदेशेन सह यावता परस्परेण सवन्धो भवति तद्दर्शनायाह— (वृ० प० ३९८)

११. तत्थ वि ण तिण्ह तिण्ह अणादीए अपज्जवसिए

१२. पूर्वोक्तप्रकारेणावस्थितानामष्टानाम् (वृ० प० ३९८)

१३,१४ उपरितन प्रतरस्य य कश्चिद्विवक्षितस्तस्य द्वौ पार्श्ववर्त्तिनावेकश्चाधोवर्त्ती (वृ० प० ३९८)

१५. शेषस्त्वेक उपरितनस्त्रयश्चाधस्तना न सवध्यन्ते व्यवहितत्वात् । (वृ० प० ३९८)

१६ एवमधस्तनप्रतरापेक्षयाऽपीति । (वृ० प० ३९८)

१९ चूर्णिकारव्याख्या, टीकाकारव्याख्या तु दुरवगमत्वात्परिहृतेति । (वृ० प० ३९८)

च्यार प्रदेशा माहिलो मन मानै जिकोइ एक प्रदेश वाछियै। तेहनै अन्य तीन प्रदेश नो बंध हुइ। ऊपरला प्रतर ना च्यार प्रदेश माहिला दोय प्रदेश तो पसवाडे रह्या तेहनु बध। अनै हेठला प्रतर ना च्यार प्रदेश माहिलो एक प्रदेश हेठै रह्यो तेहनु बध छै। इम ऊपरला प्रतर मे च्यार प्रदेश ते एक एक प्रदेश तीन-तीन प्रदेश साथे बध्या छै। एक एक प्रदेश तो मूलगो अनै तेहने साथे तीन प्रदेश बध्या एव च्यार थया। अनै बाकी रह्या च्यार प्रदेश तिके ते प्रदेश साथे न बध्या। एक एक तो ऊपरला प्रतर नो न बध्यो, खूणै रह्यो ते माटै। अनै हेठला प्रतर ना तीन-तीन प्रदेश ते पिण न बध्या। ए फर्शणा मात्र हुइ, पिण ए च्यारू बध्या नथी।

ए च्यार प्रदेश नो ऊपरला प्रतर नो लेखो कह्यो इमहिज च्यार प्रदेश नो हेठलू प्रतर छै। तेहनो लेखो पिण कहै छै—जे हेठला च्यार प्रतर माहिला च्यार प्रदेशा माहिलो मन मानै जिको कोइ एक प्रदेश वाछियै। तेहनु तीन-तीन प्रदेश नो बंध हुइ। जे हेठला प्रतर ना च्यार प्रदेश माहिला जे दोय प्रदेश तो पसवाडे रह्या, तेहनु बध। अनै ऊपरला प्रतर ना च्यार प्रदेश माहिला जे एक प्रदेश ऊपर रह्यो तेहनु बध छै। इम हेठला प्रतर मे च्यार प्रदेश ते एक प्रदेश तीन प्रदेश साथे बध्या छै। एक एक तो हेठला प्रतर नो प्रदेश अनै तीन-तीन ऊपरला प्रतर ना प्रदेश, एव च्यार न बध्या।

२०. *आठ प्रदेश विना जिके, अन्य प्रदेश नु बध।
आदि सहित सूत्रे कह्यू, जिन वच अमल अमद॥

वा०—आदि-रहित अन्त-रहित प्रथम भागो कह्यो अनै बीजो भागो आदि रहित, अन्त-सहित ते इहा न सभवै। जीव ना आठ मध्य प्रदेश नो बध ते आदि-रहित छै, अपरिवर्त्तमानपणै करी ते बध नु अत-सहितपणु न ऊपजै ते माटै बीजो भागो न सभवै। हिवै तीजो भागो आदि-सहित अत-रहित उदाहरणे करी कहै छै—

२१. आदि-सहित अत-रहित ते, सिद्ध ना जीव प्रदेश।
तसु बध सादि अनत छै, चलण अभाव विशेष॥

२२. देश नव्यासी एक सौ, ए पचावनमी ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मगलमाल॥

२०. शेषाणा मध्यमाष्टाभ्योऽन्येषा सादिर्विपरिवर्त्तमानत्वात्। (वृ० प० ३९८)

वा०—एतेन प्रथमभङ्ग उदाहृत, अनादिसपर्यवसित इत्यय तु द्वितीयो भङ्ग इह न संभवति, अनादिसंबद्धानामष्टाना जीवप्रदेशानामपरिवर्त्तमानत्वेन बन्धस्य सपर्यवसितत्वानुपपत्तेरिति। अथ तृतीयो भङ्ग उदाह्रियते। (वृ० प० ३९८)

२१. सिद्धाना सादिरपर्यवसितो जीवप्रदेशबन्ध, शैलेश्यवस्थाया सस्थापितप्रदेशाना सिद्धत्वेऽपि चलनाभावादिति। (वृ० प० ३९८)

*लय : सीता सुन्दरी रे

ढाल : १५६

## दूहा

१. तिहा जे आदि-सहित है, अत-सहित अवलोय।
तेहनां च्यार प्रकार है, साभलजो सहु कोय॥
२. आलीण कीजै जिण करी, ते आलावण-बध।
जिम डोरी करि बाधियो, तृणादि वध सुसध॥

३. एक द्रव्य अन्य द्रव्य करि, श्लेपादिक करि सोय।
तास एकठा मेलवो, अल्लियावण-बंध होय॥

४. समुद्घात कीधे छते, विस्तार्‍या छै जेह।
तेहिज जीव प्रदेश नो, एकत्र करिवो तेह॥
५ ते जीव प्रदेश संवध नां, विशेष वंध थी संध।
तैजस आदि शरीर ना, प्रदेश तणो सवध॥

**वा०**—अनेरा आचार्य कहै छै—शरीरी—जीव नो समुद्घात नै विपे सकोचन छते शरीरी नो जे वध, ते शरीरी वंध।

६. जीव तणां व्यापार करि, औदारिकादिक वंध।
तेहना जे पुद्गल ग्रहै, शरीर-प्रयोग सध॥

७. अथवा शरीर रूप ही, प्रयोग नु जे वंध।
शरीर-प्रयोग बध ते, ए चोथो वध संध॥

*जिनेश्वर धिन-धिन आप रो नाण।
सशय-तिमिर निवारवा जी जाणक ऊगो भाण। (ध्रुपद)

८. स्यू आलावण-बंध छै जी ? भाखै जिन गुण-गेह।
तृण-काष्ठक-भारो बाधियै जी, पत्र नु भारो बाधेह॥

९. अथवा भारो पलाल नों, वेत्रलता जल-वंश।
तिण करिनै बाधै तिको, पूर्व भारो कहस॥
१०. वाग ते वल्क त्वचा करी, वरत्त चर्म नी नाडि।
सण प्रमुख नी रासड़ी, तिण करि बाधै भारि॥

१ तत्थ ण जे से सादीए सपज्जवसिए से ण चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—

२ आलावणवधे
आलाप्यते—आलीन क्रियत एभिरित्यालापनानि—रज्जवादीनि तैर्बन्धस्तृणादीनामालापनवध (वृ० प० ३९८)

३. अल्लियावणवधे
अल्लियावण—द्रव्यस्य द्रव्यान्तरेण श्लेपादिनाऽऽलीनस्य यत्करण तद्रूपो यो वन्ध स तथा, (वृ० प० ३९८)

४,५ सरीरवधे
समुद्घाते सति यो विस्तारितसङ्कोचितजीवप्रदेश-सम्वन्धविशेपवशात्तैजसादिशरीरप्रदेशाना सम्वन्ध-विशेप स शरीरवन्ध। (वृ० प० ३९८)
**वा०**—शरीरिवन्ध इत्यन्ये तत्र शरीरिण समुद्घाते विक्षिप्तजीवप्रदेशाना सङ्कोचने यो वन्ध स शरीरिवन्ध इति (वृ० प० ३९८)

६ सरीरप्पयोगवधे। (श० ८।३५४)
शरीरस्य—औदारिकादेर्य. प्रयोगेण—वीर्यान्तिरायक्षयो-पशमादिजनितव्यापारेण वन्ध तद्पुद्गलोपादानम् (वृ० प० ३९८)

७ शरीररूपस्य वा प्रयोगस्य यो वन्ध स शरीरप्रयोग-वन्ध। (वृ० प० ३९८)

८ से किं त आलावणवधे ?
आलावणवधे—जण्ण तणभाराण वा, कट्ठभाराण वा, पत्तभाराण वा

९ पलालभाराण वा, वेत्तलता
वेत्रलता जलवशकम्वा (वृ० प० ३९८)

१०. वाग-वरत्त-रज्जु-
'वाग' त्ति वल्क वरत्रा—चर्म्ममयी रज्जु—सनादिमयी (वृ० प० ३९८)

*लय . धिन भगवंत रो जी ज्ञान

(मुनीश्वर ! आल . ।-वव ८९ ,

१३. स्यू अल्लियावण-वंध छै ? जिन कहे च्यार प्रकार।
लेसणा उच्चय समुच्चय, साहणणा वध धार ॥

१३. से किं त अल्लियावणवधे ?
अल्लियावणवधे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—लेसणा-वधे, उच्चयवधे, समुच्चयवधे, साहणणावधे ।
(श० ८।३५६)

## दूहा

१४. श्लेप ढीला द्रव्ये करि, चूनादिक थी सध ।
संवंध जे अन्य द्रव्य नों, तेह लेसणा-वंध ॥

१४. 'लेसणावधे' त्ति श्लेपणा—श्लयद्रव्येण द्रव्ययो. मवन्धन तद्रूपो यो वन्धः स तथा। (वृ० प० ३६८)

१५. ढिगलो वहु पुद्गल तणो, करवी ऊंची राश ।
तेह रूप जे वंध ते, उच्चय-वंध विमास ॥

१५. उच्चय—ऊर्ध्वं चयन—राशीकरण तद्रूपो वन्ध उच्चयवन्ध.। (वृ० प० ३६६)

१६. सम्यक् प्रकारे करि, विशेप ऊंची राश ।
तेह रूप जें वंध ते, समुच्चय-वंध विमास ॥

१६. सङ्गत—उच्चयापेक्षया विशिष्टतर उच्चय समुच्चय स एव वन्ध. समुच्चयवन्ध । (वृ० प० ३६६)

१७. वहु अवयव नो एकठो, करिवो जे सघात ।
तेह रूप जे वंध ते, साहणणा-वंध थात ॥

१७ सहननं—अवयवाना सङ्घातन तद्रूपो यो वन्ध. स संहननवन्ध.। (वृ० प० ३६६)

१८. *हिव स्यू लेसणा-वंध छै ? तव भाखै जिनराय ।
कूट कोट्टिम मणिभूमिका नों, थंभ प्रासाद नों ताय ॥

१८. से किं त लेसणावधे ?
लेसणावधे—जण्ण कुट्टाण, कोट्टिमाणं, खभाण, पासायाण,
'कुट्टिमाण' ति मणिभूमिकाना । (वृ० प० ३६६)

१९. काष्ठ अनें वलि चर्म नों, घट पट कट नों विशेप ।
चूनां चिक्खल कादै करि, वज्र लेप ते सिलेस ॥

१९. कट्ठाणं, चम्माणं, घडाण, पडाणं, कडाण छुहा-चिक्खल्ल-सिलेस-
श्लेपो—वज्रलेप. (वृ० प० ३६६)

२०. लाख अनें वलि मैंण थी, आदि शब्द थी संध ।
गूगल राल ढीला द्रव्य थी, ऊपजै लेसणा-वंध ॥

२०. लक्ख-महुसित्यमाईएहिं लेसणएहिं वंधे समुप्पज्जइ ।
आदिशब्दात् गुग्गुलरालाखल्यादिग्रह ।
(वृ० प० ३६६)

२१. जघन्य अंतर्मुहूर्त्त रहै, उत्कृष्ट काल संख्यात ।
लेसणा-वंध कह्यो तसु, वर जिन वयण विख्यात ॥

२१. जहण्णेण अन्तोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्ज काल । सेत्त लेसणावंधे । (श० ८।३५७)

२२. हिव स्यूं उच्चय-वंध छै ? जिन कहै जे तृण-राश ।
राशि काष्ठ नें पत्र नी, तुस नी राशि विमास ॥

२२. से किं तं उच्चयवंधे ? उच्चयवधे—जण्ण तणरासीण वा, कट्ठरासीण वा, पत्तरासीण वा, तुसरासीण वा,

२३. वलि भुस-राशिज छाण नी, गोवर कचरा नी राश ।
ऊंचो चिणवै करि ऊपजै, उच्चय-वंध प्रकाश ॥

२३. भुसरासीण वा, गोमयरासीण वा, अवगररासीण वा उच्चत्तेणं वंधे समुप्पज्जइ ।
'अवगररासीण व' त्ति कचवरराशीनाम् ।
(वृ० प० ३६६)

२४. जघन्य अंतर्मुहूर्त्त रहै, उत्कृष्टो अवलोय ।
काल संख्यातो ते रहै, उच्चय-वंध ए होय ॥

२४. जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्ज काल । सेत्त उच्चयवधे । (श० ८।३५८)

---

*लय : धिन भगवंत रो जी ज्ञान

२५. बंध समुच्चय स्यूं कह्यो ? जिन भाखै तसु भाव।
अगड सरोवर अणखण्यो, पाल सहित ते तलाव ।।
२६. नदी द्रह नैं बावडी, पुक्खरणी कमलत।
दीर्घिका नै गुजालिका, सर वलि सर नी पंत ।।
२७. पंक्ति वलि सर-सर तणी, वलि बिल-पंक्ती जाण।
देवकुल देहरो नै सभा, वलि पो—देवा नो स्थान ।।
२८. थूभ खाई परिहा वलि, गढ कोट ते प्राकार।
अट्टालग कहि बुरज नै, चरिय अनै वलि द्वार ।।
२९. गोपुर नै तोरण वलि, प्रासाद घर सामान।
शरण लेण पिण घर अछै, हाट-श्रेणि पहिछाण ।।
३० संघाडा नैं आकारै वलि, त्रिक चोक पंथ एह।
चच्चर बहु पंथ बहु गली, चोमुख स्थानक जेह ।।
३१. महापंथ ए आदि दे, छूहा ते चूनो पिछाण।
तिण करिनै ए बंधियै, वलि कर्दम करि जाण ।।
३२. सिलेस ते वज्र लेप थी, विशेष ऊंच करेह।
बध ऊपजै बंध जुड़ै, समुच्चय-बंध कहेह ।।
३३. जघन्य अतर्मुहूर्त्त रहै, उत्कृष्ट काल संख्यात।
समुच्चय-वंध कह्यो तसु, जगतारक जगनाथ ।।
३४. स्यूं साहणणा बंध छै ? जिन कहै द्विविध संध।
देश-साहणणा बंध कह्यो, सर्व-साहणणा बंध ।।

२५ से किं त समुच्चयवधे ?
समुच्चयवधे—जण्ण अगड-तडाग-
२६. नदी-दह-वावी-पुक्खरिणी-दीहियाण, गुजालियाण, सराणं, सरपतियाण
२७. सरसरपतियाण, विलपतियाण देवकुल-सभ-प्पव-
२८ थूभ-खाइयाण, फरिहाण, पागारट्टालग-चरिय-दार-
२९. गोपुर-तोरणाण, पासाय-घर-सरण-लेण-आवणाण,
३० सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-
३१. महापह-पहमादीण, छुहा-चिक्खल्ल-
३२. सिला-समुच्चएण बधे समुप्पज्जइ
३३. जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्ज काल। सेत्त ससुच्चयवधे। (श० ८।३५९)
३४. से किं त साहणणावधे ?
साहणणावधे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—देससाहणणावधे य, सव्वसाहणणावधे य। (श० ८।३६०)

## दूहा

३५. देश करीनै देश नों, सहनन बध सबंध।
देश-साहणणा वंध ते, शकट अंगादिक संध ।।
३६. सर्व करीनै सर्व नों, संहनन बंध संबंध।
सर्व-साहणणा बध ते, क्षीर नीर जिम संध।

३५ देशेन देशस्य सहननलक्षणो वन्ध—सम्वन्ध शकटाङ्गादीनामिवेति देशसहननवन्ध ।
३६. सर्वेण सर्वस्य सहननलक्षणो वन्ध—सम्वन्ध क्षीरनीरादीनामिवेति सर्वसहननवन्ध.। (वृ० प० ३९९)

३७. *देश-साहणणा बध स्यूं ? जिन कहै जेह पिछाण।
शकट गाडी नैं रथ वलि, लघु गाडी ते जाण ।।

३७. से किं त देससाहणणावधे ?
देससाहणणावधे—जण्णं सगड-रह-जाण-
'सगड' त्ति गन्त्री 'रह' त्ति स्यन्दन 'जाण' त्ति यान—लघुगन्त्री। (वृ० प० ३९९)

३८. जुग्ग प्रसिद्ध गोल देश में, ते दोय हस्त प्रमाण।
उपशोभित वेदिका करि, एह विशेप जंपान ।।

३८, जुग्ग-
'जुग्ग' त्ति युग्य गोल्लविपयप्रसिद्धं द्विहस्तप्रमाण वेदिकोपशोभित जम्पान। (वृ० प० ३९९)

३९. गिल्लि अंबाडी गज तणी, थिल्लि तुरंग पिलाण।
अथवा अबाडी ऊट नी, ते पिण थिल्लि पिछाण ।।

३९. गिल्लि-थिल्लि-
'गिल्लि' त्ति हस्तिन उपरि कोल्लरं यन्मानुष गिलतीव 'थिल्लि' त्ति अड्डपल्लाणं। (वृ० प० ३९९)

---

*लय : धिन भगवंत रो जी ज्ञान

४१. लोही ते मडकादिक भणी, पचवा ना भाजन एह।
वलि कडाहा लोह ना, वलि कुड़छा छै जेह॥

'लोहि' त्ति मण्डकादिपचनभाजन 'लोहकडाहे' त्ति भाजनविशेष एव 'कडुच्छुय' त्ति परिवेषणभाजनम्
(वृ० प० ३९९)

४२. आसण शयन थभा वलि, भड माटी नों जन्य।
अमत्र भाजन विशेष छै, उपकरण तेहथी अन्य॥
४३. ए सहु ना देशे करि, देश नु बंध है ताय।
देश-साहणणा बंध ते, ऊपजै छै इम आय॥

४२,४३. आसण-सयण-खभ-भडमत्तोवगरणमादीणं देससाहणणाबंधे समुप्पज्जइ।
'भड' त्ति मृन्मयभाजन 'मत्त' त्ति अमत्र भाजनविशेष. 'उवगरणत्ति' नानाप्रकार तदन्योपकरणमिति।
(वृ० प० ३९९)

४४. जघन्य अतर्मुहूर्त्त रहे, उत्कृष्ट काल सख्यात।
देश-साहणणा वध ए, भाख्यो श्री जगनाथ॥
४५. सर्व-साहणणा वध स्यूं ? क्षीर नीर आदि देह।
सर्व-साहणणा-वध कह्यू, अल्लियावण-वध एह॥

४४. जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सखेज्ज काल। सेत्त देससाहणणावधे। (श० ८।३६१)
४५. से कि त सव्वसाहणणावधे ?
सव्वसाहणणावधे—से ण खीरोदगमाईण। से त्त सव्वसाहणणावधे। ····सेत्त अल्लियावणवधे।
(श० ८।३६२)

४६. हिवै स्यूं शरीर-वध छै ? जिन कहे दुविध अमोघ।
पूर्व-प्रयोग-प्रत्यय कह्यो, प्रत्यय वर्त्तमान-प्रयोग॥

४६. से कि त सरीरवधे ?
सरीरवधे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—पुव्वपयोगपच्चइए य, पडुप्पन्नपयोगपच्चइए य। (श० ८।३६३)

**सोरठा**

४७. आसेवित प्राक्काल, प्रयोग जीव व्यापारमय।
वेदना कषाय न्हाल, आदि देई समुद्घात जे॥
४८. प्रत्यय कारण तेह, जे शरीर-वध नें विषे।
ते वध भणी कहेह, पूर्व-प्रयोग-प्रत्यय॥
४९. वीखरिया प्रदेश, पाछो लेवो तेहनो।
वंध रचना सुविशेष, वध कहीजै जेहनें॥
५०. पूर्व काळे जान, कदेइ जिण पाम्यो नथी।
ते कहियै वर्त्तमान, प्रयोग-प्रत्यय जे विषे॥
५१. ते शरीर नो वध, वीखरिया प्रदेश नों।
संहरवो फिर सध, समुद्घात केवल विषे॥
५२. प्रयोग तसु व्यापार, प्रत्यय कारण जे विषे।
समय पंचमें सार, प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्यय॥

४७. प्राक्कालासेवित प्रयोगो—जीवव्यापारो वेदनाकषायादिसमुद्घातरूप (वृ० प० ३९९)
४८ प्रत्यय —कारणं यत्र शरीर वन्धे स तथा स एव पूर्वप्रयोगप्रत्ययिक (वृ० प० ३९९)

५०-५२. प्रत्युत्पन्न.—अप्राप्तपूर्वो वर्त्तमान इत्यर्थ प्रयोग —केवलिसमुद्घातलक्षणव्यापार प्रत्ययो यत्र स तथा स एव प्रत्युत्पन्नप्रयोगप्रत्ययिक।
(वृ० प० ३९९)

५३. *पूर्व-प्रयोग-प्रत्यय किसु ?जिन कहै नेरइया आदि।
ससार भव नें विषे रह्या, सर्व जीव नें लाधि॥

५३. से कि त पुव्वपयोगपच्चइए ?
पुव्वपयोगपच्चइए—जण्णं नेरइयाण ससारत्याण सव्वजीवाण

---

*लय : धिन भगवंत रो जी ज्ञान

५४. तत्थ तत्थ कहितां तिहां-तिहां समुद्घात करै तास।
क्षेत्र नों वहुलपणों कह्यो, आधारभूत विमास॥

५५. तेसु-तेसु इण शब्द थी, समुद्घात नों जाण।
कारण नों वहुलपणो कह्यो, अखिल न्याय दिल आण॥

५६. तिहा तिहां क्षेत्र नैं विषे, ते ते कारण विषे न्हाल।
शरीर थी वाहिर काढ़िया, जीव प्रदेश विशाल॥
५७. समुद्घाते करि बीखरचा, सकोचै जीव प्रदेश।
तसु बंध रचना ऊपजै, पूर्व-प्रयोग कहेस॥
५८. ते जीव प्रदेशां नैं विषे, तेजस कार्मण शरीर।
तास प्रदेश नों बंध हुवै, ते ग्रहिवूं सुण धीर॥

वा०—'जीवप्पदेसाण वधे समुप्पज्जइ' इहा जीव प्रदेश नो बन्ध ऊपजै, एहवु पाठ कह्यु। पिण शरीर-बध ना अधिकार थकी जीव प्रदेश नै विषे रह्या तेजस कार्मण शरीर ना प्रदेश नो बध कहिवू, इहा शरीर-बध नो अधिकार छै ते माटै। शरीर-बध इण पक्षे तो समुद्घाते करि वीखरिया जीव ना प्रदेशा नै सकोचै तिहा बध उपजै, ते भणी जीव-प्रदेश नो बध कह्यो। पिण जीव ना प्रदेशा नै विषे तेजसादिक शरीर नो बध छै, ते इहा ग्रहिवू। शरीर बध नो अधिकार छै, ते माटै ए पूर्व-प्रयोग-प्रत्यय शरीर बध कह्यो।

५९. वर्त्तमान-प्रयोग-प्रत्यय किसो? जिन कहै केवली सत।
केवल समुद्घाते करि, सर्व लोक पूरंत॥
६०. दंड कपाट नैं मथ करी, अतर पूरै सोय।
जीव प्रदेशा नै चिउ समैं, विस्तारत सर्व लोय[1]॥
६१. तठा पछै समुद्घात थी, निवर्त्तमानपणेह।
पचम आदि समा विषे, किसै समय हुवै एह?
६२. पचमा समय विषे तिको, अतर प्रति सहरंत।
तेजस नैं कार्मण तणो, बंध तदा उपजत॥
६३. स्यूं कारण हेतू थकी? कहियै उत्तर तास।
समुद्घात थी केवली, निवर्त्त-काले जास॥
६४. पोता ना जीव प्रदेश नो, एकपणु अवलोय।
तेह संघात पाम्या हुइं, पंचम समये होय॥
६५. तेहनी अनुवृत्ति करी, तेजस कार्मण दोय।
शरीर प्रदेश नों बध तदा, उपजै छै अवलोय॥
६६. शरीर-बध अधिकार थी, तेजस कार्मण बंध।
उपजै इम कह्यो पाठ मे, श्री जिन-वयण अमंद॥

५४. तत्थ तत्थ
'तत्थ तत्थ' त्ति अनेन समुद्घातकरणक्षेत्राणा वाहुल्यमाह— (वृ० प० ३९९)

५५ तेसु तेसु कारणेसु
'तेसु तेसु' त्ति अनेन समुद्घातकारणाना वेदनादीना वाहुल्यमुक्तं। (वृ० प० ३९९)

५७. समोहण्णमाणाण जीवप्पदेसाणं वधे समुप्पज्जइ। सेत्त पुव्वपयोगपच्चइए। (श० ८।३९४)
समुद्धन्यमानाना समुद्घातं शरीराद् वहिर्जीवप्रदेशप्रक्षेपलक्षण गच्छताम्। (वृ० प० ३९९)

वा०—'जीवपएसाण' ति इह जीवप्रदेशानामित्युक्तावपि शरीरबन्धाधिकारात्तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेश इति न्यायेन जीवप्रदेशाश्रिततैजसकार्म्मणशरीरप्रदेशानामिति द्रष्टव्यं, शरीरबन्ध इत्यत्र तु पक्षे समुद्घातेन विक्षिप्य सङ्कोचितानामुपसर्जनीकृततैजसादिशरीरप्रदेशाना जीवप्रदेशानामेवेति।
(वृ० प० ३९९)

५९. से कि त पडुप्पन्नपयोगपच्चइए?
पडुप्पन्नपयोगपच्चइए—जण्ण केवलनाणिस्स अणगारस्स केवलिसमुग्घाएणं समोहयस्स

६१,६२. ताओ समुग्घायाओ पडिनियत्तमाणस्स अतरा मथे वट्टमाणस्स तेयाकम्माण वधे समुप्पज्जइ।

६३ कि कारण? ताहे से

६४ पएसा एगत्तीगया भवति

1 इस ढाल मे गाथा ६० से ६८ तक कई गाथाए वृत्ति के आधार पर रची गई हैं। फिर भी इनके सामने वृत्ति उद्धृत नही की गई है। इसका करण इन गाथाओ से आगे की वार्तिका मे अविकल रूप से वृत्ति का वह अश उद्धृत किया गया है।

पष्टम प्रमुख समय विपे, भूतपूर्वपणै जोय ॥

वा०—वर्तमान-प्रयोग शरीर-बंध किणनै कहियै ? तेहनो उत्तर—केवल समुद्घाते करि प्रथम समय दंड, द्वितीय समय कपाट, तृतीय समय मथकरण, चतुर्थे समय अतरा पूरै। इण लक्षणे करि विस्तरिया जीव रा प्रदेश छै। केवल समुद्घात थकी निवर्त्तमान छते तेह प्रदेशा नै पाछा सहरै ते वर्तमान-प्रयोग-प्रत्यय शरीर-बंध हुइ।

इहा शिष्य पूछै—स्वामी ! समुद्घात प्रति निवर्त्तमानपणु तो पचमादिक च्यारू समय नै विपे छै, तो ए वर्त्तमान-प्रयोग-प्रत्यय किमा समय नै विपे हुइ ? जद गुरु कहै—निवर्त्तन-क्रिया नै मध्य पचमे समये मथ नै विपे वर्त्तमान छै, ते समय वर्त्तमान प्रयोग-प्रत्यय शरीर-बंध हुइ।

वलि शिष्य पूछै—स्वामी ! छठादिक समय नै विपे पिण तेजसादिक शरीर सघात ऊपजै छै, तेणे समये किम न हुइ ? गुरु कहै—अभूतपूर्वपणै करि पचम समय नै विपेज ए बंध हुइ, पंचमे समय नै विपे तेजस कार्मण नो बंध थयो। तेहवो बंध गये काले कदेइ नथी थयो, ते भणी पचमे समयेज ए बंध हुइ, अनै छठादिक समय नै विपे भूतपूर्वपणैंज हुवै। जे पंचम समय नै विपे तेजस कार्मण शरीर नो बंध कियो, तेहिज छठादि समय नै विपे होवै, पिण अनेरो नही ते माटै।

'अतरा मथे वट्टमाणस्स तेयाकम्माण बंधे समुप्पज्जइ' एहवो पाठ कह्यो। मध्य मथ नै विपे वर्त्तमान नै तेजस कार्मण ए बिहुं नो बंध कहिता संघात ऊपजै इत्यर्थ.।

वलि शिष्य पूछै— स्यू कारण थकी—स्यू हेतु थकी ए बंध ऊपजै ? तिवारै गुरु कहै—तिवारै समुदघात निवृत्ति काल नै विपे ते केवली ना जीव ना प्रदेश एकपणु पाम्या—सघात पाम्या हुइ ते जीव प्रदेशां नी अनुवृत्ति करकै तैजसादिक शरीर प्रदेश नो बंध ऊपजै 'तेयाकम्माण बंधे समुप्पज्जइ'। तेजस कार्मण ते जीव ना प्रदेश विपे रह्या छै। ते तेजस कार्मण शरीर तेहनो बंध ऊपजै, इसो वखाण करिवो।

शरीर-बंध इति अत्र पक्षे 'तेयाकम्माण बंधे समुप्पज्जइ' तेजस कार्मण आश्रय-भूतपणा थकी तेजस कार्मण शरीर वाला जीव ना प्रदेश, तेहनो बंध ऊपजै, इम कहिवो।

वा०—केवलिसमुद्घातेन दण्डकपाटमथिकरणान्तर-पूरणलक्षणेन 'समुपहतस्य' विस्तारितजीवप्रदेशस्य 'तत' समुद्घातात् प्रतिनिवर्त्तमानस्य प्रदेशान् सहरत.,

समुद्घातप्रतिनिवर्त्तमानत्व च पञ्चमादिष्वनेकेपु समयेपु स्यादित्यतो विशेपमाह—'अन्तरामथे वट्टमाणस्स' त्ति निवर्त्तनक्रियाया अन्तरे—मध्येऽवस्थितस्य पञ्चमसमय इत्यर्थ ।

यद्यपि च पष्ठादिसमयेपु तैजसादिशरीरसङ्घात समुत्पद्यते तथाऽप्यभूतपूर्वतया पञ्चमसमय एवासौ भवति शेपेपु तु भूतपूर्वतयैवेतिकृत्वा।

'अन्तरामथे वट्टमाणस्से' त्युक्तमिति 'तेयाकम्माण बधे समुप्पज्जइ' त्ति तैजसकार्मणयो. शरीरयो 'वन्ध' सङ्घात. समुत्पद्यते।

'किं कारण' कुतो हेतो ? उच्यते—'ताहे' त्ति तदा समुद्घातनिवृत्तिकाले 'से' त्ति तस्य केवलिन 'प्रदेशा.' जीवप्रदेशा· 'एगत्तीगय' त्ति एकत्वं गता —सघातमापन्ना भवति, तदनुवृत्त्या च तैजसादिशरीरप्रदेशाना वन्ध समुत्पद्यत इति प्रकृतम्।

शरीरिवन्ध इत्यत्र तु पक्षे 'तेयाकम्माण बधे समुप्पज्जइ' त्ति तैजसकार्मणाश्रयभूतत्वात्तैजसकार्मणा शरीरिप्रदेशास्तेपा वन्ध· समुत्पद्यत इति व्याख्येयम्।

(वृ० प० ३९९,४००)

६९. वर्त्तमान-प्रयोग ए बंध कह्यो, शरीर-बंध कहेस।
आठमा शतक नो आखियो, नवम उदेशक देश ॥

६९. सेत्त पडुप्पन्नपयोगपच्चइए। सेत्त सरीरबंधे।
(श० ८।३६५)

७०. एक सौ छप्पनमी कही, ढाल विशाल उदार।
भिक्षु भारीमाल ऋपिराय थी, 'जय-जश' संपति सार ॥

## ढाल : १५७

### दूहा

१. हिव स्यूं शरीर-प्रयोग बंध ? शरीर औदारिकादि।
तसु प्रयोग जीव व्यापार थी, बध हुवै अविवादि॥
२. जिन कहै शरीर-प्रयोग-बध, पंच प्रकारे जाण।
औदारिक-शरीर जे, प्रयोग-बंध पिछाण॥
३. वैक्रिय नै आहारक वलि, तेजस कार्मण ताय।
शरीर-प्रयोग-बंध ए, सर्व ठाम कहिवाय॥
४. औदारिक तनु प्रयोग-बध, किते प्रकार कहाय?
जिन कहै पंच प्रकार ते, सांभलजे चित ल्याय॥

५ एकेंद्री बे० ते० चउ०, पंचेंद्रिय पिछाण।
औदारिक-तनु-प्रयोग बध, सहु ठामे वच जाण॥

६. एकेद्री औदारिक तनु-प्रयोग-बध विचार।
किते प्रकार कह्यो प्रभु? जिन कहै पंच प्रकार॥

७. पृथ्वीकाय एकेद्रिय, इण आलावे जाण।
भेद औदारिक तनु तणां, पद अवगाहण संठाण॥

८. तिम इहा पिण कहिवा सहु, जाव पर्याप्त जेह।
गर्भज मनु पंचेंद्रिय, औदारिक तनु तेह॥
९. अपर्याप्ता गर्भज ना, मनुष्य पंचेद्री जान।
तसु औदारिक तनु तणो, प्रयोग-बध पिछान॥

*गुणगेहा गुणिजन! प्रभु वचन-रस पीजियै॥ (ध्रुपदं)

१०. औदारिकादि तनु प्रयोग-बध प्रभु!
किण कर्म उदय करि होयो ए?
जिन कहै वीर्य-अंतराय-क्षयादिक,
शक्ति लहो अवलोयो ए॥
११. ते वीर्य जोग सहित वर्त्ते छै,
जोग मन वच काया नां जाणी।
वीर्य सजोग कह्यो तिण कारण,
ए प्रथम बोल पहिछाणी॥
१२. छै बहु द्रव्य तथाविध पुद्गल, जे जीव रै ताह्यो।
ते माटै सद्द्रव्य कह्या छै, ए द्वितीय बोल कहिवायो॥

*लय · सस्नेहा भवियण परम नाण लप कीजिए

१. से किं त सरीरप्पयोगवधे ?

२,३. सरीरप्पयोगवधे पचविहे पण्णत्ते, त जहा—ओरालियसरीरप्पयोगवधे, वेउव्वियसरीरप्पयोगवधे, आहारगसरीरप्पयोगवधे, तेयासरीरप्पयोगवधे, कम्मासरीरप्पयोगवधे। (श० ८।३६६)
४ ओरालियसरीरप्पयोगवधे ण भते! कतिविहे पण्णत्ते;
गोयमा! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—
५. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगवधे, बेइदियओरालियसरीरप्पयोगवधे जाव पंचिदियओरालिय सरीरप्पयोगवधे। (श० ८।३६७)
६. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगवधे ण भते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! पचविहे पण्णत्ते, त जहा—
७ पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरप्पयोगवधे एव एएण अभिलावेण भेदो जहा ओगाहणसठाणे ओरालियसरीरस्स
८. तहा भाणियव्वो जाव पज्जत्तागब्भवक्कतियमणुस्सपंचिदियओरालियसरीरप्पयोगवधे य,
९. अप्पज्जत्तागब्भवक्कतियमणुस्सपंचिदियओरालियसरीरप्पयोगवधे य। (श० ८।३६८)

१०. ओरालियसरीरप्पयोगवधे ण भते! कस्स कम्मस्स उदएण ?
गोयमा! वीरिय-

११. सजोग-

१२. सद्दव्वयाए

१४. प्रथम वीर्य सजोग ते, सद्द्रव्य करिकै ताय।
अर्थ धर्मसी इम कियो, ए विहु बोल कहाय॥

१५. *तथा प्रमाद-प्रत्यय कारण करि, वलि कर्मे करि कहियै।
एकेंद्री जाति प्रमुख कर्म ते, उदयवर्त्ति सग्रहियै॥

१६. जोगं च कहितां जोग कायादिक, वलि भव तिर्यंचादि।
वलि आउखो तिर्यंचादिक नों, उदयवर्ति इम लाधि[1]॥

१७. ए वीर्य सजोग प्रमुख पद आश्री, औदारिक तनु ताह्यो।
प्रयोग नाम कर्म उदय करीनैं, औदारिक-तनु-प्रयोग वधायो॥

वा०—वीर्य ते वीर्यांतराय क्षयादिके कीधी शक्ति, योग ते मन प्रमुख योग, ते सहित वर्त्ते ते सयोग कहियै सद्—विद्यमान, द्रव्य तथाविध पुद्गल जेह जीव नें तेह सद्द्रव्य कहियै। वीर्य-प्रधान सयोग ते वीर्य सयोग, तेहिज जे सद्द्रव्य तेहनो भाव तिणै करी। एतलै सवीर्यपणै सजोगपणै सद्द्रव्यपणै जीव नैं। तथा 'पमादपच्चय' त्ति प्रमाद-प्रत्यय थकी, प्रमाद लक्षण कारण थकी। 'कम्म च' त्ति—कर्म ते एकेंद्रिय जात्यादिक उदयवर्त्ति। 'जोग च' त्ति—जोग ते कायजोगादिक। 'भव च' त्ति—भव ते तिर्यंच भवादिक अनुभूयमान। 'आउय च' त्ति—आउखो ते तिर्यंच आयुपादिक उदयवर्त्ति। पडुच्च आश्रयी नैं 'ओरालिय' त्ति—औदारिक शरीर प्रयोग सपादक जे नाम ते औदारिक शरीर प्रयोग नाम, ते कर्म ना उदय करीनैं औदारिक शरीर प्रयोग नाम। ते कर्म ना उदय करीनै औदारिक शरीर-प्रयोग-वध हुइ, इति शेष।

ए पूर्वे कह्या ते सवीर्य सजोग सद्द्रव्यतादिक पद औदारिक शरीर प्रयोग नाम कर्म उदय ना विशेषणपणै वखाणवा।

एतलै जीव नैं सवीर्यपणै सजोगपणै सद्द्रव्यपणै तथाविध औदारिक शरीर प्रयोग पुद्गल नैं हेतुभूतपणै करि तथा प्रमाद-प्रत्यय तथा कर्म एकेंद्रिय जात्यादिक उदयवर्त्ति, जोग काया-जोगादिक, भव तिर्यंचादिक, अनुभूयमान ते भोगवता छता, आउखो तिर्यंच आउखादिक उदयवर्त्ति, एतला नैं आश्रयी नैं औदारिक शरीर प्रयोग-वध ऊपजै।

वीर्यसयोग सद्द्रव्यता कारणभूत है जेहने विषे, एह्वो विवक्षित कर्मोदय इत्यादि प्रकार थी अथवा औदारिक-शरीर प्रयोग वन्ध मे ते स्वतन्त्र रूप मे कारणभूत वर्णे तिहा मूल प्रश्न तो औदारिक शरीर प्रयोग वन्ध किण कर्म ना उदय थी हुवै? ए छै।

१५. पमादपच्चया कम्म च

१६. जोग च भव च आउय च

१७. पडुच्च ओरालियसरीरप्पयोगनामकम्मस्स उदएण ओरालियसरीरप्पयोगवधे। (श० ८।३६६)

वा०—'वीरियसजोगसद्दव्वयाए' त्ति वीर्य—वीर्यान्तरायक्षयादिकृता शक्ति योगा—मन.प्रभृतय सह योगैर्वर्त्तत इति सयोग सन्ति—विद्यमानानि द्रव्याणि—तथाविधपुद्गला यस्य जीवस्यासौ सद्द्रव्य वीर्य-प्रधान सयोगो वीर्यसयोग स चासौ सद्द्रव्यश्चेति विग्रहस्तद्भावस्तत्ता तया वीर्यसयोगसद्द्रव्यतया, सवीर्यतया सयोगतया सद्द्रव्यतया जीवस्य, तथा 'पमायपच्चय' त्ति 'प्रमाद-प्रत्ययात्' प्रमादलक्षणकारणात् तथा 'कम्म च' त्ति कर्म्म च एकेन्द्रिय-जात्यादिकमुदयवर्त्ति, 'जोग च' त्ति 'योग च' काययोगादिक' 'भव च' त्ति 'भव च' तिर्यग्भवादिकमनुभूयमानम् 'आउय च' त्ति 'आयुष्क च' तिर्यगायुष्काद्युदयवर्त्ति 'पडुच्च' त्ति 'प्रतीत्य' आश्रित्य 'ओरालिए' त्यादि औदारिकशरीरप्रयोगसम्पादक व तदौदारिकशरीर-प्रयोगनाम तस्य कर्म्मण उदयेनौदारिकशरीरप्रयोग-वन्धो भवतीति शेष.,

एतानि च वीर्यसयोगसद्द्रव्यतादीनि पदान्यौदारिक-शरीरप्रयोगनामकर्मोदयस्य विशेषणतया व्याख्येयानि।

वीर्यसयोगसद्द्रव्यतया हेतुभूतया यो विवक्षितकर्मोदयस्तेनेत्यादिना प्रकारेण, स्वतन्त्राणि वैतान्यौदारिक-शरीरप्रयोगवन्धस्य कारणानि, तत्र च पक्षे यदौदारिक-

*लय सस्नेहा भवियण! परम नाण खप कीजियै

१. इस ढाल मे गाथा ११ से १६ तक प्राय गाथाओ मे मूल पाठ का विस्तार वृत्ति के आधार पर किया गया है, किन्तु वृत्ति का वह अश यहा उद्धृत नही किया गया है। इसका कारण इन गाथाओ से आगे वार्तिका मे उस अश को अविकल रूप से उद्धृत कर दिया गया है।

अनै उत्तर मे अन्यान्य अनेक कारणा नो अभिधान करै छै, ए किम ? विवक्षित कर्मोदय अै सहकारी कारणरूप गिणाय छै। इण अपेक्षा थीज ते कारणा ना अभिधान किया छै।

अनै धर्मसी एहवू कह्यु—वीर्य, सजोग, सद्द्रव्यपणै करिनै, प्रमाद-प्रत्यय करि, कर्म, जोग, अनै आउखा नै आश्रयी नै औदारिक प्रयोग शरीर नाम कर्म नै उदय करी ए सर्व अपर्याप्त वेलाइ जाणवू। तेणे समय औदारिक शरीर-बाधै, पाच क्रिया लागै छै। पाच शरीर बाधता पाच क्रिया लागै, इम धर्मसी कह्यो इत्यर्थ।

शरीरप्रयोगवन्धः कस्य कर्म्मण उदयेन ? इति पृष्टे यदन्यान्यपि कारणान्यभिधीयन्ते तद्विवक्षितकर्मोदय.। (वृ० प० ३७८)

१८. एकेंद्री औदारिक तनु प्रयोग-बध, किण कर्म उदै प्रभु ! होयो ?
जिन कहै एवं चेव इमज ए, पूरववत अवलोयो ॥

**वा०**—इहा एकेद्री सूत्र नै पूर्व सूत्र सरिखु कह्यु तो पिण इहा पुच्छा मे—एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगवधे ण भते ! कस्स कम्मस्स उदएण ?

इम एकेन्द्री को नाम लेइ औदारिक शरीर नी पूछा कीधी, ते भणी उत्तर मे पिण एकेद्री नो नाम कह्यु—'एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगवधे' इसो कहिवो। एकेन्द्रिय औदारिक शरीर प्रयोग बध ना अधिकार थकी। इम आगल पिण विचार कहिवो।

१८ एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगवधे ण भते ! कस्स कम्मस्स उदएण ? एव चेव।

१९. पृथ्वीकाय एकेंद्री औदारिक-तनु प्रयोग इम लेवू।
एव जाव वनस्पतिकाइया, बे० ते० चउरिंद्री इम कहेवू ॥

२०. हे प्रभुजी ! तिर्यच-पचेंद्री औदारिक तनु लेवो।
प्रयोग-बंध किण कर्म उदय करि ? जिन कहै एव चेवो ॥

२१. हे प्रभु ! मनुष्य-पचेंद्री औदारिक-शरीर प्रयोग-बध जाणी।
किसा कर्म नै उदय करि नै ? हिव जिन भाखै वाणी ॥

२२. वीर्य सजोग सद्द्रव्यपणै करि, प्रमाद-प्रत्यय कहायो।
जाव मनुष्य आउखो उदयवर्त्ति, ते आश्रयी नै ताह्यो ॥

२३. मनुष्य पचेंद्री औदारिक तनु, प्रयोग सपादक जेहो।
सपादक उपजावणहारा, ते नामकर्म उदय करि एहो ॥

२४. मनुष्य-पचेंद्रिय औदारिक-तनु, प्रयोग-बध इम होयो।
तास विशेष अर्थ पूर्व वखाण्यो, तिम इहा पिण अवलोयो ॥

२५. अक नव्यासी नु देश कह्यु ए, इकसौ सतावनमी ढालो।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' मगलमालो।

१९ पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरप्पयोगवधे एव चेव, एव जाव वणस्सइकाइया। एव वेइदिया, एव तेइदिया, एव चउरिंदिया। (श० ८।३७०)

२० तिरिक्खजोणियपचिंदियओरालियसरीरप्पयोगवधे ण भते ! कस्स कम्मस्स उदएण ? एव चेव। (श० ८।३७१)

२१ मणुस्सपचिंदियओरालियसरीरप्पयोगवधे ण भते ! कस्स कम्मस्स उदएण ?

२२ गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए पमादपच्चया जाव (स० पा०) आउय च पडुच्च

२३ मणुस्सपचिंदियओरालियसरीरप्पयोगनामकम्मस्स उदएण

२४. मणुस्सपचिंदियओरालियसरीरप्पयोगवधे। (श० ८।३७२)

१. हिव पांचूंइ शरीर ना, दश-वध व व
पूछै गोयम गणहरू, उत्तर दे जिनचंद ॥

२. हे प्रभु ! औदारिक तनु-प्रयोग-वध पिछाण ।
देश-वध स्यू एह छै? तथा सर्व-वंध जाण ?

२. ओरालियसरीरप्पयोगवधे ण भंते ! किं देसवधे ? सव्ववधे ?

३. जिन भाखै सुण गोयमा ! देश-वध पिण होय ।
सर्व-वध पिण जे हुइ, न्याय तास इम जोय ॥

३. गोयमा ! देसवधे वि, सव्ववधे वि ।

(श० ८।३७३)

४. तेल तपायो तेहनी, भरी कडाहो मांहि ।
तिण मांहे ते पूडलो, प्रथम प्रक्षेपे ताहि ॥

४. तत्र यथाऽपूप. स्नेहभृतत्प्ततापिकाया प्रक्षिप्त ।

(वृ० प० ४००)

५. तेल ग्रहै पहिलै समय, पिण मूकै नवि कोय ।
पूर्व तेल ग्रह्यो नही, ते माटै अवलोय ॥

५. प्रथमसमये घृतादि गृह्णात्येव (वृ० प० ४००)

६. बीजी तीजी वार वलि, शेष समय घालेह ।
नवो तेल ग्रहै पूड़लो, पूर्व ग्रह्यो मूकेह ॥

६. शेषेषु तु समयेषु गृह्णाति विसृजति च ।

(वृ० प० ४००)

७. इण रीते ए जीवड़ो, पूर्व भव नु तेह ॥
छांडी नै अन्य भव तणो, प्रथम शरीर वधेह ॥

८. उत्पत्ति स्थानक नै विषे, शरीर अर्थे सोय ।
प्रथम समय पुद्गल ग्रहै, सर्व वध ए होय ॥

७,८. एवमय जीवो यदा प्राक्तन शरीरक विहायान्यद् गृह्णाति तदा प्रथमसमये उत्पत्तिस्थानगतान् शरीर-प्रायोग्यपुद्गलान् गृह्णात्येवेत्यय सर्वबन्ध. ।

(वृ० प० ४००)

९. द्वितीय आदि जे समय में, पुद्गल ग्रहै मूकंत ।
देश-वंध तिणनें कह्यो, पूवा नै दृष्टंत ॥

९. ततो द्वितीयादिषु समयेषु तान् गृह्णाति विसृजति चेत्येव देशबन्ध. । (वृ० प० ४००)

*जय जय ज्ञान जिनेन्द्र नो ॥ (ध्रुपद)

१०. हे भगवंत ! एकेंद्रिय औदारिक हो तनु-प्रयोग-वंध ।
स्यू देस-वध सर्व-वध छै ?
हिव जिन भाखै हो एवं उभय कहद ॥

१० एगिदियओरालियसरीरप्पयोगवधे ण भंते ! किं देसवधे ? सव्ववधे ? एव चेव ।

११. इमहिज पृथ्वीकाइया, जाव मनुष्य लग हो दस दंडक जोय ।
जेह औदारिक तनु तणा, देशवध पिण हो सर्व-वध पिण होय ॥

११. एव पुढविक्काइया एव जाव— (श० ८।३७४)
मणुस्सपचिदियओरालियसरीरप्पयोगवधे णं भंते ! किं देसवधे ? सव्ववंधे ?
गोयमा ! देसवधे वि, सव्ववंधे वि ।

(श० ८।३७५)

१२. हे प्रभु ! औदारिक-तनु-प्रयोग-वध हो काल थकी सुविचार ।
कितलो काल अछै तसु ? जिन भाखै हो हिव उत्तर सार ॥

१२. ओरालियसरीरप्पयोगवधे ण भंते ! कालओ केवच्चिर होइ ?

१३. सर्व-वंध एक समय ते, देश-वंध हो जघन्य समयो एक ।
उत्कृष्ट तीन पल्योपम, समय ऊणो हो कहीजै सुविशेख ॥

१३ गोयमा ! सव्ववधे एक्कं समय, देसवधे जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइ समयूणाइ । (श० ८।३७६)

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

**सोरठा**

१४. सर्व-बंध ए तास, एक समय आख्यो अछै।
पूवा दृष्टांत जास, प्रथम समय ते सर्व बध॥

१४. 'सव्ववध एक्क समय' ति अपूपदृष्टान्तेनैव तत्सर्व-वन्धकस्यैकसमयत्वादिति। (वृ० प० ४००)

१५. देश-बंध अवलोय, एक समय नों जघन्य थी।
तास न्याय इम होय, चित्त लगाई साभलो॥

१५ 'देसवधे' इत्यादि, (वृ० प० ४००)

१६. वाऊकाय जिवार, मनुष्य तिरि पचेंद्रिय।
वैक्रिय करी तिवार, ते तनु छाडी नें वलि॥

१६ तत्र यदा वायुर्मनुष्यादिर्वा वैक्रियं कृत्वा विहाय च। (वृ० प० ४००)

१७. औदारिक नु तेह, सर्व-बध इक समय करि।
वलि तेहनु इम लेह, देश-वंध करतो छतो॥

१८. समय रही मृत्यु पाय, तदा जघन्य थी समय इक।
देश-वंध कहिवाय, औदारीक शरीर नों॥

१७,१८ पुनरौदारिकस्य समयमेक सर्ववन्ध कृत्वा पुनस्तस्य देशवन्ध कुर्वन्नेकसमयानन्तर म्रियते तदा जघन्यत एक समय देशवन्धोऽस्य भवतीति। (वृ० प० ४००)

१९. समय ऊण पल्य तीन, देश-बध उत्कृष्ट स्थिति।
औदारिक नी चीन, तास न्याय इम साभलो॥

१९ 'उक्कोसेण तिन्नि पलिओवमाइ समयऊणाइ' ति कथ? (वृ० प० ४००)

२०. औदारिक नी जोय, उत्कृष्ट स्थिति पल्य तीन नी।
तास विषे अवलोय, सर्व-बध पहिलै समय॥

२०. यस्मादौदारिकशरीरिणा त्रीणि पल्योपमान्युत्कर्पत स्थिति, तेपु च प्रथमसमये सर्ववन्धक इति। (वृ० प० ४००)

२१. ते माटै इम न्हाल, समय ऊण पल्य तीन जे।
देश-बध नो काल, उत्कृष्ट औदारिक तणो॥

२१ समयन्यूनानि त्रीणि पल्योपमान्युत्कर्पत औदारिक-शरीरिणा देशबन्धकालो भवति। (वृ० प० ४००)

२२. *एकेंद्रिय औदारिक तणो,
प्रयोग-बंध हो प्रभु! काल थी सध।
केतलो काल हुवै अछै, जिन भाखै हो एक समय सर्व-बध॥

२२. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगवधे ण भते! कालओ केवच्चिर होइ?
गोयमा! सव्ववधे एक्क समय

२३. देश-बध ते जघन्य थी, तसु कहियै हो एक समय सुविचार।
उत्कृष्ट काल इतो हुवै, समय ऊणो हो वर्ष बावीस हजार॥

२३ देसवधे जहण्णेण एक्क समयं, उक्कोसेण वावीस वाससहस्साइं समयूणाइ। (श० ८।३७७)

**सोरठा**

२४. जघन्य समय इक केम, वायू औदारिक जिको।
वैक्रिय करि फुन तेम, औदारिक पडिवज्जता॥

२४ 'देसवधे जहन्नेण एक्क समय' ति कथ? वायुरौदारिकशरीरी वैक्रिय गत पुनरौदारिकप्रतिपत्तौ (वृ० प० ४००)

२५. सर्व-बंध थइ तेह, देश-बध इक समय रहि।
मरण लह्या थी एह, देश-बध पिण इक समय॥

२५. सर्वबन्धको भूत्वा देशवन्धकश्चैक समय भूत्वा मृत इत्येवमिति, (वृ० प० ४००)

२६. उत्कृष्ट सहस्र बावीस, प्रथम समय मे सर्व-बध।
शेप समय सुजगीस, देश-बंध पृथ्वोपर्णं॥

२६. एकेन्द्रियाणामुत्कर्पतो द्वाविंशतिर्वर्पसहस्राणि स्थिति-स्तत्रासौ प्रथमसमये सर्ववन्धक शेपकाल देशवन्ध। (वृ० प० ४००)

२७. *पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, औदारिक तनु हो कितो काल रहै एह?
श्री जिन भाखै गोयमा! सर्व-बंध हो एक समय रहेह॥

२७ पुढविक्काइयएगिंदियपुच्छा।
गोयमा! सव्ववधे एक्क समय,

२८. देश-बध ते जघन्य थी, खुड्डाग भव हो त्रि समयूण विचार।
उत्कृष्ट थी रहै एतलु, समय ऊणो हो वर्ष बावीस हजार॥

२८ देसवधे जहण्णेण खुड्डाग भवग्गहण तिसमयूण, उक्कोसेण वावीस वाससहस्साइ समयूणाइ।

---

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

खुड्डाग भव ए होय, अतर्मुहूर्त्त नै मझै ॥

खुड्डागभवग्गहणा हवति अतोमुहुत्तेण ॥
(वृ० प० ४००)

३१. उस्वास नि.स्वास माय, जाझा सतरै क्षुल्लक भव ।
तास अंश कहिवाय, तेरसौ पचाणूए ॥

३१ सत्तरस भवग्गहणा खुड्डागा हुति आणुपाणमि ।
तेरस चेव सयाइ पचाणउयाइ असाण ॥
(वृ० प० ४००, ४०१)

वा०—इहा उक्त लक्षण 'पैसठ हजार पाच सौ छत्तीस' एक मुहूर्त्त गत क्षुल्लक-भव ग्रहण-राशि नै ३७७३ एक मुहूर्त्तगत उस्वास-राशि नो भाग दीधा जेतला आवै, तेतला एक उस्वास मे क्षुल्लक भव हुवै अनै शेप रहै ते अश राशि हुवै ।

वा०—इहोक्तलक्षणस्य ६५५३६ मुहूर्त्तगतक्षुल्लकभव-ग्रहणराशे सहस्रत्रय-शतसप्तकत्रिसप्ततिलक्षणेन ३७७३ मुहूर्त्तगतोच्छ्वासराशिना भागे हृते यल्लभ्यते तदेकत्रोच्छ्वासे क्षुल्लकभवग्रहणपरिमाण भवति, तच्च सप्तदश, अवशिष्टस्तूक्तलक्षणोऽशराशिर्भवतीति,

इहा ए अभिप्राय—६५५३६ नै ३७७३ नो भाग दीधा १७ तो पूर्ण आवै अनै अठारमा ना १३९५ अश रहै । तिण कारण एक श्वासोश्वास मे १७ भव झाझेरा कहियै ।

अयमभिप्राय —येपामशाना त्रिभि सहस्रै सप्तभिश्च त्रिसप्तत्यधिकशतै क्षुल्लकभवग्रहण भवति तेपामशाना पञ्चनवत्यधिकानि त्रयोदशशतानि अप्टादशस्यापि क्षुल्लकभवग्रहणस्य तत्र भवन्तीति ।

तिहा जे ए पृथ्वीकायिक तीन समय विग्रहे करी आयो, ते त्रीजे समये सर्व वन्धक शेप नै विपे देश-वन्ध थइ नै क्षुल्लक भव ग्रहण अभिव्यापी मूओ थको अविग्रहे करी आव्यो जिवारै, तिवारै सर्व वन्धक ईज हुइ । इम जे विग्रह समय तीन ते ऊणो क्षुल्लक कहियै ।

तत्र य पृथिवीकायिकस्त्रिसमयेन विग्रहेणागत स तृतीयसमये सर्ववन्धक शेपेपु देशवन्धको भूत्वा आक्षुल्लकभवग्रहण मृत , मृतश्च सन्नविग्रहेणागतो यदा तदा सर्ववन्धक एव भवतीति, एव च ये ते विग्रहसमयास्त्रयस्तैरून क्षुल्लकमित्युच्यते ।
(वृ० प० ४०१)

३२. तिहा थी पृथ्वीकाय, तीन समय विग्रह करी ।
आयो तास कहाय, तीजे समये सर्व-वध ॥

३३. शेप समय रै मांय, देश-वंध भव क्षुलक में ।
मूओ थको कहिवाय, त्रिसमयूणज क्षुलक भव ॥

३४. वावीस सहस्र सुसध, उत्कृष्ट स्थिति पृथ्वी तणी ।
प्रथम समय सर्व-वध, शेप समय छै देश-वध ॥

३५. देश-वध इण न्याय, वर्प वावीस हजार ते ।
समय ऊण कहिवाय, पृथ्वीकाय तणोज ए ॥

३६. *सर्व विपे सर्व वंध, इम कहियै हो इक समय प्रमाण ।
देश वध नो अर्थ ए, हिव आगल हो सुणज्यो वखाण ॥

३६ एव सव्वेसि सव्ववधो एक्क समय,

३७. वैक्रिय शरीर जेहनै नही, अप तेउ हो वनस्पति विकलिंद ।
तास औदारिक तनु तणो,
प्रयोग-वंध हो तेहनी स्थिति कथिंद ॥

३७,३८ देसवधो जेसि नत्थि वेउव्वियसरीर तेसिं जहण्णेण खुड्डाग भवग्गहण तिसमयूण, उक्कोसेण जा सा ठिती सा समयूणा कायव्वा,
अयमर्थ —अप्तेजोवनस्पतिद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणा

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

३८. इहां सहु नो देश-वंध ते,
जघन्य क्षुल्लक भव हो ऊणी समया तीन ।
उत्कृष्ट थी जे यां तणी,
स्थिति उत्कृष्टी हो समय ऊण सुचीन ॥

क्षुल्लकभवग्रहण त्रिसमयोन जघन्यतो देशवन्धो यतस्तेपा वैक्रियशरीर नास्ति, वैक्रियशरीरे हि सत्येकसमयो जघन्यत औदारिकदेशवन्ध पूर्वोक्त-युक्त्या स्यादिति । (वृ० प० ४०१)

**सोरठा**

३९. अप वर्ष सात हजार, तेउ नी त्रिण दिवस निशि ।
वनस्पती नी धार, उत्कृष्ट स्थिति दश सहस्र वर्ष ॥

३९. तत्रापा वर्पसहस्राणि सप्तोत्कर्पत स्थिति, तेजसाम-होरात्राणि त्रीणि, वनस्पतीना वर्पसहस्राणि दश, (वृ० प० ४०१)

४०. बेंद्री द्वादश वास, तेंद्री गुणपच्चास दिन ।
चउरिंद्री षट मास, ए उत्कृष्टी स्थिति कही ॥

४० द्वीन्द्रियाणा द्वादशवर्पाणि त्रीन्द्रियाणामेकोनपञ्चा-शदहोरात्राणि चतुरिन्द्रियाणा पण्मासा । (वृ० प० ४०१)

४१. एक समय सर्व-वंध, तेह समय करि ऊण जे ।
देश-वध स्थिति संध, ए उत्कृष्टपणे करी ॥

४१ तत एपा सर्ववन्धसमयोना उत्कृष्टतो देशवन्धस्थि-तिर्भवतीति (वृ० प० ४०१)

४२ *वलि जसु वैक्रिय तनु अछै, वाउकाय नै हो पंचेद्री तिर्यंच ।
मनुष्य तणे वैक्रिय वलि, जघन्य देश वध हो समय एक सुसंच ॥

४२ जेसिं पुण अत्थि वेउव्वियसरीर तेसिं देसवधो जहण्णेण एक्क समय,
ते च वायव पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च, (वृ० प० ४०१)

**सोरठा**

४३. वैक्रिय करिनै ताय, वायु तिरि प० मनुष्य ए ।
औदारिक मे आय, सर्व बध पहिलै समय ॥
४४. वलि इक समय विचार, देश बध रहिनै मरै ।
इण न्याये अवधार, देश वध इक समय स्थिति ॥

४५. *पंचेंद्री तिरि वायु मनुष्य नें,
स्थिति उत्कृष्टी हो देश बध नी एम ।
स्थिति जिका छै जेहनी,
समय ऊणी हो कहिवी ए तेम ॥

४५ उक्कोसेण जा जस्स ठिती सा समयूणा कायव्वा जाव मणूस्साण देसवधे जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइ समयूणाइ । (श० ८।३७८)

**सोरठा**

४६. वायू तीन हजार, तिरि पचेंद्रिय मनुष्य नी ।
तीन पल्य सुविचार, ए उत्कृष्टी स्थिति तसु ॥

४६. तत्र वायूना त्रीणि वर्पसहस्राणि उत्कर्पत स्थिति, पञ्चेन्द्रियतिरश्चा मनुष्याणा च पल्योपमत्रयम्, (वृ० प० ४०१)

४७. समय एक सर्व-वध, तेह समय ऊणी जिका ।
देश-बध स्थिति संध, ए उत्कृष्टपणे करी ॥

४७. इय च स्थिति सर्ववधसमयोना उत्कृष्टतो देशवध-स्थितिरेपा भवति । (वृ० प० ४०१)

४८. कह्यो औदारिक तास, प्रयोग वध नो काल ए ।
हिव तेहनोज विमास, कहियै छै अतर प्रति ॥

४८. उक्त औदारिकशरीरप्रयोगवन्धस्य कालोऽथ तस्यै-वान्तर निरूपयन्नाह— (वृ० प० ४०१)

४९. *औदारिक तनु-वंध नो,
कितो आतरो हो प्रभु ! काल थी होय ?

४९ ओरालियसरीरवधतर ण भते ! कालओ केवच्चिर होइ ?

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

उत्कृष्ट सागर त ण,
पूर्व कोडी हो समय अधिक सुचीन ॥

**सोरठा**

५१. सर्व-वंध नो जाण, जघन्य थकी ए आतरो।
खुड्डाग भव पहिछाण, तीन समय कर ऊण किम ?
५२. तीन समय नी ताहि, विग्रह गति करि आवियो।
औदारिक रै माहि, अणाहारक वे समय धुर ॥
५३. तृतीय समय सर्व-वंध, ते खुडाग भव रहि मुओ।
औदारिक तनु सध, तेह विषे वलि ऊपनो ॥
५४. प्रथम समय सर्व-वध, इम सर्व-वध नु आतरो।
त्रि समयूण कथद, खुड्डाग भव नों इह विधे ॥

५५. उत्कृष्ट अतर तास, सागरोपम तेतीस नों।
पूर्व कोड प्रकाश, एक समय वलि अधिक किम ?

५६. मनुष्य आदि भव माय, अविग्रह गति आवियो।
प्रथम समय कहिवाय, सर्व वंध कारक तसु ॥
५७. त्यां रहि पूरव कोड, नरक सातमी ऊपनो।
तथा सव्वट्ठसिद्ध जोड, वलि त्रिण समय विग्रहे ॥
५८. औदारिक में आय, विग्रह नां वे समय धुर।
अणाहारिक कहिवाय, सर्व वध तृतीय समय ॥
५९. अणाहारिक ना जेह, दोय समय ते मांहि थी।
एम समय काढेह, घाल्यो पूरव कोड में ॥

६०. पूरव कोड़ सर्व वध, तेह स्थानके घालियो।
वध्यो समय इक सध, निमल न्याय अवलोकियै ॥
६१. इम सर्व वध नों जान, अतर उत्कृष्टो कह्यो।
तेतीस सागर मान, पूर्व कोड़ समय अधिक ॥

६२. *औदारिक देश वध नु,
जघन्य आंतरो हो इक समय नु जाण।
उत्कृष्ट सागर तेतीस नो,
तीन समया हो अधिका पहिछाण।

---

५१ सर्वबन्धान्तर जघन्यत. क्षुल्लकभवग्रहण त्रिसमयोन कथ ? (वृ० प० ४०१)

५२ त्रिसमयविग्रहेणौदारिकशरीरिष्वागतस्तत्र द्वौ समयावनाहारक । (वृ० प० ४०१)

५३ तृतीयसमये सर्वबन्धक क्षुल्लकभव च स्थित्वा मृत औदारिकशरीरिष्वेवोत्पन्न. (वृ० प० ४०१)

५४. तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धक, एव च सर्वबन्धस्य सर्वबन्धस्य चान्तर क्षुल्लकभवो विग्रहगतसमयत्रयोन, (वृ० प० ४०१)

५५ उत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिशत्सागरोपमाणि पूर्वकोटि. समयाभ्यधिकानि सर्वबन्धातर भवतीति, कथ ? (वृ० प० ४०१)

५६ मनुष्यादिष्वविग्रहेणागतस्तत्र च प्रथमसमय एव सर्वबन्धको भूत्वा, (वृ० प० ४०१)

५७,५८. पूर्वकोटि च स्थित्वा त्रयस्त्रिशत्सागरोपमस्थिति-र्नारक. सर्वार्थसिद्धको वा भूत्वा त्रिसमयेन विग्रहेणौदारिकशरीरी संपन्नस्तत्र च विग्रहस्य द्वौ समयावनाहारकस्तृतीये च समये सर्वबन्धक (वृ० प० ४०१)

५९ औदारिकशरीरस्यैव च यौ तौ द्वावनाहारसमयौ तयोरेक पूर्वकोटीसर्वबन्धसमयस्थाने क्षिप्त., (वृ० प० ४०१)

६० ततश्च पूर्णा पूर्वकोटी जाता एकश्च समयोऽतिरिक्त, (वृ० प० ४०१)

६१ एव च सर्वबन्धस्य सर्वबन्धस्य चोत्कृष्टमन्तर यथोक्तमान भवतीति । (वृ० प० ४०१)

६२ देसबंधतर जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ तिसमयाहियाइ । (श० ८।३७६)

---

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

## सोरठा

६३. औदारिक तनु तास, देश बंध नों आतरो।
जघन्य समय इक जास, तास न्याय निसुणो हिवै॥

६३. देशबन्धान्तर जघन्येनैक समय, कथ ? (वृ० प० ४०१)

६४. देश बंध करि काल, अविग्रह-गति ऊपनो।
प्रथम समय मे न्हाल, सर्व बध कारक वली॥

६४ देशबन्धको मृत सन्नविग्रहेणैवोत्पन्नस्तत्र च प्रथम एव समये सर्ववन्धक । (वृ० प० ४०१)

६५. दूजा समय मझार, देश-बंध छै ते भणी।
जघन्य समय इक धार, देश-बंध नु अतरो॥

६५ द्वितीयादिषु च समयेषु देशवन्धक सम्पन्न, तदेव देशबन्धस्य देशवन्धस्य चान्तर जघन्यत एक. समय सर्ववन्धसम्बन्धीति । (वृ० प० ४०१)

६६. देश-बंध औदार, उत्कृष्ट अंतर तेहनो।
तेतीस सागर धार, तीन समय करि अधिक किम ?

६६. उत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिशत्सागरोपमाणि त्रिसमयाधिकानि देशवन्धस्य देशबन्धस्यान्तर भवतीति, कथ ? (वृ० प० ४०२)

६७. देश-बध करि काल, तेतीस सागर स्थितिपणें।
उपनो तेह निहाल, काल करी वलि त्यां थकी॥

६७. देशबन्धको मृत उत्पन्नश्च त्रयस्त्रिशत्सागरोपमायु सर्वार्थसिद्धादौ, (वृ० प० ४०२)

६८. करि विग्रह समया तीन, उपनो औदारिकपणें।
बे समय अणाहारक चीन, तृतिय समय थयो सर्व-बध॥

६९. तुर्य समय देश-बध, इम सागर तेतीस ए।
अधिक समय त्रिण संध, उत्कृष्ट अंतर देश-बध॥

६८,६९. ततश्च च्युत्वा त्रिसमयेन विग्रहेणौदारिकशरीरी सपन्नस्तत्र च विग्रहस्य समयद्वयेऽनाहारकस्तृतीये च समये सर्ववन्धकस्ततो देशबन्धकोऽजनि, एव चोत्कृष्टमन्तराल देशबन्धस्य देशवन्धस्य च यथोक्त भवतीति । (वृ० प० ४०२)

७०. औदारिक-वध जाण, अतर कह्यो सामान्य थी।
विशेप थी हिव आण, कहियै छै अंतर तसु॥

७०. औदारिकवन्धस्य सामान्यतोऽन्तरमुक्तमथविशेपतस्तस्य तदाह— (वृ० प० ४०२)

७१. *एकेंद्री औदारिक तनु,
तास बंध नो हो अतर कितो कहिवाय ?
श्री जिन भाखैं जूजुओ,
सर्व-बंध नु हो देश-बध नु ताय॥

७१ एगिंदियओरालियपुच्छा ।

७२. सर्व-वध नु अंतरो,
जघन्य क्षुल्लक भव हो ऊणा समया तीन।
उत्कृष्ट बावीस सहस्र नो,
एक समय वलि हो अधिको है सुचीन॥

७२. गोयमा ! सव्ववधतर जहण्णेण खुड्डाग भवग्गहण तिसमयूण, उक्कोसेण बावीस वाससहस्साइ समयाहियाइ ।

## सोरठा

७३. एकेंद्री तनु औदार, सर्व-वध नु अंतरो।
जघन्य क्षुल्लक भव धार, तीन समय करि ऊण किम ?

७३ एकेन्द्रियस्यौदारिकसर्ववन्धान्तर जघन्यत क्षुल्लकभवग्रहण त्रिसमयोन, कथ ? (वृ० प० ४०२)

७४. विग्रह त्रि समयेन, आयो पृथव्यादिक विषे।
ते विग्रह वर्त्तन, अणाहारक बे समय धुर॥

७४ त्रिसमयेन विग्रहेण पृथिव्यादिष्वागतस्तत्र च विग्रहस्य समयद्वयमनाहारक (वृ० प० ४०२)

७५. तृतीय समय सर्व-वध, तिहा क्षुल्लक भव ग्रहण ए।
ऊण समय त्रिण सध, इतो काल रहिने मुओ॥

७५. तृतीये च समये सर्ववन्धकस्तत क्षुल्लक भवग्रहण त्रिसमयोनं स्थित्वा मृत (वृ० प० ४०२)

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

प्रथम समय ते होय, सर्व-वंधकारक तदा ॥
७६. पछै वावीस हजार, वर्ष समय ऊणो रही ।
काल कियो तिण वार, तीन समय विग्रह करी ॥
८०. अन्य पृथ्व्यादिक माहि, उपनो तिहा वे धुर समय ।
अणाहारक थइ ताहि, सर्व-वध तीजै समय ॥
८१. अणाहारक नां जोय, दोय समय पूर्वे कह्या ।
तेह माहिलो सोय, समयो इक काढी करी ॥
८२. समय ऊण वावीस, सहस्र वर्ष जे देश वध ।
ते माहै सुजगीस, एक समय ते घालता ॥
८३. वर्ष वावीस हजार, पूरा ए इहविध थया ।
एक समय रह्यो लार, अधिकेरो इम जाणियै ॥
८४. एकेंद्री तनु औदार, सर्व-वध नु अतरो ।
वर्ष वावीस हजार, समय अधिक उत्कृष्ट इम ॥

८५. *एकेद्रि तनु औदारिक ना
देश-वंध नों हो जघन्य अतर जाण ।
एक समय तसु आखियो,
उत्कृष्टो हो अतर्मुहूर्त्त आण ।

**सोरठा**

८६. एकेंद्री तनु औदार, देश-वंध नु अतरो ।
जघन्य थकी सुविचार, एक समय ते किम हुइ ?
८७. देश-वंध करि काल, अविग्रह करि ऊपनो ।
पहिले समय निहाल, सर्व-वध थइनै पछै ॥
८८. दूजे समये देख, देश-वंध वलि ते थयो ।
एक समय इम पेख, देश वंध नो अतरो ॥
८९. एकेंद्री तनु औदार, देश वध नों अतरो ।
उत्कृष्टो सुविचार, अतर्मुहूर्त्त किम हुइं ?
९०. वाऊ औदारीक, देश-वधकारक थको ।
वैक्रिय पाय सधीक, त्या अतर्मुहूर्त्त रही ॥
९१ तनु औदारिक तेह, सर्व-वध रहिनें वलि ।
देश-वंध ह्वै जेह, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त्त इम ॥

सर्ववन्धक., (वृ० प० ४०२)

७६,८० ततो द्वाविशतिर्वर्पसहस्राणि स्थित्वा समयोनानि विग्रहगत्या त्रिसमयाऽन्येपु पृथिव्यादिपूत्पन्नस्तत्र च समयद्वयमनाहारको भूत्वा तृतीयसमये सर्ववन्धक सम्पन्न, (वृ० प० ४०२)

८१. अनाहारकसमययोश्चैक. (वृ० प० ४०२)

८२. द्वाविंशतिर्वर्पसहस्रेपु समयोनेपु क्षिप्तस्तत्पूरणार्थम्, (वृ० प० ४०२)

८४. ततश्च द्वाविंशतिर्वर्पसहस्राणि समयश्चैकेन्द्रियाणा सर्ववन्धयोरुत्कृष्टमन्तर भवतीति । (वृ० प० ४०२)

८५ देसवन्धतर जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेण अतोमुहुत्त । (श० ८।३८०)

८६ तत्रैकेन्द्रियौदारिकदेशवन्धान्तर जघन्येनैक समय, कथम् ? (वृ० प० ४०२)

८७ देशवन्धको मृत सन्नविग्रहेण सर्ववन्धको भूत्वा एकस्मिन् समये, (वृ० प० ४०२)

८८. पुनर्देशवन्धक एव जात, एव च देशवन्धयोर्जघन्यत एक समयोऽन्तर भवतीति । (वृ० प० ४०२)

८९. 'उक्कोसेण अतोमुहुत्त' ति कथम् ? (वृ० प० ४०२)

९० वायुरौदारिकशरीरस्य देशवन्धक सन् वैक्रिय गतस्तत्र चान्तर्मुहूर्त्त स्थित्वा (वृ० प० ४०२)

९१ पुनरौदारिकशरीरस्य सर्ववन्धको भूत्वा देशवन्धक एव जात, एव च देशवन्धयोरुत्कर्पतोऽन्तर्मुहूर्त्तमन्तरमिति । (वृ० प० ४०२)

---

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

९२. *पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, तेहनी पूछा हो कीधी गोयम जाण।
श्री जिन भाखै सांभलो, सर्व-बंध नों हो उत्तर इम आण॥

९२ पुढविक्काइयएगिंदियपुच्छा।

९३. जिम एकेद्री सर्व-बध नों, अतर आख्यो हो पूर्वे पहिछाण।
तिमहिज पृथ्वीकाय नों, सर्व-बंध नो हो अतर ए जाण॥

९३ सव्ववधतर जहेव एगिंदियस्स तहेव भाणियव्व।

९४. पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, देश-वंध नो हो अतर अवलोय।
जघन्य थकी इक समय छै, उत्कृष्टो हो तीन समया होय॥

९४ देसवधतर जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेण तिण्णि समया।

## सोरठा

९५. एकेंद्री पृथ्वीकाय, तास देश-बध अंतरो।
जघन्य थकी कहिवाय, एक समय ते किम हुई ?

९५ 'पुढविकाइए' 'त्यादि, देसवधतर जहन्नेण एक्क समय ··· त्ति कथ ? (वृ० प० ४०२)

९६. पृथ्वीकायिक जेह, देश-वंध मूओ थको॥
अविग्रह करि तेह, पृथ्वीपणंज ऊपनो॥

९६ पृथिवीकायिको देशवन्धको मृत सन्नविग्रहगत्या पृथिवीकायिकेष्वेवोत्पन्न (वृ० प० ४०२)

९७ एक समय अवलोय, सर्व बध थइनैं वलि।
देश-बंध ते होय, इम अतर इक समय ह्वै॥

९७ एक समय च सर्ववन्धको भूत्वा पुनर्देशवन्धको जात एवमेकसमयो देशवन्धयोर्जघन्येनान्तर। (वृ० प० ४०२)

९८. एकेद्री पृथ्वीकाय, देश-बध नो अतरो।
उत्कृष्टो कहिवाय, त्रिण समया ते किम हुइ ?

९८. 'पुढविकाइए' त्यादि····उक्कोसेण तिन्नि समय त्ति, कथम् ? (वृ० प० ४०२)

९९. पृथ्वीकायिक जेह, देश-बध मूओ छतो।
तीन समय नी तेह, विग्रह गति करिनै तिको॥

९९ तथा पृथिवीकायिको देशवन्धको मृत सन् त्रिसमयविग्रहेण, (वृ० प० ४०२)

१००. उपनो पृथ्वी मांहि, अणाहारक बे धुर समय।
तीजे समये ताहि, सर्व-बध थइ नै वलि॥

१०० तेष्वेवोत्पन्नस्तत्र च समयद्वयमनाहारक तृतीयसमये च सर्ववन्धको भूत्वा पुन (वृ० प० ४०२)

१०१. देश-बध ते होय, इह विध त्रिण समयां तणो।
उत्कृष्टो अवलोय, देश-बध नु अतरो॥

१०१ देशवन्धको जात, एव च त्रय समया उत्कर्पतो देशवन्धयोरन्तरमिति। (वृ० प० ४०२)

१०२ *जिम कह्या पृथ्वीकाइया, इमहिज कहिवा हो जाव चउरिंद्री देख।
वायुकाय वर्जी करी, णवरं कहिवो हो एतलोज विशेष॥

१०२ जहा पुढविक्काइयाण एव जाव चउरिंदियाण वाउक्काइयवज्जाण, नवर—

१०३. सर्व-बध नो अतरो, उत्कृष्टो हो कहियै इम जोय।
जिका स्थिति छै जेहनी, समयाधिक हो कहिवू अवलोय॥

१०३. सव्ववधतर उक्कोसेण जा जस्स ठिती सा समयाहिया कायव्वा।

## सोरठा

१०४. पृथ्वी जिम कहिवाय, अप थी चउरिंद्री लगै।
तेह देखाड़ै न्याय, चित्त लगाई साभलो॥

१०४ अथाप्कायिकादीना वन्धान्तरमतिदेशत आह— (वृ० प० ४०२)

१०५. अपकाय नो जोय, जघन्य सर्व-बंध अतरो।
खुड्डाग भव अवलोय, तीन समय ऊणो कह्यु॥

१०५ अप्कायिकाना जघन्य सर्ववन्धान्तर क्षुल्लकभवग्रहण त्रिसमयोनं (वृ० प० ४०२)

१०६ वलि अपकाय मझार, सर्व-बंध नो अतरो।
उत्कृष्टो अवधार, सप्त सहस्र समय अधिक॥

१०६ उत्कृष्ट तु सप्त वर्पसहस्राणि समयाधिकानि (वृ० प० ४०२)

१०७. देश बंध अपकाय, जघन्य समय इक अतरो।
उत्कृष्टो कहिवाय, तीन समय नु जाणिवो॥

१०७ देशवन्धान्तर जघन्यमेक समय उत्कृष्ट तु त्रय समया. (वृ० प० ४०२)

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

नज-। ।, त अवलाय, ॥ व, न

११०. वर्जी वाऊकाय, ते माटै वाऊ तणो।
भेद जुदो कहिवाय, आगल कहियै छै हिवै ॥

११०. अथातिदेशे वायुकायिकवर्जानामित्यनेनातिदिष्टबन्धान्तरेभ्यो वायुबन्धान्तरस्य विलक्षणता सूचितेति वायुबन्धान्तर भेदेनाह— (वृ० प० ४०२)

१११. *वाऊ सर्व-बंध अतरो, जघन्य क्षुल्लक भव हो ऊणा समया तीन।
उत्कृष्ट अंतर एतलो, तीन सहस्र वर्ष हो समय अधिक सुचीन ॥

१११. वाउक्काइयाण सव्वबधतर जहण्णेणं खुड्डाग भवग्गहण तिसमयूण, उक्कोसेण तिण्णि वाससहस्साइ समयाहियाइ।

११२. वाऊ देश-बध अतरो, जघन्य थकी ते हो कहियै समयो एक।
उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त नों, वारू कहियै हो तेहनो न्याय विशेख ॥

११२. देसबधतर जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेण अतोमुहुत्त। (श० ८।३८१)

## सोरठा

११३. वाऊ तनु औदार, देश-बध कारक छतो।
वैक्रिय पाय तिवार, अतर्मुहूर्त्त रहि वलि ॥

११३ वायुरौदारिकशरीरस्य देशबन्धक सन् वैक्रियबन्धमन्तर्मुहूर्त्त कृत्वा (वृ० प० ४०२)

११४. औदारिक सर्व-बध, द्वितीय समये देश-बंध।
उत्कृष्ट अंतर संध, अतर्मुहूर्त्त इह विधे ॥

११४ पुनरौदारिकसवबन्धसमयानन्तरमौदारिकदेशबन्ध यदा करोति तदा यथोक्तमन्तर भवतीति। (वृ० प० ४०२)

११५. *पचेंद्री तिर्यंच नो, औदारिक नो हो बध-अतर पूछत।
श्री जिन भाखै जूजुओ, सर्व-बध नु हो देश-बध नु विरतत ॥

११५ पचिंदियतिरिक्खजोणियओरालियपुच्छा।

११६. सर्व-बंध नो अतरो, जघन्य क्षुल्लक भव हो उणा समया तीन।
उत्कृष्ट अतर एतलो, पूर्व कोडी हो समय अधिक सुचीन ॥

११६. सव्वबधतर जहण्णेण खुड्डाग भवग्गहण तिसमयूण, उक्कोसेण पुव्वकोडी समयाहिया।

## दूहा

११७. सर्व-बंध नु अतरो, जघन्य क्षुल्लक भव जाण।
तीन समय ऊणो तिको, पूर्ववत पहिछाण ॥

११७. तत्र सर्वबन्धान्तर जघन्य भावितमेव (वृ० प० ४०२)

११८. तिरि पचेंद्री सर्व-बध, उत्कृष्ट अतर तास।
पूर्व कोड़ समयाधिक, तसु इम न्याय प्रकाश ॥

११८. उत्कृष्ट तु भाव्यते— (वृ० प० ४०२)

११९. पचेंद्री तिर्यंच जे, अविग्रह उत्पन्न।
सर्व-बंधकारक तदा, पहिले समय सुजन्न ॥

११९. पञ्चेन्द्रियतिर्यङ् अविग्रहेणोत्पन्न प्रथम एव च समये सर्वबन्धक (वृ० प० ४०२)

१२०. पाछै पूर्व कोड जे, समय ऊण रहि सोय।
विग्रह-गति त्रिण समय करि, तिरि पचेंद्री होय ॥

१२०. ततः समयोना पूर्वकोटिं जीवित्वा विग्रहगत्या त्रिसमयया तेष्वेवोत्पन्न (वृ० प० ४०२)

१२१. दोय समय धुरला जिके, अनाहारक नां जाण।
तीजा समय विषे थयो, सर्व-बध पहिछाण ॥

१२१. तत्र च द्वावनाहारकसमयौ तृतीये च समये सर्वबन्धक. सपन्न. (वृ० प० ४०२,४०३)

१२२. अनाहारक ना वे समय, पूर्वे आख्या पेख।
तेह माहिलो समय इक, काढी नैं सुविशेष ॥

१२२. अनाहारकसमययोश्चैक. (वृ० प० ४०३)

---

*लय : वीर सुणो मोरी विनती

१२३. एक समय ऊणो तिको, पूर्व कोड ते माहि।
घाल्यां एक समय बध्यो, अनाहारक नो ताहि ।।
१२४. इतलै पूर्व कोड़ में, एक समय अधिकाय।
उत्कृष्ट अतर सर्व-बध, तिरि-पचेद्री ताय ।।

१२३,१२४ समयोनाया पूर्वकोट्यां क्षिप्तस्तत्पूरणार्थमेकस्त्वधिक इत्येव यथोक्तमन्तर भवतीति, (वृ० प० ४०३)

१२५. *तिरि पचेद्री नो वलि, देश-बध नो हो अतर अवलोय।
जिम एकेद्री नु कह्य, तिम कहिवो हो तिरि-पंचेंद्री नों जोय ।।

१२५ देसवधतर जहा एगिंदियाण तहा पंचिदियतिरिक्खजोणियाण,

**सोरठा**

१२६. तिरि-पचेद्री ताय, देश-बध नु अतरो।
जघन्य थकी कहिवाय, एक समय ते किम हुवै?
१२७. देश-बंध करि काल, सर्व-बध धुर समय रहि।
थयो देश-बंध न्हाल, एक समय इम अतरो ।।
१२८. तिरि-पचेद्री ताय, औदारिक देश-बध नो।
उत्कृष्ट अतर पाय, अतर्मुहूर्त्त किम तसु?
१२९ औदारिक तनु तेह, वैक्रिय तनु प्रतिपन्न थयो।
अतर्मुहूर्त्त रहेह, वलि औदारिक-तनुपणे ।।

१२६. जघन्यमेक समय, कथम्? (वृ० प० ४०३)

१२७ देशवन्धको मृत सर्ववन्धसमयानन्तर, देशवन्धको जात इत्येव, (वृ० प० ४०३)

१२८. उत्कर्षेण त्वन्तर्मुहूर्त्तं, कथम्? (वृ० प० ४०३)

१२९ औदारिकशरीरी देशवन्धक सन् वैक्रिय प्रतिपन्नस्तत्रान्तर्मुहूर्त्त स्थित्वा पुनरौदारिकशरीरी जात (वृ० प० ४०३)

१३०. प्रथम समय सर्व-बंध, द्वितीयादि समया विषे।
देश-बध नो सध, अंतर्मुहूर्त्त इम हुइं ।।

१३०. तत्र च प्रथमसमये सर्ववन्धको द्वितीयादिषु तु देशवन्धक इत्येव देशवन्धयोरन्तर्मुहूर्त्तमन्तरमिति (वृ० प० ४०३)

१३१ *जिम तिरि-पचेद्री कह्यो, ए तो अतर हो सगलो सुविचार।
तेम मनुष्य नो अतरो, जाव उत्कृष्टो हो अंतर्मुहूर्त्त धार ।।

१३१ एव मणुस्साण वि निरवसेस भाणियव्व जाव उक्कोसेण अतोमुहुत्त। (श० ८।३८२)

१३२. †औदारिक बध तणो अतर, प्रकारान्तरइ करी।
आखियै ते साभलो हिव, परम प्रीत हिये धरी ।।

१३२. औदारिकवन्धान्तर प्रकारान्तरेणाह— (वृ० प० ४०३)

१३३. *प्रभु! एकेद्रीपणां थकी, नोएकेद्री हो बेद्रियादिक माहि।
भव करिनै जे जीवड़ो, वलि पाम्यो हो एकेद्रिपणु ताहि ।।
१३४. इम एकेंद्रिय नों जिके, तनु ओदारिक हो तेहनों अतरो जान।
काल थी केतलो काल ह्वै? इम पूछ्यो हो गोयम गुणखान ।।

१३३, १३४ जीवस्स ण भते! एगिंदियत्ते, नोएगिंदियत्ते, पुणरवि एगिंदियत्ते एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबधतर कालओ केवच्चिर होइ?
'नोएगिंदियत्ते' त्ति द्वीन्द्रियत्वादौ (वृ० प० ४०३)

१३५. †सर्व-बंध नै सर्व-बध, सघात अंतर आखियै।
देश-बध नो देश-बध, सघात उत्तर दाखियै ।।

१३६. *श्री जिन भाखै साभलै, सर्व-बंधन हो अतर जघन्य थी जोय।
दोय क्षुल्लक भव ग्रहण ते, त्रिण समया हो ऊणो अवलोय ।।
१३७. हिव अतर उत्कृष्ट थी, सागरोपम हो कह्या दोय हजार।
संख्याता वर्ष अधिक वलि, हिवै बिहुं नों हो वारू न्याय विचार ।।

१३६. गोयमा! सव्ववधतर जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइ तिसमयूणाइ,

१३७. उक्कोसेण दो सागरोवमसहस्साइ सखेज्जवासमब्भहियाइ

---

* लय : वीर सुणो मोरी वीनती

† लय : पूज मोटा भांजे तोटा

१३९. †जे तीन समया विग्रह करिनें, एकेन्द्रियपणु लह्यु ।
अनाहारक बे समय धुर, वाट वहिता ते थयु ॥

१३९. एकेन्द्रियस्त्रिसमयया विग्रहगत्योत्पन्नस्तत्र च समय-द्वयमनाहारको भूत्वा, (वृ० प० ४०३)

१४०. समय तृतीये सर्व वधक, क्षुल्लक भव ऊणो तदा ।
जीवितव्य भोगवी नैं तें, मरण पाम्यो छै यदा ॥

१४०. तृतीयसमये सर्वबन्ध कृत्वा तदूनं क्षुल्लकभवग्रहण जीवित्वा मृतः (वृ० प० ४०३)

१४१. पछै नोएकेंद्रिय ते, वेद्रियादिक त्रसपणें ।
इक क्षुल्लक भव ग्रहणजीवी, मरण पाम्यो छै तिणें ॥

१४१. अनेकेन्द्रियेषु क्षुल्लकभवग्रहणमेव जीवित्वा मृतः (वृ० प० ४०३)

१४२. †अविग्रह गति एकइंद्रिय, वली आवी ऊपनों ।
इम प्रथम समये सर्व-वंधक, तेह भव नों नीपनो ॥

१४२. अविग्रहेण पुनरेकेन्द्रियेष्वेवोत्पद्य सर्वबन्धको जातः (वृ० प० ४०३)

१४३. इम सर्व-वधक अनें जे वलि, सर्व-वध नों अंतरो ।
तीन समया ऊण जे, वे क्षुल्लक भव भाख्यो खरो ॥

१४३. एव च सर्वबन्धयोरुक्तमन्तर जातमिति (वृ० प० ४०३)

## दूहा

१४४. उत्कृष्टो जे अतरो, सागर दोय हजार ।
सख्याता वर्ष अधिक छै, तसु हिव न्याय विचार ॥

१४४ उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइ सखेज्जवासमब्भहियाइं' ति, कथम् ? (वृ० प० ४०३)

१४५. †अविग्रह गति एकइन्द्रिय, ऊपनो धुर समय ही ।
सर्व वंधक थइ वरस, बावीस सहस्र तिहा रही ॥

१४५. अविग्रहेणैकेन्द्रिय समुत्पन्नस्तत्र च प्रथमसमय सर्वबन्धको भूत्वा द्वाविंशति वर्षसहस्राणि जीवित्वा (वृ० प० ४०३)

१४६. मरी त्रस मे ऊपनो, इह उदधि दोय हजार ही ।
वर्ष संख्या अधिक ए त्रस-काय स्थिति उत्कृष्ट ही ॥

१४६. मृतस्त्रसकायिकेषु चोत्पन्न तत्र च सख्यातवर्षाभ्यधिकसागरोपमसहस्रद्वयरूपामुत्कृष्टत्रसकायिककायस्थितिमतिवाह्य (वृ० प० ४०३)

१४७. वलि इकेंद्रिय विषे उपनो, सर्व-वधक ते थयो ।
त्रसपणें विच जे रह्यो, उत्कृष्ट अन्तर तें कह्यो ॥

१४७ एकेन्द्रियेष्वेवोत्पद्य सर्वबन्धको जात इत्येव सर्वबन्धयोर्यथोक्तमन्तर भवति । (वृ० प० ४०३)

१४८. जे सर्व-वधज समय-हीनज, एकेंद्रिय पहिलै भवै ।
उत्कृष्ट भवस्थिति नें विषे, प्रक्षेप कीधा पिण हुवै ॥

१४८. सर्वबन्धसमयहीनएकेन्द्रियोत्कृष्टभवस्थितेस्त्रसकायस्थितौ प्रक्षेपणेऽपि, (वृ० प० ४०३)

१४९. सख्यात स्थानज तणा जे, वलि भेद सख्याता सही ।
ते भणी वर्ष संख्यात अधिका, कह्या तेह विरुध नहीं ॥

१४९. सख्यातस्थानाना संख्यातभेदत्वेन संख्यातवर्षाभ्यधिकत्वस्याव्याहतत्वादिति (वृ० प० ४०३)

१५०. *देश-वध नो अतरो, जघन्य क्षुल्लक भव हो अधिको समयो एक ।
उत्कृष्ट वे सहस्र उदधि छै, वर्ष सख्याता हो कह्या अधिक विशेख ॥

१५०. देसबधतरं जहण्णेणं खुड्डाग भवग्गहण समयाहिय, उक्कोसेण दो सागरोवमसहस्साइ सखेज्जवासमब्भहियाइं (श० ८।३८३)

## सोरठा

१५१. एकेंद्रिय कहाय, देश-वंध करतो मरी ।
वेद्रियादिक माय, खुड्डाग-भव जीवी वलि ॥

१५१. एकेन्द्रियो देशबन्धक. सन् मृत्वा द्वीन्द्रियादिषु क्षुल्लकभवग्रहणमनुभूय (वृ० प० ४०३)

---

†लय · पूज मोटा भांजे तोटा
*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

१५२. एकेंद्रिय में आय, अविग्रह धुर समय मे ।
सर्व-बंध जे थाय, देश-बंध द्वितिये समय ॥

१५३. ते माटै कहिवाय, खुड्डाग भव इह विध हुइ ।
एक समय अधिकाय, जघन्य देश-बंध अंतरो ॥

१५४. उत्कृष्ट दोय हजार, वर्ष सख्याता अधिक वलि ।
विच त्रस भव स्थितिकार, तास भावना पूर्ववत ॥

१५५. *प्रभु ! पृथ्वीकायपणा थकी, ते नोपृथ्वी हो अपकायादि माय ।
ऊपजी नें ते जीवड़ो, वलि ऊपजै हो पृथ्वीकाय में आय ॥

१५६. पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, तनु औदारिक हो प्रयोग-बंध नों जाण ।
काल थी अंतर केतलो ? जिन भाखै हो सुणजो वर वाण ॥

१५७. सर्व-बंध जघन्य अंतरो, दोय क्षुल्लक भव हो ऊणा समया तीन ।
पूरवली पर भावना, उत्कृष्टो हो काल अनंतो चीन ॥

## दूहा

१५८. काल अनतपणु इहा, वनस्पती नी जाण ।
काय-स्थिति ना काल नी, अपेक्षया पहिछाण ॥

१५९. *तास विभजन अर्थे कहै, अनत काल ना हो समया नी राश ।
अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी, तेण समय करि हो अपहरता तास ॥

१६०. अनंती ते अवसर्प्पणी, वलि अनती हो उत्सर्प्पिणी होय ।
काल अपेक्षाय मान ए, क्षेत्र अपेक्षा हो हिव आगल जोय ॥

१६१. क्षेत्र थी लोक अनत ही, तास अर्थ इम हो सुणजो सहु कोय ।
अणंत काल ना समय नी, राशि भेली करि हो तसु अपहरै जोय ॥

१६२. लोक तणां आकाश ना, प्रदेशे करि हो समय अपहरै तेह ।
अनंता लोक हुवै तदा, ए चरचा में हो विरला समझेह ॥

## सोरठा

१६३. अनत लोक ना जोय, जिता आकाश प्रदेश छै ।
तिता समय नी होय, अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी ॥

१६४. *पुद्गल परावर्त्तन तिके, असख्याता हो होवै तिण माहि ।
एक पुद्गलपरावर्त्त विषे, कालचक्र हो अनंता हुवै ताहि ॥

१६५. दस कोडाकोड सागर तणो, अवसर्प्पिणी हो काल होवै एक ।
दस कोड़ाकोड़ सागर तणो, उत्सर्प्पिणी हो काल एक सपेख ॥

---

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

१५२. अविग्रहेण चागत्य प्रथमसमये सर्वबन्धको भूत्वा द्वितीये देशबन्धको भवति। (वृ० प० ४०३)

१५३. एव च देशबन्धान्तरं क्षुल्लकभव सर्वबन्धसमयातिरिक्त । (वृ० प० ४०३)

१५४ 'उक्कोसेण' मित्यादि सर्वबन्धान्तरभावनोक्तप्रकारेण भावनीयमिति । (वृ० प० ४०३)

१५५ जीवस्स ण भते ! पुढविक्काइयत्ते, नोपुढविक्काइयत्ते, पुणरवि पुढविक्काइयत्ते

१५६ पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधतर कालओ केवच्चिर होइ ?

१५७. गोयमा ! सव्वबधतर जहण्णेण दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं तिसमयूणाइ, उक्कोसेण अणतं काल—

१५८ कालानन्तत्व वनस्पतिकायस्थितिकालापेक्षयाऽनन्तकालमित्युक्त (वृ० प० ४०३)

१५९ तद्विभजनार्थमाह— (वृ० प० ४०३)
अणंताओ ओसप्पिणीओ उस्सप्पिणीओ कालओ,
अयमभिप्रायः—तस्यानन्तस्य कालस्य समयेषु अवसर्प्पिण्युत्सर्प्पिणीसमयैरपह्रियमाणेषु (वृ० प० ४०३)

१६०. अनन्ता अवसर्प्पिण्युत्सर्प्पिण्यो भवन्तीति (वृ० प० ४०३)

१६१, १६२. खेत्तओ अणता लोगा—
अयमर्थः—तस्यानन्तकालस्य समयेषु लोकाकाशप्रदेशैरपह्रियमाणेष्वनन्ता लोका भवन्ति । (वृ० प० ४०३)

१६४ असखेज्जा पोग्गलपरियट्टा,

१६५ दशभिः कोटीकोटीभिरद्धापल्योपमानामेक सागरोपम दशभि. सागरोपमकोटीकोटीभिरवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिण्यप्येवमेव । (वृ० प० ४०३)

नियम प्रमाण कहै हिवै, जिन वच अमिय समान। (वृ० प० ४०३)

१६८. *आवलिका ने भाग असख्यातमो,
असख्याता हो समया जे दृष्ट ।
पुद्गलपरावर्त्त एतला, सर्व-वंध नो हो अतर उत्कृष्ट ॥

१६८. ते ण पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो। असंख्यातसमयसमुदायश्चावलिकेति (वृ० प० ४०३)

१६९ देश-वध नों अंतरो,
जघन्य क्षुल्लक भव हो समय अधिक ए भाग ।
उत्कृष्ट काल अनंत नो, जाव आवलिका हो असंख्यातमे भाग ॥

१६९. देसबंधतरं जहण्णेण खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेण अणंतं कालं जाव आवलियाए असंखेज्जइभागो।

### सोरठा

१७०. पृथ्वीकायिक ताहि, देश-वंध करतो मरी ।
नोपृथ्वी रै मांहि, खुड्डाग भव जीवी मुओ ॥

१७०. पृथिवीकायिको देशबंधक सन्मृतो नोपृथिवीकायिकेषु क्षुल्लकभवग्रहणं जीवित्वा मृत सन्। (वृ० प० ४०३)

१७१ वली अविग्रह संध, पृथ्वी विषेज ऊपनो ।
प्रथम समय सर्व-वंध, देश-वंध द्वितीय समय ॥

१७१. पुनरविग्रहेण पृथिवीकायिकेष्वेवोत्पन्न, तत्र च सर्वबन्धसमयानन्तर देशबन्धको जात (वृ० प० ४०३)

१७२. सर्व-वंध नो जेह, एक समय ते अधिक ए ।
क्षुल्लक भवे करि तेह, जघन्य देश वंध अंतरो ॥

१७२ एवं च सर्वबन्धसमयेनाधिकमेकं क्षुल्लकभवग्रहणं देशबन्धयोरन्तरमिति। (वृ० प० ४०३)

१७३. *जिम कह्या पृथ्वीकाइया,
इमहिज कहिवूं हो वनस्पति वर्जी जाण ।
जाव मनुष्य नां दंडक लगै,
वनस्पति नु हो भेद जुदो हिव आण ॥

१७३. जहा पुढविक्काइयाण एवं वणस्सइकाइयवज्जाणं जाव मणुस्साणं।

१७४. वनस्पति नैं जघन्य थी, सर्व वंधंतर हो दोय क्षुल्लक भव होय ।
एवं चेव ए पाठ थी, तीन समय करि हो ऊणो अवलोय ॥

१७४. वणस्सइकाइयाण दोण्णि खुड्डाइं एवं चेव, 'एवं चेव' त्ति करणात् त्रिसमयोने इति दृश्यम् (वृ० प० ४०४)

### सोरठा

१७५. तीन समय नी ताहि, विग्रह गति करि जीवड़ो ।
वनस्पती रै मांहि, आवी नें उपनो तदा ॥

१७५ वनस्पतिकायिकस्त्रिसमयेन विग्रहेणोत्पन्न (वृ० प० ४०४)

१७६. धुर वे समया संध, अनाहारक नां जाणवा ।
तृतीय समय सर्व-वंध, खुड्डाग भव जीवी करी ॥

१७६. तत्र च विग्रहस्य समयद्वयमनाहारकस्तृतीये समये च सर्वबन्धको भूत्वा क्षुल्लकभवं च जीवित्वा। (वृ० प० ४०४)

१७७. वलि पृथव्यादिक मांहि, खुड्डाग भव रहिनै वलि ।
अविग्रह करि ताहि, वनस्पती मे ऊपनो ॥

१७७. पुनः पृथिव्यादिषु क्षुल्लकभवमेव स्थित्वा पुनरविग्रहेण वनस्पतिकायिकेष्वेवोत्पन्न (वृ० प० ४०४)

---

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

१७८. प्रथम समय सर्व-बंध, इम सर्व-वध नो अंतरो।
दोय क्षुल्लक भव सध, तीन समय करि ऊण जे ॥

१७८ प्रथमसमये च सर्ववन्धकोऽसाविति मर्ववन्धयोस्त्रि-समयोने द्वे क्षुल्लकभवग्रहणे अन्तरं भवत इति। (वृ० प० ४०४)

१७९. *वनस्पती सर्व-वध नो, उत्कृष्टो हो असंख्यातो काल।
असंख्याती अवसर्प्पिणी, असख्याती हो उत्सर्प्पिणी न्हाल ॥
१८० क्षेत्र थकी कहियै हिवै, असख्याता हो लोकाकाश प्रदेश।
इता कालचक्र जाणवो, देश-बंध नो हो एव चेव कहेस ॥

१७९ उक्कोसेण असखेज्ज काल—असखेज्जाओ ओसप्पिणीओ उस्सप्पिणीओ कालओ,
१८० खेत्तओ असखेज्जा लोगा, एव देसवधंतर पि उक्कोसेण पुढविकालो। (श० ८।३८४)

## सोरठा

१८१. वनस्पती नो ताहि, उत्कृष्ट अतर सर्व-बंध।
पृथ्वी प्रमुख मांहि, कायस्थिति अद्धा जितो ॥
१८२. देश बंधंतर एम, एहवू पाठ मझै कह्यु।
तास न्याय धर प्रेम, वृत्ति थकी कहियै अछै ॥
१८३. पृथिव्यादिक नो जेम, देश बंधतर जघन्य छै।
वनस्पती नों एम, खुड्डाग भव समयाधिकं ॥
१८४. वनस्पती भव छेह, देश-वंध करतो मरी।
पृथिव्यादिक हुवै तेह, खुड्डाग भव जीवी वलि ॥
१८५. वनस्पती ते होय, सर्व-बध पहिलै समय।
द्वितीय देश-वध जोय, समयादिक भव क्षुल्लक इम ॥
१८६. उत्कृष्ट पृथ्वी-काल, तरु देश-बंध अतरो।
न्याय पूर्ववत न्हाल, काल असंख्याता तणो ॥

१८१. 'उक्कोसेण' मित्यादि, अयं च पृथिव्यादिषु कायस्थिति-काल· (वृ० प० ४०४)
१८२, १८३ 'एव देसवधतरपि' त्ति यथा पृथिव्यादीना देशवन्धान्तरं जघन्यमेव वनस्पतेरपि, तच्च क्षुल्लक-भवग्रहण समयाधिक। (वृ० प० ४०४)

१८६. उत्कर्षेण वनस्पतेर्देशवन्धान्तर 'पृथिवीकाल.' पृथिवीकायस्थितिकालोऽसख्यातावसर्प्पिण्युत्सर्प्पिण्यादिरूप इति। (वृ० प० ४०४)

१८७. *हे भदंत ! बहु जीव नैं, औदारिक ना हो देश-बधगा कहेस।
सर्व-वंधगा अवंधगा ? कुण कुण सेती हो यावत अधिक विशेष ॥

१८८. जिन कहै सर्व थोड़ा अछै, औदारिक ना हो सर्व-वंधगा सोय।
उत्पत्ति समय विषेज ह्वै,
एक समय नु हो तास काल अवलोय ॥
१८९. अबधगा विसेसाहिया, विग्रहगतिया हो अथवा सिद्ध विचार।
सर्व-बधग नी अपेक्षया, अवधगा ते हो विसेसाहिया धार ॥

१९०. देश-वंधगा असंखगुणा, देश-वंधग नों हो असखगुणो छै काल।
भावना एह नी विशेष थी,
आगल कहिसै हो इम टीका में निहाल ॥
१९१. अक नव्यासी नों देश ए, एकसौ नैं हो अठावनमी ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी,
सुखदायक हो 'जय-जश' हरष विशाल ॥

१८७. एएसि ण भते ! जीवाणं ओरालियसरीरस्स देसवधगाण, सव्ववधगाण, अवधगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? वहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा?
१८८ गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा ओरालियसरीरस्स सव्ववधगा,
तेषामुत्पत्तिसमय एव भावात् (वृ० प० ४०४)
१८९ अवधगा विसेसाहिया
यतो विग्रहगतौ सिद्धत्वादौ च ते भवन्ति, ते च सर्व-वन्धकापेक्षया विशेषाधिका (वृ० प० ४०४)
१९० देसवधगा असखेज्जगुणा। (श० ८।३८५)
देशवन्धकालस्यासख्यातगुणत्वात्, एतस्य च सूत्रस्य भावना विशेषतोऽग्रे वक्ष्याम इति (वृ० प० ४०४)

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

| वध नी स्थिति | समय | ऊणा तीन पल्योपम । |
|---|---|---|
| एकेंद्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बध नी स्थिति । | एक समय | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एक समय ऊणा बावीस हजार वर्ष । |
| पृथ्वीकाय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बध नी स्थिति । | एक समय | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट एक समय ऊणा बावीस हजार वर्ष । |
| आउ तेउ वनस्पति बेइंद्रिय तेइंद्रिय चउरिंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बध नी स्थिति । | एक समय | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट जेहनें जेतली उत्कृष्टी स्थिति छै ते एक समय ऊणी कही । |
| वाउ औदारिक-शरीर प्रयोग-बध नी स्थिति । | एक समय | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एक समय ऊणा तीन हजार वर्ष । |
| तिर्यंच पचेंद्री मनुष्य औदारिक-शरीर-प्रयोग-बध नी स्थिति । | एक समय | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एक समय ऊणा तीन पल्योपम । |

**औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नो अंतर-सूचक यन्त्र**

| द्वितीय यंत्र | सर्व बध नो अतर | देश बध नो अतर |
|---|---|---|
| समुच्चय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बध नो अतर काल थकी केतलो काल ? | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट तेतीस सागर पूर्व कोडि एक समय अधिक । | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीन समय अधिक तेतीस सागर। |
| एकेंद्री औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नो अतर काल थकी केतलो काल ? | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट एक समय अधिक बावीस हजार वर्ष । | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त्त । |
| पृथ्वीकाय औदारिक-शरीर प्रयोग-बध नो-अतर काल थकी केतलो काल ? | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट एक समय अधिक बावीस हजार वर्ष । | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीन समय । |
| आउ, तेउ, वनस्पति, बेंद्री, तेंद्री, चउरिंद्री औदारिक-शरीर-प्रयोग-बध नो अतर काल थकी केतलो काल ? | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट एक समय अधिक जेहनें जेतली उत्कृष्ट स्थिति । | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीन समय । |
| वाउ औदारिक-शरीर-प्रयोग-बध नो अतर काल थकी केतलो काल ? | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट एक समय अधिक तीन हजार वर्ष । | जघन्य एक समय उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त्त । |
| तिर्यंच पचेंद्री मनुष्य औदारिक-शरीर-प्रयोग-बध नो अतर काल थकी केतलो काल ? | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट पूर्व-कोडि एक समय अधिक । तिर्यंच-पचेंद्रि मरी आतरा रहित तिर्यंच-पचेंद्रीपणें ऊपजे ते माटै पूर्व कोड समयाधिक । इमहिज मनुष्य । | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त्त । |

**जीव एकेंद्रियपणें हुंतो ते नोएकेंद्रियपणें ऊपजी नें वलि एकेंद्रियपणें हुई इम एकेंद्रिय शरीर प्रयोग बंध नु अंतर काल थकी केतलो काल ? तेहनों उत्तर**

तीजा यंत्र नां प्रथम कोठा नें विषं छै—

| तृतीय यत्र | सर्व-वध ते सर्व-वध नो अतर | देश-वध ते देश-वध नो अतर |
|---|---|---|
| एकेंद्रियपणै नो-एकेंद्रियपणै वलि एकेंद्रियपणै। | जघन्य तीन समय ऊणा वे खुडाग भव, उत्कृष्ट दो हजार सागर संख्याता वर्ष अधिक। | जघन्य एक समय अधिक खुडाग भव, उत्कृष्ट वे सहस्र सागर सख्याता वर्ष अधिक। |
| पृथ्वी, अप, तेउ, वाउ, तीन विकलेंद्री, तिर्यंच-पचेंद्री, मनुष्य। | जघन्य तीन समय ऊणा वे खुडाग भव, उत्कृष्ट वनस्पति-काल—असख्यात पुद्गल-परावर्त्तन। | जघन्य एक समय अधिक खुडाग भव, उत्कृष्ट अनतो काल—वनस्पति नो काल। |
| वनस्पति | जघन्य तीन समय ऊणा वे खुडाग भव, उत्कृष्ट असख्याता अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी। | जघन्य एक समय अधिक खुडाग भव, उत्कृष्ट अस-ख्याती अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी। |

ए औदारिक-शरीर नां देश-बंधका सर्व-बंधका अबंधका मे कुण कुण थकी अल्प बहुत्व तुल्य विशेषाधिक—

| चतुर्थ यत्र | सर्ववधका | अवधका | देशवधका |
|---|---|---|---|
| अल्पबहुत्व | सर्व थी थोडा | विसेसाहिया | असख्यातगुणा |

## ढाल : १५६

### दूहा

१. हिव आगल वैक्रिय-तनु-प्रयोग-बध पिछाण।
तास निरूपण नै अरथ, कहियै जिनवच जाण॥

*श्री जिन एहवो भाख्यो जी।
परम प्रीतवंता गोयम नै भिन-भिन दाख्यो जी॥ (ध्रुपद)

२. वैक्रिय-तनु-प्रयोग-बध प्रभु! कितै प्रकार कहीजै?
जिन कहै दोय प्रकार प्ररूप्या, तास भेद इम लीजै॥

३. एकेद्री-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बध कहीजै॥
वलि पंचेद्रि-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बध लहीजै॥

४. जो एकेद्रिय-वैक्रिय-शरीर, तो स्यू वाऊकायो?
कै अवाऊ-एकेद्रि-तनु-प्रयोग-बध कहायो?

५. इम एणे आलावे करि जिम, अवगाहण सठाणो।
वैक्रिय तनु ना भेद कह्या तिम, इहा पिण कहिवा जाणो॥

१. अथ वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धनिरूपणायाह—
(वृ० प० ४०४)

२ वेउव्वियसरीरप्पयोगबधे ण भते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, त जहा—

३. एगिदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबधे य पचेदियवेउव्विय-सरीरप्पयोगबधे य। (श० ८।३८६)

४ जइ एगिदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबधे किं वाउक्का-इयएगिदियसरीरप्पयोगबधे? अवाउक्काइयएगिदिय-सरीरप्पयोगबधे?

५ एव एएण अभिलावेण जहा ओगाहणसठाणे वेउव्विय-सरीरभेदो तहा भाणियव्वो।

*लय : सतगुरु एहवो भाख्यो जी

७. हे भदंत ! वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध पहिछाणी ।
किसै कर्म नैं उदय करि हुवै ? हिव जिन उत्तर जाणी ॥
८. वीर्य सजोग सद्द्रव्यपणैं करि, जाव आऊ आश्री जे ।
तथा वैक्रिय करण लब्धि प्रति, आश्री वैक्रिय लीजे ॥

### सोरठा

९. जाव शब्द रै माहि, प्रमाद-प्रत्यय कर्म वलि ।
जोग अनैं भव ताहि, ते सगला कहिवा इहां ॥
१०. लब्धि पडुच्च कहाय, वाऊ तिरि पंचेंद्रिय ।
वलि मनुष्य पेक्षाय, एह सूत्र आख्यो इहां ॥
११. तिरि प० वाऊकाय, वलि मनुष्य ना सूत्र मे ।
लब्धि पडुच्चज थाय, आगल पाठ इसो अछै ।
१२. सूत्र नरक सुर साधि, लब्धि शब्द छाडी करो ।
वीरिय सजोग आदि, आगल पाठ इसो अछै ॥

१३. *वाऊ एकेंद्रिय तनु पूछा, भाखै श्री जिन भेवो ।
वीर्य सजोग सद्द्रव्यपणै करि, तिमज पाठ तनु चेवो ॥
१४. यावत वैक्रिय करण लब्धि, आश्रयी नैं वाऊ जोयो ।
एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंधज होयो ॥
१५. रत्नप्रभा पृथ्वी नारक प्रभु ! पंचेंद्रिय अवलोयो ।
वैक्रिय-तनु-प्रयोग-बंध, किण कर्म उदय करि होयो ?
१६. जिन कहै वीर्य सजोग सद्द्रव्यपणैं जाव कहिवायो ।
आयू आश्री रत्नप्रभा ना, वैक्रिय जाव बंधायो ॥

१७. एवं यावत अधो सातमी, पृथ्वी लगै पिछाणी ।
तिरि पंचेद्रिय वैक्रिय पूछा, हिव जिन भाखै वाणी ॥
१८. वीर्य सजोग सद्द्रव्य वाऊकाय कही तिम कहियै ।
मनुष्य पचेंद्रि वैक्रिय शरीर, इणहिज रीते लहियै ॥

१९. असुरकुमार देव पचेंद्री, वैक्रिय यावत बंधो ।
रत्नप्रभा जिम एवं यावत, थणियकुमारा संधो ॥

७. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?
८. गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए, जाव (सं० पा०) आउयं च लद्धिं वा पडुच्च वेउव्वियसरीरप्पयोग-नामाए कम्मस्स उदएणं वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे ।
(श० ८।३८८)
९. पमादपच्चया कम्मं च जोगं च भवं च ।

१०. 'लद्धिं व' त्ति वैक्रियकरणलब्धिं वा प्रतीत्य, एतच्च वायुपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्यानपेक्ष्योक्तम् ।
(वृ० प० ४०६)
११. तेन वायुकायादिसूत्रेषु लब्धिं वैक्रियशरीरबन्धस्य प्रत्ययतया वक्ष्यति, (वृ० प० ४०६)
१२. नारकदेवसूत्रेषु पुनस्तां विहाय वीर्यसयोगसद्द्रव्य-तादीन् प्रत्ययतया वक्ष्यतीति (वृ० प० ४०६)

१३. वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगपुच्छा ।
गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए एवं चेव
१४ जाव लद्धिं पडुच्च वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीर-प्पयोगबंधे । (श० ८।३८९)
१५. रयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोग-बंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?
१६. गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जाव आउयं वा पडुच्च रयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियवेउव्वियसरीर-प्पयोगबंधे,
१७ एवं जाव अहेसत्तमाए । (श० ८।३९०)
तिरिक्खजोणियपंचिंदियवेउव्वियसरीरपुच्छा ।
१८ गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जहा वाउक्काइयाणं ।
मणुस्सपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे एवं चेव ।
१९ असुरकुमारभवणवासिदेवपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोग-बंधे जहा रयणप्पभापुढविनेरइयाणं । एवं जाव थणियकुमारा ।

---

*लय : सतगुरु एहवो भाख्यो जी

२०. एवं व्यंतर अनैं जोतिपी, द्वादश कल्पज एवं ।
कल्पातीत नव-ग्रीवेयक, वली अनुत्तर देव ॥
२१. देश नव्यासी ढाल एकसौ, गुणसठमी ए ताजी ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' संपति जाझी ॥

२०. एवं वाणमंतरा । एवं जोइसिया । एवं सोहम्मकप्पोवया वेमाणिया । एवं जाव अच्चुयगेवेज्जकप्पातीया वेमाणिया । अणुत्तरोववाइयकप्पातीया वेमाणिया एवं चेव । (श० ८।३६१)

## ढाल : १६०

### दूहा

१. वैक्रिय शरीर नो हिवै, देश-बंध सर्व-बंध ।
पूछै गोयम गणहरू, उत्तर दै जिनचंद ॥
२. हे प्रभुजी ! वैक्रिय-तनु-प्रयोग-बंध अवलोय ।
देश-बंध वा सर्व-बंध ह्वै ? जिन कहै दोनूं जोय ॥

२. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे ? सव्वबंधे ?
गोयमा ! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि ।

३. वाऊकाय एकेंद्रिय, कहियै एवं चेव ।
रत्नप्रभा नारक इमज, जाव अनुत्तर देव ॥

३. वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे वि एवं चेव । रयणप्पभापुढविनेरइया एवं चेव । एवं जाव अणुत्तरोववाइया । (श० ८।३६२)

*जिन-वच लीजै रे, सतगुरु सीखड़ली ।
ए थी मीठी नहिं छै रे, साकर सूंखडली ॥
(ध्रुपदं)

४ वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध प्रभु ! काल थकी कितो काल ?
जिन भाखै सर्व-बंध जघन्य थी, एक समय लग न्हाल ॥

४. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! सव्वबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं,

### सोरठा

५. वैक्रिय शरीर माहि, ऊपजतो धुर समय जे ।
तथा लब्धि थी ताहि, वैक्रिय करतो धुर समय ॥

५ वैक्रियशरीरिपूत्पद्यमानो लब्धितो वा तत् कुर्वन् समयमेकं सर्वबन्धको भवतीत्येवमेकं समयं सर्वबन्ध इति । (वृ० प० ४०६)

६ *उत्कृष्टा बे समया कहियै, औदारिक तनु न्हालो ।
वैक्रिय पडिवजता धुर समये, सर्व-बंध ते भालो ॥
७. द्वितीय समय मरि देव नरक ह्वै, वैक्रिय तनु बांधंत ।
प्रथम समय सर्व-बंध कहीजै, इम बे समया हुंत ॥

६,७ उक्कोसेणं दो समया ।
औदारिकशरीरी वैक्रियतां प्रतिपद्यमानः सर्वबन्धको भूत्वा मृतः पुनर्नारकत्वं देवत्वं वा यदा प्राप्नोति तदा प्रथमसमये वैक्रियस्य सर्वबन्धक एवेतिकृत्वा वैक्रियशरीरस्य सर्वबन्धक उत्कृष्टतः समयद्वयमिति । (वृ० प० ४०६)

८ वैक्रिय तनु नो देश-बंध ए, जघन्य समय इक जाणी ।
उत्कृष्टो तेतीस सागर है, समय ऊण पहिछाणी ॥

८. देसबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समयूणाइं (श० ८।३६३)

---

*लय : चौरासी में भमतां रे भमतां

१०. प्रथम समय सर्व बंध, देश बंध द्वितीय समय ।
पाम्यो मरणज मद, जघन्य थकी इक समय इम ॥

१० प्रथमसमये सर्वबन्धको भवति द्वितीयसमये देशबन्धो भूत्वा मृत इत्येव देशबन्धो जघन्यत एक समयमिति ।
(वृ० प० ४०६)

११. उत्कृष्टो अवलोय, तेतीस सागरोपम रहै ।
समय ऊण ते होय, ते किण रीत कहीजियै ?

११ 'उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ समयऊणाइं' ति, कथम् ?
(वृ० प० ४०६)

१२. नरक तथा सुर माय, उत्कृष्टी स्थिति नैं विषे ।
ऊपजतो कहिवाय, समय ऊण तेतीस उदधि ॥

१२ देवेषु नारकेषु चोत्कृष्टस्थितिषूत्पद्यमान प्रथमसमये सर्वबन्धको वैक्रियशरीरस्य तत परं देशबन्धकस्तेन सर्वबन्धकसमयेनोनानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्युत्कर्षतो देशबन्ध इति
(वृ० प० ४०६)

१३. *वाऊकाय एकेंद्री पूछा, तब भाखै जिनराय ।
सर्व-बंध स्थिति एक समय नी, हिव तसु कहियै न्याय ॥

१३ वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियपुच्छा ।
गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं,

## सोरठा

१४. वाऊ तनु औदार, तेह थकी वैक्रिय गयो ।
प्रथम समय सुविचार, सर्वबंधकारक थयो ॥
१५. दूजे समये संध, देश-बंध थइ नै मुओ ।
जघन्य थकी सर्व-बंध, एक समय वैक्रिय पवन ॥

१४,१५ वायुरौदारिकशरीरी सन् वैक्रिय गतस्तत प्रथमसमये सर्वबन्धक द्वितीयसमये देशबन्धको भूत्वा मृत इत्येव जघन्येनैको देशबन्धसमय.। (वृ० प० ४०६)

१६. *वाऊ वैक्रिय देश-बंध ते, जघन्य समय इक लहियै ।
उत्कृष्टो अंतर्मुहूर्त्त ते, न्याय तास इम कहियै ॥

१६ देसबंधे जहण्णेण एक्कं समयं, उक्कोसेण अंतोमुहुत्तं ।
(श० ८।३६४)

## सोरठा

१७ वाऊ तनु औदार, तेह थकी वैक्रिय गयो ।
अंतर्मुहूर्त्त धार, उत्कृष्टो रहै जीवतो ॥
१८ लब्धी वैक्रिय वाय, अंतर्मुहूर्त्त थी अधिक ।
वैक्रिय नहिं रहिवाय, अवश्य औदारिक फुन हुइ ॥

१७. वैक्रियशरीरेण स एव यदाऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रमास्ते तदोत्कर्षतो देशबन्धोऽन्तर्मुहूर्त्तम् (वृ० प० ४०६)
१८ लब्धिवैक्रियशरीरिणो जीवतोऽन्तर्मुहूर्त्तात्परतो न वैक्रियशरीरावस्थानमस्ति, पुनरौदारिकशरीरस्यावश्य प्रतिपत्तेरिति । (वृ० प० ४०६)

१९. *रत्नप्रभा नारक नी पूछा, तब भाखै जगभाण ।
सर्व-बंध कारक स्थिति तेहनी, एक समय पहिछाण ॥
२०. देश-बंधकारक ते जघन्य थी, दस सहस्र वर्ष विचार ।
तीन समय ऊणाज कहीयै, तास न्याय इम धार ॥

१९ रयणप्पभापुढविनेरइयपुच्छा ।
गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं,
२०. देसबंधे जहण्णेण दसवाससहस्साइं तिसमयूणाइं

## सोरठा

२१. तीन समय नी जाण, विग्रह-गति करि ऊपनो ।
रत्नप्रभा मे आण, जेह जघन्य स्थिति नैं विषे ॥

२१. त्रिसमयविग्रहेण रत्नप्रभाया जघन्यस्थितिर्नारक समुत्पन्न, (वृ० प० ४०६)

---

*लय : चौरासी मे भमतां रे भमतां

२२. धुरला समया दोय, अनाहारक नां जाणवा।
तृतीय समये सोय, सर्व-बधकारक थयो ॥

२२. तत्र च समयद्वयमनाहारकस्तृतीये च समये सर्वबन्धक (वृ० प० ४०६)

२३. वैक्रिय नुं इम देख, धुर त्रिण समया ऊण जे।
वर्ष सहस्र दस पेख, देश-बध स्थिति जघन्य थी ॥

२३. ततो देशबन्धको वैक्रियस्य तदेवमाद्यसमयत्रयन्यून वर्ष-सहस्रदशक जघन्यतो देशबन्ध, (वृ० प० ४०६, ४०७)

२४. *रत्नप्रभा नारक नों देश-बध, उत्कृष्टो जे काल।
समय ऊण इक सागर कहियै, न्याय तास इम न्हाल ॥

२४. उक्कोसेण सागरोवम समयूण।

**सोरठा**

२५. रत्नप्रभा मे सध, अविग्रह उत्कृष्ट स्थिति।
प्रथम समय सर्व-वंध, शेष समय ए देश-बध ॥

२५ अविग्रहेण रत्नप्रभायामुत्कृष्टस्थितिर्नारक समुत्पन्न, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको वैक्रियशरीरस्य तत' पर देशबन्धक' (वृ० प० ४०७)

२६. *एव यावत अधो सप्तमी, णवर देश-बध चीन।
जेहनी जेतलो जघन्य स्थिति छै, ऊणो समया तीन ॥

२६ एव जाव अहे सत्तमा, नवर—देसबधे जस्स जा जहण्णिया ठिती सा तिसमयूणा कायव्वा

**सोरठा**

२७. विग्रह समया तीन, ते ऊणो जे जघन्य स्थिति।
सर्व नरक मे लीन, जघन्य देश-बध काल ए ॥

२७. देशबन्धश्च जघन्यो विग्रहसमयत्रयन्यूनो निजनिज-जघन्यस्थितिप्रमाणो वाच्य। (वृ० प० ४०७)

२८. *जाव सर्व नारक उत्कृष्टो, देश-बध नो काल।
उत्कृष्टी स्थिति जेह नरक में, समय ऊण ते न्हाल ॥

२८ जाव उक्कोसिया सा समयूणा।

२९ पचेंद्री-तिर्यंच मनुष्य मे, जिम कहि वाऊकाय।
तिमहिज पाठ सर्व इहा कहिवा, निमल विचारी न्याय ॥

२९. पचिदियतिरिक्खजोणियाण मणुस्साण य जहा वाउक्काइयाण

**सोरठा**

३० वैक्रिय तनु सर्व-बध, तिरि-प० मनु इक समय छै।
देश-वंध इम संध, जघन्य थकी इक समय ह्वै ॥

३०. पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणा वैक्रियसर्वबन्ध एक समय देशबन्धस्तु जघन्यत एक समय (वृ० प० ४०७)

३१. उत्कृष्टो अवलोय, अतर्मुहूर्त्त काल जे।
जाव शब्द मे जोय, तास न्याय कहूं वृत्ति थी ॥

३१ उत्कर्षेण त्वन्तर्मुहूर्त्तम्। (वृ० प० ४०७)

३२. नारक मुहूर्त्त भिन्न, चिउं तिर्यंच मनुष्य विषे।
सुर अर्द्ध मास प्रपन्न, उत्कृष्ट विकुर्वण अद्धा[1] ॥

३२ अतमुहुत्त निरएसु होइ चत्तारि तिरियमणुएसु।
देवेसु अद्धमासो उक्कोस विउव्वणा कालो ॥ (वृ० प० ४०७)

**दूहा**

३३. एह वचन सामर्थ थी, अतर्मुहूर्त्त च्यार।
देश-बध नों काल ते, मततरे इम धार ॥

३३ इति वचनसामर्थ्यादन्तर्मुहूर्त्तचतुष्टय तेपा देशबन्ध इत्युच्यते तन्मतान्तरमित्यवसेयमिति। (वृ० प० ४०७)

---

***लय : चौरासी मे भमता रे भमतां**

१. इस संदर्भ मे जीवाभिगम (३।१२९) की गाथा इम प्रकार है—
भिन्नमुहुत्तो नरएसु, तिरियमणुएसु होंति चत्तारि।
देवेसु अद्धमासो, उक्कोस विउव्वणा भणिया ॥

णवर जेहनें स्थिति जिका छै, तेहिज भणी पिछाणं ॥

नेरइयाण, नवर—जस्स जा ठिती सा भाणियव्वा

३६. जाव अनुत्तरवासी सुरवर, वैक्रिय तास शरीरं ।
सर्व-बंध नों काल समय इक, भाखै जिन महावीरं ॥

३६. जाव अणुत्तरोववाइयाण सव्वबंधे एक्क समय ।

३७. देश-बंध जघन्य इकतीस सागर, ऊणी समया तीन ।
उत्कृष्टी सागर तेतीसज, एक समय छै हीन ॥

३७. देशबंधे जहण्णेण एक्कतीम सागरोवमाइ तिसमयूणाइ उक्कोसेणं तेत्तीस सागरोवमाइ समयूणाइं ।
(श० ८।३९५)

३८. अंक नव्यासी नों देश कह्यु ए, एक सौ साठमी ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' मंगलमाल ॥

## ढाल : १६१

### दूहा

१. वैक्रिय तनु प्रयोग-बंध, आख्यो तेहनो काल ।
हिव तेहना अंतर प्रतै, कहियै वचन रसाल ॥

१. उक्तो वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धस्य काल, अथ तस्यैवान्तर निरूपयन्नाह—
(वृ० प० ४०७)

†जिन जी जयवता ॥ (ध्रुपदं)

२. वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध नों, प्रभु ! काल थी अंतर कितनो रे ?
जिन कहै अंतर सर्व-बंध नो, जघन्य थी एक समय नो रे ॥

२ वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधतर ण भंते ! कालओ केवच्चिर होइ ? गोयमा ! सव्वबंधतरं जहण्णेण एक्क समय

### सोरठा

३. औदारिक तनु जेह, वैक्रिय शरीर पाय कै ।
प्रथम समय में तेह, सर्व-बंधकारक थयो ॥

३. औदारिकशरीरी वैक्रिय गत. प्रथमसमये सर्वबन्धक
(वृ० प० ४०७)

४. द्वितीये समये ताहि, देश-बंध थइ नें मुओ ।
सुर तथा नारक माहि, वैक्रिय शरीर नें विषे ॥

४. द्वितीये देशबन्धको भूत्वा मृतो देवेषु नारकेषु वा वैक्रियशरीरिषु
(वृ० प० ४०७)

५. अविग्रह उत्पन्न, प्रथम समय सर्व-बंध कहै ।
इम इक समय वचन्न, सर्व-बंध नो अतरो ॥

५ अविग्रहेणोत्पद्यमान प्रथमसमये सर्वबन्धक इत्येवमेक समय सर्वबन्धान्तरमिति
(वृ० प० ४०७)

६. †उत्कृष्ट काल अनंत पिछाणी, कालचक्र अनंता जाणी ।
जाव आवलिका नें भाग असंख, पुद्गलपरावर्त्त पंक ॥

६. उक्कोसेण अणत काल—अणताओ जाव (स० पा०) आवलियाए असखेज्जइभागो ।

### सोरठा

७. औदारिक तनु ताहि, वैक्रिय शरीर प्रति गयो ।
तथा वैक्रिय मांहि, देवादिक मे ऊपनों ॥

७ औदारिकशरीरी वैक्रिय गतो वैक्रियशरीरिषु वा देवादिषु समुत्पन्न
(वृ० प० ४०७)

---

*लय : चौरासी मे भमता रे भमतां
†लय : समझू नर विरला

८. प्रथम समय सर्व-बध, पछै देश-बंध करि मरी ।
वनस्पत्यादिक सध, काल अनतो त्या रही ॥

९. वैक्रिय-शरीरवंत, तेहमे उपजी धुर समय ।
सर्व-बंध ते हुंत, अनत काल इम अंतरो ॥

१०. *देश-बध पिण इमहिज होय, जघन्य समय इक जोय ।
उत्कृष्ट काल अनंतो कहियै, न्याय पूर्ववत लहियै ॥

११ वाउकाय वैक्रिय-तनु पृच्छा, जिन कहै सुण धर इच्छा ।
सर्व-बध नु अतर जानं, जघन्य अतर्मुहूर्त्त मानं ॥

सोरठा

१२. वाऊ-तनु औदार, ते वैक्रिय गति धुर समय ।
सर्व-वध अवधार, मर वलि वाऊ इज थयो ॥

१३. तसु अपर्याप्त काल, वैक्रिय शक्ति न तेहमे ।
अंतर्मुहूर्त्त न्हाल, पछै पर्याप्त ते थइ ॥
१४. ते वैक्रिय प्रारभ, सर्व-बध पहिले समय ।
अतर्मुहूर्त्त लभ, अंतर इम सर्व-बंध नों ॥

१५. *वाउकाय वैक्रिय तनु दृष्ट, अतर सर्व-बंध उत्कृष्ट ।
पल्य तणो असख्यातमो भाग, तास न्याय इम माग ॥

सोरठा

१६. वाऊ तनु औदार, वैक्रिय-गत पहिलै समय ।
सर्व-वध अवधार, पछै देश-बध थइ मुओ ॥

१७. पछै औदारिक वाय, तेह विषे बहु भव किया ।
पल्य तणोज कहाय, असख्यातमों भाग रही ॥
१८. वैक्रिय अवश्य करत, तत्र सर्व-बध धुर समय ।
यथोक्त अंतर हुंत, सर्व-बध नो इह विधे ॥

१९. *वाउकाय वैक्रिय तनु जाणी, देश-बध नो पिछाणी ।
सर्व-वध तणो जिण रीत, जघन्य उत्कृष्ट संगीत ॥
२०. तिरि पचेंद्रिय वैक्रिय पृच्छा, जिन कहै सुण धर इच्छा ।
सर्व-बध नु अतर जन्य, अंतर्मुहूर्त्त जघन्य ॥

---

*लय : समझू नर विरला

८ स च प्रथमसमये सर्वबन्धको भूत्वा देशबन्धं च कृत्वा मृत तत परमनन्त कालमौदारिकशरीरिषु वनस्पत्यादिषु स्थित्वा (वृ० प० ४०७)

९ वैक्रियशरीरवत्सूत्पन्न, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको जात, एव च सर्वबन्धयोर्यथोक्तमन्तर भवतीति (वृ० प० ४०७)

१० एव देसबधतरं पि। (श० ८।३९६)
जघन्येनैक समयमुत्कृष्टतोऽनन्तं कालमित्यर्थ, भावना चास्य पूर्वोक्तानुसारेणेति (वृ० प० ४०७)

११ वाउक्काइयवेउव्वियसरीरपुच्छा ।
गोयमा ! सव्ववंधंतर जहण्णेण अतोमुहुत्त,

१२ वायुरौदारिकशरीरी वैक्रियमापन्न:, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको भूत्वा मृत पुनर्वायुरेव जात । (वृ० प० ४०७)

१३. तस्य चापर्याप्तकस्य वैक्रियशक्तिर्नाविर्भवतीत्यन्तर्मुहूर्त्तमात्रेणासौ पर्याप्तको भूत्वा । (वृ० प० ४०७)

१४ वैक्रियशरीरमारभते, तत्र चासौ प्रथमसमये सर्वबन्धको जात इत्येवं सर्वबन्धान्तरमतर्मुहूर्त्तमिति । (वृ० प० ४०७)

१५ उक्कोसेण पलिओवमस्स असखेज्जइभाग ।

१६. वायुरौदारिकशरीरी वैक्रिय गत., तत्प्रथमसमये च सर्वबन्धकस्ततो देशवन्धको भूत्वा मृत । (वृ० प० ४०७)

१७. तत परमौदारिकशरीरिषु वायुषु पल्योपमासख्येयभागमतिवाह्य

१८. अवश्य वैक्रिय करोति, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धक, एव च सर्वबधयोर्यथोक्तमन्तर भवतीति (वृ० प० ४०७)

१९ एव देसबधतर पि । (श० ८।३९७)

२० तिरिक्खजोणियपचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबधतरपुच्छा ।
गोयमा ! सव्वबधतर जहण्णेण अतोमुहुत्त,

## तमस्काय का चित्र

पूर्व
उत्तर
पश्चिम
द्वितीयप्रतर २
प्रथम प्रतर १
माहेन्द्र ४
सनतकुमार ३
ईशाण २
सोधर्म १
असरव्याता द्वीप समुद्र
मेरु

## ४

# कृष्णराजि का चित्र

त्रिकोण कृष्णराजी
८. सुप्रतिष्ठाभ
चतुष्कोण कृष्णराजी
१. अर्चि
षट्कोण कृष्णराजी
पूर्वा
२. अर्चिमाली
चतुष्कोण कृष्णराजी
३. वैरोचन
९. रिष्ट
५. चन्द्राभ
चतुष्कोण कृष्णराजी
४. प्रभंकर
त्रिकोण कृष्णराजी
दक्षिणा
षट्कोण कृष्णराजी
पश्चिमा
६. सूराभ
चतुष्कोण कृष्णराजी
७. शुक्राभ

# गणना कालबोधक यन्त्र



| | समय प्रमाण | | |
|---|---|---|---|
| १ | सर्वेभ्य. सूक्ष्मतर समय | | |
| २ | असख्यातै. समयैरावलिका | | |
| ३ | सख्यातावलिकाभिरुच्छ्वास | | |
| ४ | त एव सख्येया नि श्वास | | |
| ५ | द्वयोरपि काल प्राणु. | | |
| ६ | सप्तभि प्राणुभि स्तोक | | |
| ७ | सप्तभि: स्तोकैलव | | |
| ८ | सप्तसप्तत्या लवाना मुहूर्त | | |
| ९ | त्रिशता मुहूर्तेरहोरात्र | | |
| १० | तै. पचदशभि पक्ष | | |
| ११ | द्वाभ्या पक्षाभ्या मास | | |
| १२ | मासद्वयेन ऋतु | | |
| १३ | ऋतुत्रयेण अयनम् | | |
| १४ | अयनद्वयेन सवत्सर | | |
| १५ | तै पंचभिर्युगम् | | |
| १६ | विंशत्या युगै वर्षशतम् | | |
| १७ | तैर्दशभिर्वर्षसहस्रम् | | |
| १८ | तेपा शतेन वर्षलक्षम् | | |
| १९ | तेपा चतुरशीत्या पूर्वागम् | ८४००००० अत्राकद्वय विदव· पच | |
| २० | पूर्वम् | ७०५६०००००००००० | अका ४ विदव १० |
| २१ | त्रुटितागम् | ५९२७०४००००००००००००००० | ,, ६ ,, १५ |
| २२ | त्रुटितम् | ४९७८७१३६०००००००००००००००००००० | ,, ८ ,, २० |
| २३ | अडडागम् | ४१८२११९४२४ | ,, १० ,, २५ |
| २४ | अडडम् | ३५१२९८०३१६१६ | ,, १२ ,, ३० |
| २५ | अववागम् | २९५०९०३४६५५७४४ | ,, १४ ,, ३५ |
| २६ | अववम् | २४७८७५८९११०८२४९६ | ,, १६ ,, ४० |
| २७ | हूहूकागम् | २०८२१५७४८५३०९२९६६४ | ,, १८ ,, ४५ |
| २८ | हूहूकम् | १७४९०१२२८७६५९८०९१७७६ | ,, २० ,, ५० |
| २९ | उत्पलागम् | १४६९१७०३२१६३४२३९७०९१८४ | ,, २२ ,, ५५ |
| ३० | उत्पलम् | १२३४१०३०७०१७२७६१३५५७१४५६ | ,, २४ ,, ६० |
| ३१ | पद्मागम् | १८३६६४६५७८९४५११९५३८८००२३०४ | ,, २६ ,, ६५ |
| ३२ | पद्मम् | ८७०७८३१२६३१३९००४१२५९२१९३५३६ | ,, २७ ,, ७० |
| ३३ | नलिनागम् | ७३१४५७८२६१०३६७६३४६५७७४४२५७०२४ | ,, २९ ,, ७५ |
| ३४ | नलिनम् | ६१४४२४५७३९०७०८८१३११२५०५१७५९००१६ | ,, ३१ ,, ८० |
| ३५ | अर्थनिपुरागम् | ५१६११६६४२०९८७५४०३०१४५०४३४७७५६१३४४ | ,, ३३ ,, ८५ |
| ३६ | अर्थनिपुरम् | ४३३५३७९३६२९५३३८५३२१८३६५२११५१५२०९६ | ,, ३५ ,, ९० |
| ३७ | अयुतागम् | ३६४१७१९०२६६४८८०८४३६७०३४२६७७७६७२८४३२६ | ,, ३७ ,, ९५ |
| ३८ | अयुतम | ३०५९०४३९८२३८४९९९०८६८३०८७८४९३२४५१८८३४१७६ | ,, ३९ ,, १०० |
| ३९ | नयुतागम् | २५६९५९६९४५२०३३९९२३२९३७९३७९३४३२५९५८२०७०७८४ | ,, ४१ ,, १०५ |
| ४० | नयुतम् | २१५८४६१४३३९७०८५५३५५६६७८६७८६४८३३८०४८९३९४५८५६ | ,, ४३ ,, ११० |
| ४१ | प्रयुतागम् | १८१३१०७६०४५३५५१८४९८७६१००९००६४६०३९६११०९१४५१९०४ | ,, ४५ ,, ११५ |
| ४२ | प्रयुतम् | १५२३०१०३८७८०९८३५५३०९५९२४७५६५४२६७३२७३३१६८१९५९९३६ | ,, ४७ ,, १२० |
| ४३ | चूलिकागम् | १२७९३२८७२५७६०२६१८५२७२५७६७९५४९५८४५५४९५८६१२८४६३४६२४ | ,, ४९ ,, १२५ |
| ४४ | चूलिका | १०७४६३६१२९६३८६१९९५६२८९६४५०८२१६५१०२६१६५२३४७९०९३०८४१६ | ,, ५१ ,, १३० |
| ४५ | शीर्पप्रहेलिकागम् | ९०२६९४३४८८९६४४०७६३२८३३०१८६९०१८६८६१९७८७९७२२४३८१९०६९४४ | ,, ५२ ,, १३५ |
| ४६ | शीर्पप्रहेलिका | ७५८२६३२५०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६ | ,, ५४ ,, १४० |